॥ श्री: ॥

योगवाशिष्ठ
भाषा

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

श्रीयोगवाशिष्ठ भाषा

द्वितीय भाग

[निर्वाण प्रकरण]

श्रीमत्पटियाला नगर-नरेश की परम जिज्ञासु
भक्ता दोनों बहनों के इस अपार संसार
से उद्धरणहेतु कथा श्रवण प्रसंग से
साधु रामप्रसादजी महाराज
निरंजनीजी-कृत



प्रकाशक
नवलकिशोर प्रेस
लखनऊ



[सातवीं बार सन् १९२८ ई०

Printed by K. D. Seth, at the N. K. Press, Lucknow.

योगवाशिष्ठ की अनुक्रमणिका ।

द्वितीय भाग ।

निर्वाणप्रकरण उत्तरार्द्ध।

इति

द्वितीय भाग समाप्त ।

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीयोगवाशिष्ठ ।

द्वितीयभाग ।

निर्वाणप्रकरणप्रारम्भः ।

बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! उपशम प्रकरण के अनन्तर अब तुम निर्वाण प्रकरण सुनो जिसके जानने से तुम निर्वाणपद को प्राप्त होगे। बड़े उत्तम वचन मुनिनायक ने रामजी से कहे हैं और रामजी ने सब ओर से मन खैंचकर मुनीश्वर के वाक्यों में स्थापित किया। और राजा लोग भी निस्पन्द होगये मानों काग़ज़ पर चित्र लिखे हैं—और वशिष्ठजी के वचनों को विचारने लगे। राजकुमार भी विचारते और कण्ठ हिलाते थे और शिर और भुजा फेर के विस्मय को प्राप्त हुये। उसमें वे प्रसन्नता को प्राप्त हुये कि, जिस जगत् को सत्य जानकर हम बिचरते थे वह है ही नहीं। ऐसे आश्चर्य में वे आश्चर्य को प्राप्त हुये। तब दिन का चतुर्थभाग रह गया और सूर्य अस्त हुये—मानों वशिष्ठजी के वचन सुनकर उनको भी फल लगा है—सब तेज क्षीण होगया और शीतलता प्राप्त हुई। स्वर्ग से जो सिद्ध और देवता आये थे उनके गले में मन्दार आदिक वृक्षों के फूल थे उनसे पवन के द्वारा सब स्थान सुगन्धित होगये और भँवरे फूलों पर गुञ्जार करने लगे और झरोखों के मार्ग से सूर्य की किरणें आती थीं उनसे सूर्यमुखी कमल जो राजा और देवताओं के शीश पर थे वह सूख गये। जैसे मन से जगत् की सत्ता निवृत्त होजाती है और वृत्ति सकुचती जाती है। बालक जो सभा में बैठे थे और पिञ्जरों में जो पक्षी बैठे थे उनके भोजन का समय हुआ और बालकों के भोजन के निमित्त माता उठीं। जब चौथे पहर राजा की नौबत, नगारे, भेरी, सहनाई, बाजे बजने लगे और वशिष्ठजी जो बड़े ऊँचे स्वर से कथा कहते थे उनका शब्द नगारे और बाजों से दब गया तब—जैसे वर्षाकालका मेघ गरजता है और

मोर तूष्णी हो जाते हैं तैसेही वशिष्ठजी तूष्णी हो गये। ऐसा शब्द हुआ कि, जिससे आकाश, पृथ्वी और सब दिशा भरगये और पिञ्जरों में पक्षी पंखों को फैलाकर भड़ भड़ शब्द करनेलगे—जैसे भूकम्प हुये से लोग कांपते और शब्द करते हैं—और बालक माता के शरीर से लपटगये। इसके अनन्तर मुनिशार्दूल वशिष्ठजी बोले कि, हे निष्पाप, रघुनाथ! मैंने तुम्हारे चित्तरूपी पक्षी के फँसाने के निमित्त अपना वाक्रूपी जाल फैलाया है,इससे अपने चित्त को वश करके तुम आत्मपद में लगो! हे रामजी! यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है उसके सार में दुर्बुद्धि को त्यागकर चित्त को लगाओ। जैसे हंस जलको त्यागकर दूध पान करता है तैसेही आदिसे अन्तपर्यन्त सब उपदेश बारम्बार विचारकर सार को अङ्गीकार करो। इस प्रकार संसारसमुद्र से उतरकर परमपद को प्राप्त होगे। अन्यथा न होगे। हे रामजी! जो इन वचनों को अङ्गीकार करेगा वह संसारसमुद्र से तर जावेगा और जो अङ्गीकार न करेगा वह नीच गति को प्राप्त होगा। जैसे विन्ध्याचल पर्वत की खाईं में हाथी गिरके कष्ट पाता है तैसेही वह संसार में कष्ट पावेगा। हे रामजी! ये जो मेरे वचन हैं इनको ग्रहण न करोगे तो नीचे गिरोगे—जैसे पन्थी हाथसे दीपक त्यागकर रात्रि को गढ़े मेंगिरताहै—और जो असंग होकर व्यवहार में विचरोगे तो आत्मसिद्धि को प्राप्त होगे। यह जो मैंने तुमको तत्त्वज्ञान; मनोनाश और वासना क्षय कहा है, इस अभ्यास से सिद्धि को प्राप्त होगे। यह शास्त्र का सिद्धान्त है। हे सभा! हे महाराजो, हे राम, लक्ष्मण और भूपतिलोगो! जो कुछ मैंने तुमसे कहा है उसको तुम विचारो; जो कुछ और कहना है उसे मैं प्रातःकाल कहूंगा। इतना कह बाल्मीकिजी बोले; हे साधो! इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब सब सभा उठ खड़ीहुई और वशिष्ठजी के वचनों को पाकर सब खिलआये—जैसे सूर्यको पाकर कमल खिल आता है। वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों इकट्ठे उठे और वशिष्ठजी विश्वामित्र को अपने आश्रम में ले गये। आकाशचारी देवता और सिद्ध वशिष्ठजी को नमस्कार करके अपने २ स्थानों को गये, राजादशरथ अर्घ्य पाद्य से वशिष्ठजी का पूजन करके

अपने अन्तःपुर में गये और श्रोता लोग भी आज्ञा लेकर और वशिष्ठजी का पूजन करके अपने २ स्थानों में गये। राजकुमार अपने मण्डलको गये मुनीश्वर वनमें गये और राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न वशिष्ठजी के आश्रम को गये और पूजा करके फिर अपने गृह में आये। सब श्रोता अपने २ स्थानों को जाकर स्नानसंध्यादिक कर्म करने लगे, पितर और देवताओं को पूजा और ब्राह्मणों से लेकर भृत्यपर्यन्त सबको भोजन कराकर अपने मित्र और भाइयों के साथ भोजन किया और यथाशक्ति अपने वर्णाश्रम के धर्मको साधा। जब सूर्य भगवान् अस्त हुये और दिन की क्रिया निवृत्त होगई तब रात्रि हुई और निशाचर विचरने लगे तब भूचर, राजऋषि और राजपुत्र आदिक जो श्रोता थे सो रात्रि को एकान्त में अपने २ आसन पर बैठकर विचारने लगे। राजकुमार और राजा अपने२ स्थानों पर बैठे और ब्राह्मण, तपस्वी कुशादिक बिछाकर बैठे विचारते थे कि संसार के तरने का क्या उपाय कहा है; और जो वशिष्ठजी ने वचन कहे थे उनमें भले प्रकार चित्तको एकाग्र कर और भले प्रकार विचार कर निद्रा को प्राप्त हुये। जैसे सूर्य उदय हुये पद्मिनियां मुंद जाती हैं तैसेही वे सब सुषुप्ति को प्राप्त हुये; पर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तीनपहर वशिष्ठजी के उपदेश को विचारते रहे और आधेपहर सोकर फिर उठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे दिवसरात्रिव्यापारवर्णनं नामप्रथमस्सर्गः॥ १ ॥

बाल्मीकिजी बोले, हे साधो! इस प्रकार जब रात्रि व्यतीत हुई और तम का नाश हुआ तब राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्नादिक स्नान और संध्यादिक कर्म करके वशिष्ठजी के आश्रम में जा स्थित हुये। वशिष्ठजी भी संध्यादिक करके अग्निहोत्र करने लगे और जब कर चुके तब रामादिक ने उनको अर्घ्य पाद्य से पूजा और चरणों पर भले प्रकार मस्तक रक्खा। जब रामजी गये थे तब वशिष्ठजी के द्वारे पर कोई न था पर एक घड़ी में अनेक सहस्र जीव आये और वशिष्ठजी रामादिक को साथ लेकर राजा दशरथ के गृह में आये। तब राजा दशरथ उनकी अगवानी को आगे

आये और वशिष्ठजी का आदर व पूजन किया और दूसरे लोगों ने भी बहुत पूजन किया । निदान नभचर और भूचर जितने श्रोता थे वे सब आये और नमस्कार करके बैठे और सब निस्पन्द और एकाग्र होकर स्थित भये । जैसे निस्पन्द वायु में कमलों की पंक्ति अचल होती है तैसे वे बैठे । भाटजन जो स्तुति करनेवाले थे वेभी एकओर बैठे और सूर्य की किरणें झरोखों के मार्ग से आईं—मानों किरणें भी वशिष्ठजी के वचन सुनने को आई हैं तब वशिष्ठजी की ओर रामजी ने देखा जैसे स्वामिकार्तिक शंकर की ओर; कच बृहस्पतिकी ओर और प्रह्लाद शुक्रकी ओर देखें और जैसे भ्रमरा भ्रमता २ आकाशमार्ग से कमलपर आ बैठता है तैसेही रामजी की दृष्टि औरोंको देखते२ वशिष्ठजी पर आ स्थित हुई तब वशिष्ठजी ने रामजी की ओर देखा और बोले;हे रघुनन्दन ! मैंने जो तुमको उपदेश कियाहै वह तुमको कुछ स्मरण है ? वे वचन परमार्थबोध के कारण, आनन्दरूप और महा गम्भीर हैं । अब और भी बोधके कारण और अज्ञानरूपी शत्रु के नाश-कर्ता, इन्दुप्रभा वचनों को सुनो । निरन्तर आत्मसिद्धान्त शास्त्र में तुमसे कहता हूं । हे रामजी ! वैराग्य और तत्त्व के विचार से संसारसमुद्र को तरता है और सम्यक्तत्त्व के बोध से जब दुर्बोध निवृत्त होजाता है तब वासना का आवेश नष्ट होजाता है और निर्दुःखपद को प्राप्त होजाता है । वह पद देश काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है । वही ब्रह्म जगत्रूप होकर स्थित हुआ है और भ्रम से द्वैत की नाईं भासता है । वह सब भावों से अविच्छिन्न सर्वत्र ब्रह्म है इस प्रकार महत् स्वरूप जानकर शान्तिमान् हो । हे रामजी ! केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है; न कुछ चित्त है, न अविद्याहै, न मनहै, न जीव है; यहसब कलना ब्रह्ममें भ्रमसे फुरती हैं । जो स्पन्द फुरनादृश्य और चित्त है सो कलनारूप संभ्रम है । ब्रह्मसे कोई पदार्थ नहीं । हे रामजी ! स्वर्ग, पाताल और भूमि में सदाशिव से तृण पर्यन्त जो कुछ दृश्य है वह सब परब्रह्म है—चिद्रूप से अन्य नहीं । उदासीन और मित्र, बांधव से लेकर सब ब्रह्म हैं । जबतक अज्ञान कलना से जगत् में बुद्धि स्थित है और ब्रह्मभाव नानात्व है तबतक चित्तादि कलना होती है; जब

तक देह में अहंभाव है और अनात्मदृश्य में ममत्व है तबतक चित्त आदिक भ्रम होता है और जबतक सन्तजन और सत्शास्त्रों से ऊंचे पद को नहीं पाया और मूर्खता क्षीण नहीं हुई तबतक चित्तादिक भ्रम होता है। हे रामजी! जबतक देहाभिमान शिथिलता को नहीं प्राप्त हुआ; संसार की भावना नहीं मिटी और सम्यक्ज्ञान करके स्थिति नहीं पाई; जबतक चित्तादिक प्रकट हैं; तबतक अज्ञान से अन्धा है और विषयों की आशा के आवेश से मूर्च्छित है और मोह मूर्च्छा से नहीं उठा तबतक चित्तादिक कलना होती है। हे रामजी! जबतक आशारूपी विष की गन्ध हृदयरूपी वन में होती है तबतक विचाररूपी चकोर नहीं प्राप्त होता और भोगवासना नहीं मिटती। जब भोगों की आशा मिट जावे और सत्य शीतलता और संतुष्टता हृदय में प्राप्त हो तब चित्तरूपी भ्रम निवृत्त होजाता है। जब मोह और तृष्णा निवृत्त करिये और नित्य संवित् हो तब चित्त शान्त भूमिका को प्राप्त होता है। हे रामजी! जिस पुरुष की स्थिति स्वरूप में हुई है वह आपको देह से दूर देखता है। उस सम्यक्दर्शी के चित्त की भूमिका कहते हैं। जब अनन्त चेतनतत्त्व की भावना होती है और दृश्य को त्यागकर आत्मस्वरूप में प्राप्त होता है तब वह पुरुष सब जगत् को अपना अंग ही देखता है अर्थात् सब अपना स्वरूप देखता है। ऐसा जो आत्मरूप देखता है उसको जीवत्वादिक भ्रम कहां है? जब अज्ञान भ्रम निवृत्त होता है तब परम अद्वैत पद उदय होता है। जैसे रात्रि के क्षीण हुये सूर्य उदय होता है तैसेही मोह के निवृत्त हुये आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है और जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब चित्त नष्ट हो जाता है। जैसे सूखा पत्र अग्नि में दग्ध होजाता है तैसेही ज्ञानवान् का चित्त नष्ट होजाता है। हे रामजी! जीवन्मुक्त जो महात्मा पुरुष और परावरदर्शी है और जिसको सर्वत्र ब्रह्म ही दीखता है उसका चित्त सत्यपद को प्राप्त होता है। वह चित्त सत्य कहाता है और उसमें वासना भी दृष्टि नहीं आती। वह चेतनमन है और वह चित्त सत्यपद को प्राप्त हुआ है। यह जगत् ज्ञानवान् को लीलामात्र भासता है और वह हृदय से शान्तिरूप

और नित्य तृप्त है। उसको सर्वदा आत्मज्योति भासती है; विवेक से उसके चित्त से जगत् की सत्ता निवृत्त हो गई है और स्वरूप में उसने स्थिति पाई है सो चित्तसत्ता कहाती है। फिर वह कर्म चेष्टा करता भी दृष्टि आता है और मोह को नहीं प्राप्त होता। जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसेही ज्ञानी की चेष्टा जन्म का कारण नहीं और जो अज्ञानी हैं उनकी वासना मोहसंयुक्त है। जैसे कच्चा बीज उगता है तैसेही अज्ञानी वासनासे फिर२ जन्म लेता है और जिस चित्त से आसक्ति निवृत्त हुई है उसकी वासना जन्म का कारण नहीं। वह चित्त सत्ता कहाती है। हे रामजी! जिन पुरुषों ने पाने योग्य पद पाया है और ज्ञानाग्नि से चित्त दग्ध किया है वे फिर जन्म नहीं लेते। जो कुछ जगत् है उनको सब ब्रह्मरूप है जैसे वृक्ष और तरु नाममात्र दो हैं वास्तव में एक ही है; तैसेही ब्रह्म और जगत् नाममात्र दोनों हैं पर वास्तव में एक ही है। जैसे जल में तरङ्ग और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है। चेतन आत्मारूपी मिरच में जगत्रूपी तीक्ष्णता है। हे रामजी! ऐसे ब्रह्म तुम हो। जो तुम कहो कि, मैं चित्त नहीं तो कुछ माना जाता है क्योंकि, जो तुम कहो मैं जड़ हूं तो तुम आकाशवत् हुये तुम्हारे में कलना का उल्लेख कैसे हो? जो चेतन हो तो शोक किसका करते हो और जो चिन्मय हो तो निरायास आदि अन्त से रहित हुये। निदान सब तुमहीं हो अपने स्वरूप को स्मरण करो तब शान्ति पावोगे। जो सब भाव में स्थित हो और सबको उदय करनेवाले शान्तरूप, चेतन और ब्रह्मरूप हो। हे रामजी! ऐसी जो चेतनरूपी शिला है उसके उदय में वासनारूपी फुरना कहां हो? वह तो महाघनरूप है। हे रामजी! जो तुम हो सोई हो, उसमें और तुम्हारे में कुछ भेद नहीं। वही सत् और असत्रूप होकर भासता है, जिसके अन्तर सब पदार्थ हैं और जिसमें नानात्व और 'अहं,' 'त्वं,' 'अज्ञ','तज्ञ' में कुछ कलना नहीं। ऐसा जो सत्यरूप चिद्घन आत्मा है उसको नमस्कार है। हे रामजी! तुम्हारी जयहो। तुम आदि और अन्तसे रहित विशाल हो और शिलाके अन्तर्वत् चिद्घनस्वरूप आकाशवत् निर्मलहो। जैसे समुद्रमें तरङ्ग हैं तैसेही तुम्हारे

में जो जगत् है सो लीलामात्र है। तुम अपने घनस्वरूप में स्थित हो ॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रामदृढ़ीकरणंनाम द्वितीयस्सर्गः २ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे निष्पाप, रामजी! जिस चेतनरूपी समुद्रमें जगत्रूपी तरङ्ग फुरते और लीन हो जाते हैं ऐसे अनन्त आत्मभाव की भावना से मुक्त और भाव अभाव से रहित हो। ऐसा जो चिदात्म तुम्हारा स्वरूप है वही सर्व जगत्रूप है तब वासनादिक आवरण कहां हैं? जीव और वासना और सब आत्मा का किञ्चन है दूसरी वस्तु कुछ नहीं तब और कथा और प्रसंग कैसे हो? हे रामजी! महासरल गम्भीर और प्रकाशरूप जो चेतन समुद्र है वह तुम्हारा रूप है और रामरूपी एक तरङ्ग फुर आया है सो समुद्र तुम हो। ऐसा जो आत्मतत्त्व है वह जगत्रूपी होकर व्यापारी भासता है। जैसे अग्नि से उष्णता, फूल से सुगन्ध; कज्जल से कृष्णता, बरफ़ से शुक्लता; गुड़ से मधुरता और सूर्य से प्रकाश भिन्न नहीं तैसेही ब्रह्मसे अनुभव भिन्न नहीं— नित्यरूपहै। अनुभवसे अहं भिन्न नहीं; अहंसे जीव भिन्न नहीं; जीवसे मन भिन्न नहीं, मन से इन्द्रियां भिन्न नहीं, इन्द्रियों से देह भिन्न नहीं और देह से जगत् भिन्न नहीं। इस प्रकार महाचक्र जो प्रवृत्त की नाईं हुआ है सो कुछ प्रवृत्त नहीं, न शीघ्र प्रवर्तन, चिरकाल का प्रवर्ता है, न कोई ऊन है और न अधिक है, सर्वदा एक अखण्डसत्ता परमात्मतत्त्व है। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। वही सत्ता वज्रभूत और वही पूर्ण होकर स्थित है द्वैतकल्पना कुछ नहीं। ऐसे अपने स्वरूप में जो पुरुष स्थित है वह जीवन्मुक्त है। ऐसा जो ज्ञानवान् है वह मन, इन्द्रियों और शरीर की चेष्टा भी करता है पर उसको कर्तव्य का लेप नहीं लगता। हे रामजी! ज्ञानवान् को न कुछ त्यागने योग्य रहता है और न ग्रहण करने योग्य है; वह सब पदार्थों से निर्लेप रहता है। जबतक इसको ग्रहण और त्याग की बुद्धि होती है तबतक संसार के सुख दुःख का भागी होता है और इससे हेयोपादेय का जिसको अभाव है वह सुख दुःख का भागी नहीं होता। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह एक अद्वैत आत्मतत्त्व है, अन्यत्

कुछ नहीं। जैसे घट मठ की उपाधि से आकाश नानाप्रकार का भासता है और समुद्र तरङ्ग से अनेक रूप भासता है पर नानात्वभाव को नहीं प्राप्त होता तैसेही आत्मा में नाना प्रकार जगत् भासता है और नानात्व को नहीं प्राप्त होता है। ऐसे स्वरूप को जानकर उसमें स्थित हो; बाहर से अपने वर्णाश्रम का व्यवहार करो पर हृदय से पत्थर की नाईं हर्ष शोक से रहित स्थित हो। संवित्मात्र आत्मा को जो अपना रूप देखता है वही सम्यक्दर्शी है और उसका अज्ञान और मोह नष्ट हो जाता है। जैसे नदी का वेग मूलसहित तटके वृक्षको काटता है तैसेही आत्मज्ञान मोहसहित अज्ञान को काटता है। मित्रता, वैर, हर्ष, शोक, राग, द्वेष आदिक जो विकार हैं वे चित्त में रहते हैं सो उसका चित्त नष्ट होजाता है। हे रामजी! ज्ञानी सोता भी दृष्टि आता है पर कदाचित् नहीं सोता जिसका अनात्मा में अहंभाव निवृत्त हुआ है और जिसकी बुद्धि लेपायमान नहीं होती वह पुरुष इस लोक को मारे तो भी उसने कोई नहीं मारा और न वह बन्धायमान होता है। हे रामजी! जो वस्तु न हो और भासे उसको मायामात्र जानिये, जानने से वह नष्ट हो जावेगी। जैसे तेल विना दीपक शान्त हो जाता है तैसेही ज्ञान से वासना क्षय होजाती है और चित्त अचित्त होजाता है। जिसको सुख दुःख में ग्रहण त्याग नहीं वह जीवन्मुक्त आत्मस्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकप्रतिपादनन्नामतृतीयस्सर्गः॥ ३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार और इन्द्रियादिक जो दृश्य हैं वह सब अचिन्त्य चिन्मात्र है और जीव भी उससे अभिन्नरूप है। जैसे सुवर्ण और भूषण में भेद कुछ नहीं तैसेही चिन्मात्र और जीवादिक अभिन्न हैं। जबतक चित्त अज्ञान में होता है तबतक जगत् का कारण होता है और जब अज्ञान नष्ट होजाता है तब चित्तादिक का अभाव होजाता है। अध्यात्मविद्या जो वेदान्तशास्त्र है उसके अभ्यास से अज्ञान नष्ट हो जाता है। जैसे अग्नि के तेज से शीत का अभाव हो जाता है तैसे ही अध्यात्मविद्या के विचार और अभ्यास से अज्ञान

नष्ट होजाता है। जबतक अज्ञान का कारण तृष्णा उपशम को नहीं प्राप्त हुई तबतक अज्ञान है और जब तृष्णा नाश हो तब जानिये कि, अज्ञान का अभाव हुआ। हे रामजी! तृष्णारूपी विषूचिका रोग के नाश करने का मन्त्र अध्यात्मशास्त्र ही है, उसके अभ्यास से तृष्णा क्षीण हो जाती है। जैसे शरत्काल में कुहिरा नष्ट हो जाता है, तैसे ही आत्मअभ्यास से चित्त शान्त होजाता है; और जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट होजाता है तैसे ही विचार से मूर्खता नष्ट हो जाती है। जब चित्त अचित्तता को प्राप्त होता है तब वासनाभ्रम क्षीण हो जाता है जैसे तागे से मोती पिरोये होते हैं और तागे के टूटे से मोती भिन्न २ हो जाते हैं तैसे ही अज्ञान के नष्ट हुये मनादिक सब नष्ट होजाते हैं। जो पुरुष अध्यात्मशास्त्र के अर्थ को नहीं धारण करते और न प्रीतिही करते हैं वे पापी कीटादिक नीचयोनि को प्राप्त होंगे। हे कमलनयन! तुम्हारे में जो कुछ मूर्खता और चञ्चलता थी वह नष्ट होगई है और जैसे पवन के ठहरे से जल अचल होता है तैसे ही तुम स्थिरता और भाव अभाव से रहित परम आकाशवत् निर्मल पद को प्राप्त हुये हो। हे रामजी! मैं ऐसे मानता हूं कि, मेरे वचनों से तुम बोधवान् हुये हो और विस्तृत अज्ञानरूपी निद्रा से जागे हो। समान जीव भी हमारी वाणी से जग आते हैं; और तुम तो अति उदार बुद्धि हो तुम्हारे जागने में क्या आश्चर्य है? हे रामजी! जब गुरु भी दृढ़ होता है और शिष्य भी शुद्धपात्र होता है तब गुरु के वचन उसके हृदय में प्रवेश करते हैं सो मैं गुरु भी समर्थ हूं कि, मुझको अपना स्वरूप सदा प्रत्यक्ष है और शत्शास्त्र के अनुसार मैंने वचन कहे हैं और तेरा हृदय भी शुद्ध है उसमें वे प्रवेश कर गये हैं। जैसे तप्त पृथ्वी के क्षेत्र में जल प्रवेश कर जाता है तैसेही तेरे हृदय में वचनों ने प्रवेश किया है। हे राघव! हम महानुभाव रघुवंश कुल के बड़े गुरु के गुरु हैं; हमारे वचन तुमको धारने आते हैं। अब खेद से रहित होकर अपने प्रकृत आचार को करो। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब सूर्य अस्त होने लगा और

सब सभा परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानों को गई रात्रि के व्यतीत हुये सूर्य की किरणों के निकलते ही सब फिर आ बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तभावाभाववर्णनंनामचतुर्थस्सर्गः ४॥

रामजी बोले, हे मुनीश्वर! मैं परम स्वस्थताको प्राप्त होकर अपने आप में स्थित हूं और आपके वचनों की भावना से जगज्जाल के स्थितहुये भी मुझको शान्ति होगई है। आत्मानन्द से मैं तृप्त हुआहूँ- जैसे बड़ी वर्षा से पृथ्वी तृप्त होती है—और प्रसन्नता को पाकर स्थित हूं। सब ओर से केवल आत्मारूप मुझको भासताहै और नानात्व का अभावहुआ है। जैसे कुहिरे से रहित दिशा और आकाश निर्मल भासता है तैसेही सम्यक्ज्ञान से मुझको शुद्ध आत्मा भासताहै और मोह निवृत्त होगयाहै। मोहरूपी जङ्गल में जो तृष्णारूपी मृग और रागद्वेष आदिक धूलि और कुहिरा था सो सब निवृत्त होगया है और ज्ञानरूपी वर्षा से सब शान्त होगये हैं। अब मैं आत्मानन्द को प्राप्त हुआ हूं, जो आदि अन्त से रहित और अमृत है बल्कि अमृत का स्वाद भी उसके आगे तुच्छ भासता है। ऐसे आनन्द से मैं अपने स्वभाव में प्राप्त हुआ हूं मैं राम हूं अर्थात् सब में रमनेवालाहूं; मेरा मुझको नमस्कार है। अब मैं सब सन्देह से रहित हूं और सब संशय और विकार मेरे नष्ट हुये हैं। जैसे प्रातःकाल होने से निशाचर और वैताल आदिक निवृत्त होजाते हैं तैसेही राग द्वेषादिक विकारों का अभाव हुआ है और निर्मल विस्तीर्ण हिम की नाईं हृदयकमल में मैं स्थित हूं। जैसे भँवरा फिरता २ कमल में आ स्थित होता है तैसेही मैं आत्मरूपी सार में स्थित हूं। अविद्यारूपी कलङ्क आत्मा को कहां था मैं तो निश्चय से निर्मलता को प्राप्त हुआ हूं। जैसे सूर्य के उदय हुये तम का अभाव होजाता है तैसेही मेरे संशय और अविद्या नाश हुई है। अब मुझे सर्व आत्मा भासता है और कलना कोई नहीं। भावित आकार अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ मैं पूर्व प्रकृति को देख के हँसता हूं कि; क्या जानता था और क्या करता था। मैं तो नित्य शुद्ध ज्यों का त्यों आदि अन्त से रहित हूं। हे मुनीश्वर! तेरे वचनरूपी अमृत के समुद्र में मैंने स्नान

किया है और उससे अजर अमर आनन्दपद को पाकर सूर्य से भी ऊंचेपद को प्राप्त हुआ हूं और वीतशोक होकर परम शुद्धता, समता, शीतलता और अद्वैत अनुभव को प्राप्त हूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे राघवविश्रान्तिवर्णनन्नामपञ्चमस्सर्गः५॥

वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो! फिर भी मेरे परम वचन सुनो; तुम्हारे हित की कामना से मैं कहता हूं। अब तुम आत्मपद को प्राप्त हुये हो परन्तु बोध की वृद्धि के निमित्त फिर सुनो; जिसके सुनने से अल्पबुद्धि भी आनन्दपद को प्राप्त हो। हे रामजी! जिसको अनात्म में आत्माभिमान है और आत्मज्ञान नहीं हुआ उसको इन्द्रियरूपी शत्रु दुःख देते हैं- जैसे निर्मल पुरुष को चोर दुःख देते हैं और जिसकी आत्मपद में स्थिति हुई है उसको इन्द्रियां दुःख नहीं देतीं—जैसे दृढ़ राजा के शत्रु भी मित्र होजाते हैं तैसेही ज्ञानवान् के इन्द्रियगण मित्र होते हैं। जिन पुरुषों की देह में स्थित बुद्धि है और इन्द्रियों के विषय की सेवना करते हैं उनको बड़े दुःख प्राप्त होते हैं। हे रामजी! आत्मा और शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं है। जैसे तम और प्रकाश विलक्षण स्वभाव हैं तैसेही आत्मा और देह का परस्पर विलक्षण स्वभाव है। आत्मा सर्वविकारों से रहित, नित्यमुक्त, उदय अस्त से रहित और सबसे निर्लेप है और सदा ज्यों का त्यों प्रकाशरूप भगवान् आत्मा सत्रूप है उसका सम्बन्ध किससे हो? देह जड़ और असत्य, अज्ञानरूप, तुच्छ, विनाशी और अकृतज्ञ है उसका संयोग किस भांति हो? आत्मा चेतन, ज्ञान, सत् और प्रकाशरूप है उसका देह के साथ कैसे संयोग हो? अज्ञान से देह और आत्मा का संयोग भासता है; सम्यक्ज्ञान से संयोग का अभाव भासता है। हे रामजी! ये मैंने निपुण वचन कहे हैं; इनका बारम्बार अभ्यास करने से संसार मोह का अभाव हो जावेगा। जब संसार का कारण मोह निवृत्त हुआ तब फिर उसका सद्भाव न होगा जब तक अज्ञानरूपी निद्रा से दृढ़ होकर नहीं जागता तबतक आवरण रहता है। जैसे निद्रा के जागे से फिर निद्रा घेर लेती है पर जब दृढ़ होके जागे तब फिर नहीं घेरती; तैसेही दृढ़

अभ्यास से अज्ञान निवृत्त हुआ फिर आवरण न करेगा। इससे मोह और दुःख निवृत्त के अर्थ दृढ़ अभ्यास करो। हे रामजी! आत्मा देह के गुण को अङ्गीकार नहीं करता; यदि देह के गुण अङ्गीकार करे तो आत्मा भी जड़ होजावे पर वह तो सदा ज्ञानरूप है; और जो देह आत्मा का गुण परमार्थ से अङ्गीकार करे तो देह भी चेतन होजावे पर वह तो जड़रूप है, उसको अपना ज्ञान कुछ नहीं। जब ज्यों का त्यों ज्ञान हो तब शरीर तुच्छ और जड़ भासे। हे रामजी! देह और आत्मा का कुछ सम्बन्ध नहीं और समवायसम्बन्ध भी नहीं फिर इससे मिलकर वृथा दुःख को ग्रहण करना इससे बढ़ के और मूर्खता क्या है? जब कुछ भी इसका समान लक्षण हो तब सम्बन्ध भी हो पर जिसका कुछ भी समान लक्षण न हो उसका सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा चेतन है, देह जड़ है; आत्मा सत्रूप है, देह असत्रूप है; आत्मा प्रकाशरूप है, देह तमरूप है; आत्मा निराकार है, देह साकार है; आत्मा सूक्ष्म है और देह स्थूल है तो फिर आत्मा और देह का सम्बन्ध कैसे हो? और जब इनका संयोग ही नहीं तब दुःख किसका हो? जैसे सूक्ष्म और स्थूल; दिन और रात्रि; ज्ञान और अज्ञान; धूप और छाया सत् और असत् का सम्बन्ध नहीं होता तैसेही आत्मा और देह का संयोग नहीं होता और देह के सुख दुःख से आत्मा को सुखी दुःखी जानना मिथ्याभ्रम है। जरा-मरण, सुख-दुःख; भाव-अभाव आत्मा में रञ्चकमात्र भी नहीं यदि देह में अभिमान होता है तो ऊंच नीच जन्म पाता है; वास्तव में कुछ नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है और उसमें विकार कोई नहीं। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में होता है और जल के हिलने से प्रतिबिम्ब भी चलता है तैसेही देह के सुख दुःख से आत्मा में सुख दुःख विकार मूर्ख देखते हैं–आत्मा सदा निर्लेप है और जब यथाभूत सम्यक् आत्मज्ञान हो तब देह में स्थित भी भ्रम को न प्राप्त हो। हे रामजी! जब यथाभूत ज्ञान होता है तब सत् को सत् जानता है और असत् को असत् जानता है। जैसे दीपक हाथ में होता है तब सत्–असत् पदार्थ भासते हैं तैसेही ज्ञान से सत्–असत्

यथार्थ जानता है और अज्ञान से मोह में भ्रमता है। जैसे वायु से पत्र भ्रमता है तैसेही मोहरूपी वायु से अज्ञानी जीव भ्रमता है और कदाचित् स्वस्थ नहीं होता। जैसे यन्त्री की पुतली तागे से चेष्टा करती है तैसेही अज्ञानी जीव प्राणरूपी तागे से चेष्टा करते हैं और जैसे नटुआ अनेक स्वांग धारता है तैसेही कर्म से जीव अनेक शरीर धारता है। जैसे काठ की पुतली तृण, काष्ठ, फूलादिक को लेती, त्यागती और नृत्य करती है तैसेही ये प्राणी भी चेष्टा करते हैं और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का ग्रहण करते हैं। जैसे वह पुतलियां जड़ हैं तैसेही ये भी जड़ हैं। यदि कहिये कि; इनमें तो प्राण है तो जैसे लुहार की धौंकनी श्वास को लेती और त्यागती है तैसेही ये जीव भी चेष्टा करते हैं। हे रामजी! अपना वास्तव स्वरूप है सो ब्रह्म है; उसके प्रमाद से जीव मोह और कृपणता को प्राप्त होते हैं। जैसे लुहार की खाल वृथा श्वास लेती है तैसे ही इनकी चेष्टा व्यर्थ है इनकी चेष्टा और बोलना अनर्थ के निमित्त है-जैसे धनुष से जो बाण निकलता है सो हिंसा के निमित्त है, उससे और कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता तैसेही अज्ञानी की चेष्टा और बोलना अनर्थ और दुःख के निमित्त है, सुख के निमित्त नहीं और उसकी संगति भी कल्याण के निमित्त नहीं--जैसे जङ्गल के ठूठ वृक्ष से छाया और फल की इच्छा करनी व्यर्थ है, उससे कुछ फल नहीं होता और न विश्राम के निमित्त छाया ही प्राप्त होती है; तैसेही अज्ञानी जीव की संगति से सुख नहीं होता। उनको दान देना व्यर्थ है-जैसे कीचड़ में घृत डाला व्यर्थ होता है तैसेही मूर्खों को दानदिया व्यर्थ होता है और उनके साथ बोलना भी व्यर्थ है। जैसे यज्ञ में श्वान को बुलाना निष्फल है तैसेही उनके साथ बोलना निष्फल है। हे रामजी! जो अज्ञानी जीव हैं वे संसार में आते, जाते और जन्मते, मरते हैं और शरीर में आस्था करते हैं; एवम् पुत्र, दारा, बान्धव, धनादिक से ममत्व बुद्धि करते हैं पर इस मिथ्यादृष्टि से वे दुःख पाते हैं और मुक्ति कदाचित् नहीं होती क्योंकि; अनात्म में आत्मबुद्धि को त्याग नहीं करते और ममता बुद्धि में दृढ़ रहते हैं। हे रामजी! जो

अज्ञानी हैं वे असत्पदार्थ को देखते हैं और वस्तुरूप की ओर से अन्धे हैं इससे वे परमार्थ धन से विमुख रहते हैं। नरक का सार जो स्त्री आदिक हैं उनमें वे प्रीति करते हैं और उनको देखकर प्रसन्न होते हैं। जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होता है तैसेही स्त्री आदिकों को देखकर मूर्ख प्रसन्न होते हैं। हे रामजी! मूर्ख के मारने के निमित्त स्त्रीरूपी विष की बेलि है; नेत्ररूपी उसके फूल हैं, ओष्ठरूपी पत्र हैं, स्तनरूपी गुच्छे हैं और अज्ञानरूपी भँवरे वहां विराजमान होते हैं। और नाश होते हैं। मतिरूपी तालाब में हर्षरूपी कमल और चित्तरूपी भँवरे सदा रहते हैं और अज्ञान-रूपी नदी में दुःखरूपी लहरें हैं और तृष्णारूपी बुद्बुदे हैं; ऐसी नदी मरणरूपी बड़वाग्नि में जा पड़ेगी। हे रामजी! जब जन्म होता है तब जीव महागर्भ अग्नि से जलता हुआ निकलता है और महामूर्ख अवस्था में निकलकर दुःखी होता है; जब यौवन अवस्था को प्राप्त होता है तब विषयों को सेवता है—वे भी दुःख के कारण होते हैं और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है तब शरीर असक्त होता है और हृदय से तृष्णा जलाती है। इस प्रकार जन्म मरण अवस्था में जीव भटकते हैं। हे रामजी! संसार रूपी कूप में मोहरूपी घटों की माला है और तृष्णा और वासनारूपी रस्सी से बांधे हुये जीवरूपी टीड भ्रमते हैं। ज्ञानवान् को संसार कोई दुःख नहीं देता; गोपद की नाईं तुच्छ हो जाताहै और अज्ञानी को समुद्रवत् तरना कठिन होता है। वह अपने भीतर ही भ्रम देखता है और निकल नहीं सक्ता—थोड़ा भी उसको बहुत हो जाताहै। जैसे पक्षीको पिंजरे में और कोल्हू के बैल को घरही में बड़ा मार्ग हो जाता है तैसेही अज्ञानी को तुच्छ संसार बड़ा हो भासता है। हे रामजी! जिस जगत् को रमणीय जानकर जीव उसके पदार्थों की इच्छा करता है। वे सब पञ्चभौतिक पदार्थ हैं पर मोह से उनको सुन्दर जानता है उनमें प्रीति करता है और स्थिर जानता है और वह सब अनर्थ के निमित्त होता है। हे रामजी! अज्ञानरूपी चन्द्रमा के उदय से भोगरूपी वृक्ष पुष्ट होते हैं और जन्मों की परंपरा रस को पाते; कर्मरूपी जल से सिंचते हैं और पुण्य और पापरूपी

मञ्जरी उनमें होती है। अज्ञानरूपी चन्द्रमा का वासनारूपी अमृत है और आशारूपी चकोर उसको देखकर प्रसन्न होता है। आशारूपी कमलिनी पर अज्ञानरूपी भँवरा बैठकर प्रसन्न होता है इससे सब जगत् अज्ञान से रमणीक भासता है। हे रामजी! जिस अज्ञान से यह जगत् स्थित है उसका प्रवाह सुनो। जब अज्ञानरूपी चन्द्रमा पूर्ण होकर स्थित होता है तब कामनारूपी क्षीर समुद्र उछलता है और अनेक तरङ्ग फैलाता है। उसके रस से तृष्णारूपी मञ्जरी पुष्ट होती है और काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी चकोर उसको देखकर प्रसन्न होते हैं देह अभिमानरूपी रात्रि के निवृत्त हुये और विवेकरूपी सूर्य के उदय हुये अज्ञानरूपी चन्द्रमा का प्रकाश निवृत्त हो जाता है। हे रामजी! अज्ञान से जीव भ्रमते हैं और उनकी चेष्टा विपर्यय हो गई है; जो तुच्छ और नीच दुःखरूप पदार्थ हैं उनको देखकर सुखदायक और रमणीय जानते हैं और स्त्री को देख प्रसन्न होते हैं। कवीश्वर कहते हैं कि, इसके कपोल कमलवत्, नेत्र भँवरेवत्, होठ हँसनेवाले और भुजा बेलि की नाईं हैं; कञ्चन के कलशवत् स्तन हैं; उदर और वक्षस्स्थल बहुत सुन्दर हैं और जंघस्थल केलेके स्तम्भवत् हैं। जिस स्त्री की कवि स्तुति करते हैं वह स्त्री रक्तमांस की पुतली है; कपोल भी रक्तमांस हैं, होठ भी रक्तमांस हैं; भुजा विषके वृक्ष के टासवत् हैं स्तन भी रक्तमांस हैं और संपूर्ण शरीर भी रक्तमांस अस्थि से पूर्ण है। एक बुतबनी है उसको जो रमणीक जानते हैं वे मूर्ख मोह से मोहित हुये हैं और अपने नाश के निमित्त इच्छा करते हैं। जैसे सर्पिणी से जो कोई हित करेगा वह नष्ट होगा तैसेही इससे हित किये से नाश होगा और जैसे कदलीवन का महाबली हाथी काम से नीच गति पाता है और संकट में पड़ता है और अंकुश सहकर जो अपमान को प्राप्त होता है, सो एक के हित से ही ऐसी गति को प्राप्त होता है, तैसेही यह जीव स्त्री की इच्छा करके अनेक दुःख पाता है। जैसे दीपक को रमणीय जानकर पतङ्ग उसमें प्रवेश करता है और नष्ट होता है तैसेही यह जीव स्त्री की इच्छा करता है और उसके संग से नाश को प्राप्त

होता है। लक्ष्मी का आश्रय करके जो सुख की इच्छा करता है वह भी सुखी न होगा। जैसे पहाड़ दूर से देखनेमात्र सुन्दर भासता है तैसेही यह भी देखने में सुन्दर लगती है पर लक्ष्मी का आश्रय करके जो सुख की इच्छा करे सो सुख न मिलेगा अन्त में दुःख को ही प्राप्त होगा। जब लक्ष्मी प्राप्त होती है तब अनर्थ और पाप करने लगता है और दुःख का पात्र होता है; और जब जाती है तब दुःख दे जाती है और उससे जलता रहता है। हे रामजी ! जगत् में सुख की इच्छा करनी व्यर्थ है; प्रथम जन्म लेता है तब भी दुःख से जन्म लेता है; फिर जन्म कर मूर्ख और नीच बालक अवस्था को प्राप्त होता है तब कुछ विचार नहीं होता है उसमें दुःख पाता है और कुछ शक्ति नहीं होती उससे दुःख पाता है; जब यौवन अवस्थारूपी रात्रि आती है तब उसमें काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी निशाचर बिचरते हैं और तृष्णारूपी पिशाचिनी बिचरती है क्योंकि उस अवस्था में विवेकरूपी चन्द्रमा नहीं उदय होता उससे अन्धकार में वे सब क्रीड़ा करते हैं। हे रामजी ! यौवन अवस्थारूपी वर्षाकाल में बुद्धि आदिक नदियां मलिनभाव को प्राप्त होती हैं; कामरूपी मेघ गर्जता है और तृष्णारूपी मोरनी उसको देख प्रसन्न होकर नृत्य करती है। फिर यौवन अवस्थारूपी चूहे को जरारूपी बिल्ली भोजन कर लेती है और शरीर महाजर्जरीभूत हो आसक्त हो जाता है, तृष्णा बढ़ती जाती है और हृदय से जलता है; निदान फिर मृत्युरूपी सिंह जरारूपी हरिण को भोजन कर लेता है। इस प्रकार जीव उपजता और मरता है और आशारूपी रस्सी से बँधा हुआ घटीयन्त्र की नाईं भटकता है-शान्ति कदाचित् नहीं पाता। हे रामजी ! ब्रह्माण्डरूपी एक वृक्ष है और उसमें जीवरूपी पत्र लगे हैं सो कर्मरूपी वायु से हलते हैं और अज्ञानरूपी उसमें जड़ता है। चित्तरूपी ऊंचा वृक्ष है उस पर लोभादिक घुघुआ बैठते हैं। जगत्‌रूपी ताल में शरीररूपी कमल हैं उन पर जीवरूपी भँवरे आ बैठते हैं और कालरूपी हाथी आकर उनको भोजन कर जाता है। हे रामजी ! जनतारूपी जीर्ण पक्षी आशारूपी

फांसी से बांधे हुये वासनारूपी शिक्षा में पड़े हैं और राग द्वेषरूपी अग्नि में पड़े हुये कालरूपी पुरुष के मुख में प्रवेश करते हैं। जनरूपी पक्षी उड़ते फिरते हैं सो कोई दिन उनको जब कालरूपी व्याध जाल फैलावेगा तब फँसालेगा। हे रामजी! संसाररूपी ताल में जीवरूपी मछलियां हैं और काल-रूपी बगला उनको भोजन करता है। कालरूपी कुम्हार जनरूपी मृत्तिका के बासन बनाता है और वे शीघ्र ही फूट जाते हैं। जीवरूपी नदी कर्मरूपी तरङ्गोंको फैलाती है और कालरूपी बड़वाग्नि में जा पड़ती है। जगत्रूपी हाथी के मस्तक में जीवरूपी मोती हैं; उस हाथी को कालरूपी सिंह भोजन कर जाताहै। वह कालरूपी भक्षक ऐसाहै कि जिसने ब्रह्मा को भी भोजन किया है और करताहै पर तृप्त नहीं होता। जैसे घृतकी आहुति से अग्नि तृप्त नहीं होता तैसेही काल जीवों के भोजनसे तृप्त नहीं होता हे रामजी! एक निमेष में अनेक जगत् उपजते हैं और उसी निमेष में लीन होजाते हैं सबके अभावहुये जो शेष रहताहै वह रुद्रहै; फिर वह भी निवृत्त होताहै और सबके पाछे एक परमतत्त्व ब्रह्मसत्ता रहती है। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह अज्ञानसे भासताहै जन्म, मरण, बालअवस्था, यौवन और वृद्धादिक विकार अज्ञान से भासते हैं और अज्ञान के नष्ट हुये सब नष्ट हो जाते हैं। जबतक आत्मविचार नहीं उपजता तबतक अज्ञान रहता है और जब आत्मविचार उपजता है तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है केवल ब्रह्मपद भासताहै॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अज्ञानमाहात्म्यवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसाररूपी यौवन चेतनरूपी पर्वत के शृङ्ग पर स्थित है और अविद्यारूपी बेलि उसमें बढ़कर विकाश को प्राप्त हुई है और सुख, दुःख, भाव, अभाव, अज्ञानपत्र, फूल और फल हैं। जहां अविद्या सुखरूप होकर स्थित होती है वहां ऊँचे सुख को भोगाती है और उसके सत्ताभाव को प्राप्त होती है और जहां दुःखरूप होकर स्थित होती है तहां दुःखरूप भासती है। वही सुख दुःख इसके फल गुच्छे हैं। दिन-रूपी फूल हैं और रात्रिरूपी भँवरे हैं; जन्मरूपी अंकुर हैं और भोगरूपी रस से पूर्ण है। जब विचाररूपी घुन अविद्यारूपी वृक्ष को खाने लगता

है तब वह नष्ट हो जाती है। जबतक विचाररूपी घुन नहीं लगा तब तक वह दिन २ बढ़ती जाती है और दृढ़ होती जाती है। हे रामजी! अविद्यारूपी बेलि का मूल संवित् फुरना है उससे फैली है; तारागण उसके फूल हैं, चन्द्रमा और सूर्य उसका प्रकाश है और दुष्कृत कर्मरूपी नरकस्थान कण्टक हैं; शुभ कर्मरूपी स्वर्ग उसके फूल हैं और सुख दुःखरूपी फल लगते हैं, जीवरूपी उसके पत्र हैं जो कालरूपी वायु से हलते हैं और जीर्ण होकर गिर पड़ते हैं; पृथ्वीरूपी उसकी त्वचा है, पर्वत घोड़े हैं, मरणरूपी उसमें छिद्र हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं और मोहरूपी कलियां हैं जिनके महासुन्दर गौर अङ्ग हैं उनसे जीव मोहित होते हैं—जैसे स्त्रीको देखकर पुरुष मोहित होते हैं—और सात समुद्र के जल से सींची जाती है जिससे पुष्ट होती है। उस बेलि में एक विष की भरी सर्पिणी रहती है जो कोई उसके निकट जाता है उसको काटती है और वह मूर्च्छा से गिर पड़ता है। संसाररूपी मूर्च्छा की देनेवाली तृष्णारूपी सर्पिणी है। वह बेलि अन्यथा नष्ट नहीं होती; जब विचाररूपी घुन इसको लागे तो नष्ट होजाती है। हे रामजी! जो कुछ प्रपञ्च तुमको भासताहै सो सब अविद्यारूपहै; कहीं अविद्या जलरूप हुई है कहीं पहाड़, कहीं नाग, कहीं देवता, कहीं दैत्य, कहीं पृथ्वी, कहीं चन्द्रमा, कहीं सूर्य, कहीं तारे, कहीं तम, कहीं प्रकाश, कहीं तेज, कहीं पाप, कहीं पुण्य, कहीं स्थावर, कहीं मूढ़रूप, कहीं अज्ञान से दीन और कहीं ज्ञान से आपही क्षीण होजाती है। कहीं तप दान आदिकसे क्षीण होती है; कहीं पापादिक से वृद्ध होती है; कहीं सूर्यरूप होकर प्रकाशती है, कहीं स्थानरूप होती है, कहीं नरकमें लीनहै, कहीं स्वर्गनिवासी है, कहीं देवता होती है, कहीं कृमि होती है, कहीं विष्णु रूप होकर स्थितहुई है; कहीं ब्रह्मा होकर स्थितहै, कहीं रुद्रहै, कहीं अग्निरूप है, कहीं पृथ्वीरूप हुई है और कहीं आकाश व कहीं भूत, भविष्यत् और वर्तमान हुई है। हे रामजी! जो कुछ देखनेमें आताहै वह सब महिमा इसीकी है। ईश्वर से आदि तृणपर्यंत सब अविद्यारूपहै जो इसदृश्यजालसे अतीतहै उसको आत्मलाभ जानो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यालतावर्णनन्नामसप्तमस्सर्गः७॥

रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! विष्णु और हर आदिक तो शुद्ध आकार आकाश जाति हैं इनको अविद्या तुम कैसे कहते हो? यह सुनकर मुझको संशय उत्पन्न हुआ है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम अविद्या और तत्त्व सुनो कि, किसको कहते हैं। जो अविद्यमान हो और विद्यमान भासे वह अविद्याहै और जो सदा विद्यमान है उसको तत्त्व कहते हैं। हे रामजी! शुद्ध संवित् और कलना से रहित जो चिन्मात्र आत्मसत्ता है सोही तत्त्व है; उसमें जो अहं उल्लेखसे संवेदनकलना पूर्णरूपसे फुरीहै सोही चिन्मात्र संवित् का आभास है। वही संवेदन फुरकर स्थानभेद से सूक्ष्म, स्थूल और मध्यमभाव को प्राप्त हुई है और फिर वही दृढ़ स्पन्द से मनभाव को प्राप्त हुई है। सात्त्विक, राजस और तामस तीनों उसी के आकार हुये हैं। वह अविद्या त्रिगुण प्राकृतधर्मिणीहुईहै और तीन गुण जो तुमसे कहे हैं वे भी एक २ गुण तीन२ प्रकार के हुये हैं जिससे अविद्या के गुण नव प्रकार के भेदको प्राप्त हुये हैं। जो कुछ तुमको दृश्य भासता है वह अविद्या के नव गुणों में है। ऋषीश्वर, मुनीश्वर,सिद्ध,नाग, विद्याधर और देवता अविद्या के सात्त्विकभाग हैं और उस सात्त्विक के विभाग में नाग सात्त्विक-तामसहैं, विद्याधर, सिद्ध, देवता और मुनीश्वर, अविद्या के सात्त्विक भाग में सात्त्विक-राजस हैं और हरिहरादिक केवल सात्त्विक हैं। हे रामजी! सात्त्विक जो प्रकृतभाग हैं उसमें जो तत्त्वज्ञ हुये हैं वे मोह को नहीं प्राप्त होते क्योंकि, वे मुक्तिरूप होते हैं। हरिहरादिक शुद्ध सात्त्विक हैं और सदा मुक्तिरूप होकर जगत् में स्थित हैं। वे जबतक जगत् में हैं तब-तक जीवन्मुक्त हैं और जब विदेहमुक्त हुये तब परमेश्वर को प्राप्त होते हैं। हे रामजी! एक अविद्या के दो रूप हैं। एक अविद्या विद्यारूप होती है-जैसे बीज फल को प्राप्त होता है और फल बीजभाव को प्राप्त होताहै जैसे जल से बुद्बुदा उठताहै तैसेही अविद्या से विद्या उपजती है और विद्या से अविद्या लीन होती है। जैसे काष्ठसे अग्नि उपजकर काष्ठको दग्ध करती है तैसेही विद्या अविद्या से उपजकर अविद्या को नाश करती है। वास्तव में सब चिदाकाश है जैसे जल में तरङ्ग कलनामात्र है तैसेही विद्या अविद्या

भावनामात्र है। इसको त्यागकर शेष आत्मसत्ता ही रहती है। अविद्या और विद्या आपस में प्रतियोगी हैं—जैसे तम और प्रकाश इससे इन दोनों को त्यागकर आत्मसत्ता में स्थित हो। विद्या और अविद्या कल्पनामात्र हैं। विद्या के अभाव का नाम अविद्या है और अविद्या के अभाव का नाम विद्या है। यह प्रतियोगी कल्पना मिथ्या उठी है। जब विद्या उपजती है तब अविद्या को नष्ट करती है और फिर आप भी लीन हो जाती है—जैसे काष्ठ से उपजी अग्नि काष्ठ को जलाकर आप भी शान्त होजाती है—उससे जो शेष रहता है वह अशब्द पद सर्वव्यापी है। जैसे वटबीज में पत्र, टास, फूल, फल और पत्ते होते हैं तैसेही सबमें एक अनुस्यूतसत्ता व्यापी है सोही ब्रह्मतत्त्व सर्वशक्ति है, उसी से सर्वशक्ति का स्पन्द है और आकाश से भी शून्य है। जैसे सूर्यकान्त में अग्नि होती है और दूध में घृत है तैसेही सब जगत् में ब्रह्म व्याप रहा है। जैसे दधि के मथे विना घृत नहीं निकलता तैसेही विचार विना आत्मा नहीं भासता और जैसे अग्नि से चिनगारें और सूर्य से किरणें निकलती हैं तैसेही यह जगत् आत्मा का किंचनरूप है। जैसे घटके नाशहुये घटाकाश अविनाशी है तैसेही जगत् के अभाव से भी आत्मा अविनाशी है। हे रामजी! जैसे चुम्बक पत्थर की सत्तासे जड़ लोह चेष्टा करता है परन्तु चुम्बक सदा अकर्ताही है तैसेही आत्मा की सत्तासे जगत् देहादिक चेष्टा करते हैं और चैतन्य होते हैं परन्तु आत्मा सदा अकर्ता है। इस जगत् का बीज चेतन आत्मसत्ताहै और उसमें संवित् संवेदन आदिक शब्दभी कल्पनामात्र हैं। जैसे जलको कहिये कि, बहुत सुन्दर और चञ्चलहै सो जलही जल है तैसेही संवेदन आदिक सब चेतनरूप हैं। जहां न किञ्चन है, न अकिञ्चन है सो तुम्हारा स्वरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यानिराकरणंनामाष्टमस्सर्गः॥८॥

वाशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्थावर—जङ्गम जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह अधिभौतिकता को नहीं प्राप्त हुआ। वह सब चिदाकाशरूप है और उसमें कुछ भाव अभाव की कल्पना नहीं और जीवादिक भेद भी नहीं। हमको तो भेदकल्पना कुछ नहीं भासती। जैसे रस्सी में सर्प का अभाव है तैसेही

ब्रह्म में भेदकल्पना का अभाव है। हे रामजी! आत्मा के अज्ञान से भेदकल्पना भासती है और आत्मा के जाने से भेदकल्पना मिट जाती है वही सर्वसंपदा का अन्त है। शुद्ध चेतन में चित्त का सम्बन्ध होनेका नाम अविद्या है। जो पुरुष चित्त की उपाधि से रहित चिन्मात्र है वह शरीर के नाश हुये नाश नहीं होता और शरीर के उपजे से नहीं उपजता। शरीर के उपजने और विनशने में वह सदा एकरस ज्यों का त्यों स्थित है। जैसे घट के उपजने और विनशने में घटाकाश ज्यों का त्यों रहता है तैसेही शरीर के भाव अभाव में आत्मा ज्यों का त्यों है जैसे बालक दौड़ता है तो उसको सूर्य भी दौड़ता भासता है और स्थित होने में स्थित भासताहै परन्तु सूर्य ज्योंका त्यों है; तैसेही चित्त की चञ्चलता से मूर्खजन आत्मा को व्याकुल देखते हैं; चित्तके अचलता में अचल देखते हैं और चित्तके उपजने में उपजता देखते हैं परन्तु आत्मा सदा ज्यों का त्यों है। जैसे मकड़ी अपने जालेसे आपही वेष्टित होती है और निकल नहीं सक्ती तैसेही जीव अपनी वासना से आपही बन्धायमान होते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अत्यन्त मूर्खता को प्राप्त होकर जो स्थावर आदिक तन में घन स्थित हुये हैं उनकी वासना कैसी होती है सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो स्थावर जीव हैं वे अमनसत्ता को नहीं प्राप्त हुये। वे केवल मन अवस्था में भी प्रतिष्ठित नहीं पर मध्य अवस्था में हैं। उनकी पुर्यष्टका सुषुप्तिरूप है सो केवल दुःख का कारण है। उनका मन नहीं नष्ट हुआ वे सुषुप्ति अवस्था में जड़रूप स्थित हैं सो काल पाकर जागेंगे अब उनकी सत्ता मूकजड़ होकर स्थित है। रामजी ने पूछा; हे देवताओं में श्रेष्ठ! यदि उनकी सत्ता अद्वैतरूप होकर स्थावर शरीर में स्थित है तो मुक्ति अवस्था उनके निकट है यह सिद्ध हुआ। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मुक्ति कैसे निकट होती है? मुक्ति तब होती है जब बुद्धिपूर्वक वस्तु को विचारे और यथाभूत अर्थदृष्टि आवे। जब सत्ता समान का बोध हो तब केवल आत्मपद को प्राप्त हो। हे रामजी! जब ज्यों का त्यों पदार्थ जानकर वासना को त्याग करे तब सत्ता समान

पद प्राप्त हो। प्रथम अध्यात्म शास्त्र को विचारे और उसमें जो सार है उसकी बारम्बार भावना करे तब उससे जो प्राप्त हो सो सत्ता समान परब्रह्म कहाता है। स्थावर के भीतर वासना है परन्तु बाहर दृष्टि नहीं आती क्योंकि; उनकी सुषुप्ति वासना है। जैसे बीज में अंकुर होता है और फिर उगता है; तैसेही उनके जन्म होवेंगे और वासना जागेगी। उनके भीतर जगत् की सत्यता है पर बाहर दृष्टि नहीं आती है। यह सुषुप्तिवत् जड़धर्म है वे अनन्त जन्म के दुःख पावेंगे। हे रामजी! स्थावर जो अब जड़ धर्मासुषुप्तिपद में स्थित हैं सो बारम्बार जन्म को पावेंगे—जैसे बीज में पत्र, टास, फूल और फल स्थित होते हैं और मृत्तिका में घटशक्ति है तैसे ही स्थावर में वासना स्थित है। जिसमें वासनारूपी बीज है वह सुषुप्तिरूप कहाता है और वह सिद्धता जो मुक्ति है नहीं प्राप्त करती। जहां निर्बीज वासनाहै सो तुरीयापद है और वह सिद्धता को प्राप्त करती है। हे रामजी! जब चित्तशक्ति वासना से मिली होती है तब स्थावर होती है और वह फिर जागती है। जैसे कोई कर्म करता हुआ सो जाता है तो सुषुप्ति से उठकर फिर वही कर्म करने लगता है क्योंकि कर्म-रूपी वासना उसके भीतर रहती है; तैसे ही स्थावर वासना से फिर जन्म पावेंगे। जब वह वासना हृदय से दग्ध हो तब जन्म का कारण नहीं होती। आत्मसत्ता समानभाव से घट पट आदिक सब पदार्थों में स्थित है। जैसे वर्षाकाल का एक ही मेघ नानारूप होकर स्थित होता है तैसेही एकही आत्मसत्ता सर्व पदार्थों में स्थित होती है। इससे सबमें आत्मा ही व्याप रहा है। ऐसी दृष्टि से जो रहित है उसको विपर्यय दृष्टि भ्रमदायक होती है और जब आत्मदृष्टि प्राप्त होती तब सब दुःख नाश होजाते हैं। हे रामजी! असम्यक्दृष्टि को ही बुद्धीश्वर अविद्या कहते हैं। वह अविद्या जगत्का कारणहै और उससे सब पसारा होताहै। जब उससे रहित अपना स्वरूप भासे तब अविद्या नष्ट होती है। जैसे बरफ़ की कणिका धूप से नाश हो जाती है तैसेही शुद्धस्वरूप के अभ्यास से अविद्या नष्ट हो जाती है। जैसे स्वप्न से रहित जब अपना स्वरूप देखता

है तब फिर स्वप्ने की ओर नहीं जाता, तैसेही शुद्धस्वरूप के अभ्यास से सम्पूर्ण भ्रम निवृत्त हो जाते हैं। हे रामजी! जब वस्तुको वस्तु जानता है तब अविद्या नष्ट हो जाती है। जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट होजाताहै पर दीपकको हाथमें लेकर देखिये तो अन्धकारकी कुछ मूर्ति दृष्टि नहीं आती, और जैसे उष्णता से घृतका पीन गल जाता है तैसेही आत्माके दर्शनहुये अविद्या नहीं रहती। वास्तव में अविद्या कुछ वस्तु नहीं, अविचार से सिद्ध है और विचार कियेसे लीन हो जाती है। जैसे प्रकाशसे तम लीन होजाता है तैसेही विचारसे अविद्या लीन होजाती है। अज्ञानसे अविद्याकी प्रतीति होती है। जबतक आत्मतत्त्वको नहीं देखा तबतक अविद्याही प्रतीति होती है और जब आत्माको देखा तब अविद्याका अभाव होजाताहै। प्रथम यह विचार करे कि; रक्त, मांस और अस्थि का यन्त्र जो शरीर है उसमें "मैं क्या वस्तु हूं"? सत्य क्या है? और असत्य क्या है? इस विचार से जिसका अभाव होता है वह असत्य है और जिसका अभाव नहीं होता वह सत्य है। फिर अन्वय व्यतिरेक से विचारे कि, कार्यकल्पित के होते भी हो और उसके अभाव में भी हो सो अन्वय सत्यहै। देहादिके भावमें भी जो आत्मा अधिष्ठान है और इनके अभाव में भी निरुपाधि सिद्ध है सो सत्य है और देहादिक व्यतिरेक असत्य है। ऐसे विचार कर आत्मतत्त्व का अभ्यास करे और असत् देहादिकसे वैराग्य करे तब निश्चयकरके अविद्या लीन होजाती है क्योंकि, वह वास्तव नहीं है, असत्यरूपहै। उसके नष्टहुये जो शेष रहे सो निष्किंचन किंचनस्वरूपहै और सत्यहै, ब्रह्म निरन्तरहै सो तत्त्ववस्तु उपादेय करने योग्यहै। हे रामजी! ऐसे विचारकरके अविद्या नष्ट होजाती है। जैसे पौंड़ेका रस जिह्वासे लगताहै तब अवश्य स्वाद आताहै तैसेही आत्मविचार से अविद्या अवश्य नष्ट होजाती है। यदि वास्तव में कहिये तो अविद्या भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं एक अखण्डित ब्रह्मतत्त्वहै। जिसके घट, पट, रथ आदिक पदार्थ भिन्न २ भासते हैं उसको अविद्या जानो और जिसको सर्व में एक ब्रह्मभावना है उसको विद्या जानो। इस विद्यासे अविद्या नष्ट होजावेगी॥

इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्रकरणेऽविद्याचिकित्सावर्णनंनामनवमस्सर्गः ९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! बोध के निमित्त मैं तुमको बारम्बार सार कहता हूं कि आत्मा का साक्षात्कार भावना के अभ्यास विना न होगा। यह जो अज्ञान अविद्या है सो अनन्त जन्म का दृढ़ हुआ भीतर बाहर दिखाई देता है, आत्मा सर्व इन्द्रियों से अगोचर है जब मन सहित षट् इन्द्रियों का अभाव हो तब केवल शान्ति को प्राप्त होता है। हे रामजी ! जो कुछ वृत्ति बहिर्मुख फुरती है सो अविद्या है क्योंकि, वह वृत्ति आत्मतत्त्व से भिन्न जानकर फुरती है और जो अन्तर्मुख आत्मा की ओर फुरती है सो विद्या अविद्या को नाश करेगी। अविद्या के दो रूप हैं—एक प्रधानरूप और दूसरा निकृष्टरूप है। उस अविद्या से विद्या उपजकर अविद्या को नाश करती है और फिर आप भी नाश हो जाती है। जैसे बांस से अग्नि उपजती है और बांस को जलाकर आप भी शान्त हो जाती है तैसे ही जो अन्तर्मुख है सो प्रधानरूप विद्या है और जो बहिर्मुख है सो निकृष्टरूप अविद्या है। इससे अविद्याभाव को नाश करे। हे रामजी ! अभ्यास विना कुछ सिद्ध नहीं होता। जो कुछ किसी को प्राप्त होता है सो अभ्यासरूपी वृक्ष का फल है। चिरकाल जो अविद्या का दृढ़ अभ्यास हुआ है तब अविद्या दृढ़ हुई है। जब आत्मज्ञान के निमित्त यत्न करके दृढ़ अभ्यास करोगे तब अविद्या नाश हो जावेगी। हे रामजी ! हृदयरूपी वृक्ष से जो अविद्यारूपी बुरी लता फैल रही है उसको ज्ञानरूपी खड्ग से काटो और जो कुछ अपना प्रकृत आचार है उसको करो तब तुमको दुःख कोई न होगा जैसे जनक राजा ज्ञात ज्ञेय होकर व्यवहार को करता था तैसेही आत्मज्ञान का दृढ़ अभ्यास कर तुम भी विचरो। हे रामजी ! जैसे निश्चय पवन, विष्णुजी, सदाशिव, ब्रह्मा, बृहस्पति, चन्द्रमा, अग्नि, नारद, पुलह, पुलस्त्य, अङ्गिरा, भृगु, शुकदेव और ज्ञात ज्ञेय ब्राह्मणों का है वही तुमको भी प्राप्त हो। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण ! जिस निश्चय से बुद्धिमान् विशोक होकर स्थित हुये हैं वह मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे सम्पूर्ण ज्ञानवानों का निश्चय है और जैसे वे व्यवहार में सम रहे हैं सो सुनो। विस्ताररूप जो कुछ जगज्जाल तुमको भासता है

वह निर्मल ब्रह्मसत्ता अपनी महिमा में स्थित है-जैसे समुद्र में तरङ्ग स्थित होते हैं और नाना प्रकार के उत्पन्न होते हैं सो एक जलरूप है, जल से भिन्न नहीं; तैसेही जो ग्रहण करनेवाला है सो भी ब्रह्म है और जिसको भोजन करता है वह भी ब्रह्म है; मित्र भी ब्रह्म है, शत्रु भी ब्रह्म है; ब्रह्म ही अपने आप में स्थित है। यह निश्चय ज्ञानवान् को सदा रहता है और ब्रह्म को ब्रह्म स्पर्श करता है तब किसको स्पर्श किया ? हे रामजी ! जिनको सदा यही निश्चय रहता है उनको राग द्वेष कुछ दुःख नहीं दे सक्ने। ब्रह्मही ब्रह्म में फुरता है; भावरूप भी ब्रह्म है, अभावरूप भी ब्रह्म है; कुछ भिन्न नहीं तो फिर रागद्वेष कलना कैसे हो ? ब्रह्म ही ब्रह्म को चेतता है; ब्रह्मही ब्रह्म में स्थित है, ब्रह्म ही अहं अस्मि है; ब्रह्म ही सम है; ब्रह्म ही आत्मा है और घट भी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्म ही से विस्तार को प्राप्त हुआ है। हे रामजी ! जब सर्वत्र ब्रह्म ही है तब राग विराग कलना कैसे होवे ? मृत्यु भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है; मरता भी ब्रह्म है और मारता भी ब्रह्म है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रम से भासताहै तैसेही आत्मा में सुख दुःख मिथ्या है। भोग भी ब्रह्महै, भोगनेवाला भी ब्रह्महै और भोक्ता देह भी ब्रह्म है निदान सर्वत्र ब्रह्म ही है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते और मिट जाते हैं सो जल से भिन्न नहीं तैसे ही शरीर उपजते और मिट जाते हैं सो ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है। हे रामजी ! जलके तरङ्ग जो मृत्युको प्राप्त होते हैं तो क्या हुआ वे तो जल ही हैं; तैसे ही मृतक ब्रह्म ने जो मृतक देह ब्रह्म को मारा तब कौन मुआ और किसने मारा ? जैसे एक तरङ्ग जलसे उपजा और दूसरे तरङ्गसे मिल दोनों इकट्ठे होकर मिटगये सो जलही जल हैं; वहां मैं, तू इत्यादिक दूसरा कुछ नहीं; तैसे ही आत्मा में जो जगत् है सो आत्मा ही अपने आप में स्थित है; तेरा, मेरा, भिन्न कुछ नहीं । जैसे सुवर्ण में भूषण और जल में तरङ्ग अभेदरूपहै तैसे ही ब्रह्म और जगत्में कुछ भेद नहीं। हे रामजी ! जो पुरुष यथार्थदर्शीहै उसको सदा यही निश्चय रहताहै और जिनको सम्यक् ज्ञान नहीं प्राप्तहुआ उनको विपर्ययरूप और का और भासताहै। पर वास्तव में सदा एकरूप है; ज्ञान और अज्ञानका भेद है। जैसे रस्सी एक होती है

परन्तु जिसको सम्यक्ज्ञान होता है उसको रस्सी भासती है और जिसको सम्यक्ज्ञान नहीं होता उसको सर्प हो भासताहै; तैसेही जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको सब ब्रह्मसत्ता ही भासती है और जो अज्ञानी है उसको जगत्-रूप भासता है और नाना प्रकार का जगत् दुःखदायक होता है पर ज्ञानवान् को सुखरूप है। जैसे अन्धे को सब ओर अन्धकार ही भासता है और नेत्रवान् को प्रकाशरूप होता है तैसेही सर्व जगत् आत्मरूप है परन्तु ज्ञानी को आत्मसत्ता सुखरूप भासती है और अज्ञानी को दुःख-दायक है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैतालबुद्धि होती है और उससे भयवान् होता है पर बुद्धिमान् निर्भय होता है तैसेही अज्ञानी को जगत् दुःखदायक है और ज्ञानी को सुखरूप है। यदि मेरा निश्चय पूछो तो यों है कि, मैं सर्व, ब्रह्म, नित्य, शुद्ध, सर्व में स्थित हूं; न कोई विन-शता है, न उपजता है। जैसे जल में तरङ्ग न कुछ उपजता है और न विन-शते हैं जलही जल है तैसेही भूत भी आत्मा में है और जगत् भी आत्म-रूप है। आत्मब्रह्मही अपने आप में स्थित है और शरीर के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता। मृतकरूप भी ब्रह्म है शरीर भी ब्रह्म है ब्रह्मही अनेकरूप होकर भासता है ब्रह्म से भिन्न शरीर आदिक कुछ सिद्ध नहीं होते। जैसे तरङ्ग, फेन और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही देह, कलना, इन्द्रियां, इच्छा देवतादिक सब ब्रह्मरूप हैं और जैसे भूषण सुवर्ण से भिन्न नहीं होता-सुवर्ण ही भूषणरूप होता है-तैसेही ब्रह्म से व्यतिरेक जगत् नहीं होता ब्रह्मही जगत्रूप है। जो मूढ़ हैं उनको द्वैतकलना भासती है। हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा; और इन्द्रियां, सब ब्रह्मही के नाम हैं और सुख दुःख कुछ नहीं। अहं आदिक, जो शब्द हैं उनमें भिन्न २ भावना करनी व्यर्थ है, अपना अनुभव ही अन्य की नाईं हो भासता है-जैसे पहाड़ में शब्द करने से प्रतिशब्द का भास होता है सो अपनाही शब्द है उसमें और की कल्पना मिथ्या है। जैसे स्वप्न में कोई अपना शिर कटा देखता है सो व्यर्थ है पर सोई भासि आता है। जिसको असम्यक्ज्ञान होता है उसको ऐसेही है हे रामजी! ब्रह्म सर्वशक्त है उसमें

जैसी भावना होती है वही भासि आता है। जिसको सम्यक्ज्ञान होता वह उसे निरहंकार, सुप्रकाश, और सर्वशक्त देखता है। कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण, यह जो षट्कारक बुद्धि है सो सब सर्वत्र ब्रह्मही है और ब्रह्मही अर्पण, ब्रह्मही हवि, ब्रह्मही अग्नि, ब्रह्मही होत्र, ब्रह्मही हुतनेवाला और ब्रह्मही फल देता है; ऐसे जाननेवाले का नाम ज्ञानी है और ऐसे न जानने से अज्ञानी है। जाननेवाले का नाम ब्रह्मवेत्ता है। हे रामजी ! यदि चिरकाल का बान्धव हो और उसको देखिये तो जानिये कि, बान्धव है और जो देखने में न आये और उसका अभ्यास दूर हो गया हो तो बान्धव भी अबान्धव की नाईं हो जाता है; तैसे ही अपना आप ही ब्रह्मस्वरूप है, जब भावना होती है तब ऐसे ही भासि आता है कि, मैं ब्रह्म हूं और द्वैत कल्पना लीन हो जाती है-सर्व ब्रह्म ही भासता है। जैसे जिसने अमृत पान किया है वह अमृतमय होता है और जिसने नहीं पान किया वह अमृतमय नहीं होता; तैसे ही जिसने जाना है कि, मैं ब्रह्म हूं वह ब्रह्मही होता है और जिसने नहीं जाना उसको नानात्वकल्पना जन्म मरण भासताहै और ब्रह्म अप्राप्तकी नाईं भासताहै। हे रामजी ! जिसको ब्रह्मभावनाका अभ्यास जगा है वह अभ्यास के बल से शीघ्रही ब्रह्म होता है। ब्रह्मरूपी बड़े दर्पण में जैसी कोई भावना करता है तैसाही रूप हो भासता है। मन भावनामात्र है, दुर्वासना से स्वरूप का आवरण हुआ है; जब वासना नष्ट होती है तब निष्कलङ्क आत्मतत्त्व ही भासता है। जैसे शुद्ध वस्त्र पर केशर का रङ्ग शीघ्र ही चढ़ जाता है, तैसेही वासना से रहित चित्त में ब्रह्मस्वरूप भासि आता है। हे रामजी ! आत्मा सर्वकलना से रहित है और तीनों काल में नित्य, शुद्ध, सम और शान्तरूप है। जिसको ज्ञान होता है वह ऐसे जानता है कि, मैं ब्रह्म हूं। और सदाकाल, सर्व में सर्व प्रकार सर्व घट, पटादिक जो जगज्जाल है उसमें मैं हीं ब्रह्म आकाशवत् व्याप रहा हूं ? न कोई मुझको दुःख है, न कर्म है न किसी का त्याग करता हूं और न वाञ्छा करता हूं और सर्वकलना से रहित निरामय हूं। मैं हीं रक्त, पीत, श्वेत और श्याम हूं

और रक्त, मांस अस्थि का वपु भी मैं हीं हूं; घट पटादिक जगत् भी मैं हीं हूं और तृण, बेलि, फूल, गुच्छे, टास, वन, पर्वत, समुद्र, नदियां, ग्रहण, त्याग, संकुचना, भूत आदि शक्ति सब मैं हीं हूं। विस्तार को प्राप्त मैं हीं भया हूं; वृक्ष, बेलि, फल, गुच्छे, जिसके आश्रय फुरते हैं वह चिदात्मा मैं हीं हूं और सबमें रसरूप मैं हीं हूं। जिसमें यह सर्व है और जिससे यह सर्व है; जो सर्व है और जिसको सर्व है ऐसा चिदात्मा ब्रह्म मैं हीं हूं। जिसके चेतन, आत्मा, ब्रह्म, सत्य, अमृत, ज्ञानरूप इत्यादिक नाम हैं; ऐसा सर्वशक्त, चिन्मात्र, चैत्य से रहित प्रकाशमात्र, निर्मल, सर्व भूत प्रकाशक और मन, बुद्धि, इन्द्रियों का स्वामी मैं हूं। जो कुछ भेद कलना है सो इसने ही की थी और अब इनकी कलना को त्यागकर मैं अपने प्रकाश में स्थित हूं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक जो सब जगत् का कारण है उन सबका चेतन आत्मारूप ब्रह्म, निरामय, अविनाशी, निरन्तर, स्वच्छ आत्मा, प्रकाशरूप, मन के उत्थान से रहित, मौनरूप मैं हीं हूं और परम अमृत, निरन्तर सर्व भूतों के सत्तारूप से मैं हीं स्थित हूं। सदा अलेपक, साक्षी, सुषुप्ति की नाईं और द्वैतकलना से रहित अक्षोभरूपानुभाव मैं हीं हूं। शान्तरूप जगत् में मैं हीं फैल रहा हूं और सब वासना से रहित अक्षोभरूपी अनुभव मैं हीं हूं। जिससे सब स्वाद का अनुभव होता है सो चेतन ब्रह्म आत्मा मैं हीं हूं। जिसका चित्त स्त्री में आसक्त है; जिसको चन्द्रमा की कान्ति से अधिक मुदिता है और जिससे स्त्री का स्पर्श और मुदिता का अनुभव होता है ऐसा चेतन ब्रह्म मैं हीं हूं और सुख दुःख की कलना से रहित अमनसत्ता और अनुभवरूप जो आत्माहै सो चेतनरूप आत्मा ब्रह्म मैं हीं हूं। खजूर और नींब आदिक में स्वादरूप मैं हीं हूं; खेद और आनन्द, लाभ और हानि मुझको तुल्य है और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और साक्षी तुरीयारूप आदि, अन्त से रहित चेतनब्रह्म निरामय मैं हूं। जैसे एक खेत के पौड़ों में एक ही सा रस होता है तैसे ही अनेक मूर्तियों में एक ब्रह्मसत्ता ही स्थित है। वह सत्य, शुद्ध, सम, शान्तरूप और सर्वज्ञ है, जो प्रकाशक और

सूर्यकी नाई है सो प्रकाशरूप ब्रह्म मैं हीं हूं और सब शरीरों में व्याप रहा हूं। जैसे मोती की माला में तागा गुप्त होताहै जिसमें मोती पिरोये हैं; तैसेही मोतीरूपी शरीरमें तन्तुरूप गुप्त मैं हीं हूं और जगत्‌रूपी दूधमें ब्रह्मरूपी घृत मैं हीं व्याप रहा हूं। हे रामजी! जैसे सुवर्ण में जो नाना प्रकार के भूषण बनते हैं सो सुवर्ण से भिन्न नहीं होते तैसेही सब पदार्थ आत्मा में स्थितहैं-आत्मा से भिन्न नहीं। पर्वत, समुद्र और नदियों में सत्तारूप आत्माही है; सर्व संकल्पों का फलदाता और सर्व पदार्थों का प्रकाशक आत्माही है और सब पाने योग्य पदार्थों का अन्त है। उस आत्मा की उपासना हम करते हैं जो घट, पट, तट, और कन्ध में स्थित है। जाग्रत् में जो सुषुप्तिरूप स्थित है और जिसमें कोई फुरना नहीं, ऐसे चेतनरूप आत्मा की उपासना हम करते हैं। मधुर में जो मधुरता है और तीक्ष्ण में तीक्ष्णता है और जगत् में चलना शक्ति है उस चेतन आत्मा की हम उपासना करते हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया और तुरीयातीत में जो समतत्त्व है उसकी हम उपासना करते हैं। त्रिलोकी के देहरूपी मोतियों में जो तन्तु की नाईं अनुस्यूत है और फैलाने और संकोचने का कारण है उस चेतनरूप आत्मा की हम उपासना करते हैं। जो षोड़श कलासंयुक्त और षोड़श कलासे रहित और अकिंचन, किंचनरूप है उस चेतन आत्मा की हम उपासना करते हैं। चेतनरूप अमृत जो क्षीरसमुद्र से निकला है और चन्द्रमा के मण्डल में रहता है, ऐसा जो स्वतः सिद्ध अमृत है जिसको पाकर कदाचित् मृत्यु न हो उस चेतन अमृत की हम उपासना करते हैं। जो अखण्ड प्रकाश है और सब भूतों को सुन्दर करता है उस चिदात्मा को हम उपासते हैं। जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध प्रकाशते हैं और आप इससे रहित हैं उस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं। सब मैं हूं और सब मैं नहीं और भी कोई नहीं इसप्रकार विदित जानकर अपने अद्वैतरूप में विगतज्वर होकर स्थित होते हैं। यही निश्चय ज्ञानवानों का है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तनिश्चयोपदेशो नाम दशमस्सर्गः॥ १०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो निष्पाप पुरुष है उसको यही निश्चय रहता है कि, सत्यरूप आत्मतत्त्वहै यह पूर्ण बोधवान् का निश्चय है। उसको न किसी में राग होता है और न किसी में द्वेष होता है; उसको जीना और मरना सुख दुःख नहीं देता और वह एक समान रहता है। वह विष्णुनारायण का अङ्ग है अर्थात् अभेद है और सदा अचल है। जैसे सुमेरु पर्वत वायु से चलायमान नहीं होता तैसे ही वह दुःख से चलायमान नहीं होता। ऐसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे वन में बिचरते हैं और नगर द्वीप आदिक नाना प्रकार के स्थानों में भी फिरते हैं परन्तु दुःख नहीं पाते। कोई स्वर्ग में फूलों के वन और बग़ीचों में फिरते हैं कोई पर्वत की कन्दराओं में रहते हैं, कोई राज्य करते हैं और शत्रुओं को मारकर शिर पर झुलाते हैं; कितने श्रुति–स्मृति के अनुसार कर्म करते हैं; कोई भोग भोगते हैं; कोई विरक्त होकर स्थित हैं, कोई दान, यज्ञादिक कर्म करते हैं; कोई स्त्रियों के साथ लीला करते, कहीं गीत सुनते और कहीं नन्दनवन में गन्धर्व गायन करते हैं; कोई गृह में स्थित हैं; कोई तीर्थ और यज्ञ करते हैं, कोई नौबत, नगारे और तुरियां इत्यादिक सुनते और नाना प्रकार के स्थानों में रहते हैं परन्तु आसक्त नहीं होते। जैसे सुमेरु पर्वत ताल में नहीं डूबता तैसेही ज्ञानवान् किसी पदार्थ में बन्धवान् नहीं होते। वे इष्ट को पाकर हर्षवान् नहीं होते और अनिष्ट को पाकर दुःखी नहीं होते। वे आपदा और सम्पदा में तुल्य रहते हैं और प्रकृत आचार कर्म करते हैं परन्तु उनका हृदय सर्व आरम्भ से रहित है। हे राघव! इसी दृष्टि का आश्रय करके तुम भी बिचरो। यह दृष्टि सर्व पाप का नाश करती है। अहंकार से रहित होकर जो इच्छा हो सो करो, जब यथाभूतदर्शी हुये तब निर्बन्ध हुये फिर जो कुछ पतित प्रवाह से आ प्राप्त होगा उसमें सुमेरु की नाईं तुम रहोगे। हे रामजी! यह सब जगत् चिन्मात्र है; न कुछ सत्य है, न असत्य है; वही इस प्रकार होकर भासता है। इस दृष्टि को आश्रय करके और तुच्छ दृष्टि को त्यागो। हे रामजी! असंसक्त बुद्धि होकर सर्व भाव अभाव में स्थित हो राग द्वेष से चलायमान

न हो; अब सावधान हो रहो । रामजी बोले, हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि, मैंने आपके प्रसाद से जानने योग्य पद जाना और प्रबुद्ध हुआ हूं। जैसे सूर्य की किरणों से कमल प्रफुल्लित होते हैं तैसेही मैं प्रफुल्लित हुआ हूं और जैसे शरत्कालमें कुहिरा नष्ट हो जाता है तैसे ही आर वचन से मेरा संदेह और मान मोह मद मत्सर सब नष्ट हो गये हैं। मैं अब सर्व क्षोभ से रहित शान्ति को प्राप्त हुआ हूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तनिश्चयवर्णनंनामैकादशस्सर्गः ॥ ११ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सम्यक् ज्ञानविलास से वासना उदय होती है सो जीवन्मुक्त पद में किस प्रकार विश्रान्ति पाते हैं सो कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसार तरने की युक्ति है सो योगनाम्नी है। वह युक्ति दो प्रकार की है-एक सम्यक्ज्ञान और दूसरी प्राण के रोकने से। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! इन दोनों में सुगम कौन है जिससे दुःख भी न हो और फिर क्षोभ भी न हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दोनों प्रकार से योग शब्द कहाता है तौभी योग प्राण के रोकने का नाम है। योग और ज्ञान दोनों संसार से तरने के उपाय हैं। इन दोनों का फल एकही सदाशिव ने कहा है। हे रामजी! किसी को योग करना कठिन होता है और ज्ञान का निश्चय सुगम होता है और किसी को ज्ञान का निश्चय कठिन होता है और योग करना सुगम है। यदि मुझ से पूछो तो दोनों में ज्ञान सुगम है क्योंकि, इसमें यत्न और कष्ट थोड़ा है। जानने योग्य पदार्थ के जाने से फिर सुपने में भी भ्रम नहीं होता क्योंकि, वह साक्षीभूत होकर, देखता है और जो बुद्धिमान् योगीश्वर हैं उनको भी कुछ यत्न नहीं होता, वे स्वाभाविकही चले जाते हैं और उनकी एक युक्ति समझकर चित्त शान्त हो जाताहै। हे रामजी! दोनोंकी सिद्धता अभ्यास और यत्नसे होती है; अभ्यास विना कुछ नहीं प्राप्त होता। वह ज्ञान तो मैंने तुमसे कहा है। जो हृदय में विराजमान ज्ञेय है उसका जाननाही ज्ञान है जो प्राण अपान के रथ पर आरूढ़ है और हृदयरूपी गुहा में स्थित है।

हे रामजी! उस योग का भी क्रम सुनो वह भी परम सिद्धता के निमित्तहै। प्राणवायु जो नासिका और मुख के मार्ग से आती जाती है उसके रोकने का क्रम कहता हूं। उससे चित्त उपशम हो जाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे ज्ञानज्ञेयविचारोनामद्वादशस्सर्गः॥१२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश के किसी कोने से यह जगत्‌रूपी स्पन्द आभास फुरा है-जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणों में मृगतृष्णा का जल फुर आता है-उस जगत् के कारणभाव को वही प्राप्त हुआ है जो ब्रह्म के नाभिकमल से उत्पन्न हुआ है और पितामह नाम से कहाता है। उसका मानसीपुत्र श्रेष्ठ आचारी मैं वशिष्ठ हूं। नक्षत्र और ताराचक्र में मेरा निवास है और युग युग प्रति में वहां रहता हूं। एक समय मैं नक्षत्रचक्र से उड़ा और इन्द्र की सभा में गया तो देखा कि, वहां ऋषीश्वर, मुनीश्वर बैठे थे। इतने में नारद आदिक चिरंजीवी का जो प्रसंग चला तो शातातप नाम एक बुद्धिमान् ऋषीश्वर ने कहा कि, हे साधो! सबमें चिरंजीव एक है। सुमेरु पर्वत की कोण पद्मरागनाम्नी कन्दरा के शिखर पर एक कल्पवृक्ष है जो महासुन्दर और अपनी शोभा से पूर्ण है। उस वृक्ष के दक्षिण दिशा की डाल पर बहुत पक्षी रहते हैं उन पक्षियों में एक महाश्रीमान् कौवा रहता है जिसका नाम भुशुण्डि है। वह वीतराग और बुद्धिमान् है और उसका आलय उस कल्पवृक्ष के टास पर बना हुआ है। जैसे ब्रह्मा नाभिकमल में रहते हैं तैसेही वह उस आलय में रहता है। जैसे वह जिया है तैसे न कोई जिया है और न जीवेगा। उसकी बड़ी आयुर्बल है और वह महाबुद्धिमान्, विश्रान्तिमान्, शान्तरूप और काल का वेत्ता है। हे साधो! बहुत जीना भी उसी का फल है और पुण्यवान् भी वही है। उसको आत्मपद में विश्रान्ति हुई है और संसार की आस्था जाती रही है। इस प्रकार जब उन देवताओं के देव ने कहा तब सम्पूर्ण सभा में ऋषीश्वर ने दूसरी बार पूछा कि, उसका वृत्तान्त फिर कहो। तब उसने फिर वर्णन किया तो सब आश्चर्य को प्राप्त हुये जब यह कथा वार्त्ता हो चुकी तब सब सभा उठ खड़ी हुई और अपने २ आश्रम को

गये पर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, ऐसे पक्षी को किसी प्रकार देखा चाहिये ऐसा विचार करके मैं सुमेरु पर्वत की कन्दरा के सम्मुख हो चला और एकक्षण में वहां जा पहुंचा तो क्या देखा कि; महाप्रकाशरूप वह कन्दरा का शिखर रत्नमणि से पूर्ण है और उसका गेरू की नाईं रङ्ग है। जैसे अग्नि की ज्वाला होती तैसेही उसका प्रकाशरूप था मानों प्रलयकाल में अग्नि की ज्वाला जागती है-और बीच में नीलमणि धूम्र के समान था-मानों धुआं निकलता है और सब रङ्गोंकी खानि है। ऐसा चमत्कार प्रकाश था मानों संध्या के लाल बादल इकट्ठे हुये हैं; मानों योगीश्वरों के ब्रह्मरन्ध्र से अग्नि निकलकर इकट्ठी हुई वा मानों बड़वाग्नि समुद्र से निकलकर मेघ को ग्रहण करने के निमित्त स्थित हुई है। निदान महासुन्दर रचना बनीहुई थी जो फल और रत्नमणि संयुक्त प्रकाशवान् था और ऊपर गङ्गाका प्रवाह चला जाता था सो यज्ञोपवीतरूप था। गन्धर्व गीत गाते थे, देवियों के रहने के स्थान बने थे और हर्ष उपजाने को महासुन्दर लीला के स्थान विधाता ने वहां रचे हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्ड्युपाख्याने सुमेरुशिखर-लीलावर्णनंनामत्रयोदशस्सर्गः ॥ १३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे शिखर पर मैंने कल्पवृक्ष देखा कि, वह महासुन्दर फलों से पूर्ण है और रत्न और मणियों के गुच्छे और स्वर्ण की बेलें लगी हुई हैं; तारों से दूने फूल दृष्टि आते हैं; मेघ के बादल से दूने पत्र दृष्टि आते हैं और सूर्य की किरणों से दुगुने त्रिवर्ग भासते हैं; जिनका बिजली की नाईं चमत्कार है। पत्रों पर देवता, किन्नर, विद्याधर और देवियां बैठी हैं और अप्सरा आ नृत्य और गान करती हैं-जैसे भँवरे गुञ्जार करते फिरते हैं। हे रामजी! रत्नों के गुच्छे और कलियां और मणि के फूल फल पत्र निरन्ध्र दृष्टि आते थे; सब स्थान फूल फल गुच्छों से पूर्ण थे और छहों ऋतु के फूल फल वहां पाये जाते थे। उस वृक्ष के एक टास पर पक्षी बैठे कहीं फूल फलादिक खाते थे, कहीं ब्रह्माजी के हंस बैठे थे, कहीं अग्नि के वाहन तोते, कहीं अश्विनीकुमार और भगवती के

शिखावाले मोर, कहीं बगले, कहीं कबूतर और कहीं गरुड़ बैठे ऐसे शब्द करते थे मानों ब्रह्मकमल से उपजकर ॐकार का उच्चार करता है कई ऐसे पक्षी देखे कि, उनकी दो दो चोंचें थीं। फिर मैं आगे देखने को गया तो जहां उस वृक्ष का टास था वहां अनेक कौवे बैठे देखे। जैसे महाप्रलय में मेघ और लोकालोक पर्वतों पर आन बैठते हैं तैसेही वहां अनेक कौवे अचल बैठे थे जो सोम, सूर्य, इन्द्र, वरुण और कुबेर के यज्ञ की रक्षा करनेवाले और पुण्यवान् स्त्रियों की प्रसन्नता देनेवाले भर्ता के संदेशे पहुँचानेवालेहैं। उनके मध्य में एक महाश्रीमान् और कान्तिमान् कौवा ऊंची ग्रीवा कियेहुये बैठाथा। जैसे नीलमणि चमकती है तैसेही उसकी ग्रीवा चमकती थी और पूर्ण मन और मानी अर्थात् मान करनेयोग्य; सुन्दर और प्राणस्पन्दको जीतनेवाला; नित्य अन्तर्मुख और नितही सुखी वह चिरंजीवी पुरुष वहां बैठा था जगत् में दीर्घआयु और जगत् की आगमापायी गति देखते २ जिसने बहुत कल्पका स्मरण किया है; इन्द्रकी जिसने कई परम्परा देखी हैं; लोकपाल, वरुण, कुबेर, यमादिक के कई जन्म देखे हैं और देवतों और सिद्धों के अनेक जन्म जिस पुरुष ने देखे हैं और जिसका प्रसन्न और गम्भीर अन्तःकरण है; जिसकी सुन्दरवाणी वक्रता से रहितहै; जो निर्मल और निरहंकार सबको सुहृद मित्रहै; बड़ी कोटर हलवेकी नाईं है; जो पिता समान हैं उनको पुत्र की नाईं है और जो पुत्र के समान हैं उनको उपदेश करने के निमित्त पिता और गुरु की नाईं समर्थहै और जो सर्वथा, सर्वप्रकार, सर्वकाल, सब में समर्थ और प्रसन्न, महामति, हृदय, पुण्डरीक, व्यवहारका वेत्ताहै; गम्भीर और शान्तरूप महाज्ञाता ज्ञेय है; ऐसे पुरुष को मैंने देखा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डिदर्शनंनाम चतुर्दशस्सर्गः १४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसके अनन्तर मैं आकाशमार्ग से वहां आया और महातेजवान् दीपकवत् प्रकाशवान् मेरा शरीर था। जब मैं उतरा तब जितने पक्षी वहां बैठे थे वे सब जैसे वायु से कमल की पंक्ति क्षोभ को प्राप्त होती है और भूकम्प से समुद्र क्षोभ को प्राप्त होता है तैसेही क्षोभ को प्राप्त हुये। उनके मध्य में जो भुशुण्डि था उसने मुझको यद्यपि

अकस्मात् ऐसा तौ भी जान गया कि, यह वशिष्ठहै और उठखड़ा हो बोला; हे मुनीश्वर! स्वस्थ हो, कुशल तो है। हे रामजी! ऐसे कहकर उसने संकल्पके हाथ रचे और उनसे मेरा अर्घ्यपाद्यकर भावसंयुक्त पूजन किया और नौकरों को दूर करके आपही वृक्षके बड़े पत्र ले और उनका आसन रचकर मुझको बैठा बोला अहो आश्चर्य है ! हे भगवन् ! आपने बड़ी कृपा की कि, दर्शन दिया। चिरपर्यन्त दर्शनरूपी अमृतसे हम वृक्षसहित पूर्ण होरहे हैं। हे भगवन् ! मेरे पुण्य इकट्ठे होकर प्रसन्नताके निमित्त आपको प्रेर लेआये हैं। हे मुनीश्वर ! देवता जो पूजने योग्य हैं उनके भी आप पूज्य हो। कृपाकरके कहो कि, आप किस निमित्त आये हैं और आपका क्या मनोरथ है ? आपके चरणों के दर्शन करके मैंने तो सब कुछ जाना है। स्वर्ग की सभा में जब चिरंजीवियों का प्रसंग चला था तब मैं भी शरण में आया था इससे आप मुझको पवित्र करने आये हो परन्तु प्रभु के वचनरूपी अमृत के स्वाद की मुझको इच्छाहै इस निमित्त मैं प्रभुके मुखसे कुछ सुना चाहताहूं। हे रामजी! जब इसप्रकार चिरंजीवी भुशुण्डि नाम पक्षी ने मुझसे कहा तब मैंने कहा, हे पक्षियोंके महाराज ! जो कुछ तुमने कहा सो सतहै। मैं अभ्यागत तुम्हारे आश्रम पर इस निमित्त आया हूं कि, चिरंजीवियों की कथा चली थी और उसमें तुम्हारा वर्णन हुआ था। तुम मुझको शीतल चित्त दृष्टि आते हो; और कुशलमूर्ति हो और संसाररूपी जालसे निकले हुये दीखते हो। इससे मेरे इससंशयको दूरकरो कि, कब तुमने जन्म लिया था, ज्ञात ज्ञेय कैसे हुये; तुम्हारी आयु कितनी है; कौन २ वृत्तान्त तुमको देखा हुआ स्मरण है और किस कारण यहां निवास किया है; भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर ! जो कुछ तुमने पूछा वह सब कहता हूं, शनैः शनैः तुम श्रवण करो। तुम तो स्वयम् साक्षात् प्रभु; त्रिलोकी के पूज्य और त्रिकालदर्शी हो परन्तु जो कुछ तुमने आज्ञा की है सो मानने योग्य है। तुमसारिखे महात्मा पुरुषों के सम्मुख हुये अपने में जो कुछ तप्तता होती है वह भी निवृत्त हो जातीहै— जैसे मेघ के आगे आये हुये सूर्य की तप्तता मिट जाती है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्र० भुशुण्डिसमागमनंनामपञ्चदशस्सर्गः १५॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! इस जगत् में सब देवताओं के बड़े देव सदाशिव हैं जिन्होंने अर्धाङ्ग भगवती को शरीर में धारण किया है और जो महासुन्दर मूर्ति और त्रिनेत्र हैं। जिनकी बड़ी जटा हैं और मस्तक पर चन्द्रमा है जिससे अमृत टपकता है; और जटा के चहुँओर गङ्गा फिरती हैं जैसे फूलों की माला कण्ठ में होती है। नीलकण्ठ कालकूट के पानसे विषविभूषण होगये हैं; कण्ठ में मुण्ड की माला है और सब ओर से भस्म लगी हुई है। दिशा उनके वस्त्र हैं; श्मशान में गृह है और महाशान्तरूप विचरते हैं। उनके साथ जो सेना है उसके महाभयानक आकार हैं; किसी के तो रुद्र की नाईं तीन नेत्र हैं; किसी का तोते की नाईं मुख हैं; किसी का ऊंट का मुख है; कोई गर्दभमुखी है; किसी का बैल का मुख है; कोई जीवों के हृदय में प्रवेश करके रक्त मांस के भोजन करनेवाले हैं कोई पहाड़ में रहते हैं; कितने वन, कन्दराओं और श्मशान में रहते हैं। उनके साथ देवियां भी ऐसी हैं जिनकी महाभयानक चेष्टा और आचार हैं। उन देवियों में जो मुख्य देवियां हैं उनका जिस जिस दिशा में निवास है वह सुनो। जया, विजया, जित और अपराजित वामदिशा की ओर तुम्बर रुद्र के आश्रित हैं; और सिद्ध, मुखका, रक्तका और उतला, भैरव रुद्र के आश्रित हैं। सर्व देवियों के मध्य ये अष्टनायिका और शतसहस्र देवियां हैं रुद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, वाराही, वायवी, कौमारी, वासवी, सौरी इत्यादिक। इनके साथ मिली हुई आकाश में उत्तम देव, किन्नर, गन्धर्व, पुरुष, सुरसंभवतियां तिनके साथ हुई हैं। भूचरपृथ्वी में कोटों हैं। और नाना प्रकार रूप, नाम धारकर पृथ्वी में जीवों को भोजन करती हैं। उनके वाहन ऊँट, गर्दभ, काक, वानर, तोते इत्यादिक हैं। उन देवियों में कई पशुधर्मिणी हैं जो क्षुद्रकर्म में स्थित हैं और कई विदितवेद जीवन्मुक्तपद में स्थित हैं। उनके मध्यनायक अलम्बसा देवी है। जैसे विष्णु का वाहन गरुड़ है तैसेही उस देवी का वाहन काक है और यह देवी अष्टसिद्धि के ऐश्वर्य संयुक्त है। वे देवियां एककाल में विचारती भईं और जगत् के पूज्य तुम्बर और भैरव की पूजा कर विचार किया कि, सदाशिव

हमारे साथ भावसंयुक्त नहीं बोलते और हमको तुच्छ जानते हैं इससे हम इनको कुछ अपना भाव दिखावें क्योंकि प्रभाव दिखाये विना कोई किसी को नहीं जानता। ऐसे विचार रच ये उमा को वश करके दुराय लेगईं और उत्साह करके मद्य, मांसादिक भोजनकिया। निदान माया के छल से पार्वती को मारकर चावल की नाईं पकाया और उसके कुछ अङ्ग पकाये हुये सदाशिव को दिये। तब सदाशिव ने जाना कि, मेरी प्यारी पार्वती इन्होंने मारी है। ऐसे निश्चय करके वह कोप करने लगे तब उन देवियों ने अपने २ अङ्ग से उनके अङ्ग निकाले सौरीने नेत्र, कौमारी ने नासा और इसी प्रकार सबने अपने २ अङ्ग निकाल कर वैसीही पार्वती की मूर्ति ला दी और नूतन विवाह कर दिया तब सदाशिव प्रसन्न हुये, सब ठौर उत्साह और आनन्द हुआ और सब देवियां अपने २ स्थानोंको गईं। चन्द्रनाम काक जो अलम्बसा देवी का वाहन था उसने ब्रह्माणी की हंसिनी के साथ क्रीड़ा की और इसी प्रकार सब ने क्रीड़ा की जिससे सबको गर्भ रहे। निदान वह हंसिनी ब्रह्माणी के पास गई तब ब्रह्माणी ने कहा कि, अब तुमको मेरे उठाने की शक्ति नहीं– तुम गर्भवती हो–– जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां जाओ; फिर आना। हे मुनीश्वर! ऐसे कह-कर ब्रह्माणी निर्विकल्प समाधि में स्थित हुई और नाभिसरोवर जो ब्रह्माजी का उत्पत्तिस्थान है वहां जा स्थित हुई और उस ताल के कमल-पत्र पर निवास किया। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उन हंसिनियों ने तीन तीन अण्डे दिये। जैसे बेल से अंकुर उत्पन्न होता है तैसेही उनसे एकविंशति अण्ड क्रम से उत्पन्न हुये। कुछ काल उपरान्त जब उनको फोड़ा तो उन अण्डों से हमारे अङ्ग उत्पन्न हुये और क्रम करके जब हम बड़े हो उड़ने योग्य हुये तब माता हमको ब्रह्माणी के पास ले गई। उनके आगे हमने मस्तक टेका तब ब्रह्माणी ने, कि, उसी समय समाधि से उतरी थी हमको देखकर कृपा की वृत्ति धार हमारे शिरपर हाथ रक्खा। उसके हाथ रखने से हमारी अविद्या नष्ट हो गई और हमारा मन तृप्त और शान्तरूप होगया और हम जीवन्मुक्त पद में स्थित हुये। तब हमको यह

वृत्ति फुर आई कि, किसी प्रकार एकान्त ध्यान में स्थित होवें। देवी ने आज्ञा की कि, अब तुम जाओ; तब देवीजी की आज्ञा से हम पिता के पास आये और पिता ने हमको कण्ठलगाया और मस्तक चूंबा! फिर हमने अलम्बसा देवी की पूजा की तब पिता ने हमसे कहा, हे पुत्रो! तुम संसाररूपी जालमें तो नहीं फँसे और यदि फँसे हो तो मैं भगवती की प्रार्थना करता हूं वह भृत्यों पर दयालु है—जैसे तुम प्राप्त होगे तैसेही तुमको प्राप्त करेगी। तब हमने कहा, हे पिता! हम तो ज्ञात ज्ञेय हुये हैं; जो कुछ जानने योग्य था वह जाना है और जो पाने योग्य था वह हमने ब्रह्माणी देवीजी के प्रसाद से पाया है। अब हमको एकान्त स्थान की इच्छा है जहां एकान्त हो वहां जा बैठें। तब चन्द पिता ने कहा, हे पुत्रो! सुमेरु पर्वत निर्दोष, महापावन, निर्भय और क्षोभरहित सुन्दर स्थान है, वह सर्वरत्नों की खानि है, सर्वदेवतों का आश्रयरूप है और सूर्य-चन्द्रमा उसके दीपक हैं जो चहुंओर फिरते हैं। ब्रह्माण्डरूपी मण्डप का वह थम्भा है और सुवर्ण का है, चन्द्र सूर्य उसके नेत्र हैं और तारों की कण्ठ में माला है। दशों दिशा उसके वस्त्र हैं, रत्नमणियों के भूषण हैं और वृक्ष और बेल रोमावली हैं। उसकी त्रिलोकी में पूजा होती है और वह षोड़शसहस्र योजन पाताल में है जहां नाग और दैत्य पूजा करते हैं और चौरासी सहस्र योजन ऊर्ध्वको है जहां गन्धर्व, देवता, किन्नर, राक्षस, मनुष्य पूजा करते हैं। ऐसा पर्वत जम्बूद्वीप के एक स्थान में स्थित है और उसके आश्रय चतुर्दश प्रकारके भूतजाति रहते हैं वह बड़ा ऊंचा पर्वत है और पद्मराग नाम उसका एक शिखर सूर्यवत् उदय है। शिखर पर एक बड़ा कल्पवृक्ष है जो मानों जगत्‌रूपी शिखर का प्रतिबिम्ब आपड़ा है। उस कल्पवृक्ष के दक्षिणदिशा की ओर जो डाल है उसमें महारत्न के गुच्छे, सुवर्ण के पत्र और चन्द्रमा के बिम्बवत् फूल हैं और सघन और रमणीय गुच्छे लगे हैं। वहां एक आलय बना हुआ है; वहां मैं भी आगे रहआया हूं। जब देवीजी समाधि में स्थित हुई थीं तब मैं वहां आलय बनाकर स्थित हुआ था। चिन्तामणि की उसमें शलाका लगी हैं और महारत्नों से बना है। वहां जा तुम निवास

करो। वहां और कौवों के पुत्रभी रहते हैं जिनका हृदय आत्मज्ञानसे शीतलहै और बाहरसे भी फल फूल से शीतलहै । तुमको वहां भोग भी है और मोक्ष भी है। हे वशिष्ठजी ! जब इसप्रकार पिताने हमसे कहा तब हमसबों ने पिताके चरण परसे और पिता ने हमारा मस्तक चूंबा । निदान हम बिन्ध्याचलपर्वत से उड़े और आकाशमार्ग से मेघ नक्षत्र, चक्र, लोकान्तर होकर ब्रह्मलोक में पहुंच देवीजी को प्रणाम किया और उनने भलीप्रकार हमारे ऊपर कृपादृष्टि की और दया और स्नेह सहित कण्ठलगाया और मस्तक चूंबा । हमभी मस्तक टेककर सुमेरुको चले और सूर्य और चन्द्रमा के लोकों और तारा, गण, लोकपाल और देवताओं के लोक, मेघ और पवन के स्थान लांघकर सुमेरुपर्वत के कल्पवृक्ष पर पहुंचे । हे मुनीश्वर ! जिसप्रकार हम उपजे और जिससे ज्ञानको प्राप्तहुये हैं और जिस प्रकार यहां आ स्थित हुये हैं वह सब समाचार तुम्हारे आगे अखण्डित कहा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डयुपाख्याने अस्ताचललाभो नाम षोड़शस्सर्गः ॥ १६ ॥

भुशुण्डिजी बोले;हे मुनीश्वर ! यह चिरकाल की वार्त्ता तुम से कही है वह सृष्टि इस सृष्टि से दूर है परन्तु मैंने तुमको वर्तमान की नाईं अभ्यास के बल से सुनाया है हे मुनीश्वर ! मेरा कोई पुण्य था सो फला है कि, तुम्हारा निर्विघ्न दर्शन हुआ और यह आलय शाखा और वृक्ष आज पवित्र हुआ । अब जो कुछ संशय है सो पूछो तो मैं कहूं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार कहकर उसने मेरा भली प्रकार अर्घ्यपाद्य से आदर सहित पूजन किया तब मैंने उससे कहा, हे पक्षियों के ईश्वर ! तुम्हारे वे भाई कहां हैं जो तुम्हारे समान तत्त्ववेत्ता थे; वह तो दृष्टि नहीं आते, अकेले तुमहीं दीखते हो ? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर ! यहां मुझ को बहुत युग की पंक्ति व्यतीत हुई है जैसे सूर्य को कई दिन रात्रि व्यतीत हो जाते हैं तैसेही मुझको युग व्यतीत हुये हैं । कुछ काल वे भी रहे थे पर समय पाकर उन्होंने शरीर त्याग दिये और तृण की नाईं तनु त्याग कर शिव आत्मपद को प्राप्त हुये । हे मुनीश्वर ! बड़ी आयुर्बल हो अथवा

सिद्ध महन्त हो; बली हो, अथवा ऐश्वर्यवान् हो, काल सबको ग्रासि लेता है। फिर मैंने पूछा, हे साधो! जब प्रलयकाल का समय आता है तब सूर्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ ये सब अपनी २ मर्यादा त्याग देते हैं और बड़ा क्षोभ होताहै पर तुमको खेद किस कारण नहीं होता? सूर्यकी तपन से अस्ताचल उदयाचलादिक पर्वत भस्म हो जाते हैं पर उस क्षोभ में तुम खेदवान् क्यों नहीं होते? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! कई जीव जगत् में आधार से रहते हैं और कई निराधार रहते हैं जिनको सेनाआदिक ऐश्वर्यपदार्थ होते हैं वे आधारसहित हैं और जो इन पदार्थों से रहित हैं वे निराधार हैं पर दोनों को हम तुच्छ देखते हैं सत् कोई नहीं। बड़े २ ऐश्वर्यवान् और बली भी हैं परन्तु सत्य कोई नहीं। उनमें पक्षी की जाति महातुच्छ हैं जिनका उजाड़ वन में निवास है और वहांही उनका दानापानी है। ये निरालम्ब हैं और इनकी जीविका दैव ने ऐसेही बनाई है। हे भगवन्! मैं तो सदा सुखी हूं और अपने आपमें स्थित आत्म-सन्तोष से तृप्त हूं कदाचित् इस जगत् के क्षोभ से खेद को प्राप्त नहीं होता और स्वभावमात्र में सन्तुष्ट और कष्टचेष्टा से मुक्त हूं। हे ब्राह्मण! अब हम केवल काल को व्यतीत करते हैं और जगत् के इष्ट अनिष्ट हमको चला नहीं सके। न मरने की हमको इच्छा है और न जीने की इच्छा है क्योंकि, जीना मरना शरीरकी अवस्था है, आत्मा की अवस्था नहीं। हमको जीने का राग नहीं और मरने में द्वेष नहीं—जैसी अवस्था प्राप्त हो उसी में सन्तुष्ट हैं। हे मुनीश्वर! ऐसे २ देखे हैं कि वे फिर भस्म होगये हैं; उनकी अवस्था देखकर हमारे मनकी चपलता जाती रही है और हम इस कल्पवृक्ष पर बैठे हैं जिसमें रत्नों की बेलि लगी हैं। इस पर बैठ-कर मैं प्राण अपान की गति को देखता हूं। इनकी कला की जो सूक्ष्म गति है उसका मैं ज्ञाता हूं और दिन रात्रि का मुझको कुछ ज्ञान नहीं। सतबुद्धि से मैं काल को जानता हूं और सार असार को भी भले प्रकार जानता हूं। हे मुनीश्वर! जो कुछ विस्तार भासता है वह सब झूठ है, सत् कुछ नहीं; इसी कारण हमको किसी दृश्यपदार्थ की

इच्छा नहीं, हम परम उपशमपद में स्थित हैं और सब जगत् भी हमको शान्तरूप है। जो कोई इस जगज्जाल का आश्रय करता है वह सुखी नहीं होता। यह सब जगत् चञ्चलरूपहै और स्थिर कदाचित् नहीं होता। इसकी अवस्था में हम पत्थरवत् अचल हैं; न किसीका हमको राग फुरता है और न द्वेष है; न हम किसी की इच्छा करें; सब जगत् हमको तुच्छ भासता है। यह सब भूतरूपी नदियां कालरूपी समुद्र में जा पड़ती हैं पर हम किनारे खड़े हैं इससे कदाचित् नहीं डूबते; और जितने जीवभूत हैं वे डूबते हैं ? पर कई एक तुम सारिखे निकले हुये हैं और तुम्हारी कृपा से हम भी निर्विकार पदको प्राप्त हुये हैं। हे मुनीश्वर ! मैं निर्विकार सब जगत् के क्षोभ से रहित हूं और आत्मपद को पाकर उपशमरूप हूं। हे मुनीश्वर ! तुम्हारे दर्शन से मैं अब पूर्ण आनन्दको प्राप्त हुआ हूं; सन्तकी संगति चन्द्रमा की चाँदनीवत् शीतल है और अमृतकी नाईं आनन्द को देनेवाली है। ऐसा कौन है जो सन्तके संगसे आनन्द को न प्राप्त हो; अर्थात् सब आनन्दको प्राप्त होते हैं-यह अर्थ है। हे मुनीश्वर ! सन्तका संग चन्द्रमा के अमृत से भी अधिक है क्योंकि; वह शीतल गौण है हृदयकी तपन नहीं मिटाता और सन्तका संग अन्तःकरणकी तपन मिटाता है वह अमृत क्षीरसमुद्र के मथन के क्षोभ से निकला है और सन्तका संग सुख से प्राप्त होता है और आत्मानन्द को प्राप्त करताहै-इससे यह परम उत्तम है। मैं तो इससे और कोई उत्तम नहीं मानता; सन्त का संग सब से उत्तम है सन्तभी वेही हैं जिनकी आपातरमणीय सब इच्छा निवृत्त हुई हैं अर्थात् जो विचार विना दृश्यपदार्थ सुन्दर भासते हैं और नाशवन्त हैं वे उनको तुच्छ भासते हैं और वे सदा आत्मानन्द से तृप्त हैं। वे अद्वैतनिष्ठ हैं; उनकी द्वैतकलना का अभाव हुआ है वे सदा आत्मानन्दमें स्थितहैं। ऐसे पुरुष सन्त कहाते हैं। उन सन्तोंकी संगति ऐसी है जैसे चिन्तामणि होती है; जिसके पाये से सब दुःख नाश होते हैं। हे मुनीश्वर ! त्रिलोकीरूपी कमल के भँवरे और सब ज्ञानवानों से उत्तम तुमहीं दृष्टि आये हो। तुम्हारे वचन स्निग्ध, कोमल और आत्मरस से पूर्ण, हृदयगम्य और उचित हैं और तुम्हारा हृदय महागम्भीर

और उदार, धैर्यवान् और सदा आत्मानन्द से तृप्त हैं; इससे तुम सब से उत्तम मुझको दीखते हो। तुम्हारे दर्शन से मेरे सब दुःख नष्ट हुये हैं और आज मेरा जन्म सुफल हुआ है। तुम सारिखे सन्तों का संग आत्मपद को प्राप्त करता है। और दुःख और भय नष्ट करके निर्भयता को प्राप्त करताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे नि०प्र०सन्तमाहात्म्यवर्णनं नामसप्तदशस्सर्गः॥१७॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! तुमने जो पूछा था कि; सूर्य, वायु और जल का क्षोभ होता है तो तुम खेदवान् क्यों नहीं होते उसका उत्तर सुनो। जब जगत् को क्षोभ होता है तब भी मेरा कल्पवृक्ष यह स्थिर रहता है क्षोभ को प्राप्त नहीं होता। हे मुनीश्वर! यह मेरा वृक्ष सबलोक को अगम है। भूत नष्ट होते हैं तब भी मैं इससे सुखी रहता हूं। जब हिरण्यकशिपु द्वीपों सहित पृथ्वी समेटकर पाताल ले गया था तब भी मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ; जब देवता और दैत्योंका युद्ध हुआ तब और सब पर्वत चलायमान हुये पर मेरा वृक्ष स्थिर रहा और जब क्षीरसमुद्र के मथने के निमित्त विष्णुजी सुमेरु को भुजा से उखाड़ने लगे पर मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ तब मन्दराचल को लेगये। और क्षीर समुद्र को मथनेलगे। प्रलयकाल का पवन और मेघ का क्षोभ हुआ तब भी मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ। फिर एक दैत्य आन कर सुमेरु को पटकने लगा और उसने कुछ उखाड़ा परन्तु मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ। हे मुनीश्वर! बड़े २ उपद्रव हुये हैं और प्रलयकाल के मेघ, पवन और सूर्य तपे हैं तब भी मेरा वृक्ष स्थिर रहा है। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर मैंने उससे पूछा कि, हे साधो! जब प्रलयकाल के वायु और मेघ क्षोभते हैं तब तू विगतज्वर कैसे रहता है? भुशुण्डिजीने कहा, हे साधो! जब प्रलयकालके वायु,मेघादिक क्षोभ करते हैं तब मैं कृतघ्न की नाईं अपने आलय को त्यागकर और सब क्षोभसे रहित आकाश में स्थित होता हूं और सब अङ्गों को सकुचा लेता हूं। जैसे वासना के रोंके से मन सकुच जाता है तैसेही मैं भी अङ्ग को सकुचा लेता हूं। हे मुनीश्वर! जब प्रलयकाल का सूर्य तपता है तब मैं जलकी धारणा से जलरूप हो जाता हूं; जब वायु चलता है तब पर्वत की धारणा बांधकर स्थित हो जाता हूं, जब

बहुत तत्त्वों का क्षोभ होता है तब सबको त्यागकर ब्रह्माण्ड खप्पर के पार जो निर्मल परमपद है वहां मैं सुषुप्तिवत् अचल गम्भीर हो जाता हूं और जब ब्रह्मा उपजकर फिर सृष्टि रचता है तब मैं सुमेरु के वृक्षपर इसी आलय में स्थित होता हूं। फिर मैंने पूछा, हे पक्षियों के ईश्वर! जैसे तुम अखण्ड स्थित होते हो तैसेही और योगीश्वर क्यों नहीं स्थित होते? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! परमात्मा की यह नीति किसी से लंघी नहीं जाती; उन योगीश्वरों की नीति इसी प्रकार हुई है और मेरी उत्पत्ति इसी प्रकार है। ईश्वर की नीति अतुल है। उसकी तुल्यता किसी से नहीं की जाती; जहां जैसी नीति हुई वहां वैसे ही है; अन्यथा किसी से नहीं होती। हमको इसी प्रकार हुई है कि, कल्प कल्प में इसी पर्वत के वृक्ष पर आलय होताहै और हम आय निवास करते हैं। वशिष्ठजी बोले हे पक्षियों के नायक! तुम्हारी अत्यन्त दीर्घ आयु है; तुम ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न और योगेश्वर हो और तुमने अनेक आश्चर्य देखे हैं उनमें जो स्मरण है वह कहो? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! एक बार ऐसे स्मरण आता है कि, पृथ्वी पर तृण और वृक्ष ही थे और कुछ न था; फिर एक बार एकादशसहस्रवर्ष पर्यन्त भस्म ही दृष्टि आती थी; जो वृक्ष और तृण थे सो सब जल गये थे; एक बार ऐसी सृष्टि हुई कि, उसमें चन्द्र और सूर्य न उपजे और दिन और रात्रि की गति कुछ जानी न जाती थी पर कुछ सुमेरु के रत्नों का प्रकाश होता था; एक कल्प ऐसा हुआ है कि, जिसमें देवता और दैत्यों का युद्ध हुआ था। और जब दैत्योंकी जीत हुई तो उन्होंने सब देवता मनुष्यों की नाईं हत किये। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों देवताओं के सिवा और सब सृष्टि उन्होंने जीती और बीसयुग पर्यन्त उनहीं की आज्ञा चली। एकबार ऐसे स्मरण आता है कि, दो युग पर्यन्त पृथ्वीपर वृक्ष ही वृक्ष थे और कुछ सृष्टि न थी; एकबार दो युग पर्यन्त पृथ्वीपर पर्वत ही पर्वत सघन होरहे थे और कुछ न था और एकबार ऐसा हुआ कि, सब जल ही जल होगया और कुछ न भासे केवल सुमेरुपर्वत थंभे की नाईं भासे। एकबार अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशा से आये और विन्ध्याचलपर्वत बढ़ा और सब ब्रह्माण्ड चूर्ण

कर दिये। हे मुनीश्वर! बहुत कुछ स्मरणहै परन्तु संक्षेप से सुनो। एककाल सृष्टि में मनुष्य, देवतादिक कुछ न भासते थे; एकबार ऐसी सृष्टि हुई थी कि, ब्राह्मण मद्यपान करते थे शूद्र बड़े हो बैठे थे और सब जीवों में विपर्यय धर्म होगये थे; एकबार ऐसी सृष्टि स्मरण में आती है कि, पृथ्वी में कोई पर्वत दृष्टि न आता था; एकबार सृष्टि ऐसी उत्पन्न हुई कि, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, लोकपालआदि कोई न उपजा; एक सृष्टि ऐसीहुई कि, सब ही उपजे; एक सृष्टि ऐसी हुई कि, उसमें स्वामिकार्त्तिक न उपजा, दैत्य बढ़ गये और दैत्यों हीं का राज्य होगया। मुझको बहुत स्मरण है कहांतक कहूं। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, इन्द्र, उपेन्द्र और लोकपालों के बहुत जन्म मुझको स्मरण आते हैं। जब हिरण्यकशिपु को जो वेदको चुराले आया था हरिने मारा था वह भी स्मरण है और क्षीरसमुद्र मथना भी स्मरण है। ऐसी सृष्टि भी देखी है कि जिसमें विष्णुजी का वाहन गरुड़ नहीं हुआ; ब्रह्माजी हंस वाहन विना हुये हैं और रुद्र बैल वाहन विना हुये हैं। इसी प्रकार बहुत कुछ देखा है क्या २ तुम्हारे आगे वर्णन करूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्ड्युपाख्याने जीवित वृत्तान्तवर्णनं नामाष्टादशस्सर्गः॥ १८॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! जब फिर सृष्टि उत्पन्न हुई तब तुम, भारद्वाज, पुलस्त्य, नारद, इन्द्र, मरीचि, उद्दालक, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा, सनत्कुमार, भार्गवेश आदिक उपजे। फिर सुमेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्वत उपजे और अत्रि, वासुदेव, बाल्मीकि इत्यादिक यह तो अल्पकाल के उपजे हैं। हे मुनीश्वर! तुम ब्रह्मा के पुत्र हो और तुम्हारे आठ जन्म मुझको स्मरण आते हैं। कभी तुम आकाश से उपजे हो कभी जल से उपजे, कभी पहाड़ से उपजे, कभी पवन से उपजे और कभी अग्नि से उपजे हो। हे मुनीश्वर! मन्दराचल पर्वत को क्षीरसमुद्र में डालकर जब मथने लगे और देवता और दैत्य क्षोभवान् हुये कि, मन्दराचल नीचे चलाजाता है तब विष्णुजी ने कच्छपरूप धारणकर पर्वत को ठहराया था और अमृत निकाला था सो मुझको द्वादशबार स्मरण आता

है। तीनबार हिरण्यकशिपु पृथ्वी को पाताल में समेट लेगया है और छः बार परशुराम रेणुका माता का पुत्र हुआ है सो बहुत सृष्टि के पीछे हुआ है। जब क्षत्रियों में दैत्य उपजने लगे तो उनके नाश निमित्त विष्णुजी ने परशुरामजी का अवतार लिया था। हे मुनीश्वर! एक सृष्टि ऐसी हुई है कि, जिसमें अगले से विपर्ययरूप शास्त्र और पुराण के अर्थ हुये और एक कल्प में और ही पाठ और ही युक्ति और ही अर्थ हुये क्योंकि; युग युग प्रति और ही पुराण होते हैं, किसी को देवता बनाते हैं और किसी को ऋषीश्वर मुनीश्वर कहते हैं। कथा और इतिहास भी मुझे बहुत स्मरण हैं। वाल्मीकिजी ने द्वादशबार रामायण बनाई और विस्मरण होगया है और व्यासजी ने दोबार महाभारत बनाई और उन्होंने सातबार अवतार लिया है। हे मुनीश्वर! इस प्रकार आख्यान, कथा, इतिहास और शास्त्र जो २ हुये हैं वे सब मुझको बहुत स्मरण में आते हैं। हे साधो! दैत्यों के मारने के निमित्त विष्णुजी युग युग प्रति अवतार लेते हैं। एकादशबार मुझको रामजी स्मरण में आते हैं और वसुदेव के गृहमें पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त कृष्णजी ने सोलहबार अवतार लियाहै सो भी मुझको स्मरण है और तीन बार नरसिंह अवतार धारण कर विष्णु ने हिरण्यकशिपु को मारा है। हे मुनीश्वर! इसी प्रकार मुझको अनेक सृष्टि स्मरण आती है परन्तु सबही भ्रममात्र है, कुछ उपजी नहीं। जब आत्मतत्त्व में देखता हूं तब कुछ सृष्टि नहीं भासती सब सत्तामात्र है। जैसे जल में बुद्बुदे उपजकर लीन होजाते हैं तैसेही आत्मा में मन के फुरने से कई सृष्टि उपजती हैं और लीन होजाती हैं। उस फुरने से कई सृष्टि देखी हैं; कोई सदृश ही उपजती हैं, कोई अर्धसदृश और कोई विपर्ययरूप हैं। हे मुनीश्वर! कोई २ सृष्टि में एकसेही आकार और कर्म-आचार होते हैं कोई मन्वन्तर मन्वन्तर प्रति और ही और सृष्टि होती है और किसी में ऐसे होता है कि; पुत्र पिता होजाता है; शत्रु मित्र होजाता है; बान्धव अबान्धव और अबान्धव बान्धव होजाता है। इस प्रकार भी विपर्यय होते दृष्टि आये हैं। कभी इसही कल्पवृक्ष पर हमारा आलय होता है, कभी

मन्दराचल में; कभी हिमालय पर्वत में; और कभी मालव पर्वत में होता है। इसी प्रकार वन, वृक्ष और बेलि पर होजाता है और कभी इसी कल्पवृक्ष के ऊपर होजाता है पर अब तो बहुत काल से इसी कल्पवृक्ष पर रहता हूं। जब सृष्टि का नाश होजाता है तबभी मेरा यही शरीर रहता है। मैं आसन लगाकर अपनी पुर्यष्टक को ब्रह्मसत्ता में स्थित करता हूं इसीकारण मुझको फिर यही शरीर प्राप्त होताहै। हे मुनीश्वर! यह जगत् सब संकल्प मात्र है; जैसा संकल्प फुरता है तैसा ही आगे हो भासता है यह जगत् सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं केवल भ्रमरूप है। उस जगत् भ्रम में अनेक आश्चर्य दृष्टि आते हैं; पिता पुत्र होजाता है; मित्र शत्रु होजाताहै; स्त्री पुरुष होजाती है; और पुरुष स्त्री होजाता है। कभी कलियुग में सतयुग बर्तने लगता है और सतयुग में कलियुग बर्तने लगता है और कभी द्वापर में त्रेता और त्रेता में द्वापर बर्तता है। कभी अदृश्यही वेदविद्या के अर्थ होते हैं और; नानाप्रकार के आश्चर्य भासते हैं। हे मुनीश्वर! जब एक सहस्र चौकड़ी युगकी व्यतीत होती हैं तब ब्रह्माजीका एक दिन होताहै सो एकबार दो दिन पर्यन्त ब्रह्मा समाधि में लगा रहा और सृष्टि शून्य होरही—यह भी स्मरण आता है और भी कई देश क्रिया विचित्ररूप चित्त आते हैं; क्या २ कहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिरातीतवर्णनन्नामैकोनविंशति तमस्सर्गः ॥ १९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब भुशुण्डिजी ने कहा तब मैंने फिर जिज्ञासा के अर्थ पूछा कि,हे पक्षियों के ईश्वर! तुमतो चिरकाल पर्यन्त जगत् में व्यवहार करते रहे हो तो तुम्हारे शरीर को मृत्यु ने किस निमित्त न ग्रास किया? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! तुम सब जानते हो परन्तु ब्रह्मजिज्ञासा करके पूछते हो इससे जैसे विद्यार्थी वेदार्थ पढ़कर फिर गुरु के आगे कहते हैं तैसे ही मैं आज्ञा मानकर कहता हूं। हे मुनीश्वर! मृत्यु किसको मारता है और किसको नहीं मारता सो सुनो। दुःखरूपी मोती वासनारूपी तांत से पिरोये हैं; यह माला जिस के हृदयरूपी गले में पड़ी हुई है उसको मृत्यु मारता है और जिसके कण्ठ में यह माला नहीं पड़ी

उसको मृत्यु नहीं मारता । शरीररूपी वृक्ष में चित्तरूपी सर्प बैठा है । आशारूपी अग्नि जिस वृक्षको नहीं जलाती वह मृत्यु के वश नहीं होता । रागद्वेषरूपी विषसे पूर्ण जो चित्तरूपी सर्प है, तृष्णा से चूर्ण होता है और लोभरूपी व्याधि से नष्ट होता है उसको मृत्यु मारता है और ग्रास लेता है । जिसको इनका दुःख नहीं स्पर्श करता उसको मृत्यु भी नहीं नाश करता । हे मुनीश्वर ! शरीररूपी समुद्र क्रोधरूपी बड़वाग्नि से जलता है जिसको क्रोधरूपी अग्नि नहीं जलाता उसको मृत्यु भी नहीं मारता । जिसका मन परम पावन और निर्मल पदमें दृढ़ विश्रान्त और स्थित हुआ है उसको मृत्यु नाश नहीं करता । हे मुनीश्वर ! जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, चिन्ता, चञ्चलता, अभिमान प्रमाद इत्यादि दुःख होते हैं उसको मृत्यु मारता है और जिस को काम, क्रोध, लोभादिक रोग संसार बन्धन का कारण बांध नहीं सके और जो इनसे लेपायमान नहीं होता उसको आधि व्याधिरूपी मल नहीं स्पर्श करता । जो मनुष्य लेता है, देता है और सबकार्य करता है पर चित्त में अनात्म अभिमान स्पर्श नहीं करता उसको और जो पुरुष इष्टकी वाञ्छा नहीं करता और अनिष्ट में दोष नहीं करता दोनों की प्राप्ति में सम रहता है उसको समाहतचित्त कहते हैं । हे मुनीश्वर ! जो कुछ ऐश्वर्यवान् सुन्दर पदार्थ हैं वे सब असत्‌रूप हैं; पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा और स्वर्ग में गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, देवता और उनकी स्त्रीगण और सुरों की सेना आदिक सब नाशरूप हैं । मनुष्य, दैत्य, देवता, असुर, पहाड़, ताल, नदियां जो कुछ बड़े पदार्थ हैं वे सबही नाशरूप हैं । स्वर्ग, पृथ्वी और पाताललोक जो कुछ जगत् भोग हैं वे सब असत्‌रूप और अशुभ हैं । कोई पदार्थ श्रेष्ठ नहीं; न पृथ्वी का राज्य श्रेष्ठ है, न देवताओं का रूप श्रेष्ठ है न नागों का पाताललोक श्रेष्ठ है न कुछ शास्त्रों का विचारना श्रेष्ठ है, न काव्यका जानना श्रेष्ठ है; न पुरातन कथाक्रम वर्णन करना श्रेष्ठ है; न बहुत जीना श्रेष्ठ है; न मूढ़ता से मरजाना श्रेष्ठ है; न नरक में पड़ना श्रेष्ठ है और न इस त्रिलोकी में और कोई पदार्थ श्रेष्ठ है; जहां सन्त का मन स्थित है वही श्रेष्ठ । यह नानाप्रकार

का जगत्क्रम चलरूप है; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे मूढ़ होकर चलपदार्थ में नहीं रमते और बहुत जीनेकी इच्छा भी नहीं करते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्ड्युपाख्याने संकल्पनिराकरणन्नाम विंशतितमस्सर्गः॥ २०॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! केवल एक आत्मदृष्टि सब से श्रेष्ठ है; जिसके पाये से सब दुःख नाश होते हैं और परमपद प्राप्त होते हैं। वह आत्मचिन्तन सर्वदुःखों का नाशकर्त्ता है और चिरकाल के तीनों तापों से तपे और जन्म के मार्ग से थके हुये जीव के श्रम को दूर करता है और तपन मिटजाता है। समस्त दुःखोंको जो अविद्या सत्ता अनर्थ प्राप्त करनेवाली है उसको भी नाश करती है। जैसे अन्धकार को प्रकाश नाश करता है तैसेही जीवके हृदय में शीतल प्रकाश उपजाती है। हे भगवन्! ऐसी जो आत्मचिन्तना सब संकल्पों से रहित है सो तुम सारिखे को सुगम प्राप्त है और हम सारिखे को कठिन है क्योंकि; सम सत कलना से अतीत है। हे मुनीश्वर! उस आत्मचिन्तन की सखी और भी कोई प्राप्त हो तो सब ताप मिटजावें और महा शीतलता हो उनमें से मुझको एक सखी प्राप्त हुई है वह सब दुःखों का नाश करती है, सब सौभाग्य देनेवाली और जीनेका मूल है। ऐसी प्राणचिन्ता मझको प्राप्त हुई है। हे रामजी! जब इस प्रकार मुझ से काकभुशुण्डिने कहा तब मैंने जान करभी क्रीड़ा के निमित्त फिर उससे पूछा कि, हे सर्वसंशयों के निवृत्त करनेवाले, चिरंजीवी, पुरुष! सत्य कहो प्राणचिन्ता किसको कहते हैं? भुशुण्डिजी बोले, हे सर्ववेदान्त के वेत्ता और सर्व संशयों के नाशकर्त्ता! मेरे उपहास के निमित्त तुम मुझसे पूछते हो। तुम तो सबकुछ जानते हो परन्तु तुम से शिक्षक की भांति कहता हूं। क्योंकि, गुरु के आगे कहना भी कल्याण के निमित्त है। भुशुण्डिजी के जीने का कारण और भुशुण्डि को आत्मलाभ देनेवाली प्राणचिन्ता कहाती है। हे भगवन्! इसी दृष्टि का आश्रय करके मैं परमपद को प्राप्त हुआ हूं मुझको बन्धन नहीं होता और सब अवस्था में बैठते, चलते, जागते, सोते सब ठौर मेरा चित्त सावधान रहता है इस कारण

कोई बन्धन नहीं होता। हे मुनीश्वर! मैंने प्राण और अपान के संसरने की गति पाई है; उस युक्ति से मुझको आत्मबोध हुआ है और उस बोध से मेरे मद, मोहादिक विकार सब नष्ट हो गये हैं और शान्तरूप होकर स्थित हुआ हूं। हे मुनीश्वर! जिसको प्राण अपान की गति प्राप्त हुई है वह सब आरम्भ कर्म को करे अथवा सब आरम्भ का त्याग करे परन्तु सदा शान्तरूप है; उसका काल सुख से व्यतीत होता है। हे मुनीश्वर! प्राण हृदय से उपज कर द्वादश अंगुलपर्यन्त बाहर जाता है और वहां जाकर स्थित होता है; उस ठौर से अपानरूप हो हृदय में आकर स्थित होता है। हे मुनीश्वर! बाहर आकाश के सन्मुख जो प्राण जाता है सो अग्नि मुखवत् उष्ण होता है और जो हृदयाकाश के सन्मुख आता है सो शीतल नदी के प्रवाहवत्—आता है। अपान चन्द्रमारूप है और बाहर से अन्तर आता है और प्राण भीतर से बाहर जाता है, वह अग्नि, उष्ण और सूर्यरूप है। प्राणवायु हृदयाकाश को तपाता है और अन्न पचाता है और अपान हृदय को चन्द्रमा की सदृश शीतल करता है। हे मुनीश्वर। अपानरूपी चन्द्रमा जब प्राणरूपी सूर्य में जहां साठतत्त्वहैं लीन होताहै तो उस में स्थित हुआ मन फिर शोक को नहीं प्राप्त होता और प्राणरूपी सूर्य जब अपानरूपी चन्द्रमा के घरमें लीन होता है उस अवस्था में मन स्थित हुआ फिर जन्म का भागी नहीं होता। हे मुनीश्वर! सूर्यरूपी प्राण अपने सूर्यभाव को त्यागकर अपानरूपी चन्द्रमा को जबतक नहीं प्राप्त हुआ उस अवस्था के देशकाल को विचारे तो फिर शोक नहीं पाता और सब भ्रम नाश होजाते हैं। द्वादश अंगुल पर्यन्त जो आकाश है उससे अपानरूपी चन्द्रमा उपजकर हृदय के प्राणरूपी सूर्य में लीन होता है पर सूर्यभाव को जबतक नहीं प्राप्त होता उसके मध्यभाव अवस्था में जिसका मन लगा है वह परमपद को प्राप्त होता है। हृदय में चन्द्रमा और सूर्य के अस्तभाव और उदयभाव का ज्ञाता हुआ और इसका आधारभूत जो आत्मा है उसको जानकर फिर मन नहीं उपजता। हे मुनीश्वर! प्राण और अपानरूपी सूर्य और चन्द्रमा जो हृदय आकाश में उदय और अस्त होते

हैं उनके प्रकाश से हृदय में जो भास्कर देव है उसको जो देखता है वही देखता है। बाहर जो सूर्य प्रकाशता है और कभी अन्धकार होता है तो उस प्रकाश के उदय हुये और तम के क्षीण हुये कुछ सिद्ध नहीं होता परन्तु जब हृदय का तम दूर होता है तब परमसिद्धता को प्राप्त होता है। बाहर के तम नष्ट हुये लोकों में प्रकाश होता है और हृदय के तम नष्ट हुये आत्मप्रकाश उदय होता है और अज्ञान अन्धकार का अभाव हो परमपद को जानकर मुक्त होता है। प्राण अपान की युक्ति जाने से तम नष्ट होजाता है। हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूपी जो चन्द्रमा और सूर्य हैं सो यत्न विना उदय और अस्त होते हैं। जब प्राणरूपी सूर्य हृदयकोट से उपजकर बाहर जाता है तब उसी क्षण अपानरूपी चन्द्रमा में लीन होताहै और अपानरूपी चन्द्रमा उदय होआता है और जब अपानरूपी चन्द्रमा हृदयकोट के प्राण-वायुरूपी सूर्य में स्थित होताहै तब उसी क्षण में प्राणरूपी सूर्य उदय होता है। प्राणके अस्तहुये अपान उदय होताहै और अपान के अस्तहुये प्राण उदय होता है। जैसे छाया के अस्त हुये धूप उदय होती है और धूप के अस्तहुये छाया उदय होती है तैसेही प्राण अपानकी गति है। हे मुनीश्वर! जब हृदयकोट से प्राण उदय होता है तब प्राण का रेचक होने लगता है और अपान का पूरक होने लगता है और जब प्राण अपान में स्थित हुआ तब अपान का कुम्भक होताहै। उस कुम्भक में जब स्थिति होती है तब फिर तीनों तापों से नहीं तपता। जब अपान का रेचक होता है तब प्राण का पूरक होने लगता है और जब अपान जा स्थित होता है तब प्राण का कुम्भकहोताहै। उसमें जब स्थित होताहै तबभी तीनतापोंसे तपायमान नहीं होता। हे मुनीश्वर! प्राण अपान के भीतर जो शान्तरूप आत्मतत्त्व है उसमें जब स्थिति होती है तब मन तपायमान नहीं होता और जब अपान आ स्थित होता है और प्राण उदय नहीं हुआ उस अवस्था में जो साक्षी-भूत सत्ताहै वह आत्मतत्त्व है। उसमें जब स्थिति होती है तब फिर वह कठिन नहीं होता। जब अपान के स्थानमें प्राण जा स्थित होता है और अपान जबतक उदय नहीं हुआ वहां जो देश, काल, अवस्था है उसमें

मन स्थित होता है तब मनका मनत्वभाव जाता है और फिर नहीं उपजता। हे मुनीश्वर! प्राण जो अपान में स्थित हुआ और अपान उदय नहीं हुआ वह कुम्भक है। अपान प्राण में स्थित भया और प्राण जबतक उदय नहीं हुआ उस कुम्भक में जो शान्त तत्त्व है वह आत्मा का स्वरूप है और शुद्ध और परमचैतन्य है। जो उसको प्राप्त होता है वह फिर शोकवान् नहीं होता। जैसे पुष्पमें गन्धसे प्रयोजन होता है तैसेही प्राण अपान के भीतर जो अनुभव तत्त्व स्थित है उससे प्रयोजन है। वह न प्राण है, न अपान है; उस अनुभव आत्मतत्त्व की हम उपासना करते हैं। प्राण अपानकोट क्षयको प्राप्त होता है और अपान प्राणकोट में क्षय होता है; उस प्राण-अपान के मध्य में जो चिदात्मा है उसकी हम उपासना करते हैं। हे मुनीश्वर! जो प्राणका प्राण है; अपान का अपान है; जीवका जीव है और देहका आधारभूत है ऐसे चिदात्मा की हम उपासना करते हैं। जिसमें सर्व है, जिससे यह सर्व है और जो यह सर्व है; ऐसा जो चिदात्माहै उसकी हम उपासना करते हैं। जो सर्व प्रकाशका प्रकाशहै; सब पावन का पावन है और सब भाव अभाव पदार्थोंका अपना आप है उस चिदात्मा की हम उपासनाकरते हैं जो पवन परस्पर हृदयमें संपुटरूपहै उसमें स्थित जो साक्षी-रूप और भीतर बाहर सबठौर वही है;उसचिदात्माकी हम उपासनाकरते हैं। जब अपान अस्त हुआ और प्राण नहीं उपजा उस क्षण में जो कलंक से रहित है उस चेतनतत्त्व की हम उपासना करते हैं। जब प्राण अस्त हुआ और अपान नहीं उपजा ऐसा जो नासिकाके अग्रमें शुद्ध आकाशहै और उसमें जो सत्यता है उस चिद्सत्यता की हम उपासना करते हैं। जो प्राण अपान के उत्पत्ति का स्थान; भीतर बाहर सबओर में व्याप्त और सब योग-कला का आधारभूत है उस चिद्तत्त्व की हम उपासना करते हैं। जो प्राण अपान के रथपर आरूढ़है और शक्ति का शक्तिरूपहै उस चिद्तत्त्वकी हम उपासना करते हैं। हे मुनीश्वर! जो संपूर्ण कला कलंकसे रहित और सर्व कला जिसके आश्रय हैं ऐसा जो अनुभवतत्त्व है और सबदेवता जिसकी शरण को प्राप्त होते हैं उस आत्मतत्त्व को हम उपासना करते हैं॥

इति श्रीयो०नि०भुशुण्डउपा०समाधिवर्णनंनामएकविंशतितमस्सर्गः२१॥

भुशुण्डिजी बोले हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं प्राणसमाधि को प्राप्त हुआ हूं और इसक्रमसे मैं आत्मपदको प्राप्तहुआहूं। इसी निर्मल दृष्टिका आश्रयकरके स्थित हूं और एक निमेषभी चलायमान नहीं होता। सुमेरु पर्वत की नाईं स्थित हूं और चलताहुआ भी स्थिरहूं; जाग्रत् में सुषुप्ति स्वप्नमें स्थितहूं और सर्वदा आत्मसमाधि में लगा रहताहूं; विक्षेप कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! नित्य अनित्य भावसे जो जगत् स्थितहै उसको त्यागकर मैं अन्तर्मुख अपने आपमें स्थितहूं और प्राण अपान की कला जो तुम्हारे विद्यमान कही है उसका सदा ऐसेही प्रवाह चलाजाता है उसमें मेरी अयत्न समाधि है इससे मैं सदा सुखी रहता हूं कुछ कष्ट नहीं होता। जिसको यह कला नहीं प्राप्त हुई वह कष्ट पाता है। हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीव महाप्रलयपर्यन्त संसार समुद्र में डूबते हैं और निकलकर फिर डूबते और इसी प्रकार गोते खाते हैं और जिन पुरुषों ने पुरुषार्थ कर आत्मपद पाया है वे सुख से बिचरते हैं। हे मुनीश्वर! भूतकाल की मुझको चिन्ता नहीं और भविष्य की इच्छा नहीं; वर्तमान में यथाप्राप्त राग द्वेष से रहित होकर बिचरता हूं। मैं सुषुप्ति की नाईं स्थित हूं इससे केवल स्वरूप में भाव अभाव पदार्थों से रहित हूं और इस कारण चिरंजीवी हो दुःख से रहित हूं। प्राण अपान की कला को शम करके स्वरूप में स्थित हूं। आज यह कुछ पाया है और कल यह पाऊंगा यह चिन्ता मेरी दूर होगई है, इस कारण निर्दुःख जीता हूं। न किसी की प्रशंसा करता हूं और न कदाचित् निन्दा करता हूं; सब आत्मस्वरूप देखताहूं इसकारण सुखी जीताहूं। इष्टकी प्राप्तिमें हर्षवान् नहीं और अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान् नहीं होता मैंने परम त्याग किया है सर्व आत्मभाव देखता हूं और जीवभाव दूर होगया है इस कारण अदुःख जीता हूं। हे मुनीश्वर! मेरे मन की चपलता मिट गई है और राग द्वेष दूर होगये हैं। मन शान्त हुआ है। इस कारण अरोग जीता हूं, काष्ठ, सुन्दर स्त्री, पहाड़, तृण, अग्नि और सुवर्ण समभाव देखता हूं। हे मुनीश्वर! मैं जरामरण के दुःख और राजलाभ के सुख और शोक से रहित समभाव में स्थित हूं और निर्दुःख जीताहूं ये मेरे बान्धव हैं, ये अन्ध हैं। यह मैं हूं, यह मेरा है, यह

सब कलना मुझको कुछ नहीं इसीसे सुखी जीता हूं और आहार व्यवहार करता, बैठता, चलता, सूंघता, स्पर्श करता और श्वास लेता हूं परन्तु यह जो अभिमानहै कि, मैं 'देह हूं', इस अभिमानसे रहित हो सुखी जीताहूं। इस संसार की ओर से मैं सुषुप्तरूप हूं और इस संसार की गति को देखकर हँसता हूं कि, वास्तव में यह है नहीं आश्चर्य है; इस कारण निर्दुःख जीता हूं। हे मुनीश्वर! मैं सर्वदा काल, सर्व प्रकार, सर्व पदार्थों में समबुद्धि हूं और विषमता मुझको कुछ नहीं भासती; न किसीसे सुखी होताहूं और न दुःखी हूं-जैसे हाथ फैलाइये तौभी शरीर है और संकोचिये तौ भी शरीर है इसी प्रकार मैंने सर्वात्मा आपको जाना है इससे मुझको कोई दुःख नहीं। मेरी बोली और निश्चय स्निग्ध और कोमल सबको हृदयगम्य है। सर्वत्र मैं जो ऐसे देखता हूं इस कारण निर्दुःख जीता हूं। चरण से मस्तकपर्यन्त देह में मुझको ममता नहीं और अहंकाररूपी कीचड़ से मैं निकला हूं इस कारण अरोग जीता हूं। कार्यकर्ता और भोजनकर्ताभी दृष्टि आता हूं परन्तु मेरे मनमें निष्कर्मता दृढ़ है। हे मुनीश्वर! सामर्थ्य करके कार्य करूं तौ भी मुझको अभिमान नहीं और दरिद्री होऊं तौ भी संपत्ति और सुख की इच्छा नहीं अर्थात् किसी में आसक्त नहीं होता। इस असत्यरूप शरीर के नाश हुये अभिमान नाश नहीं होता। भूतोंका समूह सब असत्यरूप है और आत्मा सत्यरूपहै; ऐसे जानकर मैं स्थितहूं और आशारूपी फांसी से मेरे मुक्तचित्त की वृत्ति समाहत हुई है और अनात्म में आत्म अभिमान की वृत्ति नहीं फुरती। हे मुनीश्वर! मैंने जगत् को असत्य जाना है और आत्मा को सत्य और हाथ में बिल्वफलवत् प्रत्यक्ष जाना है। इस जगत् में मैं सुषुप्त प्रबुद्धहूं। सुखको पाकर मैं सुखी नहीं होता और दुःखको पाकर दुःखी नहीं होता। सर्वका मैं परममित्र हूं इस कारण मैं निर्दुःख जीताहूं; आपदा में अचलचित्त हूं; संपदा में सब जगत्का मित्रहूं और भाव अभाव से ज्यों का त्यों हूं इस कारण सदासुखी जीताहूं। न मैं परिच्छिन्न अहं हूं; न कोई अन्यहै; न कोई मेराहै और न मैं किसी का हूं; यह भावना मेरे चित्तमें दृढ़ है। मैं जगत् हूं; और मैंहीं आकाश, देश, काल,

क्रिया, सब हूं; यह निश्चय मुझको दृढ़ है। घट भी चेतनहै, पट भी चेतन है, रथभी चेतनहै और यह सब चेतन तत्त्व है; यह निश्चय मुझको दृढ़ है इस कारण अदुःख जीता हूं। हे मुनिशार्दूल ! यह सब जो मैंने तुमसे कहा भुशुण्डि नाम काकने जो त्रिलोकीरूपी कमलका भँवराहै मुझसे कहा था॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्ड्युपाख्याने चिरंजीविहेतुकथनं नाम द्वाविंशतितमस्सर्गः॥ २२॥

भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! जैसा मैं हूं तैसा तुम्हारी आज्ञा के सिद्धि अर्थ कहा है नहीं तो गुरु के आगे कहना भी ढिठाई है। तुम ज्ञान के पारगामी हो। फिर मैं बोला, हे भगवन्! आश्चर्य है और आश्चर्य से भी आश्चर्य है कि, तुमने श्रवण का भूषण कहा और आत्म उदितरूप वचन जो तुमने कहे हैं वे परम विस्मय के कारणहैं। हे भगवन्! तुम धन्य हो। तुम महात्मा पुरुष हो और चिरंजीवियों के मध्य तुम मुझको साक्षात् दूसरे ब्रह्मा भासते हो। आज हम भी धन्य हैं कि तुम्हारे ऐसे महापुरुष के मुख से इस प्रकार आत्मउदित सुना है जैसे मैंने पूछा तैसेही तुमने कहा। हे साधो! मैंने सब भूमिलोक देखे हैं और दिशागण, आकाश और पाताललोक भी देखे हैं; त्रिलोकी में तुमसा कोई बिरलाही है। जैसे बांस बहुत हैं पर मोती-वाला बिरलाही होताहै तैसेही तुम सारिखे बिरले हैं। हे साधो! आज हम पुण्यरूप हुये हैं और आज हमारी देह पवित्र हुई जो तुम ऐसे मुक्तआत्मा का दर्शन हुआ है। हे साधो! अब हम सप्तर्षि के मध्य जाते हैं; हमारे मध्याह्न का समय हुआ है। जब मैंने ऐसे कहा तब भुशुण्डि कल्पलता से उठ खड़ा हुआ और संकल्प के हाथ करके उसने सुवर्ण का पात्र रचकर मोती और रत्नोंसे भरा और मुझको अर्घ्यपाद्य करके पूजन किया। जैसे त्रिनेत्र सदाशिव की पूजा करते हैं तैसेही उसने चरणों से लेकर मस्तक पर्यन्त मेरा पूजन किया और बहुत नम्र होकर प्रणाम किया। मैंने भी उसको प्रणाम किया और इस प्रकार परस्पर नमस्कार करके मैं वहाँ से उठ खड़ा हुआ और आकाशमार्ग को चला। जैसे पक्षी उड़ता है तैसेही मैं उड़ा और वह भी मेरे साथ उड़ा। परस्पर हम दोनों हाथ ग्रहण किये

जब एकयोजनपर्यन्त चले गये तब मैंने उससे कहा; हे साधो! तुम अब इहांसे फिरो। इस प्रकार बारम्बार कह कर मैंने उसको ठहराया और मैं चलागया। जबतक मैं उसको दृष्टि आता रहा तबतक वह देखता रहा और जब मैं न दीखा तब वह अपने स्थान में जा बैठा। मैं सप्तर्षियों के मण्डलमें जा पहुंचा और अरुन्धती से पूजित हुआ। हे रामजी! भुशुण्डि के आश्चर्यरूप वचन मैंने तुमको सुनाये हैं। अब भी सुमेरु के शृङ्गपर उस कल्पवृक्ष की लता में वह कल्याणरूप सम स्थित है और शान्तिरूप और मान करने के योग्य है और सदा समाधिमान् है। हे रामजी! यह हमारा और उसका समागम सतयुग के दोसौवर्ष व्यतीत हुये हुआ था और अब सतयुग क्षीण हो त्रेतायुग बर्तताहै उसमें तुम उपजे हो। हे रामजी! अभी आठवर्ष बीतेहैं कि, हमारा उसका फिर मिलापहुआथा तो वह उसी वृक्षलता परहै हे रामजी! यह इतिहास जो मैंने तुमसे कहाहै सो परम उत्तम है। जब इसको विचारोगे तब संसारभ्रम निवृत्त होजावेगा। मुनिवशिष्ठ और भुशुंडि की कथाको जो निर्मलबुद्धिसे विचारेगा वह भवरूप संसारके भयसे तरेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्ड्युपाख्यानसमाप्तिर्नाम त्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥ २३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे अनघ! यह जो मैंने तुमसे भुशुण्डि का वृत्तान्त कहा इसे बोध करके भुशुण्डि महासंकट से तरा है, इस दशा को तुम भी आश्रय करके प्राण की युक्ति कर अभ्यास करो तब तुमभी भुशुण्डि की नाईं भवसमुद्र के पार होगे। जैसे भुशुण्डि ने ज्ञानयोग से पाने के योग्य पद पाया है तैसेही तुम भी पावो और जैसे प्राण अपान के अभ्यास से भुशुण्डि परमतत्त्व को प्राप्त हुआ है तैसेही तुमभी अभ्यास करके प्राप्त हो। विज्ञानदृष्टि जो तुमने सुनी है उसकी ओर चित्त को लगाकर आत्मपद को पावो फिर जैसे इच्छा हो तैसे करो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पृथ्वी में आपके ज्ञानरूपी सूर्यकी किरणों के प्रकाश से मेरे हृदय से अज्ञानरूपी तम दूर हो गया है और अब प्रबुद्ध होकर अपने आनन्दरूप में स्थित हुआ हूं और जाननेयोग्य पदको जानताहूं—मानो दूसरा वशिष्ठ हुआ हूं।

हे भगवन्! यह जो भुशुण्डि का चरित्र आपने परमार्थबोध के निमित्त कहा है उस में रक्त, मांस, और अस्थिका शरीररूपी गृह किसने रचाहै; कहां से उपजा है; कैसे स्थित हुआ है और कौन इसमें स्थित है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमार्थतत्त्वके बोध और दुःखके निवृत्त अर्थ ये मेरे वचन हैं सो सुनो। अस्थि इस शरीररूपी गृह का थम्भा है और इसके नव द्वारे हैं; रक्त मांससे जो यह लेपन किया है सो किसीने बनाया नहीं आभासमात्रहै और मिथ्या भ्रमसे भासताहै। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है तैसेही असत्यरूप शरीर भी भ्रम से भासता है। हे रामजी! जबतक अज्ञान है तबतक देह सत्य भासताहै और जब ज्ञान होताहै तब देह असत्यरूप भासता है-जैसे स्वप्नकाल में स्वप्न के पदार्थ सत्य भासते हैं और जाग्रत् काल में स्वप्न असत्य भासता है;तैसेही अज्ञानकाल में अज्ञान के देहादिक पदार्थ सत्य भासते हैं और ज्ञानकाल में असत्य होजाते हैं। जैसे जल में बुद्बुदा जलके अज्ञानसे सत्य भासताहै और जल के जानेसे असत्य भासता है; और सूर्यकी किरणों में मरुस्थल की नदी भासती है; तैसे ही आत्मा में देह भासता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् भासता है वह सब आभासमात्र अज्ञान से भासता है और 'अहं' 'त्वं' आदिक कल्पना सब मननमात्र मन में फुरती हैं। तुम जो कहतेहो कि, देह अस्थि और मांस का गृह रचा है; सो अस्थिमांस से नहीं रचा संकल्पमात्र है, संकल्प से भासता है और संकल्प के अभाव हुये देह नहीं पायाजाता। हे रामजी! स्वप्न में जो देह धरकर दिशा,तट,पर्वत इत्यादि तुम देखते फिरते हो जाग्रत् में तुम्हारा वह देह कहां जाताहै? जो देह सत्य होता तो जाग्रत् में भी रहता और मनोराजसे स्वर्ग को जाता है तथा सुमेरु और भूमिलोक में फिरता है। हे रामजी! इन स्थानों में जैसे मन का फुरना देह होकर भासता है सो असत्यरूप है तैसेही यह शरीर मनके फुरनेमात्र है इससे असत्य जानो। यह मेरा धन है, यह मेरा देह है, यह मेरा देश है इत्यादिक कल्पना मनकी रची हुई है-सबका बीज, चित्त ही है। हे रामजी! जगत् को दीर्घकाल का स्वप्न जानो वा दीर्घ चित्त का भ्रम जानो अथवा

दीर्घमनोराज जानो; वास्तव में जगत् कुछ नहीं। जब अपने वास्तव पर मात्मस्वरूप को अभ्यास करके जानता है तब जगत् असत्यरूप भासता है। हे रामजी! मैंने पूर्व भी तुमको ब्रह्माजी के वचनों में कहा है कि, सब जगत् मनका रचा हुआ है-इससे संकल्पमात्र है। चिरकालका जो अभ्यास होरहा है इससे सत् भासताहै; जब दृढ़ पुरुष प्रयत्नसे आत्मअभ्यास हो तब असत्य भासेगा। हे रामजी! जो भावना हृदय में दृढ़ होती है उसका अभाव भी सुगम नहीं होता पर जब उसके विपर्यय भावना का अभ्यास करिये तब उसका अभाव होजाता है। यह मैं हूं, यह और है इत्यादिक कलना जो हृयद में दृढ़ होरही है जब इसके विपर्यय आत्मभावना हो तब वह मिटे और सर्व आत्माही भासे। हे रामजी! जिसकी तीव्र भावना होती है वही रूप फल उसका होजाता है-जैसे कामी पुरुष को सुन्दर स्त्री की कामना रहती है तैसेही जीवको जब आत्मपद की चिन्ता रहे तब वही रूप होताहै। जैसे कीटभृङ्गी होजाता है और जैसे दिन में व्यापार का अभ्यास होताहै तो रात्रि को स्वप्न में भी वही देखता है; तैसेही जिसका जीवको दृढ़ अभ्यास होता है वही अनुभव होताहै। जैसे सूर्य आकाशमें तपताहै और मरुस्थल में जल होकर भासता है पर वहां जल का अभाव है; तैसेही भाव से रहित पृथ्वी आदिक पदार्थ भ्रम से भावरूप भासते हैं। जैसे नेत्र दुखने से आकाश में तरुवरे मोर पुच्छवत् भासते हैं तैसेही अज्ञान से जगज्जाल भासते हैं। हे रामजी! यह जगत् सब आभासरूप है स्वरूप के प्रमाद से भय और दुःख को प्राप्त होता है पर जब स्वरूप को जानता है तब भ्रम, भय और दुःख से रहित होताहै। जैसे स्वप्नपुर में चित्त के भ्रम से सिंहों से भय पाता है और जब जाग्रत् स्वरूप में चित्त आताहै तब सिंहका भय निवृत्त होजाता है, तैसेही आत्मज्ञान से निर्भय होता है। जब वैराग अभ्यास करके जीव निर्मल आत्मपद को प्राप्त होताहै तब फिर क्षोभ को नहीं प्राप्त होता और रागद्वेषरूपी मल उसको नहीं स्पर्श करता। जैसे तांबा जब पारस के स्पर्श से सुवर्ण होता है तब वह तांबेभाव को नहीं ग्रहण करता, तैसेही जीव फिर मलिन नहीं होता। अहं, त्वं आदिक जो कुछ जगत् भासता है वह सब

आभासमात्र ही है। हे रामजी! प्रथम सत्य असत्य को जानकर असत्य का निरादर करो और सत्य का अभ्यास करो तब चित्त सर्व कलना से रहित होकर शान्तपद को प्राप्त होता है। जो तत्त्वज्ञान से सम्यक्दर्शी हुआ है उसको जगत् के इष्ट पदार्थ पाये से हर्ष नहीं होता और अनिष्ट के पाये से शोक नहीं होता; वह न किसी की स्तुति करता है, न किसी की निंदा करता है और हृदय में शीतल और शान्तरूप हो जाता। जब कोई बान्धव मृतक हो तब उसमें तपायमान क्यों होता है वह तो अवश्यही मरता। जब अपनी मृत्यु आवे तब अवश्य शरीर छूटता है वृथा क्यों तपायमान होता है। जब सम्पदा प्राप्त हो तो उससे हर्षवान् नहीं होता क्योंकि; जो कुछ भोगना था भोगा हर्ष किस से हुआ? दुःख आन प्राप्त हो तब शोक क्यों करना शरीर का व्यवहार सुख दुःख आता जाता है और अमिट है और जब अपना किया कर्म उदय होताहै तब भी शोक क्यों करताहै? हे रामजी! जो सत्य है वह असत्य नहीं और जो असत्य है सो सत्य नहीं फिर जगत् द्वेष किस निमित्त करना? जिसको ऐसा निश्चय हुआ है कि, न मैं हूं, न जगत् है और न पृथ्वी है तो वह शोक किसका करे और जब देह अन्य है और मैं चेतन हूं तो चेतन का तो नाश नहीं होता तब शोक किसका करना? हे रामजी! दुःख तो किसी प्रकार नहीं है पर जबतक विचार नहीं तबतक दुःख होता है और विचार किये से दुःख कोई नहीं रहता। सम्यक्दर्शी जो मुनीश्वर है वह सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जानता है इस कारण दुःख नहीं पाता और जो असम्यक्दर्शी है वह अज्ञान से दुःख पाता है। जैसे दिनके अन्तमें मण्डल शीतल होजाता है तैसेही सम्यक्दर्शी का हृदय शीतल होता है। जिसको कर्तव्य में कर्तृत्व का अभिमान नहीं है वही सम्यक्दर्शी है। हे रामजी! जितने जगत् के पदार्थ हैं उनको हृदय से आभासमात्र जानो और बाहर जैसे आचार हो तैसे करो अथवा उसका भी त्याग करो और निराभास होकर स्थित हो। मैं चिदाकाश, नित्य, सर्वज्ञ और सबसे रहित हूं; ऐसा अभ्यास करके एकान्त और निर्मल आपको देखोगे। अथवा ऐसी धारणा करो कि, न मैं हूं, न यह

भोग है, न अर्थरूप जगत् आडम्बर है; अथवा ऐसे धारो कि; मैं हीं नित्य शुद्ध, चिदात्मा और आकाशरूप सब कुछ हूं, मेरे से कुछ भिन्न नहीं और मैं अपने आप में स्थित हूं। इन दोनों पक्षों में जो इच्छा हो सो ग्रहण करो तो तुमको सिद्धता का कारण होगा। जगत् को आभासमात्र जानो परन्तु यह भी कलङ्करूप है इस चिन्तनाको भी त्यागकर निराभास हो। तुम चिदाकाश, नित्य, सर्वव्यापी और सबसे रहित हो; आभास को त्याग कर निर्मल अद्वैत हो रहो अथवा विधि निषेध दोनों दृष्टों को आश्रय करो। हे रामजी! क्रिया को करो परन्तु रागद्वेषसे रहितहो। जब राग द्वेषसे रहित होगे तब उत्तम पदार्थ ब्रह्मानन्द को प्राप्त होगे और जो सर्व का अधिष्ठानहै उसको पावोगे। हे रामजी! जिसका हृदय रागद्वेषरूपी अग्निसे जलताहै उसको सन्तोष, वैराग आदिक गुण नहीं प्राप्त होते। जैसे दग्ध भूतल के वनमें हरिण प्रवेश नहीं करते तैसेही रागद्वेषादिकवाले हृदयमें सन्तोषादिक नहीं प्रवेश करते। हे रामजी! हृदयरूपी कल्पतरु है। ऐसा वृक्ष जो राग-द्वेषादिक सर्पों से रहित है उससे कौन पदार्थ है जो प्राप्त न हो—शुद्धहृदय से सब कुछ प्राप्त होता है। हे रामजी! जो बुद्धिमान् भी है और शास्त्र का ज्ञाता भी है परन्तु रागद्वेष संयुक्त है वह सियार की नाईं नीच है और उसको धिक्कार है। जिन पदार्थों के पानेके निमित्त लोग यत्न करते हैं वे तो आते जाते हैं। धनको इकट्ठा कोई करता है और कोई लेजाता है तब रागद्वेष किसका करिये? जो कुछ प्रारब्ध है सो अवश्य होता है, धनका व्यर्थ यत्न क्या करिये? बान्धव और वस्त्र आते हैं और फिर जाते भी हैं। जैसे समुद्र में झषका आश्रय बुद्धिमान् नहीं लेते तैसेही जगत् के पदार्थों का आश्रय ज्ञानवान् नहीं लेते। भाव-अभावरूप परमेश्वर की माया है और संसार की रचना स्वप्न की नाईं है; उनमें जो आसक्त होते हैं उनको वे सर्पिणीवत् डसते हैं धन, बान्धव और जगत् वास्तवमें मिथ्या ही हैं अज्ञान से सत्य भासते हैं। हे रामजी! जो आदि न हो और अन्त भी न रहे पर मध्य में भासे उसको भी असत्य जानिये। जैसे आकाश में फूल असत्य है तैसेही संसार रचना असत्य है और जैसे संकल्प रचना असत्य

है; जैसे गन्धर्वनगर सुन्दर भासता है पर नाश होजाता है और जैसे स्वप्न-पुर दीर्घकाल का भासता है पर भ्रमरूप है; तैसेही यह जगत् असत्यरूप और भ्रममात्र है केवल संकल्परूप अभ्यास के वश से दृढ़ता को प्राप्त हुआ है। दीवार जो आकारवान् भासती है सो आकार से रहित प्रकाशरूप है और आत्मपद सुषुप्तिकी नाईं अद्वैतरूपहै। उस सुषुप्तिरूपपदसे जब गिरताहै तब दीर्घ स्वप्नको देखताहै। हे रामजी! अज्ञानरूपी निद्रा में जो अपने स्वभाव से गिराहै वह संसाररूपी स्वप्नभ्रमको देखता है। जब अज्ञानरूपी निद्रा का अभाव हो तब अपने आत्मराज और निर्विकल्प मुदित आत्मपद को प्राप्त होताहै। जैसे सूर्यको देखकर कमल प्रफुल्लित होते हैं तैसेही ज्ञानसे शुभगुण फूलते हैं। आत्मरूपी सूर्य सब दुःखसे रहितहै। जो पुरुष निद्रा में होताहै वह सूक्ष्म वचनों से नहीं जागता पर बड़े शब्द करने और जल डालनेसे जागता है सो मैंने तुम पर मेघ की नाईं गर्जकर वचनरूपी जलकी वर्षा की है और ज्ञानरूपी शीतलतासहित ये वचनहैं उनसे अब तुम ज्ञानरूपी जाग्रत् बोध को प्राप्त हुये। ऐसे ज्ञानरूपी सूर्यसे जगत्को भ्रमरूप देखोगे। हे रामजी! तुमको न जन्म है, न मृत्युहै, न कोई दुःखहै, न भ्रमहै, सर्वसंकल्पों से रहित आत्मपुरुष अपने आपमें स्थित हो और तुम्हारी वृत्ति समशान्त और सुषुप्ति की नाईं है और अति विस्तृत, सम और शुद्ध अपने स्वरूप में स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थ योगोपदेशो नामचतुर्विंशति तमस्सर्गः॥ २४॥

इतना कहकर, बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने वचन कहे तब रामजी सम, शान्त और चेतनतत्त्व में विश्राम पाकर परमानन्द को प्राप्त हुये और समस्त सभा जो बैठी थी वह भी वशिष्ठजी के वचन सुनकर सम और आत्मसमाधि में स्थित हो रही और बोलने का व्यवहार शान्त होगया। पिंजरे में जो पक्षी बोलते थे वे भी शान्त होगये, वन के जो वानर थे वे भी वचन सुनकर स्थित हो रहे और सर्व ओर से शान्ति होगई। जैसे अर्धरात्रिके समय भूमि शान्तरूप होजाती है तैसेही सभा के लोग तूष्णी होरहे और वचनों को विचारनेलगे कि, क्या उपदेश

मुनीश्वर ने किया है। एकघड़ी पर्यन्त शान्ति रही उसके अनन्तर फिर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम सम्यक् प्रबुद्ध हुये हो और अपने आप में स्थित हुये हो जो कुछ जाना है उसके अभ्यास का त्याग न करना इसी में दृढ़ रहना। हे रामजी! संसाररूपी चक्र का नाभि स्थान चित्त है। उस चित्तनाभि के स्थिर हुये संसारचक्र भी स्थिर होजाता है। इस संसाररूपी चक्र का बड़ा तीक्ष्ण वेग है; यद्यपि रोकते हैं तौभी फुरने लगता है; इससे दृढ़ प्रयत्न बल करके इसको रोकिये। सन्तों के संग और सतशास्त्रों के वचन युक्त बुद्धि से रुकता। हे रामजी! अज्ञान से जो देवकल्पा है उसका त्यागकर अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो; इससे परमशान्तपद प्राप्त होता है। ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त जो सब अज्ञानरूपी संसारचक्र है सो असत्यरूप है और भ्रम से सत्य की नाईं भासता है इसको त्यागकरो। हे रामजी! असत्यरूप पदार्थों में जो रागद्वेष करते हैं वे मूर्ख हैं उनसे तो चित्र का पुरुष भी श्रेष्ठ है। जब इष्टविषय प्राप्त होता है तब वे हर्ष से प्रफुल्लित होते और अनिष्ट की प्राप्ति से द्वेष करते हैं पर चित्र के पुरुष को रागद्वेष किसी में नहीं होता इसकारण मैं कहता हूं कि चित्र का पुरुष भी इनसे श्रेष्ठ है। ये आधि व्याधि से जलते हैं पर वह सदा ज्यों का त्यों है। चित्र का पुरुष तब नाश हो जब आधारभूत को नाश करिये; अधिष्ठान के नाश विना उसका नाश नहीं होता और मनुष्य अविनाश के आधार हैं उसका नाश नहीं होता पर मूर्खता से आपको नाश होता मानते हैं और राग द्वेष से संयुक्त हैं इस से चित्र के पुरुष से भी तुच्छ हैं। मनोराज संकल्परूप देह भी इस देहसे श्रेष्ठहै क्योंकि, जो कुछ दुःख इसको होते हैं वे बड़े कालपर्यन्त रहते हैं पर मनोराज का दुःख और संकल्प के आये से अभाव होजाता है इससे थोड़ा है। संकल्पदेह से भी स्थूलदेह तुच्छ है। हे रामजी! जो थोड़े काल से देह हुई है उस में दुःख भी थोड़ाहै और जो दीर्घ संकल्परूपी देह है वह दीर्घ दुःख को ग्रहण करती है इससे महानीच है। हे रामजी! यह देह भी संकल्पमात्र है न सत्य है, न असत्य है; उसके भोग के निमित्त मूर्ख यत्न करते हैं और क्लेश पाते हैं। देह

अभिमान करके इसके सुख से वे सुखी होते हैं और दुःख से दुःखी होते हैं और इसके नष्ट हुये आपको नष्ट हुआ मानते हैं। जैसे मनोराज के नाश हुये पुरुष और दूसरे चन्द्रमा के नाश हुये चन्द्रमा का नाश नहीं होता तैसेही इस देह के नाश हुये देही पुरुष का नाश नहीं होता जैसे संकल्प पुरुष के नाश हुये पुरुष का नाश नहीं होता और जैसे स्वप्नभ्रम के नाश हुये पुरुष का नाश नहीं होता, तैसेही देह के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे घन धूपके कारण रेणु में जल भासताहै और भलीप्रकार जा देखिये तब जल का अभाव होजाता है परन्तु देखनेवाले का अभाव नहीं होता; तैसेही संकल्पसे रचा विनाशरूप जो देहहै उसके नाशहुये तुम्हारा नाश तो नहीं होता। हे रामजी! दीर्घकाल का रचा जो स्वप्नमय देह है उसके दुःख और नाश से आत्मा को दुःख और नाश नहीं होता। चेतन आत्मसत्ता नाश नहीं होती और स्वरूप से चलायमान भी नहीं होती; न विकार को प्राप्त होती है; वह तो सर्वदा शुद्ध और अच्युतरूप अपने आप में स्थित है और देह के नाशहुये उसका नाश नहीं होता। अज्ञान के दृढ़ अभ्यास से देह के धर्म अपने में भासने लगे हैं; जब आत्मा का दृढ़ अभ्यास हो तो देहाभिमान और देह के धर्मों का अभाव हो जावे। जैसे कोई चक्रपर चढ़कर भ्रमता है तो उतरने पर कुछ काल भ्रमता भासता है पर जब चिरकाल व्यतीत होता है तब स्थित हो जाता है; इसी प्रकार देह-रूपी चक्र को प्राप्त हुआ और अज्ञान से भ्रमा हुआ आपको भ्रमता देखता है और जब अज्ञान का वेग निवृत्त होता है तब भी कोई काल देह भ्रम भासता है जिससे जानता है कि, मेरा नाश होता है, मुझको दुःख होता है इत्यादिक। यह कल्पना अज्ञान से भासती है पर जब उस भ्रमदृष्टि को धैर्य से निवृत्त करते हैं तब अभाव हो जाती है। हे रामजी! जैसे भ्रम से रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में देह भासती है सो असत्य और जड़ है; न कर्म करती है और न मुक्त होने की इच्छा करती है। देव परमात्मा भी कुछ नहीं करता; वह सदा शुद्ध, द्रष्टा और प्रकाशक है। जैसे निर्वात दीप अपने आप में स्थित होताहै तैसेही तुम भी शुद्ध स्वरूप

अपने आप में स्थित हो। जैसे सूर्य आकाश में स्थित होता है पर सर्व जगत् को प्रकाश करता है और उसके आश्रय लोग चेष्टा करते हैं परन्तु सूर्य कुछ नहीं करता वह केवल सबका साक्षीभूत है तैसेही आत्मा के आश्रय देहादिक की चेष्टा होती है परन्तु आत्मा साक्षीरूप है और पाप पुण्य से रहित है। हे रामजी! इस देहरूपी शून्यगृह में अहंकाररूपी पिशाच कल्पित है जैसे बालक परछाहीं में वैताल कल्प के भय पाता है तैसेही अहंकाररूपी पिशाच कल्पकर जीव भय पाता है। वह अहंकाररूपी पिशाच महानीच है और सर्व सन्तजनों से निन्द्य है। जब अहंकाररूपी वैताल निकले तब आनन्द हो। देहरूपी शून्य गृह में इस का निवास है; जो पुरुष इसका टहलुआ हो रहा है उसको यह नरक में ले जाता है इससे तुम इसके टहलुआ न होना। जब इसके नाश का उपाय करोगे तब आनन्द पावोगे। हे रामजी! यह चित्तरूपी उन्मत्त वैताल जिसको स्पर्श करता है उसको अशुद्ध करता है अर्थात् उसका धैर्य और निश्चय विपर्यय करके उसे दुःख देता है और निज स्वरूप से गिरा देता है। जो बड़े २ साधु महन्त हैं वे भी इसके भयसे समाधि में स्थित होते हैं कि, किसी प्रकार अहंकार का अभाव हो। हे रामजी! अहंकाररूपी पिशाच जिसको स्पर्श करता है उसको आपसा कर लेता है। यह जैसे आप तुच्छ है तैसेही और को भी तुच्छ करता है। जहां सत्संग सत्शास्त्र का विचार और आत्मज्ञान का निवास नहीं होता उस शून्य और उजाड़रूपी देह मन्दिर में यह रहता है और जो कोई ऐसे स्थान में प्रवेश करता है उसमें प्रवेश कर जाता है। हे रामजी! जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है उसका धनसे कल्याण नहीं होता और न मित्र बान्धव से कल्याण होता है। अहंकार पिशाच से मिला हुआ जो कुछ क्रिया कर्म वह करता है सो अपने नाश के निमित्त करता है और विष की बेलि को उपजाता और बढ़ाता है। हे रामजी! जो पुरुष विवेक और धैर्य से रहित है उसको अहंकाररूपी पिशाच शीघ्रही खा जाता है। वह सर्वरूप है और जिसको स्पर्श करता है उसको शवकर छोड़ता है। जिसको अहंकार-

रूपी पिशाच लगा है वह नरकरूपी अग्नि में काष्ठ की नाईं जलेगा। अहंकाररूपी सर्प देहरूपी वृक्ष के छिद्र में विष को धारे बैठा है; उसके निकट जो जावेगा उसको मार डालेगा और जो अहंमम भावको प्राप्त होगा सो मृतक समान होगा और जन्म मरण पावेगा। अहंकाररूपी पिशाच जिसको लगा है उसे मलिन करता है और स्वरूप से गिराकर संसाररूपी गढ़े में डालता है और बड़ी आपदा को प्राप्त करता है। जितनी आपदा हैं उन्हें अहंकार प्राप्त करता है। बहुत वर्ष पर्यन्त भी उन आपदाओं का वर्णन न कर सकेगा। हे रामजी! यह जो मलिन कल्पना उठती है कि, 'मैं हूं,' 'मैं मरता हूं,' 'मैं दग्ध होता हूं,' 'मैं दुःखी हूं,' 'मनुष्य हूं,' इत्यादि सो अहंकाररूपी पिशाच की शक्ति है। आत्मस्वरूप नित्य शुद्ध, चिदाकाश, सर्वगत, सच्चिदानन्द, जो सबका अपना आप है पर अहंकार के वशसे जीव आपको परिच्छिन्न और अलेप दुःखी मानता है। जैसे आकाश सर्वगत और अलेप है, तैसेही आत्मा सब में अलेप है और सबसे असम्बन्ध है पर अहंकार के सम्बन्ध से रहित है। हे रामजी! ग्रहण, त्याग, चलना, बैठना इत्यादिक जो कुछ क्रिया है सो देहरूपी यन्त्र और वायुरूपी रस्सी से अहंकाररूपी यन्त्री कराता है और आत्मा सदा निर्लेप सबका अधिष्ठानरूप कारणकार्य भाव से रहित है। जैसे वृक्ष की उँचाई का कारण आकाश निर्लेप है, तैसेही आत्मा सर्वचेष्टा का कारण अधिष्ठान और निर्लेप है जैसे आकाश और पृथ्वी का सम्बन्ध नहीं तैसेही आत्मा और अहंकार का सम्बन्ध नहीं है। चित्त को जो आप जानते हैं वे महामूर्ख हैं। आत्मा प्रकाशरूप, नित्य और सर्वगत विभु है; चित्त मूर्ख जड़ है और आवरण करता है। हे रामजी! आत्मा सर्वज्ञ और चेतनरूप है; चित्त मूढ़ है और पत्थरवत् जड़ है, इसको दूर करो इसका और तुम्हारा कुछ सम्बन्ध नहीं। तुम इस मोह से तरो। देहरूपी शून्यगृह में चित्तरूपी वैताल का निवास है; जिसको वह अपने वश करता है उसको बान्धव भी नहीं छुड़ा सक्के और शास्त्र भी नहीं छुड़ा सक्के जिसका देहाभिमान क्षीण होगया है उसको गुरु और शास्त्र भी छुड़ा सक्का जैसे अल्प

कीचड़ से हरिण को निकाल लेते हैं तैसेही गुरु और शास्त्र निकाल लेते हैं। हे रामजी! जितने देहरूपी शून्य मन्दिर हैं उन सब में अहंकाररूपी पिशाच रहता है, कोई देहरूपी गृह अहंकार पिशाच से खाली नहीं और भयसे मिला हुआ है। जैसे पिशाच अपवित्र स्थान में रहता है, पवित्र स्थान में नहीं रहता तैसेही जहां सन्तोष, विचार, अभ्यास, सत्सङ्ग से रहित देह है उस स्थान में अहंकार निवास करता है और जहां सन्तोष, विचार, अभ्यास और सत्संग होता है तहां से मिट जाता है। जितने शरीररूपी श्मशान हैं वे चित्तरूपी वैताल से पूर्ण हैं और अपरिमित मोहरूपी वैताल के वश जगत्रूपी महावन में मोह को प्राप्त होते हैं। जैसे बालक मोह पाता है। हे रामजी! तुम आप से अपना उद्धार करो और सत्य विचार करके धैर्य को प्राप्त हो। इस जगत्रूपी पुरातन वन में जीवरूपी मृग विचरते हैं और भोगरूपी तृण का आश्रय करते हैं पर वे भोगरूपी तृण देखने में तो सुन्दर भासते हैं परन्तु उनके नीचे गढ़ा है। जैसे हरियाली और तृण से ढपाहुआ गढ़ा देख के मृग के बालक भोजन करने लगते हैं और गढ़े में गिर पड़ते हैं तैसेही जीवरूपी मृग भोगों को रमणीय जानकर भोगने लगते हैं और उनकी तृष्णा से नरक आदिक जन्मों में गिरते और अग्नि में जलते हैं, हे रामजी! तुम ऐसे न होना। जो कोई भोग की तृष्णा करेगा वह नरकरूपी गढ़े में गिरेगा, इससे तुम मृगमति को त्यागकर सिंहवृत्ति को धारो। मोहरूपी हाथी को सिंह होकर अपने नखों से विदारण करो और भोग की तृष्णा से रहित हो। भोग की तृष्णावाले जीव जम्बूद्वीपरूपी जङ्गल में मृग की नाईं भटकते हैं–उन्हीं की नाईं तुम न बिचरना। हे रामजी! स्त्री जो रमणीय भासती हैं उनका स्पर्श अल्पकाल ही शीतल और सुखदायक भासता है परन्तु कीचड़ की नाईं है। जैसे कीचड़ का लेप भी शीतल भासता है परन्तु तुच्छ है। जैसे हाथी दलदल में फँसा हुआ निकल नहीं सक्ता, तैसेही यह भोगरूपी दलदल में फँसा हुआ नहीं निकलसक्ता। इसमें तुम सन्त की वृत्ति को ग्रहण करो। ग्रहण करना किसको कहते हैं और त्याग किसका

नाम है ऐसे विचार से असतवृत्ति को त्याग करो और आत्मतत्त्व का आश्रय करो। हे रामजी! यह अपवित्र देह अस्थि, मांस, रुधिरसे पूर्ण है और तुच्छ है और इसका दुष्ट आचार है। देह के निमित्त भोग की इच्छा करने से कुछ परमार्थ सिद्ध नहीं होता। देह और ने रची है, चेष्टा और से करती है; और ने इसमें प्रवेश किया है; दुःख को और ग्रहण करता है जो दुःख का भागी होता है। संकल्प ने देह रची है, प्राण से चेष्टा करता है, अहंकार पिशाच ने इसमें प्रवेश किया है और गर्जता है; मन की वृत्ति सुख दुःख को ग्रहण करती है और जीव दुःखी होता है। इससे आश्चर्य है। हे रामजी! परमार्थसत्ता एक है और सर्व समान है। रस में भिन्न सत्ता नहीं। जैसे पत्थर घन जड़ होता है और उसमें और कछ नहीं फुरता तैसेही सत्तामात्र से भिन्न द्वैत सत्ता किसी पदार्थ की नहीं। जैसे पत्थर घनरूप है तैसेही परमात्मा घनरूप है और जड़ चेतन भिन्न कोई नहीं यह मिथ्या संकल्प की रचना है। जैसे बालक को परछाहीं में वैताल भासता है तैसेही सब कल्पना मन की है जैसे एक पौंड़े के रस से गुड़, शक्कर इत्यादि होती है तैसे ही एक परमोत्तम सत्तासमान सर्व है उसमें जड़ चेतन की कल्पना मिथ्या है। जबतक सम्यक्दृष्टि नहीं प्राप्त हुई तबतक जड़ चेतन की दृष्टि होती है और जब यथार्थदृष्टि प्राप्त होती है तब भेदकल्पना सब मिट जाती है। जैसे सीपी में रूपा भासता है सो न सत्य होता है और न असत्य होता है, तैसेही आत्मा में जड़, चेतन, सत्य, असत्य विलक्षण कल्पना है। हे रामजी! जो सत्य है सो असत्य नहीं होता और जो असत्य है सो सत्य नहीं होता। आत्मा सदा सत्य-रूप अपने आप में स्थित है और उसमें द्वैत और एक का अभाव है। जैसे पत्थर में अन्य सत्ता का अभाव है तैसेही आत्मा में द्वैतसत्ता का अभाव है। नानारूप भासता है तो भी द्वैत कुछ नहीं सदा अनुभवरूप है और उसमें विभाग कल्पना कुछ नहीं—सदा अद्वैतरूप है भेदकल्पना चित्त से भासती है; जब चित्त का अभाव होता है तब जड़ चेतन की कल्पना मिट जाती है जैसे बन्ध्या के पुत्र और आकाशमें वृक्ष का अभाव

है तैसे ही आत्मा में कल्पना का अभाव है। हे रामजी! यह चेतन है, यह जड़ है, यह उपजता है, यह मिट जाता है इत्यादिक कल्पना सब मिथ्या हैं। जैसे रस्सी में सर्प मिथ्या है तैसेही केवल निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मा में कल्पना मिथ्या है गुरु और शास्त्र भी जो आत्मा को चेतन कहते हैं और अनात्मा को जड़ कहते हैं वह भी बोध के निमित्त कहते हैं और दृष्टान्त युक्त से दृश्य को आत्मस्वरूप में स्थिति करते हैं। जब स्वरूप में दृढ़ स्थिति होगी तब जड़ चेतन की भेद कल्पना जाती रहेगी केवल अचैत्य चिन्मात्र सत्ता भासेगी जो तत्त्व है। इस प्रकार गुरु जड़ चेतन के विभाग का उपदेश करते हैं तौ भी मूर्ख नहीं ग्रहण कर सक्ते तो जब प्रथम हीं अचैत्य-चिन्मात्र-अवाच्यपद का उपदेश करे तब कैसे ग्रहण करे। हे रामजी! और आश्चर्य देखो कि, चित्त और है, इन्द्रिय और है; देह और है, देह का कर्ता कोई दृष्टि नहीं आता और अहंकार से वेष्टित की है। यह जीव ऐसा मूर्ख है कि, देह को अपना आप जानता है और दुःख पाता है पर जो विचारवान् पुरुष आत्मपद में स्थित हुये हैं उन महानुभावों को कोई क्रिया दुःख बन्धन नहीं कर सक्ती। जैसे मन्त्र जाननेवाले को सर्प दुःख नहीं दे सक्ता तैसेही ज्ञानवान् को कर्म बन्धन नहीं करते। हे रामजी! न तुम शीश हो, न नेत्र हो, न रक्त हो, न मांस हो, न अस्थि आदिक हो, न मन हो और न भूतजात हो; तुम चित्त से रहित चेतन केवल चिन्मात्र साक्षीरूप हो इसी लिये शरीर से ममता त्यागकर नित्यशुद्ध और सर्वगत आत्मस्वरूप में स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देहसत्ताविचारो नाम
पञ्चविंशतितमस्सर्गः॥ २५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी दृष्टिका ऐसा आश्रय करो और भेदकष्ट दृष्टि का त्याग और नाशकरो। जब कष्टदृष्टि नष्ट होगी तब ऐसा आत्मानन्द प्रकट होगा जिस आनन्द के पाये से अष्टसिद्धि का ऐश्वर्य भी अनिष्ट जानकर त्यागोगे। अब और दृष्टि सुनो जो महामोह का नाश करती है और जो आत्मपद पाना कठिन है उसे सबसे प्राप्त करती है जिसका नाश

कदाचित् नहीं होता। यह दृष्टि दुःखसे रहित आनन्दरूप शिवजीसे मैंने सुनी है जो पूर्वकाल में कैलास की कन्दरा में संसारदुःख की शान्ति के लिये अर्धचन्द्रधार सदाशिव ने मुझसे कही थी। हे रामजी! महाचन्द्रमा की नाईं शीतल और प्रकाशमान हिमालय पर्वत का एक शिखर कैलासपर्वत है जहां गौरी के रमणीय स्थान और मन्दिर हैं और गङ्गाका प्रवाह झरनों से चलता है, पक्षी शब्द करते और मन्द २ सुखदायक पवन चलता है। कुबेरके मोर वहां बिचरते हैं, कल्पवृक्ष लगेहुए हैं और महाउज्ज्वल, शीतल, सुन्दर कन्दरापर मन्दार और तमाल वृक्ष लगे हुये हैं जिनमें ऐसे फूल लगे हैं मानों श्वेत मेघ हैं। वहां गन्धर्व और किन्नर आते और गाते हैं और देवताओं के रमणीय सुन्दर स्थान हैं। उस पर्वत पर सदाशिव त्रिनेत्र हाथमें त्रिशूल लिये और गणों से वेष्टित अर्धाङ्ग में भगवती को लिये विराजते हैं। ऐसे सर्व लोकोंके कारण ईश्वर जिन्हों ने कामदेव का गर्व नाश किया और षट्मुख सहित स्वामिकार्तिक जिनके पास बैठे हैं और महाभयानक शून्य श्मशानों में जिनका निवास है उस देव की मैंने पूजा की और महापुण्यवान् एक कुटी बनाकर एक कमण्डलु और फूल और माला पूजनके निमित्त रक्खे यथाशास्त्र पुण्यक्रिया से उसमें तप करनेलगा। जल पान करूं, फल भोजन करूं, विद्यार्थी जो साथ थे उनको पढ़ाऊं और शास्त्र का अर्थ विचारूं। ब्रह्मविद्या के पुस्तक का समूह आगे था और मृग और उनके बालक बिचरते थे इसप्रकार वेदका पढ़ना, ब्रह्मविद्या को विचारना और शास्त्रअनुसार तप करना इन गुणों से कैलास वन कुञ्ज में हम विश्राम करते थे। निदान श्रावण बदी अष्टमी की अर्धरात्रि से जब मैं समाधि से उतरा तो क्या देखता हूं कि, दशोदिशा काष्ठवत् मौन और शान्तरूप हैं; महातम घिरा है और मन्द मन्द पवन चलता है और उसके कनके गिरते हैं—मानो पवन हँसी करता है। उसी समय महाशीतल अमृतरूपी किरणों से चन्द्रमा प्रकाशित हो ओषधियों को रस से पुष्ट करने लगा, चन्द्रमुखी कमल खिल आये; चकोर अमृत की किरणों को पानकर मानो चन्द्रमारूप होगये; प्रातःकाल के तारों की नाईं मणी ऊपर आन पड़ने

लगीं और सप्तर्षि शिर पर स्थित हुये-मानो मेरे तप को देखने आये हैं। सप्तर्षियों में पिछले जो तीन तारे हैं उनके मध्य में मेरा मन्दिर है वहां मैं सदा विराजता हूं। चन्द्रमा से सब स्थान शीतल होगये और पवन से फूल गिरने लगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वशिष्ठआश्रमवर्णनं नाम षड्विंशतितमस्सर्गः॥ २६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब मुझको तेजका प्रकाश दृष्टि आने लगा। जैसे मन्दराचल पर्वत के पायेसे क्षीरसमुद्र उछल आता है। मानो हिमालय पर्वत मूर्ति धरकर स्थित है। मानो माखन का पहाड़ पिण्ड स्थित हुआ है व सब शंखों की स्पष्टता स्थित हुई है वा मोती का समूह इकट्ठा होकर उड़ने लगा है। महातीक्ष्ण प्रकाश दृष्टि आने लगा मानो गङ्गा का प्रवाह उछलने लगा है। उस प्रकाश की शीतलताने सब दिशा और तट पूर्ण करलिये और मैं देखकर आश्चर्यवान् हुआ कि, क्या अकाल ही प्रलय होने लगा। तब मैं बोधदृष्टि से मन में विचारने लगा कि, यह क्या है और देखा कि, देवताओंके गुरु ईश्वर सदाशिव चन्द्रकला को धारे हुये और गौरी भगवती का हाथ ग्रहण किये गणों के समूहसे वेष्टित चले आते हैं। उनके कानों में सर्प पड़े थे, कण्ठ में रुण्डों की माला थी शीश पर जटा थी और उनपर कदम्ब वृक्ष और तमाल वृक्ष के फूल पड़े हुये थे। उनको प्रथम मैंने मनसे देखा; मनहीं से मन्दार वृक्ष के पुष्प लेकर अर्घ्य पाद्य किया; मनहीं से प्रणाम किया और मनहीं से प्रदक्षिणा कर अपने आसन से उठ खड़ा हुआ फिर अपने शिष्य को जगा अर्घ्यपाद्य लेकर चला और त्रिनेत्र शिवजी को पुष्पअञ्जली दे और प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया; तब चन्द्रधारी ने मुझको कृपादृष्टि से देखा और सुन्दर मधुरवाणी से कहा; हे ब्राह्मण! अर्घ्य पाद्य ले आवो हम तेरे आश्रम में अतिथि आये हैं। हे निष्पाप! तुझको कल्याण तो है? तू मुझको महाशान्तरूप भासता है और महासुन्दर उज्ज्वल तप की लक्ष्मी से तू शोभित है। चलो हम तुम्हारे आश्रम को चलें। हे रामजी! फूलों से आच्छादित स्थान में सदा-

शिव बैठे थे सो ऐसे कहकर उठ खड़े हुये और अपने गणों सहित मेरी कुटी में आये। वहां मैंने पुष्प और अर्घ्य से उनके चरणों की पूजा करके फिर हाथों की पूजा की और इसीप्रकार चरणों से लेकर शीश पर्यन्त सब अङ्गों की पूजा की। फिर गौरी भगवती का पूजनकरके उनकी सखियों और शिवके गणों को पूजा। हे रामजी! इसप्रकार भक्तिपूर्वक जब मैं पार्वती परमेश्वरका पूजन कर चुका तब शशिकला को धारी शिवजी ने शीतल वाणी से मुझसे कहा कि, हे ब्राह्मण! नानाप्रकार की चिन्तनेवाली जो चित्तवृत्ति है सो तेरे स्वरूप में विश्रान्ति को प्राप्त हुई है और तेरी संवित् आत्मपद में स्थित हुई है। तुम्हारे शिष्य को कल्याण तो है और तुम्हारे पास जो हरिण बिचरते हैं वे भी सुखसे हैं? मन्दार वृक्ष तुमको पूजा के निमित्त फूल फल भली प्रकार देते हैं और गङ्गाजी तुमको भली प्रकार स्नान कराती हैं? देहके इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में तुम खेदवान् तो नहीं होते? इस पर्वत में कुबेर के अनुचर यक्ष और राक्षस जो रहते हैं वे तुमको दुःख तो नहीं देते और मेरे गण जो चक्षुनिशाचर हैं वे तो तुमको कष्ट नहीं देते? हे रघुनन्दन! इस प्रकार जब देवेश ने मुझसे वाञ्छित प्रश्न किये तब मैंने उनसे कहा; हे कल्याणरूप, महेश्वर! जो तुमको सदा स्मरण करते हैं उनको इसलोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो पाना कठिन हो और उनको भय भी किसी का नहीं। जिनका चित्त तुम्हारे स्मरण के आनन्द में सर्व ओर से पूर्ण हुआ है वे जगत् में दीन नहीं होते। वही देश और उन्हीं जनों के चरण और वही दिशा पर्वत वन्दना करने योग्य हैं जहां एकान्त बुद्धि बैठकर तुम्हारा स्मरण होता है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण पूर्वपुण्य-रूपी वृक्ष का फल है और वर्तमान कर्मों से सिंचता है। तुम मन के परम मित्र हो, तुम्हारा स्मरण सर्व आपदा का हरनेवाला है और सर्वसम्पदा-रूपी लता को बढ़ानेवाला बसन्तऋतु है। हे प्रभो! बड़ीमहिमा और बड़े से बड़े कर्मों के कारण का कारण तुम्हारा स्मरण है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण विवेकरूपी समुद्र में परमार्थरूपी रत्न है, ज्ञानरूपी तम का नाशकर्ता सूर्य का समूह है, ज्ञान अमृत का कलश धैर्यरूपी चांदनीका चन्द्रमा और मोक्ष

का द्वार है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण अपूर्वरूपी उत्तम दीपक है और चित्तका मण्डप जो संसार है उस सब को प्रकाशता है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण उदार चिन्तामणि की नाईं सर्व आपदा को निवृत्त करनेवाला और बड़े उत्तम पद को देनेवाला है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण एकक्षण भी चित्त में स्थित हो तो सर्व दुःख और भय नाश करता है और वरदायक है। उसके बल में भी तुम्हारे नाईं सुख से बसता हूं। बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब दिन का अन्त हुआ; सब सभा परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानों को गई और सूर्य की किरणों के साथ फिर सब अपने २ आसनपर आ बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रुद्रवशिष्ठसमागमो नाम सप्तविंशतितमस्सर्गः॥ २७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार कहा तब गौरी भगवती जगत् माता जैसे माता पुत्र से कहे मुझसे बोलीं; हे वशिष्ठजी! अरुन्धती जो पतिव्रताओं में मुख्य है वह कहां है? उसको ले आवो वह मेरी प्यारी सखी है उससे मैं कथा वार्ता करूंगी। हे रामजी! इस प्रकार जब मुझसे पार्वती ने कहा तब मैं शीघ्र ही जाकर अरुन्धती को ले आया और वे दोनों परस्पर कथा वार्ता करनेलगीं। मैंने विचारा कि, मुझको ईश्वर मिले हैं और पूछने का अवसर भी पाया है इससे सर्व ज्ञान के समुद्र से पूछकर संदेह दूर करूं। हे रामजी! ऐसे विचारकरके मैंने गौरीश से पूछा और जो कुछ चन्द्रकलाधारी ने मुझसे कहाहै वह तुझसे कहताहूं। मैंने पूछा हे भगवन्! भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनोंकालके ईश्वर और सबकारणों के कारण तुम्हारे प्रसाद से मैं कुछ पूछने को समर्थ हुआ हूं। हे महादेव! जो कुछ मैं पूछताहूं उसे प्रसन्नबुद्धि तत्त्वसे उद्वेगको त्यागकर शीघ्रही कहो। हे सर्व पापोंके नाश करने और सर्व कल्याण के वृद्ध करनेवाले! देव अर्चन का विधान मुझसे कहो। ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! जो उत्तम देव अर्चन है और जिसके किये से संसारसमुद्र से तरजाइये सो सुनो। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! पुण्डरीकाक्ष जो विष्णु हैं सो देव नहीं और त्रिलोचन जो शिव

हैं सो भी देव नहीं; कमल से उपजा ब्रह्मा है सोभी देव नहीं और सहस्र नेत्र इन्द्रभी देव नहीं, न देव पवन है, न सूर्य है, न अग्नि है, न चन्द्रमा है, न ब्राह्मण हैं न क्षत्रिय हैं, न तुम हो, न मैं हूं, न देह है, न चित्त है और न कलनारूप है; अकृत्रिम, अनादि, अनन्त और संवित्‌रूप देव कहाता है। आकारादिक परिच्छिन्नरूपहैं सो वास्तवमें कुछ नहीं। एक अकृत्रिम, अनादि, अनन्त, चेतनरूप देव है सो देव शब्द से कहाता है और उसी का पूजन पूजन है। उस देव को जिससे यह सब हुआ है और जो सत्ता-शान्त-आत्मरूप है उसको सब ठौर में देखना यही उसका पूजन है पर जो उस संवित् तत्त्वों को नहीं जानते उनको आकार की अर्चना कही है। जैसे जो पुरुष योजनपर्यन्त नहीं चल सक्ता उसको एक कोस दो कोस का चलना भी भला है; तैसे ही जो पुरुष अकृत्रिम देव की पूजा नहीं करसक्ता उसको आकार का पूजना भी भला है। हे ब्राह्मण! जिस की भावना कोई करता है उसके फल को उसी अनुसार भोगता है। जो परिच्छिन्न की उपासना करता है उसको फलभी परिच्छिन्न प्राप्त होता है और जो अकृत्रिम, आनन्द, अनन्त देव की उपासना करता है उस को वही परमात्मरूपी फल प्राप्त होता है। हे साधो! अकृत्रिम फलको त्याग कर जो कृत्रिम को चाहते हैं वे ऐसे हैं जैसे कोई मन्दार वृक्ष के वन को त्याग कर कञ्ज के वन को प्राप्त हो। वह देव कैसा है, उसकी पूजा क्या है और क्योंकर होती है सो सुनो। बोध, साम्य और शम ये तीन फूल हैं। बोध सम्यक्‌ज्ञान का नाम है; अर्थात् आत्मतत्त्व को ज्यों का त्यों जाना; साम्य सबमें पूर्ण देखने को कहते हैं और शम का अर्थ यह है कि, चित्तको निवृत्त करना और आत्मतत्त्व से भिन्न कुछ न फुरना इन्हीं तीनों फूलों से शिव चिन्मात्र शुद्ध देव की पूजा होती है और आकार अर्चन से अर्चा नहीं होती आत्मसंवित् जो चिन्मात्र है उसको त्यागकर और जड़ की जो अर्चना करते हैं वे चिर पर्यन्त क्लेश के भागी होते हैं। हे ब्राह्मण! जो ज्ञान ज्ञेय पुरुष हैं वे आत्मध्यान से भिन्न पूजन अर्चन को बालक की क्रीड़ावत् मानते हैं। आत्मा भगवान् एक देव है सो ही शिव

है और परम कारणरूप है; उसका सर्वदा ही ज्ञान अर्चन से पूजन है और कोई पूजा नहीं है । चेतन, आकाश और अवयव स्वभाव एक आत्मदेव को जान पूज्यपूजक और पूजा त्रिपुटी से आत्मदेव की पूजा नहीं होती मैंने पूछा, हे भगवन्! चेतन आकाशमात्र आत्मा को जैसे जगत् और चेतन को जीव कहते हैं सो कहो । ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! चेतन आकाश प्रसिद्ध है जो सर्व प्रकृति से रहित है और जो महाकल्प में शेष रहता है वह आपही किंचनरूप होता है उस किंचन से यह जगत् होता है । जैसे स्वप्न में चिदात्मा ही सर्वगत जगत्‌रूप होकर भासता है तैसे ही जाग्रत् जगत् भी चिदाकाशरूप है । आदि सर्ग से लेकर इसकाल पर्यन्त आत्मा से भिन्न का अभाव है । जैसे स्वप्न में जो जगत् भासता है सो भी सब चिदाकाशरूप है भिन्न कल्पना कोई नहीं । चिन्मात्र ही पहाड़रूप हैं; चिन्मात्र ही जगत् है; चिन्मात्र ही आकाश है; चिन्मात्र ही सब जीव हैं; और चिन्मात्र ही सब भूत हैं; चिन्मात्र से भिन्न कुछ नहीं । सृष्टि के आदि से अन्त पर्यन्त जो कुछ द्वैत कल्पना भासती है सो भ्रममात्र है । जैसे स्वप्न में कोई किसी के अङ्ग काटे सो काटता तो नहीं निद्रा द्वेष से ऐसे भासता है; तैसेही यह जाग्रत् जगत्‌भी भ्रममात्र है । हे मुनीश्वर! आकाश, परमाकाश और ब्रह्माकाश तीनों एक ही के पर्याय हैं–जैसे स्वप्न में संकल्प के माया से अनुभव होता है सो सब चिदाकाश है; तैसेही यह जाग्रत् जगत् चिदाकाशरूप है और जैसे स्वप्नपुर आकाश से कुछ भिन्न नहीं होता, तैसे ही जाग्रत् स्वप्ना भी आत्मतत्त्व होकर भासता है आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं । हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्न में चिदाकाश ही घट पट आदिक होकर भासता है, तैसेही स्थित प्रलयादि जगत् चिदात्मा से कुछ भिन्न नहीं आत्मा ही ऐसे भासता है । जैसे शुद्ध संवित् मात्र से भिन्न स्वप्न में नगर नहीं पाया जाता तैसेही जाग्रत् में अनुभव से भिन्न कुछ नहीं पाते । हे मुनीश्वर! जगत् तीनोंकाल भाव अभावरूप पदार्थ भासता है सो, सब चिदाकाशरूप है–आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । हे मुनीश्वर! यह देव मैंने तुमको परमार्थ से कहा है । तुम में और सर्वभूत जाति जगत् में सर्वका जो देव

है सो चिदाकाश परमात्मा है—उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे संकल्पपुर में चिदाकाश ही शरीररूप हो भासता है उससे कुछ भिन्न नहीं बना तैसेही यह सब चिदाकाशरूप है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने जगत्परमात्मरूपवर्णनन्नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः॥ २८॥

ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! इस प्रकार यह सर्वविश्व केवल परमात्मारूप है। परमात्माकाश ब्रह्मही एक देव कहाता है; उसही का पूजन सारहै और उसही से सब फल प्राप्त होते हैं। वह देव सर्वज्ञ है और सब उसमें स्थित हैं। वह अकृत्रिम देव अज, परमानन्द और अखण्डरूप है; उसको साधन कर के पाना चाहिये जिससे परमसुख प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! तू जागा हुआहै इस कारण मैंने तुझसे इस प्रकार की देव अर्चना कही है पर जो असम्यक्दर्शी बालक हैं, जिनको निश्चयात्मक बुद्धि नहीं प्राप्त हुई उनको धूप, दीप, पुष्पकर्म आदिक अर्चना ही कही है और आकार कल्पित करके देव की मिथ्या कल्पना की है। हे मुनीश्वर! अपने संकल्प से जो देव बनाते हैं और उसको पुष्प, धूप, दीपादिक से पूजते हैं सो भावनामात्र है उससे उनको संकल्परचित फलकी प्राप्ति होती है यह बालक बुद्धि की अर्चना है। तुम सारिखे की यही पूजा है जो तुमसे सर्व आत्मभावना से कही है। हे मुनीश्वर! हमारे मत में तो और देव कोई नहीं; एक परमात्मा देवही तीनों भुवन में है। वही देव शिव है और सर्वपद से अतीत है। वह सर्वसंकल्पों से उल्लंघन वर्तता है और सर्वसंकल्पों का अधिष्ठान भी वही है। देश, काल और वस्तु के परिच्छेदसे वह रहित है और सर्व प्रकार शान्तरूप एक चिन्मात्र निर्मल स्वरूप है। वही देव कहाता है हे मुनीश्वर! जो संवित्सत्ता पञ्चभूतकलासे अतीत और सर्वभाव के भीतर स्थित है वही सबको सत्ता देनेवाला देव है और सब की सत्ता हरनेवाला भी वही है। हे ब्राह्मण! जो ब्रह्म सत्य—असत्य के मध्य और सत्य असत्य के पर कहाता है वही देव परमात्मा है। परम स्वतःसत्तास्वभावसे जो सबको प्राप्त हुआ है और महाचित्त कहाता है सो परमात्म देवसत्ता है जैसे सब वृक्षों की लता के

भीतर रस स्थित है तैसेही सत्तासमान रूप से परमचेतन आत्मा सर्व ओर स्थित है जो चेतनतत्त्व अरुन्धती का है और जो चेतनतत्त्व तुझ निष्पाप का और पार्वती का है वही चेतनतत्त्व मेरा है और वही चेतनतत्त्व त्रिलोकी मात्र का है सोई देव है और देव कोई नहीं। हाथ पांव संयुक्त जो देव कल्पते हैं वह चिन्मात्र सार नहीं;चिन्मात्रही सर्व जगत् का सारभूत है और वही अर्चना करने योग्य है,उससे सर्वफलोंकी प्राप्ति होती है वह देव कहीं दूर नहीं और किसी प्रकार किसी को प्राप्त होना भी कठिन नहीं। जो सबकी देह में स्थित और सबका आत्मा है सो दूर कैसे हो और कठिनता से कैसे प्राप्त हो। सब क्रिया वही करता है, भोजन, भरण और पोषण वही करता है, वही श्वास लेता है और सबका ज्ञाता भी वही है जो पुर्यष्टका में प्रतिबिम्बित होकर प्रकाशता है जैसे पर्वत पर जो चर अचर की चेष्टा होतीहै और चलते, बैठते और स्थित होते हैं सो सबका आधारभूत पर्वत है; तैसेही मन सहित षट्इन्द्रियों की चेष्टा आत्मा के आश्रय होती है। उसीकी संज्ञा व्यवहार के निमित्त तत्त्ववेत्ताओं ने देव कल्पी है। एकदेव, चिन्मात्र, सूक्ष्म, सर्वव्यापी, निरञ्जन, आत्मा, ब्रह्म इत्यादिक नाम ज्ञानवानों ने शास्त्रबुद्धि उपदेश व्यवहार के निमित्त रक्खे हैं। हे मुनीश्वर! जो कुछ विस्तारसहित जगत् भासता है सबका वह प्रकाशक है और सबसे रहित है, नित्य, शुद्ध और अद्वैतरूप है और सब जगत्में अनुस्यूत है। जैसे बसन्तऋतु में नाना प्रकार के फूल और वृक्ष भासते हैं पर सबमें एकही रस व्यापा रहे जो अनेक रूप हो भासता है; तैसेही एकही आत्मसत्ता अनेकरूप होकर भासती है। हे मुनीश्वर! जो कुछ जगत है सो सब आत्मा का चमत्कार है और आत्मतत्त्व में ही स्थित है; कहीं आकाश, कहीं जीव, कहीं चित्त और कहीं अहंकाररूप है; कहीं दिशारूप, कहीं द्रव्य, कहीं भाव विकार, कहीं तम, कहीं प्रकाश और कहीं सूर्य, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक स्थावर जङ्गमरूप होकर स्थित है। जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे होते हैं तैसेही एक परमात्मा देव में त्रिलोकी है। हे मुनीश्वर! देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक सब एकदेवमें बहते हैं। जैसे जल में तृण बहते हैं, तैसेही परमात्मा में

जीव कहते हैं वही चेतनतत्व चतुर्भुज होकर दैत्यों का नाश करता है जैसे जल मेघरूप होकर धूप को रोकता है—और वही चेतनतत्त्व त्रिनेत्र मस्तकपर चन्द्रधारे और बृषभपर आरूढ़ पार्वतीरूपी कमलिनीके मुखका भँवरा रुद्र होकर स्थित होता है। वही चेतना विष्णुरूपसत्ता है, जिसके नाभिकमल से ब्रह्मा त्रिलोकी वेदत्रयरूप कमलिनी की लता बड़ी होकर स्थित हुआ है। हे मुनीश्वर! इसप्रकार एकही चेतनतत्त्व अनेकरूप होकर स्थित हुआ है जैसे एकही रस अनेक रूप होकर स्थित होता है और जैसे एकही सुवर्ण अनेक भूषणरूप होकर स्थित होता है, तैसेही एकही चेतन अनेकरूप होके स्थित होता है। इससे सर्वदेह एक चेतनतत्त्व के हैं। जैसे एकवृक्ष के अनेक पत्र होते हैं तैसेही एकही चेतन के सर्व देह हैं। वही चेतन मस्तक पर चूड़ामणि धारनेवाले त्रिलोकपति इन्द्र होकर स्थित हुआ है। देवतारूप होकर वही स्थित हुआ है और दैत्यरूप होकर भी वही स्थित है और मरने और उपजने का रूप भी वही धारता है। जैसे एक समुद्र में तरङ्ग के समूह उपजते और मिट जाते हैं सो जल जलरूप ही है तैसेही उपजना और विनशना चेतन में होता है वह चेतनरूप परमात्मा एकही वस्तु है। हे मुनीश्वर! चेतनरूपी आदर्श में जगत्रूपी प्रतिबिम्ब होता है और अपनी रची हुई वस्तु को आपही ग्रहण करके अपने में धारता है। जैसे गर्भिणी स्त्री अपने गर्भ को धारती है तैसेही चेतनतत्त्व जगत् प्रतिबिम्ब को धारता है। हे मुनीश्वर! सर्वक्रिया उसी देव से सिद्ध होती हैं और सूर्यादिक प्रकाशरूपी उसी से प्रकाशते हैं और उसी से प्रफुल्लित होते हैं। जैसे नील और रक्तकमल सूर्य से प्रफुल्लित होते हैं तैसेही आत्मा से अन्धकार और प्रकाश दोनों सिद्ध होते हैं। हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी धूलि चेतनरूपी वायु से उड़ती है। जो कुछ जगत् के आरम्भ हैं उन सबको चेतनरूपी दीपक प्रकाश करता है। जैसे जल के सींचने से बेल प्रफुल्लित होती है और फूलफल उत्पन्न करती है, तैसेही चेतनसत्ता सब पदार्थों को प्रकट करती है और सब को सत्ता देकर सिद्ध करती है। हे मुनीश्वर! चेतनही से जड़ की सिद्धता और

चेतनही से जड़का अभाव होता है जैसे प्रकाश ही से अन्धकार सिद्ध होता है और प्रकाशही से अन्धकार का अभाव होता है तैसेही सबदेह चेतन से सिद्ध होते हैं और चेतनही से देहों का अभाव होता है। चेतन भी उसी से होता है और शिवजी भी उसी से होते हैं। हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो चेतन विना सिद्ध हो; जो कोई पदार्थ है सो आत्मा ही से सिद्ध होता है। हे मुनीश्वर! शरीररूपी सुन्दर वृक्ष बड़ी ऊंची डालों सहित है परन्तु चेतनरूपी मञ्जरी विना नहीं शोभता। जैसे रस विना वृक्ष नही शोभता तैसेही चेतन विना शरीर नहीं शोभता। बढ़ना, घटना आदिक जो विकार हैं वह एक आत्मा से सिद्ध होते हैं यह जगत् सब चेतनरूप है और चेतनमात्र ही अपने आप में स्थित है इतना कह वशिष्ठजी बोले। हे रामजी! जब इस प्रकार अमृतरूपी वाणी से त्रिनेत्र ने मुझ से कहा तब मैंने अमृतरूपी भली प्रकार वाणी से पूछा। हे देव! जब सर्व जगत् चेतन देव व्यापकरूप स्थित है और चेतनही बड़े विस्तार को प्राप्त भया है तब यह प्रथम चेतन था अब यह चेतनतासे रहित है इस कल्पना का सब लोकों में प्रत्यक्ष अनुभव कैसे होता है, ईश्वर बोले। हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! यह महाप्रश्न तैंने किया है उसका उत्तर सुन इस शरीर में दो चेतन स्थित हैं एक चैतन्योन्मुखत्वरूप है और दूसरा निर्विकल्प आत्मा। जो चेतन चैतन्योन्मुखत्व दृश्य से मिला हुआ है सो जीव संकल्प के फुरने से अन्य की नाईं होगया है पर वास्तव में और कुछ नहीं हुआ केवल दृश्य संकल्प के अनुभव को ग्रहण करने से जीवरूप हुआ है। जैसे स्त्री अपने शीलधर्म को त्याग कर दुराचारिणी होजाती है तो उसकी शीलता जाती रहती है परन्तु स्त्री का स्वरूप नहीं जाता तैसेही चैतन्योन्मुखत्व से अनुभवरूपी जीवरूप होजाता है परन्तु चेतन स्वरूप का त्याग नहीं करता। जैसे संकल्प के वश से पुरुष एक क्षण में और रूप होजाता है तैसेही चित्त सत्ता फुरने भाव से अन्यरूप हो जाती है। हे मुनीश्वर! आदि में चित्त स्पन्द चित्तकला में हुआ है, तब शब्द के चेतने से आकाश हुआ; फिर स्पर्श तन्मात्रा का चेतना हुआ

तब वायु प्रकट हुये; इसी प्रकार पांचों तन्मात्रा के फुरने से पञ्चतत्त्व हुये। फिर देश आदिक का विभाग हुआ उसमें जीव प्रतिबिम्बित हुआ; फिर निश्चय वृत्ति हुई उसका नाम बुद्धि हुआ; फिर अहंवृत्ति फुरी उसका नाम अहंकार हुआ; फिर संकल्प विकल्प वृत्ति फुरी उसका नाम मन हुआ; चिन्तनासे चित्त हुआ; फिर संसार की भावना हुई तब संसारका अनुभव हुआ और अभ्यास के वशसे संसार भासनेलगा जैसे विपर्ययभावना करके ब्राह्मण आपको चाण्डाल जाने; तैसेही भावना के विपर्यय होनेसे वही चेतन आपको जीव मानने लगा है; संकल्प की जड़ता से चेतनरूपी जीव को ग्रहण कर संकल्प में वर्तता है और अनन्त संकल्पों से जड़ता तीव्रता को प्राप्त होकर जड़भाव को ग्रहण कर देह भाव को प्राप्त होता है। जैसे जल दृढ़ जड़ता से बरफ़रूप होजाता है तैसेही चेतन जब अनन्त संकल्पों से जड़ देह भाव को प्राप्त होता है तब चित्त मन मोहित हुआ जड़ता का आश्रय करके संसार में जन्म लेता है और मोह को प्राप्त हुआ तृष्णा से पीड़ित होता और काम, क्रोध, संयुक्त भाव-अभाव में प्राप्त होता है। एवं अपनी अनन्तता को त्यागकर परिच्छिन्न व्यवहार में वर्तता है; दुःखदायक अग्नि से तप्त हुआ शून्यभाव को प्राप्त होता है और भेदभाव को ग्रहण करके महादीन होजाता है। हे मुनीश्वर! मोहरूपी गढ़े में जीवरूपी हाथी फँसा है और भाव अभाव से सदा डोलायमान होता है। जैसे जल में तृण भासता है तैसेही असाररूप संसार में विकार संयुक्त रागद्वेष से जीव तपता रहता है शान्तिको कदाचित् नहीं पाता और जैसे यूथ से बिछुरा मृग कष्टवान् होता है तैसेही आवरण भाव जन्म मरण से जीव कष्टवान् होताहै और अपने संकल्प से आपही भय पाता है। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पकर आपही भय पाता है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही भयभीत होता है और संकट पाता है; आशारूपी फांसी से बँधा हुआ कष्ट से कष्ट पाता है और कर्मों को करके तपायमान हुआ अनेक जन्म पाता है और भय में रहता है। बालक होता है तब महादीन और परवश होता है; यौवन

अवस्था में कामादिक के वश हुआ स्त्री में रत रहता है और वृद्ध अवस्था में चिन्ता से मग्न होता है। जब मृतक होता है तब कर्मों के वश फिर जन्मता है और गर्भ में दुःख पाता है और फिर बालक, यौवन, वृद्ध और मृतक अवस्था को पाता है। स्वरूप से गिरा हुआ इसी प्रकार भटकता है, कदाचित् स्थिर नहीं होता। हे मुनीश्वर! एक चित्तसत्ता स्पन्दभाव से अनेक भाव को प्राप्त होती है; कहीं दुःख से रुदन करती है, कहीं दुःख भोगती है; कहीं स्वर्ग में देवाङ्गना होती है, पाताल में नागिनी, असुरों में असुरी, राक्षसों में राक्षसी, वनकोट में बानरी; सिंहों में सिंही; किन्नरों में किन्नरी; हरिणों में हरिणी, विद्याधरों में विद्याधरी, गन्धर्वों में गन्धर्वी, देवताओं में देवी इत्यादिक जो रूप धारती है सो चैतन्योन्मुखत्व जीव-कला है। क्षीरसमुद्र में वह विष्णुरूप होकर स्थित होती है, ब्रह्मपुरी में ब्रह्मारूप होती है, पञ्चमुख होकर रुद्र होती है और स्वर्ग में इन्द्र होती है। तीक्ष्णकला से सूर्य दिन का कर्ता होती है और क्षण, दिन, मास, वर्ष करती है। चन्द्रमा होकर वही रात्रि करती और काल होकर नक्षत्र फेरती है। कहीं प्रकाश, कहीं तम, कहीं बीज, कहीं पाषाण, कहीं मन होती है और कहीं नदी होकर बहती है; कहीं फूल होकर फूलती है; कहीं भँवर होकर सुगन्ध लेती है, कहीं फल होकर दिखती है, कहीं वायु होकर चलती है, कहीं अग्नि होकर जलाती है, कहीं बरफ़ होती है और कहीं आकाश होकर दिखती है। हे मुनीश्वर! इसी प्रकार सर्वगत सर्वात्मा सर्वशक्तिता से एकहीरूप चित्तशक्ति आकाश से भी निर्मल है। जैसे चेतता है तैसेही होकर स्थित हुई है। जैसी जैसी भावना करती है शीघ्र ही तैसा रूप होजाती है परन्तु स्वरूप से भिन्न नहीं होती। जैसे समुद्र में फेन तरङ्ग होकर भासता है परन्तु जल से भिन्न नहीं—जलही जल है तैसेही चित्तशक्ति अनेकरूप धारती है परन्तु चेतन से भिन्न नहीं होती। चित्तशक्ति ही कहीं हंस, कहीं काक, कहीं शूकर, कहीं मक्खी, चिड़िया इत्यादिक रूप धारकर संसार में प्रवर्तती है जैसे जल में आया तृण भ्रमता है तैसेही भ्रमती है और अपने संकल्प से आपही भय पाती है

और जैसे गधा अपना शब्द सुन आपही दौड़ता है और भय पाता है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही भय पाता है। हे मुनीश्वर ! यह मैंने जीवशक्ति का आचार तुमसे कहा; इसी आचार को ग्रहण करके बुद्धि नीच पशुधर्मिणी हुई है और स्वरूप के प्रमाद से जैसा-जैसा संकल्प करती है तैसीही तैसी कर्मगति को प्राप्त हो शोकवान् होती है, अनन्त दुःख पाती है और अपनी चैत्यतासे ही मलिन होती है। जैसे तुषसे ढपा चावल बड़े संताप को प्राप्त होता है; फिर फिर बोया जाता है; फिर फिर उगता है और काटा जाता है; तैसे स्वरूप के आवरण से जीवकला दुर्भाग्य से जन्म मरण दुःखको प्राप्त होती है। जैसे भर्तार से रहित स्त्री शोकवान् होती है तैसेही जीवकला कष्ट पाती है। हे मुनीश्वर ! जड़ दृश्य और अनात्मरूप की प्रीति करने और निज स्वरूप के विस्मरण करने से आशारूपी फाँसी से बँधाहुआ चित्त, जीव को नीच योनि में प्राप्त करता है जैसे घटीयन्त्र कभी नीचे जाती है और कभी ऊर्ध्व को जाती है तैसेही जीव आशा के वश हुआ कभी पाताल और कभी आकाश को जाता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वशिष्ठेश्वरसंवादेचैतन्यो-
न्मुखत्वविचारोनामैकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ २९ ॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! स्वरूप के विस्मरण से जो इस प्रकार होता है कि, मैं हन्ता हूं, मैं दुःखी हूं; सो अनात्मा में अहं प्रतीति करके ही दुःख का अनुभव करता है। जैसे स्वप्न में पुरुष आपको पर्वत से गिरता देख के दुःखी होता है और आपको मृतक हुआ देखता तैसेही स्वरूप के प्रमाद से अनात्म में आत्म अभिमान करके आपको दुःखी देखता है। हे मुनीश्वर ! शुद्धचेतन तत्त्व में जो चित्तभाव हुआ है सो चित्तकला फुरने से जगत् का कारण हुआ है परन्तु वास्तव में स्वरूप से भिन्न नहीं। जैसे जैसे चित्तकला चेतती गई है तैसे ही जगत् होता गया है। वह चित्त का कारण रूप भी नहीं हुआ और जब कारण ही नहीं हुआ तब कार्य किसको कहिये ? हे मुनीश्वर ! न वह चित्त है, न चेतन है, न चेतनेवाली

है, न द्रष्टा है, न दृश्य है और न दर्शन है जैसे पत्थर में तेल नहीं होता न कारण है, न कर्म है और न कारण इन्द्रियां हैं, जैसे चन्द्रमा में श्यामता नहीं होती। न वह मन है और न मानने योग्य दृश्य वस्तु है—जैसे आकाश में अंकुर नहीं होता। न वह अहन्ता है, न तम है और न दृश्य है—जैसे शंख को श्यामता नहीं होती। हे मुनीश्वर! न वह नाना है, न अनाना है—जैसे अणु में सुमेरु नहीं होता। न वह शब्द है, न स्पर्श का अर्थ है—जैसे मरुस्थल में बेलि नहीं होती। न वस्तु है, न अवस्तु है—जैसे बरफ़ में उष्णता नहीं होती। न शून्य है, न अशून्य है, न जड़ है, न चेतन है—जैसे सूर्यमण्डल में अन्धकार नहीं होता। हे मुनीश्वर! शब्द और अर्थ इत्यादिक की कल्पना भी उसमें कुछ नहीं—जैसे अग्नि में शीतलता नहीं होती। वह तो केवल केवलीभाव अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व है स्वरूप से किसी को कुछ भी दुःख नहीं होता। हे मुनीश्वर! जगत् को असत् जानकर अभावना करना और आत्म को सत् जानकर भावना करना इस भावना से सर्व अनर्थ निवृत्त होजाते हैं पर यह और किसी से प्राप्त नहीं होता अपने आपही से प्राप्त होता है और अनादि ही सिद्ध है। जब उसकी ओर भावना होती है तब सब भ्रम मिट जाते हैं और जब अनात्मभावना होती है तब उसका पाना कठिन होता है। जो यत्न के साथ है सो यत्न विना नहीं पाया जाता; आत्मा निर्विकल्प, अद्वैत और सबसे अतीत है, उसे अभ्यास विना कैसे पाइये? आत्मतत्त्व परम, एक, स्वच्छ, तेज का भी प्रकाशक, सर्वगत, निर्मल, नित्य सदा उदित, शक्तिरूप, निर्विकार और निरञ्जन है। घट, पट, वट, वृक्ष, गादी, वानर, दैत्य, देवता, समुद्र, हाथी इत्यादिक स्थावर-जङ्गमरूप जो कुछ जगत् है सबका साक्षीरूप होकर आत्मतत्त्व स्थित है और दीपकवत् सबको प्रकाशता है। आप सर्व क्रिया से अतीत है पर उसी से सर्वकार्य सिद्ध होते हैं; सर्व क्रिया संयुक्त भासता है और सर्वविकल्प से रहित जड़वत् भी भासता है परन्तु परम चेतन है। आत्मतत्त्व सब चेतन का सार चेतन, निर्विकल्प और परमसूक्ष्म है और अपने आपमें किञ्चन हो भासता है। अपने ही प्रमाद से रूप,

अवलोक और नमस्कार त्रिपुटी भासती है; जब बोध होता है तब ज्यों का त्यों आत्मा भासता है। नित्य, शुद्ध, निर्मल और परमानन्दरूप के प्रमाद से चेतन चित्तभाव को प्राप्त होता है जैसे साधु भी दुर्जन के संग से असाधु होजाते हैं तैसे ही अनात्मा के संग से यह नीचता को प्राप्त होता है। जैसे सोना दूसरी धातु की मिलौनी से खोटा होजाता है और जब शोधाजाताहै तब शुद्धता को प्राप्त होताहै तैसेही अनात्म के संग से यह जीव दुःखी होताहै और जब अभ्यास और यत्न करके अपने शुद्धरूप को पाता है तब वही रूप होजाताहै। जैसे मुख के श्वास से दर्पण मलीन होजाता है तो उसमें मुख नहीं भासता पर जब मलिनता निवृत्त होती है तब शुद्ध होताहै और उसमें मुख स्पष्ट भासता है; तैसेही चित्त संवेदन के प्रमाद से फुरने के कारण जगत् भ्रम भासने लगता है और आत्मस्वरूप नहीं भासता। जब यह जगत् सत्ता फुरने सहित दूर होगी तब आत्मतत्त्व भासेगा और जगत् की असत्यता भासेगी। हे मुनीश्वर! जब शुद्ध संवित् में चेतनता का फुरना निवृत्त होताहै तब जीव अहंताभाव को प्राप्त होता है और अहंकार को प्राप्त होने से अविनाशीरूप को विनाशी जानता है। हे मुनीश्वर! स्वरूपसे कुछ भी उत्थान होता है तो उससे स्वरूप से गिरके कष्ट पाता है। जैसे पहाड़ से गिरा नीचे चला जाता है और चूर्ण होता है तैसेही जीव स्वरूप से उत्थान होता है और अनात्मा में अभिमान और अहंप्रतीति होती है तब अनेक दुःखों को प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! सर्वपदार्थों का सत्तारूप आत्मा है; उसके अज्ञानसे द्वैतत्वभाव को प्राप्त होता है जब उसका बोध हो तब द्वैतभाव निवृत्त होजावेगा वह आत्मा शुद्ध और चिन्मात्रस्वरूप है उसी की सत्ता से देह इन्द्रियादिक भी चेतन होते हैं और अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं। जैसे सूर्य के प्रकाश से सब जगत् का व्यवहार होता है और प्रकाश विना कोई व्यवहार नहीं होता, तैसे आत्मा की सत्तासे ही देह, इन्द्रियादिक का व्यवहार होता है और अपने २ विषय को ग्रहण करती है। हे मुनीश्वर! प्राणवायु के लिये जो नेत्रमें सुख श्यामता है वह अपने आपमें रूप को ग्रहण करती है; उसका बाहर के विषय से

संयोग होता है और उस रूप का जिसमें अनुभव होता है वह परम चेतन सत्ता है। त्वचा इन्द्रियाँ और स्पर्श का जब संयोग होता है तो इन जड़ों का जिससे अनुभव होता है वह साक्षीभूत परम चेतन सत्ताहै और नासिका इन्द्रिय का जब गन्ध तन्मात्रसे संयोग होता है तो उसके संयोग में जो अनुभवसत्ता है सो परमचेतन है। इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांचों विषयों को श्रोत्र, नेत्र, त्वचा, रसना, नासिका पांचों इन्द्रियों से मिलकर जाननेवाला साक्षीभूत परम चेतन आत्मतत्त्व है। वह सुख संवित् परम चेतन कहाता है और जो बहिर्मुख फुरकर दृश्य से मिला है वह मलीन चित्त कहाता है। जब वही मलीनरूप अपने शुद्धस्वरूपमें स्थित होताहै तब शुद्ध होताहै। हे मुनीश्वर! यह जगत् सब आत्मस्वरूपहै और शिला-घन की नाईं अद्वैत और सर्व विकारों से रहित है; न उदय होताहै और न अस्त होताहै संकल्प के वश से जीवभाव को प्राप्त होता है और संकल्प के निवृत्त हुये परमात्मारूप होजाता है। हे मुनीश्वर! आदि चित्तकला जीव-रूपी रथपर आरूढ़ हुई है; जीव अहंकाररूपी रथ पर आरूढ़हुआ है; अहंकार बुद्धिरूपी रथ पर आरूढ़ है; बुद्धि मनरूपी रथ पर आरूढ़ है; मन प्राणरूपी रथ पर चढ़ा है और प्राण इन्द्रियांरूपी रथ पर चढ़े हैं। इन्द्रियों का रथ देह है और देह का रथ पदार्थ है। जो कर्म इन्द्रियां करती हैं उसी के वश जरा-मरणरूपी संसार पिंजरें में भ्रमती हैं। इस प्रकार यह चक्र चलता है और उसमें प्रमाद करके जीव भटकता है। हे मुनीश्वर! यह चक्र आत्मा का आभास विरूप है। जैसे स्वप्नपुर में नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं सो वास्तव में कुछ नहीं हैं; तैसेही यह जगत् वास्तव में कुछ नहीं है और जैसे मृगतृष्णा की नदी भ्रम करके भासती है, तैसेही यह जगत् भ्रम से भासता है। हे मुनीश्वर! मनका रथ प्राण है; जब प्राणकला फुरनेसे रहित होती है तब मन भी स्थित हो जाताहै और मनके स्थितहुये मनका मनन भी शान्त हो जाता है। जब प्राणकला फुरती है तब मनका मनन भी फुरता है और जब प्राणकला स्थित होती है तब मनन निवृत्त हो जाता है। जैसे प्रकाश विना पदार्थ नहीं भासते और वायुके शान्तहुये धूर नहीं उड़ती तैसेही प्राण

के फुरने से रहित मन शान्त होता है। जैसे जहां पुष्प होते हैं वहां गन्ध भी होती है और जहां अग्नि है वहां उष्णता भी होती है; तैसेही जहां प्राण-स्पन्द होता है वहां मन भी होता है। हृदय में जो नाड़ी है उसमें प्राण स्वतः फुरते हैं और उसी से मनन होता है। संवित् जो स्वच्छरूप है सो जड़ अजड़ सर्वत्र भासती है और संवेदन प्राणकला में फुरती है। हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सर्वत्र अनुस्यूत है परन्तु जहां प्राणकला होती है वहां भासती है और जहां प्राणकला नहीं होती वहां नहीं भासती। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्व ठौर में होताहै परन्तु जहां उज्ज्वल स्थान, जल अथवा दर्पण होता है वहां प्रतिबिम्ब भासता है और ठौर नहीं भासता; तैसेही आत्मसत्ता सर्वत्र है परन्तु जहां प्राणकला पुर्यष्टका होती है वहां भासती है और ठौर नहीं भासती। जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब भासता है और शिला में नहीं भासता तैसेही पुर्यष्टका जो मनरूप है सो सर्वका कारणहै और अहंकार, बुद्धि, इन्द्रियां उसी के भेद हैं; जो आपही से कल्पित है; सर्व दृश्यजाल उसही से उदय होता है और कोई वस्तु नहीं। यह भली प्रकार अनुभव किया है। इससे मनही देहादिक को प्रवर्तता है और परम-तत्त्व वस्तु उसही से भासती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने मनप्राणोक्त-प्रतिपादनं नाम त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३० ॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता विना जीव कन्धवत् होता है और आत्मसत्ता से चेतन होकर चेष्टा करता है। जैसे चुम्बक पाषाण की सत्ता से जड़ लोहा चेष्टा करता है, तैसेही सर्वगत आत्मा की सत्ता से जीव फुरता है और आत्मसत्ता भी जीवकला में भासता है और ठौर नहीं भासता। जैसे मुख का प्रतिबिम्ब दर्पण में भासता है और ठौर नहीं भासता, तैसेही परमात्मा सर्वगत और सर्वशक्त भी है परन्तु जीवकला ही में है। हे मुनी-श्वर! शुद्ध वास्तव स्वरूप से जो इस जीवकला का उत्थान हुआ है और दृश्य की ओर इससे चित्तभाव को प्राप्त हुआ है। जैसे शूद्र की संगति करके ब्राह्मण भी आपको शूद्र मानने लगता है, तैसेही स्वरूप के प्रमाद

से जीवकला आपको चित्तदृश्यभाव जानने लगी है। अज्ञान से घेराहुआ जीव महादीनभाव को प्राप्त होता है; जड़ देह के अभ्यास से कष्ट पाता है और काम, क्रोध, वात, पित्तादिक से जलता है। जैसी जैसी भावना होती है तैसाही तैसा कर्म करता है और उन कर्मों की भावना से मिला हुआ भटकता है। जैसे रथ पर आरूढ़ होकर रथी चलता है तैसेही आत्मा मन और प्राण कर्म को दृढ़ करके चलता है। हे मुनीश्वर! चेतनही जड़ दृश्य को अङ्गीकार करके जीवत्वभाव को प्राप्त होता है और मन प्राणरूपी रथपर चढ़कर पदार्थ की भावना से नाना प्रकार के भेद को प्राप्त हुये की नाईं स्थित होता है। जैसे जल ही तरङ्गभावको प्राप्त होता है, तैसेही चेतन ही नाना प्रकार होकर स्थित होता है। निदान यह जीवकला आत्मा की सत्ता को पाकर वृत्ति में फुरनरूप होती है। जैसे सूर्यकी सत्ता को पाकर नेत्र रूप को ग्रहण करते हैं तैसेही परमात्मा की सत्ता पाकर जीव वृत्ति में फुरता है और परमात्मा चित्तत्वमें जो स्थित है उससे फुरणरूप जीता है। जैसे घरमें दीपक होताहै तब प्रकाश होताहै; दीपक विना प्रकाश नहीं होता। अपने स्वरूप को भुलाकर जीव दृश्य की ओर लगाहै इसकारण आधि व्याधि से दुःखी होताहै। जैसे जब कमल डोडी के साथ लगता है तब उस पर भ्रमरे आन स्थित होते हैं; तैसेही जब जीव दृश्यकी ओर लगताहै तब दुःख स्थित होते हैं और उनसे जीव दीन होजाताहै। जैसे जल तरङ्गभावको प्राप्त होता है-और अपनी क्रिया से आप बन्धायमान होता है। जैसे बालक अपनी परछाहीं को देखकर आपही अविचारसे भय पाताहै तैसेही अपने स्वरूप के प्रमादसे जीव आपही दुःख पाताहै और दीनताको प्राप्त होताहै। हे मुनीश्वर! चिद्शक्ति सर्वगत अपनी आप है। उसकी अभावना करके जीव दीनता को प्राप्त होताहै। जैसे सूर्य बादल से घिर जाता है तैसेही मूढ़ता से आत्मा का आवरण होता है पर जब प्राणों का अभ्यास करे तब जड़ता निवृत्त हो और अपना आप आत्मा स्मरण हो जिनकी वासना निर्मल हुई है पर हृदय से दूर नहीं हुई तो वह स्थिर हुई एकरूप होजाती है और वे जीव जीवन्मुक्त होकर चिरपर्यंत जीते हैं और हृदयकमल में प्राणों को

रोककर शान्ति को प्राप्त होते हैं। जब काष्ठ लोष्टवत् देह गिर पड़ती है तब पुर्यष्टका आकाश में लीन होजाती है। जैसे आकाश में पवन लीन होता है तैसेही उनका मन पुर्यष्टका वहां ही लीन होजाती है। हे मुनीश्वर! जिनकी वासना शुद्ध नहीं हुई उनकी पुर्यष्टका मृत्युकाल में आकाश में स्थित होती है और उसके अनन्तर फिर फुर आती है तब उस वासना के अनुसार स्वर्ग नरक को देखने लगता है। जब शरीर मन और प्राण से रहित होताहै तब शून्यरूप होजाता है। जैसे पुरुष घरको त्यागकर दूर जा रहता है तैसेही शरीरको त्यागकर मन और प्राण और ठौर जा रहते हैं और शरीर शून्य होजाता है। हे मुनीश्वर! चिद्सत्ता सर्वत्र है परन्तु जहां जीव-पुर्यष्टका होती है वहांही भासती है और चेतन का अनुभव होताहै और ठौर नहीं होता। हे मुनीश्वर! जब यह जीव शरीर को त्यागता है तब पञ्चतन्मात्रा को ग्रहण करके संग लेजाता है और जहां इसकी वासना होती है वहांही प्राप्त होताहै। प्रथम इसका अन्तवाहक शरीर होता है, फिर दृश्य के दृढ़ अभ्यास से स्थूलभाव को प्राप्त होजाता है और अन्तवाहकता विस्मरण होजाती है। जैसे स्वप्ने में भ्रमसे स्थूल आकार देखताहै; तैसेही मोह करके मरता है तब अपने साथ स्थूल आकार देखता है। फिर स्थूलदेह में अहं-प्रतीति करता है और उससे मिलकर क्रिया करता है तब असत्य को सत्य मानता है और सत्य को असत्य जानता है। इस प्रकार भ्रम को प्राप्त होता है। जब सर्वगत चिदंश से जीव मन होता है तब जगत्भाव को प्राप्त होता है। जब देह से पुर्यष्टका निकल जाती है तब आकाश में जा लीन होती है और देह फुरने से रहित होती है तब उसको मृतक कहते हैं और अपने स्वरूपशक्ति को विस्मरण करके जर्जरीभाव को प्राप्त होता है। जब जीवशक्ति हृदयकमल में मूर्च्छित होती है और प्राण रोंके जाते हैं तब यह मृतक होता है। एवम् फिर जन्म लेता है और फिर मर जाता है। हे मुनीश्वर! जैसे वृक्ष में पत्र लगते हैं और काल पाकर नष्ट हो जाते हैं और फिर नूतन लगते हैं; तैसेही यह जीव शरीर को धारता है और नष्ट होजाता है; फिर शरीर धारता है और वह भी नष्ट होजाता है। जो वृक्ष के पत्र की

नाईं उपजते और नष्ट होते हैं उनका शोक करना व्यर्थ है। हे मुनीश्वर! चेतनरूपी समुद्र में शरीररूपी अनेकतरङ्ग बुद्बुदे उपजते और नष्ट होते हैं उनका शोक करना व्यर्थ है। जैसे दर्पण में जो अनेक पदार्थ का प्रतिबिम्ब होता है सो दर्पण से भिन्न नहीं होता तैसेही चेतन में अनेक पदार्थ भासते हैं। वह चेतन निर्मल आकाश की नाईं विस्तीर्णरूप है, उसमें जो पदार्थ फुरते हैं वे अनन्यरूप हैं और विधि शरीर भी वही रूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देहपातविचारो नामैकत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३१॥

वशिष्ठजी बोले, हे अर्द्धचन्द्रधारी! जो चेतनतत्त्व परमात्मा पुरुष है वह अनन्त और एक रूप है उसको यह द्वैत कहां से प्राप्त हुआ? भूत और भविष्यकाल कहां से दृढ़ होरहे हैं? एक में अनेकता कहां से प्राप्त हुई है? बुद्धिमान् दुःख को कैसे निवृत्त करते हैं और वह कैसे निवृत्त होता है? ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! ब्रह्मचेतन सर्वशक्त है। जब वह एक ही अद्वैत होता है तब निर्मलता को प्राप्त होता है। एक के भाव से द्वैत कहाता है और द्वैत की अपेक्षा से एक कहाता है पर यह दोनों कल्पनामात्र हैं। जब चित्त फुरता है तब एक और दो की कल्पना होती है और चित्तस्पन्द के अभाव हुये दोनों की कल्पना मिट जाती है और कारण से जो कार्य भासता है सो भी एकरूप है। जैसे बीज से लेकर फल पर्यन्त वृक्ष का विस्तार है सो एक ही रूप है और बढ़ना घटना उसमें कल्पना होती है; तैसेही चेतन में चित्तकल्पना होती है तब जगत्‌रूप हो भासता है परन्तु उस काल में भी वही रूप है। हे मुनीश्वर! वृक्ष के समेत भी बीज एक वस्तुरूप है और कुछ नहीं हुआ परन्तु बीज फुरता है तब वृक्ष हो भासता है, तैसेही जब शुद्ध चेतन में चेतन कलना फुरती है तब जगत्‌रूप हो भासता है। हे मुनीश्वर! कारण-कार्य विकाररूप जगत् असम्यक्‌दृष्टि से भासता है। जैसे जल में तरङ्ग भासते हैं सो जल रूप है—जल से भिन्न नहीं, जैसे शशेके सींग असत् हैं और जल में द्वैततरङ्ग कलना असत् है—अज्ञान से भासती है; तैसेही आत्मा में अज्ञान से जगत् भासता है। जैसे

द्रवता से जलही तरङ्गरूप हो भासता है तैसेही फुरनेसे आत्मतत्त्व जगत्-रूप हो भासता है और द्वैत नहीं। चेतनरूपी बेल फैली है और उसमें पत्र, फूल और फल एकही रूप हैं। जैसे एक बेल अनेकरूप हो भासती है, तैसेही एकही चेतन जो अहं, त्वं, देश, काल आदिक विकार होकर भासता है सो वही रूप है। हे मुनीश्वर! जब सब ही चेतन है तब तेरे प्रश्न का अवसर कहां हो? देश, काल, क्रिया, नीति आदिक जो शक्ति-पदार्थ हैं सो एकही चिदात्मा है। जैसे जल में जब द्रवता होती है तब तरङ्गरूप हो भासता है और उसका नाम तरङ्ग होता है, तैसेही ब्रह्ममें जगत् फुरता है तब अहं, त्वं आदिक नाना प्रकार के नाम होते हैं पर वह ब्रह्म, शिव, परमात्मा, चेतनसत्ता, द्वैत, अद्वैत आदिक नामों से अतीत है; वाणी का विषय नहीं। ऐसा निर्विकल्प निर्विषय तत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है। यह जगत् जो कुछ भासता है सो भी वही चेतनतत्त्व है। जैसे बेल फूल और पत्र होकर फैलती है तैसेही चेतन सर्वरूप होकर फैलता है। हे मुनीश्वर! महाचेतन में जब किंचन होता है तब जीवरूप होकर स्थित होता है और फिर द्वैतकलना को देखता है। जैसे स्वप्न में अपना स्वरूप त्याग कर परिच्छिन्न वपु को धारण करता है और द्वैतरूप जगत् देखता है पर जब जागता है तब अपने अद्वैतरूप को देखता है परन्तु जागे बिना भी द्वैत कुछ नहीं हुआ; तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी कुछ है नहीं भ्रम से भासता है। जब यह जीव अपने वास्तवस्वरूप की ओर सावधान होता है तब उसके अभ्यास से वही रूप होजाता है। हे मुनीश्वर! इस जीव का आदि वपु अन्तवाहक है और संकल्प ही उसका रूप है; जब उसमें अहं भावना तीव्र होती है तब वही आधिभौतिक होकर भासता है। जब उसमें सत्यता दृढ़ होजाती है तो उसकी भावना से रागद्वेष से क्षोभायमान होता है। पर जब काकतालीयवत् अकस्मात् से हृदय में विचार उपजता है तब संकल्परूपी आवरण दूर होजाता है और अपने वास्तवस्वरूप को प्राप्त होता है। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पकर भय पाता है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही भय पाता है। हे मुनीश्वर! यह

जो कुछ जगत् भासता है सो सब संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प हृदय में दृढ़ होता है तैसाही भासने लगता है। प्रत्यक्ष देखो कि, जो पुरुष कुछ कार्य करता है तो कर्तृत्वभाव उसके हृदय में दृढ़ होता है और कहता है कि, यह कार्य मैं न करूं; जब यही संकल्प दृढ़ होता है तब उस कार्य से आपको अकर्ता जानता है; तैसेही दृश्य की भावना से जगत् सत्य दृढ़ होगया है। जब दृश्य का संकल्प निवृत्त होता है और आत्मभावना में लगता है तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है और आत्मा ही भासता है। हे मुनीश्वर! परमार्थ से द्वैत कुछ हैही नहीं सब संकल्परचना है। संकल्प से रचा जो दृश्य है सो संकल्पके अभाव से अभाव होजाताहै। जैसे मनोराज और गन्धर्व नगर मन से रचित होता है और जब संकल्प के अभाव हुये से अभाव होता है तब क्लेश कुछ नहीं रहता। हे मुनीश्वर! जगत् संकल्प की पुष्टता से जीव दुःख का भागी होता है। जैसे स्वप्ने में संकल्प करके जीव दुःखी होता है। इस संकल्पमात्र की इच्छा त्यागने में क्या कृपणता है? जैसे स्वप्ने में जो सुख भोगता है सो सुख भी कुछ वस्तु नहीं भ्रममात्र है तैसेही यह सुख भी भ्रममात्र है। हे मुनीश्वर! संकल्प विकल्प ने जीवको दीन किया है। जब संकल्प विकल्प को त्याग करता है तब चित्त अचित्त होजाता है और ऊंचेपद में विराजमान होता है। जिस पुरुष ने विवेकरूपी वायु से संकल्परूपी मेघ को दूर किया है वह परम निर्मलता को प्राप्त होता है। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही संकल्प विकल्परूपी मलसे रहित जीव उज्ज्वलभावको प्राप्त होता है। संकल्प के त्यागे से जो शेष रहता है सो सत्तामात्र परमानन्द तेरा स्वरूप है। हे मुनीश्वर! आत्मा सर्वशक्तिरूप है; जैसी भावना होती है तैसाही उसे अपनी भावना से देखता है इससे सब संकल्पमात्र है; भ्रमसे उदय हुआहै और संकल्प के लीन हुये सब लीन होजाता है। हे मुनीश्वर! संकल्परूपी लकड़ी और तृष्णारूपी घृतसे जन्मरूपी अग्निको यह जीव बढ़ाता है और फिर उससे अन्त कदाचित् नहीं होता। जब असंकल्परूपी वायु और जल में इसका अभाव करे तब

शांत होजाता है! जैसे दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही जन्मरूपी अग्नि का अभाव होजाता है और संकल्परूपी वायु से तृणकी नाईं भ्रमता है। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी कंजकी बेलको जीव संकल्परूपी जल से सींचता है; जब असंकल्परूपी शोषता और विचाररूपी खड्गसे काटे तब उसका अभाव होताहै। जो अभावमात्र है सो आभास के क्षय हुये अभाव होजाता है। जैसे गन्धर्वनगर होताहै तैसेही यह जगत् असम्यक्ज्ञान से भासता है और सम्यक्ज्ञान से लीन होजाता है। जैसे कोई राजा स्वप्ने में अपने को रङ्क देखे और पूर्वका स्वरूप विस्मरण करके दीनता को प्राप्त हो पर जब पूर्वका स्वरूप स्मरण आवे तब आपको राजा जाने और दुःख मिट जावे; तैसेही जीवको जब अपने पूर्वका वास्तव स्वरूप विस्मरण होजाता है तब आपको परिच्छिन्न दीन और दुःखी जानता है पर जब स्वरूप का ज्ञान होता है तब सब दुःख का अभाव होजाता है और जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही निर्मल होजाता है। जैसे वर्षाकाल के मेघ गये से आकाश निर्मल होता है तैसेही अज्ञानरूपी मलसे रहित जीव निर्मल होकर शुद्धपद को प्राप्त होता है। जो ऐसी युक्ति से भावना करता है कि मैं एक आत्मा और द्वैत से रहित हूं तो वही होता है और द्वैत का अभाव होजाता है और उत्तमपद ब्रह्मदेव पूज्य, पूजक और पूजा; किञ्चित् निष्किंचन की नाईं चित्त एकरूप होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवप्रतिपादनन्नाम द्वात्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३२॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह देव निरन्तर स्थित है; द्वैत और एक पदसे रहित है और द्वैत और एक संयुक्त भी वही है। संकल्प से मिलकर चेतनरूप संसार को प्राप्त हुआहै और जो संकल्प मल से रहित है वह संसार से रहित है। जब ऐसे जानता है कि, 'मैं हूं' इसी संकल्प से बन्धवान् होता है और जब इसके भावसे मुक्त होता है तब सुख दुःख का अभाव होजाता है और शुद्ध निरञ्जन एकसत्ता सर्वात्मा आकाशवत्

होता है। इसीका नाम मुक्ति है। आकाशवत् व्यापक ब्रह्म होता है। वशिष्ठजी बोले, हे प्रभो! जब मन में मन क्षीण होताहै और इन्द्रियां मन में लीन होती हैं वह द्वितीय और तृतीयपद किसकी नाईं शेष रहता है? जो महासत्ता आत्मसत्ता सर्वका लीन करताहै सो किस की नाईं है? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जब मन से मनको जिसके अंग इन्द्रियां हैं विचार करके छेदता है अथवा उपासना करके आत्मबोध प्राप्त होता है तब द्वैत एक की कल्पना नष्ट होजाती है और जगज्जाल की सत्यता नष्ट होजाती है उसके पीछे जो शेष रहता है सो आत्मतत्त्व प्रकाशता है। जैसे भूने बीज से अंकुर नहीं उपजता तैसेही जब मन उपशम होताहै तब उसमें जगत् सत्ता का अभाव होजाता है और चेतनसत्ता चित्तसत्ता को भक्षण कर लेती है। जब मनरूपी मेघ की सत्ता नष्ट होती है तब शरत्काल के आकाशवत् निर्मल आत्मसत्ता भासती है। जब चित्त की चपलता मिट जाती है तब परम निर्मल पावन चिन्मात्रतत्त्व प्राप्त होता है; एकद्वैत-और भाव-अभावरूपी संसारकल्पना मिट जाती है और सम सत्तारूप तत्त्व जो सर्वव्यापक और संसारसमुद्र से पार करनेवाला प्राप्त होता है। तब सुषुप्त की नाईं निर्भय बोध होजाता है और शान्तिरूप आत्मा को पाकर शान्तरूप होजाता है। हे मुनीश्वर! मनकी क्षीणता का यह प्रथमपद तुमसे कहा है अब द्वितीयपद सुनो। जब चित्तशक्ति मनके मनन से मुक्त होती है तब चन्द्रमा के प्रकाशवत् शीतल होजाता है; आकाशवत् विस्तृतरूप अपना आप भासता है और घन सुषुप्तरूप होजाता है। जैसे पत्थर की शिला पोल से रहित होती है तैसेही वह दृश्य से रहित घन सुषुप्त उसका रूप होता है और नमक के सदृश रसमय ब्रह्म हो जाता है। जैसे आकाश में शब्द लीन होजाता है तैसेही वह चित्त आत्मा में लीन होजाता है और जैसे वायु चलने से रहित अचल होता है तैसेही चित्त अचल होजाता है। जैसे गन्ध पुष्प में स्थित होती है तैसेही चित्तवृत्ति आत्मतत्त्व में विश्राम को पाती है। वह आत्मसत्ता न जड़ है, न चेतन है; सर्व कल्पना से रहित अचैत्य चिन्मात्र अंकुररूप सब

सत्ताओं को धारण करनेवाली और देश काल के परिच्छेद से रहित है। जिसको वह प्राप्त होती है उसको तुरीयापद भी कहते हैं। वह सर्वदुःख कलङ्क से रहित पद है। उस सत्ता को पाकर साक्षी की नाईं स्थित होता और सर्वत्र, सर्वदा सम स्थित होता है। सर्वप्रकाश वही है और शान्ति· रूप है। उस आत्मसत्ता का जिसको आत्मतत्त्व से अनुभव होता है उसको द्वितीयपद प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! यह द्वितीयपद भी तुमसे कहा अब तृतीयपद सुन। जब आत्मतत्त्व में वृत्ति का अत्यन्त परिणाम होता है तब ब्रह्म, आत्मा आदिक नामों की भी निवृत्ति होजाती है; भाव अभाव की कल्पना कोई नहीं फुरती और स्थान की नाईं अचल वृत्ति होकर परमशान्त और निष्कलङ्क सबसे उल्लंघित तुरीयातीतपद को प्राप्त होता है। जो सबका अन्त और सबका आधाररूप एक, अद्वैत, नित्य, चिन्मा-त्रतत्त्व है और तुरीया से भी आगे है जिसमें वाणी की गति नहीं। हे मुनीश्वर! सर्वकल्पना से रहित अतीतपद जो मैंने तुमसे कहा है उसमें स्थित हो। वही सनातन देव है और विश्व भी वही रूप है। वही तत्त्व संवेदन के वश से ऐसा रूप होकर भासता है पर वास्तव में न कुछ प्रवृत्त है और न कुछ निवृत्त है; आकाशरूप समसत्ता अद्वैततत्त्व अपने आप में स्थित और आकाशवत् निर्मल है और उसमें द्वैतभ्रम का अभाव है। एक चिद्घनसत्ता पाषाणवत् अपने आप में स्थित है उसमें और जगत् में रञ्चक भी भेद नहीं। जैसे जल और तरङ्ग में कुछ भेद नहीं होता तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। सम सत्यसत्ता शिव शान्तिरूप और सर्ववाणी के विलास से अतीत है इसकी चतुर्मात्रा है और तुरीया परमशान्त है। इतना कह वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! इस प्रकार जब ईश्वर ने कहा और परम शान्तिरूप आत्मतत्त्व का प्रसङ्ग वशिष्ठजी ने सुना तब दोनों की वृत्ति आत्मतत्त्व में स्थित होगई और तूष्णीं होगई मानों चित्र लिखे हैं—और एक मुहूर्त पर्यन्त चित्त की वृत्ति ऐसेही रही। फिर ईश्वर जागे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने परमेश्वरोपदेशो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३३॥

वाल्मीकिजी बोले कि एकमुहूर्त उपरान्त सदाशिवजी ने तीनों नेत्र खोले तो जैसे पृथ्वीरूपी डब्बे से सूर्य निकले तैसे ही उनके नेत्र निकले और जैसे द्वादशसूर्य का प्रकाश इकट्ठा हो तैसे ही उनका प्रकाश हुआ। उन्होंने देखा कि वशिष्ठजी के नेत्र मुँदे हुये हैं, तब कहा कि,हे मुनीश्वर! जागो अब नेत्र क्यों मूँदे हो? जो कुछ देखना था सो तो तुमने देखा अब समाधि लगाने का श्रम किस निमित्त करते हो? तुम सरीखे तत्त्ववेत्ताओं को किसी में हेयोपादेय नहीं होता। तुम जैसे बुद्धिमान् हो तैसे ही आत्मदर्शी भी हो। जो कुछ पानेयोग्य था सो तुमने पाया है और जानने योग्य जाना है। बालकों के बोध के निमित्त जो तुमने मुझसे पूछा था सो मैंने कहा है अब तुम को तूष्णी रहने से क्या प्रयोजन है? हे रामजी! इस प्रकार कहकर सदाशिव ने मेरे भीतर प्रवेश करके चित्त की वृत्ति से जगाया और जब मैं जागा तब फिर ईश्वर ने कहा, हे वशिष्ठजी! इस शरीर की क्रिया का कारण प्राणस्पन्द है। प्राणों से ही शरीर की चेष्टा होती है और उसमें आत्मा उदासीन की नाईं स्थित है वह न कुछ करता है, न भोगता है। जब जीव को अपने स्वरूप का प्रमाद होता है तब देह में अभिमान होता है और क्रिया करता और भोगता आपको मानता है इससे दुःख पाता है और इसलोक परलोक में भटकता है। जब आत्मविचार उपजता है तब आत्मा का अभ्यास होता है; देह अभिमान मिटजाता है और दुःख से मुक्त होता है। शरीर के नष्ट हुये आत्मा का नाश नहीं होता। शरीर चेतन होकर प्राणों से फुरता है; जब बीच से प्राण निकल जाते हैं तब शरीर मूक जड़रूप होजाता है। चलाने और पवित्र करनेवाली जो संवित्शक्ति है वह आकाश से भी सूक्ष्म है। वह शरीर के नाश हुये नाश नहीं होती और जो नाश नहीं होती तो नाश का भ्रम कैसेहो? हे मुनीश्वर! आत्मतत्त्व ब्रह्मसत्ता सर्वत्र है परन्तु वहीं भासती है जहां सात्त्विकगुण का अंश मन होता है और प्राण होते हैं। मन और प्राणोंसहित देह में भासती है। जैसे निर्मलदर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब भासता है और आदर्श मलीन होता है तब

मुख विद्यमान भी होता है परन्तु नहीं भासता है; तैसेही मन और प्राण जब देह में होते हैं तब आत्मा भासता है और जब मन और प्राण निकल जाते हैं तब मलीन शरीर में आत्मसत्ता नहीं भासती। हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है परन्तु भासती नहीं जब उसका अभ्यास हो तब सर्वात्मरूप होकर भासती है। सर्वकलना से रहित शुद्ध शिवरूप सर्व की सत्तारूप वही है। विष्णु, शिव, ब्रह्मा; देवता, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्यादिक सब जगत् का आदिवपु वही है। वह एक देव शुद्धचेतनरूप सर्वदेवों का देव है, सब उसके नौकर हैं और सब उसके चित्त उल्लास हैं। हे मुनीश्वर! इस जगत् में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र जो बड़े हैं सो उसही तत्त्व से प्रकट हुये हैं। जैसे अग्नि से चिनगारे उपजते हैं और समुद्र से तरङ्ग प्रकट होते हैं तैसेही हम उससे प्रकट हुये हैं। यह अविद्या भी उसही से प्रकट हो अनेक शाखाओं को प्राप्त हुई है। देव, अदेव, वेद और वेद के अर्थ और जीव सब उस अविद्या की जटा हैं और अनन्तभाव को प्राप्त हुई हैं जो फिर फिर उपजती और मिटती है। देश काल, पृथिव्यादिक भी सब उसी से उत्पन्न हैं और सर्वसत्तारूप वही आत्मा देव है। हम जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं सो हमारा परमपिता आत्माही है; सर्वका मूलबीज वही देव है और सब उससे उपजे हैं। जैसे वृक्ष से पत्र उपजते हैं तैसेही सब उसी महादेव से उपजते हैं; सबका अनुभवकर्ता वही है और सबको सत्ता देनेवाला और सब प्रकाश का प्रकाश वही है। वह तत्त्ववेत्ताओं से पूजने योग्य है, सब में प्रत्यक्ष है और सर्वदा सर्वप्रकार सब में उदित आकार चेतन अनुभवरूप है। उसके आवाहन में मन्त्र, आसन आदिक सामग्री न चाहिये क्योंकि; वह सर्वदा अनुभवरूप से प्रत्यक्ष है और सर्वप्रकार सर्व ठौर में विद्यमान है। जहां २ उसके पाने का यत्न करिये वहां २ आगे ही विद्यमान है। वह शिवतत्त्व आदिही से सिद्ध है और मन वाणी में तीनोंरूप वही हो भासता है। सबकी आदि और पूज्य और नमस्कार करने योग्य है और जानने योग्य भी वही है। हे मुनीश्वर! ऐसा जो आत्मतत्त्व जरा, मृत्यु, शोक और भय के काटनेवाला है

उसको जीव आपसे आपही देखता है और उसके साक्षात्कार हुये चित्त भूने बीज की नाईं होजाता है फिर नहीं उगता । वह शिव तत्त्व जीव का भी जीव है और सर्वपद का पद वही है । अनुभवरूप आत्मा परमपद है; भिन्नदृष्टि का त्याग करो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवनिर्णयो नामचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३४ ॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! वह चिद्रूप तत्त्व सब के भीतर स्थित है । अनुभवमय शुद्ध देव ईश्वर और सब बीज का बीज वही है । सर्व सारों का सार; कर्मों का कर्म और धर्मों का धर्म चेतनधातु निर्मलरूप सब कारणों का कारण और आप अपना कारण है । वह सर्वभाव अभाव का प्रकाशक और सर्व चेतन का चेतन परम प्रकाशरूप है । भौतिक प्रकाश से रहित और अवलौकिक प्रकाशक सब जीवों का जीव वही है । चेतन घन निर्मल आत्मा अस्ति तन्मयरूप है और सत् असत् से रहित महासत्‌रूप है । सर्वसत्ता की सत्ता वही है । वही चिन्मात्रतत्त्व नानारूप हो रहा है । जैसे एकही आत्मसत्ता स्वप्ने में आकाश, कन्ध, पहाड़ आदिक होकर भासती है तैसेही नाना रङ्ग रञ्जना होकर वही भासता है । जैसे सूर्य की किरणों में मरुस्थल की नदी अनेक कोटि किरणों से अनेक तरङ्ग संयुक्त हो भासती है तैसेही यह जगत् उसमें भासता है । हे मुनीश्वर ! उसी आत्मतत्त्व का यह आभास प्रकाश है; उससे भिन्न कुछ नहीं । जैसे अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं—वही रूप है; तैसेही आत्मा से जगत् कुछ भिन्न नहीं—वही स्वरूप है । सुमेरु भी उसके आगे परमाणुरूपहै; संपूर्ण काल उसका एक निमेषरूप है; कल्प भी निमेष और उन्मेषवत् उदय और लय होते हैं और सप्त समुद्र संयुक्त पृथ्वी उसके रोम के अग्रवत् तुच्छ है । ऐसा वह देव है । वह संसार रचना को नहीं करता और कर्तृत्वभाव को प्राप्त होता है । बड़े कर्मों को करता भासता है तौ भी कुछ नहीं करता; द्रव्यरूप दृष्टि आता है तौ भी द्रव्य से रहित है निर्द्रव्य है तौभी द्रव्यवान् है; देहवान् नहीं तौभी देहवान् है और बड़ा

देहवान् है तौभी अदेह है। सर्वका सत्तारूपवही देव है। ठंढी, भोलि, घले, मतचुल, पिंढली, मांगले, बेल, विलिमिला, लोबलाग, युगुल, सभस इत्यादि वाक्य निरर्थक हैं; इनका अर्थ कुछ नहीं तो भी उस देव से सिद्ध होते हैं। ऐसा कुछ नहीं जो उस देव में असत् नहीं और ऐसा भी कुछ नहीं जो उस देव से सत् नहीं। हे मुनीश्वर! जिससे यह सर्व है; जो यह सर्व है और सर्व में नित्य है उस सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महेश्वरवर्णनन्नाम-
पञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३५॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! शब्द की सत्तारूप वही है; सर्व सत्तारूप रत्नों का डब्बा वही है और वही तत्त्व चमत्कार करके फुरता है। जैसे जलही तरङ्ग, फेन, बुद्बुदे आदिक आकार हो करके फुरता है तैसेही वह देव नाना प्रकार के आकार होकर फुरता है। वही फल और गुच्छेरूप होकर स्थित होता है और वही उनमें सुगन्धित होता है। घ्राण इन्द्रिय में स्थित होकर आपही उसे सूंघता है; आपही त्वचा इन्द्रिय होता है; आपही पवन होकर चलता है; आपही स्पर्श से ग्रहण करता है; आपही जलरूप होताहै, आपही वायु होकर सुखाता है; आपही श्रवणेन्द्रिय और आपही शब्द होकर ग्रहण करता है। इसी प्रकार जिह्वा, त्वचा, नासिका, कर्ण और नेत्र होकर आपही स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और शब्द को ग्रहण करता है। उसीने सब पदार्थ रचे हैं और उसीने नीति रची है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव और पञ्चम ईश्वर सदाशिव पर्यन्त वही देव इस प्रकार हुआ है और आपही साक्षीवत् स्थित होता है। जैसे दीपक के प्रकाश से मन्दिरकी सर्वक्रिया होती हैं तैसेही संसाररूपी मण्डप की सब क्रिया उसी साक्षी से होती हैं उसमें उसकी शक्ति नृत्य करती है और आप साक्षीरूप होकर देखता है वशिष्ठजी बोले कि, फिर मैंने पूछा, हे जगत्नाथ! शिव की शक्ति क्या है, कैसे स्थित है; देव को साक्षात् कैसे है और उसकी नृत्य कैसे होती है? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! आत्मतत्त्व स्वभाव से अचल और शान्तरूप है। शिव परमात्मा निर्मल चिन्मात्ररूप और निराकार है।

उसकी आसक्ति इच्छा और काल, नीति, मोह, ज्ञान, क्रियाकर्त्रादि शक्ति हैं। उन शक्तियों का अन्त नहीं। वह अनन्तरूप चिन्मात्र देव है। यह जो मैं तुमसे शक्ति कही है सो भी शिवरूप है भिन्न नहीं शिव और शक्ति एकरूप है और बहुत भासती है। जैसे पदार्थों में अर्थ शक्ति और आत्मा में साक्षी शक्ति कल्पित हैं तैसे ही कालशक्ति नृत्यक की नाईं ब्रह्माण्डरूपी नृत्यमण्डल में नृत्य करती हैं और क्रियाशक्ति भी कर्तृत्व से नृत्य करती है सो शक्ति कहाती है। जैसे आदिनीति हुई है ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त तैसेही स्थित है-अन्यथा नहीं होती। हे मुनीश्वर! यह सम्पूर्ण जगत् नृत्य करताहै। संसाररूपी नटिनी के प्रेरनेवाली नीति है और परमेश्वर परमात्मा साक्षीरूप है। वह सदा उदित प्रकाशरूप है और एकरस स्थित है नीति आदिक शक्ति भी उससे भिन्न नहीं वे वहीरूप हैं-इससे सर्वदेव ही जानो द्वैत नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्यानेनीति
नृत्यवर्णनन्नामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३६ ॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह एकदेव परमात्मा सन्तों से पूजने योग्य है। वह चिन्मात्र अनुभवआत्मा घटपटादिक सर्व में स्थित है और ब्रह्मा इन्द्रादिक देवता और जीव सबके भीतर बाहर भी वही स्थित है। उस सर्वात्मा शान्तरूप देव का पूजन दो प्रकार से होता है। उस इष्टदेव का पूजन ध्यान है और ध्यान ही पूजन है। जहां जहां मन जावे वहां वहां छलछिद्ररूप आत्मा को ध्यान करो। सबका प्रकाशक आत्माही है; चिद्रूप अनुभव से भीतर स्थित है और अहंता से सिद्ध है। वही सबका साररूप है और सबका आश्रयरूप है। उसका जो विराट्रूप है सो सुनो। बाहर अनन्तपारावार से रहित है; परमाकाश उसकी ग्रीवा है; अनन्त पाताल उसके चरणहैं; अनन्तदिशा उसकी भुजाहैं; सर्वप्रकाश उसके शस्त्र हैं; हृदयकोश कोण में स्थित है और ब्रह्माण्ड समूहों को परंपरा से प्रकाशता है। परमाकाश पार अपाररूप है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता और जीव उसकी रोमावली हैं, त्रिलोकी में जो देहरूपी यन्त्र हैं उनमें इच्छा

दिक शक्तिरूप सूत्र व्यापा है जिससे सब चेष्टा करते हैं। वह देव एकही है और अनन्त है। सत्तामात्र उसका स्वरूपहै, सब जगज्जाल उसका निवृत्त है, काल उसका द्वारपाल है और पर्वतादिक ब्रह्माण्ड जगत् उसकी देह के किसी कोणमें स्थितहै। उस देव की चिन्तना करो। उसके सहस्र चरण हैं और सहस्रही नेत्र, शीश और भुजा और भुजाओं के विभूषण हैं। सर्वत्र उसकी नासिका इन्द्रिय है; सर्वत्र रसना इन्द्रिय है, सर्वत्र भावना इन्द्रिय है और सर्व ओर मन है पर सर्व मननकला से अतीत है। सर्व ओर वही शिवरूप सर्वदा सर्वका कर्ता है; सर्व संकल्पों के अर्थका फलदायक है और सर्वभूत के भीतर स्थित और सर्व साधन का सिद्ध करता है। ऐसा देव सब में सब प्रकार और सर्वदा काल स्थित है। उसी देव की चिन्तना करो और उसीदेव के ध्यान में सावधान रहो। सदा उसही के आकार रहना उस देव का बाहरी पूजन है। अब भीतर का पूजन सुनो। हे ब्रह्म-वेत्ताओं में श्रेष्ठ! संवितमात्र जो देव है सो सदा अनुभव से प्रकाशता है। उसका पूजन दीपक करके नहीं होता और न धूप, पुष्प, दान, लेप और केशरि से होता है। अर्घ्य, पाद्यादिक जो पूजा की सामग्री हैं उनसे भी उस देव का पूजन नहीं होता। उसका पूजन तो क्लेश विना नित्य ही होता है। हे मुनीश्वर! एक अमृतरूपी जो बोध है उससे उस देव का सजातीय प्रतीत ध्यान करना उसका परम पूजन है। हे मुनीश्वर! शुद्ध चिन्मात्र देव अनुभवरूप है उसका सर्वदाकाल और सर्व प्रकार पूजनकरो; अर्थात् देखते, स्पर्श करते, सूंघते, सुनते, बोलते, देते, लेते, चलते, बैठते और उससे लेकर जो कुछ क्रिया हैं सब प्रत्यक्ष चेतन साक्षी में अर्पण करो और उसीके परायण हो। इस प्रकार आत्मदेव का पूजन करो। हे मुनीश्वर! आत्मदेव का ध्यान करनाही धूप दीप है और सर्वसामग्री पूजन की यही हैं। ध्यानही उस देव को प्रसन्न करता है और उससे परमानन्द प्राप्त होता है और किसी प्रकार से उस देवकी प्राप्ति नहीं होती। हे मुनीश्वर! मूढ़ भी इस प्रकार ध्यान से उस ईश्वर की पूजा करे तो त्रयोदश निमेष में जगत् उदानके फलको पाताहै और सत्निमेष के ध्यानसे प्रभुको पूजे तो अश्व

मेधयज्ञ के फलको पावे और केवल ध्यान से आत्माका एक घड़ी पर्यन्त पूजन करे तो राजसूययज्ञ किये के फलको पावे। जो दो प्रहर पर्यन्त ध्यान करे तो लक्ष राजसूययज्ञ के फल को पावे और जो दिन पर्यन्त ध्यान करे तो असंख्यफल पावे। हे मुनीश्वर! यह परम योग है; यही परम क्रिया है और यही परमप्रयोजनहै हे मुनीश्वर! दोनों पूजा मैंने तुमसे कही। जिसको ये परमपूजा प्राप्त होती हैं वह परमपद को प्राप्त होता है; उसको सब देवता नमस्कार करते हैं और सब करके वह पुरुष सुमेरुवत् पूजने योग्य होताहै।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने अन्तर्बाह्य पूजावर्णनन्नामसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३७॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! अब तुम अभ्यन्तरका पूजन सुनो जो सर्वत्र पवित्र करनेवालेको भी पवित्र करताहै और सब तम और अज्ञानका नाश करता है। वह आत्मपूजन मैं तुमसे कहताहूं जो सर्व प्रकार से सर्वदा काल में उस देव का पूजन होता है और व्यवधान कभी नहीं पड़ता; चलते, बैठते, जागते, सोते सर्व व्यवहार में नित्य ध्यान में रहताहै। हे मुनीश्वर! इस संसार में संवित्‌रूप चिन्मात्र नित्य स्थित है उसका पूजन करो। जो सर्वप्रत्यय का कर्ता और सदा अनुभवसे प्रकाशता है उसका आपसे आप पूजन करो। उठते, चलते, खाते, पीते जो कुछ बाहर के अर्थ त्याग, ग्रहण और भोगहैं सबको करतेभी उस देवकी पूजाकरो। हे मुनीश्वर! शरीरमें-शिवलिङ्ग चिह्न से रहित बोधरूप देव है, यथाप्राप्त में समरहना उस देव का पूजन है। यथाप्राप्ति के समभाव में स्नान करके शुद्ध होकर बोधरूप लिङ्ग का पूजन करो। जो कुछ प्राप्तहो उसमें रागद्वेष से रहित होना और सर्वदा साक्षीरूप अनुभव में स्थित रहना यही उसका पूजन है। हे मुनीश्वर! सूर्य के भुवन आकाश में यही सूर्य होकर प्रकाशता है और चन्द्रमा के भुवन में चन्द्रमा होकर स्थित होता है। इनसे आदि लेकर जो पदार्थ के समूह हैं जैसी २ भावना से उनमें फुरना हुआ है वही रूप होकर वह देव स्थित है। हे मुनीश्वर! जो नित्य, शुद्ध, बोधरूप और अद्वैत है उसको देखना और किसी में वृत्ति न लगाना यही उस देव का पूजन है। प्राण

अपानरूपी रथ पर आरूढ़ हुआ जो हृदय में स्थित है उसका ज्ञान ही पूजन है। वही सब कर्म कर्ता है; सब भोगों का भोक्ता और सर्वशब्द का स्मरण करनेवाला और भागवतरूप है और सबकी भावना करनेवाला परमप्रकाशरूप है। ऐसा जो संवित् तत्त्व है उसको सर्वज्ञ जानकर चिन्तना करना वही उसका पूजन है। वह देव सकल निष्कलदेह में स्थित है तौ भी आकाशवत् निर्मल है। वह जाता भी है और नहीं जाता। प्राणरूपी आलय में प्रकाशता है, हृदय, कण्ठ, तालु, जिह्वा, नासिका और पीठ में व्यापक है शब्द आदिक विषय को करता और मन को प्रेरता है। जैसे तिलमें तेल आश्रयभूत है तैसेही आत्मा सब में आश्रयभूत है। वह कलनारूपी कलङ्क से रहित है और कलनागण से संयुक्त भी है। सम्पूर्ण देहों में वही एकदेव व्याप रहाहै परन्तु प्रत्यक्ष हृदय में जो होता है सो निर्मल चिन्मात्र प्रकाशरूपहै और कलनारूपी कलङ्कसे रहित सदा प्रत्यक्ष है और अपने आपही से अनुभव होताहै। सर्वदा सर्व पदार्थों का प्रकाशक प्रत्यक्ष चेतन आत्मतत्त्व जो अपने आप में स्थित है सो अपने फुरने से शीघ्र ही द्वैत की नाईं होजाता है। हे मुनीश्वर! जो कुछ साकाररूप जगत् दृष्ट आता है सो सब विराट् आत्मा है। इससे आपको विराट् की भावनाकरो कि, हाथ, पांव, नख, केश यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरा देह है; मैं ही प्रकाश रूप एक देव हूं, नीति इच्छादिक मेरी शक्ति है और सब मेरी उपासना करते हैं। जैसे स्त्री श्रेष्ठ भर्तार की सेवा करती है तैसेही शक्ति मेरी उपासना करती है; मन मेरा द्वारपाल है जो त्रिलोकी का निवेदन करनेवाला है; चिन्तन मेरी आनेवाली प्रतिहारी है, नाना प्रकार के ज्ञान मेरे अङ्ग के भूषण हैं; कर्मइन्द्रियां मेरे द्वार हैं और ज्ञानइन्द्रियां मेरे गण हैं। ऐसा मैं एक अनन्त आत्मा अखण्डरूप भेदसे रहित अपने आप में स्थित सबमें परिपूर्ण हूं। हे मुनीश्वर! इसी भावना से जो एक देव की पूजा करता है वह परमात्मदेव को प्राप्त होताहै। दीनता आदिक उसके क्लेश सब नष्ट होजाते हैं, अनिष्ट की प्राप्ति में उसे शोक नहीं उपजता और इष्ट की प्राप्ति में हर्ष नहीं उपजता; न तोषवान् होता है और न कोपवान् होता है; विषय

की प्राप्ति से न तृप्त मानता है और न इनके वियोग से खेद मानता है; और न अप्राप्त की वाञ्छा करता है, न प्राप्त के त्याग की इच्छा करता है; सर्वपदार्थ में समभाव रहता है। ऐसा पुरुष उसदेव का परम उपासक है। ग्रहण त्याग से रहित सब में तुल्य रहना और भेदभाव को प्राप्त न होना उस देव का उत्तम अर्चन है। हे मुनीश्वर! चेतनतत्त्व देव मैंने तुमसे कहा है जो इसी देह में स्थित है। जो वस्तु प्राप्त हो उससे अर्चन करके उसीके आगे रखना; सबका साक्षी आत्मा को देखना और किसी से खेदवान् न होना और उसमें अहंप्रतीति रखकर भिन्नदृश्य की भावना न करना; यही उसदेव की अर्चना है। हे मुनीश्वर! जो कुछ प्राप्त हो उसमें यत्न विना तुल्य रहना जो भक्ष्य, लेह्य, चोष्य भोजन प्राप्त हो उसे देवके आगे रख के ग्रहण त्यागकी बुद्धि उसमें न करना, यह उस देव का पूजन है। सबपदार्थों की प्राप्ति में देव की पूजा करनेसे अनिष्ट भी इष्ट हो जाताहै। मृत्यु आवे तो देव की पूजा; जन्म आवे तब देव की पूजा, दरिद्र आवे तब देव की पूजा, राग प्राप्त हो तो देव की पूजा और नाना प्रकार की विचित्र चेष्टा करनी सो सब देव के आगे पुष्प हैं; रागद्वेष में सम रहना ही उस देव की पूजाहै। सन्तों के हृदय की रहनेवाली जो मैत्री है कि सम्पूर्ण विश्वका मित्र होना उससे भी उस देव का पूजन है और भोग, त्याग, राग से जो कुछ प्राप्त हो उससे उस देव का पूजन करो। जो नष्ट हुआ सो हुआ और जो प्राप्त हुआ सो हुआ दोनों में निर्विकार रहना इससे उस देव का अर्चन करो। ये भोग आपातरमणीयहैं,होते भी हैं और नष्ट भी होजाते हैं इनकी इच्छा न करना; सदा सन्तुष्टरहना जैसे आनि प्राप्तहो उसमें राग द्वेषसे रहित होना सो उस देव का अर्चन है। हे मुनीश्वर! जो कुछ प्रारब्ध से प्राप्त हो उससे आत्मा का अर्चन करो और इच्छा अनिच्छा को त्यागकर जो प्राप्त हो उससे उस देव का अर्चन करो। हे मुनीश्वर! ज्ञानवान् न किसी की इच्छा करता है और न त्याग करता है जो अनिच्छित प्राप्त हो उसको भोगता है। जैसे समुद्र में नदी प्राप्त होती हैं और वह उससे न कुछ हर्ष मानता है न शोक करता है तैसेही ज्ञानवान् इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें राग द्वेष से रहित यथाप्राप्त

को भोगता है सोही उसदेव का पूजन है, देश, काल, क्रिया, शुभ अथवा अशुभ प्राप्त हो उसमें संसरण विकार को प्राप्त न होना उस देवकी अर्चना है। यदि द्रव्य अनर्थरूप हो तौ भी समरस से मिलाहुआ अमृत होजाता है। जैसे षट्रसस्वाद शक्कर से मिलेहुये मधुर होजाते हैं तैसेही अनर्थरूपी रस समरस से मिलेहुये अमृत होजाते हैं, खेद नहीं करते और अनन्तरूप होजाते हैं। चन्द्रमा की नाईं सब भावना अमृतमय होजाती है। जैसे आकाश निर्लेप है तैसेही समताभाव करके चित्त राग द्वेषसे रहित निर्मल होजाता है। द्रष्टा को दृश्यसे मिला न देखना साक्षीरूप रहना ही देव की अर्चना है। जैसे पत्थर की शिला निस्पन्द होती है तैसेही विकल्प से रहित चित्त अचल होता है; सोही देव की अर्चनाहै। हे मुनीश्वर! भीतर से आकाशवत् असंग रहना और बाहर से प्रकृतिआचार में रहना, किसी का संग हृदय में स्पर्श न करना और सदा समभाव विज्ञानसे पूर्ण रहना ही उस देव की उपासना होती है। जिसके हृदयरूपी आकाश से अज्ञान रूपी मेघ नष्ट होगया है उसको स्वप्न में भी विकार नहीं प्राप्त होता और जिसके हृदयरूपी आकाश से अहंतारूपी कुहिरा शान्त होगया है वह शरत्कालके आकाशवत् उज्ज्वल होताहै। हे मुनीश्वर! जिसको समभाव प्राप्त हुआ है और उससे उसने देवको पाया है वह पुरुष ऐसा हो जाता है जैसा नूतन बालक राग द्वेषसे रहित होताहै। जीवरूपी चेतना को उल्लंघ कर परम चेतनतत्त्व को प्राप्त होताहै और सकल इच्छा और सुख दुःखभ्रम से मुक्तशरीर का नायक प्रतिष्ठित होता है सोही देव अर्चनाहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्र०देवार्चनाविधानन्नामाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ३८॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जैसी कामना हो और जो कुछ आरम्भ करो अथवा न करो सो अपने आपसे चिन्मात्र संवित्तत्व की अर्चना करो इससे वह देव प्रसन्न होता है और जब देव प्रसन्न हुआ तब प्रकट होता है। जब उसको पाया और स्थित हुआ तब राग द्वेषादिक शब्दों का अर्थ नहीं पाया जाता। जैसे अग्नि में बर्फ़ का कणका नहीं पाया जाता तैसेही फिर उसमें राग द्वेषादिक नहीं पाया जाता इससे उस देव

की अर्चना करनी योग्य है। यदि राज्य अथवा दरिद्र व सुख दुःख प्राप्त हो उसमें सम रहना ही देव अर्चना करनी है। हे मुनीश्वर! शुद्धचिन्मात्र से प्रमादी न होना इसी का नाम अर्चना है। जो कुछ घटपट आदिक जगत् भासता है सो सब आत्मरूप है उससे भिन्न कुछ नहीं। वह आत्मा शिव शान्तिरूप अनाभास है और एकही प्रकाशरूप है। सम्पूर्ण जगत् प्रतीतमात्र है और आत्मा से भिन्न कुछ द्वैतवस्तु आभास नहीं। सर्वात्मा रूप अद्वैततत्त्व जब भासता है तब उसमें प्राप्त हुआ जानता है कि, बड़ा आश्चर्य है; घटपटादिक सब वहीरूप है और तो कुछ नहीं। हे मुनीश्वर! यह सब सर्वात्मा अनन्तरूप शिवतत्त्व है, जिसको ऐसे निश्चय प्राप्त हुआ है उसने देव की पूजा जानी है। घटपट आदिक जो पदार्थ हैं और पूज्य-पूजा-पूजकभाव सो सब ब्रह्मरूप है; निर्मलदेव आत्मा में कुछ भेद भाव नहीं है। हे मुनीश्वर! आत्मदेव सर्वशक्त और अनन्तरूप है जगत् में उससे भिन्न कुछ नहीं। निर्मलप्रकाश संवित् रूप आत्मा स्थित है; हमको तो ईश्वरदेव से भिन्न कुछ नहीं भासता और सर्वत्र, सर्वप्रकार वही सर्वात्मा सम्पूर्ण दृष्ट आताहै। जिनको देश काल के परिच्छेद सहित ईश्वर भासता है वे हमारे उपदेश के पात्र नहीं; वे ज्ञानबन्ध नीच हैं! उनकी दृष्टि को त्यागकर मेरी दृष्टि का आश्रय ले तो स्वस्थ, वीतराग और निरामय हो और यथाप्रारब्ध जो कुछ सुख दुःख आन प्राप्त हो खेदसे रहित होकर उस देव का अर्चन करे तब शान्ति प्राप्त हो। हेमुनीश्वर! उस देव की सब प्रकार सर्वात्मा करके भावना करो-यही उसका पूजन है। वृत्तिका सदा अनुभवरूप में स्थित रहना और यथाप्राप्त में खेद से रहित बिचरना यही उस देव की अर्चना है। जैसे स्फटिक के मन्दिर में प्रतिबिम्ब भासते हैं सो और कुछ नहीं निष्कलङ्क स्फटिक ही हैं, तैसेही सर्व ओरसे रहित और जन्मादिक दुःख से रहित निष्कलङ्क आत्मा है उसकी प्राप्ति से तेरेमें जन्मादिक कलङ्क दुःख कुछ न रहेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवपूजाविचारो नामैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे देव ! शिव किसको कहते हैं और ब्रह्म, आत्म, परमात्म, तत्सत्, निष्किञ्चन, शून्य, विज्ञान इत्यादिक किसको कहते हैं और ये भेदसंज्ञा किस निमित्त हुई हैं कृपा करके कहो ? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! जब सबका अभाव होताहै तब अनादि अनन्त अनाभास सत्तामात्र शेष रहता है जो इन्द्रियों का विषय नहीं उसको निष्किञ्चन कहते हैं फिर मैंने पूछा, हे ईश्वर ! जो इन्द्रियां, बुद्धि आदिक का विषय नहीं उसको क्योंकर पासक्ते हैं ? ईश्वर बोले हे मुनीश्वर ! जो मुमुक्षु हैं और जिनको वेद के आश्रयसंयुक्त सात्त्विकीवृत्ति प्राप्त हुई है उनको सात्त्विकीरूप जो गुरुशास्त्रनाम्नी विद्या प्राप्त होती है उससे अविद्या का भाग नष्ट होजाता है और आत्मतत्त्व प्रकाश होआता है। जैसे साबुनसे धोबी वस्त्रका मैल उतारताहै तैसेही गुरु और शास्त्र अविद्या को दूर करते हैं। जब कुछकाल में अविद्या नष्ट होती है तब अपना आपही दिखता है। हे मुनीश्वर ! जब गुरु और शास्त्रों का मिल कर विचार प्राप्त होता है, तब स्वरूप की प्राप्ति होती है; द्वैतभ्रम मिट जाताहै और सर्वआत्मा ही प्रकाशता है और जब विचारद्वारा आत्मतत्त्व निश्चय हुआ कि, सर्व आत्मा ही है उससे कुछ भिन्न नहीं तो अविद्या जाती रहती है। हे मुनीश्वर ! आत्माकी प्राप्तिमें गुरु और शास्त्र प्रत्यक्ष कारण नहीं क्योंकि, जिनके क्षय हुयेसे वस्तु पाइये उनके विद्यमान हुये कैसे पाइये ? इन्द्रियों के समूह का नाम गुरु है और ब्रह्म सर्व इन्द्रियों से अतीत है; इनसे कैसे पाइये ? अकारण है परन्तु कारण भी हैं क्योंकि; गुरु और शास्त्र के क्रम से ज्ञान की सिद्धता होतीहै और गुरु और शास्त्र विना बोध की सिद्धता नहीं होती। आत्मा निर्देश और अदृश्य है तौभी गुरु और शास्त्रसे मिलता है और गुरु और शास्त्रसे भी मिलता नहीं अपने आपही से आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है। जैसे अन्धकार में पदार्थ हो और दीपक के प्रकाश से दीखे तो दीपक से नहीं पाया अपने आपसे पाया है तैसेही गुरु और शास्त्र भी है। यदि दीपक हो और नेत्र न हों तब कैसे पाइये और नेत्र हों और दीपक न हो तौ भी नहीं पाया जाता जब दोनों हों तब पदार्थ पायाजाता है; तैसे ही गुरु और शास्त्र भी हो और अपना

पुरुषार्थ और तीक्ष्णबुद्धि भी हो तब आत्मतत्त्व मिलता है अन्यथा नहीं पायाजाता। जब गुरु, शास्त्र और शिष्य की शुद्धबुद्धि तीनों इकट्ठे मिलते हैं तब संसार के सुख दुःख दूर होते हैं और आत्मपद की प्राप्ति होती है। जब गुरु और शास्त्र आवरण को दूर करदेते हैं तब आपसे आपही आत्मपद मिलता है। जैसे जब वायु बादल को दूर करती है तब नेत्रों से सूर्य दीखता है। अब नाम के भेद सुनो। जब बोध के वश से कर्म और बुद्धि इन्द्रियां क्षय होजाती हैं उसके पीछे जो शेष रहता है उसका नाम संवित्तत्त्व आत्मसत्ता आदिक है। जहां ये सम्पूर्ण नहीं और इनकी वृत्ति भी नहीं उसके पीछे जो सत्ता शेष रहती है सो आकाश से भी सूक्ष्म और निर्मल अनन्त परमशून्यरूप है—जहां शून्य का भी अभाव है। हे मुनीश्वर! जो शान्तरूप मुमुक्षु मनन कलना से संयुक्त हैं उनको जीवन्मुक्ति पद के बोध के निमित्त शास्त्र मोक्ष उपाय, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, लोकपाल, पण्डित, पुराण, वेद, शास्त्र और सिद्धान्त रचे हैं और उनमें शास्त्रों ने चेतन, ब्रह्म, शिव, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, सत्, चित्, आनन्द आदिक भिन्न २ अनेक संज्ञा कही हैं पर ज्ञानी को कुछ भेद नहीं। हे मुनीश्वर! ऐसा जो देव है उसका ज्ञानवान् इसप्रकार अर्चन करते हैं और जिसपद के हम आदिक टहलुये हैं उस परमपद को वे प्राप्त होते हैं। फिर मैंने पूछा, हे भगवन्! यह सब जगत् अविद्यमान है और विद्यमान की नाईं स्थित है सो कैसे हुआ है। सम सत् कहने को तुमहीं योग्य हो? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जो ब्रह्म आदिक नाम से कहाता है वह केवल शुद्ध संवित्मात्र है और आकाश से भी सूक्ष्म है। उसके आगे आकाश भी ऐसा स्थूल है जैसा अणु के आगे सुमेरु स्थूल होता है। उसमें जब वेदनाशक्ति आभास होकर फुरती है तब उसका नाम चेतन होता है। फिर जब अहन्ताभाव को प्राप्त हुआ—जैसे स्वप्न में पुरुष आपको हाथी देखने लगे तैसे आपको अहं माननेलगा, फिर देशकाल आकाश आदिक देखनेलगा तब चेतन कला जीव अवस्था को प्राप्त हुई और वासना करनेवाली हुई; जब जीवभाव हुआ तब बुद्धि निश्चयात्मक

होकर स्थित हुई और शब्द और क्रियाज्ञान संयुक्त हुई और जब एक से मिलकर शीघ्रही कल्पित हुये तब मन हुआ जो संकल्परूपी भाषा का बीज है। तब अन्तवाहक शरीर में आत्मस्वरूप होकर ब्रह्मसत्ता स्थित हुई। इस प्रकार यह उत्पन्न हुई है। फिर वायुसत्ता स्पन्द हुई जिससे स्पर्श सत्ता त्वचा प्रकट हुई; फिर तेजसत्ता हुई जिससे प्रकाशसत्ता हुई और प्रकाश से नेत्रसत्ता प्रकट हुई; फिर जलसत्ता हुई जिससे स्वाद-रससत्ता हुई और उससे जिह्वा प्रकट हुई; फिर गन्धसत्ता से भूमि, भूमि से घ्राणसत्ता और उससे पिण्डसत्ता प्रकट हुई। फिर देशसत्ता कालसत्ता और सर्वसत्ता हुई जिनको इकट्ठा करके आत्मसत्ता फुरी। जैसे बीज, पत्र, फूल फलादिक के आश्रय होता है तैसेही इस पुर्यष्टका को जानो। यही अन्त-वाहक देह है इसीके आश्रय ब्रह्मसत्ता हुई। वास्तव में कुछ उपजा नहीं केवल परमात्मसत्ता अपने आप में फुरती है। जैसे जल में जल फुरता है तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें फुरती है। हे मुनीश्वर! संवित् में जो संवेदन पृथक्रूप होकर फुरे उसे निस्पन्द करके जब स्वरूप को जाने तब वह नष्ट होजाती है। जैसे संकल्प का रचा नगर संकल्प के अभाव हुये अभाव होजाता है; तैसेही आत्माके ज्ञान से संवेदन का अभाव होजाता है। हे मुनीश्वर! संवेदन तबतक भासता है जबतक उसको जाना नहीं; जब जानता है तब संवेदन का अभाव होजाता है और संवित् में लीन होजाती है; भिन्नसत्ता इसकी कुछ नहीं रहती। हे मुनीश्वर! जो प्रथम अणु तन्मात्रा थी सो भावना के वश से स्थूल देह को प्राप्त हुई और स्थूलदेह होकर भासने लगी; आगे जैसे २ देशकाल पदार्थ की भावना होती गई तैसे २ भासने लगी और जैसे गन्धर्व नगर और स्वप्नपुर भासता है तैसेही भावना के वशसे ये पदार्थ भासने लगे हैं मैंने पूछा, हे भगवन्! गन्धर्वनगर और स्वप्नपुर के समान इसको कैसे कहते हो? यह जगत् तो प्रत्यक्ष दीखता है? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! संसार को दुःख वासना के वश से दीखता है कि, अविद्यमान् में स्वरूप के प्रमाद करके विद्यमान् बुद्धि हुई है और जगत् के पदार्थों का सत् जानकर जो

वासना फुरती है उससे दुःख होता है। हे मुनीश्वर! यह जगत् अविद्यमान है। जैसे मृगतृष्णा का जल असत्य होता है तैसेही यह जगत् असत्य है उसमें वासना, वासक और वासना करने योग्य तीनों वृथा हैं जैसे मृगतृष्णा का जल पान करके कोई तृप्त नहीं होता क्योंकि, जलही असत् है; तैसेही यह जगत् ही असत् है इसके पदार्थों की वासना करनी वृथा है। ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त सब जगत् मिथ्यारूप है। वासना, वासक और वासना करने योग्य पदार्थों के अभावहुये केवल आत्मतत्त्व रहता है और सबभ्रम शान्त होजाता है। हे मुनीश्वर! यह जगत्भ्रममात्र है—वास्तव में कुछ नहीं। जैसे बालक को अज्ञान से अपनी परछाहीं में वैताल भासता है और जब विचार करके देखे तब वैताल का अभाव हो जाताहै तैसेही अज्ञानसे यहजगत् भासता है और आत्मविचार से इसका अभाव होजाता है। जैसे मृगतृष्णा की नदी भासती है और आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही आत्मा में अज्ञान से देह भासता है। जिसकी बुद्धि देहादिक में स्थिर है वह हमारे उपदेश के योग्य नहीं है। जो विचारवान् है उसको उपदेश करना योग्य है और जो मूर्ख भ्रमी और असत्वादी सत्कर्म से रहित अनार्य है उसको ज्ञानवान् उपदेश न करे। जिनमें विचार, वैराग्य, कोमलता और शुभ आचार हों उनको उपदेश करना योग्यहै और जो इन गुणोंसेरहित हो उनको उपदेशकरना ऐसे होता है जैसे कोई महासुन्दर और सुवर्णवत् कांतिवाली कन्या को कल्पितपुरुष को विवाह देनेकी इच्छा करे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नामचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४०॥

वशिष्ठजी बोले, हे भगवन्! वह जीव जो आदि स्वर्ग से उत्पन्न हुआ और अपने साथ देहभ्रम देखने लगा उसके अनन्तर वह कैसे स्थित हुआ? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह जीव स्वप्न की नाईं सर्वगत चिद्घन आत्मा के आश्रय उपजकर अपने शरीर को देखताभया। हे मुनीश्वर! आदि जो जीव फुरकर प्रमाद को न प्राप्त हुआ और अपने

स्वरूपही में अहं प्रत्यय रहा इसकारण ईश्वर होकर स्थित हुआ। उसको यह निश्चय रहा कि मैं सनातन, नित्य, शुद्ध, परमानन्द और अव्यक्तरूप परमपुरुष हूं आत्मा की अपेक्षा से उसको जीव कहा है और सृष्टि जगत् की अपेक्षा करके उसको ईश्वर कहा। हे मुनीश्वर! वह जो आदि जीव है सो कभी विष्णुरूप होकर ब्रह्मा को नाभिकमल से उत्पन्न करता है किसी सृष्टि में प्रथम ब्रह्मा हुआ है और विष्णु और रुद्र उससे हुये हैं। किसी सृष्टि में प्रथम रुद्र हुआ उससे विष्णु और ब्रह्मा हुये। चेतन आकाश में जैसा२ संकल्प फुराहै तैसाही तैसा होकर स्थित हुआ है। आदिजीवने उपजकर जिस जिस प्रकार का संकल्प किया है तैसा२ होकर स्थित हुआ है वास्तव में सब असत्रूप है और अज्ञान भ्रम करके हुआ है। जैसे परछाहीं में वैताल होता है तैसेही अज्ञान करके सत्रूपहो भासता है आदि पुरुष से लेकर जो सृष्टि है सो परमाकाश के एक निमेष में हुई है और उन्मेष में लय होजाती है। एकनिमेष के प्रमादसे कल्प के समूह व्यतीत होजाते हैं और परमाणु परमाणुमें सृष्टि फुरती है उनमें कल्प और महा-कल्प भासते हैं। कई सृष्टि परस्पर दिखती हैं और कई अन्योन्य अदृश्य-रूप हैं। इसीप्रकार सृष्टि उसके स्पन्दकला में फुरी है और चमत्कार होता है और जब स्पन्दकला स्वरूप की ओर आती है तब लीन होजाती है। जैसे स्वप्न का पर्वत जागेसे लीन हो जाताहै तैसेही जाग्रत्की सृष्टि अफुर हुये लीन होजाती है। हे मुनीश्वर! जीवजीवप्रति अपनी२ सृष्टि हैं उन सृष्टियों को कोई देशकाल रोक नहीं सक्ता क्योंकि, वे अपने२ संकल्प में स्थित हैं और आत्मा का चमत्कार है। जैसा फुरना फुरताहै तैसा चमत्कार भासताहै। हे मुनीश्वर! न कुछ उपजा है, न कुछ नाश होता है; स्वतः चेतनतत्त्व अपने आपमें चमकता है। जैसे स्वप्नगर उपजकर नष्ट होजाता है और संकल्प का पहाड़ उपजकर मिटजाता है; तैसेही जगत् उपजकर नष्ट होजाताहै। जैसे स्वप्न और संकल्पके पहाड़को कोई रोक नहीं सक्ता तैसेही अपनी२ सृष्टि को देशकाल रोक नहीं सक्ता क्योंकि और ठौर में इनका सद्भाव नहीं। इससे यह जगत् अपने२ काल

में सत्‌रूप है, आत्मा में सद्भाव नहीं-संकल्परूप है। हे मुनीश्वर! जैसे आदितत्त्व से जीव ईश्वर फुरे हैं तैसेही कर्म फुरे हैं। रुद्र से लेकर वृक्ष पर्यन्त सब एक क्षण में उसी तत्त्वसे फुरआये हैं। सुमेरुआदिक भी अपने स्थित में रोकते हैं अन्य अणु को नहीं रोक सक्के क्योंकि, वहां हैही नहीं। इससे आत्मा में सृष्टि आभासरूप है। हे मुनीश्वर! इस प्रकार सब जगत् मायामात्र है और भावना से भासता है; जब आत्मा का अभ्यास होता है; तब भेदकल्पना मिटजाती है और केवल उपशमरूप शिवतत्त्व भासता है। हे मुनीश्वर! निमेष का जो समभाग है उसके अर्द्धभाग प्रमाद होने से नाना प्रकार का जगत् हो भासता है। सत् असत्‌रूप जगत मनरूपी विश्वकर्मा बनाता है। आत्मतत्त्व न दूर है, न निकट है, न नीचे है, न ऊंचे है, न पूर्व में है और न पश्चिम में है सत् असत् के मध्य अनुभवरूप सर्व का ज्ञाता है। उसमें प्रत्यक्षआदिक प्रमाण नहीं कर सक्के-जैसे जल में अग्नि नहीं निकलती। हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने पूछा था सो मैंने कहा उसमें चित्त के लगाने से तुम्हारा कल्याण होगा। इतना कह सदाशिव बोले; कि अब हम अपने वाञ्छित स्थान को जाते हैं; चलो पार्वती अपने स्थानको चलें। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार ईश्वर ने कहा तब मैंने अर्घ्य पाद्य से उनका पूजन किया और ईश्वर पार्वती और गणों को लेकर आकाशमार्ग को चले। जब तक मुझको दृष्टिआते रहे तबतक मैं उनकी ओर देखतारहा फिर अपने कुश के स्थानपर आन बैठा और जो कुछ ईश्वर ने उपदेश किया था वह मैं अपनी सुध बुध से विचारने लगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थविचारो नामैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ ईश्वरने मुझसे कहा सो मैं आप भी जानता था और तुमभी जानते हो। यह जगत् भी असत् है और देखनेवाला भी असत् है; उस मायारूप जगत् में मैं तुमसे सत् क्या कहूं और असत् क्या कहूं? जैसे जल में द्रवता होती है तैसेही आत्मा में जगत् है और

जैसे पवन में स्पन्द और आकाश में शून्यता होती है तैसेही आत्मा में जगत् है। हे रामजी! जो कुछ पतित प्रवाह से प्राप्त होता है उसीसे मैं देवअर्चन करता हूं। इस क्रम से मैं निर्वासनिक हूं और जगत् की क्रिया में भी निर्दुःख होकर चेष्टा करता हूं; व्यवहार करता दृष्टि आता हूं तौ भी सदा शान्तिरूपहूं और यथाप्राप्त आचाररूपी फूल से आत्मदेव की अर्चना करताहूं—खेद भेद मुझको कोई नहीं होता है। हे रामजी! विषय और इन्द्रियों का सम्बन्ध सब जीवों को तुल्य है पर जो ज्ञानवान् हैं वे सावधान रहते हैं और जो कुछ देखते, सुनते, बोलते, खाते, सूंघते और स्पर्श करते हैं वह सब आत्मतत्त्व में अर्चन करते हैं और आत्मा से भिन्न नहीं जानते। अज्ञानियों को कर्तृत्व—भोक्तृत्व का अभिमान होता है और उसमें वे दुःखी होते हैं। हे रामजी! तुमभी ऐसी दृष्टि को आश्रय करके संसार-रूपी वन में निःसंग होकर बिचरो तो तुमको कुछ खेद न होगा। जिसकी वृत्ति इस प्रकार समान होगई है उसको बड़ा कष्ट प्राप्त हो व धन बांधवों का वियोग हो तौ भी उसको खेद नहीं होता। यह जो दृष्टि मैंने तुमसे कही है जब उसका आश्रय करोगे तब तुमको कोई दुःख न होगा। हे रामजी! सुख, दुःख, धन और बान्धवों का वियोग ये सब पदार्थ अनित्य हैं ये आते भी हैं और जातेभी हैं इन को आगमापायी जानकर बिचरो। यह संसार विषमरूप है, एकरस कदाचित् नहीं रहता; इसको स्थित जानकर दुःखी न होना। हे रामजी! पदार्थ और काल जैसे जावे तैसे जावे और जैसे सुख दुःख आवे तैसे आवे ये सब आगमापायी पदार्थ हैं; आते भी हैं और जाते भी हैं। इष्टकी प्राप्ति और अनिष्टकी निवृत्तिमें हर्षवान् न होना और अनिष्टकी प्राप्ति और इष्ट के वियोग से खेदवान् न होना; जैसे आवे तैसे जावे, जैसे जावे तैसे आवे; जिसको आनाहै वह आवेगा और जिसको जानाहै वह जावेगा; ये सुख दुःख प्रवाहरूपहैं इनमें आस्था करके तपायमान न होना। हे रामजी! यह सब जगत् तुमही हो और तुमही जगतरूप हो और चिन्मात्र विस्तृत आकार भी तुमही हो; यदि सब तुमही हो तो हर्ष शोक किस निमित्त करतेहो? इसी दृष्टि का आश्रय करके जगत् में सुषुप्त होकर बिचरो

तो तुरीयातीत अवस्था को प्राप्त होगे जो सम प्रकाशरूप है। हे रामजी! जो कुछ मुझे तुम से कहना था सो कहा है आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। पीछे तुमने पूछाथा कि अनन्तरूप ब्रह्म में कलङ्क कैसे भासहुआ है? सो अब फिर प्रश्न करो कि, मैं उत्तर दूं। रामजी ने कहा, हे ब्रह्मन्! अब मुझको कुछ संशय नहीं रहा; मेरे सब संशय नष्ट होगये हैं और जो कुछ जानना था सो मैंने जानाहै। अब मैं परम अकृत्रिम तृप्तता को प्राप्त हुआहूं। हे मुनीश्वर! आत्मा में न मैल है, न द्वैत है और न एक आदि कोई कल्पना है। पहिले मुझको अज्ञानता थी तब मैंने पूछा था; अब तुम्हारे वचनों से मेरी अज्ञानता नष्ट हुई है इससे कुछ कलङ्क नहीं भासता। आत्मा में न जन्म है, न मरण है सर्व ब्रह्म ही है। हे मुनीश्वर। प्रश्न संशय से उपजता है सो संशय मेरा नष्ट होगया है। जैसे यन्त्री की पुतली हिलाने से रहित अचल होती है तैसेही मैं संशय से रहित अचल स्थित हूं और सर्व सारों का सार मुझको प्राप्त हुआ है। जैसे सुमेरु अचल होता है तैसेही मैं अचल हूं और कोई क्षोभ मुझको नहीं। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मुझको त्यागने योग्य हो और ऐसा भी कोई पदार्थ नहीं जो ग्रहण करने योग्य हो, न किसी पदार्थ की मुझको इच्छा है और न अनिच्छा है मैं शांतरूप स्थित हूं; न स्वर्ग की मुझको इच्छा है न नरक में द्वेष है; सर्व ब्रह्मरूप मुझको भासता है और मन्दराचल पर्वत की नाईं आत्मतत्त्व में स्थितहूं। हे मुनीश्वर! जिसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि होती है और कलनाकाल हृदय में स्थित होती है वह किसी को ग्रहण करता है; किसीको त्याग करताहै और दीनता को प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! यह संसार महासमुद्ररूप है; उसमें राग द्वेषरूपी कलोले हैं और शुभ अशुभरूपी मच्छ रहते हैं। ऐसे भयानक संसारसमुद्र से अब मैं आपके प्रसाद से तर गया हूं और सब सम्पदा के अन्त को प्राप्त होकर मेरे दुःख नष्ट होगये हैं। सबके सार को प्राप्त होकर मैं पूर्ण आत्मा हूं और अदीन पद और परम शान्त अभेदसत्ता को प्राप्त हुआ हूं। आशारूपी हाथी को मैंने सिंह बनकर मारा है अब मुझको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता। मेरे सब विकल्पों के जाल गलगये हैं, इच्छादिक

विकार नष्ट होगये हैं और दीनता जाती रही है। तीनों जगत् में मेरी जय है और मैं सदा उदितरूप हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रान्तिआगमनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो केवल देह इन्द्रियों से करता है और मन से नहीं करता वह जो कुछ करता है सो कुछ नहीं करता। जो कुछ इन्द्रियों से इष्ट प्राप्त होता है उससे क्षणमात्र सुख प्राप्त होता है; उस क्षण की प्रसन्नता में जो बन्धवान् होता है वह बालकवत् मूर्ख है। जो ज्ञानवान् है वह उसमें बन्धवान् नहीं होता। हे रामजी! वाञ्छाही इसको दुःखी करती है। जो सुन्दर विषयों की वाञ्छा करती है उसे जब यत्न से उनकी प्राप्ति होती है तो क्षणभर सुख होताहै और जब वियोग होताहै तब दुःख देतेहैं। इस कारण इनकी वाञ्छा त्यागना ही योग्य है। इनकी वाञ्छा तब होती है जब स्वरूपका अज्ञान होता है और देहादिकमें भाव होता है जब देहादिक में अहंभाव होता है तब अनेक अनर्थकी प्राप्ति होतीहै; इससे हे रामजी! ज्ञानरूपी पहाड़ पर चढ़रहना और अहन्तारूपी गढ़े में न गिरना। हे रामजी! आत्मज्ञानरूपी सुमेरु पर्वत पर चढ़कर फिर अहन्ता अभिमान करके गढ़े में गिरना बड़ी मूर्खताहै। जब दृश्यभाव को त्यागोगे तब अपने स्वभाव-सत्ताको प्राप्त होगे, जो सम और शान्तरूप है और जिससे विकल्पजाल सब मिटजावेगा, समुद्रवत् पूर्ण होगे और द्वैतरूप न फुरेगा। हे रामजी! जब हृदय में विषय को विष जाने तब मन भी निरस होजाता है। और चित्त निस्सङ्ग होता है। वास्तव में देखो तो सबमें सत्ता समानरूप ब्रह्म चिद्घन स्थित है पर द्वैतस्वरूप के प्रमाद से नहीं भासता। हे रामजी! आत्मा का अज्ञान ही बन्धनरूप है और आत्मा का बोध मुक्तरूप है; इससे बलकरके आपको आपही जगाओ तब इस बन्धन से मुक्तहोगे। हे रामजी! जिसमें विषय का स्वाद नहीं और जिसमें उनका अनुभव होता है वह तत्त्व आकाशवत् निर्मलसत्ता वासना से रहित है। वासना से रहित होकर जो पुरुष कुछ क्रिया करता है वह विकार को नहीं प्राप्त होता। यद्यपि अनेक

क्षोभ आनि प्राप्त हों तौभी उसको विकार कुछ नहीं होता। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ये तीनों आत्मरूप भासते हैं; जब ऐसे जाने तब किसी का भय नहीं रहता। चित्त के फुरने से जगत् उत्पन्न होता है और चित्तके अफुर हुये लीन होजाता है। जब वासना सहित प्राण उदय होते हैं तब जगत् उदय होता है और जब वासना सहित प्राण लीन होते हैं तब जगत् भी लीन होता है। अभ्यास करके वासना और प्राणों को स्थित करो। जब मूर्खता उदय होती है तब कर्म उदय होते हैं और मूर्खता के लीन हुये कर्म भी लीन होते हैं; इससे सत्संग और सत्शास्त्रों के विचार से मूर्खताको क्षय करो। जैसे वायुके संग से धूलि उड़के बादल आकार होती है तैसेही चित्त के फुरने से जगत् स्थित होता है। हे रामजी! जब चित्त फुरता है तब नानाप्रकार का जगत् फुर आता है और चित्त के अफुर हुये जगत् लीन होजाताहै। हे रामजी! वासना शान्त हो अथवा प्राणों का निरोधहो तब चित्त अचित्त होजाता है और जब चित्त अचित्त हुआ तब परमपद को प्राप्तहोताहै। हे रामजी! दृश्य और दर्शन सम्बन्ध के मध्य में जो परमात्मसुख है और जो एकान्तसुख है सो संवित् ब्रह्मरूप है; उसके साक्षात्कार हुये मन क्षय होता है। जहां चित्त नहीं उपजता सो चित्त से रहित अकृत्रिम सुख है। ऐसा सुख स्वर्ग में भी नहीं होता। जैसे मरुस्थल में वृक्ष नहीं होता तैसेही चित्त सहित विषय को सुख नहीं होते। चित्तके उपशममें जो सुखहै सो वाणी से कहा नहीं जाता; उसके समान और कोई सुख नहीं और उससे अतिशय सुख भी नहीं। और सुख नाश होजाता है पर आत्मसुख नाश नहीं होता—अविनाशी है और उपजने विनशनेसे रहित है। हे रामजी! अबोध से चित्त उदय होताहै और आत्मबोधसे शान्त होजाताहै। जैसे मोहसे बालकको वैताल दिखाई देता है और मोहके नष्टहुये नष्ट होजाताहै; तैसे ही अज्ञानसे चित्त उदयहोताहै और अज्ञान के नष्टहुये नष्ट होता है। यदि चित्त विद्यमान भी भासता है तब भी बोधसे निर्बीज होता है। जैसे पारस के साथ मिलकर तांबा सुवर्ण होता है तो आकार तो वही दृष्टि आता है परन्तु तांबे भाव का अभाव होजाताहै; तैसे ही अज्ञान से जगत् भासता है और ज्ञान से चित्त अचित्त

होजाताहै; जड़ जगत् नहीं भासता, ब्रह्मसत्ता होकर भासताहै और सत्पद को प्राप्त होता है परन्तु नामरूप तैसेही भासता है। हे रामजी! ज्ञानी का चित्तभी क्रिया करता दृष्टि आता है परन्तु चित्त अचित्त हो जाता है। जो अज्ञान करके भासता है सो ज्ञानकरके शून्य होजाता है। जो कुछ जगत् अबोध से भासता था सो बोध से शान्त हो जाता है फिर नहीं उपजता। वह चित्त शान्तपद को प्राप्त होताहै। कुछ काल तो वहभी तुरीया अवस्था में स्थित हुआ विचरता है फिर तुरीयातीत पद को प्राप्त होता है। अध, ऊर्ध्व, मध्य सर्व ब्रह्मही इस प्रकार अनेक होकर स्थित हुआ है। अनेक भ्रम करकेभी एकही है और सर्वात्मा ही है--चित्तादिक कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तसत्तासूचनन्नाम त्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम संक्षेप से एक अपूर्व और आश्चर्यरूप बोध का कारण ज्ञान सुनो। एक बेलफल है जिसका अनन्त योजन पर्यन्त विस्तार है और जिसे अनन्त युग व्यतीत हो गये हैं जर्जरीभाव को कदाचित् नहीं प्राप्त होता। वह अनादि है, उसमें अविनाशी रस है इससे कभी नाश नहीं होता और चन्द्रमा की नाईं सुन्दर है। सुमेरु आदिक जो बड़े पहाड़ हैं उनको महाप्रलय का पवन तृणों की नाईं उड़ाता है पर वह पवनभी उसको नहीं हिलासक्ता। हे रामजी! योजनों की अनन्त कोटनिकोट संख्याहै पर उसकी संख्या नहीं कीजाती। ऐसा वह बेलफलहै और बहुत बड़ा है। जैसे सुमेरु के निकट राई का दाना सूक्ष्म और तुच्छ भासताहै तैसेही उस बेलफलके आगे ब्रह्माण्ड सूक्ष्म और तुच्छ भासताहै। वह बेलरस से पूर्ण है, कभी गिरता नहीं और पुरातन है। उसका आदि, अन्त और मध्य; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिक भी नहीं जानसक्के और न उसके मूल को कोई जान सक्ता है; न मध्य को कोई जानसक्ता है। उसका अदृष्ट आकार है और अदृष्टफल है; अपने प्रकाश से प्रकाशता है; उसका घन आकार है; सदा अचल है किसी विकार को नहीं प्राप्त होता और सत, निर्मल, निर्विकार, निरन्तररूप, निरन्ध्र और चन्द्रमा की नाईं शीतल

सुन्दर है। उसमें ज्ञान संवित्रूपी रसहै सो अपनारस आपही लेताहै और सबको देताहै और सबको प्रकाश कर्ताभी वही है। उसमें अनेक चित्ररेखों ने निवास किया है परन्तु वह अपने स्वरूप को नहीं त्यागता अनेकरूप होकर भासताहै और उसमें स्पन्दरूपी रस फुरताहै। तत्त्वं, इदं, देश, काल, क्रिया, नीति, राग, द्वेष, हेयोपादेय, भूत, भविष्यत्, काल, प्रकाश, तम, विद्या, अविद्या इत्यादि कलना जाल उस रस के फुरने से फुरते हैं। वह बेल आत्मरूप है और अनुभवरूपी उसमें रस है। वह सदा अपने आप में स्थित और नित्य शान्तरूप है। उसको जानकर पुरुष कृतकृत्य होताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विलोपाख्यानन्नाम
चतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४४॥

रामजी बोले, हे भगवन्! सर्वधर्मों के वेत्ता आपने यह बेलरूपी महाचिद्घन सत्ता कही सो मुझे ऐसे निश्चय हुआ कि, चेतन मज्जारूप अहंतादिक जगत् है इसमें भेद रंचक भी नहीं; एक द्वैत कलना सर्व वही है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे ब्रह्माण्डकी मज्जा सुमेरु आदिक पृथ्वी है तैसे ही चेतन बेलकी मज्जा यह ब्रह्माण्ड है। सब जगत् चेतन बेलरूपहै-भिन्न नहीं और उस सर्वचेतन जगत् का विनाश नहीं होसक्ता। हे रामजी! चेतनरूपी मिरचे के बीज में जगत्रूपी चमत्कार तीक्ष्णता है सो सुषुप्तवत् निर्मल है और शिला के अन्तरवत् अमिश्रित है। हे रामजी! अब और आश्चर्यरूप एक आख्यान सुनो कि, महासुन्दर प्रकाशसंयुक्त स्निग्ध और शीतल स्पर्श है और विस्तृतरूप एक शिला है सो महानिरन्ध्र और घनरूप है। उसमें कमल उपजते हैं और उसकी ऊर्ध्व बेलहै अध मूल है और अनेक शाखा हैं। रामजी बोले, हे भगवन्! सत्य कहते हो यह शिला मैंने भी देखीहै कि, नदीमें विष्णुकी मूर्ति शालग्रामहै। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे तो तुम जानते हो और देखा भी है परन्तु जो शिला मैं कहताहूं वह अपूर्व शिला है और उसके भीतर ब्रह्माण्डके समूह हैं और कुछ भी नहीं। हे रामजी! चेतनरूपी शिला जो मैंने तुमसे कही है उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हैं; उस घनचेतनता से शिला वर्णनकी है। वह अनन्तघन

और निरन्ध्र है और आकाश, पृथ्वी, पर्वत, देश, नदियां, समुद्र इत्यादिक सबही विश्व उस शिलाके भीतर स्थित है और कुछ नहीं है। जैसे शिला के ऊपर कमल लिखे होते हैं सो शिलारूप हैं; शिला से भिन्न नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मरूपी शिलामें है; आत्मा से भिन्न नहीं। हे रामजी। भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनोंकाल उस शिलाकी पुतलियां हैं। जैसे शिल्पी पुतलियां कल्पता है तैसेही यह जगत् आत्मा में है उपजा नहीं क्योंकि; मनरूपी शिल्पी कल्पता है और उससे नानाप्रकार का जगत् भासता है; आत्मा में कुछ उपजा नहीं। जैसे सुषुप्तरूप शिला के ऊपर कमल रेखा लिखी होती है वह शिलासे भिन्न नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मामें है आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे शिला में पुतली होती हैं सो उदय अस्त नहीं होती शिला ज्योंकी त्यों है; तैसेही आत्मा में जगत् उदय अस्त नहीं होता क्योंकि वास्तव में कुछ नहीं है। आत्मा में द्वैतकल्पना अज्ञान से भासती है और जब बोध होता है तब शान्त होजाती है। जैसे समुद्र में पड़ी जल की बूंद समुद्ररूप होजाती है तैसेही बोध से कल्पना आत्मा में लीन होजाती है। हे रामजी! चेतन आत्मा अनन्तहै और उसमें कोई विकार कल्पना नहीं है पर अज्ञानसे कल्पना भासती है और ज्ञान से लीन होजातीहै। विकारभी आत्माके आश्रय भासते हैं पर आत्मा विकार से रहितहै। ब्रह्म से विकार उत्पन्नहोते हैं और ब्रह्महीमें स्थितहैं पर वास्तवमें कुछ हुये नहीं; सब आभासमात्रा हैं। जैसे किरणोंमें जलाभास होताहै तैसेही ब्रह्म में जगत् विकार आभास होताहै। जैसे बीज में पत्र, डाल, फूल और फलका विस्तार होता है और बीजसत्ता सबमें मिली होतीहै, बीजसे कुछ भिन्न नहींहोता; तैसेही चिद्घन आत्मा के भीतर जगत् विस्तार है सो चिद्घन आत्मा से भिन्न नहीं; वही अपने आपमें स्थित है और जगत् भी वहीरूप है। यदि एक मानिये तो द्वैतभी होताहै और यदि एक नहीं कहाजाता तो द्वैत कहांहो? जगत् और आत्मामें कुछ भेद नहीं; अद्वैत आत्माही अपने आप में स्थित है। जैसे शिला में मूर्ति लिखी होती है सो शिलारूप है; तैसेही जगत् आत्मारूप है और जैसे शिलामें भिन्न २ विषममूर्ति होती हैं और आधार-

रूप शिला अभेदहै तैसेही आत्मा में जगन्मूर्ति भिन्न २ विषमरूप भासती हैं और चेतनरूप आधार अभेद है। ब्रह्मसत्ता समान सुषुप्तवत् समस्थित है बड़े विकारभी उसमें दृष्टि आते हैं परन्तु वास्तव सुषुप्तवत् विकार से रहित स्थित है और फुरने से रहित चेतन शिला स्थित है उस नित्य शान्त चिद्घनरूप सत्ता में यह जगत् कल्पित है अधिष्ठान सत्ता सदा सर्वदा शान्तरूप है भेद कदाचित् नहीं जैसे जल में तरङ्ग अभेदरूप है और सुवर्ण में भूषण अभिन्नरूप है तैसे आत्मा में जगत् अभिन्नरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिलाकोशउपदेशोनाम पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बीज के भीतर फूल फल और सम्पूर्ण वृक्ष होताहै सो आदि भी बीज है और अन्त भी बीज है जब फल परिपक्व होताहै तब बीजही होताहै तैसे आत्मा भी जगत् में है परन्तु सदा अच्युत और समहै कदाचित् भेद विकार और परिणामको प्राप्त नहीं हुआ अपनी सत्ता से स्थित है जगत् के आदि मध्य अन्तमें वही है कुछ और भाव को प्राप्त नहीं हुआ देशकाल कर्म आदिक जो कुछ कलना भासती है सो वही रूप है जो कुछ शब्द और अर्थ है वह आत्मा से भिन्न नहीं जैसे वृक्ष के आदि भी बीज है और अन्त भी बीज है और जो कुछ मध्य में विस्तार भासताहै वहभी वही रूपहै भिन्न कुछ नहीं तैसे जगत् के आदि भी आत्मसत्ताहै अन्त भी आत्मसत्ता है जो कुछ मध्यमें भासताहै वह भी वही रूप है। हे रामजी! चेतनरूपी महाआदर्श में सम्पूर्ण जगत् प्रतिबिम्ब होताहै और सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्र है जैसा जैसा किसी में फुरना दृढ़ होताहै तैसेही आत्मसत्ता के आश्रित होकर भासता है जैसे चिन्तामणि में जैसा कोई संकल्प धारता है तैसा ही प्रकट होआताहै सो संकल्पमात्र ही होताहै, तैसे जैसी जैसी भावनाकोई करताहै तैसी तैसी आत्मा के आश्रित होकर भासती है अनन्त जगत् आत्मरूपी मणि के आश्रित स्थित होते हैं जैसी कोई भावना करता है तैसी उसको हो भासती है। हे रामजी! आत्मरूपी डब्बे से जगत्‌रूपी रत्न निकलते हैं। जैसा फुरना होता है तैसाही जगत्

भासि आता है। जैसे शिला के ऊपर रेखा होती हैं और नाना प्रकार के चित्र भासते हैं सो अनन्यरूप है। तैसेही आत्मा में जगत् अनन्यरूप है और जैसे शिला के ऊपर शंख चक्रादिक रेखा भासती हैं तैसेही आत्मा में यह जगत् भासता है सो आत्मरूप है। आत्मरूपी शिला निरन्ध्र है, उसमें छिद्र कोई नहीं जैसे जल में तरङ्ग जलरूप होते हैं तैसे ही ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है। वह ब्रह्म सम, शान्तरूप और सुषुप्तवत् स्थित है उसमें जगत् कुछ फुरा नहीं शिला की रेखावत् है। जैसे बिलाव के भीतर मज्जा होती है, तैसेही ब्रह्ममें जगत् स्थित है और जैसे आकाश में शून्यता, जल में द्रवता और वायु में स्पन्दता होती है, तैसेही ब्रह्म में जगत् है। ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे तरु और वृक्ष में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं–ब्रह्मही जगत् है और जगत् ही ब्रह्म है। हे रामजी! इसमें भाव–अभाव भेद कल्पना कोई नहीं ब्रह्मसत्ताही प्रकाशती है और ब्रह्मही जगत्रूप होकर भासताहै। जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणें जलरूप होकर भासती हैं; तैसेही ब्रह्म जगत्रूप होकर भासता है। हे रामजी! सुमेरुआदिक पर्वत और तृण, वन और चित्त जगत् परिणाम से लेकर भूतों को विचार देखिये तो परमसत्ता ही भासती है और सब पदार्थों में स्थूल और सूक्ष्मभाव से वही सत्ता व्यापी है। जैसे जल का रस वनस्पति में व्यापा हुआ है, तैसेही सब जगत् में सूक्ष्मता करके आत्मसत्ता व्यापी हुई है। जैसे एकहीरस सत्ता, वृक्ष, तृण और गुच्छों में व्यापी हुई है और एकही अनेकरूप होकर भासती है; तैसेही एकही ब्रह्मसत्ता अनेकरूप होकर भासती है। हे रामजी! जैसे मोर के अण्डे में अनेक रङ्ग होते हैं और जब अण्डा फूट जाताहै तब उससे शनैःशनैः अनेक रङ्ग प्रकट होते हैं सो एकही रस अनेक रूपहो भासता है, तैसेही एकही आत्मा अनेकरूप जगत् आकार होकर भासता है। जैसे मोरके अण्डे में एकही रस होता है परन्तु जो दीर्घसूत्री अज्ञानी हैं उनको भविष्यत् अनेक रङ्ग उस में भासते हैं सो अनउपजेही उपजे भासते हैं; तैसेही यह जगत् अनउपजाही नानात्व अज्ञानी के हृदय में स्थित होता है और जो ज्ञानवान् हैं

उनको एकरस ब्रह्मसत्ता ही भासती है। जैसे मोर का रस परिणाम को नहीं प्राप्तहुआ एक रसहै और जब परिणामको प्राप्त होकर नानारूप हुआ तब भी एक रसहै; तैसेही यह जगत् परमात्मा में शुद्धहै तौभी परमात्मा ही है और जब नानारूप होकर भासता है तौ भी वही है परिणाम को नहीं प्राप्तहुआ परन्तु अज्ञानी को नानात्व भासताहै और ज्ञानवान्को एकसत्ता ही भासता है। अथवा इस दृष्टान्त का दूसरा अर्थ यह है कि जैसे मोर के अण्डे में नानात्व कुछ हुआ नहीं पर जिसको दिव्यदृष्टि है उसको उसमें अनउपजी नानात्व भासती है और जिसको दिव्यदृष्टि नहीं उसको बीजही भासता है, नानात्व नहीं भासता; तैसेही जिनको अज्ञानरूपी दिव्यदृष्टि है उनको अनउपजाही जगत् नानात्व हो भासताहै और जो अज्ञानदृष्टिसे रहित हैं उनको एकही ब्रह्म भासताहै और कुछ नहीं भासता हे रामजी! नानात्व भासता है तौ भी कुछ नहीं; जैसे मोर के अण्डे में नानारङ्ग भासतेहैं तौ भी एकरूपहै; तैसेही इस जगत् में भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं तौ भी एक ब्रह्मसत्ता है; द्वैत कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सत्ताउपदेशो नाम षट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे अनउपजे कान्तिरङ्ग मयूर के अण्डे में होते हैं सो बीज से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही अहं त्वं आदिक जगत् आत्मा में अनउदय ही उदयरूपी भासता है। जैसे बीज में उन रङ्गों की उदयभी अनउदयरूप है, तैसेही आत्मा में जगत् की उदय भी अनउदय-रूप है। आत्मसत्ता अशब्दपद है वाणी से कुछ कहा नहीं जाता। ऐसा सुख स्वर्ग तथा और किसी स्थान में भी नहीं है जैसा सुख आत्मा में स्थित हुये पायाजाता है। हे रामजी! आत्मसुख में विश्रान्ति पाने के निमित्त मुनीश्वर, देवता, सिद्ध और महाऋषि दृश्यदर्शन सम्बन्ध फुरने को त्यागकर स्थित होते हैं इससे वह उत्तमसुख है। संवित् में संवेदन का फुरना जिनका निवृत्त हुआहै उन पुरुषों को दृश्यभावना कोई नहीं फुरती और न कोई कर्म उनको स्पर्श करता है; प्राणभी उनके निस्पन्द

होते हैं; चित्तचेतन की सम्बन्ध से रहित चित्र की मूर्तिवत् स्थित होते हैं और शान्तरूप स्थित होते हैं। हे रामजी! जब चित्तकला फुरती है तब संसारभ्रम प्राप्त होताहै और जब चित्तका फुरना मिटजाताहै तब शान्तरूप अद्वैत स्थित होता है। जैसे युद्ध राजा की सेना करती है और जीत हार राजा की होती है तैसेही चित्त के फुरने के द्वारा आत्मा में बन्ध मोक्ष होता है। यद्यपि आत्मा सत्‌रूप और अच्युत है परन्तु मन, बुद्धि और अन्तःकरण के द्वारा आत्मा में बन्ध मोक्ष भासता है। आत्मा सबका प्रकाशक है–जैसे चन्द्रमा की चांदनी वृक्षादिकों को प्रकाशती है, तैसे ही आत्मा सब पदार्थों को प्रकाशता है। वह आत्मा न दृश्य है, न उपदेश का विषय है, न विस्ताररूप है, न दूर है, केवल चेतनरूप अनुभव आत्मा से सिद्ध है। वह न देह है, न इन्द्रिय है; न गुण है; न चित्त है. न वासना है; न जीव है, न स्पन्द है; न और को स्पर्श करता है, न आकाश है; न सत् है, न असत् है; न मध्य है; न शून्यहै, न अशून्य है; न देश, काल, वस्तु है; न अहं है, न इतर इत्यादिक है; सर्वशब्दों से रहित हृदयस्थान में प्रकाशता है और केवल अनुभवरूप है। उसका न आदि है, न अन्त है; न उसे शस्त्र काटते हैं; न उसे अग्नि जलासक्ती है; न जल गलासक्ता है; न यह है, न वह है; न उसे वायु सोख सक्ती है और न किसीकी सामर्थ्य उससे चलती है। वह चित्तरूपी आत्मतत्त्व है न जन्मता है और न मरता है। देहरूपी घट कईबार उपजते हैं और कईबार नष्ट होते हैं और आत्मरूपी आकाश सबके भीतर बाहर अखण्ड अविनाशी है। जैसे अनेक घटों में एकही आकाश स्थित होता है तैसेही अनेक पदार्थों में एकही ब्रह्मसत्ता आत्मरूप से स्थित है। हे रामजी! जो कुछ स्थावर–जङ्गम जगत् दृष्ट आता है सो सब ब्रह्मरूप है जो निर्धर्म, निर्गुण, निरवयव, निराकार, निर्मल, निर्विकार है और आदि अन्तसे रहित, सम और शान्तरूप है। ऐसी दृष्टि का आश्रय करके स्थित हो। हे रामजी! इस दृष्टि का आश्रय करोगे तो बड़े कार्यभी तुमको स्पर्श न करेंगे। जैसे आकाश को बादल स्पर्श नहीं करते तैसेही तुमको कर्म स्पर्श न करेंगे। काल, क्रिया, कारण,

कार्य, जन्म, स्थिति, संहारआदिक जो संसरणरूप संसार है सो सब ब्रह्म रूप है। इसी दृष्टि का आश्रय करके विचरो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मएकताप्रतिपादनंनाम सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४७॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यदि ब्रह्म में कोई विकार नहीं तो भाव-अभावरूप जगत् किससे भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विकार किसको कहते हैं? प्रथम तो यह सुनो। जो वस्तु अपने पूर्वरूप को त्याग कर विपर्ययरूप को प्राप्त हो और फिर पूर्व के स्वरूप को न प्राप्त हो उसको विकार कहते हैं। जैसे दूधसे दही होकर फिर दूध नहीं होता; जैसे बालक अवस्था बीतजाती है तो फिर नहीं आती और जैसे युवा अवस्था गई हुई फिर नहीं आती इसका नाम विकार है पर ब्रह्म निर्मल है; आदि भी निर्विकार है, अन्तभी निर्विकार है और मध्य में जो उसमें कुछ विकार मल भासता है सो अज्ञान से भासता है। मध्य में भी ब्रह्म अविकारी ज्यों का त्यों है। हे रामजी! जो पदार्थ विपर्ययरूप होजाता है वह फिर अपने स्वरूप को नहीं प्राप्त होता और ब्रह्मसत्ता सदा ज्योंकी त्यों अद्वैतरूप है और आत्म अनुभव से प्रकाशती है। जो कभी अन्यथारूप को प्राप्त न हो उसको विकार कैसे कहिये? हे रामजी! जो वस्तु विचार और ज्ञानसे निवृत्त होजाय उसको भ्रममात्र जानिये वह वास्तव में कुछ नहीं। जो कुछ विकार है सो अज्ञान से भासता है और जब आत्मबोध होताहै तब निवृत्त हो जाता है। जिसके बोध से विकार नष्ट होजाय उसे विकार कैसे कहिये? जो ब्रह्म शब्द से कहाता है सो निर्वेदरूप आत्मा है। जो आदि अन्त में सत् हो उसे मध्यमें भी सत् जानिये और इससे भिन्न हो सो अज्ञान से जानिये। आत्मरूप सदा सर्वदा समरूप है। आकाश और पवनभी अन्यभाव को प्राप्त होजाते हैं परन्तु आत्मतत्त्व कदाचित् अन्य भाव को नहीं प्राप्त होता। वह तो प्रकाशरूप एक, नित्य और निर्विकार ईश्वरहै; भाव अभाव विकार को कदाचित् नहीं प्राप्त होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! एकतत्त्व विद्यमान है सो ब्रह्म सदा सर्वदा निर्मलरूप

है तो उस संचित् ब्रह्म में यह अविद्या कहां से आई है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह सर्व ब्रह्म है; आगे भी ब्रह्म था और पीछे भी ब्रह्म होगा। उस निर्विकार और आदि, अन्त, मध्य से रहित ब्रह्म में अविद्या कोई नहीं— यह निश्चय है। जो वाच्य—वाचक शब्द से उपदेश के निमित्त ब्रह्म कहताहै उसमें अविद्या कहां है? हे रामजी! 'अहं' 'त्वं' आदिक जगत् भ्रम और अग्नि, वायु आदिक सर्व ब्रह्मसत्ताहै और अविद्या रञ्चकमात्र भी नहीं। जिसका नाम ही अविद्या है उसे भ्रममात्र और असत् जानो। जो विद्यमान ही नहीं है उसका नाम क्या कहिये? फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उपशम प्रकरण में आपने क्यों कहाथा कि, अविद्या है और इसप्रकार कैसे कहते हो कि, विद्यमान नहीं है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी इतने कालपर्यन्त तुम अबोध थे इस निमित्त मैंने तुम्हारे जागनेके निमित्त युक्ति कल्पकर कही थी और अब तुम प्रबुद्ध हुये हो तब मैंने कहा है कि, अविद्या अविद्यमान है। हे रामजी! अविद्या, जीव और जगत् आदिक का क्रम अप्रबोध को जगाने के निमित्त वेदवादी ने वर्णन किया है। जब तक मन अप्रबोध होताहै तबतक अविद्या भ्रमहै और युक्ति विना अनेक उपायों से भी बोधवान् नहीं होता। जब बोधवान् होताहै तब सिद्धान्त को उपदेश की युक्ति विना भी पाता है और अबोध मन युक्ति विना नहीं पा-सक्ता। हे रामजी! जो कार्य युक्ति से सिद्ध होताहै वह और यत्न से नहीं साधाजाता। जैसे युक्तिरूपी दीपक से अन्धकार दूर होताहै और बल यत्न से निवृत्त नहीं होता; तैसेही युक्ति विना और यत्नसे अज्ञानकी निद्रा निवृत्त नहीं होती। यदि अप्रबोधको सर्वब्रह्म सिद्धान्तका उपदेश कीजिये तो वह उपदेश व्यर्थ होताहै—जैसे कोई दुःखी अपना दुःख दीवालके आगे जा कहे तो उसका कहा वह नहीं सुनती और उसका कहनाभी वृथा होताहै; तैसेही अप्रबुद्धको सर्व ब्रह्मका उपदेश व्यर्थ होताहै। मूढ़ युक्तिसे जगता है और बोधवान्को प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेश होताहै। हे रामजी! अब तुम यह धारणा करो कि ब्रह्म, तीनों जगत् और अहं, त्वं आदिक सब ब्रह्महैं द्वैत कल्पना कोई नहीं; फिर जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो और दृश्य संवेदन न फुरे सदा

आत्मामें स्थित रहो। इसप्रकार अनेक कार्य में भी लेपनहोगा। हे रामजी! जो चेतन वपु परमात्मा प्रकाशरूप है सो सो सदा अहंभाव से फुरता है। ऐसा जो अनुभवरूपहै उसीमें चलते, बैठते, खाते, पीते, चेष्टा करते स्थित रहो तब तुम्हारा अहं ममभाव निवृत्त होजावेगा और जो शान्तरूप ब्रह्म सर्वभूतों में स्थित है उसको तुम प्राप्त होगे और आदि अन्त से रहित शुद्ध संवित्मात्र प्रकाशरूप आत्माको देखोगे। जैसे मृत्तिकाके पात्र घटआदिक सब मृत्तिका के ही हैं तैसेही तुम सर्वभूत आत्मा को देखोगे। जैसे मृत्तिका से घट भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से जगत् भी भिन्न नहीं। जैसे वायु से स्पन्द और जलसे तरङ्ग भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से प्रकृति भिन्न नहीं। जैसे जल और तरङ्ग शब्दमात्र दो हैं तैसेही आत्मा और प्रकृति शब्दमात्र दो हैं पर भेदभाव कुछ नहीं केवल अज्ञान से भेद भासताहै और ज्ञानसे नष्ट होजाता है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में प्रकृति है। हे रामजी! चित्तरूपी वृक्ष है और कल्पनारूपी बीज है, जब कल्पनारूपी बीज बोयाजाता है तब चित्तरूपी अंकुर उत्पन्न होता है और उससे जब भावरूप संसार उत्पन्न होताहै तब आत्मज्ञानकरके कल्पनारूपी बीज दग्ध होताहै और चित्तरूपी अंकुर नष्ट होजाताहै। हे रामजी! चित्तरूपी अंकुर से सुख दुःखरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है। जब चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो तब सुख दुःखरूपी वृक्ष कहां उपजे? हे रामजी! जो कुछ द्वैतभ्रमहै सो अबोध से उपजता है और बोध से नष्ट होजाता है। आत्मा जो परमार्थ सार है उसकी भावना करो तब संसारभ्रम से मुक्त होगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्मृतिविचारयोगोनामाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४८॥

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जो कुछ जानने योग्य था सो मैंने जाना और जो कुछ देखने योग्य था सो देखा; अब मैं आपके ज्ञानरूपी अमृत के सींचने से परमपद में पूर्णात्मा हुआ हूं। हे मुनीश्वर! पूर्ण ने सब विश्व पूर्ण की है; पूर्ण से पूर्ण प्रतीत की है और पूर्ण में पूर्णही स्थितहै-द्वैत कुछ नहीं, यह अब मुझको अनुभव हुआ है। हे मुनीश्वर! ऐसे

जानकरभी मैं लीला और बोध की वृद्धि के निमित्त आपसे पूछता हूं। जैसे बालक पिता से पूछता है तो पिता उद्वेग नहीं करता, तैसेही आप उद्वेगवान् न होना। हे मुनीश्वर! श्रवण, नेत्र; त्वचा, रसना और घ्राण ये पांचों इन्द्रियां प्रत्यक्ष दृष्टि आती हैं पर मरे पर विषय को क्यों नहीं ग्रहण करतीं और जीते कैसे ग्रहण करतीं हैं? घटादिककी नाईं बाहरसे ये जड़ स्थित हैं पर हृदय में अनुभव कैसे होता है? और लोहेकी शलाकावत् ये भिन्न भिन्न हैं पर इकट्ठी कैसे हुई हैं? परस्पर जो एक आत्मा में अनुभव होताहै कि, मैं देखता; मैं सुनता हूं इनसे आदि लेकर वृत्तिक्योंकर इकट्ठी हुईहै? मैं सामान्यभावसे जानता भी हूं परन्तु विशेषकरके आपसे पूछता हूं। वशिष्ठजी बोले हे रामजी! इन्द्रियां, चित्त और घट, पट आदिक पदार्थ निर्मल चेतनरूप आत्मासे भिन्न नहीं आत्मतत्त्व आकाशसे भी सूक्ष्म और स्वच्छहै। हे रामजी! जब चेतनतत्त्व से पुर्यष्टका चैत्यता की भावनाफुरी तो उसने आगे इन्द्रिय गणोंको देखा और इन्द्रियगण चित्तके आगे हुये हैं। इनकी घनता से चेतनतत्त्व पुर्यष्टकाभाव को प्राप्त हुआ है। उसी में सब घटादिक पदार्थ प्रतिबिम्बित हुये हैं और पुर्यष्टका में भासे हैं। रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! अनन्त जगत् जो रचे हैं और महाआदर्श में प्रतिबिम्बित हैं उस पुर्यष्टका का रूप क्या है और कैसे हुई है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि अन्तसे रहित जगत् का बीजरूप जो अनादि ब्रह्म है सो निरामय और प्रकाशरूप है और कल्पना और कलना से रहित, शुद्ध, चिन्मात्र और अचेतन जगत् का बीज वही अनादि ब्रह्म है। वह जब कलना के सन्मुखहुआ तब उसका नाम जीव हुआ उस जीवने जब देह को चेता और अहंभाव फुरा तब अहंकार हुआ; जब मननकरनेलगा तब मन हुआ; जब निश्चय करनेलगा तब बुद्धि हुई, जब परमात्माके देखनेवाली इन्द्रियों की भावना हुई, तब इन्द्रियां हुई जब देह की भावना करने लगा तब देह हुई और जब घट पट की भावना हुई तब घट पट हुये; इसी प्रकार जैसी जैसी भावना होती गई तैसेही पदार्थ होते गये। हे रामजी! यही स्वभाव जिसका है उसको पुर्यष्टका कहते हैं। स्वरूपसे विपर्ययरूपी

दृश्य की ओर भावना होने और कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख आदिक की भावना, कलना और अभिमान जो चित्तकला में हुआ है इससे उसको जीव कहते हैं। निदान जैसी २ भावना का आकार हुआ तैसीही तैसी वासनाको करता भया। जैसे जल से सींचा हुआ बीज डाल, पत्र, फूल और फलभाव को प्राप्त होता है तैसेही वासनासे सींचाहुआ जीव स्वरूप के प्रमाद से महाभ्रमजाल में गिरता है और ऐसे जानता है कि मैं मनुष्य देह सहितहूं अथवा देवता व स्थावर हूं पर ऐसे नहीं जानता कि, मैं चिदात्माहूं। वह देहसे मिलाहुआ परिच्छिन्न और तुच्छरूप आपको देखताहै। इस मिथ्याज्ञान से डूबताहै और देह में अभिमान से वासना के वश हुआ चिरपर्यन्त नीचे ऊंचे और बीच में भ्रमताहै। जैसे समुद्रमें आयाहुआ काष्ठ तरङ्गोंसे उछलताहै और घटीयन्त्रका बर्तन नीचे ऊपर जाताहै तैसेही जीव वासना के वश से नीचे और ऊपर भ्रमता है। जब विचार और अभ्यास करके आत्मबोध को प्राप्त होता है तब संसार बन्धन से मुक्त होता है और आदि अन्त से रहित आत्मपद को प्राप्त होताहै। बहुतकाल योनिरेखा को भोगके आत्मज्ञान के वश से परमपद को प्राप्त होताहै। हे रामजी! स्वरूप से गिरे हुये जीव इसप्रकार भ्रमते हैं और शरीर पाते हैं। अब यह सुनो कि इन्द्रियां मृतकहुये विषय को किस निमित्त ग्रहण नहीं करतीं। हे रामजी! जब शुद्धतत्त्वमें चित्त कलना फुरती है तब वह जीवरूप होती है और मन सहित षट्इन्द्रियों को लेकर देहरूपी गृह में स्थित हो बाहर के विषय को ग्रहण करती है। मनसहित षट्इन्द्रियों के सम्बन्ध से विषयका ग्रहण होता है; इनसे रहित विषयों को कदाचित् नहीं ग्रहण करती। इस प्रकार इनमें स्थितहोकर जीवकला विषय को ग्रहण करती है। यद्यपि इन्द्रियां भिन्न२ हैं तौ भी इनको एकता करलेती हैं और ये अहंकाररूपी तागे से इकट्ठी होती हैं। देह और इन्द्रियां माणिक्यकी नाईं हैं; इनको इकट्ठे करके जीव कहताहै कि, मैं देखता, सूंघता, सुनता, फिरता, बोलता हूं और इन्हीं के अभिमान से विषय को ग्रहण करता है। हे रामजी! देह इन्द्रियां मन आदिक जड़ हैं परन्तु आत्मा की सत्ता पाकर अपने २ विषय को ग्रहण

करती हैं। जबतक पुर्यष्टका देह में होती है तबतक इन्द्रियां विषय को ग्रहण करती हैं और जब पुर्यष्टका देह से निकल जाती है तब इन्द्रियां विषय को नहीं ग्रहण करतीं। हे रामजी! ये जो प्रत्यक्ष नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा और त्वचा भासते हैं सो ये इन्द्रियां नहीं हैं इन्द्रियां तो सूक्ष्म तन्मात्र हैं; ये उनके रहने के स्थान हैं। जैसे गृह में झरोखे होते हैं तैसेही ये स्थान हैं। हे रामजी! अब जीवकारूप सुनो आत्मतत्त्व सबठौर में पूर्ण है परन्तु उसका प्रतिबिम्ब वहांही भासता है जहां निर्मल ठौर होता है। जैसे निर्मल जल में प्रतिबिम्ब होता है और जैसे दो कुण्ड हों एक जल से पूर्ण हो और दूसरा जल से रहित हो तो सूर्यका प्रकाश तो दोनों में तुल्य होताहै परन्तु जिसमें जलहै उसमें प्रतिबिम्बित होताहै और जल के डोलने से प्रतिबिम्ब भी हलता दृष्ट आता है पर जहां जल नहीं है वहां प्रतिबिम्ब भी नहीं; तैसेही जहां सात्विक अंश अन्तःकरण होता है वहां आत्मा का प्रतिबिम्ब जीव भी होताहै और जबतक शरीर में होताहै तबतक शरीर चेतन भासता है; पर जब वह जीवकला पुर्यष्टकारूप शरीर को त्यागजाती है तब शरीर जड़ भासता है। जैसे कुण्ड से जल निकल जाय तो कुण्ड सूर्य के प्रतिबिम्ब से हीन होजाता है, तैसेही अन्तःकरण और तन्मात्रा पुर्यष्टका में आत्मा का प्रतिबिम्ब होता है। जब पुर्यष्टका शरीरको त्याग जाती है तब शरीर जड़ भासताहै। हे रामजी! जैसे झरोखे के आगे कोई पदार्थ रखिये तो झरोखेको पदार्थ का ज्ञान नहीं होता और जब उसका स्वामी देखताहै तब पदार्थ को ग्रहण करताहै; तैसेही इन्द्रियोंके स्थानों में जो सूक्ष्मतन्मात्रा ग्रहण करनेवाली होतीहै वही विषयोंको ग्रहण करती है और जब तन्मात्रा नहीं होती तब इन्द्रियां ग्रहण नहीं करसक्तीं। हे रामजी! प्रत्यक्ष देखो कि कथाका श्रोता पुरुष कथा में बैठा होता है पर यदि उसका चित्त और ठौर निकल जाता है तब प्रत्यक्ष बैठा रहता है परन्तु कुछ नहीं सुनता क्योंकि; उसकी श्रवण इन्द्रिय मन के साथ गई है; तैसेही जब पुर्यष्टका निकल जाती है तब मृतक होता है और इन्द्रियां भी विषयों को ग्रहण नहीं करतीं। हे रामजी अहं मम आदि जो दृश्य है सो

भी सर्ग के आदि में आत्मरूपी समुद्र से तरङ्गवत् फुरा है, उसके पश्चात् दृश्य कलना हुई है सो न देश है, न कालहै, न क्रियाहै, न यह सबअसत् रूप है; वास्तव में कुछ नहीं। ऐसे जानकर संसार के सुख, दुःख, हर्ष, शोक, राग द्वेष से रहित होकर बिचरो तब तुम माया से तर जावोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संवेदनविचारो नामैकोन पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ४६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वास्तव में इन्द्रियादिक गण कुछ उपजे नहीं; आदि ब्रह्मा की उत्पत्ति जैसे मैंने तुम से कही है सो सब तुमने सुनी और जैसे आदि जीव पुर्यष्टकारूप ब्रह्मा उपजा है तैसे और भी उपजे हैं। हे रामजी! जीव पुर्यष्टका में स्थित होकर जैसी जैसी भावना करता गया है तैसेही तैसे भासने लगा है और फिर उसीकी सत्ता पाकर अपने अपने विषय को ग्रहण करनेलगे हैं, वास्तव में इन्द्रियां भी कुछ वस्तु नहीं। सब आत्मा के आभास से फुरती हैं; इन्द्रियां और इन्द्रियों के विषय ये संवेदन से उपजे हैं सो जैसे उपजे हैं तैसे तुम से कहे हैं। हे रामजी! शुद्ध संवित् सत्तामात्र से जो अहं उल्लेख हुआहै सोही संवेदनहुई है। वही संवेदन जीवरूप पुर्यष्टकाभाव को प्राप्त हो और बुद्धि, मन और पञ्चतन्मात्रा को उपजाकर आपही उनमें प्रवेशकर स्थित हुई है उसको पुर्यष्टका कहते हैं परन्तु यह उपजी भी स्पन्द में है आत्मा से कुछ नहीं उपजा। वह आत्मा न एक है, न अनेक है और परमात्मतत्त्व अस्ति अनामय है और उसमें वेदनाभी अनन्यरूप है। हे रामजी! उसमें न कोई द्वैत कलना है और न कुछ मनशक्ति है केवल शान्त और सत्ता है उसी को परमात्मा कहतेहैं जो मनसहित षट्इन्द्रियोंसे अतीत अचैत्य चिन्मात्र है उससे जीव उत्पन्न हुआ है। यह भी मैं उपदेश के निमित्त कहता हूं वास्तव में कुछ उपजा नहीं केवल भ्रममात्र है। जहां जीव उपजा है वहां उसको अंहभाव विपर्यय हुआहै; यही अविद्या है सो उपदेश से लीन होजाती है। जैसे निर्मली से जल की मलिनता लीन हो जाती है तैसेही गुरु और शास्त्र के उपदेश को पाकर जब अविद्या लीन होजाती है तब

भ्रमरूप आकार शान्त होजाते हैं और ज्ञानरूप आत्मा शेष रहताहै जिसमें आकाश भी स्थूल है। जैसे परमाणु के आगे सुमेरु स्थूल होताहै तैसेही आत्माके आगे आकाश स्थूलहै। हे रामजी! आत्मा के आगे जो स्थूलता भासती है सो भ्रममात्रहै। जो बड़े उदार आरम्भ भासते हैं सो तो असतहैं तब और पदार्थों की क्या बातहै? हे रामजी! आत्मा में जगत् कुछ नहीं पाया जाता क्योंकि; वस्तु असम्यक् ज्ञान से भासती है और सम्यक् ज्ञान से नहीं पाई जाती। जो कुछ–जगत् जाल भासते हैं वे सब मायामात्रहैं उनसे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। जैसे मृगतृष्णाका जल पान नहीं किया जाता तैसेही जगत् के पदार्थों से कुछ परमार्थ सिद्धि नहीं होती, सब अज्ञान से भासते हैं। हे रामजी! जो वस्तु सम्यक्ज्ञानसे पाइये उसे सत् जानिये और जो सम्यक्ज्ञानसे न रहे उसे भ्रममात्र जानिये। यह जीव पुर्यष्टका अविद्धक भ्रम है, असत् ही सत हो भासता है और जब गुरु और शास्त्रों का विचार होताहै तब जगत् भ्रम मिटजाता है। पुर्यष्टका में स्थित होकर जीव जैसी भावना करता है तैसी सिद्धि होती है। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पताहै तैसेही जीवकला अपनेआप में देश, काल, तत्त्वआदिक कल्पती है और भावना के अनुसार उसको भासते हैं। जैसे बीज से पत्र, डाल, फूल, फलादिक विस्तारहोताहै तैसेही तन्मात्रासे भूतजात सब भीतर बाहर, देश, काल क्रिया, कर्महुआहै। आदि जीव फुरकर जैसा संकल्प धारताहै तैसेही हो भासता है सो यह संवेदनभी आत्मा से अनन्यरूप है। जैसे मिरच में तीक्ष्णता और आकाश में शून्यता अनन्यरूप है; तैसेही आत्मा में संवेदन अनन्यरूपहै। उस संवेदनने उपजकर निश्चय धारा है कि, ये पदार्थ ऐसे हैं ये ऐसे हैं सो तैसेही स्थित हुये अन्यथा कदाचित् नहीं होते। आदिजीवने फुरकर जो निश्चय धारा है उसीका नाम नीति है और स्वरूप से सर्व आत्मसत्ता है; आत्मसत्ताही रूप धारकर स्थित हुआ है। जैसे एकही पौंड़ेका रस शकर आदि और मृत्तिका घट पटादिक आकारको धारती है तैसेही आत्मसत्ता सर्वज्ञानको पाती है। जैसे एकही जल का रस; पत्र, डाल, फल, फलादिक होकर भासता है तैसेही एकही

आत्मसत्ता घट पट और दीवार आदिक आकार हो भासती है। हे रामजी! जैसे आदिजीव ने निश्चय किया है तैसेही स्थित है अन्यथा कदाचित् नहीं होता परन्तु जगत्काल में ऐसे है; वास्तव में न बिम्ब है और न प्रतिबिम्ब है। ये द्वैत में होते हैं सो द्वैत कुछ नहीं केवल चिदानन्द ब्रह्म आत्मतत्त्व अपने आप में स्थित है और देहादिक भी सर्वचिन्मात्र है। हे रामजी! जो कुछ जगत् भासता है सो आत्मा का किंचनरूप है। जैसे रस्सी सर्परूप भासती है तैसेही आत्मा जगत्रूप हो भासता है और जैसे सुवर्ण भूषण हो भासता है तैसेही आत्मा दृश्यरूप हो भासता है जैसे सुवर्ण में भूषण कुछ वास्तव नहीं होते तैसेही आत्मा में दृश्य वास्तव नहीं। जैसे स्वप्न का पत्तनदेश असत्ही सत् हो भासता है तैसेही जीव को देह और भासती है। हे रामजी! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है परन्तु फुरनेसे अनेक रूप धारती है। जैसे एक नटवा अनेक स्वांगधारता है तैसेही आत्मसत्ता देहादिक अनेकआकार धारती है और जैसे स्वप्नमें एकही अनेकरूप धार चेष्टा करताहै, तैसेही जगत् में आत्मसत्ता नानारूप धारती है। हे रामजी! आत्मा नित्यशुद्ध और सबका अपनाआप है। अपने स्वरूप के प्रमादसे आपसे आपका जन्ममरण जानताहै पर वह जन्ममरण असत्रूप है जैसे कोई पुरुष आपको स्वप्न में श्वानरूप देखे तैसेही यह आपको जन्मता मरता देखता है। जैसे इसको पूर्वभावना है और भ्रम से असत् को सत् जानताहै और जैसे स्वप्नमें वस्तुको अवस्तु और अवस्तुको वस्तु देखताहै; तैसेही जाग्रत्में विपर्यय देखताहै। जैसे जाग्रत्के ज्ञानसे स्वप्न भ्रम निवृत्त होजाताहै तैसेही आत्मा अधिष्ठानके ज्ञानसे जगत्भ्रम निवृत्त होजाताहै। जैसे पूर्वका दुष्कृतकर्म किया हो तो उसके पीछे सुकृत कर्म करे तो वह घटजाताहै तैसेही पूर्वसंस्कारसे जब नीचवासना होती है और फिर आत्म-तत्त्व का अभ्यास करता है तो पुरुष प्रयत्न से मलिन वासना नष्ट होजाती है। जबतक वासना मलिन होती है तबतक उपजता विनशता और गोते खाताहै और जब सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के विचार से आत्मज्ञान उपजताहै तब संसारबन्धनसे छूटता है—अन्यथा नहीं छूटता। हे रामजी!

वासनारूपी कलङ्कसे जीव घेराहुआहै और देहरूपी मन्दिरमें बैठकर अनेक भ्रम देखाताहै। आदि जीव को जो फुराहै सो अपने स्वरूपको त्यागकर अनात्म भ्रम को देखा। जैसे बालक परछाहीं में भूत कल्पे, तैसेही जीव ने कल्पकर जैसी भावना की तैसाही भासने लगा। आदि जीव पुर्यष्टका में स्थितहुआ है। बुद्धि, मन, अहंकार और तन्मात्रा का नाम पुर्यष्टका है और अन्तवाहक देहहै। चैतन्य आत्मा अमूर्ति है; आकाशभी उसके निकट स्थूल है, प्राणवायु गुच्छे के समान है और देह सुमेरु के समान है। ऐसा सूक्ष्मजीव है। सुषुप्त जड़रूप और स्वप्नभ्रम दोनों अवस्थाओं में स्थावर-जङ्गमरूपी जीव भटकते हैं; कभी सुषुप्ति में स्थित होते हैं और कभी स्वप्ने में स्थित होते हैं। इसी प्रकार दोनों अवस्थाओं में जीव भटकते हैं। हे रामजी! सबका देह अन्तवाहक है और उसी देह से सब चेष्टा करते हैं। कभी स्थावर में जाकर वृक्ष और पत्थरादिक योनि पाते हैं। जब स्वप्ने में होते हैं तब जङ्गमयोनि पाते हैं सो भी कर्मवासना के अनुसार पाते हैं; जब तामसी वासना घन होती है तब कल्पवृक्ष चिन्तामण्यादिक स्वरूप को प्राप्त होते हैं; जब केवल तामसी घन मोहरूपी होती है तब वृक्ष और पत्थरादिक योनि पाते हैं। इसका नाम सुषुप्ति है सो लय घन मोहरूप है और इससे भिन्न जङ्गमविक्षेपरूप स्वप्न अवस्था है, कभी उसमें होता है और कभी सुषुप्तिरूप स्थावर होता है। हे रामजी! सुषुप्ति अवस्था में वासना सुषुप्तिरूप होती है सो फिर उगती है इससे मोहरूप है। उस सुषुप्ति से जब उतरताहै तब विक्षेपरूप स्वप्न होता है और जब बोध हो तब जाग्रत् अवस्था पावे। जाग्रत् दो प्रकार की है। जाग्रत् वही है जो लय और विक्षेपता से रहित चेतन अवस्था है; उससे रहित और मनोराज सब स्वप्नरूप है। एक जीवनन्मुक्ति जाग्रत् है और दूसरी विदेहमुक्ति है। जीवन्मुक्ति तुरीयारूप है और विदेहमुक्ति तुरीयातीत है। यह अवस्था जीव को बोध से प्राप्त होती है और जीवको बोध पुरुष प्रयत्न से होता है—अन्यथा नहीं होता। हे रामजी! जीव का फुरना ज्ञानरूप है। यदि दृश्य की ओर लगता है तो वही रूप होजाता है और यदि सत् की

और लगता है तो सत्‌रूप होजाता है एवम् जब दृश्य के सन्मुख होता है तब दीर्घभ्रम को देखता है। जीव के भीतर जो सृष्टिरूप हो फुरता है सोभी आत्मसत्ता से कुछ भिन्न वस्तु नहीं है। जैसे बटलोही में दानों के समान जल उछलता है सो उस जल से वस्तु भिन्न नहीं तैसेही आत्मा के सिवा जीव के भीतर और कुछ वस्तु नहीं और सृष्टि जो भासती है सो मायामात्र है। हे रामजी! जीव को स्वरूप के प्रमाद से सृष्टि भासती है और सत्वत् होगई है उससे नाना प्रकार का विश्व भासता है और नाना प्रकार की वासना फुरती है उससे बन्धायमान हुआ है। जब वासना क्षय हो तब मुक्तिरूप हो। हे रामजी! घनवासना मोहरूप का नाम सुषुप्ति जड़ अवस्था है और क्षीण स्वप्नरूपहै। जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब दृश्य में सत्‌बुद्धि होती है और जब उसमें प्रतीति होती है तब नाना प्रकार की वासना उदय होती है पर जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब संसारसत्यता नाश होजाती है—फिर वासना नहीं फुरती। हे रामजी! घनवासना तबतक फुरती है जबतक दृश्य की सत्‌बुद्धि होती है और जब जगत् का अत्यन्त अभाव होता है तब वासना भी नहीं रहती। जैसे भूषण पिघला कर जब सुवर्ण किया तब भूषणबुद्धि नहीं रहती। जो वस्तु अज्ञान से उपजी है सो ज्ञानसे लीन होजाती है, एवं वासना भ्रम अबोधसे उपजा है और बोधसे लीन होजाता है। हे रामजी! घनवासनासे सुषुप्ति जड़ अवस्था होती है और तनुवासनासे स्वप्न देखताहै। घन-वासना मोह से जीव स्थावर अवस्था को प्राप्त होताहै; मध्यवासना से तिर्यक्‌योनि पाता है अर्थात् पशु, पक्षी और सर्पादिक होता है; तनुवासना से मनुष्यादिक शरीर पाताहै और नष्टवासना से मोक्ष पाता है। हे रामजी! यह जगत् सब संकल्प से रचा है। घट पट आदिक जो बाहर देखते और ग्रहणकरते हो वही हृदय में स्थित हो जाते हैं और जब उनको ग्रहण करते हो, तो ग्राह्य ग्राहकका सम्बन्ध देखते हो कि, यह मैंने ग्रहण कियाहै और यह मैंने लिया है। जो ज्ञानवान्‌है वह न ग्रहण करने का अभिमान करता है और न कुछ त्यागने का अभिमान करता है उसको भीतर बाहर सब चिदाकाश भासता है।

चेतनसत्ता का यह चमत्कार है; तीनों जगत्रूप होकर वही प्रकाशता है रञ्चकमात्र भी कुछ अन्य नहीं—केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। जैसे समुद्रमें तरङ्ग और बुद्बुदे होकर भासते हैं परन्तु जलही जलहै—जल से कुछ भिन्न नहीं तैसेही आत्मा जगत्रूप होकर भासता है द्वैत नहीं॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेयथार्थोपदेशोनामपञ्चाशत्तमस्सर्गः५०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे जीव को स्वप्ने में जो संसार उदय होता है वह कल्पनामात्र होता है, न सत् है और न असत् है जीव के फुरने सेही भ्रम भासता है; तैसेही यह जाग्रत् अवस्था भ्रममात्र है—स्वप्न और जाग्रत् एकरूप है। जैसे स्वप्ने में जाग्रत् का एक क्षण भी दीर्घकाल होता है तैसेही स्वरूप के प्रमाद से जाग्रत् भी दीर्घकाल का भ्रम हुआ है जिससे सत् को असत् जानता है और असत् को सत् जानता है; जड़ को चेतन जानता है और चेतन को विपर्यय ज्ञान से जड़ जानता है। जैसे स्वप्ने में एकही जीव अनेकता को प्राप्त होता है; तैसेही आदि जीव एकसे अनेक होकर भासता है। जैसे किसी स्थान में चोर भ्रम भासता है तैसेही आत्मा में तीनों जगत् भ्रम भासता है। जैसे सुषुप्त से स्वप्नभ्रम उदय होता है तैसेही अद्वैततत्त्व आत्मा में जगत्भ्रम होताहै। आत्मा अनन्त सर्वगत जीव का बीजरूप है जैसा उसके आश्रय फुरना होताहै तैसाही सिद्ध होकर भासता है। हे रामजी! जिस पुरुष की स्वरूप में स्थिति हुई है वह सदा निःसंग होकर बिचरता है। जैसे विष्णुजी के निःसंगता के उपदेश से अर्जुन मुक्त होकर बिचरेंगे; तैसेही, हे महाबाहो! तुम भी बिचरो। हे रामजी! पाण्डव के पुत्र अर्जुन जैसे सुख से जन्म व्यतीत करेंगे और सब व्यवहारोंमेंभी सुखी और स्वस्थरहेंगे तैसेही तुमभी निस्संग होकर बिचरो। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! पाण्डवके पुत्र अर्जुन कब होंगे और कैसे विष्णुजी उनको निःसंगका उपदेश करेंगे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अस्ति तन्मात्रतत्त्व में आत्मादिक संज्ञा कल्पकर कही हैं। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही निर्मलतत्त्व अपने आप में स्थित है; जैसे सुवर्ण में भूषण और समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं तैसेही आत्मा में

चौदहप्रकार के भूतजाति फिरते हैं और जैसे जाल में पक्षी भ्रमते हैं तैसेही जगत् में जीव भ्रमते हैं और चन्द्रमा, सूर्य, लोकपाल होकर स्थित हैं और उन्होंने पञ्चभूतों के कर्म रचे हैं कि; यह पुण्य ग्रहण करने योग्य है और यह पाप त्यागने योग्य है; पुण्य से स्वर्गादिक सुख प्राप्तहोताहै और पाप से नरकहोताहै। यह मर्यादा लोकपालने स्थापनकी है। इसप्रकार संसाररूपी नदी में जीव बहते हैं। संसाररूपी नदी अवच्छिन्नरूप बहती भासती है पर क्षण२ में नष्ट होती है। इस जगत् में सूर्यके पुत्र यमराज लोकपाल बड़े प्रतापवान् और तेजवान् हैं और सब जीवों को मारते हैं और उस पतित प्रवाह कार्यके कर्म में स्थितहैं। उनका जीवोंको मारना और दण्ड देनाही नियम है परन्तु चित्तमें पहाड़ की नाईं स्थितहैं। वे यमराज चार चार युगों प्रति कभी आठ, कभी सात, कभी बारह वा सोलह वर्षों का नियम धार के किसी जीवको नहीं मारते और उदासीन की नाईं स्थित होते हैं। जब पृथ्वीमें अधिक भूत होजाते हैं और चलने को मार्ग नहीं रहता और कोई दुष्टजीव जीवों को दुःख देते हैं उससे पृथ्वी भारी और दुःखी होती है तब पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त विष्णुजी अवतार धारकर दुष्टजीवों का नाश करते हैं और धर्ममार्गको दृढ़करते हैं। हे रामजी ! इसप्रकार नियमके धारनेवाले यम को अनन्तयुग अपने व्यवहार को करते व्यतीत होगये हैं और भूत और जगत् अनेक होगये हैं। इस सृष्टि का जो अब वैवस्वत यम है सो आगे द्वादशवर्ष पर्यन्त नियम करेगा और किसी को न मारेगा तब जीव क्रूरकर्म करने लगेंगे और पृथ्वी भूतों से भरजावेगी। जैसे वृक्ष गुच्छों के साथ संघट्ट होजाते हैं तैसेही पृथ्वी प्राणियों के साथ संघट्ट होजावेगी और जैसे चोर से डरकर स्त्री भर्त्ता की शरण जाती है तैसेही पृथ्वी भी दुःखित होकर विष्णु की शरण जावेगी तब विष्णुजी दो देह धारकर पृथ्वी का भार उतारेंगे और सन्मार्ग स्थापन करेंगे। सब देवता भी अवतार लेकर उनके साथ आवेंगे और नरों में नायक भाव को प्राप्त होंगे। एक देह से तो विष्णु भगवान् वसुदेव के गृह में पुत्ररूप कृष्ण नाम से होंगे और दूसरी देह से पाण्डु के गृह में अर्जुन नाम से युधिष्ठिर

नामक धर्मपुत्रके भाई होंगे और समुद्र जिसकी मेखलाहै ऐसी जो पृथ्वी है तिसका राज्य करेंगे। उसके चचा के पुत्र का दुर्योधन नाम होगा और उसका और भीमका बड़ा युद्ध होगा। दोनों ओर संग्रामकी लालसा होके अठारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होकर बड़े भयानक युद्ध होंगे और उनके बलसे हरि पृथ्वी का भार उतारेंगे। हे रामजी! उस सेनाके युद्ध में विष्णु का अर्जुन नाम देह होगा जो गाण्डीवधनुष् धारके प्रकृतस्वभाव में स्थित हो हर्ष शोकादिक विकार संयुक्त निरधर्मा होगा और युद्धमें अपने बांधवों को देखकर मूर्च्छित होगा और मोह और कायरता से उसके हाथसे धनुष् गिर पड़ेगा और आतुर होगा तब बोध देह से उसको हरि उपदेश करेंगे। जब दोनों सेनाओं के मध्यमें अर्जुन मोहित होकर गिरेगा तब हरि कहेंगे कि; हे राजसिंह अर्जुन! तू मनुष्यभाव को प्राप्त हो क्यों मोहितहुआ है? इस कायरता को त्यागकर; तू तो परमप्रकाश आत्मतत्त्व है। सर्वका आत्मा आनन्द, अविनाशी, आदि, अन्त, मध्य से रहित; सर्वव्यापी, परमअंकुरूप, निर्मल, दुःखके स्पर्श से रहित, नित्य, शुद्ध, निरामय है। हे अर्जुन! आत्मा न जन्मता है, न मरता है; होकर भी फिर कुछ और नहीं होता क्योंकि अजनित, निरन्तर और पुरातन सर्व की आदि है। उसका शरीर के नाश हुये नाश नहीं होता तू क्यों वृथा कायरता को प्राप्त हुआ है?॥

इति श्रीयोगवा० नि० प्र० नारायणावतारोनामैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५१॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! जो इस आत्मा को हन्ता मानते हैं और हतहोता मानते हैं वे आत्मा को नहीं जानते। यह आत्मा न मरता है और न मारताहै क्योंकि जो अक्षयरूप और निराकार आकाश से भी सूक्ष्म है उस आत्मा परमेश्वर को कोई किस प्रकार मारे। हे अर्जुन! तुम अहंकाररूप नहीं। इस अनात्म अभिमानरूपी मल को त्याग करो; तुम जन्ममरणसे रहित मुक्तरूप हो। जिस पुरुष को अनात्म में अहंभाव नहीं और जिसकी बुद्धि कर्तृत्व भोक्तृत्व से लेपायमान नहीं होती वह पुरुष सब विश्व को मारे तो भी उसको नहीं मारता और न बन्धवान् होताहै। हे अर्जुन! जिसको जैसा दृढ़ निश्चय होता है उसको तैसाही अनुभव

होता है; इससे यह, मैं, मेरा इत्यादि जो मलिन संवित् निश्चय होता है उसको त्यागकर स्वरूप में स्थित हो। जो ऐसी भावना में स्थित नहीं होते और आपको नष्ट होता मानते हैं सो सुख दुःख से राग द्वेष में जलते हैं। हे अर्जुन! वे अपने गुणों के असंख्य कर्मों में बर्तते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनसे पांचोंतत्त्व—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उपजे हैं और उन भूतों के अंश श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका विषयों में स्थित हैं वे अपने विषय को ग्रहण करती हैं। नेत्र-रूप, त्वचा-स्पर्श; जिह्वा-रस, नासिका-गन्ध और श्रवण-शब्द ग्रहण करते हैं; उसमें अहंकार से जो मूढ़ हुआ है वह आपको कर्ता मानता है कि; मैं देखता हूं, सुनता हूं, स्पर्श करता हूं, स्वाद लेता हूं और गन्ध लेता हूं। हे अर्जुन! ये सब कर्म कलना से रचे हैं। इन्द्रियों से कर्म होते हैं और अहंभाव से जीव वृथा क्लेश का भागी होता है। बहुत ने मिलकर कर्म किया और इसमें एक ही अभिमानी होकर दुःख पाताहै। बड़ा आश्चर्य है कि, देह और इन्द्रियों से कर्म होते हैं और जीव अभिमानी होकर सुख, दुःख और राग, द्वेष से जलता है। इससे इनका संग और अभिमान त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो। योगी केवल इन्द्रियों से कर्म करता है और उनमें अभिमान वृत्ति नहीं करता। हे अर्जुन! इस जीव को अहंकारही दुःखदायक है कि, अनात्म में आत्म-अभिमान करता है। जो अभिमानरूपी विष के चूर्ण से रहित होकर चेष्टा करता है वह दुःख का कारण नहीं होता; वह सदा सुखरूप है। हे अर्जुन! जैसे सुन्दर शरीर विष्ठा और मल से मलिन किया हो तो उसकी शोभा जाती रहती है तैसेही बुद्धिमान् शास्त्रका वेत्ता और गुणोंसे सम्पन्न भी हो पर यदि अनात्म में आत्म अभिमान करे तो उसकी शोभा जाती रहती है। जो निर्मल, निरहंकार, सुख, दुःख में सम और क्षमावान् है वह शुभकर्म करे अथवा अशुभ करे उसको किसी कर्म का स्पर्श नहीं होता। हे अर्जुन! ऐसे निश्चयवान् होकर कर्म को करो। हे पाण्डवपुत्र! युद्ध तुम्हारा परमधर्म है उसे करो। अपना अतिक्रूर कर्म भी कल्याण करताहै।

पराया धर्म उत्तम भी दुःखदायक है और अपना धर्म अल्प भी अमृत की नाईं सुखदायक है। हे अर्जुन! चाहे जैसा कर्म करो; यदि तुम्हारे में अहंभाव न होगा तो वह तुमको स्पर्श न करेगा। संग अभिमान को त्याग और योग में स्थित होकर कर्म करो। जो निःसंग पुरुष है उसको कोई कर्म प्राप्त हो पर वह उसको करता हुआ बन्धवान् नहीं होता। इससे ब्रह्मरूप होकर ब्रह्ममय कर्म करो तब शीघ्रही ब्रह्मरूप हो जावोगे। जो कुछ आचार कर्म हो उसे ब्रह्म में अर्पण करो। संन्यास योग युक्ति से कर्मों को करते भी मुक्तिरूप होगे। इतना सुन अर्जुन ने पूछा, हे भगवन्! संगत्याग, ब्रह्मअर्पण, ईश्वर अर्पण और योग किसको कहते हैं? मोह की निवृत्ति के लिये इनको पृथक् २ कहिये? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! प्रथम तुम यह सुनो कि ब्रह्म किसको कहते हैं। जहां सब संकल्प शान्तहैं केवल एक घन वेदनाहै; दूसरी भावना का उत्थान नहीं केवल अचेत चिन्मात्रसत्ता है उसको परब्रह्म कहते हैं। उसको जानकर उसके पानेका उद्यम करना और जिस विचार से उसको पाइये उसका नाम ज्ञान है। उसमें स्थित होनेका नाम योग है। ऐसा निश्चय करना कि यह सर्व ब्रह्म है; मैं ब्रह्म हूं और सब जगत् मैं ही हूं; और ब्रह्म से भिन्न कुछ भावना न करना इसका नाम ब्रह्म अर्पण है। नाना प्रकार का जो जगत् भासता है सो क्या है? भीतर भी शून्य है और बाहर भी शून्य है। जिसकी शिला की उपमा है ऐसा जो आकाशवत् सत्तारूप है सो न शून्य है, न शिलावत् है; उसके आश्रय स्पन्दकलना स्फूर्ति की नाईं अन्यवत् जगतरूप होकर भासती है परन्तु आकाश की नाईं शून्य है। जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे अनेकरूप होकर स्थित होते हैं सो जलही हैं और कुछ नहीं एक जल ही अनेकरूप भासता है; तैसेही एकही वस्तुसत्ता घट, पट आदिक आकार होकर भासती है। संवित्सार आत्मा में भेदकलना कुछ नहीं; अज्ञान से अनेकरूप भेदकलना विकल्पजाल भासते हैं और अनेकभाव को प्राप्त होते हैं। आत्मा को अनेक नाम रूप देखना और भिन्न भिन्न देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्ध्यादिक अनेक में अहंप्रतीति से

एकत्रभाव देखना अज्ञानता है। यह कलना ज्ञान से नष्ट होजाती है। हे अर्जुन! संकल्पजालों को त्याग करने का नाम असंग कहते हैं। सब कलना जालों को भी ईश्वर से भिन्न न जानना इस भावना से द्वैतभाव गलित होजावेगा–इसका नाम ईश्वरसमर्पण कहते हैं। हे अर्जुन! जब ऐसी अभेद भावना होती है तब आत्मबोध प्राप्त होता है। बोध से सब शब्द अर्थ एकरूप भासते हैं; सब शब्दों का एकही शब्द भासता है और एकही अर्थ सब शब्दों में भासता है। हे अर्जुन! सर्व जगत् मैं हूं; दिशा और आकाश मैं हूं और कर्म, काल, द्वैत, अद्वैत मैं हीं हूं; तू मुझसे मन लगा, मेरी भक्ति कर, मेरा ही भजन कर और मुझही को नमस्कार कर तब तू मुझही को प्राप्त होगा। हे अर्जुन! मैं आत्मा हूं और तुम मेरे ही परायण हो। अर्जुन बोले, हे देव! आपके दो रूप हैं–एक पर और दूसरा अपर; उन दोनों रूपों में मैं किसका आश्रय करूं जिससे मैं परमसिद्धि पाऊं? श्रीभगवान् बोले, हे अनघ! एक समानरूप है और दूसरा परमरूप है। यह जो शङ्ख, चक्र, गदादिक संयुक्त है सो तो मेरा समानरूप है और परमरूप आदि अन्त से रहित एक अनामय है उस ब्रह्मरूप को आत्मा और परमात्मा आदिक नाम से कहते हैं। जबतक तुम अप्रबोध हो और तुमको अनात्म देहादिक में आत्म अभिमान है तबतक मेरे चतुर्भुज आकार की पूजा के परायण हो और कर्मों को करो, और जब प्रबोध होगे तब मेरे परमरूप को प्राप्त होगे जो आदि–अन्त–मध्य से रहित है। उसको पाकर फिर जन्म–मरण में न आवोगे। जब तुमसे शत्रुओं के नाशकर्ता और ज्ञानवान् हुये तब आत्मा से मेरा पूजन करो। मैं सर्वका आत्माहूं। हे अर्जुन! मैं मानता हूं कि तुम अब प्रबोध हुये हो, आत्मपद में विश्राम पाया है और संकल्पकलना से रहित एक आत्मसत्ता में स्थित होकर मुक्त हुये हो। ऐसे योगसे तुम सर्वभूतों में स्थित होकर आत्मा को देखोगे सब भूतों को आत्मा में स्थित देखोगे और सर्वत्र तुमको समबुद्धि होगी तब स्वरूप में तुमको दृढ़स्थिति होगी। हे अर्जुन! जो सर्वभूतों में स्थित आत्मा को देखता है एकत्वभाव से भजन करता है और जिसको आत्मा से भिन्न और भावना

नहीं फुरती वह सर्व प्रकार वर्तमान भी है तो भी फिर जन्म मरण में नहीं आता। हे अर्जुन! जिसमें सर्व शब्दों का अर्थ है और जो सर्व शब्दों में एक अर्थरूप है ऐसी आत्मसत्ता न सत है और न असत् है; सत्-असत् से जो रहित सत्ता है सो आत्मसत्ता है। वह सबलोगों के चित्त में प्रकाश-रूप करके स्थित है। हे भारत! जैसे दूध में घृत और जल में रस स्थित होता है तैसेही मैं सबलोगों के हृदय में तत्त्वरूप स्थित हूं। जैसे दूध में घृत स्थित है, तैसेही सब पदार्थों के भीतर मैं आत्मा स्थित हूं। और जैसे रत्नों के भीतर बाहर प्रकाश होता है, तैसेही मैं सर्व पदार्थों के भीतर बाहर स्थित हूं। जैसे अनेक घटों के भीतर बाहर एकही आकाश स्थित है तैसेही मैं अनेक देहों के भीतर बाहर अव्यक्तस्वरूप स्थितहूं। हे अर्जुन! ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त सर्व पदार्थों में सत्तासमानसे मैं स्थितहूं और नित्यअजन्मा हूं। मुझमें जो चित्तसंवेदन फुराहै सो ब्रह्मसत्ता की नाईं हुआहै और फुरने से जगत्‌रूप हो भासता है पर आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थितहै—कुछ द्वैत नहीं। हे अर्जुन! आत्मा सबका साक्षीरूप है—उसको जगत्‌का सुख दुःख स्पर्श नहीं करता। जैसे दर्पण प्रतिबिम्बको ग्रहण करताहै परन्तु सबमें समहै और किसीसे खेदवान् नहीं होता; तैसेही सब पदार्थ अवस्था का साक्षीभूत आत्माहै परन्तु किसीको स्पर्श नहीं करता और शरीर के नाश में उसका नाश नहीं होता। जो ऐसा देखता है सोही यथार्थ देखता है। हे अर्जुन! पृथ्वी में गन्ध, जल में रस, पवन में स्पर्श और स्पन्दशक्ति मैंहींहूं; अग्निमें प्रकाश और आकाश में शब्दशक्ति मैंहीं हूं। तुमसे क्याकहूं कि, यह मैंहूं। सर्वात्म सर्वका आत्मा मैं हूं—मुझसे कुछ भिन्न नहीं। हे पाण्डव! यह जो सृष्टि प्रवर्त्तती है और उत्पन्न और प्रलय होती दृष्टि आती है सो मुझमें ऐसे है जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते और लीन होते हैं। जैसे पहाड़ पत्थररूप है; वृक्ष काष्ठरूप है और तरङ्ग जलरूप है तैसेही सर्व पदार्थों में मैं आत्मारूप हूं। जो सबभूतोंको आत्मा में देखता है सो आत्मा को अकर्ता देखताहै। जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरङ्ग और सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसेही नाना आकार आत्मा में भासते हैं। हे अर्जुन! ये नानाप्रकार के पदार्थ

ब्रह्मरूप हैं—ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं; तब और क्या कहिये; भाव विकार क्या कहिये और जगत् द्वैत क्या कहिये? जो सब वही है तो वृथा मोहित क्यों होते हो? इसप्रकार सुनकर बुद्धिमान् इसलोक में समरसचित्त विचरते हैं। हे अर्जुन! उस पद को तुम क्यों नहीं प्राप्त होते जो पुरुष निर्वाण और निर्मोह हुये हैं और जिनकी अभिलाषा और द्वेष अभिलाषा निवृत्त हुई है वे अव्ययपद को प्राप्त हुये हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपदेशो नाम
द्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५२॥

श्रीभगवान् बोले, हे महाबाहो! फिर मेरे परम वचन सुनो; मैं तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त कहता हूं क्योंकि; तुम्हारा हितकारी हूं। ये जो शीतोष्ण विषय हैं सो इन्द्रियों से छूते हैं और आगमापायी हैं अर्थात् आते हैं और फिर निवृत्त होजाते हैं इससे अनित्य हैं; इनको सहकर तुम आत्मा को स्पर्श नहीं करते। तुम तो एक आत्मा आदि अन्त मध्य से रहित, निराकार, अखण्ड और पूर्ण हो तुमको शीत, उष्ण, सुख, दुःख खण्डित नहीं करसक्ते ये कलना से रचे हुये हैं। जैसे सुवर्ण में भूषण का निवास है तैसेही आत्मा में इनका असत् निवास है। हे भारत! जिसको इन्द्रियों के भ्रमरूप भोग और स्पर्श चलायमान नहीं करसक्ते और सुख दुःख सम हैं उस पुरुष को मोक्ष की प्राप्ति होती है। हे अर्जुन! आत्मा नित्य, शुद्ध और सर्वरूप है और इन्द्रियों के स्पर्श असत्रूप हैं इसलिये असत्रूप सत्रूप आत्मा को मोह नहीं करसक्ते। यह अल्पमात्र तुच्छ है और बोधरूप आत्मतत्त्व सर्वगत शुद्धरूप है; उसको इनका स्पर्श कैसे हो-सत् को असत् स्पर्श नहीं करसक्ता। जैसे रस्सी में सर्पका आभास होता है सो रस्सी को स्पर्श नहीं करसक्ता; जैसे मूर्तिकी अग्नि काग़ज़को जला नहीं सक्की और जैसे स्वप्ने के क्षोभ जाग्रत् पुरुष को स्पर्श नहीं करसक्ते; तैसेही इन्द्रियां और उनके विषय आत्मा को स्पर्श नहीं करसक्ते हैं। हे अर्जुन! जो सत् है सो असत् नहीं होता और जो असत् है सो सत् नहीं होता। सुख दुःखादिक असत्रूप हैं और परमात्मा सत्रूप है। जगत्के

सत् वस्तु घटादिक और आकाश के असत्फलादिक त्यागसे जो निष्किञ्चन महासत् पद शेष रहे उसमें स्थित हो। हे अर्जुन! ज्ञानवान् पुरुष इष्ट अनिष्ट से चलायमान नहीं होता; वह इष्ट सुखसे हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट दुःख से शोकवान् नहीं होता चेतन पाषाणवत् शरीर में स्थित होता है। हे साधो! यह चित्त भी जड़ है और देह इन्द्रियादिक भी जड़ हैं। आत्मा चेतन है इनके साथ मिला हुआ आपको देह क्या देखता है? चित्त और देहभी आपसमें भिन्न भिन्नहैं; देहके नष्ट हुये चित्त नहीं नष्ट होता और चित्त के नष्ट हुये देह नहीं नष्ट होता। इनके नष्ट हुये जो आपको नष्ट हुआ मानता है और इनके सुख दुःख से सुखी दुःखी होता है वह महामूर्ख है। हे अर्जुन! स्वरूप के प्रमाद से जो देहादिक में अहंप्रतीति करता है और आपको भोक्ता मानता है वह निर्बुद्धि है। जब आत्मा का बोध होता है तब आपको अकर्ता, अभोक्ता और अद्वैत देखता है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है और रस्सी के बोध से सर्प का अभाव होता है; तैसेही आत्माके अज्ञान से देह और इन्द्रियों के सुख दुःख भासते हैं और आत्मज्ञान से सुख दुःखका अभाव होजाता है। हे अर्जुन! यह विश्व एक अज ब्रह्मस्वरूप है। न कोई जन्मता है और न मरताहै—यह सत् उपदेशहै। हे अर्जुन! ब्रह्मरूपी समुद्रमें तुम एक तरङ्ग फुरे हो और कुछ काल रहके फिर उसी में लीन होजावोगे—इससे तुम्हारा स्वरूप निरामय ब्रह्म है। सब जगत् ब्रह्म का स्पन्द है और समय पाकर दृष्टि आता है; इससे मान, मद, शोक और सुख, दुःख सब असत्‌रूपहै। तुम शान्तिमान् हो रहो। हे अर्जुन! प्रथम तो तुम ब्रह्ममय युद्धकरो और जो कुछ अक्षौहिणी सेनाहै उसका अनुभवसे नाशकरो। यह द्वैत कुछ नहीं एकही सर्वदा परब्रह्मरूप स्थित है। ब्रह्ममय युद्धकरो और सुख, दुःख, हानि, लाभ और जय, अजय इनकी उस युद्ध में एकता करो ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त जो कुछ जगत् भासताहै सो सब ब्रह्मही है ब्रह्मसे कुछ भिन्न नहीं; ऐसे जानके लाभ, हानि में सम होकर स्थित हो और चिन्तना कुछ न करो। हे अर्जुन! जड़शरीर से कर्म स्वाभाविक होतेहैं; जैसे वायुका फुरना स्वाभाविक होता

है तैसेही शरीरसे कर्म स्वाभाविक होते हैं। हे अर्जुन! भोजन, यजन, दान इत्यादिक जो कुछ कार्य करो सो आत्माही में अर्पण करो; सदा आत्मसत्ता में स्थितरहो और सबको आत्मरूप देखो। हे अर्जुन! जो किसी के हृदयमें दृढ़ निश्चय होताहै वहीरूप उसको भासताहै। जब तुम इसप्रकार अभ्यास करोगे तब ब्रह्मरूप होजावोगे-इसमें संशय नहीं। हे अर्जुन! जो कर्मोंमें आत्मा को अकर्ता देखताहै वह मनुष्यों में बुद्धिमान्है और सम्पूर्ण कर्मों के करते भी कुछ नहीं करता। हे अर्जुन! कर्मों के फलकी इच्छा भी न हो और कर्मों से विरसता भी न हो-योग में स्थित होकर कर्म को करो। हे धनंजय! कर्तृत्वके अभिमान और फलकी वाञ्छाको त्यागकर कर्मकरो। जो कर्मों के फल और संगको त्यागकर नित्य तृप्त हुआहै वह करताहुआ भी कुछ नहीं करता। हे अर्जुन! जिसने सब आरम्भों में कामना और संकल्प का त्याग किया है और ज्ञान अग्नि से कर्म जलाये हैं उसको बुद्धिमान् पण्डित कहते हैं। जो आत्मा में समस्थित है और सब अर्थों में निस्स्पृह और निर्द्वन्द्वसत्ता में स्थित है यथाप्राप्ति में बर्तता है सो पृथ्वीका भूषण है और समुद्र की नाईं अचल और अपने आप में तृप्त है। जैसे समुद्र में अनिच्छित जल प्रवेश करता है तैसेही ज्ञानवान् में सुख प्रवेश करते हैं। वह शान्तरूप सर्व कामनाओं से रहित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअर्जुनोपदेशेसर्वब्रह्मप्रति-
पादनंनामत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५३॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! तुम देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित, अविनाशी और अजर आत्मा हो। अजर परिणाम से रहित को कहते हैं। हे अर्जुन! तुम शोक मत करो; यह जगत् तुमको अज्ञान से भासता है। अज्ञान अपने प्रमाद को कहते हैं और प्रमाद अनात्म में आत्म अभिमान करने का नाम है। हे अर्जुन! यह जो संसाररूप तुम्हारा देह है इसमें अभिमान मत करो-यह मिथ्याहै-इसमें दुःख होता है और तुम असंग और अविनाशी हो; तुम्हारा नाश कदाचित् नहीं होता। हे अर्जुन! जो विनाशरूप है वह कदाचित् न होगा और जो

सत्य है उसका अभाव न होगा। तत्त्ववेत्ताओं ने इन दोनों का निर्णय किया है। हे अर्जुन ! जिसमें यह सर्व प्रकाशता है उसको तुम अविनाशी जानो उसको कोई विनाश नहीं कर सकता। हे अर्जुन ! तुम ऐसेहो और यह आत्मा सबका अपना आप है उसका विनाश कैसे हो? अज्ञानी मनुष्य उसका विनाश होता मानते हैं। अर्जुन ने पूछा, हे भगवन् ! आप कहते हैं कि, आत्मा अविनाशी है और सबका अपना आप है तो उनका क्योंकर नाश होताहै? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन ! तुम सत्य कहतेहो। किसीका नाश नहीं होता परन्तु अज्ञान से अपना नाश होता मानते हैं। हे अर्जुन ! तुम आत्मवेत्ता हो रहो। वह आत्मा एक अद्वैत है जिसको एक भी नहीं कहसके तो द्वैत कहां हो? अर्जुन बोले, हे भगवन् ! आप कहते हैं कि, आत्मा एक है तो मृत्यु भी दूसरा न हुआ और लोग मर के नरक स्वर्ग भोगते हैं; यदि मृत्यु नहीं तो लोग मरते क्यों हैं और पाप पुण्य क्यों भोगतेहैं? श्रीभगवान् बोले, हेअर्जुन ! न कोई मरता है और न जन्मता है-यह स्वप्ने की नाईं मिथ्या कल्पना है। जैसे निद्रादोष से जन्मना और मरना भासता है तैसेही संसार में यह जन्म मरण अज्ञान से भासता है। अज्ञान फुरने का नाम है उस फुरने ही से नरक और स्वर्ग कल्पा है। हे अर्जुन ! जैसे यह जीव भोगता है सो तुम सुनो। इस जीवने अपने स्वरूप के प्रमाद से संकल्प के शरीर रचे हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश में मन, बुद्धि और अहंकार से जीव प्रकाश करता है। उस से मिलकर जैसी वासना करता है तैसाही आगे भोगता है। वह वासना तीन प्रकारकी है-एक सात्त्विकी; सरी राजसी और तीसरी तामसी। जैसी वासना होती है तैसाही स्वर्ग और नरक बनजाता है। सात्त्विकी वासना से स्वर्ग बन जाता है और भिन्न से नरकादिक बनजाते हैं। स्वर्ग नरक केवल वासना-मात्र हैं; वास्तव में न कोई स्वर्ग है और न नरक है; न कोई मरता है, न जन्मता है केवल एक आत्मा ही ज्यों का त्यों स्थित है परन्तु यह जगत्-भास भ्रम से भासता है। इस जीव ने अज्ञान से चिरकाल वासना का

अभ्यास किया है, उसी से भ्रम देखता है। अर्जुन बोले, हे जगत्पते! यह जीव जो नरक, स्वर्गादिक योनि जगत् में देखता है उसका कारण कौन है? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! अज्ञान से जो अनात्मा में आत्म अभिमान हुआ है उस से जगत् को सत् जानकर वासना करने लगा है और जैसे २ जगत् को सत् जानकर वासना करता है तैसेही जगत् भ्रम देखता है। जब आत्मविचार उपजता है तब जगत् को स्वप्न की नाईं देखता है और वासना भी क्षय होजाती है और जब वासना क्षय होती है तब कल्याण होता है। फिर अर्जुन ने पूछा, हे भगवन्! चिर अभ्यास से जो संसार भ्रम दृढ़ होरहा है सो किस प्रकार उपजा है और किस प्रकार लीन होगा? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! मूर्खता और अज्ञता से जो अनात्म देहादिक में आत्मभावना होती है उससे जगत् को सत् जान वासना करता है और उस वासना के अनुसार जगत्भ्रम देखता है पर जब स्वरूप का अभ्यास करता है तब वासना नष्ट होजाती है इससे हे अर्जुन! तुम स्वरूप का अभ्यास करो। अहं, मम आदिक वासना को त्यागकर केवल आत्मा की भावना करो। यह देह वासनारूप है जब वासना निवृत्त होगी तब देह भी लीन होजावेगी और जब देह लीन हुई तब देश, काल, क्रिया, जन्म, मरण भी न रहेंगे। यह अपने ही संकल्प से उठे हैं और भ्रमरूप हैं; उनकी वासना से घेरा हुआ जीव भटकता है। जब आत्मबोध होता है तब वासना से मुक्त होता है और निरालम्ब असंकल्प अविनाशी आत्मतत्त्व पाता है। उसी को मोक्ष कहते हैं। हे अर्जुन! जब जीव को तत्त्वबोध होता है तब वासनारूपी जाल से मुक्त होता है और जो वासना से मुक्त हुआ सो मुक्त हुआ। यदि पुरुष सर्वधर्म-परायण भी हो और सर्वज्ञ और शास्त्रों का वेत्ता भी हो पर यदि वासना से मुक्त नहीं हुआ तो वह सब ओर से बन्ध है जैसे दृष्टि के दोष से निर्मल आकाश में मोर के पुच्छवत् तारे भासते हैं तैसेही मूर्खको शुद्ध आत्मा में वासनारूपी मल जगत भासता है। जैसे पिंजरे में पक्षी बन्द होता है तैसेही वह बन्ध होता है। जिसके हृदय में वासना है वह बन्ध है और जिसके हृदय में वासना

नहीं है उसको मोक्ष जानो। हे अर्जुन! जिसके हृदयमें जगत्की वासना है वह यदि बड़ी प्रभुता संयुक्त दृष्टि आता है तौ भी दरिद्री है और दुःख का भोगी है; और जिसकी वासना नष्ट हुई है वह यदि प्रभुता से रहित दृष्टि आता है तौ भी बड़ा प्रभुतावान् है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवनिर्णयोनामचतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५४॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! इस प्रकार तुम निर्वासनिक जीवन्मुक्त होकर बिचरो तब तुम्हारा अन्तःकरण शीतल होजावेगा; जरा मरणसे मुक्त और निःसंग आकाशवत् होगे और इष्ट अनिष्ट को त्याग बीतराग होकर स्थित होगे। हे अर्जुन! पतित प्रवाह जो कार्य आन प्राप्त हो उसको करो और युद्ध में कायरता मत करो। आत्मा अविनाशी है और देह नाशवन्तहै; देह के नाश हुये आत्मा नाश नहीं होता। हे अर्जुन! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं वे रागद्वेष से रहित होकर प्रवाह पतितकार्य को करते हैं। तुमभी जीवन्मुक्त स्वभाव होकर बिचरो और 'यह मैं करूं' 'यह न करूं'; इसग्रहण त्याग के संकल्प को त्यागो। इसीसे ज्ञानवान् बन्धवान् नहीं होते। जो मूर्ख हैं वे इसमें बन्धवान् होते हैं और जीवन्मुक्त पुरुष सुषुप्तवत् स्थित होकर प्रवाह पतित और प्रबुद्ध की नाईं वासना से रहित हुये कार्य करते हैं। जैसे कच्छप अपना अङ्ग समेटलेताहै तैसेही ज्ञानवान् वासना को सकुचालेताहै और आपको चिन्मात्ररूप जानता है। मुझ में जगत्माला के दानों की नाईं पिरोया हुआ है और सब जगत् मेरा अङ्ग है। जैसे अपने हाथ पसारे और समेटे और जैसे समुद्र से तरङ्ग उठते और लीन होते हैं; तैसेही विश्व आत्मासे उपजते और लीन होते हैं-भिन्न कुछ नहीं। हे अर्जुन! जैसे चँदवे के ऊपर नाना प्रकार के चित्त लिखे होते हैं परन्तु वह रङ्ग वस्त्र से भिन्न नहीं होते; तैसेही आत्मा में मनरूपी चितेरे ने जगत् रचा है और अनउपजा होकर भासता है। जैसे थंभे में चितेरा कल्पना करता है कि, इतनी पुतलियां निकलेंगी सो आकाशरूपी पुतलियां उसके मन में फुरती हैं, तैसेही ये तीनों जगत् कालसंयुक्त चित्तमें

फुरते हैं। चितेराभी मूर्ति तब लिखताहै जब उसके चित्तके भीतर कल्पना होती है पर यह आश्चर्य है कि, मन आकाश में चित्र कल्पता है। हे अर्जुन! यह चित्र स्पष्ट भासता है तौभी आकाशरूप है। जैसे स्वप्न सृष्टि आकाशरूप होती है तैसेही यह भी है आकाश और भीत में भेद नहीं परन्तु आश्चर्य है कि, भेद भासता है। जैसे मनोराज स्वप्नपुर में जगत् मन के फुरनेसे भासता है और अफुर हुये लय होजाता है सो मनोमात्र है; तैसेही यह मनोमात्र है और आकाशसे भी शून्यरूप है। जैसे स्वप्न-पुर और मनोराज में एकक्षण में बड़े काल का अनुभव होताहै और पूर्वरूप के विस्मरण से सत् हो भासता है तैसेही यह जगत् सत् हो भासता है। जबतक प्रमाद होता है तबतक भासता है पर जब इस क्रम से आत्मा को देखताहै तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है यद्यपि प्रकट देखता है परन्तु लीन होजाताहै और शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भासता है। जैसे चितेरे के मनमें चित्र फुरते हैं सो आकाशरूप हैं तैसेही यह जगत् आकाशरूप है। हे अर्जुन! भाव अभाववृत्ति को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो तब आकाशवत् निर्मल होजावोगे। जैसे मेघकी प्रवृत्ति में और निवृत्ति में आकाश निर्मलही होताहै, तैसेही तुमभी पदार्थ के भाव अभाव में निर्मल हो। जो कुछ पदार्थ भासते हैं वे सब आकाशरूप हैं। जैसे चितेरेके मनमें पुत-लियां भासती हैं तैसेही यह जगत् आकाशरूप है। जैसे एक क्षण में मन के फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासि आते हैं और अफुर हुये लीन होजाते हैं; तैसेही प्रमाद से जगत् भासता है और आत्मा के जानने से लीन होजाता है आत्मा में जगत् निर्वाणरूप है पर आत्मा में एक निमेष के फुरने के द्वारा प्रमाद से वज्रसार की नाईं दृढ़ हो भासता है और चित्त के फुरनेसे सत् भासता है यह सब जगत् आकाशरूप है-द्वैत कुछ हुआ नहीं पर बड़ा आश्चर्य है कि, आकाश पर लिखे हुये चित्र नानारूप रम-णीय होकर भासते हैं और मनको मोहते हैं। हे अर्जुन! यही आश्चर्य है कि, कुछ है नहीं और नानाप्रकार के रङ्ग भासते हैं। आकाशरूपी नील ताल में चन्द्रमा और तारे आदिक फूल खिले हैं और उनमें मेघरूपी पत्र

लगे हैं। हे अर्जुन! और आश्चर्य देखो कि, चित्रभी तब होताहै जब उसका आधार भीत अथवा वस्त्र होताहै और यहां चित्र प्रथम उत्पन्न होते हैं आधार भूत या दीवार पीछे बनती है। प्रथम ये मूर्तें और चित्र बने हैं और पीछे भीत हुई है; यही आश्चर्य है। हे अर्जुन! यह माया की प्रधानता है कि, वास्तव आकाशरूप चितेरेने आकाश में आकाशरूप पुतलियां रची हैं। आकाश में आकाशरूप पुतलियां उपजी हैं और आकाश में ही लीन होती हैं; आकाश ही को भोजन करती हैं; आकाशही को आकाश देखताहै; आकाशही यह सृष्टि है और आकाशही रूप आकाश आत्मा में आकाश-रूप स्थित है। हे अर्जुन! वास्तव में आत्मा ऐसे है। ऐसे अद्वैतरूप आत्मामें जो उत्थान हुआहै उस उत्थान से उसको स्वरूप का प्रमाद हुआहै जिससे दृश्यभ्रम देखता है और अनेक वासना होती हैं। वासनारूपी रस्सी से बांधाहुआ भटकता है और वासना से घेराहुआ अहंत्वं आदिक शब्दों को जानने लगता है और नानाप्रकार के भ्रम देखता है तौ भी स्वरूप ज्योंका त्यों है। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ताहै और दर्पण ज्यों का त्यों रहताहै तैसेही आत्मा में जगत् प्रतिबिम्बित होताहै और आत्मा छेद भेद से रहित है। ब्रह्महीं ब्रह्म में स्थित है–जब सर्व वही है तब छेद भेद किसका हो? जैसे जल में तरङ्ग और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही यह सब ब्रह्महीं से पूर्ण है उसमें द्वैत कुछ नहीं। जैसे आकाश में आकाश स्थितहै तैसेही आत्मा में आत्मा स्थित है। उसमें वास वासक कल्पना कोई नहीं परन्तु स्वरूप के प्रमादसे वास वासक भेद होताहै। जब स्वरूपका ज्ञान होताहै तब वासना नष्ट हो जाती है। हे अर्जुन! जो वासनासे मुक्तहै वही मुक्तहै और वासना से बांधाहुआ बांध है। यदि सब शास्त्रोंके वेत्ताभी हो। और सर्व धर्मोंसे पूर्णहो तौभी यदि वासनासे मुक्त नहीं हुआ तो बन्धही है। जैसे पिंजरे में पक्षी बन्ध होताहै तैसेही वह वासना से बंधा हुआहै। हे अर्जुन! जिसके हृदय में वासना का बीज है यद्यपि बाह्य दृष्टि नहीं आता तौ भी बहुत फैल जावेगा। जैसे वट का बीज फैल जाता है तैसेही वह वासना फैल जावेगी। जिस पुरुष ने आत्मा का अभ्यास किया है और उससे ज्ञानरूपी

अग्नि उपजाकर वासनारूपी बीज जलाया है उसका फिर संसारभ्रम नहीं उदय होता और न वस्तु बुद्धि से पदार्थों को ग्रहण करता है न सुखदुःख आदिक में डूबता है-सदा निर्लेप रहता है। जैसे तूंबी जल के ऊपरही रहती है तैसेही वह सुख दुःख के ऊपर रहता है। हे अर्जुन ! तुम शान्त आत्मा हो। तुम्हारा भ्रम अब दूर हुआ है और आत्मपदको तुम प्राप्त हुये हो। तुम्हारा मन और मोह निर्वाण होगया है और सम्यक्ज्ञानी हुये हो। व्यवहार करना और तूष्णी रहना तुमको दोनों तुल्य हैं और शान्तरूप निःशङ्कपद को प्राप्त हुये हो। यह मैं जानता हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे श्रीकृष्णसंवादे अर्जुनविश्रान्तिवर्णनं नामपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५५॥

अर्जुन बोले, हे अच्युत ! मेरा मोह अब नष्ट है और मैं आत्मास्मृति को प्राप्त हुआ हूं। आपके प्रसाद से मैं अब निःसंदेह होकर स्थित हुआ हूं; अब जो कुछ आप कहिये वह मैं करूं। श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन ! मन की पांच वृत्तियां हैं-प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, अभाव और स्मृति। जब ये पांचों हृदयसे निवृत्त हों तब चित्त शान्तहो। उसके पीछे चैत्य से रहित चेतन जो शेष रहताहै उसको प्रत्यक्‌चेतन कहतेहैं। वह वस्तु रूपहै। और सब उपाधि से रहित सर्व है और सर्व रूप है। जो उस पद को प्राप्त हुआ है उसको आधि-व्याधि आदिक दुःख नहीं होसक्के। जैसे जाल से निकलकर पक्षी आकाशमार्गको उड़ताहै। तैसेही वह देहाभिमान से मुक्त होकर आत्मपद को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! प्रत्यक् जो चेतनसत्ताहै सो परम प्रकाशरूप, शुद्ध और संकल्प-विकल्प से रहित है और इन्द्रियों के विषय में नहीं आता इन्द्रियों से अतीत है। जो पुरुषसबसे अतीत पदको प्राप्त हुआ है उसको वासना नहीं स्पर्श करसक्की। उसके प्राप्तहुये ये घट पट आदिक पदार्थ सब शून्य होजाते हैं और वहां तुच्छ वासना का कुछ बल नहीं चलता। जैसे अग्नि समूह के निकट बरफ़ गलजाती है और उसकी शीतलता नहीं रहती, तैसेही शुद्धपद के साक्षात्कार हुये चित्तवृत्ति नष्ट होजाती है और वासना का भी अभाव होजाता है। हे अर्जुन ! वासना तबतक फुरती

है जबतक संसार को सत्य जानता है; जब आत्मपद की प्राप्ति होती है तब संसार और वासना का अभाव होजाता है। इस कारण विरक्त पुरुष को सत्य जानने से कुछ वासना नहीं रहती नाना प्रकार के आकार विकारसंयुक्त विद्या तबतक फुरती है जबतक शुद्ध आत्मा को अपने आप से नहीं जाना। शुद्ध आत्मा को प्राप्त हुये जगत् भ्रम सब नष्ट होजाता है; स्वच्छपद आत्मतत्त्व में स्थित होता है; आकाशवत् निर्मलभाव को प्राप्त होता है और अपने आपसे सबको पूर्ण देखता है वही आत्मसत्ता सब आकाररूप है और सब आकाररूपों से रहित भी है। हे अर्जुन! जो शब्द से अतीत परमवस्तु है उसको किसकी उपमा दीजे? जो वासनारूपी विसूचिका को त्यागकर अपने आत्मस्वभाव में स्थित हुआ पृथ्वी में बिचरता है वह त्रिलोकी का नाथ है। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार त्रिलोकी के नाथ कहेंगे तब अर्जुन एकक्षण मौन में स्थित होजावेंगे और उसके उपरान्त कहेंगे कि, हे भगवन्! मेरे सब शोक नष्ट होगये हैं और जैसे सूर्य के उदय हुये कमल खिल आते हैं तैसेही आपके वचनों से मेरा बोध खिल आया है—अब जो कुछ आप की आज्ञा हो वह मैं करूं। इस प्रकार कहकर अर्जुन गाण्डीव धनुष् ग्रहण करेंगे और भगवान् को सारथी करके निःसंदेह और निश्शङ्क होकर रणलीला करेंगे जिसमें हाथी, घोड़े, मनुष्य मारकर लोहू के प्रवाह चलावेंगे तौ भी आत्मतत्त्व में स्थित रहेंगे और स्वरूप से चलायमान न होंगे। जैसे पवन मेघ को अभावकर देता है। तैसेही योधाओं का नाश करेंगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे भविष्यद्गीतानामोपाख्यान समाप्तिर्नामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसी दृष्टि का आश्रय करके जो दृष्टि दुःख का नाश करती है निःसंग संन्यासी हो अपने सब कर्म और चेष्टा ब्रह्म अर्पण करो। जिसमें यह सब है और जिससे यह सर्व है ऐसी सत्ता को तुम परमात्मा जानो। अनुभवरूप आत्मा है उसकी भावना से उसी

को प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं। जो सत्ता संवेदन फुरने से रहित चेतन प्रकाशता है उसीको तुम परमपद जानो। वह सबका परम द्रष्टारूप है और सबका प्रकाशक है और महाउत्तम परमगुरु का गुरु है। जिसको शून्य-वादी शून्य, विज्ञानवादी विज्ञान और ब्रह्मवादी ब्रह्म कहते हैं वह परम-सार शान्तरूप शिव अपने आप में स्थित है वही आत्मा इस जगत्रूपी मन्दिर को प्रकाश करनेवाला दीपक है; जगत्रूपी वृक्ष का रस है; जगत्-रूपी पशु का पालनेवाला गोपाल है; जीवभूतरूपी मोतियों को एकत्र करनेवाला तागा है और हृदय और भूतरूपी मिर्चों में तीक्ष्णता है निदान सब पदार्थों में पदार्थरूप सत्ता वही है। सत्य में सत्यता और असत्य में असत्यता वही है। जगत्रूपी गृह में सब पदार्थों का प्रकाशनेवाला दीपक वही है और उसीसे सब सिद्ध होते हैं। चन्द्रमा, सूर्य, तारे आदिक जो प्रकाशरूप दीखते हैं उनका भी वह प्रकाशक है। यह जड़ प्रकाशहै और वह चेतन प्रकाश है उसमें ये सिद्ध होते हैं और उसीसे सब प्रकाश प्रकट हुये हैं। वह आत्मसंवित् अपनेही विचारसे पायाजाताहै। हे रामजी! जो कुछ भाव अभाव पदार्थ भासते हैं वे असत् हैं; वास्तवमें कुछ हुये नहीं प्रमाददोष से भासते हैं और जब विचार उपजता है तब नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! जिसके हृदयमें अहंभावहै उसे ऐसा जो जगत्जालहै सो मिथ्याभ्रमसे भासता है उसको उपजा क्या कहिये और किसकी आस्था कीजिये? यह जगत् कुछ वस्तु नहीं। आदि—अन्त—मध्य की कल्पनासे रहित जो देव है वह ब्रह्मसत्ता समान अपने आप में स्थित है और द्वैत कुछ बना नहीं। जब यह तुमको दृढ़ निश्चय होगा तो तुम व्यवहार करते भी हृदय से निःसंग और शान्तरूप होगे। हे रामजी! जिस पुरुष की उस समानसत्ता में स्थिति हुईहै वह इष्टअनिष्ट की प्राप्ति में रागद्वेष से रहित हृदय से सदा शान्तरूप रहता है। वह न उदय होता है, न अस्त होताहै; सदा समता-भाव में स्थित रहता है। वह स्वस्थरूप अद्वैततत्त्व में स्थित होताहै और जगत् की ओरसे सुषुप्तवत् होजाता है; व्यवहारभी करता है परन्तु दर्पण के सदृश क्षोभवान् नहीं होता। जैसे मणि सब प्रतिबिम्ब को ग्रहण

करती है परन्तु उसका संग नहीं करती; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष कदाचित् कलना कलङ्क को नहीं प्राप्त होता; उसका चित्त व्यवहार में सदा निर्मल रहता है। ज्ञानवान् को जगत् आत्मा का चमत्कार भासता है; न एक है, न अनेक है; आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है। चित्त में जो यह चेतनभाव भासता है उस चित्त फुरने का नाम संसार है और फुरनेसे रहित अफुर का नाम परमपद है। हे रामजी! महाचेतनमें जो निजका अभाव है कि, मैं आत्मा को नहीं जानता; इसीका नाम चित्तस्पन्द है और यही संसार का कारण है। जब यह भावना क्षय हो तब चित्त अफुर हो। हे रामजी! जहां निजभाव होता है वहां पदार्थों का अभाव होताहै। वह निज सब ठौर अपने अर्थ को सिद्ध करती है परन्तु आत्मा में नहीं प्रवर्त्तसक्ती। जब जीव कहता है कि मैं आत्मा को नहीं जानता तब भी आत्मा का अभाव नहीं होता क्योंकि प्रभाव को जाननेवाला भी आत्मा ही है। जो आत्मतत्त्व न हो तो अभाव क्यों न कहे सो आत्मा परमशून्य है परन्तु अजड़रूप परम चेतन है। हे रामजी! तुम निज का अर्थ आत्मा में करो और आत्मा का अभाव न मानो। अनात्म में जो निज का भावत्व है उसका अभाव करो अर्थात् अनात्म को अभावरूप मानो। जब इस प्रकार दृढ़भावना करोगे तब संसार भ्रम निवृत्त होजावेगा और केवल आत्मभाव शेष रहेगा। हे रामजी! चित्त के फुरने का नाम संसार है चित्त के फुरनेसेही संसारचक्र वर्तता है। जैसे सुवर्ण से भूषण प्रकट होते हैं तैसेही चित्तसे त्रिपुटी होती है पर चित्तस्पन्द भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं आत्मा का आभासरूप है। अज्ञान से चित्त स्पन्द होता है और ज्ञान से लीन होजाता है। जैसे सुवर्ण के भूषण को गलाये से भूषण बुद्धि नहीं रहती तैसेही चित्त अचलहुये चित्तसंज्ञा जाती रहती है और जैसे भूषण के अभाव हुये सुवर्णही रहता है तैसेही बोध से चित्त के लीन हुये शुद्ध चेतन सत्ता शेष रहती है। फिर भोगों की तृष्णा लीन होजाती है और जब भोगभावना निवृत्त होती है तब ज्ञान का परम लक्षण सिद्ध होता है। हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है और जिसने सतरूप को जाना है उसको

भोग की इच्छा नहीं रहती । जैसे जो पुरुष अमृतपान से अघा जाता है उसको खली आदिक तुच्छ भोजन की इच्छा नहीं रहती तैसेही आत्मज्ञान से जो संतुष्ट हुआ है उसको विषय की तृष्णा नहीं रहती । यह निश्चय करके जानो कि, जब चित्त फुरता है तब जगत्भ्रम हो भासता है और सत्य जानकर भोगकी इच्छा होतीहै पर जब बोध होता है तब जगत्भ्रम लीन होजाताहै तो फिर तृष्णा किसकी करे । यदि इन्द्रियों के विषय प्राप्त हों और हठकर उनको न भोगे वह मूर्खहै वह मानों अस्त्र से आकाश को छेदता है । हे रामजी ! गुरु और शास्त्रों की युक्ति से मन वश्य होताहै; उनकी युक्ति विना शुद्धता नहीं होती । यदि कोई अपने अङ्गही को काटे और उससे चित्त को स्थित किया चाहे तौभी चित्त स्थिर नहीं होता और न संसारभ्रमही मिटता है । जबतक चित्त में स्थिति है तबतक जगत्भ्रम दिखताहै और जब गुरुऔर शास्त्रों की युक्ति ग्रहण करके चित्तका अभाव होताहै तब चित्त नष्ट और अचल होजाता है । जैसे बालक को अन्धकार में पिशाच भासता है और दीपक जलाकर देखे से अन्धकार निवृत्त होकर पिशाचभ्रम नष्ट होजाता है तब बालक निर्भय होताहै; तैसेही आत्मज्ञान युक्ति से अज्ञान निवृत्त होताहै; असम्यक्बुद्धि से जगत्भ्रम हुआ है और सम्यक्बोध से निवृत्त होजाता है; फिर जाना नहीं जाता कि; अज्ञान का जगत्भ्रम कहां गया । जैसे दीपक के निर्वाण हुये नहीं जानता कि, प्रकाश कहांगया, तैसेही अज्ञान नष्ट हुये नहीं जाना जाता कि, जगत् कहांगया । चित्त के फुरनेसे बन्ध होताहै और अफुरने से मोक्ष होताहै परन्तु आत्मा से भिन्न कुछ नहीं आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है; उसमें न बन्ध है; न मोक्ष है । हे रामजी ! जब मोक्ष की इच्छा होतीहै तबभी उसकी पूर्णता का क्षय होता है और निःसंवेदन हुये कल्याण होताहै । जो अनाभास अजड़-रूप परमपद है वह चैतन्योन्मुखत्व से रहित है । हे रामजी ! बन्ध मोक्ष आदिक भी कलना में होते हैं । जब कलना से रहित बोध होताहै तब बन्ध मोक्ष दोनों नहीं रहते । जबतक विचार से नहीं देखा तबतक बन्ध और मोक्ष भासता है विचार किये से दोनों का अभाव होजाता है । जब 'अहं' 'त्वं'

'इदं' आदिक भावना का अभाव हुआ तब किसको कौन बन्धक है और किसको कौन मोक्षक है सबकलना चित्त के फुरने से होती है जब चित्त का फुरना नष्ट होता है तब सब कलना का अभाव होजाता है तब शान्तिमान् होता है अन्यथा नहीं होता। इससे चित्तको आत्मपद में लीन करो। जिसके आश्रय यह जगत् उपजता है और लीन होता है ऐसा जो ज्ञान रूप आत्मा है उसी अनुपमरूप प्रत्यक् आत्मप्रकाश में स्थित हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रत्यगात्मबोधवर्णन-
न्नामसप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमतत्त्व परमात्मपद हम को सदा प्रत्यक्ष है और वस्तुरूप वही है उससे कुछ भिन्न नहीं। यह प्रत्यक्आत्मा है और सर्वसत्ता का दर्पण है; सब सत्ता इसीसे प्रकट होती है। जैसे बीज से वृक्ष की सत्ता प्रकट होती है तैसेही आत्मा से जगत् सत्ता प्रकट होती है। हे रामजी! मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार जड़ात्मक हैं और इन से रहित परमपद है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक सब उसी से स्थित हैं जैसे चक्रवर्त्ती राजा निर्धन से ऊँचा शोभता है तैसेही उस सत्ता को पाकर जीव सबलोगों से ऊँचे शोभता है। उस आत्मा को प्राप्त होकर फिर मृत्यु को नहीं प्राप्त होता और न कदाचित् शोकवान् ही होता है न क्षीण होता है एक क्षणमात्र भी जो अप्रमादी होकर आत्मा को ज्यों का त्यों जानता है वह संसार कलना को त्यागकर मुक्त होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के अभाव हुये जो सत्ता-सामान्य शेष रहती है उसका भान कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो सब देहों में स्थित होकर भोजन और जल, पान करता और देखता, सुनता, बोलता इत्यादिक क्रिया करता दृष्टि आता है सो आदि अन्त से रहित संवित् सत्ता सर्वगत अपने आप में स्थित है और सर्वविश्वरूप वही है। आकाश में आकाश; शब्द में शब्द; स्पर्श में स्पर्श; नासिका में गन्ध; शून्य में शून्य; नेत्रों में रूप; पृथ्वी में पृथ्वी; जल में जल; तेज में तेज; वृक्षों में रस; मन में मन; बुद्धि में बुद्धि;

अहंकार में अहंकार; अग्नि में अग्नि; उष्णता में उष्णता; घट में घट; पट में पट; वट में वट; स्थावर में स्थावर; जङ्गम में जङ्गम; चेतन में चेतन; जड़ में जड़; काल में काल; नाश में नाश; बालक में बालक; यौवन में यौवन; वृद्ध में वृद्ध और मृत्यु में मृत्युरूप होकर वही परमेश्वर स्थित है। हे रामजी! इस प्रकार सब पदार्थों में वह अभिन्नरूप स्थित है, नानात्वदृष्टि भी आती है परन्तु अनाना है और भ्रम से भासती है। जैसे परछाहीं में भ्रम से वैताल भासता है तैसेही आत्मा में नानात्व भासती है। सब में, सब ठौर, सब प्रकार, सर्व आत्मा ही स्थित है; ऐसा जो आत्मदेव सत्तासमान है उसमें स्थित हो। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब दिन अस्त होने से सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गये और सूर्य के निकलते ही फिर अपने २ आसन पर आन बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विभूतियोगोपदेशोनामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५८॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जैसे हमारे स्वप्ने में पुर, नगर और मण्डल होते हैं तैसेही ब्रह्मादिक ने उस देव को ग्रहण किया है उनको असत् में प्रतीतिहै और हमको दृढ़ प्रतीति कैसे उपजीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! प्रथम ब्रह्मा को सर्ग असत्वत् भासता है; वास्तव नहीं भासता। सर्वगत चेतन संवित् को संसार के दर्शन से जब सम्यक् दर्शन का अभाव हुआ और स्वप्नरूप में आप से अहंप्रतीति उपजी तब दृढ़ होकर देखने लगा। जैसे अपने स्वप्ने में जगत् दृढ़ भासता है और उसे स्वप्ना नहीं जानता; तैसेही ब्रह्मा का जगत् भी दृढ़ भासता है; स्वप्ना नहीं भासता। जो स्वप्न पुरुष से उपजा है सो स्वप्नरूप है। हे रामजी! ऐसा जो सर्गहै सो जीव जीव प्रति उदय हुआ है। जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं तैसेही चेतनतत्त्व का आभास जगत् फुरते हैं और जैसे स्वप्नपुर में असत् पदार्थ होते हैं तैसेही यह पदार्थ भी अवास्तव हैं और मनके संकल्प से भ्रममात्र ही स्पष्ट भासते हैं। हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, इस जगत् में

सिद्ध नहीं होता; और का और नहीं भासता और मर्यादा नहीं त्यागता क्योंकि, मन के संकल्पमात्र उपजे हैं। तुम देखो कि, जल में अग्नि स्थित है–जैसे समुद्र में बड़वाग्नि है सो विपर्यय है। इसी कारण से कहता हूं कि मनोमात्र है। और देखो कि, आकाश में नगर बसते हैं; विमान प्रत्यक्ष चलते हैं और चिन्तामणि आदिक से कमल उपजते हैं। जैसे हिमालय पर्वत में बरफ़ उपजती है और सब ऋतु के फूल एकही समय उपजते हैं। जैसे संकल्प के वृक्ष से पत्थर निकलआते हैं; शिला में जल निकलता है; चन्द्रकान्ति से अमृत द्रवता है और निमेष में घट पट होजाते हैं और पट घट होजाते हैं; निदान स्वरूप के विस्मरण हुये सत्को असत् देखता है जैसे स्वप्ने में अपना मरना देखता हैं; जल ऊर्ध्व को चलता देखता है; मेघ होकर स्वर्ग में गंगा बहती देखता है और पत्थर उड़ते देखताहै। जैसे पंखों सहित पहाड़ उड़ते हैं और चिन्तामणि शिलारूप से सब पदार्थ उपजते हैं इत्यादिक भ्रम से नानात्व विपर्ययरूप हो फुरते हैं। इससे तुम देखो कि, सब मनोमात्र हैं और का और हो जाते हैं। हे रामजी! यह इन्द्रजाल, गन्धर्वनगर और साम्बर मायावत् हैं; असत् ही भ्रम करके सत् हो भासता है। ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, सत् नहीं और असत् भी नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नविचारोनामै-
कोनषष्टितमस्सर्गः॥ ५९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह संसार मिथ्या है। जो पुरुष इसको सत्य जानता है वह महामूर्ख है और भ्रममें भ्रम देखकर महामोह को प्राप्त होता है। जैसे कोई मृग गढ़े में गिरपड़ता है तो महादुःखी होताहै और फिर उससे भी बड़े गढ़ेमें गिरता है तो अति दुःख पाताहै; तैसेही जो मूर्खपुरुषहै वह आत्मा के अज्ञान से संसाररूपी गढ़े में गिरता है और उससे और और भ्रम देखता है और स्वप्ने से स्वप्नान्तर देखता है। इसीसे एक इतिहास कहता हूं उसे मन लगाकर सुनो। एक मनन और शीलवान् संन्यासी योग के आठवें अङ्ग समाधि में स्थित था और उसका हृदय

समाधि करते करते शुद्ध हुआ था। समाधि में दिन को व्यतीतकरे और जब समाधि से उतरे तो फिर आसन लगाकर समाधि में लगे। इसी प्रकार जब बहुत काल बीता तो एक समय समाधि से उतर वह यह चिन्तना करने लगा कि, जैसे प्रकृति पुरुष बिचरते और चेष्टा करते हैं तैसेही मैं भी कुछ चेष्टा रचूं। ऐसे विचार करके उसने मनके संकल्प से विश्व कल्पी और उसमें एक आप भी बना और उसका नाम भीवट हुआ निदान मद्यपान करे और ब्राह्मणों की सेवा भी करे। चेष्टा करते २ सोगया और स्वप्ने में उसको ब्राह्मण के शरीर का भान हुआ तो उस ब्राह्मणशरीर में वेद का अध्ययन और पाठ करने लगा। ऐसी चेष्टा से जब उसे चिरकाल बीता तो फिर स्वप्ना आया और आपको बड़ी सेना संयुक्त राजा देखा और उस सेनासंयुक्त राजा होकर बिचरने लगा। कुछ काल जब इसी प्रकार व्यतीत हुआ तो फिर स्वप्ना आया और उस स्वप्ने में आपको चक्रवर्ती राजा देखा और चक्रवर्ती होकर सारी पृथ्वी पर आज्ञा चलाने लगा। जब कुछ काल बीता तो फिर आपको देवाङ्गना देखा और देवता के साथ बाग में बिचरने लगा और जैसे बेलि वृक्ष के साथ शोभा पाती है तैसेही देवता के साथ शोभा पाने लगा। इसी प्रकार जब कुछ काल देवता के साथ बीता तो फिर स्वप्ना आया और आपको हरिणी देखा और वन में चरने लगा। कोई काल ऐसे भी व्यतीत हुआ तो फिर स्वप्ना आया और आपको देवताओं के वन की बेलि देखा। जब ऐसे कुछ समय बीता तो फिर स्वप्ने में आपको भँवरी देखा और सुगन्ध को ग्रहण करने लगा। उसके अनन्तर फिर स्वप्ना आया कि, मैं कमलिनी हूं और वहां एक दिन हाथी आकर बेलि को खागया। जैसे कोई मूर्खबालक भली वस्तु को भी तोड़ डालता है तैसेही वह मूर्ख हाथी बेलि तोड़कर खागया। उसके उपरान्त उस बेलि ने हाथी का शरीर पाकर बड़ा दुःख पाया और गढ़े में गिरा। थोड़े समय के उपरान्त हाथी को स्वप्ना आया और भँवरी होकर कमलों में बिचरने लगा। जब कुछ काल बीता तो फिर वह बेलि हुआ और उस बेलि के निकट एक हाथी

आया और उस हाथी के पांवों से वह बेलि चूर्ण होगई। तब उस बेलि को एक हंस ने खाया तब वह बेलि हंस हुआ और बड़े मानसरोवर में विचरने लगा। फिर उस हंस के मन में आया कि मैं ब्रह्मा का हंस होऊं। तब वह अपने संकल्प से ब्रह्मा का हंस बनगया जैसे जल का तरङ्ग बन जावे। तब ब्रह्मा के उपदेश से हंस को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। हे रामजी! अज्ञान से ऐसे भ्रम पाके ज्ञान से शान्त हुआ फिर सदेहमुक्त होगा। वह हंस सुमेरुपर्वत में उड़ा जाता था तब उसके मन में आया कि, मैं रुद्र होऊं इसलिये सत् संकल्प से रुद्र होगया। जैसे शुद्धदर्पण में शीघ्रही प्रतिबिम्ब पड़ता है तैसेही शुद्ध अन्तःकरण के संकल्प से वह रुद्र हुआ। जिसको अनुत्तर ज्ञान हो उसको रुद्र कहते हैं और अनुत्तर ज्ञान वह है जिसके पाने से और कुछ पाना नहीं रहता। चेष्टा से अपने गुण को देख उस रुद्र के मन में विचार हुआ कि, बड़ा आश्चर्य है कि; मैं अज्ञान से इतने बड़े भ्रम को प्राप्त हुआ था। बड़ी आश्चर्य माया है! मैं तो एक और बड़ा हूं और यह विश्व मेरा स्वरूप है। जो मेरे निज शरीर हैं उनको जाकर जगाऊं। तब रुद्र उठ खड़ा हुआ और अपने स्थान को चला। प्रथम संन्यासी के शरीर को आकर देखा और चित्तशक्ति से उसे जगाया तो संन्यासी के शरीर में ज्ञान हुआ कि, सब मैं ही खड़ा हूं, परन्तु संन्यासी ने जाना कि; मुझको रुद्र ने जगाया है और इतने शरीर मेरे और भी हैं। फिर वहां से वह रुद्र और संन्यासी दोनों चले और झीवट के स्थान में आये तो देखा कि, झीवट शव की नाईं पड़ा है; मदिरा के बासन पड़े हैं, चेतना भी वहां ही भ्रमती है और नाना प्रकार के स्थान देखती है—जैसे झरने के छिद्र में चींटी भ्रमती है। तब उन्होंने झीवट को चित्तशक्ति से जगाया और वह उठ खड़ा हुआ तो उसको ऐसा स्मरण हुआ कि, मुझे तो इन्होंने जगाया। फिर झीवट के मन में विचार हुआ कि, इतने शरीर मेरे और भी हैं। निदान रुद्र, संन्यासी और झीवट तीनों चले। इन्होंने विचार किया कि, हमने इतने शरीर क्योंकर पाये कि, आदि तो मैं एक परमात्मा में चैतन्योन्मुखत्व करके संन्यासी

हुआ, फिर संन्यासी से झीवट हुआ और मद्यपान करने लगा; फिर ब्राह्मण होकर वेद का पाठ करने लगा और उसके पाठ करने के पुण्य से राजा का शरीर धारण किया, उसके आगे जो बड़ा पुण्य प्राप्त हुआ उससे चक्रवर्ती राजा हुआ; चक्रवर्ती राजाके शरीरमें काम बहुत हुआ उससे देवता की स्त्री हुआ और स्त्रीके शरीरमें नेत्रोंमें बहुत प्रीति थी उससे हरिणी हुआ; फिर भँवरी हुआ; उससे आगे बेलि हुआ और इससे लेकर जो शरीर धारे सो मिथ्या धारे और अज्ञान से बहुत काल भटकता रहा। अनेक वर्ष और सहस्रों युग व्यतीत होगयेहैं संन्यासी से आदि रुद्र पर्यन्त वासना करके जन्म पाये हैं और इतने जन्म पाकर ब्रह्मा का हंस हुआ तब वहां ज्ञान की प्राप्ति हुई क्योंकि; पूर्व अभ्यास किया था उससे अकस्मात् से सत्संग प्राप्त हुआ। ऐसे विचार करते वे वहां से चले और चेतन आकाश में उड़कर वेदपाठ करनेवाले ब्राह्मण की सृष्टि में गये तो उसको देखा कि, पड़ा है। चित्तशक्ति से उन्होंने उसको जगा रुद्र, संन्यासी, मद्यपान करनेवाला झीवट और ब्राह्मण चारो वहां से चले और चित्ताकाश में उड़े और राजा की सृष्टि में पहुँचे तो देखा कि, राजा की सृष्टि चेष्टा करती है और राजा जिनकी देह सुवर्ण की नाईं शोभायमान है अपने मन्दिर में रानी समेत शय्या पर सोवे हैं और सहेलियां चमर करती हैं। तब उन्होंने राजा को चित्तशक्ति से जगाया और उसने देखा कि, सर्वविश्व मेरा ही स्वरूप है और इतने शरीर मैंने अज्ञान से धरे हैं। निदान रुद्र, संन्यासी, मद्यपान करनेवाला झीवट, ब्राह्मण और राजा वहां से चले और हाथी से आदि लेकर जितने शरीर धरे थे उन सबको जगाया और उनमें यही निश्चय हुआ कि, हम चिन्मात्ररूप हैं और आवरण से रहित हैं अर्थात् अज्ञान के फुरने से रहित हैं। हे रामजी! तब उनके शरीर अलग २ दीखे परन्तु चेष्टा और निश्चय सबकी एक सी ही थी। उनका नाम शतरुद्र हुआ। हे रामजी! सम्पूर्ण विश्व अज्ञान के फुरने से होता है और ज्ञान से देखिये तो कुछ नहीं। ऐसे ही उनका संवेदन और निश्चय एकसा हुआ। एक देखे तो जाने कि, सर्व ही मेरा रूप है और जब दूसरा देखे तो विचारे कि, मेरा ही

रूप है। जैसे समुद्र से अनेक तरङ्ग होते हैं पर उनके आकार भिन्न २ होते हैं और स्वरूप एक सा ही होता है; तैसेही ज्ञानवान् सर्वविश्व को अपनाही स्वरूप देखते हैं और अज्ञानी उनको भिन्न भिन्न जानते हैं और आपको भिन्न जानते हैं। एकको दूसरा नहीं जानता और दूसरे को प्रथम नहीं जानता। हे रामजी ! यह विश्व अपनाही स्वरूप है पर अज्ञान से भिन्न भासता है। चिन्मात्र में फुरने को अज्ञान कहते हैं। चित्तफुरने से संसार है और न फुरने से आत्मस्वरूप ही है। इससे हे रामजी ! फुरने का त्याग करो और कुछ नहीं, जिसप्रकार शत्रु मरे उस प्रकार मारिये—यही यत्न करो; और मैं तुमसे ऐसा उपाय कहता हूं कि, जिसमें कुछ यत्न नहीं और शत्रुभी माराजावे। हे रामजी ! यह चिन्तना ही दुःख है और चिन्तना से रहित होना ही सुख है—आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। इस चित्त के फुरने से संसार है और निवृत्त होने में स्वरूपही है। जैसे पत्थर में पुरुष पुतलियां कल्पता है तो पत्थर से भिन्न पुतलियों का अभाव है; तैसेही चित्त ने विश्व कल्पा है। जब चित्त निवृत्त हो तब विश्व अपनाही स्वरूप है; कुछ भिन्न नहीं। चित्त से जहां जावे वहां पञ्चभूत ही दृष्टि आते हैं आत्मा नहीं दृष्टि आता और चित्त से रहित ज्ञानी जहां जावे वहां आत्माही दृष्टि आता है। जब चित्त की वृत्ति बहिर्मुख होती है तब संसार होता है और पञ्चभूत ही दृष्टि आते हैं और जब चित्त की वृत्ति अन्तर्मुख होती है तब ज्ञानरूप अपना आपही भासता है। जो कुछ पदार्थ हैं सो ज्ञानरूप आत्मा विना सिद्ध नहीं होते। प्रथम आपको जानता है तो और पदार्थ जानते हैं। इसी से ज्ञानवान् सब अपना आप जानता है। हे रामजी ! ये जो कुछ पदार्थ हैं सो फुरने से कल्पते हैं और जितने जीव हैं उनकी संवेदन भिन्न २ है। संवेदन में अपनी २ सृष्टि है। जैसे किसी सोये हुये पुरुष को अपने स्वप्ने की सृष्टि भासती है और जो उसके पास बैठा होता है उसको नहीं भासती, क्योंकि उसकी विश्व स्वप्ने को नहीं जानती; तैसे ही जो ज्ञानी है उसको अपना आपही भासता और इस सब जगत् को अपना रूप जानता है। ज्ञानी

जिस ओर देखता है उसी ओर पञ्चभूत दृष्टि आते हैं । जैसे पृथ्वी के खोदे से आकाश ही दृष्टि आता है तैसेही ज्ञानी चित्तसहित जहां देखता है तहां पञ्चभूतही दृष्टि आते हैं । इससे हे रामजी ! तुम फुरने से रहित हो । फुरने ही से बन्ध है और न फुरने से मोक्ष है; आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो तैसा करो । हे रामजी ! जो अफुरने से अस्त होजावे उसके नाम में कृपणता करना क्या है और जो अफुरने से प्राप्त हो उसको प्राप्त रूप जानो । रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर ! यह भीवट और ब्राह्मण से आदि लेकर संन्यासी के रूप स्वप्ने में हुये, उसके उपरान्त फिर क्या हुआ ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ब्राह्मण से आदि जितने शरीर थे वे रुद्र के जगाये हुये सुखी हुये और जब सब इकट्ठे हुये तब रुद्र ने उनसे कहा, हे साधो ! तुम अपने २ स्थान को जाओ और कुछ काल अपने कलत्र में भोग भोगो तब तुम मेरे गण होकर मुझको प्राप्त होगे और महाकल्प में हम सबही विदेहमुक्त होंगे । हे रामजी ! जब रुद्र ने ऐसे कहा तब सब अपने २ स्थानों को गये और रुद्रजी भी अन्तर्धान होगये वे अब भी तारों का आकार धारे हुये कभी कभी मुझको आकाश में दृष्टि आते हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! आपने कहा कि, संन्यासी ने भीवट से आदि लेकर सब शरीर धारे सो सत् कैसे हुये और उनकी सृष्टि कैसे सत् हुई सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मा सबका अपना आप, शुद्ध, चेतन, आकाश और अनुभवरूप है; उसमें जैसे देश, काल और वस्तु का निश्चय होता है तैसेही बनजाता है । जैसे २ फुरता है तैसेही तैसे आगे होजाता है । जिसका मन शुद्ध होताहै उसका सत् संकल्प होताहै और जैसा संकल्प करताहै तैसाही होता है । जो तुम कहो कि, संन्यासी का अन्तःकरण शुद्ध था उसने नीच और ऊंच जन्म कैसे पाये अर्थात् मद्यपान करनेवाला और भँवरी, बल्ली से आदि लेकर नीच और ऊंच अर्थात् ब्राह्मण, राजा आदि लेकर शुद्ध अन्तःकरण में ऐसे जन्म न चाहिये; तो उसका उत्तर यह है कि, संवेदन में जैसा फुरना होता है तैसा ही हो भासता है । जैसे एक पुरुष का

अन्तःकरण शुद्ध हो और उसके मन में फुरे कि, एक शरीर मेरा विद्याधर हो और एक शरीर भेड़ का हो तो उसके दोनों भले और बुरे भी होजाते हैं। जो तुम कहो कि, बुरा क्यों बना भलाही बनता तो उसका उत्तर सुनो कि, जैसे भले परिडत के घर पुत्र हो और संस्कार अर्थात् वासना से चोर होजावे तो उसको दुःख होता है। इससे हे रामजी! सब फुरने ही से ऊंच नीच होते हैं; जब अभ्यास और परमयोग होताहै तब शुद्ध होताहै। अभ्यास, मन्त्र, जाप और चित्त के स्थित करने को योग कहते हैं। इससे जैसी २ चिन्तना होती है तैसीही सिद्ध होतीहै और अज्ञानी की नहीं होती। जैसे वस्तु निकट पड़ी है और भावना नहीं तो दूरहै; तैसेही अज्ञानी की भावना नहीं तो न दूरवाली वस्तु प्राप्त होतीहै और न निकटवाली प्राप्त होती है। वह सिद्ध इसलिये नहीं होती, क्योंकि उसकी भावना दृढ़ नहीं और हृदयभी शुद्ध नहीं संकल्प भी तब सिद्ध होता है जब हृदय शुद्ध होता है। शुद्ध हृदयवाला जिसकी चिन्तना करता है वह चाहे दूर भी है तोभी सिद्ध होता है और जो निकट है सो भी सिद्ध होताहै। जो तुम कहो कि, संन्यासी तो एक था बहुत चेतन शरीर कैसे हुये तो उसका उत्तर सुनो। जो कोई योगीश्वर हैं और योगिनी देवियां हैं उनका संकल्प सत्यहै; उन्हें जैसा संकल्प फुरता है तैसाही होता है। ऐसे सत् संकल्पवाले मैंने अनेक आगे देखेहैं। एक सहस्रबाहु अर्जुन राजा था जो अपने घरमें बैठाथा और उसके शिरपर छत्र झुलता और चमर होते थे; उसके मन में संकल्प हुआ कि मैं मेघ होकर बरसूं। उस संकल्प के करने से उसका एक शरीर तो राजा का रहा और एक शरीर से मेघ होकर बरसनेलगा। विष्णु भगवान् एक शरीर से तो क्षीरसमुद्र में शयन करते हैं और प्रजा की रक्षा के निमित्त और शरीर भी धारलेते हैं। यक्षदेवियां अपने २ स्थानों में होतीहैं और बड़े ऐश्वर्य में बिचरती हैं; इन्द्र एक शरीर से स्वर्ग में रहता है और दूसरे शरीर से जगत् में भी बैठा रहता है। योगीश्वरों का जैसा संकल्प होता है तैसाही सिद्ध होता है और जो अज्ञानी मूर्ख हैं उनका मन बड़े भ्रम को प्राप्त होता है और वे बड़े मोह को प्राप्त होते हैं और मोह से आगे

मोह से नीच गति को प्राप्त होते हैं। जैसे बड़े पर्वत के ऊपर से बट्टा गिरता है सो नीचे को जाता है तैसेही मूर्ख आत्मपद से गिरके संसार-रूपी गढ़े में पड़ते हैं और बड़े दुःख पाते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, संसार स्वप्नमात्र है सो मैंने जाना कि, अनन्त मोहरूपी विषमता है और आत्मचेतनरूप आनन्द के प्रमाद से जीव आपको जड़ दुःखी जानताहै। यह बड़ाआश्चर्य है! हे भगवन्! यह जो आपने संन्यासी कहा उसके समान कोई और भी है अथवा नहीं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसाररूपीमट्टी में मैं रात्रिके समय समाधिकरके देखूंगा और तुमसे प्रभातको जैसे होगा तैसे कहूंगा। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले; हे राजन्! वशिष्ठजी ने जब इतना कहा तो मध्याह्न का समय हुआ नौबत नगाड़े बजने लगे जिनका प्रलयकाल के मेघवत् शब्द होनेलगा और वशिष्ठजी के चरणों पर राजा और देवताओं ने फूल चढ़ाये और सब ने बड़ी पूजा की। जैसे बड़ा पवन चलता है और वेग करके बाग वृक्षों के फूल पृथ्वी पर गिर पड़तेहैं तैसेही सबने बहुत फूलों की वर्षा की। इस प्रकार प्रथम तो बहुत पूजा होती रही फिर वशिष्ठजी को नमस्कार करके सब उठके खड़े हुये और आपस में नमस्कार किया। फिर राजा दशरथसे आदि लेकर राजा और ऋषि सब उठे और जैसे मन्दराचल पर्वत में सूर्य उदय होताहै तैसेही वशिष्ठजी से आदि लेकर ऋषि और राजा दशरथ से आदि सब राजा उठे। तब पृथ्वी के राजा और प्रजा पृथ्वी को चले और आकाश के सिद्ध और देवता आकाशको चले और सब अपने अपने कर्म में जालगे और जैसे शास्त्रोक्त व्यवहार है उसमें स्थितहुये। जब रात्रि हुई तब विचार करते रहे कि, वशिष्ठजी ने कैसे ज्ञान उपदेश किया है और उस विचार में उनकी रात्रि एक क्षण की नाईं बीती। इतने में सूर्यकी किरणों के उदय होतेही राम लक्ष्मण आदि सब आये और परस्पर नमस्कारकर अपने२ आसन पर शान्तरूप होकर बैठे—जैसे पवन से रहित कमल स्थित होते हैं। तब वशिष्ठजी ने अनुग्रह करके आपही कहा, हे रामजी! तुम्हारी प्रीति के निमित्त मैंने संसार का बहुत खोज किया और आकाश, पाताल

और सप्तद्वीप सब खोजे हैं परन्तु ऐसा कोई संन्यासी न देखा और न अन्य का संकल्प उसकी नाईं भासता है। जब एक प्रहर रात्रि रही तो मैंने फिर ढूंढ़कर उत्तर दिशा में चिन्माचीन नगरमें एक मढ़ी देखी तो उसके दरवाजे चढ़े हुये थे और उसमें पके बालवाला एक संन्यासी बैठा था और बाहर उसके चेले बैठेथे। वे दरवाजे नहीं खोलतेथे कि, ऐसा न हो हमारे गुरु की समाधि खुलजावे। वह उस स्थान में दूसरे ब्रह्मा की नाईं बैठा है। उसको बैठे अभी इक्कीस दिन हुये हैं पर उसको समाधि में सहस्र वर्षों का अनुभव हुआहै और उसने बहुत जन्म भी पाये हैं जो उसको प्रत्यक्ष भासितहुये हैं। उसने सृष्टिभी प्रत्यक्ष देखी है और उसमें बिचराहै। हे रामजी! इसकासा एक और भी पूर्व कल्प में था। इतना सुन राजा दशरथने कहा, हे महा-मुनीश्वर! जो आप आज्ञा दें तो मैं अपना अनुचर चिन्माचीन नगर में भेजूं कि, वह वहां जाकर उस संन्यासी को जगावे? वशिष्ठजीने कहा हे राजन्! वह संन्यासी अब ब्रह्मा का हंस होकर ब्रह्मा के उपदेश से जीवन्मुक्त हुआ है और यह शरीर उसका अब मृतक हुआ है। उसमें अब पुर्यष्टका अर्थात् जीव नहीं उसका क्या जगाना है? एक महीने पीछे शिष्य उसका दरवाजा खोलेंगे तो उस नगरके लोग देखेंगे कि, वह मृतक पड़ा है। इससे, हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र ही है और जो तुम कहो कि, एकसे क्योंकर हुये तो सुनो कि, जैसे यह मुनीश्वर, ऋषि, राजा और और जो संसार में लोग हैं वे कईबार एकसा शरीर धारते हैं और कई-बार मध्य धारते हैं, कई कुछ थोड़ा धारते हैं और कई विलक्षण धारते हैं। इस नारदजी के समान और भी नारद होंगे उनकी चेष्टा भी ऐसी ही होगी और शरीर भी ऐसाही होगा। व्यासजी, शुकदेव, भृगु, भृगु के पिता; जनक, करकर, अत्रि ऋषीश्वर और अत्रि की स्त्री भी जैसी कि अब हैं वैसीही होंगी। जैसे समुद्र में तरङ्ग एक से भी और न्यून अधिक भी होते हैं तैसेही यह संसार ब्रह्मा से आदि लेकर पाताल पर्यन्त सब मनका रचा हुआ है और सब मिथ्या है। जब यह चित्तकला बहिर्मुख होती है तब संसार और देशकाल होता है और जब अन्तर्मुख होती है

तब आत्मपद प्राप्त होता है । जबतक बहिर्मुख होती है तबतक दुःख पाता है। अपना स्वरूप आनन्दरूप है उसमें चित्तकला जानती है कि, मैं सदा दुःखी हूं। देह और इन्द्रियों से मिलकर दुःखी होता है। इससे हे रामजी ! इस अज्ञानरूप फुरने से तुम रहित होरहो। फुरने से यह अवस्था प्राप्त होती है। जैसे चन्द्रमा अमृत से पूर्ण है और उसमें चर्मदृष्टि से कलङ्कता भासती है तैसेही अमृतरूपी चन्द्रमा आत्मा में अज्ञानदृष्टि से जन्म, मरण, शोक, दुःख, भय, कलङ्क दीखता है। यह माया महाआश्चर्य रूप है जैसे चन्द्रमा एक है और नेत्रद्वेष से बहुत भासते हैं तैसेही एक अद्वैत आत्मा में नानात्व विश्व का भान अज्ञान से होता है। यही माया है। हे रामजी ! तुम एकरूप आत्मा हो; उसमें फुरने से विश्वकल्पा है। इससे फुरने से रहित हुये विना आत्मा का दर्शन नहीं होता। जैसे उदय हुआ सूर्य भी बादल के होते शुद्ध नहीं भासता तैसेही फुरनरूपी बादल के दूर हुये आत्मरूपी सूर्य शुद्ध भासताहै और दृश्य, दर्शन, द्रष्टा फुरने से कल्पे हैं। हे रामजी ! इससंसार का सार जो आत्माहै उसमें सुषुप्त की नाईं मौन हो रहो। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! मैं तीन मौन जानता हूं—एक वाणीमौन अर्थात् चुपकर रहना; दूसरा इन्द्रियों का मौन और तीसरा कष्टमौन अर्थात् हठ करके मन और इन्द्रियों को वश करना; सुषुप्त मौन नहीं जानता आप कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ये तीनों कष्ट मौन तपस्वियोंके हैं और सुषुप्त मौन ज्ञानी और जीवन्मुक्तकाहै। वे तीनों मौन जो तुमने कहे सो अज्ञानी तपस्वियों के हैं; उनको फिर सुनो। एक वाणी का मौन कि, बोलना नहीं दूसरा मौन समाधि कि, नेत्रों का मूंद लेना और कुछ न देखना और तीसरा हठकर स्थित होना और मन और इन्द्रियों को स्थित करना। एक मौन इन्द्रियोंकी चेष्टासे रहित होना और ज्ञानीका सुषुप्त मौन सुनो कि, वाणी और इन्द्रियों से चेष्टा करना पर आत्मा से भिन्न और कछ न भासित होना अथवा ऐसे होना कि, न मैं हूं, न जगत् है अथवा ऐसे होना कि, सब मैं हीं हूं। ऐसे निश्चय में स्थित होना बड़ा उत्तम मौन है। हे रामजी ! विधि से भी आत्मा की सिद्धि होती है

और निषेध से भी होती है। उस आत्मा में स्थित होना बड़ा मौन है। हे रामजी! यह जो मैंने सुषुप्त मौन कहा है सो क्या है कि, द्वैतरूप संसार के फुरने से सुषुप्त होना; आत्मा में जागना और ऐसे देखना कि, न मुझमें जाग्रत्‌है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति है। इस निश्चयमें स्थित होना तुरीयातीत है। यह पञ्चम मौन है। ऐसा तुरीयातीत पद अनादि अनन्त जरासेरहित शुद्ध निर्दोष है। हे रामजी! ज्ञानी इन्द्रियों के रोकने की इच्छा भी नहीं करता और न बिचरने की इच्छा करताहै जैसे स्वाभाविक आनपड़े उसमें स्थित होता है। यह परम मौन है। ज्ञानी को सुख की इच्छा भी नहीं और दुःख का त्रास भी नहीं; वह हेयोपादेय से रहित है। हे रामजी! तुम रघुवंशकुल में चन्द्रमा हो अपने स्वभाव में स्थित हो; संसारभ्रम मन के फुरने से होता है सो मिथ्या है वास्तव नहीं; और न शरीर सत्य है, न माया सत्य है। हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप ओंकार है और ओंकार को अङ्गीकार करके स्थित होना परम उत्तम मौन है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो पीछे आपने सब रुद्र कहे वे रुद्र थे अथवा रुद्र के गण थे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसको रुद्र कहते हैं—उसी को गण कहते हैं ये सब ही रुद्र हैं। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो आपने कहा कि, सब रुद्र हुये ये तो एक चित्त थे सब क्योंकर हुये? जैसे दीपक से दीपक होता है इसीभांति हुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक सावरण है दूसरा निरावरण है। जिसका शुद्ध अन्तःकरण है वह निरावरण है और जिसका मलिन अन्तःकरण है वह सावरण है। शुद्ध अन्तःकरण में जैसा निश्चय होता है तैसाही तत्काल आगे सिद्ध होता है और मलिन अन्तःकरण का फुरना सिद्ध नहीं होता। इससे शुद्ध जो निरावरण रुद्र है सो आत्मा है और सर्वव्यापी है; जैसा उनका निश्चय होता है सो सत्य है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सदाशिव की चेष्टा तो मलिन है कि, रुण्डों की माला गरे में धारते हैं और विभूति लगाकर श्मशान में विहार करते हैं और स्त्री बायें अङ्ग में रहती है। आप क्योंकर कहते हैं कि, उनका शुद्ध अन्तःकरणहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध

अशुद्ध अज्ञानीको कहते हैं। जो शुद्ध में बर्ते अशुद्ध में न बर्ते जो ज्ञानी है। वह अपने में क्रिया नहीं देखता और उसको शुद्ध अशुद्ध मलिन से राग-द्वेष नहीं होताहै। ऐसे सदाशिवजी को ग्रहण त्याग नहीं है, जो स्वाभाविक चेष्टा होती है सो हो वह ऐसे होती है कि, जैसे आदि परमात्मा में विष्णु भगवान् चार भुजा धारे संसार की रक्षा करने के लिए शुद्ध चेष्टा से अवतार धारकर धर्म की रक्षा करते हैं और पापियों को मारते हैं। यह आदि फुरना हुआ है। जो क्रिया स्वाभाविकही आन प्राप्त हो, उस क्रिया का उनको रागद्वेष करके हेयोपादेय कुछ नहीं और उनको क्रिया का अभिमान भी नहीं होता इसी से क्रिया उनको बन्ध नहीं करती। इससे यह सिद्ध है कि, संसार फुरनेमात्र है। जब तुम फुरने से रहित होगे तब तुमको त्रिपुटी न भासेगी आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासेगा इससे तुम अज्ञानरूप फुरने से रहित हो जब तुमको और आत्मपद का साक्षात्कार होगा। तब तुम जानोगे कि, मुझमें फुरन, दृश्य, अदृश्य कुछ नहीं केवल आत्मपद है जिसमें एक कहना भी नहीं तो द्वैत कहां से हो? हे रामजी! दृश्य, अदृश्य, फुरना, न फुरना और विद्या, अविद्या ये सब उपदेश के निमित्त कहते हैं, आत्मा में कुछ कहा नहीं जाता। आत्मा एकहै जिसमें द्वैत का अभाव है। जब चित्त परिणाम बहिर्मुख होताहै तब विश्व का भान होता है और जब चित्त अन्तर्मुख परिणाम पाता है तब अहन्ता और ममता का नाश होता है और चेतनमय शेष रहता है। जब अतिशय अन्तर्मुख परिणाम होता है तब चेतन भी नहीं कहा जाता और जब इससेभी अतिशय परिणाम पाताहै तब 'है' 'नहीं' भी नहीं कहाजाता। हे रामजी! ऐसा आत्मा तुम्हारा अपना आप स्वरूप और शान्तपद है उसमें वाणी का गम नहीं कि, ऐसा कहिये और तैसा कहिये। ऐसा कहिये तो इन्द्रियों का विषय है और तैसा कहिये तो इन्द्रियों से पर है। जब तुम अपने में स्थित होगे तब जानोगे कि, मुझमें अहंफुरना कुछ नहीं। आत्म-रूपी सूर्य के साक्षात्कार हुये से दृश्यरूपी अन्धकार का अभाव होजावेगा क्योंकि, आत्मा तुम्हारा अपना आपहै जो केवल शान्तरूप और निर्मलहै।

जैसे गम्भीर समुद्र वायुसे रहित होताहै तैसेही आत्मरूपी समुद्र संकल्परूपी वायुसे रहित, गम्भीर और शुद्ध होता है। यह संसार चित्त का चमत्कार है जो निरंश है और जिसमें अंशांशी भाव नहीं—अद्वैत है। हे रामजी! जब ऐसे बोध में स्थित होगे तब इस विश्व को भी आत्मरूप देखोगे और यदि बोध विना देखोगे तो विश्व का भान होगा। इससे हे रामजी! बोध में स्थित रहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नाम षष्ठितमस्सर्गः॥ ६०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सदाशिव का आदि फुरना हुआ है जो त्रिनेत्र हैं और विश्वका संहार करते और शिरों की माला धारण किये हैं। ब्रह्मा के चारमुख हैं और चारों वेद हाथ में हैं और संसार की उत्पत्ति करते हैं उनका ऐसेही फुरना हुआ है। हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीनों एकरूप हैं और इनकी चेष्टा स्वाभाविक यही बनपड़ी है। उन्होंने यह कर्म न राग से अङ्गीकार किया है और न द्वेष करके त्याग करते हैं और यह संज्ञा भी लोगों के देखने के लिये है वे अपने ज्ञानमें कुछ नहीं करते क्योंकि; बोध में ही उनका जाग्रत् है बोध में जाग्रत् क्या और कैसे होता है सो भी सुनो। एक सांख्यमार्ग से होताहै और एक योगमार्ग से होता है। सांख्य-मार्ग यहहै कि, तत्त्व और मिथ्या का विचारना। तत्त्व इसे कहते हैं कि, मैं आत्मा सत् और चेतन हूं और सर्वदृश्य मिथ्या, जड़ और असत् है मेरे में अज्ञान कल्पित है पर मैं अद्वैत आत्मा हूं और मेरे में अज्ञान और दृश्य दोनों नहीं। ऐसे निश्चय में स्थित होना सांख्यविचार है। योग प्राणों के स्थित करने को कहते हैं क्योंकि, जब प्राण स्थित होते हैं तब मनभी स्थित होजाता है और जब मन स्थित होजाता है तब प्राण भी स्थित होते हैं—इनका परस्पर सम्बन्ध है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो प्राणही स्थित हुयेसे मुक्त होताहै तो मृतक पुरुषों के तो प्राण नहीं रहते—वे सब मुक्त होने चाहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम तो प्राण श्रवण करो कि, क्या है। यह जीव पुर्यष्टका में स्थित होकर जैसी वासना करता है तो

शरीर को त्यागकर उसीके अनुसार आकाश में स्थित होता है इसका नाम प्राण है। उस वासनारूप प्राण से फिर उसको संसार का भान होता है और जब प्राण की वासना क्षय होती है तब मुक्त होता है। ज्ञानी की वासना क्षय होजाती है इससे वह जन्म-मरण से रहित होता है। जैसे भुना बीज फिर नहीं उगता तैसेही ज्ञानी को वासना के अभाव से जन्म-मरण नहीं होता। हे रामजी! जन्म-मरण दोनों मार्गों से निवृत्त होता है और दोनों का फल कहा है। हे रामजी! ज्ञान से चित्त सत्यपद को प्राप्त होता है और योग करके प्राणवायु स्थित होती है तब वासना क्षय होजाती है। जब स्वरूप की प्राप्ति होती है तब संसार के पदार्थों का अभाव होजाता है जैसे रसायन से तांबा सोना होके फिर तांबे का भाव नहीं रहता; तैसेही ज्ञान से विश्वरूपी तांबे की संज्ञा नहीं रहती। जैसे तांबाभाव जाता रहता है तैसेही ज्ञान से जब चित्त सत्यरूप हुआ फिर संसारी नहीं होता। आत्मा में न बन्ध है और न मुक्त है परमात्मा एक अद्वैत है तब उसमें बन्ध कहां और मुक्त कहां? बन्ध और मुक्त चित्त के कल्पे हुये हैं और जो चित्त के शान्त करने का उपाय कहा है उससे शान्त होता है इसीको मुक्त कहते हैं और बन्ध मुक्त कोई नहीं। चित्त के उदय होने का नाम बन्ध है और चित्त का शान्त होना ही मुक्त है। हे रामजी! जब मन अपने वश होता है तब आत्मपद प्राप्त होता है; अथवा जब प्राण स्थित होते हैं, तब आत्मपद प्राप्त होताहै। यह संसार मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या है; जब वासना निवृत्त होती है तब आत्मपद में स्थिति होती है। जैसे मेघ जब जल संयुक्त होते हैं तब गर्जते हैं और वर्षा करते हैं और जब वर्षा से रहित होते हैं तब शान्त होजाते हैं तैसे ही जब वासना क्षय होती है तब चित्त शान्त होजाता है। जैसे शरत् कालमें बादल और कुहिरा निवृत्त होकर शुद्ध और निर्मल आकाशही रहता है,तैसेही वासना के निवृत्त हुये शुद्ध और केवल चेतन आत्मा हो भासता है। जो तुम एक मुहूर्त भी चित्त विना स्थित हो तो तुमको आत्मपद की प्राप्ति हो। जबतक चित्त की वासना क्षय नहीं होती तबतक बड़े भ्रम

देखता है। हे रामजी! यह संसार मृगतृष्णा के जलवत् असत् है और आभासमात्र फुरता है। इस पर एक आख्यान जो आगे हुआ है सो कहता हूं मन लगाकर सुनो। दक्षिणदिशा में मन्दराचल पर्वत है उसकी कन्दरा में एक वैताल महाभयानक आकार से रहता था और मनुष्यों को खाता था। उसके मन में विचार उपजा कि, किसी नगर को भोजन करूं पर वह एक समय साधु का संग भी करता था क्योंकि, एक साधु उस वैताल का भोजन करता था। उस साधु संग के प्रसाद से वैताल के मन में यह उपजा कि, मेरी कौन गति होगी? मेरा आहार मनुष्यहै और मनुष्यों का भोजन करना बड़ी हत्या है। इससे मैं एकवृत्ति करूं कि, जो मूर्ख और अज्ञानी मनुष्य हों उनको भोजन करूं और जो उत्तमपुरुष हैं उनको न खाऊं। हे रामजी! निदान वह वैताल यद्यपि क्षुधातुर भी हो तौ भी भले मनुष्योंको न खावे इसीप्रकार एकसमय वह क्षुधासे बहुत व्याकुल हो रात्रि के समय घरसे बाहर निकला तो संयोगवश उस नगरके राजा से जो वीर यात्राको निकला था भेंट हुई। वैतालने कहा, हे राजन्! तुम मुझे भोजन मिले हो अब मैं तुमको खाता हूं; तुम कहां जावोगे? राजा ने कहा; हे रात्रि के विचरनेवाले वैताल! जो तू मेरे निकट अन्याय से आवेगा तो तेरा शीश हजार टुकड़े होगा और तू गिरेगा। वैतालने कहा, हे राजन्! मैं तुझसे नहीं डरता। हे आत्महत्यारे! मैं तुझे भोजन करूंगा; चाहे तू जैसा बली हो मैं नहीं डरता परन्तु एक मेरी प्रतिज्ञा है कि, मैं अज्ञानी को भोजन करताहूं और ज्ञानीको नहीं मारता। जो तू ज्ञानी है तो न मारूंगा और जो अज्ञानी है तो मारूंगा जैसे बाजपक्षी पक्षियों को मारताहै। जो तू ज्ञानी है तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दे। एक प्रश्न यह है कि, जिसमें ब्रह्माण्डरूपी अणु है वह सूर्य कौन है? दूसरा प्रश्न यह है कि, जिस पवन में आकाशरूपी अणु उड़ते हैं वह पवन कौन है तीसरा प्रश्न यह है कि, जिसमें केले के वृक्षवत् और कुछ नहीं निकलता वह कौन वृक्ष है और चौथा प्रश्न यह है कि, वह पुरुष कौन है जो स्वप्न से स्वप्न और फिर उसमें और स्वप्न देखता है और एक रहता है, परिणाम को नहीं प्राप्त

होता? इन प्रश्नों का उत्तर दो, जो तुमने मेरे प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुझे खाजाऊंगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवैतालप्रश्नोक्तिनामैकषष्टितमस्सर्गः ६१

राजा बोला, हे वैताल! इन प्रश्नों का उत्तर सुनो ब्रह्माण्डरूपी एक मिरच बीजहै और उसमें सत्पद आत्मा चेतनरूपी तीक्ष्णताहै। एकडाल में ऐसी मिरचें कईसहस्र लगीहुई हैं और एक वृक्ष में कई सहस्र ऐसी डालें लगी हैं; ऐसे वृक्ष एक वन में कई सहस्र हैं और ऐसे कई सहस्र वन एक शिखर पर स्थित हैं; ऐसे कई सहस्र शिखर एक पर्वत पर हैं और ऐसे कई सहस्र पर्वत एक नगर में हैं; ऐसे कई सहस्र नगर एक द्वीप में हैं और ऐसे कई सहस्र द्वीप एक भव पृथ्वी में हैं; ऐसे कई सहस्र पृथ्वीभव एक अण्ड में हैं और ऐसे कईसहस्र अण्ड एकसमुद्रमें लहरें हैं; ऐसे कई सहस्र समुद्र एक समुद्र की लहरें हैं और ऐसे कई सहस्र समुद्र एक पुरुष के उदर में हैं; ऐसे कई पुरुषोंकी एक पुरुष के गले में माला पिरोईहुई हैं। ऐसे कई लाखकोटि सूर्य के अणु हैं जिस सूर्य से सर्व प्रकाशमान है। वह सूर्य आत्माहै जिसमें अनन्त सृष्टि स्थितहै। हे वैताल! जैसे यहसृष्टि भासती है तैसेही सब सृष्टि जान। जो यह सृष्टि सत्यहै तो सब सृष्टि सत्है और जो यह सृष्टि स्वप्नहै तो सबसृष्टि स्वप्न जानो। आत्मा ऐसा सूर्यहै जिससे भिन्न और अणु कोई नहीं और सदा अपने आपमें स्थितहै। इससे और क्या पूछता है? ऐसे आत्मा में स्थित हो जो आत्मसत्तामात्रपद है; जिस सत्तामात्रपदसे कालसत्ता हुई है और उसी में आकाशसत्ता हुई है। उसी सत्पद से सबसत्ता संकल्प से उदय हुई है और संकल्प के लय हुये सब लय होजाती है। तूने जो प्रश्न किया था कि, वह कौन सूर्य है जिससे ब्रह्माण्डरूपी अणु होते हैं? वह ब्रह्मसूर्य है जिससे भिन्न और कुछ नहीं और केले का वृक्ष जो तूने पूछा था सो केले की नाईं भीतर बाहर विश्व के आत्मा स्थित है। जैसे केले के भीतर देखे से शून्य आकाश ही निकलता है तैसेही विश्व के भीतर बाहर आत्मा से भिन्न और कुछ सार नहीं निकलता जो अद्वैत है उससे भिन्न द्वैत कुछ नहीं। वह पवन ब्रह्म है जिस पवन में ब्रह्माण्ड के समूह

उड़ते हैं और वह पुरुष स्वप्ने से स्वप्ना आगे और स्वप्ना देखता है और एक अपने आप में स्थित है । चित्तकला फुरने से अनन्त ब्रह्माण्डों का भान होताहै इसीको स्वप्ना कहते हैं; तो भी कुछ भिन्न नहीं एक ही रूप नटवत् रहता है और यह सब उसकी आज्ञा से बर्तते हैं । वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल है । जिसमें मन्दराचल पर्वत भी अणु है ऐसा स्थूल है और जिसमें वाणी की गम नहीं, अपने आपही में स्थित है और इन्द्रियों से अगोचर है इससे सूक्ष्म से सूक्ष्म है और पूर्णता से स्थूलसे स्थूलहै । हे मूर्ख, वैताल ! तू किसको खाता है और क्षुधा से क्यों व्याकुल हुआ है ? तू तो अद्वैतरूप आत्मा है और आनन्दरूप है अपने आप में स्थित हो । जब ऐसे प्रश्नका उत्तर देकर राजाने उपदेश किया तब वैताल वहांसे चला और एकान्त स्थानमें स्थित हो विचार करनेलगा कि, ऐसे मृगतृष्णाके जलवत् झूठे संसारसे मुझे क्या प्रयोजनहै । फिर एकान्तस्थानमें जाकर स्थितहुआ और ध्यान लगाकर आत्मा में एक धारा प्रवाहक प्रवाह स्थितहुआ । धारा प्रवाह प्रवाहक उसे कहते हैं कि, आत्मा का अभ्यास दृढ़ हो, आत्मा से भिन्न कुछ न फुरे और एकरस स्थित हो । ऐसे ध्यान में स्थित होकर वैताल सत् आत्मपदको प्राप्तहुआ । हे रामजी! यह राजा और वैतालका आख्यान तुमको सुनाया । उसआत्मामें ब्रह्माण्ड अणुकीनाईं स्थितहै इससे निर्विकल्प आत्मा में स्थित हो और इन्द्रियों को बाहर से संकोचकर स्थित करो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजावैतालसंवादे वैतालब्रह्मपद-प्राप्तिर्नामद्विषष्टितमस्सर्गः ॥ ६२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैं एक और आख्यान कहता हूं उसे सुनो, जिससे भगीरथ राजा की मूढ़ता गई; स्वस्थचित्त होकर आत्मपद में स्थित हुआ; अपने प्रतिप्रवाह में बिचरा और पुरुषार्थ से स्वर्गलोक से गङ्गा को मध्यलोकमें ले आयाहै । तुम भी वैसेही बिचरो उसके पास जो कोई अर्थी आता था उसका वह अर्थ पूर्ण करताथा और जिस पदार्थका कोई संकल्प करके आवे राजा उसका पूर्णकरे । जैसे चन्द्रमाको देखकर चन्द्रमणि अमृत स्रवती है तैसेही मित्रभाव का वह राजा था । जो उस राजासे शत्रुभाव रखते

थे उनको वह ऐसे नाश करता था-जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार का नाशहोजाताहै; और जैसे अग्निसे अनेक चिनगारे उठते हैं तैसेही शत्रुओं पर शस्त्रोंकी भी वर्षा करता था और प्रतिप्रवाह में स्थित रहता और भले बुरे और सुख दुःख में एकसमान रहता था रामजी ने पूछा हे भगवन्! राजा भगीरथ के मन में क्या आई जो गङ्गा को ले आया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक समय उसने अपने नगर को देखा कि, लोग भले मार्ग को त्यागकर बुरे मार्ग और पापकर्म में लगे हैं और मूर्ख हुये हैं तब लोगों के उपकारके निमित्त उसने ब्रह्मा, रुद्र और यज्ञऋषियों का तपकरके आराधन किया और गङ्गा के लानेके निमित्त मन्त्र जपने लगा। गङ्गाका एक प्रवाह स्वर्गमें चलता है और एक पाताल में चलता है; राजा भगीरथ ने एक प्रवाह मर्त्यलोक में भी चलाया है और गङ्गा के लानेसे समुद्रपर भी उपकार किया। जो समुद्र अगस्त्यमुनि ने सुखाये थे गङ्गाके आनेसे उन समुद्रोंका दरिद्र भी निवृत्त हुआ। उसके मन में विचार उपजा और संसार को देखकर कहने लगा कि, एकही काम बारम्बार करना बड़ी मूर्खता है; नित वही भोगना, वही खाना और फिर वही कर्म करने हैं। जिस कर्म किये से पीछे सुख निकले उसके करने का कुछ दूषण नहीं। ऐसा वैराग करके उसको बिचार उपजा कि, संसार क्या है? उस समय में राजा यौवन था-जैसे मरुस्थल में कमल उपजना आश्चर्य है तैसेही यौवन अवस्था में ऐसा विचार उपजना आश्चर्य है। हे रामजी! जब राजा को ऐसा विचार उपजा तब घर से निकलकर अपने गुरु त्रितल ऋषीश्वर के निकट जा प्रश्न किया। हे भगवन्! वह कौन सुख है जिसके पाये से जरा और मृत्यु के दुःख निवृत्त होते हैं? यह संसार के सुख तो भीतर से शून्य हैं; इनके परिणाम में दुःख है। त्रितलऋषि बोले, हे राजन्! एकज्ञेय अर्थात् जानने योग्य है जिसके जानने से शान्तपद प्राप्त होता है सो आत्मज्ञान है। वह आत्मा न उदय होता है; न अस्त होता है; ज्यों का त्यों अपने आप में है। हे राजन्! यह जरा मृत्यु तब तक भासता है जबतक अज्ञान है; जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होगा तब अज्ञानरूपी अन्धकार निवृत्त होजावेगा और केवल

शान्तपद में स्थित होगा । आत्मानन्द सर्वज्ञ है,जिसके जाननेसे चित्तजड़ग्रन्थि टूटजाती है अर्थात् अनात्मदेह इन्द्रियादिक में आत्म अभिमान करना निवृत्त होजाता है और सबकर्म भी निवृत्त होकर सब संशय नष्ट होजाते हैं । ऐसे शुद्ध स्वरूप को पाकर ज्ञानी स्थित होते हैं जो सत्ता सर्व है और सर्वगत, नित्य स्थित, उदय अस्त से रहित है । राजा बोले, हे भगवन् ! ऐसे मैं जानता हूं कि आत्मा चिन्मात्रसत्ता है और देहादिक मिथ्या है । आत्मा सर्वज्ञ शान्त और अच्युतरूप है; ऐसे जानता भी हूं परन्तु मुझे शान्ति नहींहुई और आत्मा चिन्मात्र मुझे नहीं भासता और स्थित नहीं हुई इसलिये कृपाकरके कहिये कि मैं स्थित होऊं । ऋषि बोले, हे राजन् ! तुझसे मैं एकज्ञान कहताहूं जिसके जाननेसे फिर कोई दुःख न रहेगा और उससे ज्ञेय में तुमको निष्ठा होगी तब तुम सर्वात्मारूप होकर स्थित होगे और तुम्हारा जीवभाव नष्ट होजावेगा ॥ श्लोक ॥ असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ अर्थात् देह और इन्द्रियों में आत्म अभिमान न करके पुत्र, स्त्री और कुटुम्ब के दुःख से आपको दुःखी न जानना; नित्य सम चित्त रहकर इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति में एकरस रहना; चित्त को आत्मपद में लगाकर वृत्ति को और ओर न जाने देना, एकान्तदेश में स्थित होना और अज्ञानी का संग न करके ब्रह्मविद्या का सदा विचार करना; यह लक्षण तत्त्वज्ञान के दर्शन के निमित्त तुझसे कहे हैं-इससे विपरीत अज्ञानता है । हे राजन् ! यह ज्ञेय जानने योग्यहै;इसके जानने से केवल शान्तपद को प्राप्त होगे और देहका अहंकार भी निवृत्त होगा । हे राजन् ! पहले अहं होताहै और फिर मम होती है; इससे तू अहं मम का त्याग कर । जब अहं मम का त्याग करेगा तब आत्मपद अहं प्रत्यय से भासेगा वह आत्मा सर्वज्ञ है; सर्व भी आपहै; स्वतः प्रकाश और आनन्दरूप है पर संसार के आनन्द से रहित है । जब ऐसे गुरुजी ने कहा तब राजाबोला; हे भगवन् ! यह अहंकार तो चिरकाल का देह में रहता है और अभिमानी है उसका क्योंकर त्याग करूं ? ऋषि बोले, हे राजन् ! अहंकार पुरुष प्रयत्न करके निवृत्त होता है । पहले भोगों

में द्वेष दृष्टि करनी, भोगों की वासना न करनी; बारम्बार अपने स्वरूपकी भावना करनी और विचार करना; इससे तुम्हारा जीव अहंकार निवृत्त हो जावेगा। हे राजन्! जब तुम्हारा अहंकार निवृत्त होगा तब तुमको सर्वात्मा ही भासेगा और दुःख से रहित शान्तरूप का प्रकाश होगा। हे राजन्! यह लज्जारूप फांसी जबतक निवृत्त नहीं होती तबतक आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती, अहं, मम, तृष्णा, शोक, दुःख और भला कहने की इच्छा इत्यादिक जो मोह के स्थान हैं उसे लज्जा कहते हैं। इससे तुम अहं मम से रहित हो तुम्हारे शत्रु जो राज्य लेने की इच्छा करते हैं उनको अपना राज्य दो और क्षोभ से रहित होकर पुत्र, स्त्री और बान्धवों के मोह से रहित हो। मेरे मोहसे भी रहित हो और राज्य का त्याग करके एकान्तदेश में स्थित हो और उन शत्रुओं के घर में भिक्षा मांग कि, तुझे भला कहने की इच्छा न रहे। अब उठखड़ा हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभगीरथोपदेशोनामत्रिषष्टितमस्सर्गः ६३

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार त्रितल ऋषीश्वरने उपदेश किया तब राजा उठखड़ा हुआ और घर को गया। गुरु का उपदेश हृदय में धारकर अपने राज्य में स्थित हो राज्य करने लगा और मन में विचार भी करता रहा। जब कुछकाल बीता तब राजा ने अग्निष्टोम यज्ञ का आरम्भ किया। धन के त्याग करने को अग्निष्टोम यज्ञ कहते हैं। तीन दिन में धनका त्यागकर हाथी, घोड़े, रथ, भूषण, वस्त्र इत्यादिक जो ऐश्वर्य थे सो लोगों को दे दिये। ब्राह्मण, अर्थी, पुत्र, स्त्री और शत्रुओं को जब पृथ्वी का राज्य देदिया तो शत्रुओं ने जाना कि, अब राजा भगीरथ में कुछ पराक्रम नहीं रहा तो उन्होंने आकर इसका देश घेर लिया हवेली पर चढ़ आये और राजाके सब स्थान रोंक लिये। राजाके पास केवल धोती अँगौछा रहगया तब राजा वहां से निकल कर वनों में बिचरने लगा और शान्तपद आत्मा में स्थित हुआ। जब कुछ काल बीता तो भगीरथ फिर अपने देश में आया और अपने शत्रुओं के घर में भिक्षा मांगने लगा तब शत्रुओं और दूसरे लोगोंने उसकी बहुत पूजा की और कहा हे भगवन्!

तुम अपना राज्य लो; पर उसने राज्य न लिया। जैसे पृथ्वीपर पड़ा तृण को तुच्छबुद्धि करके नहीं ग्रहण करता तैसे ही उसने राज्य ग्रहण न किया। कुछकाल वहां रहकर त्रितल ऋषि के पास जो उसका गुरु था अनिच्छित होकर गया। गुरुने आत्मत्व से उसे ग्रहण किया और शिष्य ने भी गुरु को आत्मत्वसे ग्रहण किया। गुरु और शिष्य भावना से रहित हो वे दोनों कुछकाल एकस्थान में रहे और फिर वन में इकट्ठे बिचरने लगे। वे शान्त और आत्मपद में स्थित रहकर रागद्वेष से रहित केवल एकरस स्थित रहे और उनको न देहत्यागने की इच्छा थी, न देह रखनेकी इच्छा थी; केवल अनिच्छित प्रारब्ध में स्थित रहते थे। इतने में स्वर्गलोक के सिद्धों ने आकर उनकी पूजा की और बड़े ऐश्वर्यपदार्थ चढ़ाये। बहुत अप्सरा आईं और जितने ऐश्वर्य भोग पदार्थ थे वे आये पर उनको उन्होंने तुच्छ जाना क्योंकि; वे आत्मसुख से तृप्त और केवल आकाशवत् निर्मल थे और प्रकाशरूप, समचित्त, कलङ्कतारूपी मलसे रहित थे। हे रामजी! जैसे राजा भगीरथ स्थित हुये हैं तैसेही तुमभी स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनन्नाम चतुःषष्टितमस्सर्गः॥ ६४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब कुछ काल बीता तो भगीरथ वहां से चला और एक देश में पहुँचा जहां का राजा मृतक हुआ था और उसकी लक्ष्मी राजा की याचना करती थी। राजा भगीरथ भिक्षा मांगता फिरता था कि, उस राजा के मन्त्री ने भगीरथ को देखा कि, जो कुछ गुण राजा में होते हैं वे इसमें हैं; इसलिये वह राजा भगीरथ से बोला, हे भगवन्! आप इस राज्य को अङ्गीकार कीजिये क्योंकि, आपको अनिच्छित प्राप्त हुआहै। निदान राजा ने उस राज्यको ग्रहण किया और उसे न कुछ भला जाना न बुरा। फिर राजा हाथी पर आरूढ़ हो सेना में सुशोभित हुआ देश और सब स्थान सेना से पूर्ण हुये। जैसे मेघ से ताल पूर्ण होते हैं तैसेही देश और स्थान सेना से पूर्ण होगये और नगारे और साज बजने लगे। तब राजा गृह में गया और महल की सब स्त्रियां आईं। जहां का

राज्य भगीरथ ने पहले किया था उस देशसे मन्त्री और प्रजा आये और उन्होंने भगीरथ से कहा, हे भगवन्! जिन शत्रुओं को तुमने राज्य दिया था उनको मृत्यु ने भोग कर लिया है। जैसे मछली मल मांस को खालेती है तैसे उनको मृत्यु ने भोजन कर लिया है; इससे तुम राज्य करो। यद्यपि इच्छा तुमको नहीं है पर तौभी राज्य करो क्योंकि, जो वस्तु अनिच्छित प्राप्त हो उसका त्याग करना श्रेष्ठ नहीं इतना सुन राजाने उस राज्यकोभी अङ्गीकारकिया और राज्य करनेलगा। फिर राजाने पिछला वृत्तान्त स्मरण कर कि, मेरे पितर कपिल मुनिके शाप से भस्म हो कूप में पड़े हैं; विचार किया कि, मैं उनका उद्धार करूं; इसलिये अपने मन्त्री को राज्य देकर अकेला वनको चला और इच्छा की कि, तप करूं निदान एक स्थान में स्थित होकर तप करने लगा और गङ्गाके लाने के निमित्त ब्रह्मा, रुद्र और जगत् ऋषि का सहस्रवर्ष पर्यन्त आराधन किया। तब गङ्गा मध्य मण्डल में आईं जो विष्णु भगवान् के चरणों से प्रकटहुई हैं। जब पितरों के उद्धार निमित्त गङ्गा के प्रवाहको राजा ले आया तब फिर समचित्त और शान्त पद में स्थित होकर बिचरने लगा; जिसमें क्षोभ, भय और इच्छा न थी केवल शान्त आत्मपद में स्थित हुआ। जैसे पवन से रहित समुद्र अचल होता है तैसे ही संकल्प विकल्प से रहित होकर वह राजा स्थित हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भगीरथोपाख्यानसमाप्तिर्नाम पञ्चषष्टितमस्सर्गः॥ ६५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो भगीरथ की दृष्टि तुमसे कही है उसका आश्रय करके बिचरो। यह दृष्टि सब दुःखों का नाश करती है। एक आख्यान ऐसा आगे भी व्यतीत हुआ है ऐसा ही शिखरध्वज राजा हुआ था। इतना सुन रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह शिखरध्वज कौन था और किस प्रकार चेष्टा करता था सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सातमन्वन्तरों के बीतने के उपरान्त द्वापरयुग की चौथी चौकड़ी में राजा शिखरध्वज हुआ है और फिर भी होवेगा। वह राजा सम्पूर्ण पृथ्वी का तिलक, महाशूरवीर और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से

संपन्न था परन्तु उसमें बन्धवान् न था। वह बड़े भोग भोगता और बड़े ओज से संपन्न, उदार, धैर्यवान् था किसी पर अन्याय न करे और समचित्त, शान्तपद में स्थित और सम्पूर्ण दुःखों से रहित था और अर्थी का अर्थ पूर्ण करता था। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसा ज्ञानवान् राजा फिर क्यों जन्म पावेगा, ज्ञानी तो फिर जन्म नहीं पाता? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे एक समुद्र में कई तरङ्ग समान उठते हैं, कई अर्द्धसम और कई विलक्षण भाव से फुरते हैं; तैसेही आत्मसमुद्र में कई आकार एक से, कई अर्द्ध और कई विलक्षणभाव से फुरते हैं, जो समान फुरते हैं उनकी चेष्टा और आकार एक से दृष्टि आते हैं। इसीप्रकार शिखरध्वज की ऐसेही प्रतिभा होगी। हे रामजी! जब इस सर्ग में सप्तमन्वन्तर और चारचौकड़ी द्वापरयुग की बीतेंगी तब जम्बुद्वीप के मालव देश में एक श्रीमान् शिखरध्वज राजा होगा परन्तु वह उससा शिखरध्वज दूसरा होगा, वह न होगा। प्रथम शिखरध्वज जब षोड़श वर्ष का राजकुमार था तब एक समय शिकार को निकला। बसन्त ऋतु का समय था; राजा अपने बाग़ में जा ठहरा, जहां फूलों के विचित्र स्थान बने हुये थे और कमलिनियां मानों स्त्रियां और धूर के कणके उनके भूषण थे और उनके समीप पुष्प वृक्ष लगेथे इसी प्रकार भँवरी और भँवरों की सुन्दरलीला देख राजा को विचार उपजा कि, मुझे स्त्री प्राप्त हो तो मैं भी चेष्टा करूं। निदान उसे अधिक चिन्तना हुई कि, कब मुझे स्त्री मिलेगी और कब उसके साथ फूल की शय्या पर शयन करूंगा जब इस प्रकार भोग की राजा चिन्तना करनेलगा तब मन्त्रियों ने, जो त्रिकाल ज्ञान रखते थे और राजा के शरीर की अवस्था जानते थे, जाना कि; हमारे राजा का मन स्त्री पर है, इससे अब राजा का विवाह करना चाहिये। निदान एकराजा की कन्या जो बहुत सुन्दरी थी और वर चाहती थी उससे राजा शिखरध्वज का विवाह शास्त्र की विधि सहित किया गया और राजा बहुत प्रसन्न होकर अपने घर आया। उस स्त्री का नाम चुड़ाला था और वह बहुत सुन्दरी थी। उससे राजा की बहुत प्रीति हुई और उस स्त्री का भी राजा से बहुत

स्नेह हुआ; जो कुछ राजा के मन में चिन्तना हो वह रानी पहिले ही सिद्ध करदे उनकी परस्पर ऐसी प्रीति बढ़ी जैसे भँवरे और भँवरी में होती है। एक समय राजा मन्त्रियों को राज्य देकर वनको गया और वहां नानाप्रकारकी चेष्टाकर दोनों ऐसे बिचरे कि, जैसे सदाशिव और पार्वती व विष्णु और लक्ष्मी बिचरें। इसके पश्चात् राजा योगकला सीखने लगे पर रानी राजा को भोग कला सिखावे; इसीप्रकार वे दोनों सम्पूर्ण कलाओं में संपन्न हुये। चुड़ाला की बुद्धि राजाकी बुद्धि से तीक्ष्ण थी वह शीघ्र ही सब बातें जानले और राजा को सिखावे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजचुड़ालोपाख्यानं नाम षट्षष्टितमस्सर्गः ॥ ६६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसी प्रकार जब राजा और रानी ने अनन्तभोग भोगे तो जैसे कुम्भमें छिद्र होने से शनैःशनैः जल निकलता है तैसे ही शनैःशनैःउनके यौवन के दिन निकल गये और वृद्ध अवस्था आई तब राजा और रानी को वैराग्य उत्पन्न हुआ और वैराग्य से वे यह विचारने लगे कि, यह संसार मिथ्या और विनाशी है, एक सा नहीं रहता और ये भोग भी मिथ्या हैं कि, इतने काल हम भोगते रहे पर तृष्णा पूर्ण न हुई-बढ़तीही गई। हे रामजी ! इस प्रकार राजा और रानी वैराग्य से विचारते रहे कि, ये भोग मिथ्या हैं और हमारी यौवन अवस्था भी व्यतीत होगई है। जैसे बिजली का चमत्कार क्षणमात्र होकर बीतजाता है तैसे ही यौवन अवस्था व्यतीत होगई और मृत्यु निकट आई। जैसे नदी का वेग नीचे चलाजाता है तैसेही आयुर्बल व्यतीत होजाती है और जैसे हाथ पर जल डालने से बहजाताहै तैसेही यौवन अवस्था निवृत्त होगई है। जैसे जल में तरंग और बुद्बुदे उपजकर लीन हो जाते हैं तैसेही शरीर क्षणभंगुर है। जहां चित्त जाताहै वहां दुःख भी इसके साथ चलेजाते हैं-निवृत्त नहीं होते। जैसे मांस के टुकड़े के पीछे चील पक्षी चलाजाता है तैसेही जहां अज्ञान है वहां दुःख भी पीछे जाते हैं। यह शरीर भी नष्ट होजावेगा। जैसे पकाहुआ आम का फल वृक्षके साथ नहीं रहता; गिर पड़ताहै तैसे ही शरीर भी नष्ट होजाताहै।

जो शरीर कि अवश्य गिरता है उसका क्या आसरा करना है। जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिर पड़ता है तैसेही यह शरीर गिर पड़ताहै। इससे हम ऐसा कुछ करें कि, संसाररूपी विसूचिका निवृत्त हो। यह संसाररूपी विसूचिका ब्रह्मविद्याके मन्त्र से निवृत्तहोती है; ब्रह्मविद्या से ज्ञान उपजताहै और आत्म-ज्ञान से सर्व दुःख निवृत्त होजाते हैं इसके सिवा और कोई उपाय नहीं; इसलिये आत्मज्ञान के निमित्त हम सन्तों के पास जावें। ऐसे विचार करके राजा और चुड़ाला आत्मज्ञानियों के पास चले। वे आत्मज्ञान की वार्त्ता करें और आत्मज्ञान में ही चित्तभावनाकर आपस में उसीका विचार और चर्चाकरें। निदान वे ऐसे सन्तोंके पास पहुँचे जो संसारसमुद्र से तारनेवाले और आत्मवेत्ता थे। उनकी पूजा करके उन्होंने उनसे प्रश्न किया और राजा और रानी उनसे ब्रह्मविद्या सुनने लगे कि, आत्मा शुद्ध, आनन्दरूप, चैतन्य और एक है जिसके पाये से दुःख निवृत्त होजाते हैं। हे रामजी! तब रानी चुड़ाला विचार में लगी और राजा की कोई टहल भी करे तौ भी उसके चित्तकी वृत्ति विचार ही में रहे। वह यह विचारे कि, मैं क्या हूं? यह संसार क्या है और संसार की उत्पत्ति किससे है? ऐसे विचार कर वह जाननेलगी कि, यह शरीर पञ्चतत्त्व का है सो मैं नहीं क्योंकि; शरीर जड़ है और कर्मइन्द्रियां भी जड़ हैं। जैसा शरीर है तैसे ही शरीर के अङ्ग भी हैं और ये चेष्टा ज्ञानइन्द्रियों से करते हैं सो ज्ञान इन्द्रियां भी मैं नहीं क्योंकि; ये भी जड़ हैं। मन से मन की चेष्टा होती है सो मन भी जड़ है; इसमें संकल्प विकल्प बुद्धि से है। बुद्धि भी जड़है क्योंकि; उसमें निश्चय चेतना अहंकार से होती है और अहंकार भी जड़ है क्योंकि, उसमें अहंचेतना से होती है। वह चेतनता जीव से होती है वह जीव भी मैं नहीं क्योंकि, जीवत्व फुरनरूप है और मेरा स्वरूप अफुर, सदा उदयरूप और सन्मात्र है। बड़ा कल्याण है कि, चिरकाल के उपरान्त मैंने अपना स्वरूप पाया है जो अविनाशी, अनन्त और आत्मा है। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही मैं निर्मल और विगतज्वर; राग-द्वेषरूपी ताप से रहित चिन्मात्रपद हूं और अहं त्वं से रहित हूं। मुझमें फुरना कोई नहीं;

इसीसे शान्तरूपहूं। जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचल पर्वत से रहित शान्तरूपहै; तैसेही मैं चित्त से रहित अचल और अद्वैत हूं, कदाचित् स्वरूपसे परिणाम को नहीं प्राप्त होती। ऐसा जो तन्मात्रपद है उसको ब्रह्मवेत्ताओं ने ब्रह्म और परमात्म चेतनसंज्ञा कही है। यह आत्मा ही मन, बुद्धि आदिक दृश्य और संसाररूप होकर फैला है और स्वरूप से अच्युत है और फुरने से आकार भासते हैं तो भी आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे बड़े पर्वत के पत्थर और बट्टे होते हैं सो पर्वत से भिन्न नहीं तैसेही यह दृश्य आत्मा से भिन्न नहीं। ये आकार ऐसे हैं जैसे गन्धर्बनगर नाना आकार हो भासताहै पर ज्ञानवान् को एकरसहै और अज्ञानी को भेदभावनाहै जैसे बालक मृत्तिका के खिलौने हाथी, घोड़ा, राजा, प्रजा आदि बनाता है और जिसको मृत्तिका का ज्ञानहै उसको मृत्तिकाही भासती है भिन्न कुछ नहीं भासता; तैसेही अज्ञान से नानारङ्ग भासतेहैं। अब मैंने जानाहै कि, मैं एकरसहूं। हे रामजी! इसप्रकार चुड़ाला आपको जानने लगी कि, मैं सन्मात्र, अच्छेद, अदाह, स्वच्छ, अक्षर और निर्मलहूं; मुझमें 'अहं' 'त्वं' 'एक' और द्वैतशब्द कोई नहीं और जन्म, मरण भी नहीं। यह संसार चित्त से भासता है और आत्मस्वरूप है। देवता, यक्ष, राक्षस, स्थावर, जङ्गम आदिक सब आत्मरूपहैं जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे समुद्रसे भिन्न नहीं तैसेही आत्मासे कोई वस्तु भिन्न नहीं। दृश्य, द्रष्टा, दर्शन ये भी आत्माकी सत्तासे चेतनहैं; इनको आपसे सत्ता कुछ नहीं। मुझ में अहं का उत्थान कदाचित् नहीं—अपने आप में स्थितहूं। अब इसीपद का आश्रयकरके चिरकाल इससंसारमें बिचरूंगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चुड़ालाप्रबोधोनाम सप्तषष्टितमस्सर्गः॥ ६७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर चुड़ाला जिसकी तृष्णा निवृत्त हुई थी और जो दुःख, भय और भोगवासना से निवृत्त होकर केवल शान्तपद को पाकर शोभित हुई थी पानेयोग्य पद पाकर जानने लगी कि; इतने कालतक मैं अपने स्वरूप से गिरी थी और अब मुझे शान्ति हुई है और दुःख सब मिट गये हैं। अब मुझे कुछ ग्रहण और त्याग नहीं और अब मैं

अपने आत्मस्वभाव में स्थित हुई हूं। निदान एकान्त बैठकर समाधि में ऐसी लगी। जैसे वृद्ध गऊ पर्वतकी कन्दरा पाकर तृण और घाससे बहुत प्रसन्न होती है तैसेही अपने आनन्दरूप को पाकर चुड़ाला स्थित भई। हे रामजी! वह ऐसे आनन्द को प्राप्त हुई जिसको वाणी से नहीं कह सक्के। तब राजा शिखरध्वज रानी को देखकर आश्चर्यवान् हुआ और बोला; हे अङ्गने! अब तुम फिर यौवन अवस्था को प्राप्त हुई हो और तुमको कोई बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है। कदाचित् तुमने अमृत का सार पान किया है इससे अमर हुई हो वा किसी योगीश्वर ने तुझे इस कलाको प्राप्त किया है; अथवा त्रिलोकी का ऐश्वर्य तुझे प्राप्त हुआ है। हे अङ्गने! तुझे कौन वस्तु मिली है? तुम्हारे चित्त की वृत्ति से ऐसा जानपड़ता है कि तुमने अमृतका सार पान कियाहै व त्रिलोकी के राज्य से भी कोई अधिक पदार्थ पाया है। तू तो किसी बड़े आनन्द को प्राप्त हुई है कि जिसका आदि अन्त कोई नहीं दीखता और तुझ में भोगवासना भी नहीं दीखती शान्तरूप होगई है। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही तुझ में निर्मलता दीखती है और तेरे श्वेतबाल भी बड़ेसुन्दर दृष्टि आतेहैं इसलिये कह कि, तुझे कौनसी वस्तु प्राप्तहुईहै? चुड़ाला बोली, हे राजन्! यह जो कुछ दीखता है सो किंचित् है और इससे जो रहित निष्किंचन-पद है उसको पाकर मैं श्रीमान् हुई हूं। जिसका आकार निष्किंचन है और जिसमें दूसरे का अभाव है उसी को पाकर मैं श्रीमान् हुई हूं और जो कुछ भोग हैं उनसे रहित होकर अभोग भोग भोगा है उस भोग से तृप्त हुई हूं अर्थात् आत्मज्ञान मैंने पाया है और आत्मा में विश्राम पायाहै जिससे सदा शान्तरूप और श्रीमान् हूं। हे राजन्! जितने ये राजभोग सुख हैं उनको त्यागकर मैं परमसुख को भोगती हूं और राग द्वेष से रहित होकर मैं कैसी हूं कि, 'नहीं हूं' और मैंहीं स्थित हूं। जो कुछ नेत्रों से दिखता इन्द्रियों से जाना जाता है और मन से चिन्तन होता है वह सब मिथ्या स्वप्नवत् है और मैं वहां स्थित हुई हूं जहां इन्द्रिय और मनकी गम नहीं और अहंकार का उत्थान नहीं उस पद को मैंने पाया है। जो

सबका आधार और सबका आत्मा है और जो सर्व अमृतहै उसका सार अमृत मैंने पान किया है इससे मेरा कदाचित् नाश नहीं और कदाचित् भयभी नहीं। हे रामजी! जब इसप्रकार रानी ने कहा तो राजा शिखरध्वज उसके वचन न समझा और हँसकर बोला, हे मूर्ख, स्त्री! यह तू क्या कहती है जो प्रत्यक्ष वस्तु को झूँठ बताती है और कहती है कि, मैं नहीं देखती और असत् वस्तु जो नहीं दिखती उसको सत्य कहती है और कहती है कि, मैं देखती हूं। ये वचन तेरे कौन मानेगा? इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता तू जो कहती है कि, मैं ऐश्वर्य को त्यागकर श्रीमान् हुई हूं सो निष्किञ्चन को पाकर इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता। तू कहती है कि, इन भोगों को मैंने त्याग कियाहै और इनसे जो रहित अभोग हैं उनको मैं भोगतीहूं; कभी कहती है कि, मैं कुछ नहीं; फिर कहती है मैं ईश्वरहूं; इससे महामूर्ख दृष्टि आती है। जो इसी में तेरा चित्त प्रसन्न है तो ऐसेही बिचर परन्तु यह बात सुनकर कोई सत् न मानेगा और तुझे यह शोभा भी नहीं देती। हे रामजी! ऐसे कहकर राजा उठ खड़ाहुआ और मध्याह्न के समय होजाने से स्नान के निमित्त गया रानी मन में बहुत शोकवान् हुई और विचार किया कि, बड़ा कष्ट है जो राजाने आत्मपदमें स्थिति न पाई और मेरे वचनों को न जाना। यही मनमें धरकर वह अपने आचार में लगी और फिर अपना निश्चय राजाको न बताया और जैसे अज्ञानकालमें चेष्टा करती थी तैसेही ज्ञान पाकर भी करनेलगी। एक समय रानी के मनमें आया कि, प्राणोंको ऊपर चढ़ाऊं और ऊर्ध्वको लाकर उदान और अपान को वश करूं जिससे आकाश और पाताल दोनों स्थानों में जाऊं। ऐसे चिन्तनाकर रानी योगमें स्थित हुई और प्राणायाम करनेलगी। इतनासुन-कर रामजीने पूछा, हे भगवन्! यह संसार संकल्पसे उत्पन्न हुआहै। स्थावर-जङ्गमरूप संसार वृक्ष है और संकल्प इसका बीज है। वह कौन प्राणायाम पवन है जिससे आकाश को उड़ते हैं और फिर नीचे आते हैं? अज्ञानी पुरुष भी जिसे यत्न करके कैसे सिद्ध करते हैं और ज्ञानवान् कैसे लीला करके बिचरते हैं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तीन प्रकार की सिद्धि

होती हैं-एक तो उपादेय सिद्धि है कि, यह वस्तु मुझे मिले। इसके निमित्त अज्ञानी यत्न करते हैं। दूसरी सिद्धि यह है कि, यह दुःख मेरा निवृत्त हो और मैं सुखी होजाऊं। यह चिन्ता महा अज्ञानी को रहती है; और तीसरी सिद्धि यह है कि, जो मैं कर्म करता हूं उसका फल मुझे मिले। यह विचार करनेवाला भी अज्ञानी है; क्योंकि वह आपको कर्त्ता मानता है। ज्ञानवान् इनसे उल्लंघित बर्तता है वह कदाचित् इसमें बर्तता भी है तौभी उसको यह निश्चय रहता है कि, न मैं कर्ता हूं और न भोक्ता हूं। योग करके इस प्रकार सिद्ध होते हैं कि, देश, काल, वस्तु और क्रिया उनके आधीन होजाती हैं। मुख में गुटका राखके जहां चाहे उसी ठौर में जा प्राप्त होना नेत्रों में अञ्जन डालके जिसको देखा चाहे उसको देख लेना और खड्ग हाथ में धारण करके संपूर्ण पृथ्वी को वश कर लेना-यह तो क्रिया पदार्थ है और देश यहहै कि, जो सब पर्वत हैं उनमें कितनी पीठ हैं और बड़े उत्तम हैं। जिस प्रकार ये सिद्ध होते हैं सो भी सुनो नाभिके तले आधारचक्रमें एक कुण्डलिनी शक्ति है, सर्पिणी की नाईं उसमें कुण्डल है और वह कुण्डल मार बैठीहै और वासना ही उसमें विष है जितनी नाड़ी हैं समष्टि नहीं हैं। उस कुण्डलिनी में जब मनन होता है तब मन होकर प्रकट होता है; जब निश्चय होताहै तब बुद्धि प्रकट होती है; जब अहंभाव होता है तब अहंकार प्रकट होता है; जब स्मरण होता है तब चित्त प्रकट होता है और जब उसमें स्पर्श की इच्छा होती है तब पवन प्रकट होता है। इसी प्रकार पञ्चतन्मात्रा और चारों अन्तःकरण प्रकट होते हैं। जितनी नाड़ी हैं वे सब कुण्डलिनी से प्रकट होती हैं और आत्मा का प्रकट होना भी उससे जाना जाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उससे आत्मा का प्रकट होना कैसे जाना जाताहै? आत्मा तो देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है और सब देश, सर्वकाल और सर्व वस्तु से पूर्ण है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में और धूप सर्व ठौर में दिखता है तैसेही ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान है और प्रकट सात्त्विकगुण में दिखता है। जो कुछ नाड़ी और इन्द्रियां हैं वे

कुण्डलिनी शक्ति से उदय होती हैं और जब यह जीव कुण्डलिनी शक्ति में स्थित होकर पवन को स्थित करता है तब जो कुछ भीतर प्राणवायु हैं वे सब इसके वश होती हैं जैसे सर्वसेना राजा के वश होती है उसीप्रकार सब इन्द्रियां प्राण के वश होती हैं और जो प्राणवायु वश नहीं होती तो आधि व्याधि रोग उपजते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आधि व्याधि कैसे होती है सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मन की पीड़ा का नाम आधि है और देह के दुःख को व्याधि कहते हैं आधि तब होती है जब संकल्प होता है कि, यह सुख मुझे मिले पर यदि वह वस्तु नहीं प्राप्त होती तब चिन्ता करके दुःख पाता है और व्याधि तब होती है जब वात, पित्त, कफका विकार शरीर में होताहै और उससे दुःख पाता है। जब मन और शरीर का दुःख इकट्ठा होताहै तब आधि, व्याधि, दुःख इकट्ठे होते हैं और जब भिन्न २ होते हैं तब दुःख भी भिन्न २ होते हैं । ज्ञानवान् को न आधि होती है न व्याधि है। यह योगकी कला मैंने विस्तारसे नहीं कही क्योंकि, पूर्व के ज्ञान क्रम का प्रसंग रह जाताहै। जितनी कला हैं उन सबको मैं जानता हूं परन्तु यह कला ज्ञान मार्ग को रोकनेवाली है। वासना चार प्रकार की हैं सो सुनो। एक वासना सुषुप्ति है; दूसरी स्वप्न, तीसरी जाग्रत् और चौथी क्षीण। स्थावर योनि को सुषुप्ति वासना है सो आगे फुरेगी; तिर्यक्योनि को स्वप्न वासनाहै कि उनको वासना का ज्ञान भी नहीं और जङ्गम अर्थात् मनुष्य, देवता आदिकोंको जाग्रत् वासनाहै कि, वे वासना ही में लगे हैं। ये तीन वासना तो अज्ञानीको हैं और क्षीण वासना ज्ञानी की है अर्थात् उसको वासनाकी सत्यता नष्टहुई है। जब इसप्रकार वासना निवृत्त होती है तब आगे संसार भी नहीं रहता और जब कुण्डलिनी शक्ति से वासना फुरती है तब पञ्चतन्मात्राके द्वारा संसारका भानहोता है। संसाररूपी वृक्ष का बीज वासनाही है, दशों दिशा उस वृक्ष के पत्र हैं; शुभ अशुभ कर्म उसके फूल हैं और स्थावर जङ्गम फलहैं। जैसी जैसी वासना पुर्यष्टका से मिलकर जीव करता है तैसाही आगे फल होता है। हे रामजी ! इससे वासना का त्यागकरो—वासनाही संसाररूपी वृक्ष का

बीज है और निर्वासनिक होनाही पुरुष प्रयत्न है–तब विश्व कदाचित् न भासेगा। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकाररूपी रात्रि नहीं रहती तैसेही ज्ञानरूपी सूर्य के उदय हुये संसाररूपी अन्धकार निवृत्त होजाता है। हे रामजी! आधिव्याधि बड़े रोग हैं सो मन से होते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आधिरोग तो मन से होता है पर व्याधि तो शरीर का रोग है, मन से कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! व्याधि दो प्रकार की है एक लघु और दीर्घ है। जो शरीर को कोई दुःख प्राप्त हो उसे लघु कहते हैं; वह स्नान और जपसे निवृत्त होजाती है और दीर्घव्याधि जन्म मरण के रोग को कहते हैं वे बड़े रोग हैं और मनके शान्त हुये विना निवृत्त नहीं होते। इसीसे आधि व्याधि दोनों मन से होते हैं। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! व्याधि मन से कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब चित्त शान्त होता है तब कोई रोग नहीं रहता और जबतक चित्त शान्त नहीं होता तबतक आधि व्याधि होती है। जो कुछ अन्न बाहर अग्नि से परिपक्व होता है उसको जब मनुष्य भोजन करते हैं तब भीतर जो कुण्डलिनी पुर्यष्टका से मिली हुई है वह उदान पवन को ऊर्ध्वमुखहो फुराती है और अपान पवन उससे अधको फुरताहै; उदान और अपान का आपस में विरोध है–उनके क्षोभ से अग्नि उठती है और हृदयकमल में स्थित होती है तब बाहर अग्नि का पका भोजन हृदय की अग्नि से फिर पकता है और सर्वनाड़ी अपने २ भाग रस को लेजाती हैं वीर्यवाली नाड़ी वीर्य करके रखती है और रुधिरवाली नाड़ी रुधिर करके रखती है पर जब राग और द्वेष से चित्त कुण्डलिनीशक्ति में क्षोभित होता है तब नाड़ी अपने २ स्थानों को छोड़ देती हैं और अन्न भी भीतर पक्क नहीं होता तब उस कच्चे रस से रोग उठता है। जैसे राजा को क्षोभ होता है तो सेना को भी क्षोभ होता है और जब राजा को शान्ति होती है तब सेना को भी शान्ति होती है; तैसेही जब मन में क्षोभ होता है तब रोग होता है और जब मन में शान्ति होती है तब नाड़ी अपने अपने स्थानों में स्थित होती हैं–रोग कोई नहीं होता। इससे

हे रामजी! आधिव्याधि रोग तब होते हैं जब मनुष्यका चित्त निर्वासनिक नहीं होता पर जब चित्त शान्त होता है तब रोग कोई नहीं रहता। इससे निर्वासनिक पद में स्थित हो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पीछे आपने कहा है कि, मन्त्रों से भी रोग निवृत्त होता है सो कैसे निवृत्त होता है? वशिष्ठजी ने कहा, हे रामजी! प्रथम मनुष्य को श्रद्धा होती है कि, इस मन्त्र से रोग निवृत्त होगा तब पुण्यक्रिया, दान, सन्तजनों की संगति और य, र, ल, व आदिक जो अक्षर हैं इनका जाप करके क्योंकि जितने कुछ जाप और मन्त्र हैं सो इन अक्षरों से सिद्ध होते हैं व्याधिरोग निवृत्त होजाताहै। योगीश्वरों का क्रम अणु और स्थूल है सो भी सुनो। जब ये प्राण और अपान कुण्डलिनी शक्ति में स्थित होते हैं तो इनको वश करके योगी गम्भीर होता है। जैसे मसक में पवन होता है इसी प्रकार पवन को स्थित करके कुण्डलिनी सुषुम्णामें प्रवेश करताहै और ब्रह्मरन्ध्र में जा स्थित होता है। एक मुहूर्त पर्यन्त वहां स्थित हो तो आकाश में सिद्ध देखता है। जिस प्रकार इसका क्रम है तैसे तुमसे कहता हूं। हे रामजी! सुषुम्णा के भीतर जो ब्रह्मरन्ध्र है उसमें जब पूरकद्वारा कुण्डलिनीशक्ति स्थित होती है अथवा रेचक प्राण वायु के प्रयोग से द्वादश अंगुल पर्यन्त मुख से बाहर अथवा भीतर वा ऊपर एक मुहूर्त तक एक ही बेर स्थित होती है तब आकाश में सिद्धों का दर्शन होता है। रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! जब ब्रह्मरन्ध्र में जीवकला जा स्थित होती है तो कैसे दर्शन होता है? दर्शन तो नेत्रों से होता है सो नेत्र आदिक इन्द्रियां वहां कोई नहीं होतीं; नेत्रों विना दर्शन कैसे होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो, रामजी! पृथ्वी में विचरनेवालों को आकाश में विचरने वालों का दर्शन नहीं होता परन्तु दिव्यदृष्टि से दृष्ट आता है—चर्मदृष्टि से नहीं दीखते। विज्ञान के निकट जो निर्मलबुद्धि नेत्र होते हैं उनसे दर्शन होता है। जैसे स्वप्न में चर्मनेत्रों के विना भी सर्वपदार्थ दृष्ट आते हैं तैसेही सिद्धों का दर्शन होता है परन्तु इतनी विशेषता है कि, स्वप्न के पदार्थ जाग्रत् में नहीं भासते और न उनसे कुछ अर्थ सिद्ध होता है पर

सिद्धों के समागम की चेष्टा जाग्रत् में भी स्थित प्रतीत होती है। मुख के बाहर जो द्वादश अंगुल पर्यन्त अपान का स्थान है उसमें रेचक प्राणायाम का अभ्यास होताहै और जब चिरपर्यन्त वहां प्राण स्थिरीभूत होताहै तब और पुरियों और दिशा के स्थानों में प्राप्त होसक्ता है। रामजीने पूछा, हे ब्रह्मन्! जो पदार्थ चञ्चलरूप हैं वे क्योंकर स्थिर होते हैं? वक्ता जो गुरुहैं वे कृपा करके कहते हैं, वे दुष्ट प्रश्न जो तर्करूप हैं उससे भी खेदवान् नहीं होते। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसी २ वस्तु है तैसी २ उसकी शक्ति स्वाभाविक होती है। आदि जगत् के फुरने से जैसी नीति हुई है तैसेही अबतक आत्मामें स्वभाव शक्ति का फुरना होताहै। यह जो अविद्याहै सो अवस्तुरूप है और जो कहीं वस्तुरूप होकर भी भासती है सो ऐसे है जैसे बसन्त ऋतु में भी शरत्काल के फूल दृष्टि आते हैं और वसन्त ऋतु के शरत्काल में भासते हैं। यहभी एक नीति है कि, इससे इसद्रव्य की शक्ति ऐसे होजावे परन्तु स्वरूप से सब ब्रह्मरूप है; द्वैत नानात्व कुछ नहीं। केवल ब्रह्मतत्त्व अपनेआप में स्थित है, व्यवहार के निमित्त नानात्व की कल्पना हुई है; वास्तव में द्वैत कुछ नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सूक्ष्मरन्ध्र से स्थूलरूप वायु कैसे निकल जाती है और अणु सूक्ष्मरूप होकर फिर स्थूलभाव को कैसे प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे आरे से कटे काष्ठ के दो टुकड़े को शीघ्र ही घिसिये तो उनसे स्वाभाविक अग्नि प्रकट होती है तैसेही मांसमय जो कमल उदर में है उसके मध्य हृदयकमल है और उसमें सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति है। उस कमल के भीतर दो कमल हैं एक अधः और दूसरा ऊर्ध्व अधः चन्द्रमाकी स्थिति है और ऊर्ध्व सूर्य की स्थिति है और उनके मध्य में कुण्डलिनी लक्ष्मी स्थितहै। जैसे पद्मराग मणि का डब्बा हो और मोतियों का भण्डार हो तैसेही उसका महाउज्ज्वलरूप है। जैसे आवर्त फेन के मिलने से शलशल शब्द प्रकट होताहै तैसेही उससे शब्द निकलता है और जैसे डण्डे के साथ हिलायेसे सर्पिणी शब्द करती है तैसेही उस कुण्डलिनी से प्रणव शब्द उदय होता है। हे रामजी! आकाश और पृथ्वी जो ऊर्ध्व

और अधःरूप दो कमल हैं उनके मध्य में कुण्डलिनी शक्ति स्पन्दरूपिणी स्थित है। वह जीवकला पुर्यष्टका अनुभवरूप अतिप्रकाश सूर्य की नाईं हृदयरूप कमल की भ्रमरी है सो सबोंकी अधिष्ठान आदि शक्ति है और हृदयकमल में विराजमान है। उस हृदय आकाश में कुण्डलिनी शक्ति है उसमें से स्वाभाविक वायु निकलती है सो कोमल मृदुरूप है। वही पवन निकलकर दो रूप होताहै एक प्राण और दूसरा अपान, वही अन्योन्य मिलकर स्फुरणरूप होता है। जैसे वृक्षके पत्तों के हिलने से उससे शीघ्रही अग्नि प्रकट होती है और बांसों के घिसने से अग्नि प्रकट होती है तैसे ही प्राण अपान से अग्नि प्रकट होकर जब आकाश में उदय होती है तब सर्व ओर से भीतर प्रकाश होता है। जैसे सूर्य के उदय हुये सर्व ओर से भुवन प्रकाशित होते हैं तैसेही सर्व ओर से प्रकाशित होता है और सूर्य रूप तारा अग्निवत् तेज आकार हैं। हृदयकमल का भ्रमरा स्वर्णरूप है और उसके चिन्तन से योगी तद्वत् होते हैं। वह प्रकाश ज्ञानरूप है और उस तेज से योगी की वृत्ति तद्वत् होती है अर्थात् एकत्वभावको प्राप्त होती है तब लक्षयोजन पर्यन्त जो पदार्थ हों उनका उसे ज्ञान हो आता है और सब प्रत्यक्ष दृष्टि पड़ते हैं। उस अग्नि का हृदयरूपी ताल स्थान है—जैसे बड़वाग्नि समुद्र में रहती है और उसको जल ही इन्धन है अर्थात् जलको दग्ध करती है; तैसेही हृदयरूप ताल में उसका निवास है और रस शीतलतारूप जल को पचाती है। उस हृदयकमल से जो अपानरूप शीतल वायु उदय होता है उसका नाम चन्द्रमा है और प्राणरूप उष्णपवन उदय होताहै सो सूर्यरूप है। वही उष्ण और शीतल सूर्य चन्द्रमा नाम से देहमें स्थित हैं। आदि प्राण वायुरूप सूर्य अपानरूप चन्द्रमा से सूर्यरूप होकर स्थित होता है। सूर्य उष्ण और चन्द्रमा शीतल है। इन दोनों से जगत् हुआ है। विद्या, अविद्या, सत्य, असत्यरूप जगत् इन दोनों से युक्त है सत्, चित्, प्रकाश, विद्या, उत्तरायण, सूर्य, अग्नि आदिक नाम बुद्धिमान् निर्मलभाव से कहते हैं और असत्, जड़, अविद्या, तम, दक्षिणायन आदिक चन्द्रमारूप से मलिनभाव कहते हैं। रामजी ने पूछा, हे

भगवन्! अग्नि, सूर्यरूप जो प्राणवायु है उससे शीतल जलरूप चन्द्रमा अपानरूप कैसे उत्पन्न होता है और अपान जल चन्द्रमारूप से सूर्य कैसे उत्पन्न होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सूर्यचन्द्रमा जो अग्निसोम हैं वे परस्पर कार्य कारणरूप हैं। जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से बीज होता है; जैसे दिन से रात्रि और रात्रि से दिन होता है और जैसे छाया से धूप और धूप से छाया होती है; तैसेही सूर्य चन्द्रमा परस्पर कार्य कारण होते हैं। कभी २ इनकी इकट्ठी उपलब्धि भी होती है—जैसे सूर्य के उदय हुये धूप और छाया दोनों इकट्ठे होजाते हैं। कार्य कारण भी दोप्रकार का है--एक कार्य सत्यरूप परिणाम से होता है एक विनाशरूप परिणाम से होता है। एक से जो दूसरा होता है सो जैसे बीज नष्ट होगया तो उससे अंकुर होता है सो विनाशरूप परिणाम होता है और जैसे मृत्तिका से घट उपजता है सो सत्यरूप परिणाम कहाता है। जो कारण कार्य के भाव में भी इन्द्रियों से प्रत्यक्ष पाइये उसका नाम सत्यरूप परिणाम है और जो कार्य में इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं पाया जाता जैसे दिन में रात्रि और रात्रि में दिन सो विनाशरूप परिणाम कहाता है। जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है तैसेही अभाव प्रमाण भी है। इससे विनाशभाव भी एक कारणरूप है जैसे युक्तिवादी कहते हैं कि, अपने संवित् में कर्तव्य नहीं बनता इत्यादि सो इस अर्थ की अवज्ञा करते हैं और अपने अनुभव को नहीं जानते। अनुभव की युक्ति उनको नहीं आती। यह अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रकट होता है। शीतलता का प्रमाण यह है कि, जैसे अग्नि के भाव से शीतलता के अभाव में उष्णता होती है; दिन के अभाव में रात्रि और छाया के अभाव में धूप इत्यादिक का नाम अभाव प्रमाण कहाता है। अग्नि से धूम्रभाग निकलताहै सो मेघ होताहै इसकारण सत्त्वरूप प्रमाण से चन्द्रमाका कारण अग्नि होता है और अग्नि नाश होकर शीतलभाव को प्राप्त होती है तब उसका नाम विनाश प्रमाण से अग्नि चन्द्रमाका कारण होता है। सात समुद्रों का जल पान करके बड़वाग्नि धूम्रको उद्गीर्ण करता है सो धूम्र मेघ को प्राप्त होकर अत्यर्थ जल का कारण होता है। सूर्य जो विनाश के अर्थ

चन्द्रमा को पान करता है सो अमावस्यापर्यन्त बारम्बार भक्षण करता है और फिर शुक्लपक्ष में उद्गीर्ण करता है—जैसे सारस पक्षी कर्म की जड़ को भक्षण करके उद्गीर्ण कर डालता है। हे रामजी! अमृत के समान शीतल जो अपानवायु चन्द्रमारूप है सो मुख के अग्र में रहता है। वह कणकारूप जल जब शरीर में जाताहै तब वह जल का अणु अपान और सूर्यरूपी प्राण फुरणको प्राप्त होता है। इस प्रकारसत्यरूप परिणाम से जल अग्निका कणका होताहै। जब जलका नाश होजाताहै तब वह उष्णभाव अग्नि को प्राप्त होता है—इनका नाम विनाश परिणाम है। इस प्रकार जल अग्नि का कारण कहाता है। अग्नि के नाश हुये चन्द्रमा उत्पन्न होता है इसका नाम विनाशपरिणामहै और चन्द्रमाके अभावहुये अग्नि उत्पन्न होताहै इसका नाम भी विनाश परिणाम है जैसे तम के अभाव से प्रकाश उदय होता है और प्रकाश के अभाव से तम होता है; दिन के अभाव से रात्रि और रात्रि के अभाव से दिन होता है; इसके मध्य में जो विलक्षणरूप है सो बुद्धिमानों से भी नहीं पाया जाता। वह तम और प्रकाश दोनों रूपों से युक्त है; इनके मध्य में जो संधि है सो आत्मरूप है। उसमें स्थित होके चेतन और जड़ दोनों रूपों से भूत फुरण होते हैं। जैसे दिन और रात्रि; तम और प्रकाश से पृथ्वी में चेष्टा करते हैं सो चेतन और जड़रूप सूर्य और चन्द्रमा दोनों रूपों से युक्ति है। निर्मलरूप प्रकाश जो चिद्रूप है उसका नाम सूर्य है और जड़ात्मक तमरूप है सो चन्द्रमा का शरीर है। जब निर्मल चेतनरूप सूर्य आत्मा का दर्शन होता है तब संसार के दुःखरूप जो तम हैं सो नष्ट होजाते हैं—जैसे आकाश में सूर्य उदय से श्यामरात्रि का तम नष्ट होजाता है। जड़ चन्द्रमारूप जो देह है जब उसको देखता है तब चेतनरूप सूर्य नहीं भासता—असत्य की नाईं होजाताहै और चेतन की ओर देखताहै तब देह नहीं भासता। केवल लक्षमें दूसरे की उपलब्धि नहीं होती। केवल चेतनपद को प्राप्त हुये से द्वैत से रहित निर्वाणभाव होता है और जड़भाव को प्राप्तहुये चेतन नहीं भासता इससे संसार के दर्शन का कारण दोनों हैं। सूर्य चेतन से चन्द्रमा जड़

की उपलब्धि होती है और जड़ चन्द्रमा से सूर्य चैतन्य की उपलब्धि होती है। जैसे दीपक अग्नि का अन्धकार विना प्रकाश नहीं होता तैसेही इन दोनों विना आत्मा की उपलब्धि नहीं होती। प्रकाश विना केवल जड़ की उपलब्धि भी नहीं होती—जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जिस दीवार पर पड़ता है वह दीवार प्रकाश से भासती है और प्रकाश दीवार से भासता है; तैसेही चित्त फुरता है तब चेतन को जगत् भासताहै और फुरना जगत् से होता है—फुरने से रहित अचैत्य चिन्मात्र निर्वाण होता है। इससे हे रामजी ! जगत् को अग्नि और सोम जानों। देह देह से सम्बन्ध है परन्तु जिसकी अतिशय हो उसकी जय होती है। प्राण—अग्नि उष्णरूप है और अपानशीतल—चन्द्रमारूप है। ये दोनों प्रकाश और छायारूप हैं—इनको जानना सुख का मार्ग है। हे रामजी ! जब बाहरसे शीतलरूप अपान भीतर को आता है तब उष्णरूप प्राण में जा स्थित होताहै और जब हृदयस्थान से निकलकर उष्णरूप प्राण बाहर को द्वादशअंगुल पर्यन्तजाता है तब अपान जो चन्द्रमा का मण्डल है उसको प्राप्त होता है। अपानप्राणरूप होकर उदय होता है और प्राण अपानरूप होकर उदय होता है। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है। तैसेही इनका परस्पर आपस में प्रतिबिम्ब पड़ता है जहां षोड़शकला चन्द्रमा को सूर्य ग्रास लेता है उस मध्यभाव में स्थित हो। जब अपान प्राणों के स्थान में आन स्थित होता है और प्राणरूप होकर उदय नहीं हुआ सो शान्तिरूप भाव है—उसमें स्थित हो। प्राण निकलकर जब मुख से द्वादश अंगुल पर्यन्त बाहर स्थित होताहै और जबतक अपानभाव को प्राप्त होकर उदय नहीं वह वह जो मध्यभावहै उसीमें स्थित हो। मेष आदिक जो द्वादशराशिहैं उनमें एकको त्यागकर दूसरी राशि को जबतक संक्रान्ति नहीं प्राप्त होती उसका नाम संक्रान्ति है और उनके मध्य में जो सन्धि है उसका नाम पुण्यकालहै सो पुण्य भीतर और बाहर प्राण अपानकी सन्धिके समयमें तृणवत् है। उन संक्रान्तियों में जो वैशाखकी वृषवती संक्रान्ति है सो शिवरात्रि चैत्रकी संक्रान्ति त्रयोदश दिन होते हैं और अस्तकी संक्रान्ति

त्रयोदश दिनहै इनका नाम वृषवती है । जहां दिन और रात्रि सम होते हैं और दक्षिणायन और उत्तरायण की जो सन्धि होती हैं इनके भीतर और बाहर भेदको जाने तब जन्मसे रहितहोकर परमबोधको प्राप्तहो। हे रामजी! उत्तरायण मार्ग योगीश्वरों का है उससे वे क्रम से मुक्त होते हैं और दक्षिणायन मार्ग कर्म करनेवालों का है इससे वे फिर संसारभागी होते हैं। उनके मध्यमें जो संधिहै उसमें स्थित हुये से परम उत्तमपद प्राप्त होताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअग्निसोमविचारयोगो-
नामाष्टषष्टितमस्सर्गः ६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह योग की सर्वकला मैंने विस्तार से कही और इसमें उत्तम प्रभाव वर्णन हुआ है । प्रयोजन यही है कि, तुम निर्वाण पद में स्थित हो और आत्मब्रह्म की एकता हो जिससे कि, फिर जन्मादिकों का दुःख न हो । ब्रह्म सत्, चित्, आनन्द स्वभावमात्र है । जो एक वार्त्ता में एकत्वभाव होते हैं वही भाव रहते हैं और धनी शक्ति का धनी होताहै और अविद्या नाश होजाती है। इस प्रकार जब वही चुड़ालारानी योग और ज्ञान के अभ्याससे पूर्णहुई तब सब शक्तियोंसे संयुक्त होकर धनी, अणिमा आदि सिद्धियों को प्राप्त हुई । एकरात्रि में राजा सोया था तो वह अवकाश पाकर आकाशके बहुत स्थानों में बिचरी; फिर देवलोकमें अति चञ्चल काली का रूप धारके फिरी; फिर मध्य दिशा, देव-लोक, दैत्यों, राक्षसों, विद्याधरों और सिद्धों के लोक में होकर सूर्यलोक; चन्द्रलोक; मेघमण्डल और इन्द्रलोकमें गई और वहां का कौतुक देखकर फिर अधोलोकमें आई । समुद्रमें प्रवेश करके फिर अग्नि में प्रवेश करगई पवन में पवनरूपहुई और नागलोककी कन्याओं में क्रीड़ाकी। फिर वनों, पर्वतों, भूतों, अप्सराओं और त्रिलोकी के मध्य बिचरी । इसीप्रकार लीला करके फिर एकक्षण में उसी स्थानमें जहां राजा सोया था आई और राजाके समीप सोरही—जैसे भँवरी भँवरा कमलिनी के मध्य में शयन करते हैं पर राजाने न जाना कि रानी कहीं गईथी वा न गईथी जब रात्रि बीती और प्रातःकाल हुआ तो राजाने स्नानशाला में जाकर स्नानकर वेदोक्त कर्म

किये और रानी ने भी प्रवाह कर्म किये। जैसे पिता पुत्रको मीठे वचनों से उपदेश करता है। तैसेही रानी ने राजा को शनैःशनैः तत्त्व का उपदेश किया और पण्डितों से भी कहा कि तुम भी राजा को उपदेश करो कि यह जगत् स्वप्नवत् भ्रम; दीर्घ रोग और दुःखों का कारण है, आत्मज्ञान औषध से यह नाश होता है और इसकी कोई औषध नहीं। इसी प्रकार आप भी राजा को उपदेश करे और पण्डित लोग भी उपदेश करें परन्तु राजा ने वह ज्ञान न पाया और विक्षेपता में रहा। राजा ने उस उत्तमपद में विश्राम न पाया जो अपना आप केवल चित्तरूप, प्रत्येक और आत्मा है रामजी ने पूछा, हे महामुनि! रानी तो सर्वशक्तिसम्पन्न हुई थी कि योगकला में भी अतिचतुर और ज्ञानकला में तद्रूप थी और राजा भी अति मूढ़ न था उसको उसका उपदेश क्यों न दृढ़ हुआ? रानी भी उसको प्रीति से उपदेश करती थी तो क्या कारण था जो वह अपने पद में स्थित न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे अछिद्रमोती में तागा प्रवेश नहीं करता तैसेही चुड़ाला के उपदेश ने राजा को न बेधा। जब तक आप विचार न करे और उसमें दृढ़ अभ्यास न हो तबतक यदि ब्रह्मा भी उपदेश करें तो उसको न बेधे क्योंकि आत्मा आपही से जाना जाता है और इन्द्रियों का विषय नहीं। अधिष्ठानरूप और स्वभावमात्र आपही आपको देखता है और किसी मन और इन्द्रियों का विषय नहीं सबका अपना आप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यदि अपने आपही से देखता है तो गुरु और शास्त्र किस निमित्त उपदेश करते हैं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! गुरु और शास्त्र जना देते हैं कि तेरा स्वरूप आत्मा है परन्तु 'इदं' करके नहीं देखाते। विचारनेत्र से आपको आपही देखता है; विचार से रहित उसको नहीं देखसक्ता। जैसे किसी पुरुष को चन्द्रमा कोई सचक्षु दिखाता है पर जो वह सचक्षु होता है तो देखता है और मन्द दृष्टि होता है तो नहीं देखता; तैसे ही गुरु और शास्त्र आत्मा का रूप वर्णन करते हैं और लखाते हैं पर जब वह विचारनेत्र से देखता है तब कहताहै कि, मैंने देखा और और के दिखाने के योग्य होताहै। हेरामजी!

आत्मा किसी इन्द्रिय का विषय नहीं; वह अपना आप मूलरूप है और इन्द्रियां कल्पित हैं। जो तुम कहो कि, तुम भी तो इन्द्रिय से ही उपदेश करते हो तो सब इन्द्रियों का विस्मरण करो तो अपना मूल तुम्हें भासे। हे रामजी! इस पर एक क्रान्त का इतिहास है सुनो। एक क्रान्त था जिसके पास बहुत धन और अनाज था परन्तु वह ऐसा कृपण था कि, किसी को कुछ न देता था और धनकी तृष्णा करता था कि, किसी प्रकार मुझे चिन्तामणि मिले इसी इच्छा से एक समय घर से बाहर निकल पृथ्वी की ओर देखता जाता था कि, एक स्थान में पहुँचा जहां घास और भुस पड़ा था तो उसे उसमें एक कौड़ी दृष्टि पड़ी और उसने उस कौड़ी को उठाकर देखने लगा कि, कुछ और भी निकले तो फिर दूसरी कौड़ी निकली; इसी प्रकार ढूँढ़ते २ उसे तीन दिन व्यतीत हुए तब चार कौड़ी निकलीं और फिर आठ निकलीं। जब तीनदिन और ढूंढ़ते बीते तब चन्द्रमा की नाईं चिन्तामणि प्रकट देखी और उसे लेकर अपने घर आया और अतिहर्षवान् हुआ। हे रामजी! तैसेही गुरु और शास्त्रों से 'तत्त्वमसि' और 'अहंब्रह्मास्मि' का पाना कौड़ियों का खोजना है और आत्मा चिन्तामणि रूप है। परन्तु जैसे कौड़ियों के खोज में उसने चिन्तामणि विना खोजे न पाई तैसे ही गुरु और शास्त्रों से आत्मपद मिलता है— गुरु और शास्त्रों विना नहीं मिलता। धन, तप और कर्म से आत्मा नहीं मिलता, केवल अपने आपसे पाया जाता है। हे रामजी! जब शिखरध्वज चुड़ाला के पास से उठकर स्नान को गया तब राजा के मन में वैराग उपजा कि, यह संसार मिथ्या है। हमने बहुत भोग भोगे तौ भी हृदय को शान्ति न हुई और इन भोगों का परिणाम दुःखदायक है। जब मन में ऐसा विचार उपजा तब राजा ने गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण, मन्दिर और दूसरी सामग्री बहुत दान की और सब ऐश्वर्य के पदार्थ ब्राह्मणों, ग़रीबों और अतिथियों को अधिकार के अनुसार दिये। रानी ने भी ब्राह्मणों और मन्त्रियों से कहा कि, राजा को तुम यही उपदेश दिया करो कि, ये भोग मिथ्या हैं; इनमें कुछ सुख नहीं और आत्मसुख बड़ा सुख है जिसके पाये

से जन्म-मरणसे मुक्त होताहै इसीप्रकार राजा ब्राह्मणों से सुने और अपने मन में भी वैराग उपजाता था इस कारण विचारे कि, मैं इससंसारदुःख से रहित होजाऊं; यह संसार बड़ा दुःखरूप है और इसमें सदा जन्म-मरण है। निदान राजा के मनमें आया कि, मैं तीर्थोंको जाऊं और स्नानकरूं, इसलिये तीर्थोंको चला और स्नान, दान करता इसीप्रकार देवता, तीर्थों और सिद्धों के दर्शन करके गृहको आया। रात्रि के समय रानी के साथ शयन किया तो रानी से कहा कि, हे अङ्गने! अब मैं वनको तप करनेके लिये जाता हूं क्योंकि ये भोग मुझे दुःखदायक भासते हैं और राज्य भी वनकी नाईं उजाड़ भासता है। ये भोग हम बहुत काल पर्यन्त भोगते रहे तौ भी इनमें सुख दृष्टि न आया, इसलिये मैं वन को जाता हूं-मुझे न अटकाइयो। तब रानी ने कहा, हे राजन्! अब तेरी कौन अवस्था है जो तू वन में जाताहै? अब तो हमारे राज भोगने का समय है। जैसे वसन्त में फल शोभा पाते हैं और शरत्काल में नहीं शोभते तैसे ही हम भी जब वृद्ध होंगी तब वनको जावेंगी और वन ही में शोभा पावेंगी। जैसे वनके फूल श्वेत होते हैं तैसे ही जब हमारे केश श्वेत होंगे तब शोभा पावेंगे-अब तो राज करो। हे रामजी! इस प्रकार रानी ने कहा पर राजा का चित्त वैराग ही में रहा और रानी का कहना चित्त में न लाया। जैसे चन्द्रमा विना कमलिनी शान्ति नहीं पाता तैसेही ज्ञान विना राजा को शान्ति न हुई परन्तु वैराग करके फिर कहने लगा; हे रानी! अब मुझे न रोंक अब राज्य मुझको फीका लगता है इसलिये मैं वन को जाता हूँ यहां नहीं ठहर सक्ता। जो तुम कहो कि, हम यहां तेरी टहल करती थीं वन में कौन करेगा तो पृथ्वी ही हमारी टहल करेगी, वन की वीथियां स्त्रियां होंगी; मृगों के बालक पुत्र; आकाश हमारे वस्त्र और फूल के गुच्छे भूषण होंगे। जब दूसरी रात्रि हुई और राजा वहांसे चला तो रानी और सेनाभी पीछे चली और कोट के बीच सब स्थित हुये। राजा और रानी ने विश्राम किया—जैसे भँवरा भँवरी सोते हैं और सेना और सहेलियां भी सब सो-गईं और पत्थर की शिलावत् कर्म निद्रा से जड़ होगये। जब आधी रात्रि

व्यतीत हुई तो राजा जगा और देखा कि, सब सोगये हैं। निदान शय्या से उठ और रानी के वस्त्र एक ओर करके और हाथमें खड्ग लेकर निकला जैसे क्षीरसमुद्र से विष्णु भगवान् लक्ष्मी के पास से उठते हैं तैसेही उठ सब लोगों को लङ्घता कोट के दरवाजे पर आया तो देखा आधे मनुष्य जागते थे और आधे सोगये थे। उन्होंने जब राजा को देखा तब राजा ने कहा, द्वारपालो ! तुम यहां ही बैठे रहो; मैं अकेला ही वीरयात्रा को जाता हूं। इतना कह राजा तीक्ष्ण वेग से चलागया और बाहर निकल-कर कहा, हे राजलक्ष्मी ! तुझको नमस्कार है; अब मैं वनको चला हूं; फिर एक वन में पहुंचा जहां सिंह, सर्प तथा और २ भयानक जीव थे; उनके शब्द सुनता आगे चला गया तो उसके आगे और वन मिला उसको भी लांघगया। आठ प्रहर चलकर राजा एक ठौर जा स्थित हुआ और जब सूर्य उदयहुआ तब स्नान करके संध्यादिक कर्म किये और वृक्षों के फल भोजनकर फिर वहां से आगे चला। इसडरसे कि, कोई कहीं पीछे से आकर मुझे न रोंके बड़े तीक्ष्ण वेग से चला और बड़े पहाड़, नदियां और वन उल्लंघकर बारह दिन पश्चात् जब मन्दराचल पर्वत के निकट जा पहुँचा तब एक वनमें जा स्थितहुआ और स्नानकरके कुछ भोजनकिया। मेघ और छायासे रक्षाके निमित्त उसने वहां एक झोपड़ी बनाई और बासन बनाकर उनमें फूल और फल रक्खे। जब प्रातःकाल हो तब स्नान करके प्रहरपर्यन्त जाप करे और फिर देवताओं की पूजा के निमित्त फूल चुने; दो प्रहर स्नानकरके ऐसे व्यतीत करे, जब तीसराप्रहर हो तब फल भोजन करे और चौथेप्रहर फिर संध्या और जाप करे। कुछ काल रात्रिको शयन करे और बाकी जापमें बितावे; इसीप्रकार कालको व्यतीतकरे। हेरामजी ! राजा की तो यह अवस्थाहुई अब रानी की अवस्था सुनो। जब अर्धरात्रि के पीछे रानी जागी तो क्या देखा कि, राजा यहां नहीं है और शय्या खाली पड़ी है रानी ने सहेलियों को जगाकर कहा बड़ा कष्ट है कि, राजा वनको निकलगया है और बड़े भयानक वन में जावेगा। ऐसे कहकर मनमें विचार किया कि, राजा को देखा चाहिये इस निमित्त योग में

स्थित होकर आकाश को उड़ी और आकाश की नाईं देह को अन्तर्धान किया। जैसे योगेश्वरी भवानी उड़ती हैं तैसेही उड़ी और आकाश में स्थित होकर देखा कि, राजा चलाजाता है। रानी के मन में आया कि, इसका मार्ग रोकूं पर एकक्षणमात्र स्थित होकर भविष्यत् को विचारने लगी कि; राजा का और मेरा संयोग नीति में कैसे रचा है। विचार करके देखा कि, राजा का और मेरा मिलाप होने में अभी बहुतकाल बाकी है; अवश्य मिलाप होगा और मेरे उपदेश से राजा जागेगा परन्तु यह सब बहुत काल उपरान्त होगा अभी इसके कषाय परिपक्व नहीं हुये इससे इसका मार्ग रोंकना न चाहिये। निदान रानी फिर अपने घर आई और शय्या पर शयनकर बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुई। जब रात्रि व्यतीत हुई तब मन्त्रियों से कहने लगी कि, राजा एक तीर्थ करने गया है और दर्शन करके फिर आवेगा, तुम अपने कार्य करते रहो। यह सुन मन्त्री अपनी चेष्टा में वर्तनेलगे और इसी प्रकार रानी ने आठ वर्ष पर्यन्त राज्य किया और प्रजा को सुख दिया। जैसे बाग़वान कमलों और क्यारियों को पालता है तैसे ही रानी ने प्रजा को पालकर सुख दिया। उधर राजा को आठ वर्ष तप करते बीते और उसके अङ्ग दुर्बल होगये और इधर रानी ने राज्य किया पर जैसे भँवरा और ठौर हो तैसेही व्यतीत समय हुआ। तब रानी ने विचार किया कि, राजा अब मेरे वचनों का अधिकारी हुआ होगा क्योंकि, अब उसका अन्तःकरण तप करके शुद्ध हुआहै इससे अब राजा को देखिये। निदान रानी वहांसे उड़के आकाश को गई और इन्द्रके नन्दनवन को देख वहांके दिव्यपवन का स्पर्शहुआ तो उसके चित्तमें आया कि, मुझे भर्ता कब मिलेगा। फिर कहनेलगी कि, बड़ा आश्चर्य है; मैं तो सत्पदको प्राप्तहुई थी तौ भी मेरा मन चलायमान हुआहै तो और जीवोंकी क्या वार्ताहै। वहां से भी चली तो आगे कमल फूल देखकर कहनेलगी कि, मुझे भर्ता कब मिलेगा मैं तो कामातुरहुईहूँ। फिर मन में कहनेलगी कि, हे दुष्टमन! तू तो सत्पद को प्राप्त हुआ था तेरा भर्ता आत्मा है अब तू मिथ्या पदार्थों की अभिलाषा क्या करताहै?

मालूम होता है कि, जबतक देह है तबतक देह के स्वभाव भी साथ रहते हैं इससे यह अवस्था प्राप्त हुई है तभी मन चलायमान होताहै इससे इतर जीवों की क्या वार्ता है। तब रानी मेघ, बिजली, पर्वत, नदियां, समुद्र और और भयानक स्थानों को लांघकर मन्दराचल पर्वत के पास वन में पहुँची और देखनेलगी कि, मेरा भर्ता कहां है। समाधि में स्थित होकर उसने देखा कि, अमुक स्थान में बैठा है, तप करके महा दुर्बल अङ्ग हो गये हैं और ऐसे स्थान में प्राप्त हुआ है जहां और जीव की गम नहीं। बड़ा आश्चर्य है कि, महावेताल की नांई यह रात्रि को चला आया है। अज्ञान महादुष्ट है कि, ऐसा राजा तप में लगा है और स्वरूप के प्रमाद से जड़ है। अब ऐसा हो कि, किसी प्रकार यह अपने स्वरूप को प्राप्त हो। परन्तु मेरे इस शरीर से इसको ज्ञान न उपजेगा क्योंकि, प्रथम तो उसको यह अभिमान होगा कि, यह मेरी स्त्री है और फिर कहेगा कि, मैंने इनहीं के निमित्त राज्य छोड़ा है और यह फिर मुझे दुःख देने आई है इससे मैं ब्रह्मचारी का शरीर धारूं। ऐसा विचार करके उसने शीघ्र ही ब्रह्मचारी का शरीर धरा और हाथ में रुद्राक्ष की माला और कमण्डलु और गले में मृगछाला धारण किया। जैसे सदाशिव के मस्तक पर चन्द्रमा विराजता है तैसे ही सुन्दर विभूति लगा और श्वेत ही यज्ञोपवीत धारण-कर पृथ्वी के मार्ग से राजा के निकट जा पहुंची। राजा उसे देखकर आगे से उठ खड़ा हुआ और नमस्कारकर चरणों पर फूल चढ़ाये। फिर अपने स्थान पर बैठाकर कहने लगा; हे देवपुत्र ! आज मेरे बड़े भाग हैं जो आपका दर्शन हुआ। कृपा करके कहिये कि, आप किस लिये आये हैं ? देवपुत्र बोले, हे राजन् ! हम बड़े बड़े पर्वत देखते और तीर्थ करते आये हैं परन्तु जैसी भावना तुझ में देखी है तैसी किसी में नहीं देखी। तूने बड़ा तप किया है और तू इन्द्रियजित् दृष्टि आता है। मैं जानता हूं कि, तेरा तप खड्ग की धार सा तीक्ष्ण है इससे तू धन्य है और तुझे नमस्कार है। परन्तु हे राजन् ! आत्मयोग के निमित्त भी कुछ तप किया है अथवा नहीं सो कह ? तब राजा ने जो फूलों की माला देव-

पूजन के निमित्त रक्खी थी सो देवपुत्र के गले में डाली और पूजा करके कहा, हे देवपुत्र ! तुम ऐसों का दर्शन दुर्लभ है और अतिथि का पूजन देवता से भी अधिक है। हे देवपुत्र ! आपके अङ्ग बहुत सुन्दर दृष्ट आते हैं। ऐसे ही मेरी स्त्री के भी अङ्ग थे; नख से शिख पर्यन्त तुम्हारे वही अङ्ग दृष्ट आते हैं परन्तु आप तो तपस्वी हैं और आपकी मूर्ति शान्ति के लिये हुई है मैं कैसे कहूं कि, तुम वही हो। इससे हे देवपुत्र ! आप किसके पुत्र हैं; यहां किस निमित्त आये हैं और आगे कहां जावेंगे यह संशय मेरा निवृत्त कीजिये ? तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन् ! एक समय नारदमुनि सुमेरु पर्वत की कन्दरा में जहां आश्चर्य के देनेवाले वृक्ष और मञ्जरियां फूलों और फलों से पूर्ण थीं और ब्राह्मणों की कुटी बनी हुई थीं समाधि लगाके बैठे। वहां गङ्गा का प्रवाह चलता था और सिद्धों के सिवाय और जीवों की गम न थी इससे नारदमुनि वहां कुछ काल समाधि में स्थित रहे। जब समाधि से उतरे तब उन्होंने आभूषणों का शब्द सुना और मन में महाआश्चर्य माना कि, यहां तो कोई नहीं आसक्ता यह भूषणों का शब्द कहां से आया। तब उठकर देखने लगे कि, गङ्गा का प्रवाह चला आता है और वहां उर्वशी आदिक महासुन्दर अप्सरा वस्त्रों को उतारे हुये स्नान करती हैं। जब उनको नारदजी ने देखा तो उनका विवेक जाता रहा और वीर्य निकलकर उनके पास एक सुन्दर बेल थी उसके पत्र पर स्थित हुआ। इतना सुनके शिखरध्वज ने कहा, हे देवपुत्र ! ऐसे ब्रह्मवेत्ता और सर्वज्ञ मननशील संयुक्त नारदमुनि का वीर्य किस निमित्त गिरा ? देवपुत्र ने कहा, हे राजन् ! जबतक शरीर है तबतक अज्ञानी और ज्ञानी का शरीर स्वभाव निवृत्त नहीं होता; परन्तु एक भेद है कि, ज्ञानवान् को यदि दुःख प्राप्त होता है तो वह दुःख नहीं मानता और यदि सुख प्राप्त होता है तो सुख नहीं मानता और उससे हर्षवान् नहीं होता; और अज्ञानी को यदि दुःख सुख प्राप्त होते हैं तो वह हर्ष शोक करताहै। जैसे श्वेत वस्त्रपर केशर का रङ्ग शीघ्र ही चढ़ जाताहै तैसे ही अज्ञानी को दुःख सुख का रङ्ग शीघ्रही चढ़ जाताहै और जैसे मोम के वस्त्रोंको जल का स्पर्श नहीं होता

तैसे ही ज्ञानवान् को दुःख सुख का स्पर्श नहीं होता। जिसके अन्तः-करणरूपी वस्त्र को ज्ञानरूपी मोम नहीं चढ़ा उसको दुःख सुखरूप जल स्पर्श कर जाता है। दुःख की और सुख की नाड़ी भिन्न २ हैं, जब सुख की नाड़ी में जीव स्थित होता है तब कोई दुःख नहीं देखता और जब दुःख की नाड़ी में स्थित होता है तब सुख नहीं देखता। अज्ञानी को कोई दुःख का स्थान है और कोई सुखका स्थान है और ज्ञानी को एक आभासमात्र दिखाई देता है—बन्धवान् नहीं होता। जबतक अज्ञान का सम्बन्ध है तबतक दुःख निवृत्त नहीं होता। तब राजा ने कहा कि, वीर्य जो गिरता है सो कैसे निवृत्त होता है? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! जब चित्त वासनासे क्षोभवान् होताहै तब नाड़ी भी क्षोभ करती हैं और अपने स्थानों को त्यागने लगती हैं; उसी अवस्था में वीर्यवाली नाड़ी से भी स्वाभाविक ही वीर्य नीचे को चला आता है। फिर राजा ने पूछा हे देव-पुत्र! स्वाभाविक किसे कहते हैं? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! आदि शुद्ध चेतन परमात्मामें जो फुरनाहुआहै उस क्षणमात्र शक्तिके उत्थानसे प्रपञ्च बन गया है उसमें आदि नीति हुई है कि, यह घट है; यह पटहै; यह अग्नि है; इसमें उष्णता है; यह जल है; इसमें शीतलता है; तैसे ही यह भी नीति है कि; वीर्य ऊपर से नीचे को आता है। जैसे पर्वत से पत्थर गिरता है सो नीचे को चला आता है तैसे ही वीर्य भी नीचे को आता है। तब राजा ने प्रश्न किया कि, हे देवपुत्र! जीव को दुःख सुख कैसे होता है और दुःख सुख का अभाव कैसे होता है? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! यह जीव कुण्डलिनी शक्ति में स्थित होकर दृश्य में जो चारों अन्तःकरण; इन्द्रियां और देह है उनमें अभिमानकरके इनके दुःख से दुःखी और इनके सुख से सुखी होता है तो जैसा २ आगे प्रतिबिम्ब होता है तैसा २ दुःख सुख भासता है। जैसे शुद्धमणि में प्रतिबिम्ब पड़ता है। यह सब अज्ञान से होता है और ज्ञान से इसका अभाव होजाता है। जब ज्ञानरूप का आव-रण करके आगे पटल होता है तब प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। देहादिक के अभिमान से रहित होने को ज्ञान कहते हैं कि; न देहादिक है और न

मैं इनसे कुछ करता हूं। जब ऐसे निश्चय हो तब दुःख सुख का भान नहीं होता क्योंकि; संसार का दुःख सुख भावना में होताहै; जब वासना से रहित हुआ तब दुःख सुख भी सब नष्ट होजाते हैं। जैसे जब वृक्ष ही जल जाता है तब पत्र, फूल, फल कहांरहे; तैसेही अज्ञानरूप वासना के दग्ध हुये दुःख सुख कहांरहे ? फिर राजा ने कहा, हे भगवन् ! तुम्हारे वचन सुनते मैं तृप्त नहीं होता। जैसे मेघ का शब्द सुनते मोर तृप्त नहीं होता; इससे कहिये कि, तुम्हारी उत्पत्ति कैसे हुई है ? देवपुत्र ने कहा; हे राजन् ! जो कोई प्रश्न करता है उसका बड़े निरादर नहीं करते; इससे तुम जो पूछते हो सो मैं कहता हूं। हे राजर्षे ! वह वीर्य नारद मुनि ने एक मटकी में रक्खा और उस पर दूध डाला। वह मटकी स्वर्णवत् थी जिसका उज्ज्वल चमत्कार था। उस मटकी को पूर्णकर वीर्य को एक कोने की ओर किया और फिर मन्त्रों का उच्चार किया और आहुति देकर भले प्रकार पूजन किया। जब एक मास व्यतीत हुआ तब मटकी से बालक प्रकट हुआ-जैसे चन्द्रमा क्षीरसमुद्र से निकला है-उस बालक को लेकर नारद आकाश को उड़े और अपने पिता ब्रह्माजी के पास ले आये और नमस्कार किया। तब मुझको पितामह ने गोद में बैठा लिया और आशीर्वाद देकर कहा कि, तू सर्वज्ञ न होगा और शीघ्रही अपने स्वरूप को प्राप्त होगा। कुम्भ से जो मैं उपजा था इसलिये उन्होंने मेरा नाम कुंभज रक्खा। मैं नारदजी का पुत्र और ब्रह्माजी का पौत्र हूं; सरस्वती मेरी माता है; गायत्री मेरी मौसी है और मुझे सर्वज्ञान है। तब राजा ने कहा, हे देवपुत्र ! तुम सर्वज्ञ दृष्ट आते हो; तुम्हारे वचनों से मैं जानता हूं। देवपुत्र ने कहा, हे राजन् ! जो तुमने पूछा सो मैंने कहा; अब कहो तुम कौन हो; क्या कर्म करते हो और यहां किस निमित्त आये हो ? राजा ने कहा, हे देवपुत्र ! आज मेरे बड़े भाग उदय हुये हैं जो तुम्हारा दर्शन हुआ। तुम्हारा दर्शन बड़े भाग से प्राप्त होता है। यज्ञ और तपसे भी तुम्हारा दर्शन श्रेष्ठ है। देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! अपना वृत्तान्त कहो। राजा ने कहा, हे देवपुत्र ! मैं राजा हूं; शिखरध्वज मेरा

नाम है। संसार दुःखदायक भासित हुआ और बारम्बार जन्म और मरण इसमें दृष्ट आता है इससे राज्यका त्यागकर यहां पर मैं तप करने लगा हूं। तुम त्रिकालज्ञ हो और जानते हो तथापि तुम्हारे पूछने से कुछ कहना चाहिये। मैं त्रिकाल संध्या और जप करता हूं तौभी मुझे शान्ति नहीं हुई; इसलिये जिससे मेरे दुःख निवृत्त हों वही उपाय कहिये। हे देवपुत्र! मैंने बहुत तीर्थ किये हैं और बहुत देश और स्थान फिरा हूं पर अब इसी वन में आन बैठा हूं तौभी मुझे शान्ति नहीं। तब देवपुत्र ने कहा, हे राजऋषि! तूने राज्यका तो त्याग किया पर तपरूपी गढ़े में गिरपड़ा; यह तूने क्या किया? जैसे पृथ्वी का क्रम फिर पृथ्वी में ही रहता है तैसेही तू एक गढ़े को त्यागकर दूसरे गढ़े में आपड़ा है और जिस निमित्त राज्य का त्याग किया उसको न जाना। यहां आकर तूने एक लाठी मृगछाला और फूल रक्खे हैं, इनसे तो शान्ति नहीं होती। इससे अपने स्वरूप में जाग; जब स्वरूप में जागेगा तब सब दुःख निवृत्त होंगे। इसी पर एक समय ब्रह्माजी से मैंने प्रश्न किया था, कि हे पितामहजी! कर्म श्रेष्ठ है अथवा ज्ञान श्रेष्ठ है—दोनों में कौन श्रेष्ठ है? जो मुझको कर्तव्य हो सो कहो। तब पितामह ने कहा कि, ज्ञान के पाये से कोई दुःख नहीं रहता और सर्व आनन्द का आनन्द ज्ञान है। अज्ञानी को कर्म श्रेष्ठ है क्योंकि, वे पापकर्म करेंगे तो नरक को प्राप्त होंगे, इससे तप और दान करनेसे स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती तौभी अज्ञानी को कर्म ही श्रेष्ठ है कि, नरक न भोगकर स्वर्ग में रहे। जैसे कम्बल से पटका वस्त्र श्रेष्ठ है परन्तु यदि पटका न पाइये तो कम्बलही भला है; तैसेही ज्ञान पट की नाईं है और तप कर्म कम्बल के समान है—कर्म से शान्ति नहीं होती। इससे हे राजन्! तुम क्यों इस गढ़े में पड़े हो? आगे तू राज्यवासी था और अब वनवासी हुआ; यह क्या किया कि, अज्ञान में मूर्खता के वश अज्ञान में पड़ारहा है। जबतक तुझे क्रिया का भान होता है कि, 'मैं यह करूं' तबतक प्रमाद है; इससे दुःख निवृत्त न होगा। निर्वासनिक होकर अपने स्वरूप में जाग। निर्वासनिक होनाही मुक्ति है और वासना-

सहितही बन्धन है । निर्वासनिक होनाही पुरुषप्रयत्नहै । जबतक वासना सहित है तबतक अज्ञानी है जब निर्वासनिक हो । तब ज्ञेयरूप हो सदा ज्ञेय की भावना करनेवाले को निर्वासनिक कहते हैं और ज्ञेय आत्मस्वरूप को कहते हैं; उसको जानकर फिर कोई इच्छा नहीं रहती । केवल चिन्मात्रपद में स्थित होने का नाम ज्ञेयहै । जो जानने योग्यहै सो जानो तब और वासना नहीं रहती, केवल स्वच्छ आपही होताहै । हे राजन् ! तुझे अपने स्वरूप को ही जानना था तो तू और जञ्जाल में किस निमित्त पड़ा है ? आत्मज्ञान विना और अनेक यत्न करो तौभी शान्ति न प्राप्त होगी । जैसे पवन से रहित वृक्ष शान्तरूप होताहै और जब पवन होता है तब क्षोभ को प्राप्त होताहै तैसेही जब वासना निवृत्त होगी तब शान्तपद प्राप्त होगा और कोई क्षोभ न रहेगा । जब ऐसे देवपुत्र ने कहा तब राजा ने कहा; हे भगवन् ! तुम मेरे पिताहो, तुमहीं गुरु हो और तुमहीं कृतार्थ करनेवाले हो । मैंने वासना करके बड़ा दुःख पाया है । जैसे किसी वृक्ष के पत्र, डाल, फूल, फल सूखजावें और अकेला ठूंठ रहजावे तैसेही ज्ञान विना मैं भी ठूंठसा होरहाहूं इसलिये कृपाकरके मुझे शान्ति को प्राप्त करो । देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! तुझे त्याग करके सन्तों का संग करना चाहिये था और यह प्रश्न करना चाहिये था कि, बन्ध क्या है और मोक्ष क्याहै ? मैं क्याहूं और यह संसार क्याहै? संसारकी उत्पत्ति किससे होती है और लीन कैसे होताहै ? तूने यह क्या किया कि, सन्तों विना ठूंठ वनका आकर सेवनकिया । अब तू सन्तजनों को प्राप्त होकर निर्वासनिक हो । ऐसे ब्रह्मादिक ने भी कहा है कि, जब निर्वासनिक होता है तब सुखी होता है । फिर राजा ने कहा, हे भगवन् ! तुमहीं सन्त हो और तुमहीं मेरे गुरु और पिता हो, जिस प्रकार मुझे शान्ति हो सो कहिये । तब कुम्भज ने कहा, हे राजन् ! मैं तुझे उपदेश करता हूं तू उसे हृदय में धारण कर और जो तू उसे हृदय में न धारेगा तो मेरे कहने से क्या होताहै? जैसे डाल पर कौवा हो और शब्द भी सुने तौ भी अपने कौवे के स्वभाव को नहीं छोड़ता; तैसे ही जो तू भी कौवे की नाईं हो तो मेरे कहने का क्या प्रयोजन है ? जैसे तोते को सिखाते हैं

तो वह सीखता है; तैसे तुम भी होजावो। शिखरध्वज ने कहा, हे भगवन्! जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करूंगा जैसे शास्त्र और वेद के कहे कर्म करता हूं तैसे ही तुम्हारा कहना करूंगा। यह मेरा नेम है, जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करूंगा। तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! प्रथम तो तू ऐसे निश्चयकर कि, मेरा कल्याण इन वचनों से होवेगा और फिर ऐसे जान कि, जो पिता पुत्र को कहता है तो शुभ ही कहता है। मैं जो तुझसे कहूंगा सो शुभ ही कहूंगा और तेरा कल्याण होगा। इससे निश्चय जान कि, इन वचनों से मेरा कल्याण होगा। एक आख्यान आगे व्यतीत हुआ है सो सुन। एक पण्डित धन और गुणों से संपन्न था। वह सर्वदा चिन्तामणि के पाने की इच्छा करता और इसके लिये जैसे शास्त्र में उपाय कहे हैं। तैसे ही करता था जब कुछकाल व्यतीत भया तब जैसे चन्द्रमा का प्रकाश होता है तैसे ही प्रकाशवान् चिन्तामणि उसे प्राप्त हुई और उसने उसे ऐसे निकट जाना कि, हाथ से उठा लीजिये। जैसे उदयाचल पर्वत के निकट चन्द्रमा उदय होता है तैसे ही चिन्तामणि जब निकट आ प्राप्त हुई। तब पण्डित के मन में विचार हुआ कि, यह चिन्तामणि है अथवा कुछ और है; जो चिन्तामणि हो तो उठालूं और जो चिन्तामणि न हो तो किस निमित्त पकड़ूं! फिर कहे कि, उठा लेता हूं मणि ही होगी; फिर कहे कि, यह मणि नहीं है क्योंकि, मणि तो बड़े यत्न से प्राप्त होती है; मुझे सुख से क्यों प्राप्त होगी? इससे विदित होता है कि, चिन्तामणि नहीं। जो सुख से प्राप्त होती तो सब लोग धनी हो जाते। जब ऐसे संकल्प विकल्प से पण्डित विचार करने लगा और इसी से उसका चित्त आवरण हुआ तब मणि छिपगई क्योंकि, जो सिद्धि हैं उनका मान और आदर न करिये तो उलटा शाप देती हैं। जिस वस्तु का कोई आवाहन करता है और उसका पूजन न करे तो वह त्याग जाती है। तब वह बड़ेदुःख को प्राप्त हुआ कि, चिन्तामणि मेरेपास से चली गई। निदान वह फिर यत्न करने लगा तब कांच की मणि हँसी करके उसके आगे आ पड़ी और उसको देख कर वह कहने लगा कि यह

चिन्तामणि है अबोध के वश से उसको उठाकर अपने घर ले आया और अबोध के वश से उसको चिन्तामणि जानता भया। जैसे मोहसे जीव असत् को सत् जानता है और रस्सी को सर्प जानता है और जैसे दृष्टि दोष से दो चन्द्रमा देखता है और शत्रु को मित्र और विषको अमृतरूप जानताहै; तैसेही उसने कांचको चिन्तामणि जान जो कुछ अपना धन था सो लुटा दिया और कुटुम्बका त्यागकर कहने लगा कि, मुझे चिन्तामणि प्राप्त हुई है, अब कुटुम्ब से क्या प्रयोजन है? निदान घर से निकलकर वनमें गया और वहां उसने बड़े दुःख पाये क्योंकि; कांचकी मणि से कुछ प्रयोजन सिद्ध न हुआ। तैसेही हे राजन्! जो विद्यमान वस्तु हो उसको मूर्ख त्यागते हैं और उसका माहात्म्य नहीं जानते और नहीं पाते।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिन्तामणिवृत्तान्तवर्णनं नाम नवषष्टितमस्सर्गः ॥ ६९ ॥

देवपुत्र बोले, हे राजन्! इसी प्रकार एक और आख्यान कहता हूं सो भी सुनो मन्दराचल पर्वत के वन में सब हाथियों का राजा एक हाथी रहता था वह मानों स्वयम् मन्दराचल पर्वत था जिसको अगस्त्यमुनि ने रोका था। उसके बड़े दांत इन्द्र के वज्र की नांई तीक्ष्ण थे और प्रलय-काल की बड़वाग्निके समान वह प्रकाशवान् था। वह ऐसा बलवान् था कि, सुमेरु पर्वत को दांतों से उठावे। निदान उस हस्ती को एक महावत ने; जैसे बलि राजा को विष्णु भगवान् ने छल करके बांधा था लोहे की ज़ञ्जीरसे बांधा और आप पास के वृक्ष पर चढ़ बैठा कि, कूदकर हाथी के ऊपर चढ़ बैठूं। वह हाथी ज़ञ्जीर में महाकष्ट को प्राप्त हुआ और इतना दुःख पाया जिसका वर्णन नहीं हो सक्ता। तब हाथीके मनमें विचार उपजा कि, जो अब मैं बलसे ज़ञ्जीर न तोडूंगा तो क्यों छूटूंगा; इसलिये उस ज़ञ्जीर को बल करके तोड़ दिया और वृक्ष पर जो महावत बैठा था सो गिरके हाथी के चरणों के आगे आ पड़ा और भय को प्राप्त हुआ। जैसे वृक्ष का फल पवनसे गिरपड़ताहै तैसे ही महावत भयसे गिरपड़ा। जब इसप्रकार महावत गिरा तब हाथीने विचार किया कि, यह मृतक समानहै इस मुये

को क्या मारना है! यद्यपि यह मेरा शत्रु है तौ भी मैं इसे नहीं मारता; इसके मारने से मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्ध होगा? इसलिये जैसे स्वर्ग के द्वारे तोड़कर दैत्य प्रवेश करते हैं तैसे ही ज़ञ्जीर तोड़कर वह हाथी वन में गया और महावत हाथी को गया देख उठ बैठा और अपने स्वभाव में स्थित हुआ। वह फिर हाथी के पीछे चला और हाथीको ढूंढ़ लिया। जैसे चन्द्रमा को राहु खोज लेता है तैसेही वन में हाथी को खोज लिया तो क्या देखा कि, वह वृक्षके नीचे सोयापड़ाहै। जैसे संग्रामको जीतकर शूरमा निश्चिन्त सोता है तैसेही हाथी को निश्चिन्त सोया पड़ा देख महावत ने विचार किया कि, इसको वश करना चाहिये। यह विचार उसने यह उपाय किया कि, वन के चारों ओर खाई बनाई और खाई के ऊपर कुछ तृण और घास डाला जैसे शरत्काल के आकाश में बादल देखनेमात्र होता है तैसेही तृण और घास खाईंके ऊपर देखनेमात्र दृष्ट आती थी। निदान जब किसी समय हाथी उठकर चला और खाई के बीच गिरपड़ा तब महावतने हाथी के निकट आ उसे ज़ञ्जीरों में बांधा और वह हाथी बड़े दुःखको प्राप्तहुआ। जो तपकरके वन में दुःख पाताहै उसने भविष्यत् का विचार नहीं किया। अज्ञानी को भविष्यत् का विचार नहीं होता इसी से वह दुःख पाता है। हे राजन्! यह जो मणि और हाथी के आख्यान तुझे मैंने सुनाये हैं उनको जब तू समझेगा तब आगे मैं उपदेश करूँगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्तिआख्यानवर्णनन्नाम सप्ततितमस्सर्गः॥ ७०॥

इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब देवपुत्र ने ऐसे कहा तब राजा बोला, हे देवपुत्र! यह दो आख्यान जो तुमने कहे हैं सो तुम्हीं जानतेहो, मैं तो कुछ नहीं समझा इससे तुम्हीं कहो। देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! तू शास्त्र के अर्थ में तो बहुत चतुरहै और सर्व अर्थों का ज्ञाताहै परन्तु स्वरूपमें तुझे स्थिति नहीं है; इससे जो वचन मैं कहताहूं उसे बुद्धि से ग्रहणकर हस्ती क्या है और चिन्तामणि क्या है? प्रथम जो तूने सर्वत्याग किया था सो चिन्तामणिथी और उसके निकट प्राप्त होकर तू सुखी

हुआ था। यदि उसको तू अपने पास रखता तो सब दुःख निवृत्त होजाते; पर मणि का तो तूने निरादर किया जो उसको त्यागा और कांच की मणि तपक्रिया को प्राप्त हुआ इस लिये दरिद्री ही रहा। हे राजन्! सर्व-त्यागरूपी चिन्तामणि थी और इस क्रिया का आरम्भ कांच की मणि है उसको तूने ग्रहण किया है इससे दरिद्र की निवृत्ति नहीं होती-दुःखीही रहता है। हे राजन्! सर्वत्याग तूने नहीं किया और जो किया भी था परन्तु कुछ न रहगया और वह रहकर फिर फैलगया। जैसे बड़ा बादल वायु से क्षीण होता है और सूक्ष्म रहजाता है जो पवन के लगेसे फिर विस्तार को पाता है और सूर्यको छिपालेता है। वह बादल क्या है; सूर्य क्या है और थोड़ा रहना क्या है सो भी सुन। स्त्रियों और कुटुम्ब आदि को त्यागकर इनमें अहंकार करना सोई बड़ा बादल है। वैराग्यरूपी पवन से तूने राज्य और कुटुम्ब का अहंकार त्याग किया पर देहादिक में अहं-कार सूक्ष्म बादल रहगया था सो फिर वृद्ध हो गया जो अनात्म अभि-मान करके क्रिया का आरम्भ किया इससे आत्मारूपी सूर्य जो अपना आप है सो अहंकाररूपी बादल से ढपगया। और ज्ञानरूपी चिन्तामणि अज्ञानरूपी कांच की मणि से छिप गई। जब ज्ञान से आत्मा को जानेगा तब आत्मा प्रकाशेगा, अन्यथा न भासेगा। जैसे कोई पुरुष घोड़े पर चढ़के दौड़ता है तो उसकी वृत्ति घोड़े में होती है तैसेही जिस पुरुष का आत्मा में दृढ़ निश्चय होता है उसको आत्मा से कुछ भिन्न नहीं भासता। हे राजन्! आत्मा का पाना सुगम है जो सुखसे ही मिलता है और बड़े आनन्द की प्राप्ति होती है। तपादिक क्रिया करके कष्ट से सिद्ध होता है और स्वरूप सुख की प्राप्ति नहीं होती। हे राजन्! मैं जानताहूं कि, तू मूर्ख नहीं बल्कि शास्त्रों का ज्ञाता और बहुत चतुर है तथापि तुझे स्वरूप में स्थिति नहीं। जैसे आकाश में पत्थर नहीं ठहरता। इससे मैं उपदेश करता हूं उसको ग्रहणकर तो तेरे दुःख निवृत्त हो जावेंगे। हे राजन्! यह सबसे श्रेष्ठ ज्ञान कहा है और कहता हूं। तूने जो तपक्रिया का आरम्भ किया है और उसका जो फल जाना है उस ज्ञान से यह

श्रेष्ठ ज्ञान कहा है और कहता हूं उससे तेरा भ्रम निवृत्त हो जावेगा। हे राजन्! चिन्तामणि का संपूर्ण तात्पर्य तुझसे कहा; अब हाथी का वृत्तान्त जो आश्चर्यरूप है सो भी सुन जिसके समझने से अज्ञान निवृत्त हो जावेगा। मन्दराचल का हाथी तो तू है और महावत तेरी अज्ञानता है। इस अज्ञानरूपी महावत ने तुझे बांधा था और तू आशारूपी ज़ञ्जीरों से बँधा था। और ज़ञ्जीरें घिसजाती हैं पर आशारूपी फांसी नहीं घटती यह दिन दिन बढ़ती ही जाती है। हे राजन्! आशारूपी फांसी से तू महादुःखी था। हस्ती के जो बड़े दन्त थे जिनसे उसने संकलों को तोड़ा था सो विवेक और वैराग्य था जो तूने विचार किया कि, मैं बल करके छूटूं। राज्य, कुटुम्ब और पृथ्वी का त्यागकर जब तूने उस फांसी को काटा तब आशारूपी रस्से कटे तो अज्ञानरूपी महावत भय को प्राप्तहुआ और तेरे चरणों के तले आपड़ा। जैसे वृक्षके ऊपर वैताल रहता है और कोई वृक्ष को काटने आता है तब वैताल भय को प्राप्त होताहै तैसेही तूने वैराग्य और विवेकरूपी दांतों से आशा के फांस काटे तब अज्ञानरूपी महावत गिरा और तूने एकघाव लगाया परन्तु मार न डाला इससे महावत तुझसे भाग गया—जैसे वृक्षपर वैताल रहता है और वृक्ष को कोई काटने लगताहै तब वैताल भाग जाताहै। हे राजन्! तैसेही वृक्षको तूने वैराग्य-रूपी शस्त्र करके काटा तब अज्ञानरूपी वैताल भागा था मूर्खतासे उसको तूने न मारा बल्कि उसको छोड़कर वन में गया। जब तू वन में आया तब अज्ञानरूपी महावत तेरे पीछे चला आया और तेरे चारों ओर खाईं खोदी और तपादिक क्रिया आरम्भकर तू उस खाईं में गिरपड़ा और महादुःख को प्राप्तहुआ। तब उसने तुझे ज़ञ्जीरोंसे फिर बांधा और देखने लगा कि, अबतक दुःख नहीं पाता है। अनात्म अभिमान से तूने यहां तपादिक क्रियाका आरम्भ कियाहै। ऐसी खाईं में तू पड़ा है। हे राजन्! तू जान-कर खाईं में नहीं पड़ा खाईं के ऊपर घास और तृण पड़ा था उस छलसे तू गिरपड़ाहै सो छल और तृण क्याहै सो भी तू सुन। प्रथम जो अज्ञानरूपी शत्रु को तूने न मारा और ज़ञ्जीरों के भय से भागा कि, वन मेरा कल्याण

करेगा। सन्तों और शास्त्रों के वचनों को न जाना कि, तेरे दुःख निवृत्त करेंगे और उन वचनरूपी खाईं पर तृणादिक था इस मूर्खता करके तू गिरा। जैसे बलिराजा पाताल में छल से बांधा हुआ है तैसे ही तूने भविष्यत् का विचार न किया कि, अज्ञानरूपी शत्रु जो रहा है वह मेरा नाश करेगा। उस विचार विना तू फिर दुःखी हुआ। सब त्याग तो किया परन्तु ऐसे न जाना कि, मैं अक्रिय हूं, इस क्रियाका आरम्भ काहे को करता हूं। इसी से तू फिर फांसी से बँधा है। हे राजन्! जो पुरुष इस फांसी से मुक्त हुआ है वह मुक्त है और जिसका चित्त अनात्म अभिमान से बँधा है कि, यह मुझे प्राप्त हो उससे वह दुःख पाता है। जिस पुरुष ने वैराग्य और विवेकरूपी दांतों से आशारूपी ज़ञ्जीर को नहीं काटा वह कदाचित् सुख नहीं पाता। विवेक से वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्य से विवेक होता है। विवेक सत्य के जानने और असत् देहादिक के असत्य जानने को कहते हैं। जब ऐसे जाना तब असत् की ओर भावना नहीं जाती सो वैराग्य हुआ। वैराग्य से विवेक उपजता है और विवेक से वैराग्य उपजता है इन विवेक और वैराग्यरूपी दांतों से आशारूपी ज़ञ्जीर को तोड़। हे राजन्! यह हस्ती का वृत्तान्त जो तुझसे कहा है इसके विचार किये से तेरा मोह निवृत्त हो जावेगा। हे राजन्! वह हाथी बड़ा बली था और महावत छोटा किये से बली था। उस अज्ञानरूपी महावत को मूर्खता करके तूने न मारा उससे दुःख पाता है। अब तू वैराग्य और विवेकरूपी दांतों से आशारूपी फांसी को तोड़ तब दुःख सब मिट जावेंगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्तीवृत्तान्तवर्णनन्नामैकसप्ततितमस्सर्गः॥ ७१॥

देवपुत्र बोले, हे राजन्! ब्रह्मवेत्ता और सर्वज्ञानियों में श्रेष्ठ, साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा और सत्यवादिनी तेरी स्त्री जो चुड़ाला थी उसने तुझे उपदेश किया था पर तूने उसके वचनों का किस निमित्त निरादर किया? मैं तो सब जानता हूं क्योंकि, त्रिकालज्ञ हूं; तौ भी तू अपने मुख से कह। एक तो यह मूर्खता की कि उपदेश न अङ्गीकार किया और दूसरी यह मूर्खता

की कि, सर्व त्याग न करके फिर वन अङ्गीकार किया। जो सर्व त्याग करता तो सर्व दुःख मिट जाते। जब ऐसे देवपुत्र ने कहा, तब राजा ने कहा; हे देवपुत्र ! मैंने तो स्त्री, पृथ्वी, मन्दिर, हाथी इत्यादिक ऐश्वर्य और कुटुम्ब को त्याग किया है; आप कैसे कहते हैं कि, त्याग नहीं किया? देवपुत्र ने कहा, हे राजन् ! तूने क्या त्यागा है ? राज्य में तेरा क्या था ? जैसे ऐश्वर्य आगे था तैसे ही अब भी है और स्त्रियां भी जैसे और मनुष्य थे तैसे ही थीं; पृथ्वी, मन्दिर और हस्ती जैसे आगे थे तैसे ही अब भी हैं। उनमें तेरा क्या था जो त्याग किया ? हे राजन् ! सर्व त्याग तैंने अब भी नहीं किया। जो तेरा हो उसको तू त्याग कर कि, निर्दुःख पद को प्राप्त हो। इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब शूरवीर जो इन्द्रियजित् राजा था सो मन में विचारने लगा कि, यह वन मेरा है और वृक्ष, फूल, फल मेरे हैं इनका त्याग करूं। ऐसा विचार कर बोला, हे देवपुत्र ! वन, वृक्ष, फूल और फल जो मेरे थे उनका भी मैंने त्याग किया अब तो सर्वत्याग हुआ ? तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन् ! अब भी सर्वत्याग नहीं हुआ क्योंकि, वन, वृक्ष, फूल और फल तुझसे आगे भी थे इनमें तेरा क्या है ? जो तेरा हो उसको त्याग तब सुखी होगा। हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब राजा ने मन में विचारा कि, मेरी जलपान की बावली और बगीचे हैं इनका त्याग करूं तब सर्वत्याग सिद्ध हो और कहा, हे भगवन् ! मेरी यह बावली और बगीचे हैं उनका भी मैंने त्याग किया; अब तो मेरा सर्वत्याग सिद्ध हुआ ? तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन् ! सर्वत्याग अब भी नहीं हुआ। जो तेरा है उसको जब त्यागेगा तब शान्तपद को प्राप्त होगा। हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब राजा विचारने लगा कि, अब मेरी मृगछाला और कुटी है उसका भी त्याग करूं। ऐसे विचार बोला कि, हे देवपुत्र ! मेरे पास एक मृगछाला और एक कुटी है उसका भी मैंने त्याग किया अब तो सर्वत्यागी हुआ ? तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन् ! मृगछाला में तेरा क्या है यह तो मृगकी त्वचा है और

कुटी में तेरा क्या है यह तो मिट्टी और शिला की बनी है इससे तो सर्व-त्याग सिद्ध नहीं होता? जो कुछ तेरा है उसको त्यागेगा तब सर्वत्याग होगा और तभी तू सब दुःखों से छूट जावेगा। हे रामजी! जब ऐसे कुम्भज ने कहा तब राजा ने मन में विचार किया कि, अब मेरा एक कमण्डलु,एक माला और एक लाठी है इसका भी त्याग करूं। ऐसे विचार कर राजा शान्ति के लिये बोला; हे देवपुत्र! मेरी लाठी, कमण्डलु और एक माला है उसका भी मैंने त्याग किया; अब तो मैं सर्वत्यागी हुआ? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! कमण्डलु में तेरा क्या है? कमण्डलु तो वन का तुम्बा है उसमें तेरा कुछ नहीं; लाठी भी वन के बाँस की है और माला भी काष्ठ का है उनमें तेरा क्या है? जो कुछ तेरा है उसका त्याग कर। जब तू उसका त्याग करेगा तब दुःख से रहित हो जावेगा। हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भज ने कहा तब राजा शिखर-ध्वज ने मनमें विचारा कि, अब मेरा क्या रह गया तब देखा कि, एक आसन और बासन हैं जिस में फूल और फल रखते हैं; अब इनका भी त्याग करूं। तब राजा ने कहा, हे भगवन्! आसन और बासन मेरे पास रह गये हैं इनका भी मैं त्याग करता हूं; अब तो सर्वत्यागी हुआ? तब कुम्भज ने कहा; हे राजन्! अब भी सर्वत्याग नहीं हुआ। आसन तो भेड़ की ऊन का है और बासन मृत्तिका के हैं; इनमें तेरा कुछ नहीं। जो कुछ तेरा है उसका त्याग कर तब सर्वत्याग होवै और तू दुःख से निवृत्त हो। हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भज ने कहा तब राजा उठ खड़ा हुआ और वनकी लकड़ी इकट्ठी करके उनमें आग लगाई। जब बड़ी अग्नि लगी तब लाठी को हाथ में लेकर कहने लगा; हे लाठी! मैं तेरे साथ बहुत देशों में फिरा हूं परन्तु तूने मेरे साथ कुछ उपकार न किया; अब मैं कुम्भजमुनि की कृपासे तरूंगा, तुझे नमस्कार है। ऐसे कहकर लाठी को अग्नि में डालदिया। फिर मृगछाला को हाथ में लेकर कहा, हे मृग की त्वचा! बहुतकाल मैं तेरे ऊपर बैठा हूं परन्तु तूने कुछ उप-कार न किया; अब कुम्भजमुनि की कृपा से मैं तरूंगा; तुझे नमस्कार है।

ऐसे कहकर मृगछाला को भी अग्नि में डालदिया । फिर कमण्डलु को लेकर कहनेलगा, हे कमण्डलु ! तू धन्य है कि, मैंने तुझे धारणकिया और तूने मेरे जलको धारा । तूने मुझसे गुणगोप नहीं किया तौभी कमण्डलु की जैसी प्रवृत्ति त्यागनी है तैसेही निवृत्ति की कल्पना भी त्यागनी है; इससे तुझे नमस्कार है; तुम जावो । ऐसे कहकर कमण्डलु भी अग्नि में जलादिया । फिर माला को हाथ में लेकर कहनेलगा; हे माले ! तेरे दाने जो मैंने घुमाये हैं सो मानों अपने जन्म गिने हैं । तेरे सम्बन्ध से जाप कियाहै और दिशा विदिशा गया हूं, अब तुझको नमस्कार है ऐसे कह कर माला को भी अग्नि में डालदिया । इसी प्रकार फल, फूल, कुटी और आसन सब जलादिये तब बड़ी अग्नि जगी और बड़ा प्रकाश हुआ । जैसे सुमेरु पर्वत के पास सूर्य चढ़ें और मणि का भी चमत्कार हो तो बड़ा प्रकाश होताहै तैसेही बड़ी अग्नि लगी और राजा ने सम्पूर्ण सामग्री का त्यागकिया । जैसे पके फल को वृक्ष त्यागता है और जैसे पवन चलने से ठहरता है तब धूलि से रहित होता है तैसेही राजा सम्पूर्ण सामग्री को त्याग निर्विघ्न हुआ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजसर्वत्यागवर्णनन्नामद्विसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! निदान सम्पूर्ण सामग्री जलकर भस्म हो गईं । जैसे सदाशिव के गणों ने दक्षप्रजापति के यज्ञ को स्वाहा करदिया था तैसेही जितनी कुछ सामग्री थीं सो सब स्वाहा होगईं और वह वन बड़ा प्रज्वलित हुआ । जितने वृक्ष के रहनेवाले पक्षी थे सो भागगये और मृग, पशु जो आहार करते व जुगाली करते थे सो सब भागगये । जैसे पुर में आगलगे से पुरवासी भागजावें तैसेही सब भागगये; तब राजा ने मन में विचारा कि,अब कुम्भज की कृपा से मैं बड़े आनन्द को प्राप्तहुआ और अब सब मेरे दुःख मिटिगये । जो कुछ वस्तु मन के संकल्प से रची थी सो सब जलादी अब उसका न मुझे हर्ष है, न उसका शोक है । ये सब दुःख ममत्व से होते हैं सो मेरा ममत्व अब किसी से नहीं रहा इससे कोई दुःख भी

नहीं। अब मैं ज्ञानवान् भया हूं, अब मेरी जयहै क्योंकि, अब निर्मल होकर सबका मैंने त्यागकिया है। ऐसा विचार करके राजा उठ खड़ाहुआ और हाथ जोड़कर बोला; हे देवपुत्र ! अबतो मैंने सबका त्याग किया क्योंकि; आकाश मेरे वस्त्र हैं और पृथ्वी मेरी शय्या है। जब राजा ने ऐसे कहा तब कुम्भज मुनि ने कहा, हे राजन् ! अब भी सर्वत्याग नहीं हुआ। जो तेरा है उसका त्यागकर कि, सबदुःख तेरे निवृत्तहोजावें। फिर राजा ने कहा, हे भगवन् ! अब तो और मेरे पास कुछ नहीं रहा, नङ्गा होकर तुम्हारे आगे खड़ाहूं; अब एक रक्त मांस की देह इन्द्रियों को धारनेवाली है जो कहो तो इसका भी त्याग करूं पर्वतपर जाकर डालदूं ? ऐसे कहकर राजा पर्वत को दौड़ा पर कुम्भजमुनिने रोका और कहा, हे राजन् ! ऐसे पुण्यवान् देह को क्यों त्यागता है ? इसके त्यागेसे सर्वत्याग नहीं होता। जिसके त्यागने से सर्वत्याग हो उसका त्यागकर। इस देह में क्या दूषण है ? जैसे वृक्ष में फूल फल होते हैं और जब वायु चलती है तब गिरते हैं; सो फूल फल गिरने का कारण वायु है, वृक्ष में दूषण कुछ नहीं; तैसेही देह में कुछ दूषण नहीं। देह के पालनेवाला जो अभिमान है उसका त्याग करो तो सर्वत्याग सिद्ध हो और तो सब गुणहैं जो कुछ इसको देताहै वही लेताहै आगे से बोलता नहीं जड़है इसके त्यागे क्या सिद्ध होताहै ? जैसे पवन से वृक्ष हिलताहै और भूकम्पसे पर्वत कांपते हैं; तैसेही देह आप कुछ नहीं करती; और की प्रेरी चेष्टा करती है। जैसे पवनसे समुद्र के तरङ्ग तृणोंको जहां ले जाते हैं तहां वे चलेजाते हैं तैसेही देह आपसे कुछ नहीं करती। इसका जो प्रेरणेवाला है उस के बल से यह चेष्टा करती है इससे देह के प्रेरणेवाले का त्यागकर तो सुखी हो। हे राजन् ! जिससे सर्व है; जिसमें सर्व शब्द हैं और जो सर्व ओर से त्यागने योग्य है उसका त्याग करो। राजा ने पूछा हे भगवन् ! वह कौन है जो सर्व है और जिसमें सर्व शब्दहै और जो सर्व ओर से त्यागने योग्यहै ? हे तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ ! जिसके त्यागेसे जरा मृत्यु नष्ट होजावे सो कहिये। तब कुम्भजने कहा, हे राजन् ! जिसका नाम चित्त, प्राण और देह है उसका त्याग करो और बाहर जो

नानाप्रकार के आकार चित्तही से दृष्टि आते हैं, इससे चित्तका ही त्याग करो। हे राजन्! जैसे सर्प बिलमें बैठा हो तो बिलका कुछ दूषण नहीं विष सर्प में है जिससे वह डसता है इसलिये उसके नाश करने का उपाय करो और सर्व शब्द भी इस चित्त में ही हैं। आत्मा तो मात्रपद है उसमें न एक कहना है और न द्वैत कहना है। सर्व ओर से इसी चित्तका त्याग करना योग्य है। जब इस चित्त का त्याग करोगे तब त्यागरूपी अमृत से अमर होजावोगे और जरा मृत्युसे रहितहोगे जो चित्तका त्याग न करोगे तो फिर देह धारणकर दुःख भोगोगे। जैसे एक क्षेत्र में अनेक दाने उत्पन्न होते हैं और जब क्षेत्रही जल जाताहै तब अन्न नहीं उपजता; तैसेही यह जो देह और जरामृत्यु दुःख संसार हैं इनका बीज चित्त ही है। जैसे अनेक दानों का कारण क्षेत्र है, तैसेही असंख्य संसारके दुःखका कारण चित्तहै; इससे हे राजन्! चित्त का त्यागकर जब इसका त्याग करेगा तब सुखी होगा। हे राजन्! जिसने सर्वत्याग किया है वह सुखी हुआ है। जैसे आकाश सर्व पदार्थों से रहित है, किसीका स्पर्श नहीं करता और सबसे बड़ा और सुखरूप है और सर्वपदार्थों के नष्ट होने पर भी ज्यों का त्यों रहता है; तैसेही हे राजन्! तुमभी सर्वत्यागी होरहो। राज, देह और कुटुम्ब और गृहस्थ आदिक जो आश्रम हैं सो सब चित्त ने कल्पे हैं। जो एक का त्याग नहीं होता तो कुछ नहीं त्याग। जब चित्तका त्याग करो तब सर्वत्याग हो। हे राजन्! यह धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्य तीनों चित्त के कल्पेहुये हैं। जब चित्त पुण्यक्रिया में लगता है तब पुण्य ही प्राप्त होता है और जब पापक्रिया में लगता है तब पाप ही प्राप्त होकर अधर्म और दरिद्र होता है जब पुण्य का फल उदय होता है तब सुख प्राप्त होता है और जब पाप का फल उदय होता है तब दुःख प्राप्त होता है इससे जन्ममरण के दुःख नहीं मिटते। जब चित्त का त्याग होता है तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं। हे राजन्! जो पुरुष किसी वस्तु को नहीं चाहता उसकी बहुत पूजा होती है और जो कहता है कि, इस वस्तु को मुझको दे तो उसको कोई नहीं देता। इससे सर्वत्याग कर कि, सुखी हो। सर्वत्याग किये से सर्व

तूही होगा और सर्वात्मा होकर संपूर्ण ब्रह्माण्ड अपने में देखेगा। जैसे माला के दानों में तागा होता है और दाने भी तागे के आधार होते हैं, उनमें और कुछ नहीं होता; तैसेही देखोगे कि, मैं सर्वमय और एकरस हूं; मेरेही में ब्रह्माण्ड स्थित है और मैं हीं हूं मुझसे कुछ भिन्न नहीं। हे राजन्! जिसने सबका त्यागकिया है वह सुखी है और समुद्र की नाईं स्थित है उसको कोई दुःख नहीं। इससे तुम चित्त का त्याग करो कि, राजदोष मिटजावे। इस चित्त के इतने नाम हैं—चित्त, मन, अहङ्कार, जीव और माया। हे राजन्! आपने ऐश्वर्य के त्यागने और, और की भिक्षा लेनेसे तो चित्त वश नहीं होता; चित्त तबहीं वश होता है जब पुरुष निर्वासनिक होता है। जब तक चित्त फुरता है तब तक सर्वत्याग नहीं होता। जब यही फुरना निवृत्त होताहै तब चित्तका त्याग होताहै। चित्त के त्याग से भी त्याग के अभिमान से रहित हो तब सर्वात्मा होगे। जब चित्त को त्यागोगे तब उस पद को प्राप्त होगे जो जितने ऐश्वर्य और सुख हैं उनका आश्रय है और जितने दुःख हैं उनका नाश करनेवाला है और जिसके जाने से किसी पदार्थ की इच्छा न रहेगी क्योंकि; सर्व आनन्द का धारनेवाला तेरा स्वरूप है, फिर इच्छा किसकी रहे। जैसे आकाश के आश्रय देवलोक से आदि सर्वविश्व रहता है और आकाश को कुछ इच्छा नहीं और जो इच्छा नहीं करता तौ भी सब आकाश ही में हैं और सबको धारनेहारा है। हे राजन्! जब तुम भी किसीकी इच्छा न करोगे, तब निर्वासनिक होकर अपने स्वरूप में स्थित होगे और जानोगे कि, सर्वका आत्मा मैं हीं हूं, सबको धार रहा हूं और भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल भी मेरे आश्रय हैं। जैसे समुद्र के आश्रय तरङ्ग हैं तैसेही मेरे आश्रय काल है। चित्तका सम्बन्ध तुझे प्रमादसे है और प्रमाद यही है कि, चिन्मात्रपद में चित्त होकर फुरता है। चित्त कैसा है कि, जड़ भी है और चेतन भी है। इसीका नाम चिद्‌जड़ग्रन्थि है। जब यह ग्रन्थि खुलजावेगी तब अपने आपको वासुदेवरूप जानोगे। जब निर्वासनिक होगे तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट होजावेगा। जैसे बीज में वृक्ष होता है, तैसे

ही चित्त में संसार है और जैसे बीज के जलने से वृक्ष भी जलजाता है तैसेही वासना के दग्ध हुये से संसार भी दग्ध होता है। हे राजन्! जैसे किसी डब्बे में रत्न होते हैं तो रत्नोंके नाशहुये डब्बा नहीं नाश होता और डब्बे के नष्ट हुये रत्न नष्ट होते हैं। डब्बा क्या है और रत्न क्या है सो भी सुनो। डब्बा तो चित्त है और रत्न देह है। इससे चित्त के नष्टहोनेका उपाय करो। जब चित्त नष्ट होगा तब देह से रहित होगे। देह के नष्ट हुये चित्त नष्ट नहीं होता और चित्त के नष्ट हुये देह नष्ट होजाती है। जब चित्तरूपी धूलि से रहित होगा तब केवल शुद्ध आकाश रहेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तत्यागवर्णनन्नाम त्रिसप्ततितमस्सर्गः॥ ७३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भज ने कहा कि, चित्त का त्यागना ही सर्वत्याग है तब शिखरध्वज ने पूछा, हे भगवन्! मैं चित्त को कैसे स्थित करूं? संसाररूपी आकाशकी चित्तरूपी धूलि है और संसार-रूपी वृक्षका चित्तरूपी वानर है जो कभी स्थित नहीं होता; इससे ऐसे चित्त को मैं कैसे स्थितकरूं? तब कुम्भजने कहा हे राजन्! चित्त का रोकना तो सुगमहै। नेत्रोंके खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्न है परन्तु चित्तके रोकने में कुछ यत्न नहीं। दीर्घदर्शी को सुगम है और अज्ञानी को कठिनहै। जैसे चाण्डाल को पृथ्वीका राजा होना और तृणको सुमेरु होना कठिनहै तैसेही अज्ञानी को चित्तका रोकना कठिनहै। राजा ने पूछा, हे देवपुत्र! चित्तका तोड़ना कठिन है तो भी टूटजाता है परन्तु मनका रोकना अतिकठिन है। जैसे बड़े मच्छ को बालक नहीं रोकसक्ता, तैसे ही मैं चित्त को नहीं रोकसक्ता। हे देवपुत्र! तुम कहते हो कि, मन का रोकना सुगम है और मुझको तो ऐसा कठिन भासता है। जैसे अन्धे पुरुष को लिखी हुई मूर्ति नेत्रों से नहीं दृष्टि आती तो वह उसे हाथ में कैसे ले; तैसेही मन को वश करना मुझे कठिन भासता है। प्रथम चित्तका रूप मुझसे कहिये। कुम्भज बोले, हे राजन्! इस चित्त का रूप वासना है। जब वासना नष्ट होगी तब चित्त भी नष्ट होजावेगा। इससे चित्तके बीजको तू नष्ट कर तो चित्तरूपी

वृक्ष भी नष्ट हो और न कोई डाल रहे, न कोई फूल फल हों। यदि डाल को काटेगा तो वृक्ष फिर होगा क्योंकि डालके काटने से वृक्ष नष्ट नहीं होता फिर कई डालें लग जाती हैं। जब बीज को नष्ट करे तब वृक्ष भी नष्ट हो जावे। राजा बोले, हे भगवन्! चित्तरूपी फूल की संसार रूपी सुगन्ध है; चित्तरूपी कमल की जड़की संसाररूपी तन्तु है; देहरूपी तृणके उठाने और उड़ानेवाला चित्तरूपी पवन है; चित्तरूपी तिलका जरा-मृत्यु और आध्यात्मिक, आधिभौतिक दुःख तेल है; चित्तरूपी आकाश की संसार रूपी अँधेरी है और हृदयरूपी कमल का चित्तरूपी भँवरा है। बीज क्या है? और डाल क्या है? डाल का काटना क्या है, वृक्ष क्या है और फूल, फल क्या है? सो कृपा कर कहो? कुम्भज बोले, हे राजन्! चेतनरूपी क्षेत्र स्वच्छ और निर्मल है; उसमें अहंभाव बीज है उसी को अहंकार, चित्त, मन, जड़ और मिथ्या कहते हैं। उस अहंकार में जो संवेदन है वही देह और इन्द्रियां हो फैली हैं और उसमें जो निश्चय है वह बुद्धि है। उस बुद्धि में जो निश्चय है कि 'यह मैं हूं' यही संसार है और वही जीव को अहंकार है। अहंकार इस वृक्षका बीज है; चित्तरूपी वृक्षकी डालें और सुख दुःख इस चित्तरूपी वृक्षके फल हैं। हे राजन्! एकान्त बैठकर और चिन्तना से रहित होकर एक आश्रय का त्याग करना और दूसरे का अङ्गीकार करना और इस प्रकार स्थित होना कि, मैं ऐसा त्यागी हूं इसकी चिन्तना ही उस डाल का काटना है। हे राजन्! इस डालके काटे से वृक्ष नहीं नष्ट होता क्योंकि, यह तो ऐसा होकर स्थित होता है कि, मैं हूं। वासना त्याग करे और कुछ न फुरे। जब अहंरूपी बीज नष्ट हो जाता है तब चित्तरूपी वृक्ष भी नष्ट हो जाताहै क्योंकि; इसका बीज अहंही है। जब अहंभाव बीज नष्ट हुआ तब वृक्ष भी नष्ट हो जाताहै; इससे चित्तका बीज तुम नष्ट करो। राजा बोले, हे देवपुत्र! तुम्हारा निश्चय मैंने यह जाना है कि; चित्त के त्यागे से चित्त के बीज का नष्ट करना श्रेष्ठ है। हे भगवन्! इतने काल मैं डालें काटता रहा हूं; इसी से मेरे दुःख नष्ट नहीं हुये और आपने कहा कि; अहंही दुःखदायीहै इसलिये कृपा करके कहिये कि, अहं कैसे उत्पन्नहोताहै?

कुम्भज बोले, हे राजन्! शुद्ध चेतन में जो चैतन्योन्मुखत्व अहं का फुरना हुआ कि 'मैं हूं' सोही दृश्यरूप हुआ है और मिथ्या संवेदन से हुआ है। जैसे शान्त समुद्र में पवन से लहरें होती हैं तैसेही शुद्ध आत्मा में अहं फुरता है और उससे संसार हुआ है। इससे अहंभाव को नष्ट करो कि, शान्तपद में स्थित हो। जो दुःखदायक वस्तु है उसको नष्ट करे तो शान्त हो। राजा ने पूछा, हे भगवन्! वह कौन वस्तुहै जो जलाने योग्यहै और वह कौन अग्नि है जिसमें वह जलती है? कुम्भज बोले, हे त्यागवानों में श्रेष्ठ राजा! तेरा जो अपना स्वरूपहै उसका विचारकर कि 'मैं क्याहूं' और 'यह संसार क्याहै;' इसका दृढ़ विचार करना ही अग्निहै और मिथ्या अनात्मा अर्थात् देह,इन्द्रियादिकमें अहंभावहै उसको अवास्तवरूप विचार अग्नि में जलावो। जब विचार अग्नि से अहंकार बीज को जलावोगे तब केवल चिन्मात्र रहेगा। हे राजन्! मेरे उपदेश से तू आपको क्या जानता है सो मुझसे कह? राजा ने कहा मैं राजा, पृथ्वी, पर्वत, आकाश, दशोंदिशा, रुधिर, मांस, देह, कर्मइन्द्रियां, ज्ञानइन्द्रियां, मन, बुद्धि और अहंकार नहीं; मैं इनसे रहित शुद्ध आत्मा हूं; परन्तु हे भगवन्! अहंरूपी कलङ्कता मुझे कहां से लगी है कि, उस कलङ्क को मैं दूर नहीं कर सक्ता? तब कुम्भज ने कहा हे राजन्! इसी अहं का त्याग करो जो मैंने त्याग किया है; बल्कि यह फुरना भी न फुरे, नितान्त शून्य हो रहे। जब इसका त्याग करोगे तब चेतन आकाश होगा। हे राजन्! तू अपने स्वरूप को देख कर जान कि, कौन है। राजा ने कहा, हे भगवन्! मैं यह जानता हूं कि, मेरा स्वरूप वही आत्मा है जो सबका आत्मा है; मैं आनन्दरूप हूं और सब मेरा प्रकाश है परन्तु मैं यह नहीं जानता कि, अहंभाव कलना कहां से लगी है? इसको मैं नाश नहीं कर सक्ता पर यह मैंने जाना है कि, संसार का बीज चित्त ही है और चित्तका बीज अहंकार है। तुम्हारी कृपा से मैंने जाना है कि, मेरा स्वरूप आत्माहै और 'अहं', 'त्वं' मेरे में कोई नहीं। तुम भी इस अहंरूप कलङ्कता को दूर कर रहे हो-पर मुझ से दूर नहीं होता फिर फिर आ फुरता है कि, मैं शिखरध्वज

हूं। इस अहं से मैं संसारी हूं। इसके नाश करने का उपाय आप कहिये। कुम्भज बोले, हे राजन्! कारण विना कार्य नहीं होता। जो कारण विना कार्य भासे तो जानिये कि, भ्रममात्र और मिथ्या है और जिसका कारण पाइये उसे जानिये कि, सत्य है। इससे तुम कहो कि, इस अहंकार का कारण क्याहै तब मैं उत्तर दूंगा? राजा बोले, हे भगवन्! अहंकार का कारण शुद्ध आत्मा है। शुद्ध आत्मा में जो जानता हुआ है और जानने मात्र में जानने का उत्थान हुआ है कि, दृश्य की ओर लगा है सो जानना संवेदन ही अहं का कारण है। कुम्भज बोले, हे राजन्! इस जानने का कारण क्या है? प्रथम तू यह कह पीछे दूर करने का उपाय मैं कहूंगा। हे राजन्! जिसका कारण सत होता है सो कार्य भी सत होता है और जो कारण झूठ होता है तो कार्य भी झूठ होता है। जैसे भ्रम दृष्टि से जो दूसरा चन्द्रमा आकाश में दिखता है उसका कारण भ्रम है। उससे इस जानने संवेदन का कारण कह जो जानना संवेदना दृष्टि और दृश्य रूप होकर स्थित हुई है और दृश्य द्रष्टारूप होकर स्थित हुई है। राजा बोले, हे देवपुत्र! जानने का कारण देहादिक दृश्य है क्योंकि; जानना तब होताहै जब जानने योग्य वस्तु आगे होतीहै और जो आगे वस्तु नहीं होती है तो वह जाना भी नहीं जाता। इससे जाननेका कारण देहादिक हुये। कुम्भज बोले, हे राजन्! ये देहादिक मिथ्या भ्रमसे हुयेहैं; इनका कारण तो कोई नहीं। राजा बोले, हे देवपुत्र! देह का कारण तो प्रत्यक्ष है क्योंकि, खाता पीताहै पितासे इसकी उत्पत्ति हुई है और प्रत्यक्ष कार्यकरता दृष्टि आता है; आप कैसे कहते हैं कि, कारण विना है और मिथ्याहै? कुम्भज बोले, हे राजन्! पिता का कारण कौन है? पिता भी मिथ्या है। जैसे स्वप्न में पिता और पुत्र देखिये सो दोनों मिथ्या हैं। इससे कह पिता का कारण क्या है? राजा बोले, हे भगवन्! पुत्र का कारण पिता और पिता का कारण पितामह है; इसी प्रकार परम्परा से सर्वका कारण ब्रह्मा प्रत्यक्ष है क्योंकि, सर्वकी उत्पत्ति ब्रह्माजी से हुई है। कुम्भज बोले, हे राजन्! ब्रह्मासे आदि काष्ठपर्यन्त सर्वसृष्टि संकल्प की रची है

और देह भी भ्रम करके भासता है। जैसे मृगतृष्णा का जल और सीपी में रूपा भासता है तैसेही आत्मा में देह भासता है। जैसे आकाश में दो चन्द्रमा भ्रम से दीखते हैं तैसेही आत्मा में यह संसार भ्रम से भासता है। जो तू कहे कि, क्रिया कैसे दृष्टि आती है तो सुन। जैसे कोई कहे कि, बन्ध्या के पुत्र को भूषण पहराये हैं; तो जो बन्ध्या के पुत्रही नहीं तो भूषण किसने पहिरे? अथवा स्वप्न में सब क्रिया भ्रममात्र होती हैं; तैसेही यह संसार तेरे भ्रम में है। जब भ्रम निवृत्त होगा तब केवल आत्मा ही भासेगा। हे राजन्! जैसे तू अपना देह जानता है तैसेही ब्रह्मा को भी जान। ब्रह्मा का कारण कौन है? इससे इस भ्रम से जाग कि, तेरा भ्रम नष्ट होजावे। राजा बोले, हे भगवन्! मैं अब जागाहूं और मेरा भ्रम नष्ट भया है। मैंने यह संसार अब मिथ्या जाना है कि, केवल संकल्पमात्र है। जो कुछ दृश्य है सो मिथ्या है और एक आत्माही मेरे निश्चय में सत् हुआहै। हे भगवन्! ब्रह्माका कारण भी ब्रह्महै और वह अद्वैत अविनाशी और सर्वात्मा है; ब्रह्मा का कारण यह हुआ। कुम्भज बोले, हे राजन्! कारण और कार्य द्वैतमें होते हैं सो असत् हैं क्योंकि; इस कारणका देश, वस्तु और काल से अन्त होजाता है और परिणामी होता है जो वस्तु परिणामी हो सो मिथ्या है। हे राजन्! आत्मा अद्वैत है; जिसमें न एक कहना है; न द्वैत कहना है; न वह भोगता है; न भोग है; न कर्म है; न अद्वैत है। जो वह स्वरूप से परिणाम को नहीं प्राप्त होता और सर्वात्मा है; जो सर्वदेश और सर्वकालभी है; जो सर्ववस्तु में पूर्ण और अद्वैतहै और जो अद्वैत है तो कारण कार्य किसका हो? कारण कार्य का सम्बन्ध द्वैत में होता है और परिणामी होता है और जिस में देशकाल का अन्त है सो अद्वैत आत्मा है। उसमें न कोई देशहै, न काल है और न कोई वस्तु है; वह केवल चिन्मात्रपदहै। हे राजन्! मैं जानताहूं कि, तू जाग्रत होगा क्योंकि, भ्रम तेरा नष्ट होता जाता है। जैसे बरफ़की पुतली सूर्यकी किरणों से क्षीण होजाती है तैसेही तेरा अज्ञान नष्ट होता जाता है अज्ञानके नष्ट हुये से तू आत्माही होगा। तू अपने प्रत्येक चेतनस्वरूप से स्थितहो और

देख कि, ब्रह्मा आदिक सर्व परमात्मा का किंचन हैं। परमात्माही ऐसे होकर स्थित हुआ है और जो दृष्टि पड़ता है उस सर्वका अपना आप आत्मा है। जब जागेगा तो जाने; जागे विना नहीं जानसक्ता। राजा बोला, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से अब मैं जागा हूं और जानता हूं कि, मेरा स्वरूप आत्मा है और मैं निर्मल हूं। अब मेरा मुझको नमस्कारहै। एक मैं ही हूं; मेरे से भिन्न कुछ नहीं और मैंने आपको जाना है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजविश्रान्तिवर्णनन्नाम चतुःसप्ततितमस्सर्गः॥ ७४॥

राजा ने पूछा, हे भगवन्! आप कैसे कहते हैं कि, ब्रह्मा का कारण कोई नहीं? आत्मा ऐसा अनन्त, अच्युत, अव्यक्त और अद्वैत ईश्वर है जो परमाणु का विषय नहीं और परमब्रह्म तो ब्रह्मा का कारण है? कुम्भज बोले, हे राजन्! तूही कहता है कि, आत्मा अनन्त है। जो अनन्त है उसको देश, काल और वस्तुका परिच्छेद नहीं होता जो सर्वदेश, सर्वकाल और सर्व वस्तु में पूर्ण है सो कारण कार्य किसका हो? कारण तब हो जब प्रथम द्वैत हो सो आत्मा अद्वैत है और कारण उसको कहते हैं जो कार्य से पूर्व हो और पीछे भी वही हो—जैसे घट के आदि मृत्तिकाहै और अन्त भी मृत्तिका होती है; वह कारण कहाता है पर आत्मा में न आदि है, न अन्त है। वह तो आत्मा अनन्त है। कारण तब होता है जब परिणाम होताहै सो आत्मा अच्युत है; अपने स्वरूप से कदाचित् नहीं गिरा और भोक्ता भी द्वैत से होता है सो आत्मा अद्वैत है। भोग और भोक्ता दोनों नहीं और आत्मामें कर्म भी नहीं। आत्मासे आदि कौनहै जिससे आत्मा सिद्ध हो? वह किसीका कार्य भी नहीं क्योंकि; कार्य इन्द्रियोंका विषय होताहै सो आत्मा अव्यक्तहै और जो कार्य होताहै तो उसका कारण भी होताहै सो आत्मा सर्वका आदिहै उसका कारण कौनहो? जो सर्वात्मा है और स्वच्छ आकाशवत् निर्मल है सोही तेरा स्वरूप है। राजा ने पूछा, हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है! मैंने जाना है कि, आत्मा अद्वैत है वह न किसीका कारणहै, न कार्य है और अनुभवरूप है सो मैं हूं। मैं निर्मल हूं;

विद्या-अविद्या के कार्य से रहित हूं; निर्वाणपद हूं और निर्विकल्प हूं; मेरे में फुरना कोई नहीं और मैं नहीं और मैं हीं हूं। मेरा मुझको नमस्कारहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पञ्चसप्ततितमस्सर्गः॥ ७५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! राजा शिखरध्वज कुम्भजमुनि के उपदेश से प्रबोध हो और ऐसे वचन कहकर केवल निर्वाणपद में स्थित हुआ। जब निर्विकल्प और फुरने से रहित हो एक मुहूर्त पर्यन्त स्थित रहा-जैसे वायु से रहित दीपक स्थित होता है-तब कुम्भज ने उसे जगाकर कहा; हे राजन्! तेरा समाधि से क्या है और उत्थान से क्या है? तू तो केवल आत्ममात्र है। मैं जानता हूं कि, तू परमज्ञान से शोभित हुआ है। जैसे डब्बे में रत्न होता है तो उसका प्रकाश बाहर नहीं दृष्टि आता और जब डब्बे से निकालकर देखिये तब बड़ा प्रकाश भासता है; तैसेही अविद्यारूपी डब्बे से तू निकला है और परमज्ञान से शोभित हुआ है। हे राजन्! अब तेरे में न कोई क्षोभ है और न कोई उपाधि है। अब तू संसार के राग द्वेष से रहित, शान्तरूप, जीवन्मुक्त होकर विचार से विचर तो तुझे कोई उपाधि न लगेगी। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भज मुनि ने कहा तब राजा शान्तरूप होगया और बोला; हे भगवन्! जो कुछ आपने आज्ञा की है उसे मैंने भलीप्रकार जाना पर अभी एक प्रश्न और है उसका उत्तर कृपाकरके कहो, कि मैं दृढ़ स्थित होके रहूं। हे भगवन्! आत्मा तो एक है और शुद्ध और केवल आकाशरूप चेतनमात्र है उसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटी कहां से उपजी? कुम्भज बोले, हे राजन्! जो कुछ स्थावर-जङ्गम संसार है वह महाप्रलय पर्यन्त है। जब महाप्रलय होता है तब केवल आत्मा ही शेष रहता है जो स्वच्छ और निर्मल है; तहां न तेज होता है; न अन्धकार है; वह केवल अपने आप स्वभाव में स्थित होता है। जो कुछ आनन्द है उसका अधिष्ठान आत्मा है और सत् असत् से रहित है। जिसको बुद्धि 'इदं' करके कहती है उसे सत् कहिये और जिसको नहीं कहती उसे असत् कहिये। वह सत् असत् से रहित और सर्वलक्ष्मी से संयुक्त है और अपना स्वभावमात्र है।

उसमें कोई उपाधि नहीं और सर्वदा प्रकाशवान् और उदयरूप है। यह संसार उस परमात्मा का चमत्कार है। जैसे रत्न का चमत्कार लाट होती है तैसेही ब्रह्म का चमत्कार यह संसार है इससे ब्रह्मरूप है। जो ब्रह्म से भिन्न है उसे मिथ्याभ्रम ही जानना। जो कुछ आकार भासते हैं सो असत् हैं। हे राजन्! जो सब आकार मिथ्या हैं तो तेरी संवेदन भी मिथ्या है। आत्मा में अहं त्वं का कोई उत्थान नहीं; वह केवल ज्ञानमात्र है, केवल सत् और आनन्दरूप है और अविद्यातम से रहित प्रकाशरूप है। वह प्रमाणों से जाना नहीं जाता क्योंकि; इन्द्रियों का विषय नहीं और मन की चिन्तना से रहित है क्योंकि; सर्वका द्रष्टा है और सर्वका अपना आप अनुभवरूप है। हे राजन्! तू उसी में स्थित हो। आत्मा, बड़े से बड़ा है; सूक्ष्म से सूक्ष्म है और स्थूल से स्थूल है जिसमें आकाश भी किसी और अणुसा भासता है। उसमें ब्रह्माण्ड भी तृण समान है; वह अपने आपसे पूर्ण है; उससे किंचित् भी उत्पन्न नहीं हुआ और नाना प्रकार करके स्थित हुआ है। फुरने से जगत् भासता है और फुरने के निवृत्त हुये केवल शुद्ध आत्मा है। राजा ने पूछा, हे भगवन्! आप कहते हैं कि, संसार फुरने मात्र है और आत्मा शुद्ध शान्तिरूप और निर्विकल्प है तो उसमें संवेदन फुरना कहां से आया है? कुम्भज बोले, हे राजन्! फुरना भी आत्मा का चमत्कार है जैसे पवन में स्पन्द और निस्पन्द दोनों शक्ति हैं; जब फुरताहै तब चलना प्रकट होताहै और जब ठहर जाता है तब प्रकट नहीं होता; तैसेही संवेदन जब फुरता है तब नाना प्रकार होते हैं और जगत् भासता है; और जब फुरना मिट जाता है तब केवल शुद्ध आत्मा भासता है। हे राजन्! आत्मा सत्तामात्र है और संसार भी सन्मात्र आत्मा ही है। जो सम्यक्दृष्टि से देखिये तो आत्मा ही भासता है और जो असम्यक्दृष्टिसे देखिये तो दुःखदायक जगत् भासता है। जिसके मन में संसारभावना है उसको दुःखदायक भासता है और जिसके हृदय में आत्मभावना होती है उसको आत्मा ही भासता है और सुखरूप होता है क्योंकि; आत्मा अपने आपका नाम है। जिसने जगत् को

अपना आप जाना है उसको दुःख कहां ? हे राजन् ! यह संसार भावना-मात्र है; जैसी भावना होती है तैसाही हो भासता है। जिसकी भावना विष में अमृत की होती है उसे विष भी अमृत होजाता है और जिसकी भावना अमृतमें विष की होती है तो उसे अमृतभी विष होजाताहै क्योंकि; संसार भावनामात्र है। जैसी भावनादृढ़ करता है यद्यपि आगे वह वस्तु न हो तौ भी होजाती है; इससे संसार भावनामात्र मिथ्या है। ज्ञानवान् को दुःख कदाचित् नहीं होता और अज्ञानी को सुख कदाचित् नहीं होता। हे राजन् ! अहंता और संवेदन; चित्त और चैत्य ये भी आत्माही की संज्ञाहैं। जैसे आकाश, शून्य, नभ; ये सर्वसंज्ञा आकाशही की हैं तैसेही वह सर्व संज्ञा आत्मा की है आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। 'अहं,' 'त्वं' सर्व आत्मा के आश्रय हैं। जैसे भूषण सुवर्ण के आश्रय होते हैं परन्तु सुवर्ण से भूषण तब होता है जब कि अपने पूर्वरूप को त्यागता है; आत्मा तैसे भी नहीं वह केवल एकरस है और अपने आपमें स्थित है कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त होता। यह संवेदन आत्मा का चमत्कार है और आत्मा सत् असत् से परे है। जो कुछ दृश्यहै सो आत्मा में नहीं चित्त से रचाहै; इससे परे है। हे राजन् ! वह कारण-कार्य किसका हो ? कारण-कार्य तब होताहै जब दृश्य होताहै सो आत्मा किसीका विषय नहीं तो कारण कार्य किसका हो। विश्व के आदि भी आत्मा है; अन्त भी वही है और मध्य में भी आत्मा ही है। जो कुछ और भासता है सो भ्रममात्र है--जैसे आकाश में जो घर, मण्डल और पुर दृष्टआते हैं उनकी आदि भी आकाशहै; अन्त भी आकाश है और मध्य भी आकाशहै और जो घर, मण्डल, पुर भासते हैं सो मिथ्या हैं जैसे अग्नि नाना प्रकार दृष्टि आती है सो सब मिथ्या आकार है एक अग्नि ही है तैसेही सबके आदि, मध्य और अन्त एक आत्माही सार है। हे राजन् ! जलमें भी देश काल होताहै क्योंकि, दृश्य है और इन्द्रियों का विषयहै जैसे कि; यह तरङ्ग अमुकस्थान से उठा और अमुक स्थान में लीन हुआ यहां स्थान देश हुआ और उपजकर इतना काल रहा सो काल हुआ और जिसको इन्द्रियां विषय न करसकें उसमें देशकाल कैसे हो ? राजा

बोले, हे भगवन्! अब मैंने भलीप्रकार जानाहै कि, आत्मा चिन्मात्रहै और ज्ञान इन्द्रियों और कर्म इद्रियों से परे है। देश, काल और इन्द्रियां मन से जानी जाती हैं कि, अमुक देश है और अमुक काल है पर जहां इन्द्रियां और मन ही न हो वहां देश काल कहां है ? कुम्भज बोले, हे राजन्! जो तूने ऐसे जाना तो तू जागा है। आत्मा में देश, काल कोई नहीं। यह मन और इन्द्रियों से जानता है कि, यह देश है और यह काल है। जो इनसे रहित होकर देखे तो आत्मा ही भासे और जो इन सहित देखे तो संसारही दृष्टि आवेगा। हे राजन्! इनसे रहित होकर देख, तुझमें कुछ संसार न रहे कि, अमुक प्रश्न किया और अब अमुक प्रश्न करूं। संसार तबतक होता है जबतक इनका संयोग अपने साथ होता है। हे राजन्! ब्रह्म से ब्रह्म को देख और पूर्ण को देख कि, तू भी पूर्ण हो। जब तू पूर्ण होगा तब सर्व और आपको ही जानेगा, सर्व संज्ञा तेरी ही होगी और उस निर्वाच्य पदको प्राप्त होगा जहां इन्द्रियोंकी गम नहीं, केवल आकाशरूप है। जैसे आकाश अपनी शून्यता से पूर्ण है तैसे ही तू भी अपने चेतन स्वभाव से आप पूर्ण होगा। जब तू मन सहित षट्इन्द्रियों से रहित होकर देखेगा तब अपने आपको फिर यदि इन सहित भी देखेगा तो भी तुझे चेतन आत्मा ही भासेगा और संसार का शब्द और अर्थ तेरे हृदय से उठ जावेगा–शब्द यह कि, संसार है और अर्थ यह कि, उसको सत् जानना और केवल आकाशरूप आत्मा ही भासेगा। संसार संवेदन मात्र है और संवेदन चित्तशक्ति का चमत्कार है। यही चित्तशक्ति ब्रह्मा होकर स्थित हुई है और संसार देखने लगी है। जब यह शक्ति अन्तर्मुख होती है तब आत्मा ही दृष्टि आता है जो सदा एकरसहै और जब बहिर्मुख होती है तब संसार दृष्टि आताहै। जैसी जीव भावना करताहै तैसेही आगे दृष्टि आताहै; जब संसार की भावना होती है तब संसारही भासता है और जब आत्मा की भावना होती है तब आत्माही भासताहै आत्मा सदा एकरस और असंसारी है इससे; हे राजन्! तू आत्मा की भावनाकर कि, तुझे आत्माही भासे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे षट्सप्ततितमस्सर्गः॥ ७६॥

कुम्भज बोले, हे राजन्! यह संसार जो तुझे भासता है सो आत्मा में नहीं। केवल शुद्ध आत्मा में जो अहं उत्थान है वही संसार है पर अहं का वह चमत्कार न सत् है, न असत् है; न भीतर है, न बाहर है; न शून्य है, न अशून्य है; केवल अपने आप में स्थित है। संसार का प्रध्वंसाभाव भी नहीं होता अर्थात् पहले हो और पीछे नाश हो जावे ऐसा नहीं होता। आत्मा में संसार उदय अस्त नहीं होता केवल अपने आप में स्थित है उससे कुछ भिन्न नहीं। किन्तु आत्मा को यह भी नहीं कह सक्के कि; केवल अपने आप में स्वाभाविक स्थित है; उसमें वाणी की गम नहीं। वाणी उसको कहते हैं जहां दूसरा होता है पर जहां दूसरा न हो वहां वाणी क्या कहे। यह कहना भी तेरे उपदेश के निमित्त कहा है आत्मा में किसी शब्द की प्रवृत्ति नहीं। हे राजन्! ऐसा आत्मा किसका कारण कार्य हो। आत्मा तो शुद्ध, निर्विकार और प्रमाणों से रहित है। जो किसी लक्षण से प्रमाण नहीं किया जाता सो आकार होकर स्थित हुआ है और शान्तरूप है। हे राजन्! ऐसा आत्मा किसका कारण कार्य हो? कारण कार्य तब होता है जब प्रथम परिणाम और क्षोभ को प्राप्त होता है पर आत्मा तो शान्तरूप है और कारण तब हो जब क्रिया से कार्य को उत्पन्न करे सो आत्मा अक्रिय है अर्थात् क्रिया से रहित है। कारण को कार्य से जानाजाता है पर आत्मा चिह्नसे रहित है और प्रमाणों का विषय नहीं इससे आत्मा कारण कार्य किसी का नहीं और आत्मा को कारण कार्य मानने से मुझे आश्चर्य आता है। हे राजन्! जो वस्तु उपजती है सो नष्ट भी होती है और जो नष्ट होती है सो उपजती भी है पर आत्मा सबके आदि है और अजन्मा और निर्विकार है उसमें स्थित हो कि; तेरा संसार निवृत्त हो जावे। यह संसार अज्ञानसे भासता है। जब तू स्वरूप में स्थित होकर देखेगा तब न भासेगा; और ऐसे भी न भासेगा कि; आगे था अब निवृत्त हुआहै तब तो एकरस आत्मा ही भासेगा और केवल शून्य आकाश हो जावेगा। संसारसे रहित होनेको शून्य कहते हैं। चेतनस्वरूप नाना होके भी वही है और एक भी वही है, शून्यहै और शून्य से रहित भी

वही है; द्वैतरूप भी वही है और अद्वैतरूप भी वही है; ऐसा भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजप्रथमबोधनं नाम सप्तसप्ततितमस्सर्गः॥ ७७॥

कुम्भज बोले, हे राजन्! जो कुछ तू देखता है सो सब चेतन घन है उसमें 'अहं' 'त्वं' शब्द कोई नहीं। 'अहं' 'त्वं' शब्द प्रमाद से होते हैं; जब आत्मा में स्थित होकर देखोगे तब आत्मा से भिन्न कुछ न भासेगा तो 'अहं' 'त्वं' शब्द कहां भासे? हे राजन्! यह नाना प्रकार की संज्ञा चित्तने कल्पी है जब चित्त से रहित होगे तब नाना और एक कोई संज्ञा न रहेगी। हे राजन्! 'सर्वब्रह्म है' यह वाक्य वेद का सार है। जब इस वाक्य में दृढ़ भावना बुद्धि होगे तब एकरस आत्मा ही दृष्ट आवेगा और चित्त नष्ट हो जावेगा। जब चित्त नष्ट हुआ तब केवल महाशुद्ध आकाश की नाईं स्थित होकर निर्दुःख पद को प्राप्त होगे जो पद सर्व की आदि है और सर्वदा मुक्तिरूप है। राजा बोले, हे भगवन्! आपने कहा कि, चित्त के नष्ट हुए से कोई दुःख न रहेगा और चित्त के नष्ट होने का उपाय भी आपने कहा है परन्तु मैं भली भांति नहीं समझा; मेरे दृढ़ होने के निमित्त कृपा करके फिर कहिये कि; चित्त कैसे नष्ट होता है? कुम्भज बोले, हे राजन् यह चित्त न किसी काल का है; न किसी को है और न यह देखता है; चित्त है ही नहीं तो मैं तुझे क्या कहूं और जो चित्त तुझको दृष्ट आता है तो तू आत्मा ही जान; आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। हे राजन्! महासर्ग के आदि और अन्त कोई सृष्टि नहीं केवल आत्मा है और आत्मा में नहीं कहसक्के मैंने तेरे जानने के निमित्त कही है। मध्य जो कुछ दृष्टि आता है सो अज्ञानी की दृष्टि है आत्मा में सृष्टि कोई नहीं और आत्मा किसी का उपादानकारण और निमित्तकारणभी नहीं क्योंकि; अच्युत है—परिणाम को नहीं प्राप्त होता। उपादान भी परिणाम से होताहै आत्मा शुद्ध निराकार आकाशरूप है सो कारणकार्य किसका हो? चित्त भी वासनारूप है और वासना तब होती है जब वास होती है। जो आगे सृष्टि नहीं तो वासना किसकी फुरे और चित्तमें संसारकी स्थिति कैसेहो?

इससे चित्त कुछ नहीं। यह विश्व आत्माका चमत्कारहै और सृष्टि आत्मामें कोई नहीं; वह निरालम्ब केवल अपने आप में स्थितहै हे राजन्! संसार भी नहीं हुआ और चित्त भी नहीं हुआ तो 'अहं' 'त्वं' आदिक शब्द भी आत्मा में कोई नहीं। ये शब्द तब होते हैं जब चित्त होता है और चित्त तबतक है जबतक वासनाहै। जब निर्वासनिक पदको प्राप्तहुआ तब कोई कल्पना नहीं रहती। हे राजन्! यह संसार महाप्रलय में नष्ट होजावेगा और सत् असत् संसार कुछ न रहेगा; एक आत्मा ही शेष रहेगा जो निराकार और शुद्ध है। जबतक महाप्रलय नहीं होता तबतक संसारहै। महाप्रलय क्या? सो भी सुनो। एकक्षण आत्मा के साक्षात्कार होने से सृष्टि का शेषभी न रहेगा। ज्ञानही महाप्रलय है और अब जो दृष्टि आता है सो मिथ्या है। यह क्रिया भी मिथ्या है और इसका भान होना भी मिथ्याहै। जैसे स्वप्ने की क्रिया भी मिथ्याहै और उसका भान होनाभी मिथ्याहै तैसेही जाग्रत् संसार स्वप्नमात्र है और कारण विनाही भासता है। जो कारण विना है सो मिथ्या है इसका कारण अज्ञान ही है कि, अपना न जानना, जब आपको जाना तब अपना आपही भासेगा। जैसे स्वप्ने में अपने न जानने से भिन्न आकार भासते हैं पर जब जगा तब अपना आपही जानताहै कि मैं हीं था। हे राजन्! मुझे तो एक आत्मा ही दृष्टि आताहै; आत्मा से भिन्न संसार कोई नहीं भासता। इस संसार की स्थिति मानना मूर्खता है, यह सदा अचलरूप है। वेद शास्त्र और लोक भी कहताहै कि, संसार मिथ्याहै और आपभी जानताहै कि, नष्ट होजाता दृष्टिआताहै तो फिर उसमें आस्था करनी मूर्खता है। आत्मा में संसार नाना अनाना कोई नहीं; आत्मा सर्वदा अपने आपमें स्थित है और शुद्ध और अच्युत ज्यों का त्यों है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधनन्नामा-
ष्टसप्ततितमस्सर्गः॥ ७८॥

शिखरध्वज बोले, हे भगवन्! अब मेरा मोह नष्ट हुआहै और अपना आप मैंने जाना है। तुम्हारी कृपा से मेरा संसारभ्रम निवृत्त हुआ है और शोकसमुद्र को अब मैं तरकर शान्तपद को प्राप्त हुआहूं। 'अहं' 'त्वं' शब्द

मेरेमें कोई नहीं; अब मैं निर्वाणपदको प्राप्त हुआहूं और अच्युत चिन्मात्र केवलहूं और शून्यहूं। कुम्भज बोले, हे राजन्! आत्मा शुद्ध और आकाश की नाईं निर्मलहै; बल्कि, आकाश से भी अतिनिर्मलहै पर उसमें अहं मल अहंमोह से उपजी है और मोह अविचार का नाम है। जब विचार होता तब कोई अहं नहीं पाया जाता। यह विश्व संवेदन में है और संवेदन सर्व के आदि होकर स्थितहुई है। जब संवेदन अन्तर्मुख होती है तब सर्व विश्व लीन हो जाती है; संवेदनही में बन्ध और मुक्ति है; जब बहिर्मुख होती है तब बन्ध है और जब अन्तर्मुख होती है तब मोक्ष है। जिसने मन और इन्द्रियोंसे रहित होकर अपना आप देखाहै उसको ज्यों का त्यों दृष्टि आता है-और जो मोहसंयुक्त देखताहै उसको विपर्यय भासता है। जैसे सम्यक् दृष्टि से भूषण में सुवर्ण भासता है और जब भूषण के आकार मिट जाते हैं तब भी सुवर्णही है और मूर्ख को सोने में भूषण दृष्टि आते हैं। चिरकालके अभ्यास से जो बुद्धि इनमें फुरती है तो भी प्रारब्ध वेग पर्यन्त चेष्टा होती है तब चेष्टा में भी आत्मा ही दृष्टि आताहै-इससे केवल आत्माही का किञ्चन होता है। जैसे सोने में भूषण आकाश में नीलता और वायु में स्पन्द है, तैसेही आत्मा में सृष्टि है। जैसे आकाश में नीलता देखनेमात्र है वास्तव कुछ नहीं; तैसेही आत्मा में सृष्टि वास्तव कुछ नहीं, भ्रान्तिमात्र ही है। जब भ्रान्ति निवृत्त होती है तब जगत् का शब्द अर्थ सर्वओरसे शान्त हो जाता है और शब्द अर्थकी भावना से जो चेष्टा होती है उससे जब अभिलाषा निवृत्त होजाती है तब कोई दुःख नहीं होता। इसी को मुनीश्वर निर्वाण कहते हैं। जब निर्वाणपदका ऐसा निश्चय होता है तब शान्तरूप शून्यपद को पाकर स्थित होता है। हे राजन्! अहं का उत्थान होनाही बन्धन है और अहं के निर्वाण होनेसे ही मुक्ति है। अहंके होनेसे संसारका दुःख है; जबतक अहं का उत्थान है तबतक संसारहै और जबतक संसार है तबतक अहं का उत्थान है। जब संसारकी सत्ता जाती रहेगी तब अहं फुरना भी नष्ट होजावेगा और जब फुरना नष्ट हुआ तब अहंभी नष्ट हो जावेगा। जब अहं नष्ट हुआ तब केवल शुद्ध आत्माही शेष रहेगा और

उसीका भान होगा। तब अहंब्रह्म का उत्थान भी शान्त होजावेगा और चेतनमात्र ही रहेगा। हे राजन्! जिसको सर्वब्रह्मकी बुद्धि हुई है उसको संसारकी बुद्धि नहींरहती और जिसको संसारबुद्धिहै उसको ब्रह्मबुद्धि नहीं होती। जैसी २ भावना दृढ़ होती है तैसाही आगे भासता है; जिसको ब्रह्मभावना दृढ़ होती है वह ब्रह्मरूप होजाताहै और जिसको जगत् की भावना दृढ़ होती है उसको जगतही भासता है। हे राजन्! तू अब जागा है और ब्रह्मस्वरूप हुआ है, जो शुद्ध, निर्मल और प्रत्यक् है और जो शब्द और लक्षणविषय नहीं और इन्द्रियों का विषय भी नहीं। हे राजन्! ऐसा आत्मा जो केवल अद्वैत है और विश्व जिसका चमत्कार है वह कारण-कार्य किसका हो जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरङ्ग पवन से उपजते हैं तौभी समुद्र से भिन्न नहीं, तैसे ही आत्मा में नाना प्रकार की विश्व संवेदन फुरने से उपजती है तौ भी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं-फुरने मात्र है। जैसे थम्भे में मनोराज से कोई पुरुष पुतलियां कल्पता है और नाना प्रकार की चेष्टा करता है पर उसकी चेष्टा तबतक है जबतक संकल्प है और जब संकल्प निवृत्त हुआ तब शून्य थम्भा ही रह जाता है जैसा आगे था क्योंकि शिल्पी की संवेदन में सृष्टि थी; तैसे ही यह संसार संकल्प मात्र है, जब संकल्प अन्तर्मुख होता है तब संसार की सत्ता जाती रहती है। हे राजन्! संसारसत्ता इस कारण जाती रहती है कि, आगे ही असत् है। जो वस्तु सत् होती है उसका कदाचित् नाश नहीं होता। इससे संसार केवल संवेदनकल्पी है। जैसे एक शिला में पुरुष पुतलियां कल्पता है तो शिला में तो पुतली कोई नहीं; ज्यों की त्यों शिला ही है; तैसे ही फुरने से आकार दृष्ट आते हैं। जब चित्त फुरने से रहित होगा तब आत्मा को अपना आप जानोगे और अशब्दपद को प्राप्त होगे जो शान्तिपद शुद्ध आकाशरूप है। हे राजन्! सर्व शब्द और सर्व की अभावना ही ब्रह्म अर्थ है; जहां कोई कल्पना नहीं। जब सम्यक्दृष्टि होती है तब शेष आत्मा ही भासता है और यह भावना भी उठ जाती है कि, यह संसार है और यह ब्रह्म है; तब केवल ज्ञेयमात्र ही

हो रहता है अर्थात् शिला की नाईं जो ज्ञान है ऐसा शेष रहता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधवर्णनन्नाम नवसप्ततितमस्सर्गः॥ ७९॥

राजा बोले, हे भगवन्! जैसे आप कहते हैं सो सत्य है और मैं भी ऐसे ही जानताहूं कि, संसार आत्मा का कार्य है और आत्मा कारणहै। जो आत्मा का कार्य हुआ तो आत्मस्वरूप हुआ आत्मा से भिन्न नहीं। कुम्भज बोले, हे राजन्! आत्मा चेतन मात्र है, कारण कार्य किसी का नहीं। आत्मा अप्रत्यक्ष और अक्रिय; अच्युत और निरस है और जो अशब्दपद है वह कारण कार्य किसका हो? कारण को कार्य द्वारा जाना जाता है पर आत्मा किसी प्रमाणका विषय नहीं, अप्रत्यक्ष और अरूप है। कारण तब होता है जब क्रिया होती है पर वह न किसी का कारण-कार्य है और न कर्म है केवल ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है और चेतन मात्र शिवरूप शुद्ध है। यह विश्व भी चेतनमात्र है। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसे ही आत्मा में विश्व आत्मरूप स्थित है। ऐसा विश्व चेतनमात्र है पर उसमें असम्यक्दर्शी अज्ञान से नानाप्रकार कल्पता है। वस्तु जो परमात्मा है तिसके प्रमाद से वासनारूप चित्त से विश्व को कल्पता है सो विश्व शब्दमात्र है अर्थात् कुछ नहीं। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा; समुद्र में तरङ्ग; मृगतृष्णा में जल और परछाहीं में वैताल भासता है तैसे असम्यक्दर्शी आत्मा में विश्व कल्पता है और सम्यक्दर्शी ऐसे जानता है कि, आत्मा शुद्ध, अजन्मा, अविनाशी और परम निरञ्जन है। हे राजन्! जब तू सम्यक् दृष्टि से देखेगा तब संसार का प्रध्वंसाभाव भी न देखेगा क्योंकि; चित्त का कल्पा हुआ है और चित्त अज्ञान से उपजा है। स्वरूप में न चित्त है, न अज्ञान है और न संसार है; केवल अद्वैत मात्र है; वहां एक कहां और द्वैत कहां, वह तो केवल मात्रपद है। जब अज्ञान नष्ट होगा तब 'अहं' 'त्वं' चित्त फुरना सब नष्ट हो जावेगा और फिर भ्रम दृष्टि न आवेगा। हे राजन्! आत्मा से भिन्न जो कुछ भासता है सो अज्ञान से भासता है और विचार किये से नहीं

रहता। राजा बोले, हे भगवन् ! अज्ञान क्या है और कैसे नाश होता है सो कहिये ? कुम्भज बोले, हे राजन् ! एक ज्ञान है और दूसरा अज्ञान है। ज्ञान यह कि, पदार्थ को प्रत्यक्ष जानना और अज्ञान यह कि, पदार्थों को न जानना। एक ज्ञान भी अज्ञान है सो भी सुन। मृगतृष्णा का जल देखकर आस्था करनी और रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा देखना और उसको सत्य जानना यह ज्ञान भी अज्ञान है क्योंकि; सम्यक्दर्शी होकर नहीं देखता यह दृष्टान्त है और एक दृष्टान्त यह भी है कि, शुद्ध आत्मा निराकार और अच्युत है उसमें मैं हूं और मेरा अमुक वर्णाश्रम है और नानाप्रकार का विश्व है। यह ज्ञान भी अज्ञान और मूर्खता है। हे राजन् ! न कोई जन्मता है और न कोई मृतक होता है; ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थित है; उसमें जन्म मरण आदिक विकार देखना ज्ञान भी अज्ञान है हे राजन् ! जैसे कोई ब्राह्मण हो और ऊंची बांह करके कहे कि, मैं शूद्र हूं और मुझे वेद का अधिकार नहीं; और जैसे कोई पुरुष कहे कि मैं मुआ हूं और उसको मैं जानता हूं; तैसेही आपको कुछ वर्णाश्रम का अभिमान लेकर कहना मूर्खता है क्योंकि; यह असम्यक्दर्शन है। जब ज्यों का त्यों जाने तब दुःखी न हो। हे राजन् ! ऐसा ज्ञान जो सम्यक्-दर्शन से नष्ट होजावे सो अज्ञानही है। जैसे सूर्य किरणों में जल बुद्धि होती है और किरण के ज्ञान से जल का ज्ञान नष्ट हो जाता है तो वह जल का जानना अज्ञानता ही थी और जैसे जेवरी में सर्प जानना जेवरी के ज्ञान से नष्ट हो जाता है यह भी अज्ञान है और सम्यक्दर्शन से नष्ट होता है। जब ऐसे सम्यक्दर्शी होगे तब आध्यात्मिक तापों से निवृत्त होकर शुद्ध होगे। आत्मा जो अज, शान्तरूप, सत्-असत् है उसमें भिन्न कुछ नहीं और वह प्रकाशरूप है। ऐसा तू है। हे राजन् ! अज्ञान भी और कोई नहीं; इस चित्त के उदय होने का ही नाम अज्ञान है। अज्ञान का कारण चित्त है। जो पदार्थ चित्त से उदय हुआ है सो नष्ट भी चित्त से ही होता है; इससे तू चित्त से चित्त को नाशकर। जैसे अग्नि पवन से उपजती है और पवन ही से शान्त होती है तैसे ही चित्त से चित्त

को नष्ट कर। हे राजन्! न तू है, न मैं हूं, न इन्द्रिय हैं, न संसार है और न यह जगत् है केवल शुद्ध आत्मा है। हे राजन्! जो चित्त ही न हो तो चित्त का कार्य विश्व कहां हो? यह अज्ञानी को भासता है कि, चित्त है और विश्व है; आत्मा केवल अपने आपमें स्थित है। हे राजन्! चित्तका उदय होना अज्ञान से है। जब अज्ञान नष्ट होताहै तब चित्त और 'अहं' 'त्वं' सर्व नष्ट होजाते हैं। हे राजन्! तू शुद्ध आत्मा; एक; प्रकाशरूप; अच्युत और निरन्तर है; देह इन्द्रियादिकरूप होकर भी तूही स्थित हुआ है और इच्छा अनिच्छा भी तूही है। जैसे चन्द्रमा की किरणें चन्द्रमासे भिन्न नहीं, तैसेही तू है। तू निर्विकल्प है और तुझमें कुछ स्फूर्ति नहीं; तू केवल ज्यों का त्यों स्थित है॥

इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणे परमार्थोपदेशोनामाशीतितमस्सर्गः॥ ८०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब ऐसे कुम्भजमुनि ने कहा तब शिखरध्वज सुनके शान्तिको प्राप्त हुआ और नेत्र मूंदके सब अङ्गों की चेष्टासे रहित हुआ। जैसे शिलापर पुतली लिखीहो तैसेही स्थित हो एक मुहूर्त पर्यन्त वह निर्विकल्प स्थित रहा और फिर उठा तब कुम्भज ने कहा; हे राजन्! आत्मा जो निर्विकल्प है उस निर्विकल्प शिला में तूने शयन किया है और ज्ञेय जो जानने योग्य है उसे तूने जाना है। अब अज्ञान तेरा नष्ट हुआ अथवा नहीं और तू शान्तिको प्राप्त हुआ अथवा नहीं सो कह? राजा बोले, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा ने मुझे उत्तमपद को प्राप्त किया है। हे भगवन्! तत्त्ववेत्ताओं के सङ्ग से जैसा अमृत मिलताहै तैसा क्षीरसमुद्र से भी नहीं मिलता और जो देवताओं से भी नहीं मिलता। तुम्हारी कृपा से मैंने ऐसे अमृत को पाया है जिसका आदि अन्त कोई नहीं और जो अनन्त और अमृतसार है। अब मेरे सबदुःख नष्ट होगये हैं और मैं जगा हूं। अब मैंने अपने आपको जाना है कि, मैं आत्मा हूं; मेरेसाथ चित्त कोई नहीं और मैं केवल अपने आपमें स्थित हूं। अब मुझे कोई इच्छा नहीं मैंने अपने स्वभाव को पायाहै और सबके आदि पद को प्राप्तहुआहूं। जिसमें कोई क्षोभ नहीं ऐसे निर्विकल्पपद को मैं प्राप्तहुआहूं।

हे भगवन्! ऐसा मेरा अपना आप है जिससे सब प्रकाशते हैं। उसके जाने विना मैंने कोटि जन्म पाये थे। अब मेरे दुःख नाश हुये हैं और तुम्हारी कृपा से एक क्षण में जाना है। आगे भी श्रवण किया था पर क्या कारण है जो आगे न जाना और अब जाना? कुम्भज बोले, हे राजन्! अब तेरे कषाय परिपक्क हुये हैं। जैसे फल परिपक्क होता है तब यत्न विनाही वृक्ष से गिर पड़ता है तैसेही अब तेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है और अज्ञान नष्ट हो गया है। जब अन्तःकरण मलिन होता है तब सन्तों के वचन नहीं लागते और जब अन्तःकरण शुद्ध होता है तब सन्तों के वचन लागते हैं। जैसे कोमल कमल की जड़ को बाण लगे तो शीघ्रही बेध जाता है तैसेही शुद्ध अन्तःकरण में उपदेश शीघ्रही प्रवेश करताहै। हे राजन्! अब तेरी भाग वासना नष्ट हुई है और स्वरूप जानने की तेरी इच्छा हुई है; इससे तू जगा है। हे राजन्! मैंने उपदेश तब किया है जब तेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है। प्रतिबिम्ब भी वहां पड़ताहै जहां निर्मल ठौर होता है। जैसे श्वेत वस्त्र पर केशर का रङ्ग शीघ्रही चढ़ जाता है और रङ्ग भी चटक होताहै, तैसेही शुद्ध अन्तःकरण में सन्तों के वचन शीघ्रही प्रवेश करते हैं और शोभा पाते हैं। हे राजन्! जबतक अन्तःकरण मलिन होता है तबतक चाहे जितना उपदेश कीजिये स्थित नहीं होता। जब भोग से वैराग्य होता है तब वासना कोई नहीं रहती केवल आत्मपदकी इच्छा होती है और तभी स्वरूप का साक्षात्कार होता है। हे राजन्! अब तेरा सर्वत्याग सिद्धहुआ है और अज्ञान नष्ट हुआ है क्योंकि; और उपाधि कोई नहीं रही। चित्तही बड़ी उपाधि है, जब चित्त नष्ट हुआ तब कोई दुःख नहीं रहता। अब तू सुखसे बिचर; तुझको दुःख, शोक और भय कोई नहीं अब तू शान्तिपदको प्राप्तहुआहै। राजाने पूछा, हे भगवन्! अज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध है और ज्ञानवान् को चित्त का सम्बन्ध नहीं होता। जो स्वरूपमें स्थितहै वह चित्त विना जीवन्मुक्तिक्रिया में कैसे बर्तताहै? कुम्भज बोले, हे राजन्! तू सत् कहता है कि, ज्ञानीको चित्त का सम्बन्ध नहीं। जैसे पत्थर की शिला में अंगुरी नहीं होतीं तैसेही

ज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध नहीं होता हे राजन्! चित्त वासनारूपहै और वासना जन्ममरण का कारण है पर जीवन्मुक्ति की वासना नहीं रहती। ज्ञानवान् का चित्त सत्य पद को प्राप्त है और अज्ञानी चित्तमें बन्धायमान है; इससे वह जन्मता भी है और मरता भी है। ज्ञानीका चित्त जो शान्ति में स्थित है इससे उसको न बन्ध है; न मोक्ष है और वह प्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है और सर्वात्मा ही देखताहै। यद्यपि इन्द्रियों से वह चेष्टाभी करता तौभी सर्व ब्रह्महीं देखता है और क्रिया करने में इस अभिमान से रहित होताहै कि, मैं कर्ताहूं और भोक्ताहूं। अज्ञानी आपको कर्ता मानता है। और उसको संसार सत्य भासता है इससे संकल्प विकल्प कर्ता है। ज्ञानवान्को संसारकी सत्यता नहीं भासती; वह आपको अकर्ता, अभोक्ता देखताहै और अभिलाषसे रहित चेष्टा करताहै। जबतक चित्तका सम्बन्ध है तबतक जीव संसारको सत्य जानकर अपने में क्रिया देखताहै पर जब चित्त ही नष्ट होगया तब संसार और फुरना कहां रहे? हे राजन्! अब तू ने चित्त का त्याग किया है इससे सर्वत्यागी हुआ है और आगे सर्वत्याग न किया था इससे तेरा अज्ञान न नष्ट हुआ था। अब तेरा अहंभाव दूर हुआ है। जब अज्ञान नष्ट हुआ तब अहंभाव भी न रहा। अहं के त्याग करने से सर्वत्याग सिद्ध हुआ। आगे तूने राज्य का त्याग किया था पर राज्य में तेरा कुछ न था; फिर तमका त्याग किया; फिर वन से आदि सर्व सामग्री का त्याग किया पर अब तू ने उसका त्याग किया जो त्यागने योग्य अहंभाव है—इससे सर्वत्याग हुआ। जो कुछ जानने योग्य है सो अब तूने जानाहै और शान्तपद को प्राप्त हुआ है। हे राजन्! तू आत्मा सबदुःखों से रहित है। जैसे मन्दराचल पर्वत से रहित क्षीरसमुद्र शान्तपद को प्राप्त हुआहै तैसेही अज्ञान से रहित तू शान्तपद को प्राप्त हुआ है। अब तू जागा है और चित्तका त्याग किया है इससे अद्वैत सर्वात्मा हुआ है। हे राजन्! जब दो अक्षर होते हैं तब उनकी संज्ञा नाना प्रकार की होती हैं—जैसे अमृत विष; सुख-दुःख और धर्म-अधर्मपर जो एकाएकी अक्षर होता है वह सर्वका आत्मा है; तैसेही तेरा दूसरा अज्ञान नष्ट हुआ

है और तू सत्यपद को प्राप्त हुआ शुद्ध निर्मल है। हे राजन्! जो ज्ञानवान् है उसने सम्यक्दृष्टि से चित्तका त्याग किया है और उसको कोई दुःख नहीं होता। तू उसपद को प्राप्त हुआ है जिसमें कोई दुःख नहीं और जहां स्वर्गादिक सुख भी तुच्छ हैं क्योंकि, स्वर्ग में भी अतिशय क्षय होती है। अतिशय इसे कहते हैं कि, जो बड़े पुण्यवाले किसी को आपसे ऊंचा देखते हैं तो चाहते हैं कि, हम भी इसी के से होजावें और क्षय इसे कहते हैं कि, ऐसा न हो कि, इन सुखों से गिरूं। निदान स्वर्ग में दोनों प्रकार दुःख होताहै पर तूने पुण्य पाप दोनों का त्याग किया है इससे सर्वत्यागी है। अज्ञानी जो पापी जीव हैं उनको स्वर्ग ही भलाहै। जैसे सुवर्ण का पात्र न पाइये तो पीतल काभी भला है तैसेही स्वर्ग का पात्र जो ज्ञान है जबतक प्राप्त न हो तबतक पीतल के पात्र जो स्वर्गादिकहैं सो नरक से भले हैं; पर तुम ऐसेको कुछ नहीं। आत्मा में सर्वपदार्थ की पूर्णता है और सर्वकी उत्पत्ति आत्मासेही है। हे राजन्! वर्णाश्रम में क्या आस्था करनी है? जहां से इनकी उत्पत्ति है, जहां लीन होते हैं और मध्य में जिसके अज्ञान से दृष्टि आते हैं उसमें स्थित हो। हे राजन्! संकल्प विकल्प जो उठते हैं उनमें मत स्थित हो पर जिसमें ये उत्पन्न और लीन होते हैं उसमें स्थित हो। तपादिक क्रिया से क्या सिद्ध होता है? जिससे तप आदिक सिद्ध होते हैं उसमें स्थित हो। बूंद में क्या स्थित होना है? जिस मेघ से बूंद उत्पन्न होते हैं उसमें स्थित होइये। हे राजन्! जैसे स्त्री भर्ता से कोई पदार्थ चाहे और आप न कहे तैसेही तपादिक क्रिया से क्या सिद्ध होता है? जो उनसे आत्मपद की इच्छा करे तो प्राप्त नहीं होसक्ता अपने आपसे पाता है। हे राजन्! आत्मा तेरा अपना आपहै उससे सर्वसिद्धि होती है। जो वस्तु पीछे त्याग करनी हो उसको ज्ञानवान् प्रथम ही अङ्गीकार नहीं करता। जो कुछ तपादिक हैं उनको चित्त से क्या रचताहै अपने आपको देख कि, अनुभवरूपहै और सर्वदा निरन्तर अपने आपमें स्थित है। जब तू अपने आपसे आपको देखेगा तब तपादिक क्रिया को दूर करके शोभा पावेगा। जैसे बादल के दूर हुये

प्रकाशवान् चन्द्रमा शोभा पाता है तैसेही तू भी भोग की चपलता को त्यागकर शोभा पावेगा। जब इन्द्रियों को जीतकर किसी पदार्थ में आसक्त न होगा और सर्ववासना का त्याग करेगा तब ज्ञानवान् होगा। जिसने सर्ववासना का त्याग कियाहै उसको विष्णु जानना; वह सर्वराज्य का स्वामी है और जिसने मन जीता है सो चेष्टा में भी ज्यों का त्यों रहता है और समाधि में भी ज्यों का त्यों है। जैसे पवन चलने और ठहरने में तुल्य है तैसेही ज्ञानवान् को कहीं खेद नहीं होता। राजा ने पूछा, हे सर्व संशयों के नाशकर्ता! स्पन्द और निस्पन्द में ज्ञानी ज्यों का त्यों कैसे रहताहै सो कृपा करके कहिये? कुम्भज बोले हे राजन्! चेतनआकाश आकाश से भी निर्मल है, तब उसका साक्षात्कार होता है, तब जहां देखे तहां चेतन ही भासताहै। जैसे समुद्रके जाने से तरङ्ग और बुद्बुदे सब जलही भासते हैं तैसेही चित्त विना आत्माके देखे से फुरने में भी आत्मा ही दृष्टि आताहै और जिसने आत्मा को नहीं जाना उसको नाना प्रकार का जगत् ही भासता है। जैसे जलके जाने विना तरङ्ग बुद्बुदे भिन्न २ दृष्टि आते हैं और जलके जानने से तरङ्गभी जलमय भासते हैं। हे राजन्! सम्यक्दर्शी को जगदात्मास्वरूप है और असम्यक् दर्शी को जगत् है। इससे तू सम्यक्दर्शी होकर देख कि, जगत् भी आत्मरूप है। सम्यक्दर्शन जैसे प्राप्त होता है सोभी श्रवणकर। सम्यक्दर्शन सन्तके संग करने और सत्शास्त्र के विचार से प्राप्त होता है। भावना करिये तब कितने काल में स्वरूप का साक्षात्कार होता है। काल की अपेक्षा भी दृढ़ विचार के निमित्त कही है। जब दृढ़ विचार होता है तब साक्षात्कार होता है और जब स्वरूप का साक्षातकार होता है तब स्पन्द और निस्पन्द में एक समान होताहै। हे राजन्! जिसके समीप मक्खी है वह मक्खी के निमित्त पर्वत क्यों खोजे और दौड़े तैसेही तेरे घर में ब्रह्मवेत्ता चुड़ाला थी उसका त्यागकर तू ने वन में आ तप का आरम्भ किया इससे बड़ा कष्ट पाया परन्तु अब तू जागा है और तेरा दुःख नष्ट हुआ है अब तू शान्तपद को प्राप्त हुआ है। जैसे रस्सी के न जानने

से सर्प भासता है और भली प्रकार जानने से रस्सी ही भासती है तैसेही जिसने भली प्रकार निस्पन्द होकर अपना आप देखा है उसको फुरने में भी आत्मा ही भासता है जब मनकी चपलता मिटती है तब तुरीयातीत पद को प्राप्त होता है; जिस पद को वाणी नहीं कह सक्ती। हे राजन्! तू भी अब उसी पद को प्राप्त हुआ है जो मन और वाणी से रहित तुरीयातीत पद है वहां कोई क्षोभ नहीं केवल शान्तिपद है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधवर्णनन्नामै-
काशीतितमस्सर्गः॥८१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब राजा को कुम्भज मुनि ऐसे उपदेश करचुके; उसके उपरान्त बोले, हे राजन्! अब हम जाते हैं क्योंकि; स्वर्ग में ब्रह्माजी के पास नारद मुनि आये हैं वे यदि मुझे देवताओं की सभा में न देखेंगे तो क्रोध करेंगे। हे राजन्! जो कल्याणकृत पुरुष हैं वे बड़े की प्रसन्नता लेते हैं। जो उपदेश तुझे किया है उसको भली प्रकार विचारना। सर्व शास्त्रों का सार यही है कि संपूर्ण वासना का त्याग करना और किसी में चित्त को बन्धवान् न करना। मेरे आने तक स्वरूप में स्थित रहकर किसी चेष्टा में न लगना और स्वरूप को भली प्रकार जानकर चाहे तैसे विचरना। ऐसे कहकर जब कुम्भज मुनि उठ खड़े हुये तब राजा ने अर्घ्य और फल चढ़ाने के निमित्त हाथ में लिये पर जल और फूल हाथ ही में रहे और कुम्भज मुनि अन्तर्धान हो गये। जब राजा ने कुम्भज मुनि को अपने आगे न देखा तब विचार करने लगा कि, देखो ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती कि, नारद मुनि कहां था; उसका पुत्र कुम्भज कहां और मैं राजा शिखरध्वज कहां? मालूम होता है नीति ही ने कुम्भज मुनि का रूप धारणकर मुझको जगाया है। कुम्भज बड़ा मुनि दृष्टि आया जिसने मुझे उपदेश करके जगाया है। अब मैं अज्ञानरूपी गढ़े से निकल कर स्वरूपको प्राप्त हुआ हूं; मेरे संपूर्ण संशय नष्ट हुये हैं और मैं निर्दुःख पद में स्थित होकर अज्ञाननिद्रा से जागा हूं—बड़ा आश्चर्य है। हे रामजी! ऐसे कह कर

राजा शिखरध्वज संपूर्ण इन्द्रियां, प्राण और मन स्थित करके चेष्टा से रहित हुआ और जैसे शिला के ऊपर पुतली लिखी होती है और पर्वत का शिखर स्थित होता है तैसेही स्थित हुआ इधर चुड़ाला कुम्भजरूप शरीर का त्यागकर और अपना सुन्दररूप धारणकर उड़ी और आकाश को लांघकर अपने नगर में आई। अन्तःपुरमें जहां स्त्रियां रहती थीं प्रवेश करके मन्त्रियों को आज्ञा दी कि, तुम अपने २ स्थान में स्थित हो और आप राजा के स्थान में स्थित होके भली प्रकार प्रजाकी खबर लेने लगी। निदान तीन दिन रहकर फिर वहां से उड़ी और जहां वन में राजा था वहां आ पहुँची और कुम्भज का रूप धारकर देखा कि, राजा समाधि में स्थित है इससे बहुत प्रसन्न हुई। हे रामजी ! ऐसे प्रसन्न होकर चुड़ाला ने विचार किया कि, बड़ा सुख कार्य हुआ कि, राजा ने स्वरूप में स्थिति पाई और शान्ति को प्राप्त हुआ। फिर यह विचार कर कि, इसको जगाऊं सिंह की नाईं गरजी और ऐसा शब्द किया कि, उससे वनके पशु पक्षी सब डर गये परन्तु राजा न जगा। फिर उसे हाथ से हिलाया तौ भी राजा न जगा। जैसे मेघ के शब्द से पर्वत का शिखर चलायमान नहीं होता तैसेही राजा चलायमान न हुआ और काष्ठ और पाषण की नाईं स्थित रहा। तब रानी ने विचार किया कि, कहीं राजा शरीर को त्याग न दे, पर फिर विचारा कि, जो राजा ने शरीर का त्याग किया हो तो मैं भी त्यागूंगी। हे रामजी ! चुड़ाला ने शरीर न त्यागा परन्तु आरम्भ करने लगी कि, राजा और मुझको इकट्ठा शरीर त्यागना है। फिर विचार करने लगी कि, इसकी भविष्यत् क्या होनी है। तब राजा के नेत्रों पर हाथ लगाया और देह से देहका स्पर्शकर देखा कि राजा के शरीर में प्राण हैं। फिर भविष्यत् का विचार किया कि, इसकी सत्त्व शेष रहती है इससे जीवन्मुक्त होकर राज्य में बिचरेगा। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! तुमने कहा कि राजा काष्ठ और पाषाणकी नाईं स्थित हुआ और फिर कहा कि, कुम्भजने हाथ लगाकर देखा कि, इसमें प्राणहैं तो कुम्भजने क्यों कर जाना ? यह मुझको संशयहै सो दूर करो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिस

शरीर में पुर्यष्टका होती है उसमें हरियावलता होती है। हे रामजी! अज्ञानी का चित्त रहता है और ज्ञानी का सत्त्व रहता है जो प्रारब्ध वेगसे फुरता है और ब्रह्माकार वृत्ति फुरने से फिर शरीर पाता है। ज्ञानी इष्ट-अनिष्ट में एक समान रहता और अज्ञानी एक समान नहीं रहता; वह इष्ट में प्रसन्न और अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान् होता है। हे रामजी! ज्ञानी जब शरीर को त्यागता है तब ब्रह्मसमुद्र में स्थित होता है और जब तक सत्त्व शेष है तब तक फुरता है। अज्ञानी जब शरीर को त्यागता तब उसमें सूक्ष्म संसार होता है-जैसे बीज में वृक्ष, फूल और फल सूक्ष्मता से स्थित होता है सो काल पाकर फिर निकलता है। उसी प्रकार राजा का सत्त्व शेष रहता था उस कारण फिर फुरेगा। तब कुम्भजरूप चुड़ाला ने विचार किया कि, इसके भीतर प्रवेश करके जगाऊं और जो मैं न जगाऊंगी तो भी नीति से इसको जाना है। ऐसे विचार उसने अपने शरीर को त्यागा और चेतनता में स्थित हो, फुरने को लेकर उसमें प्रवेश किया और उसकी चेतनताका जो सत्त्व शेषथा उसको फोड़ा और बड़ा क्षोभ किया। जब राजा वहां से हिला तब आप निकल आई और अपने शरीर में प्रवेश किया। जैसे पखेरू आकाश में उड़ता है और फिर आलय में आ प्रवेश करता है तैसे ही वह अपने शरीर में आन स्थित हुई और सामवेद का गायन मधुर स्वर से करने लगी। राजा यह सुनकर कि, कोई सामवेद गाता है जागा और देखा कि, कुम्भज मुनि बैठे हैं। इन्हें देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और फूल और जल चढ़ाकर बोला, हे भगवन्! मेरे बड़े भाग्य हैं-मैं आपका दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुआ। हे भगवन्! कूलरूपी कुलाचल पर्वत है उसमें जो देहरूपी वृक्ष है सो अब फूला है और तुमने हमको पावन किया है। हे भगवन्! किसी की सामर्थ्य नहीं कि, तुम ऐसों के चित्त में प्रवेश करे। जिसमें सर्वदा आत्मा का निवास है उस चित्त में मेरी स्मृति हुई है कि, आपका दर्शन किया। इससे मेरे बड़े भाग्य हैं। हे भगवन्! अमृतरूपी वचनों से तुमने प्रथम मुझे पवित्र किया था और अब जो चित्त किया है सो मुझे पावन किया है। कुम्भज

बोले, हे राजन्! तेरा दर्शन करके मैं भी बहुत प्रसन्न हुआ हूं और तुम्हारी ऐसी प्रीति मैंने आगे किसी में नहीं देखी। हे राजन्! तेरे निमित्त मैं स्वर्ग से आया हूं। स्वर्ग के सुख मुझे भले न लगे और तू बहुत प्रियतम है इसी निमित्त मैं आयाहूं। अब मैं स्वर्गभी न जाऊंगा; तेरेही पास रहूंगा। राजा बोले, हे भगवन्! जिस पर तुम ऐसों की कृपा होती है उसको स्वर्ग आदिक सुख भले नहीं लगते तो तुम ऐसों की बात क्या कहनी है? यह वनहै और यह झोंपड़ीहै इसमें विश्राम करो; मेरे बड़े भाग्यहैं जो तुम्हारा चित्त यहां चाहताहै। कुम्भज बोले, हे राजन्! अब तुझे शान्ति प्राप्त हुईहै और संकल्प बीज नष्ट हुआहै। जैसे नदीके किनारे परकी बेलि जलके प्रवाह से मूल समेत गिरती है तैसेही तेरे संकल्पबीज नष्ट हुये हैं। अब तू यथा प्राप्ति में सन्तुष्ट है कि, नहीं? और हेयोपादेय से रहित हुआ है कि, नहीं और जो पानेयोग पद है सो पाया है कि, नहीं; अपना अनुभव कह? राजा बोले, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से अब मैंने सबसे श्रेष्ठपद पाया है जहां संसारसीमा का अन्त है। अब मुझे उपदेश का अधिकार नहीं रहा क्योंकि, मेरे सम्पूर्ण संशय नष्ट हुये हैं और हेयोपादेय से रहितहूं इससे सुखी विचरताहूं। जो कुछ जानना योग्य था सोभी मैंने जाना है। अब मुझमें कोई नहीं और मैं सबठौर तृप्त, अनित, प्राप्तरूप आत्मा अपने निर्मल स्वभाव में स्थित, सर्वात्मा और निर्विकल्प हूं। मुझमें फुरना कोई नहीं; मैं शान्तरूप हूं और चिरपर्यन्त सुखीहूं। इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार राजा और कुम्भज का तीन मुहूर्त संवाद हुआ फिर उसके उपरान्त दोनों उठखड़े हुये और चले। निकट एक तालाब था जहां बहुत कमलिनी लगी थीं वहां पहुँच दोनों ने स्नान करके गायत्री और सन्ध्या की और पूजा करके फिर वहां से चले और वन कुञ्जों में आये। तब कुम्भज ने कहा चलिये। राजाने कहा भली बात है चलिये। निदान दोनों चले और बहुत नगरों, देशों, ग्रामों और तीर्थों को देखते नाना प्रकार के वनों में जो फूल और फल संयुक्त थे और मरुस्थल में बिचरे। हे रामजी! ऐसे वे दोनों तीर्थ आदिक सात्त्विकी स्थानों, सुन्दर

वन आदिक राजसीस्थानों और मरुस्थलादिक तामसीस्थानों में विचरे पर हर्ष शोक को न प्राप्त हुये और समता में रहे । हे रामजी ! कुम्भज के फिरने का यह प्रयोजन था कि, देखें राजा शुभ अशुभ स्थानों को देखकर हर्ष शोक करेगा अथवा न करेगा पर राजा हर्ष शोक को न प्राप्त हुआ । फिर उन्होंने बड़े पर्वतों की कन्दरा, वन, कुञ्ज और बड़े कष्टके स्थान देखे और एकवन में जारहे । कुछ काल में राजा और कुम्भज एकहीसे होगये दोनों इकट्ठे स्नान करें; एकही से जाप जपें; एकसी पूजाकरें और एक से दोनों सुहृद् हुये । किसी ठौर वे शरीर में माटी लगावें; किसी ठौर चन्दन का लेपकरें; किसी ठौर शरीर में भस्म लगावें; किसी ठौर दिव्य वस्त्र पहिरें; किसी ठौर केलेके पत्रोंपर सोवें; किसीठौर फूल की शय्या हो और किसी ठौर क्रूरस्थानों में शयनकरें । हे रामजी ! ऐसे शुभ अशुभ ठौरों में भी वे ज्यों के त्यों रहे और हर्ष शोक को न प्राप्त हुये । केवल शुद्धसत्त्व में वे दोनों स्थित रहे और आत्मा के सिवाय और कुछ न फुरा । एकबेर रानी के मन में विचार हुआ कि, यह मेरा भर्त्ता है मैं इसको भोगूं क्योंकि हमारी अवस्थाहै । जो भले कुलकी स्त्री हैं वे भर्त्ताको प्रसन्न रखती हैं और राजा का शरीर भी देवता कासा हुआ है और स्थान भी शुभ है । जबतक शरीरहै तबतक शरीरके स्वभाव भी साथ हैं। फिर विचारकिया कि, राजाकी परीक्षाभी करूं कि, क्या कहे । इतना विचारकर कुम्भज ने कहा, हे राजन्! अब हम स्वर्ग में जाते हैं क्योंकि, चैत्रशुद्ध एकम को ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न की है; इसीदिन वर्ष के वर्ष उत्सव होताहै और वहां नारदमुनि भी आवेंगे । मेरे आनेतक तुम ध्यान में रहना और जब ध्यान से उतरो तो फूलों को देखना । ऐसे कहकर उसने फूलों की मञ्जरी राजाको दी और राजानेभी कुम्भज को फूल की मञ्जरी दी । जैसे नन्दनवन में स्त्री भर्त्तार के हाथ दे और भर्त्तार स्त्री के हाथ दे तैसेही परस्पर दोनों ने दिया । फिर कुम्भज आकाश को उड़ा और जैसे मेघ को मोर देखताहै तैसेही राजा देखता रहा । जहांतक राजा की दृष्टि पड़ती थी वहांतक रानी ने कुम्भज का शरीर रक्खा और जब दृष्टि से अगोचर हुई तब फूलों की

माला जो गले में थी तोड़कर राजा के ऊपर डाल दी और चुड़ाला का शरीर धारणकर आकाश को लांघ अपने अन्तःपुर में पहुँची। निदान राजाके स्थानपर बैठकर सबको अपने २ स्थानों में स्थित किया और प्रजा की खबरें सुनकर फिर उड़ी। सूर्यकी किरणोंके मार्ग से मेघमण्डल को लांघती हुई जहां राजाका स्थान था वहां आकर देखा कि, राजा वियोगसे शोकवान् है इसलिये आपभी कुम्भजरूप में दिलगीर राजाके आगे आई। राजाने कहा, हे भगवन्! तुमको शोक कैसे हुआ है? ऐसा कौन कष्ट तुमको मार्गमें हुआ है? सब दुःखों का नष्ट करनेवाला ज्ञान है; जो तुम ऐसे ज्ञानवानों को शोक हो तो और की क्या बात कहनी है। हे मुनि! तुमको दुःख का कारण कोई नहीं, तुम क्यों शोकवान् होतेहो और तुमको कौन अनिष्ट प्राप्त हुआ है? तब कुम्भजने कहा, हे राजन्! मुझे एक दुःखहै सो कहता हूं। जो मित्र पूछे तो सतही कहा चाहिये और दुःखभी नष्ट होता है जैसे मेघ जड़ और श्याम होताहै और उसका सज्जन जो है क्षेत्र और पृथ्वी तिसके ऊपर वह वर्षा करता है तो उसकी जड़ता और श्यामता नष्ट होती है—इससे मैं तुझसे कहता हूं। हे राजन्! जबतक स्वर्ग में सभा स्थित थी तबतक मैं नारद के पास रहा और जब सभा उठी तब नारदमुनि भी उठे और मुझसे कहा कि, जहां तेरी इच्छा हो तहां जा और मैं भी जाता हूं—क्योंकि, नारद एकही ठौर में नहीं ठहरते विश्व में घूमते फिरते हैं। तब मैं आकाश को चला तो एकठौर सूर्य से मिलाप हुआ और मेघके मार्ग से तीक्ष्ण वेग से चला। जैसे नदी पर्वत से तीक्ष्ण वेगसे आती है तैसेही मैं तीक्ष्ण वेगसे चला आताथा तो देखा कि, दुर्वासा ऋषीश्वर महामेघ की नाईं श्यामवस्त्र पहिरेहुये और भूषणसंयुक्त जैसे बिजली का चमत्कार होता है उड़े आते हैं। भूषणों का चमत्कार देखकर मैंने दण्डवत् करके कहा हे मुनीश्वर! तुमने क्या रूप धारा है जो स्त्रियोंकी नाईं भासता है? दुर्वासा ने तब रुष्ट होकर मुझसे कहा, हे ब्रह्मा के पौत्र! तू कैसा वचन कहता है? ऐसा वचन मुनीश्वर प्रति कहना उचित नहीं। हम क्षेत्र हैं; जैसा बीज क्षेत्र में बोइये

तैसा उगता है; तूने मुझे स्त्री कहा है इससे तू भी स्त्री होगा और रात्रि को तेरे सब अंग स्त्री के होवेंगे। हे मुनीश्वर! जो कल्याणकृत ज्ञानवान् पुरुष हैं उनमें नम्रता होती है जैसे फल संयुक्त वृक्ष नम्र होता है तैसे ही ज्ञानी भी नम्र होता है—ऐसा वचन तुझे कहना न चाहिये। हे राजन्! ऐसे सुनकर मैं तेरे पास चला आया हूं और मुझे लज्जा आती है कि, स्त्री का शरीर धारे देवताओं के साथ में कैसे बिचरूंगा—यही मुझको शोक है। राजा ने कहा, क्या हुआ जो दुर्वासा ने कहा और स्त्रीका शरीर हुआ? तुम तो शरीर नहीं, निर्लेप आत्मा हो? हे मुनीश्वर! तुम अपनी समता में स्थित रहते हो। ज्ञानवान् पुरुष को हेयोपादेय किसी का नहीं रहता वह तो अपनी समता में स्थित रहता है? तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! तू सत्य कहता है। मुझे क्या दुःख है? जो शरीर का प्रारब्ध है सो होता है। यह ईश्वर की नीति है कि, जब तक शरीर होता है तब तक शरीर के स्वभाव भी रहते हैं। शरीर का स्वभाव त्याग करना भी मूर्खता है। जिस स्थान में ज्ञान की प्राप्ति हो उसी चेष्टा में बिचरिये और इन्द्रियों का रोकना और मन से विषय की चिन्तना करनी भी मूर्खता है। इन्द्रियों और देह की चेष्टा ज्ञानवान् भी करते हैं परन्तु उसमें बन्धवान् नहीं होते। इन्द्रियां विषय में बर्तती हैं। ईश्वर की आदि नीति इसी प्रकार है। हे राजन्! नीति का त्याग किसी से नहीं किया जाता—इससे नीति का क्या त्याग करिये। यह नीति है कि, जब तक शरीर है तब तक शरीर के स्वभाव भी होते हैं। जैसे जब तक तिल है तब तक तेल भी होता है तैसे ही जब तक शरीर है तबतक शरीर के स्वभाव भी होते हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे देह और इन्द्रियों से चेष्टा भी करते हैं परन्तु बन्धायमान नहीं होते और अज्ञानी बन्धायमान होते हैं। चेष्टा ज्ञानी भी करते हैं अज्ञानी भी करते हैं। जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि जो ज्ञानवान् हैं वे सर्व चेष्टा भी करते हैं परन्तु बन्धायमान किसी में नहीं होते। हे राजन्! तैसे जो अनिच्छित आ प्राप्त हो और जिसको शास्त्र प्रमाण करें उसको भोगने में दूषण कुछ नहीं। राजा बोले, हे भगवन्! ज्ञानवान् को

दूषण कुछ नहीं। जो सत्ता समान में स्थित है उसे दूषण कुछ नहीं होता। अज्ञानी शरीर के दुःख अपने में देखता है उससे दुःखी होता है और ज्ञानवान् शरीर के दुःख अपने में नहीं देखता हे रामजी! ऐसे कहते सूर्य अस्त हुआ तब राजा और कुम्भज दोनों ने सायंकाल में सन्ध्या करके जाप किया और जब रात्रि हुई, तारागण निकले और सूर्यमुखी कमलों के मुख मूंदगये तब कुम्भज ने कहा, हे राजन्! देख कि, मेरे शिर के बाल बढ़ते जाते हैं, वस्त्र भी टखने तक होगये हैं और स्तनभी स्त्री की नाईं हैं। निदान चुड़ाला महासुन्दर स्त्री लक्ष्मी की नाईं होगई और उसको देखकर राजा को एकमुहूर्त शोक रहा उसके उपरान्त सावधान होकर बोला, हे मुनि! क्या हुआ जो तेरा शरीर स्त्री का हुआ? तुमतो शरीर नहीं आत्मा हो—इससे शोक क्यों करते हो? तुम अपनी सत्ता समान में स्थित रहो जब रात्रि हुई तो रानी ने महा सुन्दररूप धर के फूलों की शय्या बिछाई और उस पर दोनों इकट्ठे सोये। हे रामजी! समस्त रात्रि उनको कोई फुरना न फुरा और सत्ता समान में दोनों स्थित रहे और मुख से कुछ न बोले। जब प्रातःकाल हुआ तब फिर रानी ने कुम्भज का शरीर धार कर स्नान किया और गायत्री से आदि जो कर्म हैं सो किये। इसी प्रकार चुड़ाला रात्रि को स्त्री बन जावे और दिनको कुम्भज पुरुष का शरीर धारे। जब कुछ काल ऐसे बीता तब दोनों वहां से चलकर सुमेरु पर्वत के ऊपर गये और मन्दराचल और अस्ताचल पर्वत आदि सर्व सुख स्थानों को देखा पर एक दृष्टि को लिये रहे न कोई हर्षवान् हुआ और न शोकवान् ज्यों के त्यों रहे। जैसे पवन से सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता तैसे ही शुभ अशुभ स्थानों में वे समान रहे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजस्त्रीप्राप्तिर्नाम-
द्व्यशीतितमस्सर्गः॥ ८२॥

इतना कह कर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार बिचरते २ वे मन्दराचल की कन्दरा में पहुँचे तो वहां कुम्भजरूप चुड़ाला ने राजा से परीक्षा के निमित्त कहा, हे राजन्! जब मैं रात्रि को स्त्री होती हूं तब

मुझे भर्ता के भोगने की इच्छा होती है क्योंकि, ईश्वर की नीति ऐसी ही है कि, स्त्री को अवश्यमेव पुरुष चाहिये जो उत्तम कुल का पुरुष होता है उसको कन्या विवाह करके पिता देता है अथवा जिसको स्त्री चाहे उसको आप देखले-इससे, हे राजन्! मुझे तुझसे अधिक कोई नहीं दृष्टि आता। तूही मेरा भर्ता है और मैं तेरी स्त्री हूं। तू मुझे अपनी भार्या जान कर जो कुछ स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं सो किया कर। मेरी अवस्था भी यौवन है और तू भी सुन्दर है। ज्ञानवान् अनिच्छित प्राप्त हुये का त्याग नहीं करते। यद्यपि तुझको इच्छा न हो तौ भी ईश्वर की नीति इसीप्रकार है उसके उल्लंघनसे क्या सिद्ध होगा? जो अपने स्वरूपसत्ता में स्थित है उसको ग्रहण त्याग की कुछ इच्छा नहीं परन्तु जो नीति है वह करनी चाहिये। राजा बोला, हे साधु! जो तेरी इच्छा है सो कर मुझको तो तीनों जगत् आकाशरूप भासते हैं। मुझे प्राप्त होने से कुछ सुख नहीं और अप्राप्ति में दुःख नहीं और न कुछ हर्ष शोक है। जो तेरी इच्छा हो सो कर। कुम्भज बोले, हे राजन्! आजही पूर्णमासी का भला दिनहै और मैंने आगे से लग्न भी गिनरक्खा है इससे मन्दराचल पर्वतकी कन्दरा में बैठकर विवाह करो। निदान राजा और कुम्भज दोनों उठे और जो कुछ सामग्री शास्त्रकी रीति से थीं वे इकट्ठी कर दोनोंने गङ्गा में स्नानकिया। वस्त्र, फूल, फल आदि जो विवाहकी सामग्री हैं सो कल्पवृक्षसे लेकर दोनों ने फल भोजन किये और सूर्य अस्त हुआ तो दोनों ने सन्ध्योपासनकर कुम्भज ने राजा को दिव्य वस्त्र और भूषण पहिनाये और शिरपर मुकुट रक्खा। फिर कुम्भजने अपना शरीर त्यागकर स्त्री का शरीर धारणकिया और राजा से बोला, हे राजन्! अब तू मुझे भूषण पहिरा। तब राजा ने संपूर्ण भूषण फूल और वस्त्र उसे पहिराये और वह पार्वती की नाईं सुन्दर बनी। तब चुड़ाला ने कहा, हे राजन्! मैं अब तेरी स्त्री हूं और मेरा नाम मदनिका है और तू मेरा भर्त्ता है-मुझे तू कामदेव से भी सुन्दर भासता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी प्रकार चुड़ाला ने बहुत कुछ कहा तो भी राजा का चित्त हर्षको न प्राप्त हुआ और विराग से शोकवान् भी

न हुआ-ज्यों का त्यों रहा। उसके उपरान्त जब विवाह का आरम्भहुआ तो चन्दुआदिया और पास सुवर्ण के कलश रखके देवताओं का पूजन किया और जो शास्त्र की विधि थी वह संपूर्ण करके मङ्गल किया। फिर रानी ने यह संकल्प किया कि, संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तुझेदी। और राजा ने संकल्प किया कि, सम्पूर्ण ज्ञाननिष्ठा तुझे दी जब रात्रि एक प्रहर रही तब राजा और रानी ने फूलों की शय्या बिछा के शयन की और आपस में चरचा ही करते रहे मैथुन कुछ न किया प्रातःकाल हुये कुम्भज ने स्त्री का शरीर त्यागकर कुम्भजका शरीर धारा और स्नान संध्यादिक कर्मकिये। हे रामजी! इसीप्रकार एक मास पर्यन्त मन्दराचल पर्वत में वे रहे। रात्रि को रानी स्त्री का शरीर धरे और दिनको कुम्भज का शरीरधरे और जब तीसरा दिन हो तब राजा को शयन कराके राज्य की सुधि ले और फिर आकर राजा के पास शयन करे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विवाहलीलावर्णनन्नाम त्र्यशीतितमस्सर्गः॥ ८३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब वहां से वे चले तो अस्ताचल पर्वत में जायरहे और उदयाचल, सुमेरु, कैलास इत्यादिक पर्वतों और कन्दरों और वनों में रहे। कहीं एक मास, कहीं दशमास, कहीं पांचदिन, कहीं सप्तदिन रहे। इसीतरह जब एक वन में आये तब रानीने विचार किया कि,इतने स्थान राजाको दिखाये तौभी इसका चित्त किसी में बन्धवान् नहीं हुआ, इससे अब और परीक्षा लूं। ऐसे विचारकर उसने अपनी ऐसी माया फैलाई कि, तेंतीस कोटि देवता संयुक्त इन्द्र के आगे किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध और अप्सरा नृत्य करती आईं। सर्वसामग्री संयुक्त इन्द्र को देखकर राजा उठा और बहुत प्रीति संयुक्त उसकी पूजा करके बोला, हे त्रैलोक्य के पति! तुम किसलिये वन में आये हो सो कहो? इन्द्र ने कहा, हे राजन्! जैसे पक्षी ऊर्ध्व में उड़ता है और उसकी पेटी में तागा होता उससे उड़ता हुआ भी नीचे आता है, तैसेही हम ऊर्ध्व के वासी तेरे तप और शुभ लक्षणों के तागे रूपी गुणों को श्रवण करके स्वर्ग से

खैंचे चले आते हैं—इस प्रकार हमारा आना हुआ है। इससे, हे राजन्! तू स्वर्ग को चल और स्वर्ग में स्थित होकर दिव्य भोगों को भोग। ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हो अथवा उच्चैःश्रवा घोड़ा जो क्षीरसमुद्र के मथन से निकला है उसपर आरूढ़ होकर चल। अणिमा, महिमा, गरिमा आदि आठ सिद्धियां भी विद्यमान हैं जो इच्छा हो सो लो और स्वर्ग में चलो। हे राजन्! तुम तत्त्ववेत्ता हो, तुमको ग्रहण त्याग करना कुछ नहीं रहा परन्तु जो अनिच्छित प्राप्त हो उसका त्याग करना योग्य नहीं—इससे स्वर्ग में चलो। राजा बोले, हे देवराज! जाना तहां होता है जहां आगे न हुआ हो और जहां आगे जाना हुआ हो वहां कैसे जावै? हे देवराज! हमको सब स्वर्गही दृष्टि आता है। जो वहां स्वर्ग हो और यहां न हो तो जाना भी उचित है परन्तु जहां हम बैठे हैं वहांही स्वर्ग भासता है; इससे हम कहां जावें? हमको तीनों लोक स्वर्ग दृष्टि आते हैं और सदा स्वर्ग-रूप जो आत्मा है हम उसीमें स्थित हैं। हमको सर्वथा स्वर्ग भासता है और हम सदा तृप्त और आनन्दरूप हैं। इन्द्र बोले, हे राजन्! जो विदित वेद पूर्णबोध हैं वेभी यथा प्राप्त भोगों को सेवते हैं तो तुम क्यों नहीं सेवते? ऐसे जब इन्द्र ने कहा तब राजा त्यों हीं कहंकर चुप कर गया। फिर इन्द्र ने कहा भला जो तुम नहीं आते तो हमहीं जाते हैं। तुम्हारा और कुम्भज का कल्याण हो। हे रामजी! ऐसे कहकर इन्द्र उठखड़ाहुआ और चला पर जबतक दृष्टि आता था तबतक देवता भी साथ दीखते थे फिर जब दृष्टिसे अगोचर हुये तब अन्तर्धान होगये। जैसे समुद्र से तरङ्ग उठकर फिर लीन होजाते हैं और जाना नहीं जाता कि, कहां गये; तैसेही इन्द्र अन्त-र्धान होगया। वह इन्द्र कुम्भजरूप चुड़ाला के संकल्प से उठा था जब संकल्प लीन हुआ तब अन्तर्धान होगया और चुड़ाला ने देखा कि, ऐसे ऐश्वर्य, सिद्धि और अप्सराओं के प्राप्त भये भी राजा का चित्त समता में रहा और किसी पदार्थ में बन्धवान् न हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मायाशक्रागमनवर्णनन्नाम चतुरशीतितमस्सर्गः॥ ८४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब चुड़ाला इन्द्र का छल कर चुकी तब विचारने लगी कि, ऐसा चरित्र मैंने राजाके मोहने के निमित्त किया तौ भी राजा किसी में बन्धायमान न हुआ और ज्यों का त्यों ही रहा। बड़ा कल्याण हुआ कि, राजा सत्तासमान में स्थित रहा—इससे बड़ा आनन्द हुआ। अब और चरित्र करूं जिसमें इसको क्रोध और खेद दोनों हों। ऐसे विचारकर राजाकी परीक्षा के निमित्त उसने यह चरित्र किया कि, जब सायंकाल का समय हुआ तब गङ्गा के किनारे राजा संध्या करने लगा और कुम्भज वनमें रहा और उसमें संकल्प का मन्दिर रचा। जैसे देवताओं की रचना होती है तैसेही मन्दिर के पास फूलों की एक बाड़ी लगाई और उसमें कल्पवृक्ष आदि नाना प्रकार के फूल फल संयुक्त वृक्ष रचे। एवम् संकल्प की शय्या रचकर एक संकल्पका महासुन्दर पुरुष रचा और उसके साथ अङ्ग से अङ्ग लगा और गले में फूलों की माला डाल काम चेष्टा करने लगी। जब राजा सन्ध्या कर चुका तौ रानी को देखने लगा पर वह दृष्टि न आई; निदान ढूंढ़ते २ उस मन्दिर के निकट आया तो क्या देखा कि, एक कामी पुरुष के साथ मदनिका सोई हुई है और दोनों काम चेष्टा करते हैं। तब राजा ने विचारा कि, भले आराम से दोनों सो रहे हैं इनके आनन्द में विघ्न क्यों कीजिये। हे रामजी! इस प्रकार राजा ने अपनी स्त्री को देखा तौ भी शोकवान् न हुआ और क्रोध भी न किया ज्यों का त्यों शान्तपद में स्थित रहा। मन्दिर के बाहर निकल के वहां एक सुवर्ण की शिला पड़ी थी उस पर आन बैठा और आधे नेत्र मूंद कर समाधि में स्थित हुआ। दो घड़ी के उपरान्त मदनिका कामी पुरुष को त्याग कर बाहर आई और राजा के निकट आकर अङ्गों को नग्न किया और फिर वस्त्रों से ढांपा जैसे और स्त्रियां काम से व्याकुल होती हैं तैसे ही चुड़ाला को देख कर राजा ने कहा, हे मदनिका! तू ऐसे सुख को त्याग कर क्यों आई है? तूतो बड़े आनन्द में मग्न थी अब वहां ही फिर जा। मुझे तो हर्ष शोक कुछ नहीं मैं ज्यों का त्यों हूं परन्तु तेरी और कामी पुरुषकी प्रीति परस्पर देखी है जगत् में परस्पर प्रीति नहीं

होती है इससे तू उसको सुख दे वह तुझे सुख दे। तब मदनिका लज्जा से शिर को नीचे करके बोली, हे भगवन्! क्षमा करो; मुझ पर क्रोध मत करो, मुझसे बड़ी अवज्ञा हुई है परन्तु मैंने जान के नहीं की जैसे वृत्तान्त है सो सुनो। जब तुम सन्ध्या करने लगे तब मैं वन में आई तो वहां एक कामी पुरुष का मिलाप हुआ, मैं निर्बल थी और वह बली था उसने पकड़कर मुझे गोद में बैठाया और जो कुछ भावना थी सो किया। मैंने जो पतिव्रता स्त्री की मर्यादा थी उसके अनुसार उस पर क्रोध किया और उसका निरादर किया और पुकार भी की–ये तीनों पतिव्रता की मर्यादा हैं सो मैंने कीं–परन्तु तुम दूर थे और वह बली था मुझे पकड़ और गोद में बैठाकर जो कुछ भावना थी वह किया। हे भगवन्! मुझमें कुछ दूषण नहीं, इससे तुम क्षमा करके क्रोध न करो। राजा बोले, हे मदनिका! मुझे कदाचित् क्रोध नहीं होता। आत्मा ही दृष्ट आताहै तो क्रोध किसपर करूं? मुझे न कुछ ग्रहणहै और न त्यागहै तथापि यह कर्म साधुओं से निन्दितहै, इससे मैंने अब त्याग कियाहै सुखसे बिचरूंगा। हमारा गुरु जो कुम्भजहै वह हमारे पास ही है; वह और हम सदा निरागरूप हैं और तू तो दुर्वासाके शापसे उपजी है तुझसे हमारा क्या प्रयोजनहै तू अब उसीके पास जा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मायापिञ्जरवर्णनन्नाम पञ्चाशीतितमस्सर्गः॥ ८५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब मदनिका नाम चुड़ाला ने विचार किया कि, बड़ा कार्य हुआ जो राजा आत्मपद को प्राप्त हुआ। ऐसे सिद्ध और ऐश्वर्य देखे और क्रूर स्थान भी दिखाये तौ भी राजा शुभ अशुभ में ज्यों का त्यों रहा। इससे बड़ा कल्याण हुआ कि, राजा को शान्ति प्राप्त हुई और रागद्वेष से रहित हुआ। अब मैं इसे अपना पूर्वरूप चुड़ाला का दिखाऊं और सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा को जताऊं। ऐसे विचारकर जब मदनिका शरीर से चुड़ालारूप भूषण और वस्त्रसहित प्रकट हुई तब राजा उसे देखकर महाआश्चर्य को प्राप्त हुआ और ध्यान में स्थित होकर देखा कि, यह चुड़ाला कहां से आई है। फिर पूछा, हे देवि! तू कहां से आई

है ? तुझे देखकर तो मैं आश्चर्य को प्राप्त हुआ हूं क्योंकि; ऐसी मेरी स्त्री चुड़ाला थी। तू यहां किस निमित्त आई है और कबकी आई है ? चुड़ाला बोली, हे भगवन्! मैं तेरी स्त्री चुड़ाला हूं और तू मेरा स्वामी है। हे राजन्! कुम्भज से आदि इस चुड़ाला शरीरपर्यन्त सर्वचरित्र मैंने तेरे जगाने के निमित्त किये हैं। तू ध्यान में स्थित होकर देख कि, ये चरित्र किसने किये हैं ? मैंने अब पूर्व का चुड़ाला का शरीर धारा है। हे रामजी! जब ऐसे चुड़ाला ने कहा तब राजा ध्यान में स्थित होकर देखने लगा और एक मुहूर्तपर्यन्त स्थित रहकर सब वृत्तान्त देख लिया। उसके उपरान्त राजा ने आश्चर्य को प्राप्त होकर नेत्र खोले और रानी को कण्ठ से लगाकर मिला। निदान दोनों ऐसे हर्ष को प्राप्त हुये जो सहस्र वर्ष पर्यन्त शेषनाग उस सुख को वर्णन करें तौ भी न कहसकेंगे। वे ऐसे सत्ता समान में स्थित होकर शान्ति को प्राप्तहुये जिसमें क्षोभ कदाचित् नहीं। राजा और रानी दोनों कण्ठ लगके मिले थे इससे अङ्गों में उष्णता उपजी थी इस कारण शनैः २ करके उन्होंने अंग खोले और हर्षवान् होकर राजा की रोमावलि खड़ी हो आई और नेत्रों से जल चलने लगा। ऐसी अवस्था से राजा बोला, हे देवि! मुझपर तूने बड़ा अनुग्रह किया है। तेरी स्तुति मैं नहीं कर सक्ता। जो कुछ संसार के पदार्थ हैं वे सब मायामय और मिथ्या हैं। तूने मुझे सत्पद को प्राप्त किया है इससे मैं तेरी क्या उपमा दूं। हे देवि ? मैंने अब जाना है कि, मैंने राज्य का त्याग किया है और इस चुड़ाला के शरीरपर्यन्त सब तेरे चरित्र हैं। तूने मेरे वास्ते बड़े कष्ट सहे और बड़े यत्न किये। आना और जाना, शरीर का स्वांग धारना और उड़ना इत्यादिक तूने बड़ा कष्ट पाया है और बड़े यत्न से मुझे संसारसमुद्र से पारकरके बड़ा उपकार किया। तू धन्य है और जितनी देवियां अरुन्धती, ब्रह्माणी, इन्द्राणी, पार्वती, सरस्वती और श्रेष्ठकुल की कन्या और पतिव्रता हैं उन सबसे तू श्रेष्ठ है। जिस पुरुष को पतिव्रता प्राप्त होती है उसके सब कार्य सिद्ध होकर बुद्धि, शान्ति, दया, शक्ति, कोमलता और मैत्री प्राप्त होती है। हे देवि! मैं तेरे प्रसाद से शान्तपद

को प्राप्त भया हूं। अब मुझे कोई क्षोभ नहीं और ऐसा पद शास्त्रों और तप से भी नहीं मिलता। चुड़ाला बोली, हे राजन्! तू काहे को मेरी स्तुति करता है मैंने तो अपना कार्य किया है। हे राजन्! तू राज्य का त्यागकर वन में मोह अर्थात् अज्ञान को साथही लिये आया था इससे नीच स्थान में पड़ा। जैसे कोई गङ्गाजल त्यागकर कीचड़ के जल का अङ्गीकार करे तैसे ही तूने आत्मज्ञान और अक्रियपद का त्यागकर तप का अङ्गीकार किया था। जब मैंने देखा कि, तू कीचड़ में गिरा है तो मैंने तेरे निकालने के लिये इतने यत्न किये हैं। हे राजन्! मैंने अपना कार्य किया है। राजा बोले हे देवि! मेरा यही आशीर्वाद है कि, जो कोई पतिव्रता स्त्री हों वे सब ऐसे कार्य करें जैसे तूने किये हैं। जो पतिव्रता स्त्री से कार्य होता है वह और से नहीं होता। हे देवि! अरुन्धती आदि जितनी पतिव्रता स्त्रियां हैं उनमें तू प्रथम गिनी जायगी। मैं जानता हूं कि; ब्रह्माजी ने क्रोधकर तुझे इस निमित्त उपजाया है कि; अरुन्धती आदि देवियों ने जो गर्व किया होगा उस गर्व को मिटावें। इससे, हे देवि! तू धन्य है। तूने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया है। हे देवि! तू फिर मेरे अङ्गसे लग। तूने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है। हे रामजी! ऐसे कहकर राजा ने रानी को फिर कण्ठ लगाया। जैसे नेवला और नवली मिलें और मूर्ति की नाईं लिखे हों। चुड़ाला बोली, हे भगवन्! एक तो मुझसे यह कह कि, ज्ञानरूप आत्मा के एक अंश में जगत् लीन हो जाते हैं; ऐसा तू है सो आपको अब क्या जानता है? अब तू कहां स्थित है? राज्य तुझे कुछ दिखाई देता है वा नहीं और अब तुझे क्या इच्छा है? शिखरध्वज बोले, हे देवि! जो स्वरूप तूने ज्ञान से निश्चय किया है वही मैं आपको जानता हूं और शान्तरूप हूं। इच्छा अनिच्छा मुझको कोई नहीं रही—केवल शान्तरूप हूं। हे देवि! जिस पद की अपेक्षा करके ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की मूर्त्तियाँ भी शोकसंयुक्त भासती हैं तिस पद को मैं प्राप्त भया हूं; जहां कोई उत्थान नहीं; जो निष्किंचित् है और जिसमें किंचिन्मात्र भी जगत् नहीं। मैं जो था वही हुआ हूं, इससे और क्या कहूं। हे देवि! तूने संसार

समुद्रसे मुझे पार किया है इससे तू मेरी गुरु है। ऐसे कहकर राजा चुड़ाला के चरणों पर गिर पड़ा और बोला मुझे अज्ञान कदाचित् स्पर्श न करेगा। जैसे तांबा पारसके संगसे सुवर्ण होकर फिर तांबा नहीं होता, तैसेही मैं तेरे प्रसाद से मोहरूपी कीचड़ से निकला हूं और फिर कदाचित् न गिरूंगा। अब मैं इस जगत् के सुख दुःख से तुष्ट हुआ ज्योंका त्यों स्थितहूं और राग द्वेष के उठानेवाला चित्त मेरा नष्ट होगयाहै। अब मैं प्रकाशरूपअपनेआप में स्थित हूं। जैसे जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ताहै और जलके नष्ट हुये प्रतिबिम्ब भी सूर्यरूप होताहै, तैसेही मेरा चित्त भी आत्मरूप हुआ है। अब मैं निर्वाणपद को प्राप्तहो सबसे अतीत हुआहूं और सर्व में स्थित हूं। जैसे आकाश सर्वपदार्थों में स्थितहै और सर्वपदार्थों से अतीत है, तैसेही मैं भी हूं। 'अहं' 'त्वं' आदिक शब्द मेरे नष्ट हुये हैं और मैं शान्तिको प्राप्त हुआ हूं। अब मुझमें ऐसा तैसा शब्द कोई नहीं। मैं अद्वैत और चिन्मात्रहूँ और न सूक्ष्म हूँ; न स्थूल हूँ। चुड़ाला बोली, हे राजन्! जो तू ऐसे स्थितहुआ है तो तू अब क्या करेगा और अब तुझे क्या इच्छाहै? राजा बोले, हे देवि! न मुझे कुछ अङ्गीकार करने की इच्छाहै और न त्याग करने की इच्छाहै, जो कुछ तू कहेगी सो करूँगा। तेरे कहने को अङ्गीकार करूंगा और जैसे मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है तैसे ही मैं तेरे वचनोंको ग्रहण करूंगा। चुड़ाला बोली हे प्राणपति हृदय के प्रियतम राजा! अब तू विष्णु हुआ है। यह बड़ा उत्तम कार्य हुआ है कि, तेरी इच्छा नष्ट हुई है। हे राजन्! अब उचित है कि, तू और हम मोह से रहित होकर अपने प्राकृत आचार में बिचरें। अखेद जीवन्मुक्त होकर अपने प्राकृत आचार को क्यों त्यागें। हे राजन्! जो अपने आचार को त्यागेंगे तो और किसी को ग्रहण करेंगे। इससे हम अपने ही आचार में बिचरते हैं और भोग मोक्ष दोनों को भोगते हैं। हे रामजी! ऐसे परस्पर विचारकरते दिन व्यतीतहुआ और सायंकाल की सन्ध्या राजा ने की फिर शय्या का आरम्भ किया उसपर दोनों सोये और रात्रिभर परस्पर चर्चा ही करते एकक्षण की नाईं रात्रि बिताई।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे षडशीतितमस्सर्गः ॥ ८६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब ऐसे रात्रि व्यतीत होकर सूर्य की किरणें फैलीं और सूर्यमुखी कमल खिल आये तब राजा ने स्नान का आरम्भ किया और चुड़ाला ने मन के संकल्प से रत्नों की मटकी रच हाथ में ली और उसमें गङ्गादिक सम्पूर्ण तीर्थों का जल डाला और राजा को स्नान कराके शुद्ध किया तब राजा ने संध्यादिक सर्वकर्म किये। तब चुड़ाला ने कहा, हे राजन्! मोह को नाश करके सुखसे ही अपने राज्य कार्य करने चाहिये कि, जिससे आनन्द और सुख भोगें। राजा बोले, हे देवि! जो तुझे सुख भोगने की इच्छा हो तो स्वर्ग में भी हमारा राज्य-है और सिद्धलोक में भी हमारा राज्य है इससे स्वर्ग में बिचरें? चुड़ाला बोली, हे राजन्! हमको न सुख भोगने की इच्छा है, न त्यागने की इच्छा है; हम तो ज्यों के त्यों हैं। इच्छा और अनिच्छा तब होती है जब आगे कुछ पदार्थ भासता है पर हमको तो केवल आकाश आत्मा दृष्टि आता है; स्वर्ग कहाँ और नरक कहां—हम सर्वदा एकरस स्थित हैं। हे राजन्! यद्यपि हमको कुछ नहीं तौभी जबतक शरीर का प्रारब्ध है तब तक शरीर रहता है इससे चेष्टा भी होनी चाहिये और चेष्टा करने से अपने प्राकृत आचार को क्यों न कीजिये कि; रागद्वेष से रहित होकर अपने राज्य को भोगें? इससे अब उठो और अष्टवसु के तेज को धारकर राज्य करने को सावधान हो। राजा ने कहा बहुत अच्छा और अष्टवसु के तेजसंयुक्त हो बोला, हे देवि! तू मेरी पटरानी है और मैं तेरा भर्ता हूँ तौ भी तू और मैं एकही हूं। राज्य तब होता है जब सेना भी हो इससे सेना भी रच। इतना सुन चुड़ाला ने सम्पूर्ण सेना और हाथी, घोड़े, रथ, नौबत, नगारे, निशान इत्यादिक राज्य की सामग्री रची और सब प्रत्यक्ष आगे आन स्थित हुईं। नौबत, नगारे, तुरियां और सहनाई बजने लगीं और जो कुछ राज्य की सामग्री हैं वे अपने २ स्थान में स्थित हुईं। राजा के शिर पर छत्र फिरने लगा और राजा और रानी हाथी पर आरूढ़ होकर मन्दराचल पर्वत के ऊपर चले और आगे पीछे सब सेना हुई। राजा ने जिस जिस ठौर पर तप किया था सो रानी को दिखाता गया कि, इस

स्थानमें मैं इतने काल रहाहूं; इसमें इतनारहा हूं। ऐसेदिखाते दिखाते तीक्ष्ण वेग से चले। मन्त्री, पुरवासी और नगरवासी राजा को लेने आये और बड़े आदर संयुक्त पूजन किया। इसप्रकार दोनों अपने मन्दिर पहुँचे और आठदिनतक राजा से लोकपाल और मण्डलेश्वर मिलने को आते रहे। इसके उपरान्त राजसिंहासनपर बैठकर दोनों राज्य करनेलगे और समदृष्टि को लिये दशसहस्र वर्षतक राज्यकिया। फिर चुड़ालासंयुक्त जीवन्मुक्त होकर बिचरे और दोनों विदेहमुक्त हुये। हे रामजी ! दशसहस्र वर्ष पर्यन्त राजा और चुड़ाला ने राज्य किया और दोनों सत्तासमान में स्थित रहे। किसी पदार्थ में वे रागवान् न हुये और किसीसे द्वेष भी न किया ज्योंके त्यों शान्तपद में स्थित रहे। जितनी राज्य की चेष्टा हैं सो करते रहे परन्तु अन्तःकरण से किसी में बन्धवान् न हुये—केवल आत्मपद में अचल रहे। फिर राजा और चुड़ाला विदेहमुक्त को प्राप्त हुये—जैसे आपको जानते थे उसीके बल परमाकाश अक्षोभपद में जाय स्थित हुये और जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होताहै तैसेही प्रारब्धवेग के क्षय हुये निर्वाणपद में प्राप्त हुये। हे रामजी ! जैसे शिखरध्वज और चुड़ाला जीवन्मुक्त होकर भोगों को भोगते बिचरे हैं तैसेही तुम भी रागद्वेष से रहित होकर बिचरो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजचुड़ालाख्यान समाप्तिर्नाम सप्ताशीतितमस्सर्गः ॥ ८७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! शिखरध्वजका सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा; ऐसी दृष्टि का आश्रय करो जो पाप को नाशकरती है और उस दृष्टि के आश्रय से जिस मार्ग के द्वारा शिखरध्वज तत्पद को प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होकर राज्य व्यवहार करता रहा तैसेही तुमभी तत्पद का आश्रयकरो और उसीके परायण हो आत्मपद को पाकर भोग और मोक्ष दोनों भोगो। इसी प्रकार बृहस्पति का पुत्र कच भी बोधवान् हुआ है। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! जिस प्रकार बृहस्पति का पुत्र कच बोधवान् हुआ है सो भी संक्षेप से कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! कच बालक जब अज्ञात अवस्थाको त्यागकर पद पदार्थ को जानने लगा तब उसने

अपने पिता बृहस्पति से प्रश्न किया कि, हे पितः! इस संसारपिंजरे से मैं कैसे निकलूं? जितना संसार है वह जीवित से बांधा हुआ है-जीवित अनात्मदेहादिकों में मिथ्या अभिमान करने को कहते हैं जो 'अहं' 'त्वं' मानता है उस संसार से कैसे मुक्त होऊं? बृहस्पति बोले, हे तात! इस अनर्थरूप संसार से जीव तब मुक्त होताहै जब सर्वका त्याग करता है। सर्वत्याग किये विना मुक्ति नहीं होती; इससे तू सर्वत्याग कर कि, मुक्त हो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पति ने कहा तब कच ऐसे पावन वचनों को सुन ऐश्वर्य का त्यागकर वन को गया और एक कन्दरा में स्थित होकर तप करने लगा। हे रामजी! बृहस्पति को कच के जाने से कुछ खेद न हुआ क्योंकि; ज्ञानवान् पुरुष संयोग वियोग में समभाव रहते हैं और हर्ष शोक को कदाचित् प्राप्त नहीं होते। जब आठवर्ष पर्यन्त उसने तप किया तब बृहस्पति ने जाकर देखा कि, कच एक कन्दरा में बैठाहै तब वह कचके पास आन स्थित हुआ और कचने पिता का पूजन गुरुकी नाईं किया। बृहस्पतिने कचको कण्ठलगाया और कचने गद्गदवाणी सहित प्रश्न किया; हे पितः! आठ वर्ष बीते हैं कि, मैंने सर्वत्याग किया है तौ भी शान्ति को नहीं प्राप्त हुआ? जिससे मुझे शान्तिहो सो कहो। बृहस्पति ने कहा, हे तात! सर्वत्यागकर कि, तुझे शान्तिहो। ऐसे कहकर बृहस्पति उठ खड़ा हुआ और आकाश को चलागया। हे रामजी! जब ऐसे बृहस्पति कहकर चलागया तब कच आसन और मृगछाला को त्यागकर और वन को चला और एक कन्दरा में जाकर स्थित हुआ। तीन वर्ष वहां व्यतीतहुये तो फिर बृहस्पति आये और देखा कि, कच स्थित है। तब कचने भलीप्रकार गुरु की नाईं उनका पूजन किया और बृहस्पति ने कचको कण्ठ लगाया तब कच ने कहा, हे पितः! अबतक मुझे शान्ति नहीं हुई और मैंने सर्वत्याग भी किया क्योंकि; अपने पास कुछ नहीं रक्खा। इससे जिस करके मेरा कल्याण हो वही कहो। बृहस्पतिने कहा, हे तात! अबभी सर्वत्याग नहीं हुआ; सर्व-पद चित्तका जब त्याग करेगा तब सर्वत्याग होगा; इससे चित्त का त्याग-

कर। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ऐसे कहकर जब बृहस्पति आकाश को चलेगये तब कच विचारने लगा कि, पिता ने सर्वपद चित्त को कहा है सो चित्त क्या है। प्रथम वन के पदार्थों को देखकर विचारने लगा कि, यह चित्त है; फिर देखा कि, यह भिन्न २ है इससे यह चित्त नहीं और नेत्र भी चित्त नहीं क्योंकि; नेत्र श्रवण नहीं और श्रवण नेत्रों से भिन्न हैं और श्रवण भी चित्त नहीं। इसी प्रकार सर्व इन्द्रियां चित्त नहीं क्योंकि; एक में दूसरे का अभाव है इससे चित्त क्या है।जिसको जानकर त्याग करूं। फिर विचार किया कि, पिता के पास स्वर्ग में जाऊं। हे रामजी ! ऐसे विचारकर उठ खड़ाहुआ और दिगम्बर आकार से आकाश को चला। जब पिता के पास पहुंचा तब पिता का पूजन करके बोला, हे तेंतीस-कोटि देवताओं के गुरु ! चित्त का रूप क्या है? उसका रूप कहिये कि, मैं उसका त्याग करूं। बृहस्पति बोले, हे पुत्र ! चित्त अहंकार का नाम है। वह अज्ञान से उपजा है और आत्मज्ञान से इसका नाश होता है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्पभासता है और रस्सी के जानने से सर्प-भ्रम नष्ट होजाता है। इससे अहंभाव का त्यागकर और स्वरूप में स्थित हो। कच बोले, हे पितः ! अहंभाव का त्याग कैसे करूं? 'अहं' तौ मैंही हूं फिर अपना त्याग करके स्थित कैसे होऊं। इसका त्याग करना तो महाकठिन है। बृहस्पति बोले, हे तात ! अहंकार का त्याग करना तो महासुगम है। फूल के मिलने में और नेत्रों के खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्न है परन्तु अहंकार के त्यागने में कुछ यत्न नहीं। हे पुत्र ! अहंकार कुछ वस्तु नहीं; भ्रमसे उठा है। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में बैताल कल्पता है; रस्सी में सर्प भासता है; मरुस्थल में जल की कल्पना होती है और आकाश में भ्रम से दो चन्द्रमा भासते हैं; तैसेही परिच्छिन्न अहंकार अपने प्रमाद से उपजा है। आत्मा शुद्ध आकाश से भी निर्मल है और देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित सत्ता सामान्य चिन्मात्र है उसमें स्थित हो जो तेरा स्वरूप है; तू आत्मा है, तुझमें अहंकार कदाचित् नहीं है। हे साधो ! आत्मा सर्वदा, सर्वप्रकार, सर्वमें स्थित है उसमें अहंभाव

किंचित् नहीं। जैसे समुद्र में धूलि कदाचित् नहीं तैसेही उसमें अहंकार कदाचित् नहीं। आत्मा में न एक ग्रहण है और न दो ग्रहण केवल अपने आपमें स्थित है और जो आकार दृष्ट आते हैं वे चित्तके फुरने से हैं। चित्तके नष्ट हुये आत्मा ही शेष रहताहै; इससे अपने स्वरूपमें स्थित हो जिसमें तेरा दुःख नष्ट होजावे। जो कुछ यह दृष्टि आता है उसमें भी आत्माहै। जैसे पत्र, फूल, फल सब बीज से उत्पन्न होते हैं तैसेही सब आत्मा का चमत्कार है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबोधन-
न्नामाष्टाशीतितमस्सर्गः॥ ८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पति ने उत्तम उपदेश किया तब कच उसे सुनके स्वरूप में स्थित हुआ और आत्मा और परिच्छिन्न अहंकार की एकता को प्राप्त होकर आत्मस्वरूप हुआ और जीवन्मुक्त होकर बिचरा। हे रामजी! जैसे कच जीवन्मुक्त होकर बिचरा और निरहंकार हुआ है तैसेही तुम भी निराश होकर बिचरो और केवल अद्वैतपद को प्राप्त हो जो निर्मल और शुद्ध है और जिसमें एक और दो कहना नहीं बनता। तुम उसी पद में स्थित हो। तुम में दुःख कोई नहीं तुम आत्मा हो और तुम में अहंकार नहीं; तुम ग्रहण त्याग किसका करो। जो पदार्थ हो ही नहीं तो ग्रहण त्याग क्या कहिये? हे रामजी! जैसे आकाश के वन में फूल नहीं है तो उसका ग्रहण क्या और त्याग क्या; तैसेही आत्मा में अहंकार नहीं। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे अहंकार का ग्रहण और त्याग नहीं करते। मूर्ख को एक आत्मा में नाना आकार भासते हैं इससे किसी का शोक करता है और कहीं हर्ष करता है। तुम कैसे दुःख का नाश चाहते हो? दुःख तो तुममें है ही नहीं तो तुम कैसे नाश करने को समर्थ हुये हो? जो कुछ आकार भासते हैं वे मिथ्या हैं पर उनमें जो अधिष्ठान है वह सत् है, मूर्ख मिथ्या करके सत् की रक्षा करते हैं कि, मेरे दुःख नाश हों। रामजी बोले, हे भगवन्! तुम्हारे प्रसाद से मैं तृप्त हुआ हूं और तुम्हारे वचनरूपी अमृत से अघाया हूं। जैसे पपीहा एक बूंद को चाहता है और मेघ कृपा करके उस पर वर्षा करके

उसको तृप्त करता है तैसेही मैं तुम्हारी शरण को प्राप्त हुआ था और तुम्हारे दर्शन की इच्छा बूंद की नाईं करता था पर तुमने कृपा करके ज्ञानरूपी अमृत की वर्षा की; उस वर्षा से मैं अघाया हूं। अब मैं शान्तपद को प्राप्त हुआ हूं; मेरे तीनों ताप मिट गये हैं और कोई फुरना मुझ में नहीं रहा। तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को सुनता मैं तृप्त नहीं होता। जैसे चकोर चन्द्रमा को देखकर किरणों से तृप्त नहीं होता; तैसेही तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से मैं तृप्त नहीं होता; इससे एक प्रश्न करता हूं उसका उत्तर कृपा करके दीजिये? हे भगवन्! मिथ्या क्या है और सत् क्या है जिसकी रक्षा करते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस पर एक आख्यान है सो कहता हूं जिसके सुनने से हँसी आवेगी। आकाश में एक शून्य वन है और उसमें एक मूर्ख बालक है जो आप मिथ्या है और सत्य के रखने की इच्छा करता है कि, मैं इसकी रक्षा करूंगा। अधिष्ठान जो सत्य है उसको वह नहीं जानता। मूर्खता करके दुःख पाता है और जानता है कि, यह आकाश है; मैं भी आकाश हूं; मेरा आकाश है; और मैं आकाश की रक्षा करूंगा। ऐसे विचार कर उसने एक दृढ़ गृह इस अभिप्राय से बनाया कि, इसके द्वारा आकाश की रक्षा करूंगा। हे रामजी! ऐसे विचार करके उसने गृह की बहुत बनावट की और वह जो किसी ठौर से टूटे तो फिर बना ले। जब कुछ काल इस प्रकार बीता तो वह गृह गिरपड़ा तब वह रुदन करने लगा कि, हाय मेरा आकाश नष्ट होगया! जैसे एक ऋतु व्यतीत हो और दूसरी आवे तैसेही काल पाकर जब वह गृह गिर गया तो उसके उपरान्त उसने एक कुआं बनाया और कहने लगा कि, यह न गिरेगा क्योंकि; इसकी भलीप्रकार रक्षा करूंगा। हे रामजी! इस प्रकार कुयें को बनाकर उसने सुख माना। जब कुछ काल बीता तो जैसे सूखा पात वृक्ष से गिरता है तैसेही वह कुआं भी गिर पड़ा और वह बड़े शोक को प्राप्त हुआ कि; मेरा आकाश गिरपड़ा और नष्ट होगया अब मैं क्या करूंगा ऐसे शोकसंयुक्त जब कुछ काल बीता तब उसने एक खांहीं बनाई-जैसे अनाज रखने के निमित्त बनाते हैं-और कहने लगा कि, अब मेरा

आकाश कहां जावेगा ? मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करूंगा । ऐसी खाहीं बनाकर उसने बहुत सुख माना और अतिप्रसन्न हुआ पर जब कुछ काल पाकर वह खांहीं भी टूट पड़ी क्योंकि; उपजी वस्तु का विनाश होना अवश्य है-तो फिर वह रुदन करनेलगा कि, मेरा आकाश नष्ट होगया । जब कुछ काल शोक संयुक्त बीता तो उसने एक घट बनाया और घटाकाश की रक्षा करने लगा । कुछ काल में वह घट भी जब नष्ट होगया तब उसने एक कुण्ड बनाया और कुण्डाकाश को रक्षा करने लगा । कुछ काल के उपरान्त कुण्ड भी नष्ट होगया तब शोकवान् हो उसने एक हवेली बनाई और कहने लगा कि अब मेरा आकाश कहां जावेगा । मैं अब इसकी भलीप्रकार रक्षा करूंगा । ऐसा विचारकर, वह बड़े हर्षको प्राप्तहुआ पर जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब वह हवेली भी गिर पड़ी तो वह दुःख को प्राप्त हो कहने लगा कि, हाय ! हाय !! मेरा आकाश नष्ट होगया और मुझे बड़ा कष्ट हुआ है । हे रामजी ! आत्मज्ञान और आकाशके जाने विना वह मूर्ख बालक इसीप्रकार दुःख पातारहा । जो आपको भी यथार्थ जानता और आकाश को भी ज्यों का त्यों जानता तो यह कष्ट काहे को पाता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणं नामैकोननवतितमस्सर्गः ॥ ८९ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! वह मिथ्यापुरुष कौन था; जिसकी रक्षा करता था वह आकाश क्या था और जो गृह, कूप आदिक बनाता था सो क्या था यह प्रकट करके कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मिथ्या पुरुष तो अहंकार है जो संवेदन फुरने से उपजा है; आकाश चिदाकाश है उसे वह उपजा जानता है कि, मैं आकाश की रक्षा करूं और आकाश, गृह, घटादिक जो कहा सो देह है । उसमें आत्मा अधिष्ठान है उस आत्मा की रक्षा करने की इच्छा वह मूर्खता से करता है और आपको नहीं जानता कि, मेरा स्वरूप क्या है । उस अपने स्वरूप को न जानने से वह दुःखपाता है । आप मिथ्याहै और मिथ्याहोकर आकाश को कल्पकर रखनेकी इच्छा करताहै अर्थात् देहसे देही के रखनेकी इच्छा करताहै कि, मैं जीतारहूं पर

देह तो कालसे उपजाहै—फिर देहके नष्ट होनेसे शोकवान् होताहै और अपने वास्तव स्वरूप को नहीं जानता जिसका नाश कदाचित् नहीं होता ऐसे विचारसे रहित क्लेश पाता है हे रामजी ! जिसमें भ्रम उपजता है उसकी अधिष्ठान सत्ता नहीं होती। सर्वका अपनाआप आत्माहै सो कदाचित् नाश नहीं होता उसमें मूर्खता से अहंरूप संसार को जीव कल्पता है। अहंकार, मन, जीव, बुद्धि, चित्त, माया, प्रकृति और दृश्य ये सब इसके नाम हैं पर मिथ्या हैं और इसका अत्यन्त अभाव है; अनहोता ही उदय हुआ है और क्षत्रिय, ब्राह्मण इत्यादि वर्ण और गृहस्थादि आश्रम, मनुष्य, देवता, दैत्य इत्यादि की कल्पना करता है। हे रामजी ! यह कदाचित् हुआ नहीं, न होगा और न किसीकाल किसीको है केवल अविचार सिद्धहै और विचार किये से कुछ नहीं रहता। जैसे रस्सी के अज्ञान से जीव सर्प कल्पता है और जाननेसे नष्ट होजाताहै; तैसेही स्वरूप के प्रमादसे अहंकार उदयहुआहै। तुम्हारा स्वरूप आत्मा है जो प्रकाशरूप, निर्मल, विद्या अविद्याके कार्य से रहित; चेतनमात्र और निर्विकल्पहै। वह ज्यों का त्यों स्थित है; अद्वैतहै और प्रमाण को कदाचित् नहीं प्राप्त होता आत्मतत्त्वमात्र है उसमें संसार और अहंकार कैसे हो ? सम्यक्दर्शीको आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता और असम्यक्दर्शी को संसार भासता है, वह पदार्थों को सत् जानता है; संसार को वास्तव जानता है और अपने वास्तव स्वरूप को नहीं जानताहै कि, मैं कौन हूं। इसके जाने से अहंकार नष्ट होजाता है। जितनी कुछ आपदाहै उसकी खानि अहंकार है और सर्वताप अहंकारसे ही उत्पन्न होते हैं इसके नष्ट हुये अपने स्वरूप में स्थित होता है। और विश्व भी आत्मा का चमत्कार है—भिन्न नहीं, जैसे समुद्रमें पवन से नानाप्रकारके तरङ्ग और सुवर्णमें नानाप्रकारके भूषण भासते हैं सो वहीरूपहै—भिन्न कुछ नहीं तैसेही आत्मा से विश्व भिन्न नहीं। सुवर्ण परिणामसे भूषण और समुद्र परिणाम से तरङ्ग होताहै पर आत्मा अच्युतहै और परिणामको नहीं प्राप्त होता; इससे समुद्र और सुवर्ण से भी विलक्षण है। आत्मा में संवेदन से चमत्कारमात्र विश्वहै सो आत्मस्वरूप है, न कदाचित् जन्मताहै, न मृत्यु को प्राप्त होता

है; न किसी काल में और न किसी से मृत होता है ज्यों का त्यों स्थित है। जन्म मृत्यु तो तब हो जब दूसरा हो पर आत्मा तो अद्वैत है। जिसको एक नहीं कहसक्के तो दूसरा कहां हो इससे प्रत्येक आत्मा अपना अनुभवरूप है उसमें स्थित हो कि, दुःख और ताप सब नष्ट होजावें। वह आत्मा शुद्ध और निराकारहै। हे रामजी! जो निराकार और शुद्धहै उसे किससे ग्रहण कीजिये, कैसे रक्षा करिये और किसकी सामर्थ्य है कि, उसकी रक्षा करे। जैसे घट के नष्ट हुये घटाकाश नष्ट नहीं होता तैसे ही देह के नष्टहुये देही आत्मा का नाश नहीं होता। आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है और जन्म मरण पुर्यष्टका से भासते हैं। जब पुर्यष्टका देह से निकल जाती है तब मृतक भासताहै और जब पुर्यष्टका संयुक्तहै तब जीवत् भासताहै। आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म है और स्थूल से स्थूलहै उसका ग्रहण कैसे हो और रक्षा कैसे करिये। स्थूलभी उपदेश के जताने के निमित्त कहते हैं आत्मा तो निर्वाच्य और भाव अभावरूप संसार से रहित है। वह सबका अनुभवरूप है उसमें स्थित होकर अहंकार का त्यागकरो और अपने स्वरूप प्रत्येकआत्मामें स्थितहो।
इति श्रीयो॰निर्वा॰मिथ्यापुरुषोपाख्यानसमाप्तिर्नामनवतितमस्सर्गः ९०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार आत्मरूप है और जैसे इसकी उत्पत्तिहुईहै सो सुनो। निर्विकल्प शुद्ध आत्मा में चेतन लक्षण मनसे विवर्त स्थितहुआहै और आगे उसने जगत् कल्पना की है। जैसे समुद्र में तरङ्ग; सुवर्ण में भूषण; रस्सी में सर्प और सूर्य की किरणों में जलाभास है तैसेही आत्मामें विवर्त मन है पर आत्मा से भिन्न नहीं। जिसको तरङ्ग का ज्ञान है उसको समुद्रबुद्धि नहीं होती, वह तरङ्ग को और जानता है; जिसको भूषण का ज्ञान है वह सुवर्ण नहीं जानता; सर्प के ज्ञान से रस्सी को नहीं जानता और जल के ज्ञान से किरणों को नहीं जानता; तैसेही नाना प्रकार के विश्व के ज्ञान से जीव परमात्मा को नहीं जानता। जैसे जिस पुरुष ने समुद्र को जाना है कि, जल है उसको तरङ्ग और बुद्बुदे भी जलही भासते हैं जल से भिन्न कुछ नहीं भासता और जिसको रस्सी का ज्ञान हुआहै उसको सर्पबुद्धि नहीं होती; जिसको सुवर्णका ज्ञानहुआ है

उसको भूषणबुद्धि नहीं होती और जिसको किरणोंका ज्ञानहुआहै उसको जलबुद्धि नहीं होती ऐसा पुरुष निर्विकल्प है तैसेही जिस पुरुष को निर्विकल्प आत्मा का ज्ञान हुआ है उसको संसारभावना नहीं होती—उसको ब्रह्मही भासताहै। ऐसा जो मुनीश्वर है वह ज्ञानवान्है। हेरामजी! मन भी आत्मा से भिन्न नहीं। आदि परमात्मा से 'अहं' 'त्वं' आदिक में मन फुरकर मात्रपद में जो अहंभाव हुआ सो उत्थान है। उससे बहिर्मुख होने से अपने निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मस्वरूपका प्रमाद हुआहै और उस प्रमाद होनेसे आगे विश्व हुई है। मन भी कदाचित् उदय नहीं हुआ; आत्मास्वरूपहै इससे उदयहुये की नाईं भासता है। मन और संसार सत् भी नहीं और असत् भी नहीं; जो दूसरी वस्तु हो तो सत् अथवा असत् कहिये पर आत्मा तो अद्वैत ज्यों का त्यों स्थितहै और उसका विवर्त मन होकर फुरा है। वही मन कीटहै, और वही ब्रह्माहै। फिर ब्रह्माने मनोराज करके स्थावर जङ्गम सृष्टि कल्पी है सो न सत्यहै और न असत्य है। हे रामजी! सर्वप्रपञ्च मन ने कल्पाहै और उसी ने नानाप्रकारके विकार रचे हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीव सब मन के नाम हैं। जब मन नष्ट होजावे तब न संसारहै और न कोई विकार है। यदि मन दृश्य से मिलकर कहे कि, मैं संसारका अन्त लूं तो कदाचित् अन्त न पावेगा क्योंकि संसरना ही संसार है तो फिर संसरने संयुक्त संसारका अन्त कहां? अन्त लेनेवाला वाणीसे आगे फुरकर देखता है—जैसे कोई पुरुष दौड़ता जावे और कहे कि, मैं अपनी परछाहीं का अन्त लूं कि, कहांतक जाती है तो, हे रामजी! जबतक वह पुरुष चला जावेगा तबतक परछाहीं का अन्त नहीं होता और जब ठहर जाता है तब परछाहीं का अन्त होजाताहै; तैसेही जबतक फुरनाहै तबतक संसारका अन्त नहीं होता और जब फुरना नष्ट होजाताहै तब संसारका भी अन्त होताहै और आत्माही दृष्टि आताहै और संसार का अत्यन्त अभाव होजाताहै पर जो स्फूर्त्ति संयुक्त देखेगा तो संसार ही भासेगा। हे रामजी! जिसपदार्थको मन देखताहै वह पदार्थ पूर्व कोई नहीं चित्तके फुरनेसे उदय होता है। जब चित्त फुरा कि यह पदार्थ है तब आगे पदार्थ हुआ और

फुरनेसे रहित होकर देखे तो पदार्थ कोई नहीं भासता केवल शान्तपद है। हेरामजी! अहंकार का त्याग करके यह जो नाना प्रकार की कल्पना है उससे रहित निर्विकल्प ब्रह्मपद में स्थित हो। अहंकार नामरूपहै और देह और वर्णाश्रम में माया से कल्पित है। जब उससे रहित होकर देखोगे तब केवल सत्‌चिदानन्द आत्मपद शेष रहेगा और जब उसपद को अपना आप जानोगे तब तुमहीं सर्वात्मा होकर बिचरोगे और तुमको कोई दुःख न रहेगा। हे रामजी! मनही संसार है और मनही ब्रह्मासे कीट पर्यन्तहै; मनही सुमेरु है और मनही तृण है और विश्वरूप होकर स्थित हुआ है और वह भी आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे फलही में सम्पूर्ण वृक्ष हैं तैसेही मन आत्मस्वरूप है; आत्मा से भिन्न मन कुछ वस्तु नहीं। ऐसे जानकर आत्मस्वरूप होगे यह जो बन्ध और मोक्ष संज्ञा है इनका त्यागकर, न बन्धकी वाञ्छा करो और न मोक्षकी इच्छा करो। इस कल्पनासे रहित हो; ऐसे न होवे कि, मुक्त हो और यह बन्धहै; केवल सत्तासमान आत्मपद में स्थित हो। यही भावना करो जिसमें तुम्हारा सर्वदुःख नष्ट होजावे। ऐसा जो पुरुष है उसका चित्तभाव नहीं रहता उसको सर्वआत्मा भासता है। जैसे जिस पुरुष ने सूर्यको जानाहै उसको किरणें भी सूर्यही दृष्टि आती हैं तैसेही जिसको आत्मा का साक्षात्कार हुआ है उसको जगत् भी आत्मस्वरूप भासता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशोनामैकनवतितमस्सर्गः ॥ ९१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी हो रहो और सब शङ्काओं को त्यागकर निरन्तर धैर्य धारकर स्थित हो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! महाकर्ता; महाभोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं सो कृपा करके कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रश्न पर एक आख्यान है सो सुनिये। एक समय सुमेरु पर्वत की उत्तरदिशा के शिखर से सदाशिवजी आये, जो चन्द्रमा को मस्तक में धारे थे और गणों संयुक्त गौरी बायें अङ्ग में जिनके साथ थीं। तब भृङ्गीगण ने जो

महातेजवान् था और जिसे आत्मजिज्ञासा उपजी थी हाथ जोड़कर प्रश्न किया कि, हे भगवन्! देवों के देव! यह संसार मिथ्या भ्रम है; इसमें मैं सत्य पदार्थ कोई नहीं देखता यह सदा चलरूप भासता है और जो सत्-पदार्थ है उसको मैं नहीं जानता; मेरे ताप नष्ट नहीं हुये और मैं शान्त नहीं हुआ इससे आपको दुःखी देखता हूं। जिससे शान्ति हो सो कृपा करके कहो जिसमें खेद से रहित होकर मैं चेष्टा में विचरूं। पर खेद से रहित तब होताहै जब कोई आसरा होताहै। संसार तो मिथ्याहै मैं किसका आसरा करूं? इससे मुझसे वह कहिये कि, किसका आश्रय किये मेरे दुःख नष्ट हों? ईश्वर बोले, हे भृङ्गिन्! तुम महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी होरहो और सर्व शङ्काओंको त्यागकर निरन्तर धैर्यका आश्रय करो; इससे तुम्हारे दुःख नष्ट होंगे। हे रामजी! ऐसे भृङ्गीगण ने जिसको शिवजी ने पुत्रकरके रक्खा है श्रवणकरके प्रश्नकिया है कि, हे परमेश्वर! महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं सो कृपाकरके ज्योंका त्यों मुझसे कहिये? ईश्वर बोले, हे पुत्र! सर्वात्मा जो अनुभवरूप है उसका आश्रय करके विचरो कि, दुःख से रहित हो। इन तीनों वृत्तियों से तुम्हारे दुःख नष्ट होजावेंगे। जो कुछ शुभक्रिया आ प्राप्त हो उसको शङ्का त्याग के करे वह पुरुष महाकर्ता है; धर्म अधर्म क्रिया जो अनिच्छित प्राप्त हो उसको राग द्वेष से रहित होकर जो करे; वह पुरुष महाकर्ता है; जो पुरुष मौनी, निरहंकार, निर्मल और मत्सर से रहितहै वह पुरुष महाकर्ता है; जो अनिच्छित प्राप्त हुये का त्याग न करे और जो नहीं प्राप्त हुआ उसकी वाञ्छा न करे वह पुरुष महाकर्ता है; जो पुण्य पाप क्रिया अनिच्छित प्राप्त हों उनको अहंकारसे रहित होकर करे, पुण्यक्रिया करनेसे आपको पुण्यवान् न माने और पाप किये से पापी न माने सदा आपको अकर्ता जाने वह पुरुष महाकर्ताहै; जो सर्वत्र में विगतस्नेहहै; सत्यवत् स्थितहै और निरिच्छित वर्तताहै वह महाकर्ता है। जो दुःख के प्राप्त हुये शोक नहीं करता और सुखके प्राप्त हुये से हर्षवान् नहीं होता स्वाभाविक चित्त समताको देखताहै वह कदाचित् विषमता को नहीं प्राप्त होता। सुख की जो भिन्न २

विषमताहैं इससे जो रहितहै वह पुरुष महाकर्ताहै और जिस पुरुष ने सुख दुःख का त्याग कियाहै वह पुरुष महाकर्ताहै। हे भृङ्गिन्! जो पुरुष प्राप्त हुई वस्तु को रागद्वेष से रहित होकर भोगताहै सो महाभोक्ताहै और जो बड़ा कष्ट प्राप्त हो उसमें भी द्वेष नहीं करता और बड़े सुख की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं होता वह पुरुष महाभोक्ताहै। जो बड़े राज्य के सुख भोगने में आपको सुखी नहीं मानता और राज्य के अभाव होने और भिक्षा मांगने में आपको दुःखी नहीं मानता सदा स्वरूप में स्थित है वह महाभोक्ताहै। जो मान, अहंकार और चिन्तना से रहित केवल समता में स्थितहै वह महाभोक्ताहै और जो कोई कुछ दे तो आपको लेनेवाला नहीं मानता और शुभक्रिया में भोक्ता हुआ आपको कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मानता वह पुरुष महाभोक्ता है। जो मीठा, खट्टा, तीक्ष्ण, सलोना, कटु छहों रसों के भोगने में समचित्त रहता है और सम जानता है वह महाभोक्ता है। जो रसवान् पदार्थ प्राप्त हुये से हर्षवान् नहीं होता और विरस के प्राप्त हुये से द्वेषवान् नहीं होता ज्योंका त्यों रहताहै और जैसा बुरा भला प्राप्त हो उसको दुःख से रहित होकर भोगताहै वह पुरुष महाभोक्ताहै। जो कुछ शुभ, अशुभ, भाव, अभाव क्रियाहै उसके सुख दुःख से चलायमान नहीं होता सो पुरुष महाभोक्ताहै और जिसको मृत्यु का भय नहीं और जीनेकी आस्था नहीं और उदय अस्त में समान है वह महाभोक्ता है। जो बड़े सुख प्राप्त में हर्षवान् नहीं होता और दुःख की प्राप्ति में शोकवान् नहीं ज्योंका त्यों रहता है वह महाभोक्ता है। जो कुछ अनिच्छित प्राप्त हो उसको कर्ताहुआ अहंकार से जो रहित है वह पुरुष महाभोक्ता है। जो पुरुष शत्रु, मित्र और सुहृद् में समबुद्धि रखताहै और विषमता को कदाचित् नहीं प्राप्त होता वह पुरुष महाभोक्ता है। जो कुछ शुभ, अशुभ, दुःख, सुख प्राप्त हो उसको जो धार लेताहै कदाचित् विषमता को नहीं प्राप्त होता-जैसे समुद्र में नदियां प्राप्त होतीहैं उनको धारकर वह सम रहता है; तैसेही ज्ञानवान् शुभ अशुभ को धारकर सम रहता है। जो संसार, देह इन्द्रियां और अहंकार की सत्ता को त्यागकर स्थित हुआ है और जानताहै कि, 'न मैं देह हूं'; 'न मेरी देह है'

में इनका साक्षी हूं ऐसी वृत्ति का धारनेवाला महात्यागी है और जो सर्व चेष्टा करताहै और राग द्वेष से रहितहै वह महात्यागी है। जो शुभ अशुभ प्राप्त हुये को अहंकार से रहित होकर करता है वह महात्यागीहै और जो मन, इन्द्रियां और देह भी इच्छा से रहित हुआहै वह सर्वचेष्टा भी करता है पर महात्यागीहै। जो पुरुष समचित्त, इन्द्रियजित और क्षमावान् है वह महात्यागीहै। हे रामजी! जिस पुरुषने धर्म अधर्म की देह और संसार के मद, मान, मनन इत्यादिक कल्पना का त्याग कियाहै वह महात्यागीहै। हे रामजी! इस प्रकार सदाशिवजी ने जो हाथ में खप्परलिये, बाघम्बर ओढ़े और चन्द्रमा मस्तकमें धारे हुये परम प्रकाशरूपहैं भृङ्गीगणको उपदेश किया और जैसे भृङ्गीगण बिचरा तैसेही तुमभी बिचरो तो तुम्हारे सब दुःख नष्ट होंगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महाकर्त्राद्युपदेशोनामद्विनवतितमस्सर्गः ॥ ९२ ॥

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जो आपने उपदेश किया वह मैं समझ गया। आपने आगे उपशम प्रकरण में उपदेश किया था कि, आत्मा अनन्त और शुद्धहै तब मैंने प्रश्न किया था कि, जो आत्मा अनन्त और शुद्धहै तो यह कलना कैसे उपजी है–जैसे समुद्र निर्मलहै उसमें धूलि कैसे हो–तो आपने प्रतिज्ञा की थी कि, इस प्रश्न का उत्तर सिद्धान्तकाल में कहेंगे सो मैं अब सिद्धान्त का पात्र हूं मुझसे कहिये। जैसे स्त्री भर्तासे प्रश्न करतीहै और भर्ता कृपा करके उपदेश करताहै तैसेही मैं आपकी शरण हूं कृपा करके मुझे उत्तर दीजिये; क्योंकि; आशा और तृष्णा के फांस मेरे टूटेहैं और आशारूपी जाल से मैं निकलाहूं। मेरे हृदय से संशयरूपी धूलि उठगईहै उसको वचनरूपी वर्षा से शान्त करो और मेरे हृदयमें अन्धकार है उसे वचनरूपी क्रीड़ा से निवृत्तकरो। आपके वचनरूपी अमृत से मैं तृप्त नहीं होता। हे भगवन्! गुरु के उपदेश किये विना अपने विचार ज्ञान से नहीं शोभता। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष शान्तिमान्; क्षमावान् और इन्द्रियजित् है और जिसने मन के संकल्प विकल्प

को जीता है वह सिद्धान्त का पात्र है। हे रामजी! तुम अब सिद्धान्त के पात्र हो इससे उपदेश करता हूं। जो पुरुष राग द्वेष सहित क्रिया में स्थित है और इन्द्रियों के सुख से जिसको आराम है वह सिद्धान्त के वाक्य "अहंब्रह्मास्मि" और "सर्वब्रह्म" को सुनकर भोगों में स्थित होता है और अधोगति पाता है क्योंकि; उसको निश्चय नहीं होता और उसका हृदय मलिन है इससे इन्द्रियों के सुख करके आपको सुखी मानता है और नीच स्थानों को प्राप्त होताहै। जो पुरुष क्षमा आदिक साधनों से पवित्र हुआ है उसको "अहंब्रह्मास्मि" और "सर्वब्रह्म" के सुनने से शीघ्र ही भावना से आत्मपद की प्राप्ति होती है। तुम ऐसे जो पुरुष क्षमा आदिक साधनों से पवित्र हुए हैं उनको स्वरूप की प्राप्ति सुगम होती है और जिनका अन्तःकरण मलिन है उनको प्राप्त होना कठिन है। जैसे भूने बीज को पृथ्वी में बोइये तो उसका अंकुर नहीं होता तैसेही इन्द्रियारामी पुरुष को आत्मा की प्राप्ति नहीं होती और तुम सारिखे जिनका हृदय शुद्ध है उनको ज्ञान की प्राप्ति होतीहै और वेही इन वचनों को पाकर शोभते हैं। जैसे वर्षाकाल में धान पृथ्वी में वर्षा से शोभा पाते हैं तैसेही सिद्धान्त वचनों को पाकर वे ज्ञानरूपी दीपक से प्रकाशते हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष ऊंची बांह करके कहते हैं और सब शास्त्र भी कहते हैं उन सर्वशास्त्रों के सिद्धान्तों को और उनके दृष्टान्तों को मैं जानताहूं; इससे सर्वसिद्धान्तों का सार कहताहूं तुम सुनों तो जो तुम्हारा स्वरूपहै उसको जानोगे। हे रामजी! जिसको अभ्यास करके एक क्षण भी साक्षात्कार हुआ है वह फिर गर्भ में नहीं आता और उसको सत् असत् में कुछ भेद नहीं होता संवेदन में भेद है। जैसे जाग्रत् और स्वप्न के सूर्य के प्रकाश दोनों समान हैं; जाग्रत् में जाग्रत् सूर्य का प्रकाश अर्थाकार होता है और स्वप्ने में स्वप्ने का सूर्य अर्थाकार होता है पर प्रकाश दोनों का सम है और संवित् भिन्न है। स्वप्ने को मिथ्या जानता है और जाग्रत् को सत् जानता है तो संवेदन से भेद हुआ स्वरूप से भेद कुछ न हुआ। जैसे मन से एक बड़ा पर्वत रचिये तो

संकल्प से दिखताहै और एक पर्वत बाहर प्रत्यक्ष दिखता है तो संवित् का भेद हुआ स्वरूप दोनों का तुल्य है। जैसे समुद्र में तरङ्ग हैं तो स्वरूप में जल और तरङ्गों का भेद कुछ नहीं पर जिसको जल का ज्ञान नहीं सो तरङ्ग ही जानताहै, इससे संवित् में भेद है, तैसेही स्वरूप में सत् असत् तुल्य है। वास्तव में कुछ भिन्न नहीं केवल शान्तरूप आत्मा है और शब्द अर्थ संवेदन में है। शब्द अर्थात् नाम और अर्थ याने नामी संवेदन फुरनेसे हैं; जब फुरना नष्ट होजावेगा तब सर्व अर्थ भी आत्मा ही भासेगा। जगत् की सत्ता तबतक है जबतक आत्मा का प्रमाद है और प्रमाद तबतक है जबतक अहंभाव है। जब अहंभाव नष्ट हो तब केवल आत्मा शेष रहेगा जो शुद्ध, विद्या-अविद्या के कार्यसे रहित और कदाचित् स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! अविद्या की दो शक्ति हैं; एक आवरण और दूसरी विक्षेप। आत्मा के न जानने का नाम आवरण है और कुछ जाननेको विक्षेप कहते हैं। वह आत्मा सदा ज्ञानरुप है, उसको आवरण कदाचित् नहीं होता और अद्वैत है, उससे कुछ भिन्न नहीं बना-इसीसे वह शुद्ध, केवल और ज्ञानमात्र है। हे रामजी! जो आत्ममात्र और चिन्मात्र है और जिसमें अहं का उत्थान नहीं केवल निर्वाणपद है और जहां एक और द्वैत कहना भी नहीं केवल अपने आपमें स्थितहै उसमें कलनारूपी धूलि कहांहो? रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो सर्वब्रह्म है तो मन, बुद्धि आदिक कौन हैं जिनसे तुम यह शास्त्र उपदेश करतेहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शास्त्रके व्यवहारके अर्थ शब्द हैं परमार्थ में कोई कल्पना नहीं। यह मन बुद्धि आदिक कुछ वस्तु नहीं; ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। जैसे तरङ्ग जल से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। तैसे मनादिक हैं। आत्मतत्त्व नित्य, शुद्ध और सन्मात्र है; नाहकी नाईं स्थितहै हे रामजी! ऐसे आत्मा में संसार अविद्याका नाम आदिक कैसे हो? आत्मा ब्रह्महै उससे भिन्न कुछ नहीं। वह सर्व का अधिष्ठान, अविनाशी और देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहितहै। इसीसे ब्रह्म है। हे रामजी! ऐसा जो अपना आप

आत्माहै उसीमें स्थित हो। यह जगत् जो दृष्टि आताहै सो सर्व-चिदाकाश है भिन्न नहीं। जैसे स्वप्न में विश्व देखताहै सो अनुभवमात्रहै तैसेही जाग्रत् विश्व भी आत्मरूप है। ऐसा जो तुम्हारा शुद्ध, नित्य उदित और अविनाशीरूपहै उसमें जब स्थित होगे तब कलना जो तुमको भासतीहै सो नष्ट हो जावेगी।

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकलनानिषेधोनाम
त्रिनवतितमस्सर्गः॥ ९३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसार का बीज अहंकार हैं। जब अहं-भाव होता हैं तब संसार होताहै पर अहंकार कुछ वस्तु नहीं भ्रम से सिद्ध हुआहै। जैसे मूर्ख बालक परछाहीं में पिशाच कल्पता है सो पिशाच कुछ वस्तु नहीं उसके भ्रम से होताहै तैसेही अहंकार कुछ वस्तु नहीं स्वरूप के भ्रम से होता है। हे रामजी! जो वास्तव कुछ वस्तु नहीं तो उसके त्यागने में क्या यत्न है? तुम में अहंकार वास्तव नहीं है, तुम केवल शान्तरूप चेतनमात्र हो और उसमें अहंभाव होना उपाधि है उससे सुमेरु पर्वत आदिक जगत् बनजाता है सो संवेदनरूप है। चित्तरूपी पुरुष चेतन के आश्रय से फुरता है और विश्वकल्पता है। जैसे रस्सी के आश्रय से सर्प फुरताहै तैसेही चेतन के आश्रय विश्व और चित्त फुरते हैं सो आत्मा से भिन्न नहीं। अहंकार हुये की नाईं हुआ है कि, 'मैं हूं' ऐसा जो अहंभाव है सो दुःख की खानि है। सर्व आपदा अहंकार से होती है। जब अहंकार नष्ट होगा तब सब दुःख भी नष्ट होंगे। हे रामजी! जैसे सूर्य के आगे बादल होते हैं तो प्रकाश नहीं होता और जब बादल दूर होते हैं तब प्रकाशवान् भासता है और कमल प्रफुल्लित होते हैं; तैसेही आत्मरूपी सूर्य को अहंकाररूपी बादल का आवरण हुआ है माया के किसी गुण से मिलकर कुछ आपको मानने को अहंकार कहते हैं। जब अहंकाररूपी बादल नष्ट होगा तब आत्मरूपी सूर्य का प्रकाश होगा और ज्ञानवान्रूपी कमल उस प्रकाश को पाकर बड़े आनन्द को प्राप्त होंगे। हे रामजी! इससे अहंकार

के नाश का उपाय करो जो तुम्हारे दुःख नष्ट होजावें। वह कौन पदार्थ है जो उपाय किये सिद्ध नहीं होता? अहंकार के नाश का उपाय करिये तो वह भी नष्ट होजाता है। अहंकार के नष्ट करने का यह उपाय है कि, सत् शास्त्रों अर्थात् ब्रह्मविद्या के बारम्बार अभ्यास और सन्त के संग द्वारा कथा की परस्पर चर्चा करने से अहंकार नष्ट होजाता है। जैसे पानी भरने की रस्सी से पत्थर की शिला घिस जाती है तैसेही ब्रह्मविद्या के अभ्यास से अहंकार नष्ट होता है बल्कि, शिला के घिसने में तो कुछ यत्न भी है पर अहंकार के त्यागने में कुछ यत्न नहीं। हे रामजी! सदा अनुभवरूप जो आत्मा है उसका विचार करो कि, मैं कौन हूं? इन्द्रियां क्या हैं? गुण क्या है और संसार क्या है? ऐसे विचार से इनका साक्षीभूतहो कि, मुझमें 'अहं त्वं' कोई नहीं। इससे तुम अहंकार का नाश करो और शुद्ध हो। मेरा भी आशीर्वाद है कि, तुम सुखी होजाओ। जब अहंकार नष्ट होगा तब कलना कोई न फुरेगी केवल सुषुप्तिकी नाईं स्थित होगे। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जो आपका अहंकार नष्ट हुआ है तो प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे दिखते हो और जो अहंकार नहीं है तो सर्वशास्त्र और ब्रह्मविद्या कहां से उपजे हैं और उपदेश कैसे होताहै? उपदेश में तो अन्तःकरण चारों सिद्ध होते हैं। प्रथम जब उपदेश करने की इच्छा होती है तब अहंकार सिद्ध होताहै; जब स्मरण होताहै कि, उपदेश करूं तब चित्तभी चैत्यसे सिद्ध होताहै; फिर यह उपदेश करिये यह न करिये, ऐसे संकल्प किये से मन की सिद्धि होतीहै। फिर जब निश्चय किया कि, यह उपदेश करिये तब बुद्धि की सिद्धि होतीहै। इससे चारों अन्तःकरण सिद्ध होते हैं आप कैसे कहते हैं कि, अहंकार नष्ट होजाता है और सर्वचेष्टा होती हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मस्वरूप में अहंकार आदिक अन्तःकरण और इन्द्रियां कल्पित हैं वास्तव में कुछ नहीं। शास्त्र उपदेश भी कल्पना है, आत्मा केवल आत्मत्वमात्र है उससे संवेदन करके अहंकारादिक दृश्य फुरे हैं और उसके निवृत्त करने को प्रवर्त्तते हैं। जैसे रस्सी में भ्रम से सर्प भासता है तो उसके भय से आदमी दुःख पाता है पर जब कोई कहे कि, यह सर्प नहीं रस्सी है तू भय मत कर,

इसको भली प्रकार देख; तो उसके उपदेश से वह भली प्रकार देखता है तब उसका भय और शोक निवृत्त होजाता है क्योंकि, उसको भ्रम से सर्पभान हुआ था सोभी मिथ्या है और उसको रस्सी का उपदेश करना भी मिथ्या है क्योंकि, रस्सी तो आगेसे सिद्ध है उपदेश से सिद्ध नहीं होती; तैसेही रस्सी की नाईं आत्मा है उसकी निवृत्ति जो चेतन लक्षण है उसको अहंभाव कहते हैं और उस अहंकार के निवृत्त करने को शास्त्र हुये हैं। आत्मरूपी रस्सी के प्रमाद से अहंकाररूपी सर्प फुरा है और उसके निवृत्त करने को शास्त्र के उपदेश हुये हैं और आत्मा को जता देते हैं। जब भली प्रकार रस्सी की नाईं आत्मा को जाना तब सर्प की नाईं जो परिच्छिन्न अहंकार है सो नष्ट होजाता है। जैसे नेत्र का मैल जब अञ्जन के लगाने से नष्ट होजाता है तब ज्योंके त्यों निर्मल नेत्र होते हैं; तैसेही अज्ञानरूपी मैल गुरु और शास्त्र के उपदेशरूपी सुरमें से नष्ट होजाता है। वास्तव में न कोई अहंकार है और न शास्त्र है क्योंकि; आत्मा सर्वदाकाल उदयरूप है परन्तु तौभी गुरु शास्त्र से जाना जाता है। हे रामजी! ज्ञानवान् के साथ चारों अन्तः-करण और इन्द्रियां भी दृष्टि आती हैं पर उनमें सत्यता नहीं होती—जैसे भूना बीज दृष्टि आता है परन्तु उगने की सत्यता नहीं रखता और जैसे जला वस्त्र देखनेमात्र है पर उसमें सत्यता कुछ नहीं होती तैसेही ज्ञानवान् को अभिलाषरूप अहंकार नहीं होता और उससे वह कष्ट नहीं पाता जैसे सूर्य की किरणों से मरुस्थल में जलाभास होता है और उसको देखकर पान करने के निमित्त मृग दौड़ता है और दुःखी होताहै तैसेही दृश्यरूपी मरुस्थल में पदार्थरूपी जलाभास को देखकर अज्ञानरूपी मृग दौड़ते हैं और दुःख पाते हैं। जब ज्ञानरूपी वर्षा से आत्मरूपी जल चढ़ा तब चित्तरूपी मृग कहां दौड़े। जब ज्ञानरूपी वर्षा होतीहै और अनुभवरूपी जल चढ़ता है तब चित्तरूपी मृग में यत्नरूपी जो फुरना था सो नष्ट होजाता है। हे रामजी! अहंकार अविचार से सिद्धहै और विचार से क्षीण होजाता है। जैसे बरफ़ की पुतली सूर्य की किरणों से क्षीण होती है और जब अधिक तेज होता है तब जलरूप होजाती है, बरफ़ की संज्ञा नहीं रहती; तैसेही

अहंकाररूपी बरफ़ विचाररूपी किरणोंसे क्षीण होजातीहै। जब दृढ़ विचार होता है तब अहंकार संज्ञा नष्ट होजाती है और केवल आत्मा ही रहता है रामजीने पूछा, हे सर्वतत्त्वज्ञ भगवन्! जिसका अहंकार नष्ट होताहै उसका लक्षण क्या है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानरूपी गढ़ा संसारहै उसमें पदार्थकी भावनासे वह नहीं गिरता और जैसे समुद्रमें नदियां स्वाभाविक आय प्राप्त होतीहैं तैसेही उसको क्षमा शान्ति आदिक शुभगुण स्वाभाविक प्राप्त होतेहैं उसका क्रोध भी नष्ट होजाताहै और देखने मात्र यदि भासता भी है तोभी अर्थाकार नहीं होता; विषमता करके भिन्नभावना हृदय में नहीं फुरती और केवल सत्तासमानमें स्थित होताहै। जैसे शरत्काल का मेघ गर्जताहै पर वर्षा से रहित होताहै तैसेही इन्द्रियों की चेष्टा वह अभिमान से रहित होकर करताहै। जैसे वर्षाऋतु के जानेसे कुहिरा नहीं रहता तैसेही उसकी अभिमान चेष्टा नष्ट होजातीहै और लोभ भी मन से जाता रहता है। जैसे वन में अग्नि लगती है तो मृग और पक्षी उस वन को त्याग जाते हैं तैसेही लोभरूपी मृग उसको त्याग जाते हैं और उसके मन में कोई कामना नहीं रहती। जैसे दिन में उलूक और पिशाच नहीं विचरते तैसे ही जहां ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है वहां सम्पूर्ण कामनारूपी तम नष्ट होजाताहै और शान्तरूप आत्मा में स्थित रहताहै। जैसे मज़दूर दो पोटों को ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप में उठाता है और गर्मी में थकता है तो उसको डारकर वृक्ष के नीचे सुख से स्थित होताहै तैसेही वासनारूपी पोट है और अज्ञानरूपी धूप है उससे दुःखी होता है पर ज्ञानरूपी बलकर वासनारूपी पोट को डार के सुखसे स्थित होताहै। हे रामजी! उस पुरुष की भोग-भावना नष्ट होजाती है और फिर उसे दुःख नहीं देती। जैसे गरुड़ को देखकर सर्प भागता है और फिर निकट नहीं आता, तैसेही ज्ञानरूपी गरुड़ को देखकर भोगरूपी सर्प भागते हैं और फिर निकट नहीं आते। आत्मपद को पाकर ज्ञानी शान्तिरूपी दीपकवत् प्रकाशवान् होता है और भाव-अभाव पदार्थ उसको स्पर्श नहीं करते और संसारभ्रम निवृत्त होजाता है। ज्ञान समझनेमात्र है कुछ यत्न नहीं। सन्तों के पास जाकर

प्रश्न करना कि, मैं कौन हूं? जगत् क्या है? परमात्मा क्या है? भोग क्या है? और इससे तरकर कैसे परमपद को प्राप्त हूं। फिर जो ज्ञानवान् उपदेश करे उसके अभ्यासस‌े आत्मपद को प्राप्त होगा अन्यथा न होगा। इतिश्रीयो०नि०प्र०सन्तलक्षणमाहात्म्यवर्णनंनामचतुर्णवतितमस्सर्गः ९४

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रकार तुम्हारे पुरुषा इक्ष्वाकुनामक बड़े राजा जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं तैसेही तुमभी बिचरो क्योंकि, तुम भी उसी कुल में उपजे हो। हे रामजी! वह सूर्यवंशी इक्ष्वाकुराजा मनु का पुत्र और सूर्य का पौत्र सब राजाओं से श्रेष्ठ हुआहै—जैसे पितरोंका राजा धर्महै—और बरफ़ की नाईं उसका शीतल स्वभाव था। जैसे सूर्य को देख-कर मणिसे तेज प्रकट होताहै तैसेही उसको देखकर शत्रु तपायमान होते थे और साधु मित्र और प्रजा को रमणीय भासता था और वे सब उसको देखकर शान्तिमान् होते थे। जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं तैसेही उसको देखकर सब प्रसन्न हों। वह पापरूपी वृक्षों का काटनेवाला कुल्हाड़ा और मित्र का सुखदायक था—जैसे मोरों को मेघ सुखदायक है। सुन्दर वह ऐसा कि जिसको देखकर लक्ष्मी स्थित होरही थी और उसके यश से सम्पूर्ण पृथ्वी पूर रही थी। ऐसा राजा भली प्रकार प्रजा की पालना करता था कि, एककाल उसके मन में विचार उपजा कि, संसार में जरा, मरण आदिक बड़े क्षोभ हैं इस संसार दुःख के तरने का क्या उपाय है। ऐसे वह विचारता था कि, शम्भुमुनि ब्रह्मलोक से आये और उसने उनका भली प्रकार पूजन करके पूछा, हे भगवन्! आपकी कृपा का पराक्रम मेरे हृदय में बैठकर प्रश्न करने को—प्रेरता है इससे मैं प्रश्न करता हूं। हे भगवन्! मेरे हृदय में संसार फुरता है और जैसे समुद्रको बड़वाग्नि जलातीहै तैसेही मुझको जलाता है। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे मुझको शान्ति हो। हे भगवन्! यह संसार कहांसे उपजाहै; दृश्य का स्वरूप क्याहै और कैसे निवृत्त होता है? जैसे जाल से पक्षी निकल जाता है; तैसेही जन्म, मरण महाजाल संसार से मैं निकलना चाहताहूं और जैसे वरुण समुद्र के सब स्थान जानता है तैसेही तुम जगत् के सब व्यवहारों को

जानते और संशय के निवृत्त करनेवाले हो। अज्ञानरूपी तम के नाशकर्ता तुम सूर्य हो और तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से मैं शान्तिको प्राप्त हूंगा। मुनि बोले, हे साधो! मैं चिरकाल पर्यन्त जगत् में बिचरता रहाहूं परन्तु ऐसा प्रश्न मुझसे किसीने नहीं किया-तुमने परमसार प्रश्न किया है? यह प्रश्न अनर्थ का नाश करनेवाला है और तेरी बुद्धि विवेक से विकाशमान हुई दृष्टि आती है। हे राजन्! जो कुछ जगत् तुझको भासता है सो सब असत् है। जैसे रस्सी में सर्प, स्वप्न में गन्धर्वनगर; मरुस्थल में जल; सीपीमें रूपा; आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासते हैं; तैसेही यह जगत् असत्रूपहै और जैसे जल में चक्र और तरङ्ग असत्रूप हैं तैसेही जगत् असत्रूप है। जो मन सहित षट् इन्द्रियों से अतीत है और शून्य भी नहीं सो सत् और अविनाशी आत्मा कहाता है। वह निर्मल परब्रह्म सर्व ओर से पूर्ण और अनन्त है, उसीमें जगत् कल्पित है। हे राजन्! जैसे सर्ववृक्षों में एकही रस व्यापकहै तैसेही सर्वपदार्थों में एक चिन्मात्रसत्ता व्यापकहै और जैसे अचल समुद्रमें द्रवतासे तरङ्ग फुरते हैं तैसेही परमात्मामें जगत् फुरते हैं। उस महादर्पणमें सर्ववस्तु प्रतिबिम्बित होती हैं जैसे समुद्रमें कोई तरङ्ग और कोई बुद्बुदे, चक्रादिक होते हैं तैसेही आत्मा में जीवादिक आभास होते हैं। प्रथम फुरनेरूप होतेहैं और पीछे कारण कार्यरूप होतेहैं सो चित्तशक्ति अपने संकल्प से भूतादिक देह रचकर उसमें स्वरूप के प्रमाद से आत्मा अभिमान करताहै। जैसे कुसवारी की क्रिया अपने बन्धनके निमित्त होती है तैसेही जीव को अपना संकल्प बन्धन का कारण होता है। हे राजन्! जीवकला को स्वरूप का अज्ञान हुआ है। इससे जैसे बालक को अपनी परछाहीं यक्षरूप होकर भय देती है तैसेही यह नानाप्रकार के आरम्भ को प्राप्तहुआ है और अकारणही ब्रह्मशक्ति फुरनेसे कारणभावको प्राप्त हुआहै। उसमें बन्ध और मोक्ष भासते हैं तैसेही वास्तव में न बन्धहै और न मोक्ष है; निरामय ब्रह्मही अपनेआपमें स्थितहै और उसमें एक और अनेक कुछ नहीं कहसक्ने। इससे बन्धमोक्षकी कल्पनाको त्यागकर अपने स्वभावमें स्थितहो॥
इति श्रीयो नि० प्र० इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनामपञ्चनवतितमस्सर्गः॥ ९५॥

मुनि बोले, हे राजन्! जैसे द्रवता से जलही तरङ्गभावको प्राप्त होता है तैसेही चिन्मात्र ही संकल्प के फुरनेसे जीव होताहै और वह जीव संसार में कर्मों के वश से भ्रमता हुआ आपको कर्ता देखता है पर सर्वात्मा परब्रह्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता। जैसे सूर्य के प्रकाशसे सब चेष्टा होती हैं और सूर्य अकर्ता है तैसेही आत्मा की शक्ति से जगत् चेष्टा करता है और जैसे चुम्बक पत्थरके निकट लोहा चेष्टा करताहै तैसेही आत्माकी चेतनतासे सब देहादिक चेष्टा करतेहैं और आत्मा सदा अकर्ता है। जैसे जल में तरङ्ग फुरते हैं तैसेही आत्मा में देहादिक फुरते हैं। जैसे सुवर्ण में भूषणकल्पना होती है तैसेही आत्मा में मोह से सुख दुःख कल्पते हैं पर आत्मा में कुछ कल्पना नहीं। शुद्ध आत्मा में मूढ़ों ने सुख दुःख की कल्पना की है पर जो ज्ञानवान् हैं उनको मन, चित्त, सुख, दुःख सब आकाशरूप हैं। वे देह से रहित केवल चिदाकाशभाव को प्राप्तहोते हैं। जरा, मरण को नहीं प्राप्त होते और सब कार्य को करते दृष्टि आते हैं पर हृदय से सदा अकर्तारूप हैं। जैसे जल और दर्पण में पर्वत का प्रतिबिम्ब पड़ता है परन्तु स्पर्श नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् को क्रिया स्पर्श नहीं करती। शरीर के व्यवहार में भी वह सदा निर्मलभावहै। हे राजन्! आत्मा सदा स्थितरूपहै परन्तु भ्रम से चञ्चल भासता है। जैसे जल की चञ्चलता से पर्वत का प्रतिबिम्ब भी चञ्चल होताहै, तैसेही देहादिक से आत्मा चलता भासताहै पर आत्मा नित्य शुद्ध और अपने आपमें स्थित है। जैसे घटके नाश हुयेसे घटनाश नहीं होता तैसेही देह के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता और जैसे शुद्धमणि में नाना प्रकार के प्रतिबिम्ब होते हैं पर उनसे वह रञ्जित नहीं होती तैसेही आत्मा में मन, इन्द्रियां और देह दृष्टि आते हैं पर स्पर्श नहीं करते। जैसे सब मिष्ट पदार्थों में एकही मिठाई व्यापी है तैसेही सब पदार्थों में एक आत्मसत्ता व्यापी है। हे राजन्! आत्मा सदा अचलरूप है परन्तु अज्ञान से चलरूप भासता है। जैसे दौड़ते बालक को सूर्य दौड़ता भासता है तैसेही आत्मा देह के संग से अज्ञानवश विकारवान् भासताहै और जैसे प्रतिबिम्ब का विकार आदर्श को नहीं स्पर्श करता तैसेही देह का विकार

आत्मा को स्पर्श नहीं करता। जैसे अग्नि में सुवर्ण डालिये तो मैल दग्ध होजाता है पर सुवर्ण का नाश नहीं होता; तैसेही देह के नाशहुये आत्मा का नाश नहीं होता जो नित्यशुद्ध अवाक् और अचिन्त्यरूपहै। हे राजन्! वह चितवने में नहीं आता परन्तु चेतनवृत्ति से सब दिखता है। जैसे राहु अदृष्ट है परन्तु चन्द्रमा के संयोग से दृष्टि आताहै, तैसेही आत्मा अदृष्ट है परन्तु चेतनवृत्ति से जानाजाता है। जैसे शुद्धदर्पण में प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही निर्मलबुद्धि में आत्मा साक्षात् भासता है। और संकल्प से रहित अपने आपमें स्थितहै। जब बुद्धि निर्मल होतीहै तब अपने आपमें उसको पाती है। हे राजन्! जबतक अपनी बुद्धि निर्मल न हो तबतक शास्त्र और गुरु से ईश्वर नहीं मिलता और जब अपनी बुद्धि सत्पद में निर्मल हो तब अपने आपसे दिखता है। जब संसार की सत्यता हृदय से दूर हो और आत्मा का अभ्यास हो तब बुद्धि निर्मल होती है। हे राजन्! सर्व-भाव-अभावरूप जो देहादिक पदार्थ हैं सो असत् और केवल भ्रममात्र हैं उनकी आस्था का त्याग करो। जैसे कोई मार्ग में चलता है तो अनेक पदार्थ मिलते हैं परन्तु उनमें वह कुछ राग, द्वेष नहीं करता तैसेही देह और इन्द्रियोंके स्नेह से रहित आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है और उसमें देहादिक इन्द्रजाल की नाईं मिथ्याहैं उनकी भावना दूर से त्यागकर नित आत्मा शीतल चित्त में स्थित होरहो। हे राजन्! जीव आपही अपना मित्र है और आपही अपना शत्रुभी है क्योंकि; आत्मा में और का ठौर नहीं—आत्मा में आत्मा का ही भाव है—द्वैत नहीं। जो दृश्य पदार्थ की ओर से और अनात्मधर्म विषय से खैंचकर चित्त को अपने आपमें स्थित करता है वह अपना आपही मित्र है और जो अनात्म धर्म में पदार्थों की ओर चित्त लगाता है वह अपना आपही शत्रु है। वास्तवमें जो कुछ दृश्यजाल है वहभी आत्मरूप है आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जैसे समुद्र में जल से भिन्न कुछ वस्तु नहीं जलही जल है; तैसेही आत्मा से भिन्न जगत् कुछ वस्तु नहीं—सब अनुस्यूत एक आत्मसत्ता ही स्थित है। जैसे अनेक घटों के जल में एक ही सूर्य का प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है,

तैसेही अनेक देहोंमें एकही आत्मा व्याप रहा है। वह न अस्त होता है और न उदय होता है; सदा एकरस अविनाशी पुरुष ज्यों का त्यों स्थित है और उसमें अहंभावना करके संसार भासता है। जैसे सीपी में रूप की बुद्धि होती है तैसेही आत्मा में अहंबुद्धि संसार का कारण है और इसी बुद्धि से सर्व दुःख का भागी होता है। जैसे वर्षाकाल में सब नदियां समुद्र में प्रवेश करती हैं तैसेही अनात्म अभिमान से सब आपदा प्राप्त होती हैं। वास्तव में चिन्मात्र और जीव में रञ्चक भी भेद नहीं एक ही रूप है। ऐसी जो बुद्धि है सो बन्धन से मुक्ति का कारण है। आत्मा सर्व में अनुस्यूत व्यापा है। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्वठौर में होता है परन्तु जहां शुद्ध जल है वहां भासताहै तैसेही आत्मा सबठौर पूर्ण है परन्तु शुद्धबुद्धिमें भासता है। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदों में जल ही व्यापरहा है तैसेही अविनाशी आत्मा दृश्य कलना से सर्वत्र व्यापा है पर जैसे सुवर्ण में भूषण नहीं तैसे ही आत्मा में जगत् का अभाव है। हे राजन्! यह संसार आत्मा में नहीं है; केवल आत्मा ही है। जो एक वस्तु पात्र की नाईं होती है उसमें दूसरी वस्तु होती है पर आत्मा तो अद्वैत है दूसरी वस्तु संसार कहां हो? जैसे चित्त से सुवर्ण में भूषण कल्पित हैं—वास्तव में कुछ नहीं; तैसेही आत्मा में संसार अज्ञान से कल्पित है और वास्तव कुछ नहीं केवल चिदाकाश है। जैसे नदियां और समुद्र नाममात्र भिन्न हैं, वास्तव में जल ही है, तैसे ही केवल चिदाकाश में विश्व नाममात्र है। जितने आकार भासते हैं उनको काल भक्षण करता है जैसे नदियों को समुद्र भक्षण करके नहीं अघाता तैसे ही पदार्थ समूहों को काल भक्षण करके नहीं अघाता। हे राजन्! ऐसे पदार्थों में क्या अभिलाषा करनी है? कई कोटि सृष्टि उत्पन्न होती हैं और उनको काल भक्षण करता है—कोई पदार्थ काल से मुक्त नहीं होता जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे उपजते हैं और नष्ट हो जाते हैं। इससे तू काल से अतीतपद की भावना कर कि, काल को भी भक्षण करे। कैसे भावना करिये और कैसे भक्षण करिये सो भी सुन। जैसे मन्दराचल ने अगस्त्यमुनि के आने की भावना करी है तैसे ही तुम भी

अपने स्वरूप की भावना करो तब काल को भक्षण करोगे। जैसे अगस्त्य मुनि ने समुद्र को भक्षण किया था तैसे ही आत्मारूपी अगस्त्य कालरूपी समुद्र को भक्षण करेगा। हे राजन्! जन्म मरणादिक जो विकार हैं सो भ्रम करके हैं और आत्मा के प्रमाद से भासते हैं जब आत्मा को निश्चय करके जानोगे तब कोई विकार न भासेगा, क्योंकि; ये अज्ञान से रचे हैं—आकाश में कोई नहीं। जैसे भ्रम से रस्सीमें सर्प भासता है सो तबतक है जबतक रस्सी को नहीं जाना और जब रस्सी को जाना तब सर्पभ्रम निवृत्त हो जाता है; तैसे ही जन्म मरणादिक विकार आत्मा में तबतक भासताहै जबतक आत्माको नहीं जाना; जब आत्माको जानोगे तब सर्व विकार नष्ट होजावेंगे। हे राजन्! ऐसा विकार से रहित आत्मा तेरा स्वरूपहै उसकी भावना कर कि, तेरे दुःख नष्ट हो जावें। आत्मपद को कहीं खोजने नहीं जाना है; न किसी वस्तुको जानकर ग्रहण करना है कि, यह आत्मा है और न किसी कालकी अपेक्षाही है, आत्मा तेरा अपना स्वरूप है और सर्वदा अनुभवरूप है। तुझसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं तू आपको ज्यों का त्यों जान। आत्मा के न जानने से आपको दुःखी जानता है। मैं मरूंगा, मैं दरिद्री हूं, मैं दास हूं इत्यादिक दुःख तबतक होते हैं जबतक आत्मा को नहीं जाना; जब आत्मा को जानोगे तब आनन्दरूप हो जावोगे। जैसे किसी स्त्री की गोद में पुत्र हो और वह स्वप्न में देखे कि, बालक मेरे पास नहीं है तो बड़े दुःख को प्राप्त हो और रुदन करने लगे पर जब स्वप्न से जागे और देखे कि, बालक मेरी गोद में है तो बड़े आनन्द को प्राप्त होती है और दुःख शोक नष्ट हो जाते हैं। हे राजन्! उसी प्रकार तेरा आत्मा अपना आप है और सदा अनुभवरूप है; उसके प्रमाद से तू आपको दुःखी जानता है; जब अज्ञानरूपी निद्रा से तू जागेगा तब आपको जानेगा और तेरे दुःख और शोक नष्ट हो जावेंगे। देह और इन्द्रियादिक जो दृश्य हैं उनसे मिलकर आपको यह जानना कि 'मैं हूं' यही अज्ञाननिद्रा है। इससे रहित होकर देख कि, आनन्द को प्राप्त हो। यह जो पदार्थ भासते हैं सो सब मिथ्या हैं जैसे बालक मृत्तिका में राजा,

सेना, हाथी और घोड़ा कल्पता है सो न कोई राजा है, न सेना है न कोई हाथी घोड़ा है एक मृत्तिका ही है; तैसे ही चित्तरूपी बालक ने आत्मरूपी मृत्तिका में जो राजा और सेना आदिक सम्पूर्ण विश्व कल्पा है सो सब मिथ्या है। हे राजन्! एक उपाय तुझ से कहता हूं उसे कर कि, तेरे दुःख नष्ट हो जावें एक वस्तु जो 'अहं' अभिलाषा सहित फुरना है, उसका त्याग करो; फिर जहां इच्छा हो वहां बिचरो तुझे दुःख का स्पर्श न होगा। संकल्प ही उपाधि है और उपाधि कोई नहीं। जैसे मणि तृण से आच्छादित होती है तब दृष्टि नहीं आती और जब तृण दूर करिये तब मणि प्रकट होआती है; तैसे ही आत्मारूपी मणि वासनारूपी तृण से ढँपी है; जब वासनारूपी तृण दूर कीजिये तब आत्मारूपी मणि प्रकट हो। हे राजन्! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति से रहित जो आत्मपद है जब उसको प्राप्त होगे तब जानोगे कि, मैं मुक्त हूं। तेरा स्वरूप जो केवल आत्मरूप है उस पद में स्थित हो। वह अजन्मा और नित्य है। और चेतनमात्र सर्व का अपना आप है उसके प्रमाद से दुःख होता है जैसे बालक मृत्तिका के खिलौने बनाते हैं और हाथी, घोड़ा आदि उनके नाम कल्पकर अभिमान करते हैं कि, मेरे हैं और उनके नाश होनेसे दुःखी होते हैं; तैसेही बालकरूप अज्ञानी स्वरूप के प्रमाद से अभिमान करता है कि यह मेरे हैं; मैं इनका हूं और उनके नाश होने से दुःखी होता है—ऐसे नहीं जानता कि, सत् का नाश नहीं होता। असत् के नाश होने से सत् का नाश मानताहै। जैसे घटके नाशहोनेसे घटाकाश नाश मानिये तैसेही मूर्खतासे दुःख पाताहै। हे राजन्! तू आपको आत्मा जान। आत्मादिक संज्ञा भी शास्त्रों ने जताने के निमित्त कल्पी हैं नहीं तो आत्मा निर्वाच्यपद है; उसमें वाणी की गम नहीं और इनहीं से जाना जाता है क्योंकि; मन और वाणी में भी आत्मसत्ता है उसी से आत्मादिक संज्ञा सिद्धि होती हैं। जैसे जितने स्वप्नके पदार्थ हैं उनमें अनुभवसत्ता है उससे वे पदार्थ सिद्ध होते हैं; तैसेही जितनी कुछ अर्थ संज्ञा हैं सो सब आत्मा से सिद्ध होती हैं। ऐसा जो तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो कि, जरा मृतादिक दुःख नष्ट होजावें। हे राजन्!

निस्पन्द होकर देखेगा तब स्पन्द में भी वही भासेगा और स्पन्द-निस्पन्द तुल्य होकर भासेंगे जो समाधि में होवेगा अथवा ऐसे ही चेष्टा करेगा तो भी तुल्य होवेगी और न समाधि में शान्ति भासेगी और न चेष्टा में दुःख भासेगा दोनों में एकरस रहेगा। हे राजन्! देना अथवा लेना, यज्ञ, दान आदिक क्रिया जो कुछ प्रकृत आचार प्राप्त हो उनको मर्यादा और शास्त्र की विधिसंयुक्त कर पर निश्चय आत्मस्वरूप में ही रख। जैसे नट स्वांगोंको धारकर सम्पूर्ण चेष्टा करता है पर उसमें निश्चय नटत्व ही का रहता है, तैसेही तुम भी सर्व चेष्टा करो पर उसके अभिमान और संकल्पसे रहितहो। ग्रहण अथवा त्याग जो कुछ स्वाभाविक आ प्राप्त हो उसमें ज्यों के त्यों रहो। जब निर्विकल्प होकर अपने स्वरूपको देखोगे तब उत्थानकाल में भी तुम्हें आत्मा ही भासेगा जैसे जल के जाने से तरङ्ग फेन बुद्बुदा सर्व जल ही भासते हैं तैसेही जब तुम आत्मा को जानोगे तब संसार भी आत्मरूप भासेगा। जो आत्माको नहीं जानता उसको जगत् ही दृष्टि आताहै और उससे दुःख पाताहै; इससे तू अन्तर्मुख हो और संकल्प को त्यागकर परम निर्वाण अच्युतपद में स्थित हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनाम-
षण्णवतितमस्सर्गः ॥ ९६ ॥

मुनि बोले, हे राजन्! यह जो संकल्पपुरुष है सो संकल्प से ही आप बँधाता है और आपही मुक्त होता है। जब संकल्प से दृश्य की भावना करता है तब जन्म मरण को प्राप्त होकर दुःखी होता है। आपही संकल्प करताहै और आपही बन्धन को प्राप्त होता है जैसे कुसवारी आपही गुफा बनाकर और आपही उसको मूंदकर फँसती है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही दुःख पाता है और जब संकल्प को अन्तर्मुख करता है तब मुक्त होता है और मुक्त ही मानता है। इससे हे राजन्! संकल्प को त्यागकर आत्मा जो सर्वका अपना आप है उसकी भावनाकर कि, तू सुखी हो। हे राजन्! आत्मा के प्रमाद से देह आस्था की भावना हुई है उससे दुःख पाता है; इससे आत्मस्वरूप की भावना करो। तुम आत्मा चिद्रूप हो।

महा आश्चर्य माया है जिसने संसार को मोह लिया है। आत्मा सर्वदा अनुभवरूप और अङ्ग अङ्ग व्यापी है उसको जीव नहीं जानते यही आश्चर्य है। हे राजन्! आत्मा सदा अनुभवरूप उसमें स्थित हो। संसार आत्मा के प्रमाद और फुरने से हुआ है सो सत् भी नहीं। और असत् भी नहीं। जो आत्मा से भिन्न देखिये तो मिथ्या है–इससे सत् नहीं और जो आत्मा के सिवा दूसरा है नहीं इससे असत् भी नहीं। तू आत्मा की भावना कर। जो कुछ पदार्थ भासते हैं उन्हें आत्मा से भिन्न न जान–सर्वात्मा ही है। आत्मा के सिवा जो और भावना है उसका त्याग कर। हे राजन्! जैसे जल में तरङ्ग और बुद्बुदे होते हैं सो जल से भिन्न नहीं–जलही ऐसे भासते हैं; तैसेही जगत् जो दृष्टि आता है सो आत्मा ही ऐसे भासता है जैसे सूर्य और किरणों में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। आत्मा ही जगत्रूप है और भिन्न २ आकार चित्त शक्ति से हैं सो भिन्न नहीं आत्मसत्ताही है। जैसे तप्त हुआ लोहा वस्त्रादिक को जलाता है; सो लोहे को अपनी सत्ता नहीं अग्नि की सत्ता है; तैसेही चेतन की सत्ता जगत्रूप होकर स्थित हुई है। आत्मा सदा केवलरूप है जिसमें प्रकाश और तम दोनों नहीं और न सत् है, न असत् है, न कोई देश है, न काल है, न कोई पदार्थ है केवल चेतनमात्र गुणातीत है उसमें न कोई गुणहै न मायाहै केवल शान्तरूप आत्मा है। हे राजन्! वह शास्त्रों और गुरु के वचनों से पाया जाता है और तपसे नहीं मिलता। केवल अपने आपसे जानाजाता है और शास्त्रादिक लखा देते हैं परन्तु "यह है" ऐसा कहकर नहीं जानते। द्रष्टा पुरुष अपने आपमें जानता है। जैसे सूर्य की ज्योति जो नेत्रों में है वही सूर्य को देखतीहै, तैसेही आत्माही आत्मा को देखताहै और अन्तर्मुख होकर संकल्पसे रहित हुआ अपने आपको देखता है। जब संकल्प बहिर्मुख होता है तब वही दृढ़ होकर स्थित होता है और फिर उसकी भावना होती है। जब संकल्परूप जगत् दृढ़ता से स्थित होता है तब दुःखदायी होता है। हे राजन्! जीवको दुःखदायी और कोई नहीं; अपने ही संकल्प करके असम्यक्दर्शी दुःखी होता है और असम्यक्दर्शी

को जगत् दृष्टि भी आता है तो भी दुःखदायी नहीं होता। जैसे रस्सी में सर्प की भावना होती है तो भय प्राप्त होता है फिर जब रस्सी के जानने से सर्पभावना दूर होती है तब भय भी जाता रहता है; तैसे ही जिस पुरुष को संसार की भावना होती है वह दुःखदायी है। इससे आत्मा की भावना कर कि, तेरे सब दुःख नष्ट होजावें। हे राजन्! तू सर्वदा आनन्दरूप और अद्वैत है; तेरे में कोई कल्पना नहीं और तू आत्मस्वरूप है। आत्मा षट्विकारों से रहित है; विकार मिथ्या देह के हैं आत्मा शुद्ध है और आत्मा के प्रमाद से विकार भासते हैं। जब तू आत्मा को जानेगा तब कोई विकार न दृष्टि आवेगा क्योंकि; आत्मा अद्वैत है। राजा ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि, आत्मा अद्वैत है। जो इस प्रकार है तो पर्वत आदिक विश्व का कैसे भान होता है और पत्थररूप बड़े आकार बनके कहां से उपजे हैं? इसका रूप क्या है कृपा करके कहो? मुनि बोले, हे राजन्! आत्मा में संसार कोई नहीं वह सदा शान्तरूप और निराकार है और उसमें स्पन्द निस्स्पन्द दोनों शक्ति हैं जब निस्स्पन्द शक्ति होती है तब केवल अद्वैत भासता है और जब स्पन्द शक्ति फुरती है तब नाना प्रकार के जगत् आकार भासते हैं पर वास्तव में आत्माही है-कुछ भिन्न नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग कुछ और नहीं वही रूप हैं पर पवन के संयोग से तरङ्ग फुरते हैं तो भिन्न २ दृष्टि आते हैं; तैसेही फुरनशक्ति से अहंकार भिन्न २ भासते हैं-वास्तव में आत्मस्वरूप है-इतर कुछ नहीं। जैसे वट के बीज में पत्र, डाल, फूल और फल अनेक दृष्टि आते हैं तैसे ही आत्मसत्ता ने जो नाना प्रकार के आकार धारे हैं यद्यपि वे दृष्टि आते हैं तो भी कुछ बना नहीं केवल अद्वैत आत्मा ज्यों का त्यों स्थित है और सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है और पर्वत आदिक जो विश्व भासता है सो आत्मा का चमत्कार है जैसे स्वप्न में पर्वत और वृक्षादिक नाना प्रकार के जो आकार भान होते हैं वे अनुभवरूप हैं-उनसे इतर कुछ नहीं; तैसे ही जाग्रत् विश्व भी आत्मा का अनुभवरूप है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। इक्ष्वाकु ने पूछा, हे भगवन्! जो आत्मा सूक्ष्म है तो पर्वतादिक

स्थूल असत्‌रूप सत् होकर कैसे भासते हैं सो कृपा करके कहो? मुनि बोले, हे राजन्! आत्मा में अनन्त शक्ति है सो आत्मा से भिन्न नहीं वही रूप है। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न नहीं, तैसेही आत्मा की शक्ति आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे पवन में दो शक्ति हैं—स्पन्द और निस्स्पन्द सो वही रूप है—स्पन्दशक्ति से प्रकट भासता है और निस्स्पन्द से प्रकट नहीं भासता; तैसेही आत्मा में भी स्पन्द-निस्स्पन्द दो शक्ति हैं। जब स्पन्दशक्ति फुरती है तब अहंभाव प्रकट होता है और जब अहं-भाव हुआ तब चित्त उदय होता है। अहंही चित्त है; जब चित्त हुआ तब आकाश की भावना से आकाश बन जाता है; जब स्पर्श की भावना हुई तब पवन उत्पन्न होता है; रूप की भावना से अग्नि बनती है और जब रस की भावना हुई तब जल उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार चित्त की कल्पना से तत्त्व उपजे हैं। जब चारों तत्त्व इकट्ठे हुये तब एक अण्ड हुआ और जब दृढ़ संकल्प किया तब स्वायंभू मनु हुआ। जब अण्ड फूले तब स्वर्ग मध्य और पाताल तीन लोक हुये वे तीनोंलोक राजस सात्त्विक और तामस तीनों गुण हुये। फिर पर्वत आदिक दृश्य पदार्थ हुये। हे राजन्! केवल संकल्पमात्र ही सब हुये हैं। जब स्पन्दशक्ति फुरती है तब इस प्रकार आत्मा में भासते हैं परन्तु कुछ बना नहीं। जैसे समुद्र में फेन और बुद्बुदे फुरते हैं सो जलरूप हैं—जलसे कुछ भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। आदि मनु जो स्वायंभू हैं उनके संकल्प ने आगे मन कल्पे हैं। इसी प्रकार त्रिगुणमय सृष्टि उत्पन्न होती है सो केवल संकल्पमात्र है। जबतक चित्त है तबतक विश्व है; जब चित्त फुरने से रहित हुआ तब निस्स्पन्दशक्ति होती है और जब निस्स्पन्द हुई तब फिर जगत् नहीं दिखाई देता। हे राजन्! यह विश्व मनके फुरने से है और सत्य की नाईं स्थित हुआ है। सत् जो है सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु सो नहीं भासता और असत् सत् की नाईं भासता है। वह सत् कैसे असत् की नाईं हुआ है और असत् कैसे सत् की नाईं हुआ है सो सुन। सत् जो है सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु नहीं भासती और असत्

जो परिच्छिन्नरूप देश, काल, वस्तु परिच्छेद संयुक्त है वह सत् की नाईं हुई है। जहां देखिये वहां दृश्य ही गुणमय संसार भान होता है। महा आश्चर्यरूप माया है जिसने सत्य को असत्य की नाईं किया है और असत्य को सत्य की नाईं स्थित किया है सो चित्त के सम्बन्ध से ही संसार भासता है आत्मा में संसार कोई नहीं। जब चित्त को स्थित करके देखोगे तब तुम्हें संसार न भासेगा। जैसे गम्भीर जल होता है तो चलता नहीं भासता तैसेही गम्भीर आत्मा में संसार नहीं जाना जाता कि, कहां फुरता है। संसार भी आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं आत्मस्वरूप ही है। जैसे अग्नि के चिनगारे और जल के तरङ्ग जल से भिन्न नहीं और मणि का प्रकाश मणि से भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा से संसार भिन्न नहीं केवल आत्मस्वरूप है। ऐसे आत्मा को जानकर शान्तिमान् हो कि, तेरे दुःख नष्ट होजावें। केवल शान्तपद आत्मा तेरा अपना आप है। अपने स्वरूप को भूल के तू दुःखी हुआ है। जब आत्मा को जानोगे तब संसार भी आत्मरूप भासेगा क्योंकि; आत्मस्वरूप है आत्मा से भिन्न कोई वस्तु नहीं। ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो। हे राजन्! यह सर्व जगत् चिदाकाशरूप है; यही भावना दृढ़ करो जिसको ऐसी भावना दृढ़ है और जिसकी सब इच्छा शान्त होगई उस पुरुष को कोई दुःख नहीं लगता। उसने निरिच्छारूपी कवच पहिना है। हे राजन्! जो अहं के अर्थ से रहित है, जिसका सर्वशून्य होगया है और जिसने निरालम्ब का आसरा किया है वह पुरुष मुक्तिरूप है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुआख्याने सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम सप्तनवतितमस्सर्गः ॥ ९७ ॥

मनु बोले, हे राजन्! यह संसार आत्मा से कुछ भिन्न वस्तु नहीं। जैसे जल और तरङ्ग; सूर्य और किरणें; अग्नि और चिनगारे भिन्न नहीं तैसेही आत्मा और संसार भिन्न नहीं—आत्मस्वरूप ही है। जैसे इन्द्रियों के विषय इन्द्रियों में रहते हैं तैसेही आत्मा में संसार है। जैसे पवन में स्पन्द-निस्स्पन्दशक्ति है सो पवन से भिन्न नहीं; तैसेही संसार आत्मा से

भिन्न नहीं—आत्मस्वरूप है। हे राजन्! विषय की सत्यता को त्यागकर केवल आत्मा की भावना कर कि, तेरे संशय मिट जावें। तुम आत्मस्वरूप और निर्गुण हो; तुमको गुणों का स्पर्श नहीं होता और तुम सबसे परे हो। जैसे आकाश में धूल, धुवां, मेघ और बादल विकार भासते हैं। पर आकाश को कुछ लेप नहीं करते—आकाश अद्वैतरूप है; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष जिनको आत्मज्ञान हुआ है उनको सुख, दुःख, राजस, तामस, सात्त्विक गुण लेप नहीं करते। यद्यपि उनमें लोकदृष्टि से ये गुण दीखते हैं पर वे अपने में नहीं दीखते। जैसे समुद्र में अनेक तरङ्ग जलरूप होते हैं और शुद्धमणि में नील, पीत आदिक प्रतिबिम्ब पड़ते हैं सो देखनेमात्र हैं, मणि को स्पर्श नहीं करते; तैसेही जिस पुरुष के हृदय से वासना का मल दूर हुआ है उसके शरीर को सम्बन्ध करके राजस, सात्त्विक और तामस गुणों के कार्य सुख दुःख देखनेमात्र होते हैं परन्तु स्पर्श नहीं करते। उसमें केवल सत्ता समान पद का निश्चय होता है और उसको कोई रङ्ग स्पर्श नहीं करता। जैसे आकाश को धूल का लेप नहीं होता तैसेही आत्मा को गुणों का सम्बन्ध नहीं होता। जो पुरुष ऐसे जानता है उसको ज्ञानी कहते हैं। जब जीव निस्स्पन्द होता है तब आत्मा होता है और जब स्पन्द होता है तब संसारी होता है। जब चित्त फुरता है। तब अनेक सृष्टि भासती हैं और जब चित्त फुरने से रहित होता है तब संसार का अत्यन्ताभाव होता है और प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता। तब संसार भी केवल आत्मरूप होजाता है। इससे हे राजन्! वासना को त्यागकर चित्त को स्थिर करो। यह वासना ही मल है। जब वासना का त्याग होगा तब केवल आकाश की नाईं आपको स्वच्छ जानोगे। आत्मा वाणी का विषय नहीं; वह केवल आत्मत्वमात्र है; अपने आपमें स्थित है और सर्वदा उदयरूप है। विश्व भी आत्मा का चमत्कार है कुछ भिन्न वस्तु नहीं। द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी है सो अज्ञान से भासती है; आत्मा सर्वदा एकरूप और त्रिपुटी से रहित है। फुरने से आत्मा ही त्रिपुटीरूप होकर स्थित हुआ है; इससे चित्त को

स्थिर कर देख कि, आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। फुरने में संसार है जब फुरना मिटता है तब संसार भी मिट जाता है। उस फुरने की निवृत्ति के लिये सप्तभूमिका कहता हूं। जब प्रथम जिज्ञासु होता है तब चाहता है कि; सन्तजनों का संग करूं और ब्रह्मविद्या शास्त्र को देखूं और सुनूं-यह प्रथम भूमिका है। भूमिका चित्त के ठहराने के ठौर को कहते हैं। फिर जब सन्तों के संग और शास्त्रों से बुद्धि बढ़ी तब सन्तों और शास्त्रों के कहने को विचारना कि, मैं कौन हूं और संसार क्या है-यह दूसरी भूमिका है। उसके उपरान्त यह विचारना कि, मैं आत्मा हूं; संसार मिथ्या है और मुझमें कोई संसार नहीं; ऐसी भावना बारम्बार करनी तीसरी भूमिका है। जब आत्मभावना की दृढ़ता से आत्मा का साक्षात्कार होता है तब सम्पूर्ण वासना मिट जाती हैं और जब स्वरूप से उतरकर देखता है तब संसार भासता है परन्तु स्वप्ने की नाईं जानता है-इससे वासना नहीं फुरती। ऐसे जो अवलोकन हैं सो चौथी भूमिका है। जब अवलोकन होता है तब आनन्द प्रकट होता है। ऐसे महाआनन्द का प्रकट होना पञ्चम भूमिका है। जब आनन्द प्रकट होता है और उसमें बल से स्थित हुआ तो इसका नाम पञ्चम भूमिका है। तुरीयापद छठी भूमिका है। चित्त के दृढ़ता का नाम तुरीया है। जब तुरीयातीतपद को प्राप्त होता है तब परम निर्वाण होता है-उसको सप्तमभूमिका कहते हैं। उस परमनिर्वाण-पद की जीवन्मुक्ति को गम नहीं क्योंकि; तुरीयातीतपद है उसको वाणी से नहीं कह सके। प्रथम तीन भूमिका जो कही हैं सो जाग्रत् अवस्था हैं, उनमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन करता है और संसार की सत्ता भी दूर नहीं होती। चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है उसमें संसार की सत्ता नहीं होती और पञ्चम भूमिका सुषुप्ति अवस्था है क्योंकि; आनन्दघन में स्थित होता है। छठी भूमिका तुरीयापद है जो जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति तीनों का साक्षी है; उसमें केवल ब्रह्म ही प्रकाशता है और निर्वाणपद में चित्त की लय हो जाती है। तुरीयापद में जीवन्मुक्त विचरते हैं। सप्तम भूमिका तुरीयातीतपद है सो परमनिर्वाणपद है। तुरीया में ब्रह्माकारवृत्ति रहती है

और ब्रह्माकारवृत्ति भी लीन हो जाती है जहां वाणी की गम नहीं वहां चित्त नष्ट हो जाता है; वह केवल आत्मत्वमात्र है और अहंभाव नहीं होता। शान्त और परमनिर्वाण तेरा स्वरूप है और सर्व विश्व भी वही रूप है कुछ भिन्न नहीं। जैसे सुवर्ण ही भूषण हैं और सुवर्ण में भूषण कल्पता है। भूषण भी परिणाम से होता है पर आत्मा सदा अच्युतरूप है और कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त होता। वह केवल एकरस है उसने चित्त के फुरने से विश्व कल्पा है इससे विकारसंयुक्त भासता है। हे राजन्! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है उसमें स्थित होकर अपने प्रकृत आचार में निरहंकार होकर विचरो बल्कि अहंकार के त्याग का अभिमान भी त्यागकर केवल आत्मरूप हो रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणवर्णनं नामाष्टनवतितमस्सर्गः॥ ९८॥

मनु बोले हे राजन्! सर्वचिदाकाश सत्ता आदि-मध्य-अन्त से रहित अनाभास ज्यों का त्यों स्थित है और आगे भी वही स्थिर रहेगा। उसमें न ऊर्ध्व है, न अध है, न तम है, न प्रकाश है और न कुछ उससे भिन्न है। सर्व की सत्ता है जो चिन्मात्र परम सार है उसने आप ही संकल्प से चिन्तना की तब जगत् हुआ। हे राजन्! यह विश्व आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। जैसे जल में तरङ्ग, मिरच में तीक्ष्णता, शक्कर में मधुरता; अग्नि में उष्णता; बरफ में शीतलता; सूर्य में प्रकाश; आकाश में शून्यता और वायु में स्पन्द है; तैसेही आत्मा में विश्व है सो आत्मस्वरूप ही है कुछ भिन्न नहीं। हे राजन्! जो सब आत्मस्वरूप ही है तो शोक और मोह किसका करता है? जैसे काष्ठ की पुतली यन्त्री के तागे से अनिच्छित चेष्टा करती है तैसेही नीतिरूप तागे से अभिमान से रहित होकर तू भी विचार और यह निश्चय रख कि, न मैं कुछ करता हूं; न कराताहूं और किसी में रागद्वेष न कर। जैसे शिला पर जो मूर्ति लिखी होती है उसको न किसी का राग है और न द्वेष है; तैसेही तू भी बिचर कि आत्मा से भिन्न कुछ न फुरे ऐसा निरहंकार हो। चाहे व्यवहारी गृहस्थ हो,

चाहे संन्यासी हो; चाहे देहधारी हो; चाहे देहत्यागी हो; चाहे विक्षेपी हो; चाहे ध्यानी हो तुझे कोई दुःख न होगा ज्यों का त्यों ही रहेगा। फुरना ही संसार है और फुरने से रहित असंसार है। जब फुरता है तब संसारी होताहै और जब फुरना मिट जाताहै तब केवल आकाशरूप भासता है। हे राजन्! यह जगत् सब आत्मरूप है और आत्माही अपने आपमें स्थित है। जो सर्वात्माही है तो शोक और मोह किसका कीजिये? हे राजन्! आत्मा सर्वदा एकरस है और विश्व आत्मा का चमत्कार है। जन्म मरण आदि नानाविकार आत्मा के अज्ञानसे भासते हैं; जब आत्मा का ज्ञान होगा तब आत्मरूप ही एकरस भासेगा और विषमता कुछ न भासेगी। संवेदन से आकार भासते हैं। संवेदन अहंकार और वासना के सम्बन्धको कहते हैं। अहंकार और चित्त दोनों पर्याय हैं। हे राजन्! इसका अहंकार के साथ होनाही दुःखदायी है। केवल चिन्मात्र में अहंभाव मिथ्या है। जब तक संवेदन दृश्य की ओर फुरती है तबतक दृश्य का अन्त नहीं आता और नानाप्रकार के विकार भासते हैं पर जब संवेदन आत्मा अधिष्ठान की ओर आती है तब आत्मा शुद्ध अपना आप होकर भासताहै। संवेदन भी आत्माका आभास कल्पित है; आभासके आश्रय विश्व कल्पाहै और फुरने में भी और अफुरने में भी आत्मा ज्यों का त्यों है परन्तु फुरने में विषमता भासती है और अफुरने में ज्यों का त्यों भासता है। जैसे रस्सी के अज्ञानसे सर्प भासताहै और जब रस्सीका ज्ञान होताहै तब सर्पकी विषमता जाती रहती है और ज्यों को त्यों रस्सी भासती है पर सर्प भासने के काल में भी रस्सी ज्योंकी त्योंहीं थी; उसमें कुछ नहीं हुआ था—जानने न जानने में एक समान ही थी; तैसेही आत्मा भी फुरने के काल में जगत् भासताहै और फुरने से निवृत्त हुये आत्मा ही भासता है पर आत्मा दोनों काल में एक समान है। जैसे सूर्यकी किरणें सूर्य से भिन्न नहीं और अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं, तैसेही आत्मा से विश्व भिन्न नहीं—आत्मस्वरूपही है। हे राजन्! अहंकारको त्यागकरके अपने सत्ता समान स्वरूप में स्थित हो तब तेरे सब दुःख निवृत्त हो जावेंगे एक कवच तुझसे कहता हूं उसको धारण करके

विचर तो यद्यपि अनेक शस्त्रों की वर्षा हो तौ भी तुझे दुःख न होगा। "जो कुछ देखता सुनताहै" उसे सर्वब्रह्म जान और बारम्बार यही भावनाकर कि, ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जब ऐसी भावना दृढ़ करेगा तब कोई शस्त्र छेद न सकेगा। यह ब्रह्मभावना ही कवच है। जब इसको तू धारेगा तब सुखी होगा। इतना कह बाल्मीकिजी बोले कि जब वशिष्ठजीने रामजी को मनु और इक्ष्वाकु का संवाद सुनाया तब सायंकाल होकर सूर्य अस्तहुआ और सम्पूर्ण सभा और वशिष्ठजी भी स्नान को उठे। फिर सूर्य की किरणों के निकलते ही सब आ पहुँचे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मोक्षरूपवर्णनंनाम-
नवनवतितमस्सर्गः॥ ९९॥

मनु बोले, हे राजन्! जिसका कारण ही मिथ्या है उसका कार्य कैसे सत् हो! यह आभास जो संवेदन है सोही विश्व का कारण है। जो आभासही मिथ्या है तो विश्व कैसे सत्य हो और जो विश्व ही असत् है तो भय और शोक किसका करता है। हे राजन्! न कोई जन्मताहै, न मरता है, न सुख है, न दुःख है ज्यों का त्यों आत्मा स्थित है उसीसे संवेदन ने विश्व कल्पा है; इससे संवेदन का त्यागकर कि, न 'मैं हूँ', न यह है। जब तुझे ऐसा दृढ़ निश्चय होगा तब आत्माही शेष रहेगा और अहंकार निवृत्त हो जावेगा क्योंकि; आत्मा के अज्ञानसे हुआ है और आत्मज्ञान से नष्ट होजाता है। हे राजन्! जो वस्तु भ्रम सिद्ध हो और सत् दृष्टि आवे उसको प्रथम विचारिये;जो विचार किये से रहे तो सत्य जानिये और आत्मा जानिये और जो विचार किये से नष्ट होजावे उसको मिथ्या जानिये। जैसे हीराभी श्वेत होताहै और बरफ का कणका भी श्वेतहोताहै और एकसमान दोनों भासते हैं पर तिनकी परीक्षाके लिये सूर्यके सम्मुख दोनोंको रखिये तो जो धूप से गल जावे सो झूठा जानिये और जो ज्यों का त्यों रहे उसको सत् जानिये; तैसेही विचाररूपी सूर्य के सम्मुख करिये तो अहंकार बरफ की नाईं नष्ट होजाता है क्योंकि; जो अहंकार अनात्म अभिमान में होता है सो तुच्छ है—सर्वव्यापी नहीं। जीव इन्द्रियों की क्रिया जो अपने में मानता है

और परधर्म अपने में कल्पता है सो भी तुच्छ है; एवम् आपको भिन्न जानताहै और पदार्थ आप से भिन्न जानता है इससे विचार किये से बरफ के हीरे की नाईं मिथ्या होता है दूसरे अविचार सिद्ध है विचार किये से नष्ट होजाती है पर आत्मा सर्वसाक्षी ज्यों का त्यों रहता है। वह अहंकार और इन्द्रियों का भी साक्षी है और सर्वव्यापी है हे राजन्! जो सत् वस्तु है उसकी भावनाकर और सम्यक्दर्शी हो। सम्यक्दर्शी को कोई दुःख नहीं होता। जैसे मार्ग में रस्सी पड़ी हो उसको रस्सी जानिये तो कोई दुःख नहीं और सर्प जानिये तो भय होता है। इससे सम्यक्दर्शी हो—असम्यक्-दर्शी मत हो। हे राजन्! जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं वे सुखदायी नहीं हैं दुःखदायी ही हैं जबतक इनका संयोग है तबतक सुख भासता है पर जब वियोग होता है तब दुःख को प्राप्त करते हैं। इससे तू उदासीन हो; किसी दृश्य पदार्थ को सुखदायी न जान और दुःखदायी भी न जान। सुख और दुःख दोनों मिथ्या हैं इनमें आस्था मतकर और अहंकार से रहित जो तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो। जब अहंकार नष्ट होगा तब आपको जन्म मरण विकारों से रहित आत्मा जानोगे कि, मैं निरहंकार ब्रह्म चिन्मात्र हूं। ऐसे अहंभाव से रहित होने पर अपना होना भी न रहेगा केवल चिन्मात्र; आनन्द और रागद्वेष के क्षोभ से रहित शान्तरूप होगा। जब ऐसा आपको जाना तब शोच किसका करेगा? हे राजन्! इस दृश्य को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो और इस मेरे उपदेश को विचारो कि, मैं सत्य कहता हूं अथवा असत्य कहता हूं। जो विचार से संसार सत्य हो तो संसार की भावना करो और जो आत्मा सत्य हो तो आत्मा की भावना करो। हे राजन्! तू सम्यक्दर्शी हो सत् को सत् जान और असत् को असत् जान कि, जो असम्यक्दर्शी हैं वे सत्य को असत्य मानते हैं और असत्य को सत्य मानते हैं। ऐसे न जानने से असत् वस्तु स्थिर नहीं रहती अज्ञानी दुःख पाता है। जैसे कोई पुरुष एक कुटी रचकर चिन्तने लगा कि, मैंने आकाश की रक्षा की है तो जब कुटी नष्ट हो तब शोक करता है कि, आकाश नष्ट हो गया क्योंकि; आकाश

को वह कुटी के आश्रय जानता था; तैसेही अज्ञानी पुरुष आत्मा को देह के आश्रय जानकर देह के नष्ट हुये आत्मा का नाश मानता है और दुःखी होता है। जैसे सुवर्ण के भूषण कल्पित हैं; भूषणों के नष्ट हुये मूर्ख सुवर्ण को नष्ट मानता है तैसेही देहके नष्टहुये अज्ञानी आपको नष्ट जानता है पर जिसको सुवर्णज्ञान है वह भूषणों के नाश से भी सुवर्ण को देखता है और भूषणसंज्ञा कल्पित जानता है पर ज्ञानवान् आत्मा को अविनाशी जानताहै और देह और इन्द्रियों को असत् जानता है। हे राजन्! तू देह और इन्द्रियों के अभिमान से रहित हो। जब अभिमान से रहित इन्द्रियों की चेष्टा करेगा तब शुभ अशुभ क्रिया तुझे बांध न सकेंगी और जो अभिमान सहित करेगा तो शुभ अशुभ फल को भोगेगा। हे राजन्! जो मूर्ख अज्ञानी हैं वे ऐसी क्रिया का आरम्भ करते हैं जिसका कल्प पर्यन्त नाश न हो और देह-इन्द्रियों के अभिमान का प्रतिबिम्ब आपमें मानते हैं कि, मैं करता हूं, मैं भोगता हूं; इससे अनेक जन्म पाते हैं क्योंकि, उनके कर्मों का नाश कभी नहीं होता और जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानवान् पुरुष हैं वे आपको देह और इन्द्रियों के गुण से रहित जानते हैं और उनके संचित और क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाते हैं। संचित कर्म वृक्ष की नाईं हैं और क्रियमाण फूल फलकी नाईं हैं। जैसे रुई से लपेट कर अग्नि लगाये से वृक्ष, फूल, फल, सूखे तृणवत् दग्ध होते हैं तैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि से संचित और क्रियमाण कर्म दग्ध हो जाते हैं। इससे हे राजन्! जो कुछ चेष्टा तू वासना से रहित होकर करेगा उसमें कोई बन्धन नहीं जैसे बालक के अङ्ग स्वाभाविक ही भली बुरी प्रकार हिलते हैं, उसके हृदय में अभिमान नहीं फुरता इससे उसको बन्धन नहीं; तैसे ही तूभी इच्छा से रहित होकर चेष्टाकर तो तुझे कोई बन्धन न होगा। यद्यपि सब चेष्टा तुझमें तब भी भासेंगी तौ भी वासना से रहित होगा और और जन्म न पावेगा। जैसे भूना बीज देखने मात्र होता है और उगता नहीं तैसे ही तुझमें सर्व-क्रिया दृष्टि आवेगी परन्तु जन्म का कारण न होंगी और पुण्यक्रिया का फल और सुख न भोगेगा और पापक्रिया से दुःख न भोगेगा और पाप

पुण्य का स्पर्श न होगा। जैसे जल में कमल स्थित होता है और उसको जल स्पर्श नहीं करता तैसे ही पाप पुण्य का स्पर्श तुझे न होगा। इससे अभिलाषा से रहित होकर जो कुछ अपना प्रकृत आचार है सो कर। हे राजन्! जैसे आकाश में जल से पूर्ण मेघ भासते हैं परन्तु आकाश को लेप नहीं करते तैसेही तुझको कोई क्रिया बन्धन न करेगी। जैसे विष के खानेवाले को विष नहीं मार सक्ता तैसे ही ज्ञानी की क्रिया नहीं बांध सक्ती। ज्ञानवान् क्रिया करने में भी आपको अकर्ता जानता है पर अज्ञानी न करने में भी अभिमान से कर्ता होता है और देह और इन्द्रियों के न करते आपको कर्ता मानता है। जो देह इन्द्रियों से कर्ता है और उसके अभिमान से रहित है वह अकर्ता है और जो पुरुष कर्म से इन्द्रियों को संयमकर बैठता है पर मन में विषय के भोग की तृष्णा रखता है और जिसका अन्तःकरण राग द्वेष से मूढ़ है और बड़ी क्रिया को उठाता और दुःखी होता है वह मिथ्याचारी है। जो पुरुष मन में इन्द्रियों के रागद्वेष से रहित है-पर कर्म इन्द्रियों से चेष्टा करता है वह विशेष है अपने जाने में कुछ नहीं करता। वह मोक्ष पाता है। हे राजन्! अज्ञानरूप वासनासे रहित होकर बिचरो। जो ऐसे होकर बिचरोगे तो आपको ज्यों का त्यों आत्मा जानोगे और सदा उदयरूप सर्वका प्रकाशक आपको जानोगे और जन्म मरण बन्धमुक्ति विकार से रहित ज्यों का त्यों आत्मा भासेगा। हे राजन्! उस पद को पाकर न शांतिमान् होगा। अन्य सर्वकला अभ्यास विशेष विना नष्ट होती है। जैसे रस विना वृक्ष होता है तो यद्यपि फैलाववाला होता तौ भी उगता नहीं। ज्ञानकला अभ्यास विना नहीं उपजती और उपजकर नाश नहीं होती। जैसे धान बोते हैं तो दिन प्रतिदिन बढ़ने लगते हैं, तैसे ही ज्ञानकला प्राप्तकर दिन प्रतिदिन बढ़ती है। हे राजन्! ज्ञान उपजने से ऐसे जानता है कि, मैं न मरता हूं, न जन्मता हूं, निरहंकार, निष्किंचनरूप हूं, सर्वका प्रकाश हूं, अजर हूं और अमर हूं। हे राजन्! ऐसी ज्ञानकला पाकर जीव मोह को नहीं प्राप्त होता। जैसे दूध से दही हुआ फिर दूध नहीं होता और जैसे दूध को मथकर घृत

निकाला तो फिर नहीं मिलता तैसे ही जिसको ज्ञानकला उदय हुई है वह फिर मोह का नहीं स्पर्श करता । हे राजन्! अपने स्वरूप में स्थित होकर और उपाय के त्याग करने का नाम पुरुष प्रयत्न है। जिस पुरुष को आत्मा की भावना हुई है वह संसार समुद्र से पार हुआ है और जिसको संसार की भावना है वह संसारी जरामृत्यु दुःख को प्राप्त होता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थोपदेशो नाम शततमस्सर्गः॥ १००॥

मनु बोले, हे राजन्! बड़ा आश्चर्य है कि, शुद्ध चिन्मात्र आत्मा में माया से नाना प्रकार के देह, इन्द्रियां और दृश्य भासि आये हैं। हे राजन्! दृश्य का कारण अज्ञान है। जिस आत्मा के अज्ञान से दृश्य-रूप भासता है उसीके ज्ञान से लीन होजाता है इससे इस संवेदन को त्यागकर आत्मा की भावना कर! यह मैं हूं, ये मेरे हैं ये संकल्प मिथ्या ही फुरते हैं। हे राजन्! प्रथम कारणरूप से एक जीव उपजा और उस आदि जीव से अनेक जीवगण हुये। जैसे अग्नि से चिनगारे निकलते हैं तैसेही उसने अनेक रूप धारे हैं और कोई गन्धर्व, कोई विद्याधर, कोई मनुष्य, कोई राक्षस इत्यादिकहुये हैं। फिर जैसे संकल्प होतेगये हैं तैसेही रूप होतेगये, वास्तव में जैसे जल में तरङ्ग स्वरूप के प्रमाद से अनेकभाव को प्राप्त होते हैं तैसेही अपने संकल्प आपही को बन्धनरूप होतेगये हैं। इससे संकल्प नानात्वकलना मिथ्या है। हे राजन्! इस भावना को त्याग-कर आत्मपद की शरण को प्राप्त हो जो आत्म अनन्त है। कोई विश्व और प्रकार की भान होती है। जैसे समुद्र सम है पर उसमें कोई आवर्त्ततरङ्ग और बुद्बुदे उठते हैं सो जल से भिन्न नहीं तैसेही आत्मा में अनेक प्रकार का विश्व फुरता है सो आत्मा से भिन्न कुछ नहीं आत्मस्वरूप ही है इससे आत्मा की भावनाकर। कहीं ब्रह्म सत् संकल्प होकर फुरताहै तो जानता है कि, मैं ब्रह्म, शुद्धरूप और सदा मुक्तरूप हूं और इस संसारसमुद्र से पार हो गया हूं। जहां चेतनता शक्ति है वहां आपको जीवता मानता है और दुःखी भी जानता है। अन्तःकरण से मिलकर भोग की भावना करना और

सदा विषय की तृष्णा करना जीवात्मा कहाता है और जहां वासना क्षय हुई है और शुद्धआत्मा में आत्मप्रत्यक्ष है वहां जीवसंज्ञा नष्ट हो जाती है और केवल शुद्धआत्मा प्रकाशता है। हे राजन्! चेतन जब अन्तःकरण से मिलकर बहिर्मुख फुरता है तब संसारी हुआ जरा मरण से दुःखी होताहै और जहां चेतनशक्ति अन्तर्मुख होती है तब जन्म, मरण की भावना को त्यागकर स्वरूप की भावना करता है। और सर्वदुःख की निवृत्ति होती है। जब इसकी भावना स्वरूप की ओर लगती है तब कोई दुःख नहीं रहता और जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब दुःख पाता है। स्वरूप के ज्ञानसे आनन्दरूप मुक्त होता है। हे राजन्! तू संसाररूपी कूपकी गरारी न हो। जब गरारी रस्सी से बँधती है तो कभी ऊर्ध्व को जाती है और कभी अधो को जाती है पर जब रस्सी टूट पड़ती है तब न ऊर्ध्व को जाती है और न अधो को जाती है। कूप क्या है? अधो क्या है और ऊर्ध्व क्या है? सो भी सुन। हे राजन्! संसाररूपी कूप है, स्वर्गलोक ऊर्ध्वहै और नरक अधो है। पुण्य कर्म से स्वर्ग को जाता है और पापकर्म से नरक में जाता है। इसीप्रकार आशारूपी रस्सी से बँधा हुआ जीव जन्ममरणरूपी चक्र में फिरता है। स्वर्ग और नरक के फिरने का कारण आशा है। जब आशा निवृत्त होती है तब न कोई नरक है न स्वर्ग है। जबतक देह में अभिमान है तबतक नीच से नीच गति को प्राप्त होता है। जैसे पत्थर की शिला समुद्र में डारिये तो नीचे से नीचे चली जाती है तैसेही नीचस्थानों को देखकर देहाभिमानी नीचे को चला जाता है। जब इन्द्रियादिक का अभिमान त्याग करता है तब जैसे क्षीरसमुद्रसे निकलकर चन्द्रमा अधो से ऊर्ध्व को चला जाता है तैसेही ऊर्ध्व को जाताहै। हे राजन्। यदि आत्मा की भावना करोगे तो आत्मा ही होगा; इससे आशारूपी फांसी को तोड़-कर शान्तपद को प्राप्त हो आत्मा चिन्तामणि की नाईं है। जैसी भावना कीजिये तैसेही सिद्धि होती है, यदि तू आत्मभावना करेगा तो सम्पूर्ण विश्व अपने में देखेगा। जैसे पर्वत शिला और पत्थर सब अपने में देखता है तैसेही तू भी सर्वआत्मा में जानेगा। हे राजन्! जो कुछ दृष्टि है सो

सर्वात्मा के आश्रयहैं; शास्त्र और शास्त्रदृष्टि सब आत्मा के आश्रयहैं और राजा भी आत्मा के आश्रय है वह सर्वसत्य आत्मा चिन्तामणि कल्पवृक्ष है, जैसी कोई भावना करता है तैसी सिद्धि होती है। हे राजन्! फुरने में यह सर्वदृष्टि सत्य है और जब फुरना नष्ट होताहै तब न कोई शास्त्रहै और न कोई दृष्टिहै। केवल अद्वैत आत्मा है तो निषेध किसका कीजिये और अङ्गीकार किसका करिये। जो पुरुष अहंकार से रहित हुआ है वह सर्वशास्त्र दृष्टि पर विराजता है और सर्व आत्मा होताहै। जैन उसीको जैन कहते हैं और कालवाले उसीको काल कहते हैं। सर्व का आसरा आत्मा है। जो पुरुष देहाभिमानी है वह मूर्ख है और स्वरूप के अज्ञान से अधो ऊर्ध्व लोक को गमन-आगमन करता है; पशु, पक्षी, स्थावर-जङ्गम योनि पाताहै और आकाशरूपी फांसी से बँधा हुआ दुःखको प्राप्त होता है। जो पुरुष सम्यक्दर्शी है और जिसकी शुद्ध चेष्टा है उसको कोई विकार दृष्टि नहीं आता सब आकाश की नांई सदा निर्मल भासता है। उसको सम्पूर्ण विश्व आत्मस्वरूप भासता है और जो चेष्टा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादिक करते हैं उसका कर्ता भी आपको जानता है। उसको सर्वदुःख का अन्त होता है, वह आत्मपद को प्राप्त होता है और उसको सर्व सुख की सीमा प्राप्त होती है। हे राजन्! जैसे नदी तबतक चलती है जबतक समुद्र को नहीं प्राप्त हुई पर जब समुद्र को प्राप्त होती है तब नहीं चलती तैसेही जब तू आत्मपद को प्राप्त होगा तब कोई इच्छा तुझे न रहेगी। हे राजन्! तू अहंकार का त्यागकर अथवा ऐसा जान कि, सर्व मैंहीं हूं। जरा मरण आदिक दुःख तबतक हैं जबतक आत्मबोध नहीं प्राप्त हुआ; जब आत्मबोध होता है तब कोई दुःख नहीं रहता। दोनों ही दुःख भारी हैं पर ज्ञानी को इन्द्र के वज्रसमान दुःख भी स्पर्श नहीं करता। हे राजन्! जैसे पेड़ से सूखकर फल गिरता है उसी प्रकार जब ज्ञानरूपी फल प्राप्त होता है तब मन, बुद्धि, अहंकार पेड़ की नांई गिर पड़ता है। जबतक मन की चपलता है तबतक दुःख पाता है और जब मन की चपलता निवृत्ति होती है तब कोई क्षोभ नहीं रहता और शान्तपद को प्राप्त होता है। शान्ति

तब होती है जब प्रकृति का वियोग होता है। प्रकृति के संयोग से संसारी होता है और दुःख पाता है इससे प्रकृति अर्थात् अहंकार का त्यागकर और अहंकार से रहित होकर चेष्टाकर। जब तू अहंकार से रहित होगा तब उस पद को प्राप्त होगा जो न जड़ है, न चेतन है, न शून्य है, न अशून्य है, न केवल है न अकेवल है उसे न आत्मा कह सक्ते हैं न अनात्मा; न एक होता है न दो। जो कुछ नाम हैं सो प्रतियोगी से मिले हुये हैं। प्रतियोगी हुआ द्वैत होता है और आत्मा अद्वैतमात्र है जिसमें वाणी की गम नहीं और जो अवाच्यपद है उसको कैसे कहिये ? जितनी नाम संज्ञा हैं सो उपदेशमात्र हैं, आत्मा अनिर्वाच्यपद है। इससे संकल्प का त्यागकर और आत्मा की भावना कर। जब तू आत्मभावना करेगा तब केवल आत्मा ही प्रकाशेगा। जैसे फूल का कोई अङ्ग सुगन्ध से रहित नहीं तैसेही आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। हे राजन्! जब अहंकार का त्याग करोगे तब अपने आपसे शोभायमान होगे और आकाश की नांई निर्मल आत्मा में स्थित होगे। अहंकार को त्यागकर उस पद को प्राप्त होगे जहां शास्त्र और शास्त्रों के अर्थ प्राप्त नहीं होते; जहां सम्पूर्ण इन्द्रियों के रस लीन होजाते हैं और सब दुःख नष्ट होजाते हैं तब केवल मोक्षपद को प्राप्त होगे। हे राजन्! मोक्ष किसी देश में नहीं कि, वहां जाकर पावे, न किसी कालमें ही है कि, अमुककाल आवेगा तब मुक्त होगा और न कोई पदार्थ ही है कि, उसको ग्रहण करेगा; केवल अहंकार के त्याग से मोक्ष होताहै। जब तू अहंकारका त्यागकरेगा तभी मोक्षहै। जब तू इसअनात्म अभिमान को त्यागेगा तब अपने आपसे शोभायमान होगा और जैसे धुवां विना अग्नि प्रकाशमान होती है तैसेही अहंकार विना प्रकाशेगा। जैसे बड़े पर्वत पर निर्मल और गम्भीर तालाब शोभताहै तैसेही तू शोभेगा। हे राजन्! तू अपने स्वरूप में स्थित हो।

इति श्रीयोग० नि०प्र०समाधानवर्णनंनामैकाधिकशततमस्सर्गः॥१०१॥

मनु बोले, हे राजन्! तू शुद्ध और राग द्वेषसे रहित आत्मारामी नित अन्तर्मुख होरह। जब तू आत्मारामी होगा तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो

जावेगी और शीतल चन्द्रमा सा पूर्णवत् हो जावेगा। ऐसा होकर अपने प्रकृत आचार में बिचर और किसी फल की वाञ्छा न कर। जो पुरुष वाञ्छा से रहित होकर कर्म करता है वह सदा अकर्ता है और महा शोभा पाता है। ऐसी अवस्था में स्थित होकर जो भोजन आवे उसको भक्षण कर और जो अनिच्छित वस्त्र आवे उसको पहिर; जहां नींद आवे वहां सो रह और रागद्वेष से रहित हो। जब तू ऐसा होगा तब शास्त्र और शास्त्रों के अर्थ से उल्लंघित बर्तेगा जो ऐसा पुरुष है वह परम रस को पाकर मतवाला होता है और उसको संसार की कुछ इच्छा नहीं रहती। हे राजन्! ज्ञानवान् चाहे काशी में देह त्यागे अथवा चाण्डाल के गृह में त्यागे उसे सब स्थानों में मुक्ति है और वह सदा आत्मस्वरूप में स्थित है। वर्तमानकाल में वह देह को नहीं त्यागता क्योंकि; जिस काल में उसको ज्ञान हुआ उसी काल में देह का अभाव हुआ—ज्ञान से देह दग्ध हो जाती है। हे राजन्! ज्ञानवान् सदा मुक्तरूप है; वह न किसी की स्तुति करता है और न निन्दा करता है क्योंकि; उसके चित्त की कलना मिट गई है। यद्यपि राग द्वेष ज्ञानवान् में भी दृष्टि आते हैं और वह हँसता रोता भी देख पड़ता है परन्तु उसके अन्तःकरण में न राग है और न द्वेष है; और वह न हँसता है, न रोता है—ज्योंका त्यों है। जैसे आकाश शून्यरूप है और उसमें मेघ बादल भी दृष्टि आते हैं परन्तु आकाश को कुछ लेप नहीं करते; तैसेही ज्ञानवान् को कोई क्रिया बन्धन नहीं करती पर अज्ञानी जानते हैं कि, ज्ञानवान् को क्रिया बन्धन करती है। हे राजन्! ज्ञानवान् सर्वदा नमस्कार करने और पूजने योग्य हैं। जिस स्थान में ज्ञानवान् बैठता है उस स्थान को भी नमस्कार है; जिससे बोलता है उस जिह्वा को भी नमस्कार है और जिस पर ज्ञानवान् दृष्टि करता है उसको भी नमस्कार है; वह सबका आश्रयभूत है। हे राजन्! जैसा ज्ञानवान् की दृष्टि से आनन्द मिलता है वैसा आनन्द तप, दान और यज्ञ कर्मों से भी नहीं मिलता और ऐसी दृष्टि किसी में नहीं होती जैसी सन्त की दृष्टि है वह ऐसे आनन्द को पाता है जिसमें वाणी की

गम नहीं ! जो पुरुष सन्त की दृष्टि को पाकर सुखी होता है उससे लोग दुःख नहीं पाते और लोगों से वह दुःखी नहीं होता और न किसी का भय करता है; न किसी का हर्ष करता है। हे राजन्! सिद्धि पाने का सुख अल्प है, क्योंकि, उड़ने की सिद्धि पाई तो अनेक पक्षी उड़ते फिरते हैं; इससे आत्मज्ञान तो नहीं मिलता और आत्मज्ञान विना शान्ति नहीं होती जब आत्मज्ञान प्राप्त होता है तब जरा, मृत्यु आदिक दुःख से मुक्त होता है और कोई दुःख नहीं रहता। जैसे पिंजरे से छूटा सिंह फिर पिंजरे के बन्धन में नहीं पड़ता, तैसेही वह पुरुष अज्ञानरूपी पिंजरे में नहीं फँसता। हे राजन्! इससे तू आत्मा की भावना कर कि, तेरे दुःख नष्ट होजावें। अज्ञान से तुझे दुःख भासते हैं—अज्ञान से रहित सदा आनन्द रूप है इससे अनुभवरूप आत्मा में स्थित हो। जब तू आत्मा में स्थित होगा तब जैसे शुद्धमणि के निकट श्वेत, रक्त, पीत, श्याम आदि रङ्ग रखिये तो वह उनके प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है पर कोई रङ्ग स्पर्श नहीं करता कल्पित से भासते हैं, तैसेही तू प्रकृत आचार को अङ्गीकार करता रहेगा पर तुझे पाप पुराय का स्पर्श न होगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिर्नाम-
द्व्यधिकशततमस्सर्गः ॥ १०२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार उपदेश करके जब मनुजी तूष्णी होगये तब राजाने भली प्रकार उनका पूजन किया। फिर मनुजी आकाश को उड़के ब्रह्मलोक में जा पहुँचे और राजा इक्ष्वाकु राज्य करने लगा। हे रामजी ! जैसे राजा इक्ष्वाकु ने जीवन्मुक्त होकर राज्य किया है तैसेही तुम भी इस दृष्टि का आश्रय करके बिचरो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो कहा कि, जैसे राजा इक्ष्वाकु ज्ञान पाकर राज्य चेष्टा करता रहा तैसेही तू भी कर उसमें मेरा यह प्रश्न है कि; जो अतिशय अपूर्व हो उसका पाना विशेष है और जो पूर्व में किसी ने पाया है उसका पाना अपूर्व और अतिशय नहीं; इसलिये मुझसे कहिये कि; सर्व से विशेष अपूर्व अतिशय क्या है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ज्ञानवान् सदा

शान्तरूप और रागद्वेष से रहित है और वह अपूर्व अतिशय को पाता है। जो कुछ और अतिशय है वह पूर्व अतिशय है पर ज्ञानवान् अपूर्व अतिशय को पाता है ज्ञानी से अन्य कोई नहीं पाता आत्मज्ञान को ज्ञानी ही पाता है और वह ज्ञान एकही है। हे रामजी ! जो दूसरा नहीं पाता तो अपूर्व अतिशय हुआ। हे रामजी ! अपूर्व अतिशय को पाकर ज्ञानवान् प्रकृत आचार और सर्व चेष्टा भी करता है तौभी निश्चय सर्वदा आत्मा में रखता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! ऐसा ज्ञानवान् जो अज्ञानी की नाईं सर्व चेष्टा करता है उसकी किन लक्षणों से तत्त्ववेत्ता जानिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक स्वसंवेद लक्षण है और दूसरा परसंवेद लक्षण है। आपही अपने को जाने और न जाने इसे स्वसंवेद कहते हैं और जिसको और भी जानते हैं उसे परसंवेद कहते हैं। हे रामजी ! परसंवेद के लक्षण कहता हूं सो सुनो। तप, दान, यज्ञ, व्रत इत्यादिक करना परसंवेद है और दुःख–सुख की प्राप्ति में धैर्य से रहना समान साधु के लक्षण हैं। महाकर्त्ता और महाभोक्ता और महात्यागी होना, क्षमा, दया इत्यादिक लक्षण साधु के हैं ज्ञानवान् के नहीं और उड़ना, छिप जाना, जो अणिमादिक सिद्धि हैं वे भी समान लक्षण हैं परन्तु ये स्वाभाविक आन फुरते हैं सो और से भी जाने जाते हैं पर जो ज्ञानी के लक्षण हैं वे स्वसंवेद हैं। इससे भिन्न उसके शिर में सींग नहीं होते कि, उससे जानिये। जैसे और व्यवहार हैं तैसेही ज्ञानी को सिद्धिसमान है। यह भी ज्ञानवान् का लक्षण नहीं और पुण्य पापादिक क्रिया परसंवेद हैं सो माया के कल्पे हैं ज्ञानी के नहीं। जितने लक्षण देखने में आवेंगे वे मिथ्या हैं और माया के कल्पे हैं। ज्ञानीका लक्षण स्वसंवेदहै। वह सर्वदा आत्मामें स्थितहै और अपने आपसे संतुष्ट है। उसे न किसी का हर्ष है, न शोक है; जन्म मरण में समान है और काम, क्रोध, लोभ, मोह सर्वको जानता है। उसका लक्षण इन्द्रियों का विषय नहीं क्योंकि; वह निर्वाच्यपद को प्राप्त हुआ है। हे रामजी ! जिसको ज्ञान प्राप्त होता है उसका चित्त स्वाभाविक ही विषयों से विरस होता है और वह इन्द्रियजित् होता है–उसको भोगों की इच्छा निवृत्त होजाती है।

इति श्रीयो०नि०ज्ञानिलक्षणविचारो नाम त्र्यधिकशततमस्सर्गः ॥१०३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मायाजाल का काटना महाकठिन है। यह आदि कलना जीवको हुई है। जो कोई इसमें सत्‌बुद्धि करता है वह पखेरू की नाईं जाल में फँसा हुआ निकल नहीं सक्ता है-तैसेही अनात्म अभिमान से निकल नहीं सक्ता है। हे रामजी! फिर मेरे वचन सुनो क्योंकि; जैसे मेघ का शब्द मोर को प्रियतम लगता है, तैसेही मेरे वचन प्रिय लगते हैं। मैं भी तेरे हित के निमित्त कहता और उपदेश करता हूं। रघुकुलका ऐसा गुरु कोई नहीं हुआ जो शिष्य का संशय निवृत्त न करे। हे रामजी! मेरा शिष्य भी ऐसा कोई नहीं हुआ जो मेरे उपदेश से न जगा हो। इस निमित्त मैं तप, ध्यान आदिक को भी त्यागकर तुझे जगाऊंगा-इससे मैं तुझको उपदेश करता हूं। हे रामजी! शुद्ध आत्मा में जो अहंभाव हुआ है और जो कुछ अहंकार से भासता है सो मिथ्या है-इसमें कुछ सत् नहीं-और जो इसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है वह सत्य है-उसका कदाचित् नाश नहीं होता। जो जो वस्तु फुरने से उपजी हैं वे सब नाशवन्त हैं-यह बात बालक भी जानते हैं। जो सत्य है वह असत्य नहीं होता और जो वस्तु असत् है वह सत् नहीं होती। जैसे रेत से घृत निकलना असत् है अर्थात् कदाचित् नहीं निकलता। जैसे एक मेढक के लाख कणका करिये अथवा शिला पर घिसिये पर जब उस पर वर्षा होती है तब सर्व कणके दर्दुर होजाते हैं। हे रामजी! तो वे दर्दुर तब उत्पन्न हुये जब उनमें सत्यता थी। इससे सत्य का कदाचित् नाश नहीं होता और असत्य का सद्भाव कदाचित् नहीं होता। हे रामजी! सत्‌ब्रह्म की भावना करो। जो ब्रह्म की भावना करता है वह ब्रह्म ही होता है। जैसे घृतमें घृत; दूध में दूध और जलमें जल मिल जाताहै तैसे ही यह जीव भावना करके चिद्‌घन ब्रह्म के साथ एक हो जाता है और जीव-संज्ञा निवृत्त हो जाती है। जैसे अमृत के पान किये से अमर होता है तैसे ही ब्रह्म की भावना करने से ब्रह्म होता है। जो अनात्मा की भावना करता है तो पराधीन होकर दुःख पाता है। जैसे विष के पान किये से अवश्य मरता है तैसे ही अनात्मा की भावना से अवश्य दुःख पाता

है और उसका नाश होता है। इससे आत्मभावना करो। हे रामजी! जो वस्तु संकल्प से उदय होती है वह थोड़े काल रहती है और जो चल वस्तु है वह भी अवश्य नाश होती है। यह दृश्य आत्मा में भ्रम से सिद्ध है। जैसे मृगतृष्णा का जल; सीपी में रूपा और आकाश से दूसरा चन्द्रमा भ्रमसे सिद्ध है—वास्तव नहीं; तैसेही अहंकार देह इन्द्रियों से सुख भासता है सो सब मिथ्या है। इससे दृश्य की भावना त्याग करके अपने अनुभवस्वरूप में स्थित हो। जब आत्मा में स्थित होगे तब मोह को न प्राप्त होगे। जैसे पारसके स्पर्श से सुवर्ण हुआ तांबा फिर तांबा नहीं होता, तैसेही तू भी जब आत्मपद को जानेगा तब फिर इस मोह को न प्राप्त होगा कि, मैं हूं, यह मेरा है 'अहं' त्वंभाव तेरा निवृत्त हो जावेगा और यह भावना न रहेगी। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मच्छर और जूं आदिक जो प्रस्वेद से उत्पन्न होते हैं सो सब कर्म करके उत्पन्न होते हैं और देवता, मनुष्यादिक सब कर्मों से उत्पन्न होते हैं अथवा कर्मों विना भी कुछ होते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि परमात्मा से जो सब जीव उत्पन्न हुये हैं सो चार प्रकार के हैं। एक तो कर्मों से उत्पन्न हुये हैं और एक कर्मों विना हुये हैं; एक आगे होंगे और एक अब भी उत्पन्न होते हैं। रामजी बोले, हे संशयरूपी हृदयअन्धकार के निवृत्त करनेवाले सूर्य और संदेहरूपी बादलों के निवृत्त करनेवाले पवन! कृपा करके कहिये कि, कर्मों विना कैसे उत्पन्न होते हैं और कर्मों से कैसे उत्पन्न होते हैं? कैसे कैसे हुये हैं; कैसे होते हैं और कैसे आगे होंगे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा चिदाकाश अपने आपमें स्थित है। जैसे अग्नि अपनी उष्णता में स्थित है तैसेही आत्मा अपने स्वभाव में स्थित है। वह अनन्त और अविनाशी है—उसमें फुरनशक्ति स्वाभाविक स्थित है जैसे पवन में स्पन्दशक्ति स्वाभाविक होती है और जैसे फूलों में सुगन्ध स्वाभाविक रहती है, तैसेही आत्मा में फुरनशक्ति है। हे रामजी! फुरनशक्ति जैसे ही आद्यफुरी है तो उस शब्द की अपेक्षा से आकाश हुआ और जब स्पर्श की अपेक्षा की तब पवन प्रकट हुआ। इसी प्रकार पञ्चतन्मात्रा

हो आईं शुद्धसंवित् में जो आदि फुरना हुआ उससे प्रथम अन्तवाहक शरीर हुये; उनका निश्चय आत्मा में रहा कि, हम आत्मा हैं और सम्पूर्ण विश्व हमारा संकल्प है। हे रामजी! कई इस प्रकार उत्पन्न होकर अन्त-वाहक से फिर विदेह मुक्तिको प्राप्त हुये। जैसे जल से बरफ़ होकर सूर्य के तेजसे शीघ्रही फिर जल होजाती है तैसेही वे शीघ्र ही विदेहमुक्ति हुये। कई अन्तवाहक से आधिभौतिक इस प्रकार होगये कि, जब तक अन्त-वाहक में स्मरण रहा तबतक अन्तवाहक रहे और जब स्वरूप का प्रमाद हुआ और संकल्प से जो भूत रचे थे उनमें दृढ़ निश्चय हुआ और जाना कि, हम ये हैं तब आधिभौतिक होगये जैसे ब्राह्मण शूद्रों के कर्म करने लगे और उसके निश्चय में हो जावें कि, मेरा यही कर्म है और जैसे शीत करके जलसे बरफ़ होजाती है तैसेही संवित् में जब दृढ़ संकल्प हुआ तब उन्होंने आपको आधिभौतिक जाना। हे रामजी! आदि पर-मात्मासे जो कर्म विना उत्पन्न हुये हैं उनका कोई कर्म नहीं क्योंकि; जो अन्तवाहक में रहे उनकी ईश्वरसंज्ञा हुई। उनके संकल्प से जीव उपजे, उनका कारण ईश्वर हुआ और आगे जीवकलना से उनका फुरना कर्म हुआ। आगे जैसे २ कर्म संकल्पसे करते हैं तैसे २ शरीर धारते हैं। हे रामजी! आत्मा से जो जीव उपजे हैं सो आदि-अकारण होते हैं; जो आज उपजे हैं तौभी और जो चिरकाल से उपजे हैं तौ भी। वे पीछे कारण भावको कर्मके वशसे प्राप्त हुये हैं। हे रामजी! जिनका आदि फुरना हुआ है और स्वरूपमें दृढ़ निश्चय रहा है उनकी संज्ञा पुण्य है और जो स्वरूप को विस्मरण करके आधिभौतिक में निश्चय करते रहे उनकी धनसंज्ञा है। हे रामजी! पुण्य से धन होना सुगम है और धनसे पुण्य होना कठिन है-कोई भाग्यवान् पुरुष ही यत्न करके धन से पुण्यवान् होता है। जैसे पर्वत से पत्थर गिरना सुगम है तैसे ही पुण्य से धन होना सुगम है और जैसे पत्थर को पर्वत पर चढ़ाना कठिन है तैसेही धन से पुण्य होना कठिन है। कितने चिरकाल धन में बहते हैं और कितने यत्न करके शीघ्रही पुण्यवान् होते हैं। हे रामजी! जो सदा अन्तवाहक रहते

हैं उनकी संज्ञा ईश्वर है और जो अन्तवाहक को त्यागकर आधिभौतिक होते हैं वे जीव कहाते हैं और परतन्त्र हैं-जैसे कर्म करते हैं तैसेही शरीर धारते हैं। जो धन से पुण्य होते हैं वे ज्ञानवान् हैं और उनका फिर जन्म नहीं होता। अब भी जो प्रथम उत्पन्न होते हैं वे कर्म विना होते हैं और जब अपने स्वरूप से गिरते हैं तब जैसा संकल्प करते हैं तैसेही शरीर धारते हैं। हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र है; इससे संकल्प का त्याग करो। इस दृश्य की आस्था न करो। हे रामजी! खाना, पीना इत्यादिक चेष्टा करो परन्तु उसमें अहंभाव न करो। अहंकार अज्ञान से सिद्ध हुआ है सो दृश्य मिथ्या है। अहंभाव के होने से दुःखी होता है। इससे अहंकार से रहित चेष्टा करो। हे रामजी! बन्धन और मोक्ष का लक्षण सुनो। विषय और इन्द्रियों के संयोग से इष्ट में राग करना और अनिष्ट में द्वेष करना ही बन्धन है। जैसे जल में पक्षी बन्धायमान होता है। ग्राह्य ग्राहक इन्द्रियां और विषयके सम्बन्धसे इष्ट अनिष्ट होताहै। जिसमें इन्द्रियों का संयोग होता है उसमें समबुद्धि रहै, उनके धर्म अपने में न देखे और उनका जाननेवाला जो अनुभवरूप आत्मा है उसमें साक्षीरूप होकर स्थित रहे; इस प्रकार जो इनका ग्रहण करता है वह सदा मुक्तिरूप है और जो इससे भिन्न है वह मूर्ख जीव बन्धवान् है। तुम इस ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध से सावधान रहो। इनका सम्बन्ध ही बन्धन है और इनसे रहित होना मुक्ति है। राग-द्वेष करनेवाला मन है; इस मन का त्याग करो; मनही दुःखदायी है। जैसे कुम्हार का चक्र फिरता है और उससे बासन उत्पन्न होते हैं तैसेही मनरूप चक्र से पदार्थरूपी बासन उत्पन्न होते हैं। मनके फुरने से संसार सत्य होता है और जब फुरना निवृत्त होगा तब कोई दुःख न रहेगा। हे रामजी! जब फुरने और अफुरने में समान होंगे तब राग द्वेष से रहित होकर बिचरोगे। यह हो और यह न हो; इससे रहित होकर चेष्टा करो। अभिलाषपूर्वक संसार में न फुरो। हे रामजी! पूर्व जो ज्ञानवान् हुये हैं उनको चित् चिन्तना न थी और आगे होनेकी आशा भी न थी। वर्तमानकाल में शास्त्र के अनुसार राग द्वेष से रहित

वे चेष्टा करते हैं; इससे तू भी संकल्प का त्यागकर स्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त किसी पदार्थ में राग हुआ तो बन्धन है। मेरा यही आशीर्वाद है कि, ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त किसी पदार्थ में तुम्हें रुचि न हो, अपने आपही में रुचि हो। हे रामजी! यह संसार मिथ्या है और इसमें कोई पदार्थ सत् नहीं है—सर्व मनके रचे हुये हैं; इससे मन को स्थित करो। जैसे धोबी साबुन मिला के वस्त्र का मैल दूर करता है तैसेही मन से मन को स्थिर करो। जब मन को स्वरूप में स्थिर करोगे तब मन अपने संकल्प को आप ही नाश करेगा। जैसे दुष्ट पुरुषकी जब धनसे वृद्धि होती है तब वह अपने भाई आदिक के नाश करने का उपाय करता है, तैसेही मन जब आत्मपद में स्थित होता है तब अपने संकल्पको नाश करताहै जब तुम्हारा मन स्वरूप में स्थित होगा तब तुम अमन होगे और तुम्हारे सब दुःख नष्ट होजावेंगे। मन के नाश विना कोई सुख नहीं। हे रामजी! यह मन ऐसा दुष्ट है कि, जिससे उपजताहै उसीके नाशका निमित्त होता है। जैसे बांस से अग्नि उपजकर उसीको जलाती है, तैसेही आत्मा से उपजकर यह मन आत्मा ही को तुच्छ करता है। जैसे राजा का नौकर राजा की सत्ता पाकर राजाको ही मारकर आप राजा होताहै, तैसेही मन आत्माकी सत्ता पाकर और उसको ढांपकर आपही कर्ता भोक्ता हो बैठा है। इससे मन को मनही से नाश करो। जैसे लोहा तपाकर लोहे को काटता है तैसेही मनसे मनही को शुद्ध करो। हे रामजी! वृक्ष, बेलि, फल, फूल, पशु, पक्षी, देवता, यक्ष, नाग जो कुछ स्थावर—जंगम पदार्थ हैं वे प्रथम कर्मों के विना उत्पन्न हुये हैं और पीछे जब स्वरूप से गिरते हैं और धन पद को प्राप्त होते हैं तब कर्मों से शरीर होते हैं। कर्मों का बीज अहंकार है और अहंकार में शरीर है। जैसे बीज से वृक्ष होता है और समय पाकर फूल, फल प्रकट होते हैं; तैसेही अहंकार से शरीर प्रकट होते हैं और जब अहंकार नष्ट हुआ तब कोई शरीर नहीं—केवल आत्मपद है। अहंकार है नहीं और प्रत्यक्ष दिखाई देता है और आत्मा अच्युतहै पर गिरे की नाईं भासता है; निरवलम्ब है और अवलम्बकी नाईं

दृष्टि आताहै; निराकार है पर आकार सहित भासता है; निराभास है और आभास सहित दिखाई देता है। इससे केवल चिन्मात्र आत्मामें स्थितहो। यह सब चिन्मात्र ही रूप है। हे रामजी! जब ऐसी भावना होती है तब चित् अचित् होजाता है और जब चित् अचित् हुआ तब जगत्कलना मिट जाती है केवल आत्मतत्त्व ही भासता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्माकर्मविचारो नाम चतुरधिकशततमस्सर्गः॥ १०४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस जीव के तीन स्वरूप हैं-एक स्वरूप तो शुद्धात्मा चिदानन्द ब्रह्म है जिससे सर्व प्रकाशते हैं; दूसरा अन्तवाहक पुण्यनाम है जो आत्मा के प्रमाद से हुआहै। जो मात्रपद से उत्थान हुआ है तौ भी प्रमाद नहीं क्योंकि; आत्मा का स्मरण रहा है और जब आत्मा का स्मरण भूला तब तीसरा आधिभौतिक हुआ और पञ्चतत्त्व को अपना आप जानने लगा है। हे रामजी! ये तीन स्वरूप जीव के हैं। आत्मा के प्रमाद से जीवसंज्ञा पाता है और दुःखी और परतन्त्र होता है। इससे पञ्चभौतिक और अन्तवाहक को त्यागकर वास्तवस्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! ये जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर हैं सो विचार से नष्ट हो जाते हैं पर तीसरा जो स्वरूप है वह सत्य है। तू उसीमें स्थितहो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ये तीन रूप जो तुमने जीव के कहे उनके मध्य में नाशरूप कौन है और सत्रूप कौन है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! हाथ पांव संयुक्त जो देह है और भोग से मिली हुई है वह स्थूलरूप है और यह जीव अपनेही संकल्प से सदा फैलाव रचता है। चित्तरूपी देह इस फुरनेरूप से अन्तवाहक है वह सदा प्राणवायु के रथ पर स्थित रहता है-देह हो चाहे न हो। हे रामजी! ये दोनों शरीर उपजते और नष्ट भी होते हैं और आदि अन्त से रहित चिन्मात्र निर्विकल्प हैं उसे जीव का परमरूप जानो। जो तुरीयापद है उसीसे जाग्रदादिक उपजे हैं और उसीमें लीन होते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं तीनको जानता हूं-एक जाग्रत् है जो निद्रा से रहित है और जिसमें इन्द्रियां

और चार अन्तःकरण अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं; दूसरा स्वप्न है वहां भी इन्द्रियां विषय को जाग्रत् की नाईं संकल्प से ग्रहण करती हैं और तीसरे में इन्द्रियां अपने विषय से रहित होती हैं और जड़ता आती है, तब कुछ नहीं भासता शिला की नाईं जड़ता तमोगुण आत्मा है—सो सुषुप्ति है। इन तीनों को तो मैं जानता हूं पर तुरीया और तुरीयातीत को कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अपना होना और न होना दोनों को त्यागकर पीछे केवल तुरीयापद रहता सो शान्त और निर्मलपद है। हे रामजी! तुरीया जाग्रत् नहीं क्योंकि; जाग्रत् संकल्प जाल है और उसमें इन्द्रियों से राग द्वेष होता है तुरीया स्वप्न अवस्था भी नहीं क्योंकि; स्वप्न भ्रमरूप होता—जैसे रस्सी में सर्प भासता है सो और का और संकल्प होताहै और तुरीया सुषुप्ति भी नहीं क्योंकि; उसमें अत्यन्त जड़ता है और तुरीया चेतनरूप, उदासीन और शुद्ध है और जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति से रहित है। जीवन्मुक्त तुरीयापद में स्थित रहता है। हे रामजी! जो तुरीयापद में स्थित है उसको यह स्थिति भी है और वह जगत् से भी शान्तरूप होजाता है और अज्ञानी को वज्रसारवत् दृढ़ है। ज्ञानी सदा शान्तरूप है क्योंकि; वह तीनों अवस्थाओं का साक्षी है, उसको न उनके राग हैं न द्वेष हैं उदासीन की नाईं हैं। तुरीयातीतपद को वाणी की गम नहीं। जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होता है तब इसी पद को प्राप्त होता है जहां वाणी की भी गम नहीं। जब तक जीवन्मुक्त है तब तक तुरीयापद में स्थित रह राग द्वेष से रहित होता है और इन्द्रियां भी अपने विषय में राग द्वेष से रहित होकर स्वाभाविक बर्तती हैं। जिस पुरुषको राग द्वेष उत्पन्न होताहै वह तुरीयापद को नहीं प्राप्त हुआ और चित्त सहित है और जिस पुरुष को राग द्वेष नहीं उत्पन्न होता उसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है। जिसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है उसको संसार की सत्यता नहीं भासती; वह स्वप्नवत् जगत् को देखता है। इससे तू भी सत्पद में स्थित होकर साक्षीरूप हो रह।

इति श्रीयोग०निर्वाण०तुरीयापदविचारो नाम पञ्चाधिकशततमस्सर्गः १०५

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! कर्ता, कारण और कर्म ये तीनों हों पर तू इनका साक्षी हो । इनका कर्तृत्व अभिमान तुझे न हो कि, मैं यह कर्ताहूं अथवा मैंने इसका त्याग किया है, उदासीन की नाईं होरह । इसीपर एक आख्यान कहता हूं उसे सुनो । तुम प्रबुद्ध हो तो भी दृढ़ बोधके निमित्त सुनो । हे रामजी ! एक वनमें काष्ठमौन-नामक एक मुनि रहताथा । निदान एक दिन एक वधिक किसी मृग पर बाण चलाते हुये उसके पीछे दौड़ता जाता था जब वह आगे गया तो मृग वधिक की दृष्टि से अगोचर होगया । वधिक ने देखा कि, एक तपस्वी बैठा है; उससे पूछा, हे मुनीश्वर ! यहां एक मृग आया था सो किस ओर को गया तुमने देखा हो तो मुझसे कहो ? काष्ठमौन बोले, हे वधिक ! हमको कुछ सुधि नहीं क्योंकि, हम निरहंकार हैं, हमारे साथ चित्त और अहंकार दोनों नहीं । जो तुम कहो कि, इन्द्रियों की चेष्टा कैसे होती है; तो जैसे सूर्य के आश्रय लोगों की चेष्टा होती है और दीपक की मणि के आश्रय चेष्टा होती है और सूर्य दीपक मणिप्रकाश के साक्षीभूत हैं तैसेही हम इन्द्रियों के साक्षीभूत हैं और इनकी चेष्टा स्वाभाविक होती है । हमको इनसे कुछ प्रयोजन नहीं । हे वधिक ! अहंभाव करनेवाला अहंकार है । जैसे माला के भिन्न भिन्न दाने तागे के आश्रय होते हैं और सबमें एक तागा होता है तब माला होती है पर जब तागा टूट पड़ता है तब दाने भिन्न २ हो जाते हैं; तैसे ही इन्द्रियांरूपी दाने हैं और अहंकाररूपी तागा है; उस अहंकाररूपी तागे के टूटने से इन्द्रियां भिन्न २ हो जाती हैं । जैसे राजा के नाश हुये सेना और गोपाल के नष्ट हुये गौवें भिन्न २ हो जाती हैं और पिता के नष्ट हुये बालक व्याकुल होते हैं तैसे ही अहंकार बिना इन्द्रियां व्याकुल होती हैं । इनका अभिमान मुझमें कुछ नहीं । इनका अभिमानी अहंकार था सो मेरा नष्ट हो गया है । इन्द्रियां अपने २ विषय में बिचरती हैं मुझको इनका न राग है और न द्वेष है । हे साधो ! मुझे न जाग्रत् है और न स्वप्न, सुषुप्ति भासती है; इन तीनों से रहित हम तुरीयापद में स्थित हैं और हमारा अहं त्वं मिट गया है । हम नहीं जानते कि,

मृग बायें गया या दाहिने क्योंकि; नेत्र इन्द्रियां देखनेवाली हैं उनको बोलने की शक्ति नहीं। ये अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं, एक इन्द्रिय को दूसरे की शक्ति नहीं फिर तुमसे कौन कहे ? इन सबका धारनेवाला अहंकार था जो सबको अपना आप जानता था। जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट होते हैं तैसे ही अहंकार के नष्ट होने से हम स्वच्छ, निर्मल शान्त तुरीयापद में स्थित हैं। इन्द्रियों का जीव और अहंकार मृतक हो गया है और इन्द्रियां भी मृतक होगई हैं देखनेमात्र दृष्टि आती हैं। जैसे भीत पर पुतलियां लिखी हों पर उनके कार्य कुछ न हों तैसेही हमारी इन्द्रियों से कुछ कार्य नहीं होता तो तुमसे कौन कहे। वशिष्ठजी बोले, हे रामचन्द्र! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब वधिक समझकर उठ गया। हे रामजी! तुरीयापद शान्तरूप है जहां जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों का अभाव है वह केवल अद्वैतपद है। ये जो ब्रह्म, आत्मा, चिदानन्द आदि संज्ञा हैं सो तुरीयापद में हैं और तुरीयातीतपद में शब्द की गम नहीं वह अशब्दपद है। विदेहमुक्त पुरुष उसी पद को प्राप्त होते हैं और जीवन्मुक्त साक्षात् करके तुरीयावस्था में बिचरते हैं; जहां जाग्रत् जो दीर्घ दुःख सुख का भान है सो नहीं और स्वप्न जो राग द्वेष के लिये अल्पकाल है सो भी नहीं और जड़ता तामस अवस्था भी नहीं। इन तीनों से रहित तुरीयापद है और शान्त है उसमें कोई क्षोभ नहीं। यह जगत् उसका आभास है। जैसे समुद्र में तरङ्ग वास्तव में कुछ नहीं—जल ही है, तैसेही केवल तुरीयास्वरूप सत्तासमान तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सिद्ध, ज्ञानी इत्यादिक स्थित हैं और काष्ठमौन वधिक का उपदेश करनेवाला भी तुरीयापद में स्थित है। उसकी विशेषकलना जो भिन्न २ नामरूप को देखनेवाली थी निवृत्त हुई थी, केवल सत्तासमान में स्थित था। इससे कलना को त्यागकर तुम भी तुरीयापद में स्थित हो रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे काष्ठमौनवृत्तान्तवर्णनं नाम षडधिकशततमस्सर्गः॥ १०६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व केवल आकाशरूप है पर आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, आत्मा का ही चमत्कार है। जैसे मेघ में बिजली का चमत्कार होता है तैसेही यह विश्वरूप चित्तकला आत्मा का चमत्कार है। हे रामजी! वास्तव में ब्रह्म ही है कुछ भिन्न नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह विश्व आपने ब्रह्मरूप कहा कि, मेघ में बिजली की नाईं क्षणमें उपजता और क्षण में लीन होता है; पर मेघ में बिजली दृष्टिआती है। जहां मेघ होता है वहां बिजली भी होती है इससे मेघ से बिजली उत्पन्न हुई तो उसका कारण मेघ है? हे मुनीश्वर! इस चित्तस्पन्द कला के कारण की उत्पत्ति ब्रह्म से कैसे हुई है सो कृपा करके मुझसे समझाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो वितण्डक होकर तुम तर्क करते हो सो कुछ नहीं–इस नाशबुद्धि को त्यागो। यह तो बालक भी जानते हैं कि, बिजली क्षणभंगुररूप है सत्य नहीं। तुम्हारा और क्या प्रयोजन है सो कहो। यह तर्क कारण कार्यरूप का कैसा करते हो? रामजी बोले, हे भगवन्! यह स्पन्दकला सत्य है वा असत्य है? इसका कारण कौन है जिससे यह फुरती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्व प्रकार से सर्वात्मा ही स्थित है। चित्त और चित्तस्पन्द यह भेदकल्पना वास्तव में कुछ नहीं; ब्रह्म ही अपने स्वरूप में आप स्थित है और सब भ्रम से भासते हैं। जैसे भ्रमदृष्टि से आकाश में मोती भासते हैं और नेत्र मूंदकर खोलो तो तरुवरे आकार भासते हैं, तैसेही यह जगत् भ्रम से भासता है। हे रामजी! हम इस संसारसमुद्र के पार हुये हैं। हम प्रभृति ज्ञानवानों के यथार्थ वचन सुनकर हृदय में धारो तो शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति हो और जो मूर्खता करके मेरे वचनों को न धारोगे तो तुम्हारे दुःख नष्ट न होंगे और वृक्ष, तृण, बेल आदिक योनि पाओगे। हे रामजी! आकाश और काल आदिक पदार्थ सर्वकलना से सिद्ध हुये हैं–आत्मा में कोई नहीं। हे रामजी! वायु से रहित जो समुद्र का चमत्कार है उसका कारण कौन है? दीपक में जो प्रकाश और अग्नि में उष्णता है तो उस प्रकाश और उष्णता का कारण कौन है?

वायु के निस्स्पन्द और स्पन्द का कारण कौन है ? जैसे इनका कारण कोई नहीं, वायु का रूप स्पन्द निस्स्पन्द है, अग्नि का रूप उष्णता है और दीपक का रूप प्रकाश है तैसेही कलना भी आत्मस्वरूप है-कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी! यह कलना जो तुझको भासती है उसको त्याग करो। जब अपने आप को देखोगे तब संशय मिट जावेंगे। जैसे जब प्रलयकाल का जल चढ़ता है तब सर्व जलमय हो जाता है-कुछ भिन्न नहीं होता, तैसे ही अपने स्वरूप को जब तुम देखोगे तब तुमको सर्व आत्माही भासेगा-आत्मासे भिन्न कुछ न दृष्ट आवेगा हे रामजी! आत्मा एकरसहै; सम्यक्दर्शनसे ज्योंका त्यों भासेगा और असम्यक्दर्शन से और का और भासेगा। जैसे रस्सी को यथार्थ न देखिये तो सर्पभ्रम होता है और भयवान् होता है और जब ज्योंकी त्यों रस्सी जानी तब सर्पभ्रम निवृत्त होजाताहै तैसेही आत्मा के न जाने से जीव संसारी होता है, भयभीत होता है, आपको जन्मता मरता मानता है और सर्वविकार देह के आत्मा में जानता है पर जब आत्मा को जानता है तब सर्व भ्रम निवृत्त होजाते हैं। जैसे नेत्रों से तारे दिखते हैं और जब नेत्र मूंद लो तो उनका आकार अन्तःकरण में भासता है क्यों-कि, उनकी सत्यता हृदय में होती है-पर जब हृदय से उनकी सत्यता उठजाती है तब फिर नहीं भासते, तैसेही चित्त के भ्रम से संसार हुआ है उसको मिथ्या जानो। हे रामजी! फुरने में जो दृढ़भावना हुई है सो ही सत्य होकर मिथ्या संसार हुआ है; जब चित्त का त्याग करोगे तब संसारकी सत्यता जाती रहेगी। रामजी बोले, हे भगवन्! आपने जो कहा कि, यह विश्व कल्पनामात्र है सो मैंने जाना कि, इसी प्रकार है-कुछ सत्य नहीं। जैसे राजा लवण, इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र और शुक्र की कलना जब फुरने में दृढ़ हुई तब उन्हें फुरनरूप विश्व सत्य होकर स्थित हुआ और भासने लगा। हे भगवन्! यह मैं जानता हूं कि, विश्व फुरनेमात्र है पर जब फुरन मिट जाती है तो उसके पीछे जो शान्ति-रूप शेष रहता है सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम सम्यक्

बोधवान् हुये हो और जो जानने योग्य है वह तुमने जाना है। हे रामजी! अध्यात्म शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि, और सब दृश्य असंभव है एक चिद्घन ब्रह्म अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! आत्मा शुद्ध, निर्मल और विद्या-अविद्या से रहित है और संसार का उसमें अत्यन्त अभाव है। जो कुछ शुद्ध आदिक संज्ञा कहाती हैं वे भी फुरने में हैं आत्मा तो निर्वाच्यपद है। उसकी संज्ञा इतनी शास्त्रकारों ने कही है। शून्यवादी तो उसीको शून्य कहते हैं; विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं; उपासनावाले उसी को ईश्वर कहते हैं; कोई कहते हैं आत्मा सर्व का कारण है वही शेष रहता है; कोई आत्माको सर्वशक्त कहते हैं; कोई कहते हैं कि, आत्मा निःशक्त है और कोई साक्षी आत्मा और शक्तिको भिन्न मानते हैं। हे रामजी! जितने वाद हैं सो सर्वही कलना से हुये हैं और कलना को मानकर सब वाद उठाते हैं, वास्तव में कोई वाद नहीं आत्मा निर्वाच्यपद है। मेरा जो सिद्धान्त है वह भी सुनो। आत्मा सर्वकलना से अतीत है। जैसे पवन स्पन्द शक्ति से फुरता है और निस्स्पन्द से ठहर जाता है क्योंकि, स्पन्द भी पवन है और निस्स्पन्दभी पवन है इतर कुछ नहीं, तैसेही आत्मा शुद्ध अद्वैतरूप है और कलना भी आत्मा के आश्रय फुरती है आत्मा से भिन्न नहीं। और जो भिन्न प्रतीत होती है उसको मिथ्या जानकर त्यागो और अपने निर्विकार स्वरूप में स्थित रहो। जब तुम आत्म स्वरूप में स्थित होगे तब जितने शास्त्रों के भिन्न भिन्न मतवाद हैं सो कोई न रहेंगे केवल अपना आप स्वच्छ आत्मा ही भासेगा। हे रामजी! उस निर्विकल्पपद को पाकर तुम शान्तिमान् हुये हो और असत् की नाईं स्थित हुये हो क्योंकि, उनकी द्वैतकलना कुछ नहीं फुरती। हे रामजी! आत्मा, ब्रह्मआदिक शब्द भी उपदेश निमित्त कहे हैं पर, आत्मा शब्दसे अतीतहै और सर्वजगत् आत्मस्वरूपहै और संसार रूप विकार आत्मा में असम्यक् दर्शनसे भासते हैं जैसे शून्य आकाश में तरुवरे मोतीवत् भासते हैं सो अविदित हैं। तैसेही आत्मामें जगत् द्वैत अविदित भासता है। इससे जगत् द्वैतकी भावना त्यागकर निर्विकल्प आत्मस्वरूपमें स्थित रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यानाशरूपवर्णनं
नाम सप्ताधिकशततमस्सर्गः॥ १०७॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! देह, इन्द्रियां और कलना में सार वस्तु क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ यह अहं त्वं आदि जगत् दृश्य है सो सब चिन्मात्र है। जैसे समुद्र जलही मात्र है तैसेही जगत् चिन्मात्र है। मनसहित षट्इन्द्रियों से जो कुछ दृश्य भासता है सो भ्रममात्र है। हे रामजी! देह, इन्द्रियां आदि सब मिथ्या हैं; आत्मा में कोई नहीं चित्त के कल्पे हुये हैं और चित्तही इनको देखता है। जैसे मरुस्थल में मृग को जलबुद्धि होती है तो जल के निमित्त दौड़कर दुःख पाता है, तैसेही चित्तरूपी मृग आत्मरूपी मरुस्थल में देह इन्द्रियां विषयरूपी जल कल्पकर दौड़ता है और दुःख पाता है सो देह इन्द्रियों में भ्रम करके भासते हैं। जैसे मूर्ख बालक परछाहीं में वैताल कल्पता तैसेही मूर्ख चित्त ने देह इन्द्रियादिक कल्पना की हैं। हे रामजी! आत्मा शुद्ध निर्विकार है उसमें चित्तने भ्रमसे विकार आरोपण किये हैं। जैसे भ्रांति दृष्टि से आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं, तैसेही चित्त ने देह इन्द्रियां कल्पी हैं पर चित्त भी आपसे कुछ नहीं आत्मा की सत्ता लेकर चेष्टा करता है। जैसे चुम्बक की सत्ता लेकर लोहा चेष्टा करता है तैसेही निर्विकार आत्मा की सत्ता लेकर चित्त नाना प्रकार के विकार कल्पता है। इससे चित्त का त्याग करो जिसमें तुम्हारा विकारजाल मिट जावे। हे रामजी! देह इन्द्रियों में सार क्या है सो सुनो। जो कुछ संसार है उसमें सार देह है क्योंकि, सब देह के सम्बन्धी हैं। जब देह मिटजाता है तब सम्बन्धी भी नहीं रहते। देह में सार इन्द्रियां हैं; इन्द्रियों में सार प्राण हैं; प्राणों में सार मन है और मन का सार बुद्धि है। बुद्धि का सार अहंकार है, अहंकार का सार जीव है, जीव का सार चिदावली है-चिदावली वासना संयुक्त चेतना को कहते हैं-और चिदावली का सार चित्त से रहित शुद्ध चेतन है जिसमें सर्व विकल्प की लय है और जो शुद्ध निर्मल और चिन्मात्र ब्रह्म आत्मा है उसमें कोई उत्थान नहीं। हे रामजी! चिदावली पर्यन्त सर्वको त्यागकर इनका जो सार चेतनमात्र आत्माहै उसमें स्थित हो। विश्वकलना-मात्र है, आत्मा में कुछ नहीं संकल्प की दृढ़ता से सत् की नाईं भासती है।

आगे भी शुक्र और लवण राजा और इन्द्र के पुत्रों का वृत्तान्त कहा है कि, संकल्प की भावना से उन्हें जगत् दृढ़ होकर भासि आया था सो वास्तव में कुछ नहीं था; तैसे ही यह विश्व भी चित्त के फुरने में स्थित है। असम्यक्दृष्टि से अद्वैत आत्मा में दृश्य भासता है। जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है तैसे ही आत्मा में अहंकार आदिक अज्ञान से दृश्य भासते हैं। इससे इनको त्यागकर अपने वास्तव स्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! एक गढ़ तुमसे कहता हूँ जिसमें किसी शत्रु की गम नहीं उसमें स्थित हो। हम भी उसी गढ़ में स्थित हैं और जितने ज्ञानवान् हैं वे भी उसी में स्थित होते हैं। हे रामजी! काम, क्रोध, लोभ अभिमानादिक विकार आत्मा में नहीं पाये जाते। जैसे रात्रि में दिन नहीं होता, तैसेही विकाररूपी दिन गढ़रूपी रात्रि में नहीं पाया जाता इससे अचिन्त्यरूप गढ़ में जहाँ कोई फुरना नहीं और जो केवल शान्तरूप है उसमें अहंभाव त्यागकर स्थित हो तो अहंत्वंभाव निवृत्त हो जावे। जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब ज्ञानी फुरने अफुरने में स्वरूप को तुल्य देखता है और सम्पूर्ण जगत् उसको आत्मरूप भासता है। इससे चिदावली से आदि देह पर्यन्त जो अनात्म है उसको क्रम करके त्यागो। प्रथम देह को त्यागो, फिर इन्द्रियों के अभिमान को त्यागो; इसी क्रम से सबको त्याग के अपने वास्तवस्वरूप में स्थित हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवत्वाभावप्रतिपादनं नामाष्टाधिकशततमस्सर्गः॥ १०८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार चेतनमात्र है। आत्मा से कुछ भिन्न नहीं, आत्मा ही विश्वरूप होकर स्थित हुआ है। जैसे सूर्य की किरणें ही जलाभास होती हैं तैसेही आत्मा का चमत्कार दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है। जैसे संकल्प और संकल्प-कर्त्ता भिन्न नहीं और आकाश ही भ्रम से मोती की माला होकर भासता है, तैसेही आत्मा ही दृश्यरूप होकर भासता है। जैसे बीज ही वृक्ष, फूल और फल होता है तैसे ही विश्व आत्मा ही है और दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है। जैसे जल

के तरङ्ग जल ही हैं तैसेही विश्व आत्मा ही है । हे रामजी ! चिदावली भी जीव, अहंकार, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ, देह, विश्व, आकाश, काल, दिशा, पदार्थ, सब आत्मा ही है—आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । इससे विश्व को अपना स्वरूप जानो । जैसे सूर्य का प्रकाश सूर्य ही है तैसेही तुम जानो कि, सर्व मैं ही हूँ । जो ऐसे न जानसको तो ऐसे जानो कि, देह भी जड़ है और इन्द्रियों से पालित है; सो मैं नहीं । इन्द्रियाँ भी मैं नहीं क्योंकि, प्राण इन्द्रियों का सार है जो प्राण न हो तो इन्द्रियाँ किसी काम की नहीं । प्राण भी मैं नहीं क्योंकि, प्राण का सार मन है जो मन मूर्च्छित होता है और प्राण आते जाते भी हैं तौ भी किसी काम के नहीं । मन भी मैं नहीं क्योंकि, मन के प्रेरनेवाली बुद्धि है; जो निश्चय बुद्धि करती है मन भी वहीं जाता है बुद्धि भी मैं नहीं क्योंकि, बुद्धि का प्रेरक अहंकार है और अहंकार भी मैं नहीं क्योंकि, अहंकार का सार जीव है जीव विना अहंकार किसी काम का नहीं । जीव भी मैं नहीं क्योंकि, जीव का सार चिदावली है । चिदावली शुद्ध-चिद् में चैतन्योन्मुखत्व होने को कहते हैं । जीवसंज्ञा से प्रथम ईश्वर भाव चिदावली भी मैं नहीं क्योंकि, चिदावली का सार चिन्मात्र है सो अद्वितीय निर्विकल्प स्वरूप है । ये सर्व अनात्मभ्रम से सिद्ध हुये हैं, मैं केवल शान्तरूप आत्मा हूँ । हे रामजी ! जो तुम्हारा वास्तवस्वरूप है वही हो रहो उससे भिन्न अनात्म में अहं प्रतीत का त्याग करो तुम देह से रहित निर्विकार हो, तुममें जन्म मरणादिक कोई विकार नहीं और शान्तरूप ज्यों के त्यों स्थित हो । तुम कदाचित् स्वरूप से और नहीं हुये—उसी स्वरूप में स्थित रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सारप्रबोधनं नाम नवाधिकशततमस्सर्गः ॥ १०६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मा चिन्मात्र से बढ़के और सार कुछ नहीं । उसी में स्थित रहो जिसमें सब ताप मिटि जावें । हे रामजी ! सर्व आत्मा ही स्थित है । जैसे बीज ही फलफूल होकर स्थित होता है तैसेही सर्व आत्मा ही स्थित है तो निषेध और त्याग किसका करिये ।

इतना कह वाल्मीकिजी बोले, हे शिष्य! ऐसे वशिष्ठजी के वचन सुनके रामजी प्रसन्न हुये और जैसे कमल सूर्य को देखकर खिल आता है तैसे ही रामजी की बुद्धि वशिष्ठजी के वचनरूपी सूर्य से खिल आई। तब बोले हे भगवन् सर्वधर्मज्ञ! आपकी कृपा से अब मैं जगा बड़ा आश्चर्य है कि, आत्मा सर्वदा अनुभवरूप और अपना आप है पर उसके प्रमाद से मैंने इतने काल दुःख पाया। अहंता और ममतारूपी बड़ा बोझा जो शिर पर था उससे मैं दुःखी था। जैसे किसी के शिर पर पत्थर की शिला हो और ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप में वह पैदल चले तो दुःख पाता है और जो उसके शिर से कोई उस शिला को उतार ले और छाया में बैठावे तो बड़े सुख को प्राप्त होता है; तैसेही अज्ञानरूपी धूप में अहंताममतारूपी शिला से मैं दुःखी था और आपने वचनरूपी बल से उस शिला को उतार लिया और आत्मरूपी वृक्ष की छाया में विश्राम कराया। हे भगवन्! अब मुझे शान्तिपद प्राप्त हुआ है और मेरे तीनों ताप मिटगये हैं। अब जो सुमेरु पर्वत का भार भी आन प्राप्त हो तो भी मुझे कोई कष्ट नहीं। अब मेरे सर्व संशय निवृत्त हुये हैं। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल और स्वच्छरूप होता है, तैसे रागद्वेषरूपी द्वन्द्व मेरा नष्ट हुआ है। अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ हूँ परन्तु एक प्रश्न है कृपा करके उसका उत्तर कहिये। महापुरुष बारम्बार प्रश्न करने में खेद नहीं मानते। हे भगवन्! आप कहते हैं कि, सर्व ब्रह्म ही है तो शास्त्र का विधि निषेध और उपदेश किसको कहते हैं कि, यह कर्म कर्तव्य है और यह कर्म कर्तव्य नहीं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। विश्व भी उसका चमत्कार है। जैसे समुद्र में पवन से नाना प्रकारके तरङ्ग फुरते हैं पर जल से कुछ भिन्न नहीं, तैसेही चेतनमात्र आत्मा से चैतन्योन्मुखत्व अहंभाव को लेकर फुरा है उससे देश, काल, वस्तु बन गये हैं और शास्त्र फुरे हैं। फिर फुरने में दो रूप हुये हैं-एक विद्या और दूसरा अविद्या। उसमें विद्यारूप जो जीव हुये हैं वे ईश्वर कहाते हैं और अविद्यारूप जीव हैं। जिनको अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय वास्तव की रही है सो ईश्वर हैं और

जिनका स्वरूप का प्रमाद हुआ और संकल्प विकल्प में बहते हैं वे जीव दुःखी हैं। हे रामजी! इतनी संज्ञा फुरने में हुई है तौभी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। जैसे एकही रस फूल, फल और वृक्ष हुआ है रससे कुछ भिन्न नहीं। आत्मा रस की नाईं भी प्रमाण को नहीं प्राप्त हुआ; फुरनेसे ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुई है-आत्मा में कुछ नहीं। हे रामजी! जिनका संकल्प आधिभौतिक में दृढ़ नहीं हुआ वे जीव शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त होते हैं। और उनको आत्मा का साक्षात्कार शीघ्र ही होता है। जिन का संस्कार आधिभौतिक में दृढ़ हुआ है वे चिरकाल में आत्मपद को प्राप्त होते हैं। आत्मपद की प्राप्ति विना वे दुःख पाते हैं और जिनको आत्मपद की प्राप्ति होती है वे सुखी होते हैं। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी के स्वरूप में और कुछ भेद नहीं केवल सम्यक् और असम्यक् दर्शन का भेद है। हे रामजी! विद्याभी दो प्रकार की है-एक ईश्वरवाद और दूसरा अनीश्वरवाद है। जो ईश्वरवादी हैं वे तुरीयापद को प्राप्त होते हैं और जो अनीश्वरवादी हैं उनको जब ईश्वर की भावना होती है तब वे शास्त्र और गुरुद्वारा ईश्वर को प्राप्त होते हैं। ईश्वरवादी भी दो प्रकारके हैं-एक वे जो और वासना त्यागकर ईश्वरपरायण होते हैं। वे शीघ्र ही ईश्वर को प्रप्त होते हैं। आत्मा ही ईश्वर है जो सर्वका अपना आप है। दूसरे ईश्वर को मानते हैं पर उनकी वासना संसार की ओर होती है वे चिरकाल में आत्मपद को प्राप्त होते हैं। अनीश्वरवादी भी दो प्रकार के हैं-एक कहते हैं कि, कुछ होगा। उनको होते होते की भावना से शास्त्र और गुरु के द्वारा आत्मपद की प्राप्ति होगी। दूसरे कहते हैं कि, कुछ नहीं; उनको चिरकाल में जब आस्तिकभावना होगी तब आत्मपद को प्राप्त होंगे। हे रामजी! उनके निमित्त विधि और निषेध कहे हैं कि, शुभकर्म को अङ्गीकार करो और अशुभकर्म त्यागो तो उससे जब अन्तः-करण शुद्ध होगा तब आत्मपद की प्राप्ति होगी। जो विधि निषेध शास्त्र न कहें तो बड़ा छोटेको भोजन करलेवे। इस निमित्त शास्त्र का दण्ड है। हे रामजी! स्वरूप से किसीको उपदेश नहीं, भ्रम में उपदेश है। जिस

पुरुषका भ्रम निवृत्त हुआ है वह फिर मोहमें नहीं डूबता—जैसे जल में डूबा नहीं डूबता। और जिसका चित्त वासना से घेरा हुआ संसरता है उसको इस संसार से निकलना कठिन है। जैसे उजाड़ के कुयें में गिरके निकलना कठिन होता है तैसे ही चित्त से मिलकर संसार से निकलना कठिन होता है। हे रामजी! इस चित्त को स्थिर करो कि, तुम्हारे दुःख मिटजावें और सत्तासमान पद को प्राप्त हो। हे रामजी! जिसको आत्मा का साक्षात्कार हुआ है और अनात्म में अहं प्रत्यय निवृत्त हुआ है वह पुरुष जो कुछ करता है उस में बन्धायमान नहीं होता वह सदा अकर्ता आपको देखता है और जिसको अहंप्रत्यय अनात्म में है वह पुरुष करे तौभी कर्ता है और जो न करे तौभी कर्ता है। हे रामजी! जो ज्ञानी शुभकर्म करता है तो शुभकर्म करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त होता है और अशुभ कर्म करने से नरक को प्राप्त होता है। जो शुभकर्म को त्यागता है तौभी नरक को प्राप्त होता है क्योंकि; अनात्म में आत्मअभिमान है। इससे बुद्धि और इन्द्रियों को मन से निग्रह करो और कर्म इन्द्रियों से चेष्टा करो। देखने, सुनने, सूंघने को मैं तुम्हें नहीं बर्जता; यही कहताहूं कि, अनात्म में अभिमान को त्यागो। जब अनात्म अभिमान को त्यागोगे तब शान्त-पद को प्राप्त होगे और जहां तुम्हारा चित्त फुरेगा वहां आत्माही भासेगा-आत्मा से भिन्न कुछ न भासेगा। इससे चित्त को त्यागो—चित्त अहंभाव का नाम है—और आत्मपद में स्थित हो। जैसे विश्व की उत्पत्ति हुई है सो भी सुनो। शुद्धचेतनमात्र स्वरूप में चिदावलीरूप अहंतरङ्ग फुरा है। उस चिदावलीरूपी समुद्र में जीवरूपी तरङ्ग उपजता है और जीवरूपी समुद्र में अहंकाररूपी तरङ्ग भासित हुआ है। अहंकाररूपी समुद्र में बुद्धि रूपी तरङ्ग उपजा है, बुद्धिरूपी समुद्र में चित्तरूपी तरङ्ग भासा है और चित्तरूपी समुद्र में संकल्परूपी तरङ्ग उपजा है। उस संकल्परूपी समुद्र में जगत्‌रूपी तरङ्ग उपजा है और जगत्‌रूपी समुद्र में देहरूपी तरङ्ग भासित हुआ है और उसके संयोग से दृश्य का ज्ञान हुआ है कि; यह पदार्थ है, यह नहीं है, ये ऐसे हैं; उसीमें देश, काल, दिशा सर्व हुये हैं।

हे रामजी! निदान वे सब संकल्प से होगये हैं सो आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। केवल शान्तरूप एकरस आत्मा है उसमें नाना प्रकार के आचार रचे हैं। जैसे स्वप्न की सृष्टि नाना प्रकार हो भासती है सो अपना ही अनुभव होताहै तैसेही इस जगत् को भी जानो; आत्मा सर्वदा एकरस अद्वैत, शुद्ध, परम निर्वाण, अपने आपमें स्थितहै और फुरने से नाना प्रकार की कल्पना उदय हुईहै। हे रामजी! शुद्ध आत्मा में चिदेव संज्ञा भी संकल्प से हुई है-"चिदेव पञ्चभूतानि; चिदेव भुवनत्रयम्" आत्मा निर्वाच्यपदहै उसमें वाणी की गम नहीं और शुद्ध शान्तरूप है। चिदेव जो फुरी है उस फुरने में संसार हुये की नाईं स्थित है। जैसे एक ही बीज ने वृक्ष, फूल, फल आदिक संज्ञा पाई है सो बीज से भिन्न कुछ नहीं और आत्मा बीज की नाईं भी नहीं संकल्प से ही नानासंज्ञा कल्पी है और जगत् स्थित हुआ है तौभी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। जैसे वायु चलती है तौभी वायु है और ठहरती है तौभी वायु है; तैसेही आत्मा में नानात्व कुछ नहीं केवल शुद्ध अद्वैत है। आत्मरूपी समुद्र में नाना प्रकार विश्वरूपी तरङ्ग स्थित हैं। हे रामजी! आकार भी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं; जो आत्मा से भिन्न भासे उसे मिथ्या जानो और मृगतृष्णा के जलकी नाईं जानकर उसकी भावना त्यागो और स्वरूप की भावना करो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकत्वप्रतिपादनंनाम
दशाधिकशततमस्सर्गः ॥ ११० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मेरे वचनों को धारो और हृदय में आस्तिकभावना करो। जब सर्वत्याग करोगे तब चित्त क्षीण होजावेगा और जब चित्त क्षीण हुआ तब शान्ति होगी। हे रामजी! काष्ठवत् मौन होकर हृदय में सर्व का त्याग करो। बाहर से कर्मों को करो पर अभिमान से रहित होकर अन्तर्मुखी हो रहो। अन्तर्मुखी आत्मा में स्थित होने को कहते हैं। जब आत्मा में स्थित होगे तब विद्यमान दृश्य भी तुम्हें न भासेगा क्योंकि; तब सर्व आत्माही भासेगा। जो तुम्हारे पास भेरी के शब्द होंगे तौ भी न सुन पड़ेंगे और जो सुगन्धि लोगे तौभी नहीं ली;

निदान जो कुछ क्रिया करोगे सो तुम्हें स्पर्श न करेगी—आकाश की नाईं सर्व से असंग रहोगे। हे रामजी! स्वरूप से भिन्न न देखना और आत्मा से भिन्न न फुरना, अन्धे गूंगे की नाईं और पत्थर की शिलावत् मौन हो रहो तब तुम्हारी चेष्टा यन्त्र की पुतलीवत् खड़ी होगी। जैसे यन्त्र की पुतली तागे की सत्ता से चेष्टा करती है तैसे ही तुम्हारी नीति शक्ति से प्राणों की चेष्टा होगी। स्वाभाविक क्रिया में अभिमान से रहित होकर स्थित होना, जो अभिमान सहित चेष्टा करता है वह मूर्ख और असम्यक् दर्शी है और जो सम्यक्दर्शी है उसको अनात्म में अभिमान नहीं होता। हे रामजी! जिसको अनात्म अभिमान नहीं और जिसका चित्त दृश्य में लेपायमान नहीं होता वह सारी सृष्टि को संहार करे अथवा उत्पन्न करे उसको कुछ बन्धन नहीं होता क्योंकि; वह सर्वकर्म अभिलाषा से रहित होकर करता है। हे रामजी! समाधि में स्थित हो और जाग्रत् की नाईं सब कर्म करो। तुममें सब कर्म दृष्टि भी आवें तौभी उनमें सुषुप्त की नाईं कोई फुरना न फुरे। अपने स्वरूप की समाधि भी रहे। समाधि भी तब कहिये कि, कोई दूसरा हो जो इसमें स्थित हो व इसका त्याग करे। हे रामजी! जहां एक शब्द और दो शब्द भी नहीं कहसके वह अद्वितीयात्मा परमार्थसत्ता है; उसमें चित्त ने नाना प्रकार के विकार कल्पे हैं—ज्ञानी को एकरस भासता है। ज्ञानी को ज्ञानी जानता है। जैसे सर्प के खोज को सर्प ही जानता है; तैसे ही ज्ञानी को एकरस आत्मा ही भासता है सो ज्ञानी ही जानता है। मूर्ख को संकल्प से नाना प्रकार का जगत् भासता है इससे संकल्प को त्यागकर अपने प्रकृत आचार में बिचरो। जैसे उन्मत्त और बालक की चेष्टा स्वाभाविक होती है कि, अङ्ग हिलते हैं; तैसेही अभिमान से रहित होकर चेष्टा करो। जैसे पत्थर की शिला जड़ होती है तैसेही दृश्य की भावना से ऐसे रहित हो कि, जड़ की नाईं कुछ न फुरे। जब ऐसे होगे तब शान्तपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! चित्त के संबंध से क्षोभ उत्पन्न होता है। जैसे वसन्तऋतु में फूल उत्पन्न होते हैं तैसेही चित्तरूपी वसन्तऋतु में दुःखरूपी फूल उत्पन्न

होते हैं। जब तुम चित्त को शान्त करोगे तब परमपद को प्राप्त होगे जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल है। इससे तुम असंग हो रहो। जब तुम अस्थूल से अस्थूल होगे तब भी असंग रहोगे। ऐसे पद को पाकर काष्ठ पत्थर की नाईं मौन होरहो। हे रामजी! दृश्यपदार्थ को त्याग कर जो द्रष्टा जाननेवाला है उसमें स्थित हो। हे रामजी! इन्द्रियाँ तो अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं उनकी ओर तुम भावना मत करो कि, यह सुन्दर रूप है और इसकी प्राप्ति हो। भले के प्राप्त होने की भावना मत करो; इनके जाननेवाला जो आत्मा है उसी में स्थित रहो। जो पुरुष द्रष्टा में स्थित होता है वह गोपद की नाईं संसारसमुद्र को लांघ जाता है। हे रामजी! जो पदार्थ दृष्टि आते हैं उनमें अपनी २ सृष्टि है सो संकल्पमात्र ही है और अपने २ संकल्प में स्थित है पर सर्वसंकल्प आत्मा के आश्रय हैं। जैसे सब पदार्थ आकाश में स्थित हैं तैसेही सर्व संकल्प की सृष्टि आत्मा के आश्रय है। एकके संकल्प को दूसरा नहीं जानता–सृष्टि अपनी २ है। जैसे समुद्र में जितने बुद्बुदे हैं उनको जल से एकता है और आकार से एकता नहीं, तैसेही स्वरूप से सबकी एकता है; और संकल्पसृष्टि अपनी २ है। जो पुरुष ऐसे चिन्तता है कि, मैं उसकी सृष्टि को जानूं तब जानता है। हे रामजी! आत्मा कल्पवृक्ष है; उसमें जैसी कोई भावना करता है तैसीही सिद्धि होती है। जब ऐसी ही भावना कर के जीवस्वरूप में लगता है कि, सब सृष्टि मुझे भासे तो भावना से भासि आती है। ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता क्योंकि, आत्मा से भिन्न वह कोई पदार्थ नहीं जानता और जानता है कि, स्वरूप से सबकी एकता है पर संकल्परूप से एकता नहीं होती। जैसे तरङ्गों की एकता नहीं पर जल की एकता है और जो एक तरङ्ग दूसरे के साथ मिल जाता है तो उससे एकता होती है, तैसेही एक का संकल्प भावना से दूसरे के साथ मिलता है; इससे ज्ञानी जानता है कि, संकल्परूप आकार नहीं मिलते और स्वरूप से सबकी एकता है। जिसकी भावना होती है कि, मैं इसकी सृष्टि को देखूं तो वह उसके संकल्प से अपना संकल्प मिलाकर देखता है

तब उसकी सृष्टि जानता है। जैसे दो मणियों का प्रकाश भिन्न २ होता है और जब दोनों इकट्ठी एकही ठौर में रखिये तो दोनों का प्रकाश इकट्ठा होजाता है; तैसेही संकल्प की एकता भावना से होती है। ज्ञानी को प्रथम संकल्प हो कि, मैं उसकी सृष्टि देखूं तो संकल्प से देखता है और ज्ञान के उपजेसे वाञ्छा नहीं रहती। हे रामजी! इच्छा चित्त का धर्म है। जब चित्त ही नष्ट होगया तब इच्छा किसकी रहे। जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब चित्तरूपी दैत्य प्रसन्न होताहै कि, यह मेरा आहार हुआ और मैं इसको भोजन करूंगा। हे रामजी! जो पुरुष चित्त की ओर हुआ है और जिसको स्वरूप की भावना नहीं हुई सो चित्तरूपी दैत्य उसे जन्मरूपी वन में लिये फिरता है; उसको भोजन करता रहता है; उसका पुरुषार्थ नाश करता है और आत्मभावनावाली बुद्धि उत्पन्न नहीं होने देता। जैसे वृक्ष को अग्नि लगे तो फिर उसमें फल नहीं लगते, तैसेही पुरुषार्थ-रूपी वृक्ष को भोगरूपी अग्नि लगी तो शुद्ध बुद्धिरूपी फल उत्पन्न नहीं होते। हे रामजी! अपना चित्त आत्मा में लगावो और विषय की ओर जाने न दो। यह चित्त दुष्ट है; जब इसको स्थित करोगे तब परम अमृत से शोभायमान होगे और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से शोभता है तैसेही ब्रह्मलक्ष्मी से शोभोगे और परम निर्वाणपद को प्राप्त होगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नामै-
कादशाधिकशततमस्सर्गः ॥ १११ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानकी सप्तभूमिका हैं इनसे ज्ञान की उत्पत्ति होतीहै रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिस भूमिका में जिज्ञासी प्राप्त होता है उसका लक्षण क्या है और ये सप्तभूमिका क्या हैं और कैसे प्राप्त होती हैं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये सप्तभूमिका जिस प्रकार प्राप्त होती हैं और जिस प्रकार इनसे ज्ञान प्राप्त होता है सो सुनो। हे रामजी! जब बालक माता के गर्भ में होताहै तब उसको दृढ़ सुषुप्ति जड़ अवस्था होतीहै—जैसे ज्ञानी को होती है—परन्तु बालक में संस्कार रहता है उससे संस्कार की सत्यता आगे होती है। जैसे बीज में अंकुर होता है उससे आगे वृक्ष

होता है तैसेही बालक की भावी होती है और ज्ञानी की भावी नहीं होती। जैसे दग्धबीज में अंकुर नहीं होता तैसेही ज्ञानी की भावी नहीं होती क्योंकि; वह संसार से सुषुप्ति है और स्वरूप में नहीं। जब बालक को बाहर निकल के कुछ काल व्यतीत होता है तब दृढ़ जड़ता निवृत्त होजाती है और सुषुप्ति रहती है। कुछ काल के उपरान्त सुषुप्ति भी लय होजाती है और चेतनता होती है। तब वह जानता है कि, 'यह मैं हूं;' "ये मेरे पिता-माता हैं"। तब कुलवाले उसको सिखाते हैं कि यह मीठा है; यह कड़ुआ है; यह तेरी माता है; यह तेरा पिता है; यह तेरा कुल है; इससे पाप होता है; इससे पुण्य होता है; इससे स्वर्ग मिलता है; इससे नरक पाता है; इस प्रकार यज्ञ होता है; इस प्रकार तप होता है और इस प्रकार दान करते हैं। हे रामजी! इस प्रकार कुल के उपदेश और शास्त्र के भय से वह धर्म में विचरता है और पाप का त्याग करता है। ऐसा शास्त्र अनुसार विचरनेवाला पुरुष धर्मात्मा कहाता है। वे धर्मात्मा पुरुष भी दो प्रकार के हैं-एक प्रवृत्ति की ओर है और दूसरा निवृत्ति की ओर है। जो प्रवृत्ति की ओर है वह पुण्यकर्मों से स्वर्ग के फल भोगता है और मोक्ष को उत्तम नहीं जानता, इससे संसार में जल के तृणवत् भ्रमता है और कभी चिरकाल से इस क्रम से मुक्त होता है। जो निवृत्ति की ओर होता है उसको विषय भोग से वैराग्य उपजता है और वह कहता है कि, यह संसार मिथ्या है; मैं इससे तरूं और उस पद को प्राप्त होऊं जहां क्षय और अतिशय न हो-यह संसार सर्वदा चलरूप और दुःखदायी है। हे रामजी! उस पुरुष को इस क्रम से ज्ञान और विज्ञान उत्पन्न होता है और जो पशुधर्मा मनुष्य है उसको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है-शास्त्र के अर्थ के न जाननेवालों को पशुधर्मा कहते हैं। वे अपनी इच्छा से बिचरकर अशुभ को ग्रहण करते और विचार से रहित होते हैं। मनुष्य भी दो प्रकार के हैं-एक प्रवृत्ति के धारनेवाले और दूसरे निवृत्ति के धारनेवाले। प्रवृत्तिमार्ग इसे कहते हैं कि, जिसको शास्त्र शुभ कहे उसको ग्रहण करना और जिसे अशुभ कहे उसका त्याग करना

और कामना करके फल के निमित्त यज्ञादिक शुभकर्म करने कि, स्वर्ग, धन, पुत्रादिक मुझे प्राप्त हों। ऐसी कामना धारकर जो शुभकर्म करके इस प्रकार संसारसमुद्र में बहते हैं वे चिरकाल में निवृत्ति की ओर भी आते हैं तब स्वरूप पाते हैं। निवृत्ति यह है कि, जो निष्काम होकर और शुभकर्म करके अन्तःकरण शुद्ध करता है उसको वैराग्य उपजताहै और वह कहता है कि, मुझे कर्मों से क्या है और फलों से क्या है; मैं किसी प्रकार आत्मपद को प्राप्त होऊं। वह यही विचारता है कि, मैं संसार से कब मुक्त हूंगा? यह संसार मिथ्या है और मुझे भोग से क्या है? यह भोग तो सर्प है। हे रामजी! इस प्रकार वह भोगों की निन्दा करता है; संसार से उपरत होता है; शम, दम आदिक जो ज्ञान के साधन हैं उनमें विचरता है; देश, काल और पदार्थ को शुभ अशुभ विचारता है; मर्यादा से बोलता है; सन्तजनों का संग करता है और सत् शास्त्र और ब्रह्मविद्या को बारम्बार विचारता है। इस प्रकार सन्तजनों के संग से उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है। जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कला दिन प्रति दिन बढ़ती है तैसेही उसकी बुद्धि बढ़ती है और विषयों से उपरत होती है तब वह तीर्थ, ठाकुरद्वारों आदि शुभ स्थानों को पूजता है; देह और इन्द्रियों से सन्तों की टहल करता है और सर्वसे मित्रता रखके दया, सत्य और कोमलतापूर्वक बिचरता है। वह ऐसे वचन बोलता है कि, जिससे सब कोई प्रसन्न हो और जो यथाशास्त्र हों; इससे भिन्न किसी को नहीं कहता। वह अज्ञानी का संग त्यागता है; स्वर्ग आदिक सुखकी भावना नहीं करता है-केवल आत्मपरायण होता; सन्त और शास्त्रों की दृढ़ भावना करता है और उनके अर्थों में सुरत लगाकर और किसी ओर चित्त नहीं लगाता है। जैसे कादर्य दरिद्री सर्वदा धनकी चिन्तना करता है तैसेही वह सदा आत्मा की चिन्तना करता है। जो पुरुष इतने गुणों से युक्त है उसको प्रथम भूमिका प्राप्त हुई है। वह पापरूपी सर्प को मोर के समान नाश करता है; सन्तजन, सतशास्त्र और धर्मरूपी मेघ को गर्दन ऊंची करके देखता है और प्रसन्न होता है। इसका नाम शुभेच्छा है।

उसको फिर दूसरी भूमिका प्राप्त होती है तब जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्रमाकी कला बढ़ती जातीहै तैसेही उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है। उसके ये लक्षण हैं; सत्शास्त्रों और ब्रह्मविद्याको विचारके दृढ़ भावना करनी। उस विचार का कवच जो गले में डालता है उससे शस्त्रों का कोई घाव नहीं लगता। इन्द्रियरूपी चोरके हाथमें इच्छारूपी बरछी है सो विचाररूपी कवच पहिरने-वाले को नहीं लगती। हे रामजी! इन्द्रियरूपी सर्प में तृष्णारूपी विष है उससे मूर्ख को मारताहै। विचारवान् पुरुष इन्द्रियों के विषयों को नाश कर डालता है और सर्व ओरसे उदासीन रहता है और दुर्जनों की संगति का बल करके त्याग करता है। जैसे गधा तृण को त्यागता है तैसेही मूर्ख की संगति वह त्यागता है। उसमें सर्व इच्छा का भी त्याग होता है परन्तु एक इच्छा रहती है कि दया सब पर करता है और सन्तोषवान् रहता है। उसके निषेधगुण स्वाभाविक जाते रहते हैं और दम्भ, गर्व, मोह, लोभ आदिक स्वाभाविक नष्ट होजाते हैं। जैसे सर्प कञ्चुकी को त्याग-कर शोभायमान होताहै तैसेही विचारवान् इन्द्रियों के विषयों को त्याग करके शोभता है। जो उसमें क्रोध भी दृष्टि आता है तो क्षणमात्र होता है हृदयमें स्थित नहीं होसक्ता है। वह खाना, पीना, लेना, देना आदि क्रिया विचारपूर्वक करता है और सर्वदा शुद्धमार्ग में बिचरता है; सन्तजनों का संग और सत्शास्त्रों के अर्थ विचारनेसे बोध को बढ़ाता और तीर्थोंके स्नानसे काल व्यतीत करता है। हे रामजी! यह दूसरी भूमिका है। जब तीसरी भूमिका आती है तब श्रुति जो वेद और स्मृति जो धर्मशास्त्र उनके अर्थ हृदय में स्थित होते हैं और जैसे कमलपर भँवरे आन स्थित होते हैं, तैसेही उस पुरुषके हृदय में शुभगुण स्थित होते हैं; तब उसे फूलों की शय्या सुखदायी नहीं भासती, वन और कन्दरा सुखदायक भासते हैं। निदान उसका वैराग्य दिन २ बढ़ता जाता है और वह तालाब, बावलियों और नदियों में स्नान करके शुभस्थानों में रहता है; पत्थरकी शिला पर शयन करता है; देह को तप से क्षीण करता है, धारणा से चित्त को किसी ठौर में नहीं लगाता; आत्मभावना और ध्यान करके भोगोंसे सर्वदा उप-

राम होताहै । भोगोंको अन्तवन्त विचारके कि, यह स्थिर नहीं रहते और देहके अहंकार को उपाधि जानकर वह त्यागता है; देहको रक्त, मांस, पुरीषादिक से पूर्ण जानकर उसमें अहंकार को त्यागता है और निन्दा करता है और सूखे तृण की नाईं तुच्छ जानकर त्यागता है । जैसे विष्ठा-संयुक्त तृण को पशु त्यागता है तैसेही देह के अहंकार को वह त्यागता है और कन्दराओं में बिचरके फल फूलों का आहार करता है, सन्तजनों की टहल करके आयुर्बल बिताता है और सदा असंग रहता है । यह तीसरी भूमिका है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रथमद्वितीयतृतीयभूमिकालक्षण-विचारो नाम द्वादशाधिकशततमस्सर्गः ॥ ११२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ज्ञान का यह साधन है कि, ब्रह्मविद्या को विचार के उसके अर्थ को बारम्बार भावना करना और पुण्यक्रियामें विचरना; इससे भिन्न ज्ञान का कोई साधन नहीं-इसी से ज्ञान की प्राप्ति होती है । जिस पुरुष को ऐसी भावना होती है उसको यदि नाना प्रकार की सुगन्ध-अगर, चन्दन, चोये आदि और अप्सरा अनिच्छित प्राप्त हों तो उनका निरादर करताहै और जो स्त्री को देखताहै तो माता समान जानताहै; पराये धनको पत्थरके बट्टे समान देखकर वाञ्छा नहीं करता और सब भूतों को देखकर दयाही करताहै । जैसे आपको सुख से प्रसन्न और दुःख से अनिष्ट जानता है तैसेही वह और को भी आप जानकर सुख देताहै और दुःख किसीको नहीं देता । इस प्रकार वह पुण्यक्रियामें बिचरता है । सत्शास्त्रों के अर्थका अभ्यास करता है और सर्वदा असंग रहताहै । असंगति भी दो प्रकार की है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! संग असंग का लक्षण क्या है-इनका भेद समझाकर कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! असंग दो प्रकारका है-एक समान और दूसरा विशेष; उनका लक्षण सुनो । समान असंग यह है कि मैं कुछ नहीं करता । न मैं किसी को देताहूं और न मुझे कोई देताहै । सर्व ईश्वरकी आज्ञाहै, जिसको धन देनेकी इच्छा होतीहै उसको धन देताहै और जिससे लेना होताहै उससे

लेता है, अपने आधीन कुछ नहीं। समान असंगवाला जो कुछ दान, तप, यज्ञादि करता है वह ईश्वरार्पण करता है और अपना अभिमान कुछ नहीं करता और कहता है कि, सब ईश्वर की शक्ति से होताहै। इस प्रकार निरभिमान होकर वह धर्मचेष्टा में स्वाभाविक बिचरता है और जो कुछ इन्द्रियोंके भोग की सम्पदाहै उसको आपदा जानताहै, और भोगों को महाआपदारूप मानताहै। संपदा आपदारूप है; संयोग वियोगरूपहै और जितने पदार्थ हैं वे सब सन्निपातरूप हैं—विचारसे नष्ट होजाते हैं इससे सबको वह नाशरूप जानताहै। यह संयोग वियोग को दुःखदायी जानता है; परस्त्री को विषकी बेलि समान रससे रहित जानता है और सर्व पदार्थों को प्रणामी जानकर किसीकी इच्छा नहीं करता सम्पूर्ण विश्वका जो ईश्वर है उसे जिसको सुख देनाहै उसको सुख देताहै और जिसको दुःख देना है उसको दुःख देता है; अपने हाथ कुछ नहीं, करने करानेवाला ईश्वर है। न मैं करताहूं; न मैं भोक्ताहूं; और न मैं वक्ताहूं—सब ईश्वरकी सत्तासे होताहै। ऐसे निरभिमान होकर वह पुण्यक्रिया करताहै। यह समान असंग है। उसके वचन सुनने से श्रवण को अमृत की प्राप्ति होती है। इस प्रकार सन्तों के मिलने और तीसरी भूमिका की प्राप्ति से जिसकी बुद्धि बढ़ी है और जो निरभिमान है उसके उपदेश में अनुभव से तबतक अभ्यास करे जबतक हाथ पर आंवले की नाईं आत्मा का अनुभव साक्षात्कार प्रत्यक्ष हो विशेष असंगवाला कहता है कि; न मैं कुछ करता हूँ, न कराता हूँ; केवल आकाशरूप आत्माहूँ न मुझमें करनाहै, न करानाहै; न कोई और है, न मेरा है; मैं केवल आकाशरूप अद्वैत आत्मा हूँ। हे रामजी ! वह पुरुष न भीतर, न बाहर, न पदार्थ, न अपदार्थ, न जड़, न चेतन, न आकाश, न पाताल, न देश, न पृथ्वी, न मैं, न मेरे को देखता है, वह निर्वास, अज, अविनाशी, सर्वशब्द अर्थों से रहित, केवल शून्य आकाश में स्थित है। चित्त से रहित चेतन में जो प्रस्थित है उसको श्रेष्ठ असंग कहते हैं और उसकी चेष्टा दृष्टि भी आती है तो भी उसमें हृदय से पदार्थों की भावना का अभाव है। जैसे जल में कमल दृष्टि भी आता है परन्तु ऊँचा ही रहता है,

तैसेही वह क्रिया में बिचरता दृष्टि भी आता है परन्तु असंग रहता है। उसको कोई कामना नहीं रहती कि, यह हो और यह न हो क्योंकि; उसको संसार का अभाव निश्चय हुआ है और सर्वकलना से रहित है। उसको आत्मा से भिन्न किसी पदार्थ की सत्ता नहीं फुरती। यह श्रेष्ठ असंग कहाता है। कार्य करने से उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता और न करने में कुछ हानि नहीं होती; वह सर्वदा असंग है और संसार में कदाचित् नहीं डूबता क्योंकि, वह तो संसारसमुद्र के पार हुआ है और उसने अनात्म में आत्मभावना त्यागी है; अहंभाव का त्याग किया है; इष्ट अनिष्टरूप जितने पदार्थ हैं उनके सुखदुःख की वेदना उसे नहीं फुरती और वह सदा मौनरूप है। उसे पैसा पत्थर के समान है। यह श्रेष्ठ असंग कहाता है। हे रामजी! एक कमल है जो अज्ञानरूपी कीचड़ से निकलकर आत्मरूपी जल में विराजता है उसका बीज संसार की अभावना है। उस जल में तृष्णारूपी मछलियां हैं जो उस कमल के चहुँओर फिरती हैं और उसके साथ कुकर्म दुःखरूपी कांटे हैं। अज्ञानरूपी रात्रि से उस कमल का मुख मूंदा रहता है और विचाररूपी सूर्य के उदय हुये से खिलता और शोभता है। उसमें सुगन्ध सन्तोष है। और वह हृदय के बीच लगता है। उसका फल असंग है। यह तीसरी भूमिका में उगता है। हे रामजी! सन्त की संगति और सत्शास्त्रों का विचारना सार को प्राप्त करता है और अमृत मोक्ष को प्राप्त होता है। बड़ा कष्ट है कि, ऐसे स्वरूप को विस्मरण करके जीव दुःखी होते हैं। इसका स्वरूप जो दुःखों का नाश करता है और जिसमें कोई दुःख नहीं आनन्दरूप है सो इन भूमिकाओं के द्वारा प्राप्त होता है। हे रामजी! यह तीसरी भूमिका ज्ञान के निकट बनती है और विचारवान् इन भूमिकाओं में स्थित होकर बुद्धि को बढ़ाते हैं। जब इस प्रकार वह बोध को बढ़ाता है तो शास्त्र की युक्ति से रक्षा करता है और क्रम करके इस तीसरी भूमिका को प्राप्त होता है जहाँ असंगता प्राप्त होती है। जैसे किसान खेती की रक्षा करके बढ़ाता है तैसेही वह विचाररूपी जल से बुद्धि को बढ़ाता है

तब बुद्धिरूपी बल्ली बढ़ती है। फिर चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है और अहंकार, मोहादिक शत्रुओं से रक्षा करता है। हे रामजी! इस भूमिका को प्राप्त होकर ज्ञानवान् होता है सो यह भूमिका क्रम करके प्राप्त होती है अथवा बड़े पुण्य कर्म किये हों उनसे आन फुरती है वा अकस्मात् भी आन फुरती है। जैसे नदी के तटपर कोई आ बैठा हो और नदी के वेग से बीच में जा पड़े तैसेही जब पहली भूमिका प्राप्त होती है तब बुद्धि को बढ़ाती है और जब बुद्धिरूपी बेलि बढ़ती है तब ज्ञानरूपी फल लगता है। जब ज्ञान उपजता है तब उसमें प्रत्यक्ष क्रिया दृष्टि भी आवे तौ भी उसका वह अभिमान नहीं करता जैसे शुद्धमणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण भी करती है परन्तु उसमें कोई रङ्ग नहीं चढ़ता।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे तृतीयभूमिकाविचारो नाम त्रयोदशाधिकशततमस्सर्गः॥ ११३॥

रामजी बोले, हे भगवन्! आपने भूमिका का वर्णन किया पर उसमें मुझे यह संशय है कि, जो भूमिका से रहित और प्रकृत के सम्मुख हैं उनको भी कदाचित् ज्ञान उपजेगा अथवा न उपजेगा? और जो एक, दो, वा तीन भूमिका पाकर शरीर छूटे और आत्मा का साक्षात्कार न हुआ हो और उसको स्वर्ग की भी कामना नहीं तो वह कौन गति पाता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष विषयी हैं उनको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है; वे वासनाकरके घटीयन्त्र की नाईं कभी स्वर्ग और कभी पाताल को जाते हैं और दुःख पाते हैं; कदाचित् अकस्मात् काकतालीय न्याय की नाईं उनको सन्त के संग और सत्शास्त्रों को सुनने की वासना फुरती है। जैसे मरुस्थल में बेलि लगना कठिन है तैसेही जिस पुरुष को आत्मा का प्रमाद है और भोग की भावना है उसको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है। परन्तु जब अकस्मात् उसे सन्तों के संग से वैराग्य उपजता है और उसकी बुद्धि निवृत्ति की ओर आतीहै तब भूमिका के द्वारा उसे ज्ञान प्राप्त होता है और तभी मुक्त होता है। हे रामजी! अकस्मात् यही भावना उपजे विना योनियों में भ्रमता है। जिसको एक अथवा दो भूमिका प्राप्त हुई है

और शरीर छूट गया तो वह और जन्म पाकर ज्ञान को प्राप्त होताहै और पिछला संस्कार जाग आता है और दिन २ बढ़ता जाता है । जैसे बीजसे प्रथम वृक्ष का अंकुर होताहै, फिर डाल, फूल और फल से बढ़ता जाता है तैसेही उसको अभ्यास का संस्कार बढ़ता जाता है और ज्ञान प्राप्त होताहै । जैसे पहलवान खेलकर रात्रि को सोजाता है और फिर दिन हुये उठताहै तब पहलवान ही का अभ्यास आय फुरता है और जैसे कोई मार्ग चलता चलता सोजावे और जागकर चलने लगे तैसेही वह फिर पूर्व के अभ्यास को लगाता है । हे रामजी ! जिसको यह भावना होती है कि, मुझे विशेषता प्राप्त हो वह जन्म पाता है और ब्रह्मा से चींटीपर्यन्त जिसको विशेष होने की कामना है सो जन्म पाता है । ज्ञानी को भोगों की और विशेष प्राप्त होने की इच्छा नहीं होती । जिसको भोग की इच्छा होती है वह भोग से आपको विशेष जानता है और अनिष्ट की निवृत्ति की इच्छा करता है ज्ञानी को कोई वासना नहीं होती कि, यह विशेषता मुझे प्राप्त हो इसी से वह फिर जन्म नहीं पाता जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसेही वासना से रहित ज्ञानी जन्म नहीं पाता । हे रामजी ! जन्म का कारण वासना है । जैसी जैसी वासना होती है तैसी २ अवस्था को जीव प्राप्त होता है । नाना प्रकार की वासना हैं; जब शरीर छूटने का समय आता है तब जो वासना दृढ़ होती है और जिसका सर्वदा अभ्यास होता है वही अन्तकाल में दिखाई देती है चाहे वह पाठ की, तप की, कर्म की, देवता इत्यादिक की हो सबको मर्दन करके वही उस समय भासती है। हे रामजी ! उस समय अग्रगत पदार्थ होते हैं सो भी नहीं भासते और पांचों इन्द्रियों के विषय विद्यमान हों तो भी नहीं भासते पर वही पदार्थ भासता है जिसका दृढ़ अभ्यास किया होता है । वासनाएँ तो अनेक होती हैं परन्तु जैसी वासना दृढ़ होती है उसीके अनुसार शरीर धारता है । जब देह छूटता है तब मुहूर्तपर्यन्त सुषुप्ति की नाईं जड़ता रहती है उसके उपरान्त चेतनता होती है तब वासना के अनुसार शरीर देखता है और जानता है कि, यह मेरा शरीर है; मैं उत्पन्न हुआ हूं । कोई ऐसे होते हैं

कि, उसी क्षण में युग का अनुभव करते हैं; कोई ऐसे होते हैं कि, चिर-काल पर्यन्त जड़ रहते हैं तब उनको चेतनता फुरती है और उसके अनुसार संसार भ्रम देखते हैं और कोई जो संस्कारवान् होते हैं उनको शीघ्रही एक क्षण में चेतनता होती है और वे जानते हैं कि, हम उस ठौर मुये थे और इस ठौर जन्मे हैं; यह हमारी माता है, यह पिता है और यह कुल है। इस प्रकार एक मुहूर्त में जागकर वे देखते हैं और बड़े कुल को देखते हैं। इसी प्रकार वे परलोक और यमराज के दूतों को देखते हैं और जानते हैं कि, यह हमें लिये जाते हैं और हमारे पुत्रों ने पिण्ड किये हैं उनमें हमारा शरीर हुआ है और दूत ले चले हैं। तब आगे ये धर्मराज को देखते हैं और उसके निकट जाके खड़े होते हैं और पुण्य पाप दोनों मूर्ति धारकर उनके आगे स्थित होते हैं। तब धर्मराज अन्तर्यामी से एक २ का हाल पूछता है कि, इसने क्या कर्म किये हैं? यदि पुण्यवान् होता है तो स्वर्ग भोग भोगाकर फिर योनि में डाला जाता है और जो पापी होता है तो नरक में डाल देते हैं। निदान सब प्रकार जन्मों को धारता है। सर्प की योनि में कहता है कि मैं सर्प हूं और बैल, वानर, तीतर, मच्छ, बगला, गर्दभ, बेलि, वृक्ष इत्यादिक योनि पाता है, तो जानता है कि, मैं यही हूं। अकस्मात् काकताली योग की नाईं कदाचित् मनुष्य शरीर पाता है तो माता के गर्भ में जानता है कि, यहां मैंने जन्म लिया है; यह मेरी माता है, मैं पिता से उत्पन्न हुआ हूं और यह मेरा कुल है। फिर बाहर निकलता है और बालक होता है तब जानता है कि, मैं बालक हूं; यौवन अवस्था होती है तब जानता है कि, मैं जवान हूं और फिर वृद्ध होता है तब जानता है कि, मैं वृद्ध हूं। इस प्रकार काल बिताकर जब मरता है तो सर्प, तोता, तीतर, वानर, मच्छ, कच्छ, वृक्ष, पशु, पक्षी, देवता इत्यादिक का जन्म धारण करता है। हे रामजी! संसार में वह घटीयन्त्र की नाईं फिरता है और कभी ऊर्ध्व और कभी अधः को जाता है और इसीप्रकार स्वरूप के प्रमाद से दुःख पाता है। हे रामजी! इतना विस्तार जो तुमसे कहा है सो बना

कुछ नहीं केवल अद्वैत आत्मा है पर चित्त के संयोग से इतना भ्रम देखता है और वासनाद्वारा विमानों को देखता है और आकाश में जाता है। जैसे पवन गन्ध को लेजाता है तैसेही पुर्यष्टका को ले जाता है और शरीर देखता है। हे रामजी! आत्मा से भिन्न कुछ नहीं परन्तु चित्त के संयोग से इतने भ्रम देखता है। इससे चित्तको स्थित करो तो भ्रम मिट जावेगा और आत्मतत्त्वमात्रही शेष रहेगा। जो शुद्ध और आनन्दरूप है उसी में स्थित हो रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्ववासनारूपवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमस्सर्गः ॥ ११४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तो प्रवृत्तिवाले का क्रम कहा अब निवृत्ति का क्रम सुनो। जिसको भूमिका प्राप्त हुई है और आत्मपद नहीं प्राप्त हुआ उसके पाप सब दग्ध होजाते हैं। जब उसका शरीर छूटता है तब वह वासना के अनुसार शून्याकार हुआ फिर अपने साथ शरीर देखता है और फिर बड़े परलोक को देखता है जहां स्वर्ग के सुख भोगता है। फिर विमान पर चढ़ के लोकपालों के पुरों में बिचरता है जहां मन्द मन्द पवन चलता है, सुन्दर वृक्षों की सुगन्ध है और पांचों इन्द्रियों के रमणीय विषय हैं। देवताओं में क्रीड़ा करता है और भोगों को भोगकर संसार में उपजता है और फिर भूमिका क्रम को प्राप्त होता है। जैसे मार्ग चलता कोई सो जावे तो जागकर फिर चलता है तैसेही शरीर पाकर वह फिर भूमिका के क्रम को प्राप्त होता है और जैसी २ भावना दृढ़ होती है तैसे ही भासता है। यह सब जगत् संकल्पमात्र है, संकल्प के अनुसारही भासता है और वासना के अनुसार परलोक भ्रम सुख दुःख देखता है, वहां से भोगकर फिर संसार में आन पड़ता है। इसी प्रकार संकल्प से भटकता है और जब आत्मा की ओर आता है तब संसारभ्रम मिट जाता है। जब तक आत्मा की ओर नहीं आता तब तक अपने संकल्प से संसार को देखता है। जीव जीव प्रति अपनी २ सृष्टि भासती है देवता, दैत्य, भूमिलोक, स्वर्ग सब संकल्प के रचेहुये हैं। जो कुछ संसार

भासता है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र से आदि लेकर वह सब मनोमात्र है, मन के संकल्प से उदय हुआ है और असत्‌रूप है। जैसे मनोराज, गन्धर्वनगर और स्वप्नसृष्टि भ्रमरूप हैं तैसे ही यह जगत् भ्रमरूप है। यह सृष्टि परस्पर अदृष्ट है; कहीं उदय होती भासती है और कहीं लय होजाती है। जैसे मूर्ख और देश को जाता है तैसे ही देह को त्यागकर जीव परलोक को जाता है पर स्वरूप में आना,जाना,अहं, त्वं कल्पना कोई नहीं; केवल सत्तामात्र अपने आप में स्थित है और जगत् भी वही है। हे रामजी! यह विश्व आत्मस्वरूप है। जैसे मणि का चमत्कार होता है तैसेही विश्व आत्मा का चमत्कार है और जो कुछ तुमको भासता है सो आत्माही है–आत्मा विना आभास नहीं होता जैसे ईख में मधुरता और मिरचों में तीक्ष्णता होती है तैसेही आत्मा में विश्व है। जो कुछ देखते, सुनते, स्पर्श करो। और सुगन्ध लो उसे सब आत्मा ही जानो अथवा जो इनके जाननेवाला अनुभवरूप है उसमें स्थित हो और इन्द्रियाँ और विषय को त्यागकर अनुभवरूप में स्थित हो। हे रामजी! यह विश्व संवित्‌रूप है और संवित् ही विश्वरूप है। जब संवित् बहिर्मुख होकर रस लेती है तब जाग्रत् को देखती है; जब अन्तर्मुख होकर रस लेती है तब स्वप्न होता है और जब शान्त होजाती है तब सुषुप्ति होती है संसार को सत्य जानकर जब रस लेती है तब जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था होती है और जब संवित से रसकी सत्यता जाती रहती है तब तुरीयापद होता है। यह पदार्थ है, यह नहीं; जब यह नष्ट हो तब तुरीयापद है। हे रामजी! यह विश्व फुरनेमात्र है; जब फुरना नष्ट हो तब विश्व देखा नहीं जाता। जैसे स्वप्न के देश, काल, पदार्थ जागे से मिथ्या होते हैं तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी मिथ्या है। जीव जीव प्रति जो अपनी २ सृष्टि होती है उसमें आप भी कुछ बन जाता है इससे दुःखी होता है। जब इस अहंकार को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो तब विश्व कहीं नहीं है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सृष्टिनिर्वाणएकताप्रतिपादनं नाम पञ्चदशाधिकशततमस्सर्गः॥ ११५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस सृष्टि का स्वरूप संकल्पमात्र है और संकल्प भी आकाशरूप है। आकाश और स्वर्ग में कुछ भेद नहीं; जैसे पवन और स्पन्द में भेद नहीं। सृष्टि में अनेक पदार्थ हैं परन्तु परस्पर नहीं रोकती और वास्तव में विश्व भी आत्मा का चमत्कार है और आत्मरूप है। जो आत्मरूप है तो राग और द्वेष किसमें कीजिये? चेतन धातु में कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं और यह आश्चर्य है कि, आत्मा से कुछ नहीं हुआ। भिन्न २ संवेदन दृष्टि आती है पर नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं। हे रामजी! जीव जीव प्रति अपनी २ सृष्टि है। एक सृष्टि ऐसी है कि, उसका संकल्प एक दृष्टि आता है परन्तु सृष्टि अपनी २ है और कई ऐसी हैं कि, भिन्न २ हैं परन्तु समानता करके एकही दृष्टि आती हैं। जैसे जल की बूंदें इकट्ठी होती हैं और धूलि के कण भिन्न २ होते हैं परन्तु एकही धूलि भासती है। जैसे नदी में नदी पड़ती है तो एकही जल होजाता है तैसेही समान अधिकरण करके सब संकल्प एक ही भाषते हैं; एक एक के साथ मिलते हैं और नहीं भी मिलते। जैसे क्षीर समुद्र में घृत डालिये तो नहीं मिलता तैसेही एक संकल्प ऐसे हैं कि, और से नहीं मिलते-जैसे सूर्य, दीपक और मणिका प्रकाश भिन्न २ दृष्टि आता है पर एक से होते हैं तैसेही कई सृष्टि एकही भासती हैं और भिन्न २ होती हैं और कई इकट्ठी होती हैं और भिन्न २ दृष्टि आती हैं हे रामजी! इतनी सृष्टि जो मैंने तुमसे कही हैं सो सब अधिष्ठान में फुरने से कई कोटि उत्पन्न होती हैं और कई कोटि लीन हो जाती हैं। जैसे जल में तरङ्ग और बुद्बुदे उपज कर लीन होजाते हैं तैसेही सृष्टि उत्पन्न और लीन होती है पर अधिष्ठान ज्यों का त्यों है क्योंकि; उससे कुछ भिन्न नहीं। ब्रह्म, आत्मा आदिक जो सर्व हैं सो भी फुरने में हुये हैं। जबतक शब्द अर्थ की भावना है तबतक भासते हैं और जब भावना निवृत्त हुई तब शब्द अर्थ कोई न भासेगा केवल शुद्ध चेतनमात्रही शेष रहेगा और संसार का भाव किसी ठौर न होगा। जैसे पवन जब तक चलता है तबतक जाना जाता है कि, पवन है और गन्ध भी पवन करके

जानी जाती है कि, सुगन्ध आई अथवा दुर्गन्ध आई और जब पवन नहीं चलता तब नहीं भासता और गन्ध भी नहीं भासती; तैसेही जब फुरना निवृत्त हुआ तब संसार और संसार का अर्थ दोनों नहीं भासते। फुरने में जीव जीव प्रति ज्यों ज्यों अपनी २ सृष्टि है उस सृष्टि में सत्ता-समान ब्रह्म स्थित है और सबका अपना आप है-द्वैतभाव को कदाचित् नहीं प्राप्त हुआ। हे रामजी! इससे ऐसे जानो कि, आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि सर्व पदार्थ आत्मा ही हैं अथवा ऐसे जानो कि, सर्व मिथ्या हैं और इनका साक्षीभूत सत्ता ब्रह्महो अपने आप में स्थित है उससे कुछ भिन्न नहीं और उसी ब्रह्म में अंश से अनेक सुमेरु और मन्दराचल आदिक स्थित हैं। अंशांशीभाव भी आत्मामें स्थूलता के निमित्त कहे हैं वास्तव नहीं-जनावने निमित्त कहे हैं। आत्मा एकरस है। हे रामजी। ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो आत्मसत्ता बिना हो। जिसको सत्य जानते हो सो भी आत्मा है और जिसको असत्य जानते हो वह भी आत्मा है; आत्मा में जैसे सत्य का फुरना है तैसेही असत्य का फुरना है-फुरना दोनों का तुल्य है। जैसे स्वप्ने में एक सत्य जानता है और दूसरा असत्य जानता है तैसेही जो इन्द्रियों के विषय होते हैं उनको सत्य जानता है और आकाश के फूल और शशे के शृङ्ग को असत्य कहता है सो सर्व अनुभव से फुरे हैं इससे अनुभवरूप हैं। ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो आत्मा में असत नहीं; जो कुछ भासते हैं सो सर्व फुरने में हुये हैं सत्य क्या और असत्य क्या; सब मिथ्या और स्वप्ने के सत् और असत् की नाईं हैं। जो अनुभव करके सिद्ध है सो सब सत्य है और अनुभव से भिन्न सत्य है। हे रामजी! गुणातीत परमात्मस्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल में ज्ञानवान् पुरुष सम है और दशोंदिशा, आकाश, जल, अग्नि आदिक पदार्थ उसको सर्व आत्माही दृष्टि आता है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता। सूर्य, चन्द्रमा, तारे सब आत्मा हैं यह विश्व आकाशरूप है और शुद्ध निर्मल है; आकाश में आकाश स्थित है, कुछ भिन्न नहीं। जो तुम्हें

भिन्न भासे उन्हें मिथ्या जानो वे भ्रम करके सिद्ध हुये हैं; कोई सत् नहीं। पर परमार्थ से देखो तो सर्व आत्मा है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वआकाशएकताप्रतिपादनं नाम षोडशाधिकशततमस्सर्गः ॥ ११६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व स्वप्न के समान है। जैसे स्वप्न की सेना नाना प्रकार की दिखती है और शस्त्र चलते भासते हैं पर आत्मा में इनका रूप देखना और मानना और शब्द अर्थ कोई नहीं; वह जगत् से रहित है और जगत्रूप भान होता है। अहं, त्वं जो कुछ भासता है सो सब स्वप्नवत् है और भ्रम से सिद्ध हुआ है। जो सर्वका अधिष्ठान है वह सत्य है और सब उसी में कल्पित हैं। जो अनुभव से देखिये तो सर्व आत्मास्वरूप हैं और भिन्न देखिये तो कुछ नहीं। जैसे स्वप्न के देश, काल, पदार्थ सब अर्थाकार भी भासते तौ भी मिथ्या हैं तैसेही यह विश्व भ्रम करके फुरता है। उनकी अपेक्षा से वह और तू है और उसकी अपेक्षा से वह अहं है वास्तव में दोनों नहीं—जो है सो आत्माही है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि त्वं आदिक अहं पर्यन्त और अहं आदिक त्वं पर्यन्त सर्व स्वप्नसेना की नाईं मिथ्या हैं और अनुभव से देखिये तो आत्मरूप हैं तो हम स्वप्नसेना में हैं अथवा हमारा अहं आत्मा है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनात्म देहादिक में यह अहंभावना करनी कि, मैं हूं तो स्वप्न सेना के तुल्य है और अधिष्ठान चिन्मात्र दृश्य और अहंकार से रहित अहंभावना करनी आत्मरूप है। हे रामजी! तुम आत्मरूप हो। यह विश्व सत् भी नहीं और असत् भी नहीं; जो अधिष्ठानरूप से देखिये तो आत्मरूप है और जो अधिष्ठान से रहित देखिये तो मिथ्या है। वह अधिष्ठान शुद्ध, आनन्दरूप, चित्त से रहित चिन्मात्र परब्रह्म है उसमें अज्ञान से दृश्य दीखता है। जैसे असम्यक् दृष्टि से सीपी में रूपा भासता है तैसेही आत्मा में अज्ञानी दृश्य कल्पते हैं। हे रामजी! दृश्य अविचार से सिद्ध है और विचार किये से कुछ वस्तु नहीं होती पर जिसके आश्रय कल्पित है

सो अधिष्ठान सत्य है। जैसे सीपी के जाने से रूपे की बुद्धि जाती रहती है तैसेही आत्मविचार से विश्वबुद्धि जाती रहती है। जैसे समुद्र में पवन से चक्र-तरङ्ग फुरते और प्रत्यक्ष भासते हैं पर विचार किये से चक्र से भी जलबुद्धि होती है तैसेही आत्मरूपी समुद्र में मनके फुरने से विश्वरूपी चक्र उठते हैं और विचार किये से तुमको मनके फुरने में भी आत्मरूप भासेगा, विश्वरूपी चक्र न भासेंगे और भ्रम निवृत्त हो जावेगा। जो वस्तु फुरने में उपजी है सो अफुर करके निवृत्त हो जाती है। यह विश्व अज्ञान से उपजा है और ज्ञान से लीन हो जायगा। इससे विश्व को भ्रममात्र जानो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, ब्रह्मा, रुद्र आदि और उत्पत्ति, संहार करने पर्यन्त सब विश्व भ्रममात्र हैं; इस जानने से क्या सिद्ध होता है, यह तो प्रत्यक्ष दुःखदायक भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ तुम देखते हो सो सम्यक् दृष्टि से सब आत्मरूप है-कुछ भिन्न नहीं-और असम्यक् दृष्टि करके विश्व है तो दृष्टि का भेद है-सम्यक् असम्यक् देखने का अधिष्ठान ज्यों का त्यों है। जैसे एक अन्धकार की उपाधि से रस्सी सर्प हो भासती है और भयदायक होती है और जो प्रकाश से देखिये तो रस्सी ही भासती है; तैसेही जिसने आत्मा को जाना है उसको दृश्य भी आत्मारूप है। अज्ञानी को विश्व भासता है और दुःखदायी होता है। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पकर भयवान् होता है और अपने न जानने से दुःख पाता है जो जाने तो भय किस निमित्त पावे? हे रामजी! जीव अपने ही संकल्प से आप बन्धायमान होता है। जैसे कुसवारी कीट अपने बैठने का स्थान बनाकर आपही फँस मरती है, तैसेही अनात्मामें अहं प्रतीति करके जीव आपही दुःख पाता है। हे रामजी! जीव आपही संसारी होता है और आपही ब्रह्म होता है जब दृश्य की ओर फुरता है तब संसारी होता और जब स्वरूप की ओर आता है तब ब्रह्म आत्मा होता है। इससे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो; जो संसारी होने की इच्छा हो तो संसारी हो और जो ब्रह्म होने की इच्छा हो तो ब्रह्म हो जावो। मुझ से पूछो,

तो दृश्य अहंकार को त्याग कर आत्मा में स्थित हो रहो–विश्व भ्रममात्र है, कुछ वास्तव नहीं। यही पुरुषार्थ है कि संकल्प से संकल्प को काटो। जब बाहर से अन्तर्मुख होगे तब ब्रह्मही भासेगा और दृश्य की कल्पना मिट-जावेगी क्योंकि; आगे भी नहीं था। हे रामजी! जो सत् वस्तु आत्मा है उसका अनेक यत्नों से नाश नहीं होता और जो असत्य अनात्माहै उसके निमित्त यत्न कीजिये तो सत् नहीं होता। जो सत्य वस्तुहै उसका कदाचित् अभाव नहीं और जो असत् है उसका भाव नहीं होता। असत् वस्तु तब तक भासती है जबतक उसको भले प्रकार नहीं जाना और जब विचार से देखिये तब नाश होजाती है। अविद्या के पदार्थ विद्या से नष्ट होजाते हैं–जैसे स्वप्ने का सुमेरु पर्वत सत्य हो तो जाग्रत् में भी भासे–इससे है नहीं। यह संसार जो तुमको भासता है सो स्वरूप के ज्ञान से नष्ट हो जावेगा। हमसे पूछो तो हमको आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता, सर्व आत्मा ही है; यह भी नहीं कि, यह जीव अज्ञानी है किसी प्रकार मोक्ष होवे। न हमको ज्ञान से प्रयोजन है, न मोक्ष होनेसे प्रयोजन है क्योंकि; हमको सर्व आत्मा ही भासता है। हे रामजी! जबतक चेतन है तबतक मरता और जन्म भी पाता है; जब जड़ होता है तब शान्तिको प्राप्त होकर मुक्त होता है। चेतन दृश्य की ओर फुरनेको कहते हैं, इसी से जन्म मरण के बन्धन में आता है। जब दृश्य के फुरने से जड़ होजावे तब मुक्त हो। इसका होनाही दुःख है और न होनाही मुक्ति है। अहंकार का होना बन्धन है और अहंकार का न होना मुक्ति है। इससे पुरुष प्रयत्न यही है कि, अहंकार त्याग करो और चेतन ब्रह्मघन अपने आप में स्थित हो। जिसको संसार की सत् भावना है उसको संसार ही है, ब्रह्म नहीं और जिसको ब्रह्मभावना हुई है उसको ब्रह्मही भासता है। हे रामजी! जो पातालमें जावे अथवा सम्पूर्ण पृथ्वी, दशोदिशा, आकाश, देवताओं के स्थान में फिरे तौ भी सुख न पावेगा और आत्माका दर्शन न होगा क्योंकि; अनात्मा में अहंकार किये से सुख नहीं। जब आत्मदर्शी होकर देखोगे तो सर्व आत्मा ही भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वविजयो नाम सप्तदशाधिकशततमस्सर्गः॥ ११७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह संसार संकल्पमात्र है और तुच्छ है। पर्वत, नदियां, देश और काल सर्व भ्रम से सिद्ध हैं। जैसे स्वप्न में पर्वत, नदियां, देश, काल, निद्रादोष से भासते हैं; तैसेही अज्ञाननिद्रा से यह संसार भासता है। हे रामजी ! जागकर देखो तो संसार है नहीं, इसका तरना महासुगम है और सुमेरु पर्वतादिक जो भासते हैं सो कमल की नाईं कोमल हैं। जैसे कमल के मुँदने में कुछ यत्न नहीं तैसेही यह कोमल निवृत्त होते हैं। आकारभूत प्राणियों की स्थूलदृष्टि हैं और आकार को देख रहे हैं। जैसे पवन का चलना जाना जाताहै और जब चलने से रहित होता है तब मूर्ख नहीं जानता तैसेही भूतप्राणी आकार को जानते हैं; और इसमें जो निराकार स्थित है उसको नहीं जानते। जैसे पवन चलताहै तौभी पवन है और ठहरता है तौभी पवन है तैसेही विश्व फुरता है सो भी आत्मा है और अफुरने में भी वही है। इससे विश्व भी आत्म-रूप है, कुछ भिन्न नहीं; जो सम्यक्दर्शी हैं उनको फुरने न फुरने में आत्माही भासताहै। जैसे स्पन्द निस्स्पन्दरूप पवनहीहै, तैसेही ज्ञानीको सर्वदा एकरस है और अज्ञानी को द्वैत भासता है। जैसे वृक्ष में बालक पिशाचबुद्धि करता है तैसेही आत्मा में जगद्बुद्धि अज्ञानी करता है और जैसे नेत्रदोष से आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसेही मनके फुरनेसे जगत् भासता है। हे रामजी ! जैसे वायु का रूप कदाचित् नहीं तैसेही जगत्के रूप का अत्यन्त अभाव है और जैसे मरुस्थल में जल का अभाव है तैसेही आत्मा में जगत् का अभावहै। हे रामजी ! सुमेरु पर्वत, आकाश, पाताल, देवता, यक्ष, राक्षस इत्यादिक ऐसे अनेक ब्रह्माण्ड इकट्ठे करके विचाररूपी कांटे में रक्खे और पीछे आधीरत्ती डाली तौभी पूरे नहीं होते क्योंकि; हैं नहीं; अविचारसिद्ध हैं स्वप्न के पर्वत जागेपर चावल प्रमाणभी नहीं रहते क्योंकि, हैं नहीं; भ्रममात्र है। हे रामजी ! इस संसार की भावना मूर्ख करते हैं। ऐसे जो अनात्मदर्शी पुरुष हैं उनको ऐसे जानो कि, जैसे लुहार की फुकनी से पवन निकलता है तैसेही उन पुरुषों के श्वास वृथा आते जाते हैं। जैसे आकाश में अँधेरी व्यर्थ उठती है तैसेही उन पुरुषों का जीना और

सर्व चेष्टा व्यर्थ है और वे आत्मघाती हैं अर्थात् अपना आप नाश करते हैं और उनकी चेष्टा दुःख के निमित्त है। हे रामजी! यह अपने आधीन है। जो दृश्य की ओरहोता है तो संसार होता है और जो अन्तर्मुख होताहै तो सर्व आत्माही होता है। यह संसार मिथ्या है, न सत् कहिये; न असत् कहिये; भ्रम से हुआ है ये जीव भूत, भविष्य और वर्तमानकाल में बन्ध होते हैं और अग्नि शीतल होती है, आकाश पाताल में, पाताल आकाश में, तारे पृथ्वी पर, पृथ्वी आकाशके ऊपर भी होती है; बादल विना मेघ वर्षा करता है और आकाश में हल फिरते हैं ऐसे कौतुक मैं देखताहूं। हे रामजी! इसमें कुछ आश्चर्य नहीं; मन करके सब कुछ होता है। जैसे मनोराज किया तैसाही आगे स्थित होताहै और सिद्धि होती है। पर्वत पुर में भिक्षुक के समान भिक्षा मांगते फिरते हैं; ब्रह्माण्ड उड़ते फिरते हैं; बालूसे तेल निकलता है और मृतक युद्ध तरते हैं; मृग गाते हैं और वन नृत्य करते हैं। हे रामजी! मनोराज करके सब कुछ बनताहै। चन्द्रमा की किरणों से पर्वत भस्म होते हैं, इसमें क्या आश्चर्य है? ऐसेही यह संसार भी मनोराज है और शीघ्र संवेग है इससे इसको जीव सत् मानता है और आगे जो बालू से तेलादिक कहे हैं उनको सत् नहीं जानता क्योंकि; उसमें मृदु संवेग है पर दोनों तुल्य हैं। हे रामजी! जिनको सत और असत् कहते हो सो आत्मा में दोनों नहीं। ये जो तुमको सत् पदार्थ भासते हैं तो अग्नि आदिक शीतल भी सत् हैं और जो ये मिथ्या भासते हैं तो वे भी मिथ्या हैं, केवल तीव्र और मृदु संवेग का भेद है। जब तीव्र संवेग दूर होताहै तब सब मिथ्या मानते हैं। जैसे स्वप्न से जागा हुआ स्वप्न को मिथ्या कहता है और जाग्रत् को सत्य कहता है पर दोनों मनोराज हैं। हे रामजी! जितने आकार दृष्टि आते हैं उन सबको मिथ्या जानो; न तुम हो, न मैं हूं और न यह जगत् है। परमार्थ सत्ता ज्यों की त्यों है, उसमें अहं त्वं का उत्थान कोई नहीं; वह केवल शान्तरूप; आकाशरूप और निराकाशरूप है जिसमें कुछ द्वैत नहीं—केवल अपने आपमें स्थित है जैसे बालक मृत्तिका के हाथी, घोड़े और मनुष्य बनाकर उनके नाम कल्पता है

कि, यह राजा है; यह हाथी है; यह घोड़ा है सो मृत्तिका से भिन्न नहीं पर बालक के मनमें उनके नाम भिन्न भिन्न दृढ़ होते हैं; तैसेही मनरूपी बालक नाना प्रकार की संज्ञा कल्पता है पर आत्मासे कुछ भिन्न नहीं। इससे हे रामजी! तुम किसका भय करतेहो? निर्भय हो रहो। तुम्हारा स्वरूप शुद्ध, निर्भय और अविद्याके कारण कार्य से रहित है उसमें स्थित रहो। यह संसार तुम्हारे फुरने में हुआ है; आत्मा न सत्य है, न असत्य है, न जड़ है, न चेतन है, न प्रकाश है, न तम है, न शून्य है, न अशून्य है। शास्त्रने जो विभाग कहे हैं कि, यह जड़ है, यह चेतन है सो इस जीव के जगाने के निमित्त कहे हैं। आत्मा में कोई वास्तव संज्ञा नहीं-केवल आत्मत्वमात्र है। इससे दृश्य की कलना त्यागकर आत्मा में स्थित हो। ब्रह्मा से आदि स्थावरपर्यन्त सर्व कलनामात्र हैं; इसमें क्या आस्था करनी है? संसार के भाव दोनों तुल्य हैं। फुरना जैसा भाव का है, तैसाही अभाव का है-स्वरूप में दोनों की तुल्यता है और व्यवहारकाल में जैसा है तैसा ही है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वप्रमाणवर्णनं नामाष्टदशाधिकशततमस्सर्गः॥ ११८॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! भूमिका प्रसंग यहां चला था; उसमें जो सार आपने कहा वह मैं समझ गया; अब भूमिकाओं का विस्तार कहिये। योगी का शरीर जब छूटता है और स्वर्गके भोगोंको भोगकर गिरताहै तो फिर उसकी क्या अवस्था होती है सोभी कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे राम जी! जिस योगी को भोग की वाञ्छा होती है वह स्वर्ग में जाकर भोग भोगता है पर यदि उसको और भी भोगने की इच्छा होती है तो वह मध्यमण्डल मनुष्यलोकमें पवित्रस्थान और धनवानोंके गृहमें जन्म लेता है। और जो उसको भोगकी वाञ्छा और नहीं होती तो ज्ञानवानोंके गृहमें जन्म लेता है। थोड़े कालके उपरान्त उसका पिछला संस्कार आ फुरता है वह स्मरण करके आत्मा की ओर होता जाता है। जैसे कोई पुरुष लिखता हुआ सो जाता है पर जब जागता है तब उस लिखेको देखकर फिर आगे

लिखता है तैसेही वह योगी पूर्व के अभ्यास को पाकर दिन २ बढ़ाता जाता है। वह अज्ञानका संग नहीं करता क्योंकि; वह भोगों के सम्मुख है और आत्ममार्ग से बहिर्मुख है; जो चुगुली करनेवाले हैं उनका संग नहीं करता; उसके सर्व अवगुण त्याग जाते हैं और दम्भ, गर्व, राग, द्वेष, भोग की तृष्णा आदि स्वाभाविक छूट जाते हैं। वह शान्ति को प्राप्त होता है और उसको कोमलता, दया आदि शुभगुण स्वाभाविक प्राप्त होते हैं। हे रामजी! इस निश्चय को पाकर वह वर्णआश्रम के धर्म यथाशास्त्र करता हुआ संसारसमुद्र के पार के निकट प्राप्त होता है पर पार नहीं होता यह भेदहै सो तीसरी भूमिका है-फिर मोह को नहीं प्राप्त होता। जैसे चन्द्रमाकी किरणें कदाचित् ताप को नहीं प्राप्त होतीं तैसेही तीसरी भूमिकावाला संसाररूपी गढ़े में नहीं गिरता। हे रामजी! यह सप्तभूमिका ब्रह्मरूप है पर इतनाही भेद है कि तीन भूमिका जाग्रत् अवस्था है, चतुर्थ स्वप्न है, पंचम सुषुप्ति है, षष्ठ तुरीय है और सप्तम तुरीयातीत है। हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाओं में संसार की सत्यता भासती है इससे जाग्रत् कही है और पिछली चारों में संसार का अभाव है इससे जाग्रत् से विलक्षण है। जाग्रत् में घट, पट आदिक सत् भासते हैं कि, घट घटही है और पट पटही है अन्यथा नहीं, अपनाही अपना कार्य सिद्ध करते हैं, इससे अपने काल में ज्यों के त्यों हैं। इसी प्रकार सर्व पदार्थ हैं। तीसरी भूमिकावाला स्थावर-जङ्गम को जानता है और नाम और रूप से ग्रहण करता है पर हृदय में राग द्वेष नहीं धारता क्योंकि; विचार करके तुच्छ जाने है पर इससे संसार का अत्यन्त अभाव नहीं जाना और ब्रह्मस्वरूप भी नहीं जानता क्योंकि; उसके स्वरूपका साक्षात्कार नहीं हुआ। जब स्वरूपको जाने तब संसारका अत्यन्त अभाव होजावे। इन तीनों भूमिकाओं से संसार की तुच्छता होती है नष्टता नहीं होती। इनको पाकर जब शरीर छूटता है तब और जन्म में उसको ज्ञान प्राप्त होता है और दिन २ में ज्ञानपरायण होता है। जब दृढ़बुद्धि होती है तब ज्ञान उपजता है। जैसे बीज से प्रथम अंकुर होता है और फिर डाल, फूल, फल निकलते हैं तैसे

ही प्रथम भूमिका ज्ञानका बीज है, दूसरी अंकुर है; तीसरी डाल है और चतुर्थ से ज्ञान की प्राप्ति होती है सोही फल है । प्रथम तीन भूमिकाओं वाला धर्मात्मा होता है और पुरुषों में श्रेष्ठ है । उसका लक्षण यह है कि, वह निरहंकार, असंगी और धीर होता है । उसकी बुद्धि से विषयों की तृष्णा निवृत्त होजाती है और वह आत्मपदकी इच्छा रखताहै । यह पुरुष श्रेष्ठ कहाताहै, प्रकृत आचार में यथाशास्त्र बिचरता है और शास्त्रमार्ग को कदाचित् नहीं छोड़ता जो शास्त्रमार्ग की मर्यादा के साथ अपने प्रकृत आचार में बिचरताहै सो पुरुष श्रेष्ठहै । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! पीछे आपने कहाहै कि, जब मनुष्य शरीर छोड़ता है तब एक मुहूर्त में उसको युग व्यतीत होता है और जन्म से आदि मरणपर्यन्त जैसी किसी को भावना होती है तैसा आगे भासता है सो एक मुहूर्त में युग कैसे भासता है ? यह कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जगत् जो तीनों काल में संयुक्त भासता है वह ब्रह्मस्वरूपही है भिन्न कुछ नहीं—समानही है । जैसे इक्षु में मधुरता है तैसेही ब्रह्म में जगत् है और जैसे तिलों में तेल है और मिरचों में तीक्ष्णताहै तैसेही आत्मा में जगत् है । जैसे तिलों में तेल होता है तैसेही ब्रह्म में जगत् है । कहीं सत्, कहीं असत्; कहीं जड़, कहीं चेतन; कहीं शुभ, कहीं अशुभ; कहीं नरक; कहीं मृतक, कहीं जीवित, ब्रह्मा से काष्ठपर्यन्त भाव अभावरूप होता है । वह सत् असत् से विलक्षण है । आत्मसत्ता से सर्व सत्य है और भिन्न देखिये तो असत्य है । हे रामजी ! जिनको सत्य असत्य जानते हो कि, पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य और आकाश के फूलादिक असत्य हैं सो दोनों तुल्य हैं । जो विद्यमान पदार्थ सत्य मानिये तो आकाश के फूल भी सत् मानिये । जैसे स्वप्न में कई पदार्थ सत् और असत् भासते हैं तैसे ही जाग्रत् में भासते हैं पर फुरना दोनों का समान है । जैसे सत्य पदार्थों का फुरना हुआ है तैसाही असत् का भी हुआ है; फुरने से रहित सत् असत् दोनों का अभाव होजाता है । इससे यह विश्व भ्रम से सिद्ध हुआ है । जैसे जल में पवन से चक्र उठते हैं तैसेही आत्मा में फुरने से संसार भासता है; इसकी भावना त्यागकर

स्वरूप में स्थित हो रहो। तुमने जो प्रश्न किया कि, एक मुहूर्तमें युग कैसे भासता है ? उसका उत्तर सुनो। जैसे किसी पुरुष को स्वप्न आता है तो एक क्षणमें बड़ा काल बीता भासता है तथा और का और भासता है सो आश्चर्य तो कुछ नहीं; मोहसे सब कुछ उत्पन्न होता है और भ्रमसे दृष्टि आता है। हे रामजी ! जैसे पुरुष सोया है तो एक आपही होता है पर उसमें नाना प्रकारका जगत् भ्रमसे भासता है तैसेही स्वरूप के प्रमाद से जीव कई भ्रम देखता है। स्वरूप के जाने विना भ्रमका अन्त नहीं होता इससे तुम और प्रश्न किस निमित्त करते हो ? एक चित्त को स्थिर करके देखो तो न कोई संसार भासेगा; न कोई जन्म-मरण होंगे; न कोई बन्ध है; न मोक्ष है केवल आत्माही भासेगा। जब संकल्प फुरताहै तब अविद्या से आपको बन्ध जानता है और संकल्प से रहित मुक्त जानता है और विद्या से मुक्त जानता है पर आत्मस्वरूप ज्योंका त्यों है उसे न बन्ध है, न मुक्त है, न विद्या और न अविद्या है–केवल शान्तरूपहै। इससे सर्वदा सर्वप्रकार, सर्व ओर से ब्रह्म ही है दूसरा कुछ नहीं। हे रामजी ! जब स्वरूप की भावना होती है तब संसार की भावना जाती रहती है–ये सर्वशब्द कलना में हैं यह पदार्थ है, यह नहीं है आत्मा में यह कोई नहीं। जैसे पवन चलने और ठहरने में एकही है तैसेही विश्व चित्तका चमत्कार है। ब्रह्मासे चींटी पर्यन्त ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है और आत्माही के आश्रय सर्व शब्द फुरते हैं पर आत्मा फुरने और न फुरने में समहै क्योंकि; दूसरा कोई नहीं। हे रामजी ! जो ब्रह्मसत्ताही है तो आकाश क्याहै; पृथ्वी क्याहै; मैं क्याहूं; यह जगत् क्याहै; ये प्रश्न बनतेही नहीं। एक मनको स्थिर करके देखो कि, ब्रह्मासे चींटी पर्यन्त कुछभी पदार्थ भासताहै; जो भासे तो प्रश्न कीजिये। इससे जैसे भ्रमसे दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही जगत् भी भ्रमसे भासता है। रूप अर्थात् दृश्य; अवलोक अर्थात् इन्द्रियां; मनस्कार अर्थात् मनकी स्फूर्ति, ये शब्द कलनामें फुरे हैं सो सब मिथ्याहैं–आत्मा में ये कोई नहीं। हे रामजी ! आकाश आदिक जो पदार्थ हैं सो भावना में स्थित हुये हैं। जैसी भावना करता है तैसेही पदार्थ सिद्ध होतेहैं और भासते हैं। जब

संसार की भावना उठजावे तब कोई पदार्थ न भासे। हे रामजी! सुषुप्ति में ही जब इसका अभाव होजाताहै तो तुरीया में कैसे भान हो। जब जीव स्वरूप से गिरता है तब उसको संसार भासताहै और संसारमें बासना और प्रमाद से घटीयन्त्र की नाईं फिरताहै। स्वरूप से उतरकर अनात्म में इस अभिमान करने को प्रमाद कहते हैं कि, मैं हूं। यही अज्ञान है जिससे दुःख पाताहै; जब अज्ञान नष्ट हो तब संसार के शब्द अर्थ का अभाव होजावे। अहंकार से संसार होता है; संसार का बीज अहंकारही है। अहंकार अनात्मामें आत्मअभिमान करने को कहतेहैं। हे रामजी! शुद्ध आत्मा अहंकार के उत्थान से रहित केवल शान्तरूप है और विश्व भी वही रूप है। इसकी भावना में दुःख है। यह संवित् शक्ति आत्मा के आश्रय फुरती है। जैसे तेल की बूंद जल में डालिये तो चक्र की नाईं फिरती है तैसेही संवेदन शक्ति आत्मा के आश्रित फुरती है और ब्रह्म एक स्वरूप है उसका स्वभाव ऐसे है। जैसे मोर का अण्डा और उसका वीर्य एकरूप है अपने स्वभाव से वीर्यही नाना प्रकार के रङ्ग धारता है तो भी मोर से कुछ भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा के संवेदन स्वभाव से नानाप्रकार का विश्व भासताहै परन्तु आत्मासे कुछ भिन्न नहीं–आत्मरूपही है। सम्यक्दर्शी को नाना प्रकारमें एक आत्माही भासताहै और अज्ञानी को नाना प्रकार का जगत् भासताहै। हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक शिलाहै उसमें त्रिलोकीरूपी अनेक पुतलियां कल्पित हैं। जैसे एक शिला में शिल्पी पुतलियां कल्पता है कि, इसमें इतनी पुतलियां होंगी सो वे पुतलियां उसके चित्त में हैं और शिला में कुछ नहीं हुआ तैसेही आत्मरूपी शिला में चित्तरूपी शिल्पी नाना प्रकार के पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है सो सर्व आत्मारूप है। इससे पदार्थों की भावना त्यागकर आत्मा में स्थित हो। यह संसार भी निर्वाच्य है क्योंकि; ब्रह्मही है ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं। न कोई उपजता है, न कोई विनशताहै ज्यों का त्यों आत्माही स्थितहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदभावप्रतिपादनं नाम शताधिकैकोनविंशातितमस्सर्गः॥ ११६॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तो इस संसार का बीज अहंकार हुआ। इसका पिता अहंकार है तो मिथ्या संसार जो अविद्यमान ही विद्यमान भासता है सो भ्रमरूप हुआ? और जो भ्रमरूप है तो लोग और शास्त्र; श्रुति और स्मृति क्यों कहते हैं कि, इसका शरीर पिण्ड से होता है? और जो पिण्ड से होताहै तो आप कैसे भ्रम कहते हैं? जो भ्रम है तो लोग, शास्त्र, श्रुति और स्मृति क्यों पिण्ड से कहते हैं? इससे मेरे संशय को निवृत्त कीजिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मेरा कहना सत्य है। ऐसे ही है। ब्रह्म में ब्रह्मतत्त्व स्वभाव है और जगत् का लक्षण भी वही है। हे रामजी! आदि जो किंचन हुआ है और चित्तशक्ति फुरी है वही ब्रह्मरूप हुआ है और उसमें पदार्थ का मनोराज हुआ है। यह आकाश है; यह पवन है; यह कर्तव्य है; यह अकर्तव्य है; यह सत्यहै; यह झूठ है इत्यादि जबतक मनोराज है तबतक सर्व मर्यादा ऐसेही है। फिर ब्रह्मा में ऐसे हुआ कि, जगत् की मर्यादाके निमित्त वेद कहता है कि, यह पदार्थ शुभ है और यह अशुभ है। हे रामजी! आत्मा में कुछ द्वैत नहीं; मायारूप जगत् में मर्यादा है; तो अध, ऊर्ध्व, नीच, ऊंच कौन कहे? यह मर्यादा भी वेद में नीति निश्चय हुई है कि, ये शुभ कर्म हैं; इनके कियेसे स्वर्ग सुख ही भोगते हैं और ये अशुभकर्म हैं इनके कियेसे नरकदुःख भोगते हैं। हे रामजी! जैसे वेद में निश्चय किया है तैसेही जीव अपनी वासना के अनुसार भोगता है। हे रामजी! यह रचित शक्ति नीति होकर ब्रह्मादिक में फुरी है परन्तु उनको सदा स्वरूप में निश्चय है इससे वे बन्धायमान नहीं होते और ब्रह्मा विष्णु रुद्र ने यह वेदमाला धारीहै कि; जैसा कोई कर्म करे तैसाही फल देते हैं, यह वेद सर्वकी नीति है हे रामजी! जिन पुरुषों को संसार की सत्यता दृढ़ हुईहै वे जैसे कर्म शुभ अथवा अशुभ करते हैं तैसेही शरीर को धारते हैं। इसमें संशय नहीं कि, जो शास्त्रमर्यादा को अपनी इच्छा से उल्लंघित बर्तते हैं सो शरीर त्यागकर कोई काल मूर्च्छित होजाते हैं और आत्मज्ञान विना एक मुहूर्त में जागकर बड़े नरकों को चलेजाते हैं। जिनको शून्यभावना हुई है कि, आगे

नरक स्वर्ग कोई नहीं और जो लोक-परलोक के भय को त्यागकर शास्त्र बाहर से बर्तते हैं सो मरकर पत्थर वृक्षादिक जड़योनि पातेहैं और चिरकालसे उनकी वासना प्रणमतीहै फिर दुःखभागी होतेहैं और जिनको आत्मभावना हुईहै और संसारकी भावना निवृत्त हुई है वे शास्त्रविहित करें अथवा अवि-हित करें उनको कोई बन्धन नहीं। हे रामजी! चित्तरूपी भूमिमें निश्चयरूपी जैसा बीज बोता है तैसाही काल पाकर उगता है-यह निःसंशय है। इससे तुम आत्मभावनारूप बीज बोओ कि, सर्व आत्मा है। ऐसी भावना करो तब सिद्ध आत्माही भासेगा और जिनको संसारका निश्चय हुआहै उन को संसार है। हे रामजी! जो पुरुष धर्मात्मा हैं उनको उसी वासना के अनुसार भासता है। धर्मात्मा भी दो प्रकारके हैं-एक सकामी और दूसरे निष्कामी। जो धर्म करतेहैं और पापरूपी कामना सहितहैं तो वे स्वर्ग-भोग भोगकर फिर गिरते हैं और जो निष्काम ईश्वरार्पण कर्म करते हैं उनका अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह भी संसार में मर्यादा है कि, जैसा किसीको निश्चय होता है तैसाही संसारको देखता है। पिण्ड करके भी शरीर होता है क्योंकि, यह भी आदि नीति में निश्चय हुआ है जैसे आदि नीति में निश्चय हुआ है तैसेही होता है। जो पवन है सो पवनही है और जो अग्नि है सो अग्निही है। इसी प्रकार कल्पपर्यन्त जैसे मनोराज हुआ है तैसेही स्थित है। जैसे जल नीचेही को जाता है-ऊंचे नहीं जाता; तैसेही जो आदि किंचनमें निश्चय हुआ है वही कल्पपर्यन्त है। हे रामजी! जगत् व्यवहार में तो ऐसे हैं और परमार्थ से दूसरा कुछ हुआ नहीं, इस जीवने आकाश में मिथ्या देह रची है। परमार्थ से केवल निराकार अद्वैत आत्मा है शरीर इसके साथ नहीं है इससे जगत् कैसे हो?॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पिण्डनिर्णयो नाम
शताधिकविंशतितमस्सर्गः ॥ १२० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रश्नपर एक इतिहास बृहस्पति और बलिराजा का है सो सुनो। जब छः कल्प व्यतीत हुये तो दूसरे परार्द्ध

में राजा बलि हुआ। वह महापराक्रम की मूर्ति था। उस राजा बलि ने सम्पूर्ण दैत्यों और राक्षसों को जीत कर अपने वश किया और उनपर अपनी आज्ञा चलाई। इन्द्रको भी जीतकर अपने वश किया और उसका सम्पूर्ण ऐश्वर्य एक नगर की नाईं लेलिया था। देवता और किन्नरों पर उसकी आज्ञा चली और भूलोक भी उसने लेलिया। जब वह सबको ले चुका तब उसने धर्म आचार को ग्रहण किया। एक समय सब सभा बैठीथी और यह कथा चली कि; जन्म कैसे होता है और मरण कैसे होताहै? तब राजा बलि ने देवगुरु बृहस्पति से प्रश्न किया कि; हे ब्राह्मण! यह पुरुष जब मृतक होता है तब शरीर तो भस्म होजाता है फिर कर्मों के फल कैसे भोगताहै और शरीर विना कैसे आता जाता है सो कहिये? बृहस्पति बोले, हे राजन्! जीव के देह नहीं है। जैसे मरुस्थल में जल भासता है पर है नहीं; तैसेही जीव के साथ शरीर भासता है और है नहीं। जीव न जन्मता है; न मरता है; न भस्म होता है; न जल के दुःखी होता है। यह सदा अच्युतरूप है पर स्वरूप के प्रमाद से आपको दुःखी जानता है कि; मैं इनको भोगता हूं और जन्मा हूं; इतना काल हुआ है; यह मेरी माता है; यह पिता है; मैं इनसे उपजाहूं और फिर आपको मृतक हुआ जानता है। हे राजन्! भ्रम से ऐसे देखता है जैसे निद्राभ्रम से स्वप्न में देखता है तैसेही अज्ञान से जीव आपको मानताहै। जब मृतक होता है तब जानता है कि; मेरा शरीर पिण्ड से हुआ है और अब मैं दुःख सुख भोगूंगा। जैसे स्वप्न में आकाश होता है और वहां वासना से अपने साथ शरीर देखता है और सुख दुःख भोगता है; तैसेही मरकर जीव अपने साथ शरीर देखताहै और दुःख सुख का भागी होताहै। परमार्थसे इसके साथ शरीरही नहीं तो जन्म मरण कैसे हों? स्वरूप से प्रमाद करके देहधारी की नाईं स्थित हुआहै और उस देह से मिलकर जैसी २ भावना करता है तैसा ही फल भोगता है और वासना के अनुसार जैसी भावना होती है तैसेही आगे शरीर देखता है और पञ्चभौतिक संसार को देखता है, इस प्रकार भ्रमता है और जन्मता मरता आपको देखता है। जैसे समुद्रसे तरङ्ग उठता

और मिटजाता है तैसेही शरीर उपजता और नष्ट होता है। शरीर के सम्बन्ध से ही उपजता और विनशता भासता है। यह आश्चर्य है कि आत्मा ज्यों का त्यों स्वाभाविक स्थित है उसमें वासनाके अनुसार विश्व देखता है। हे राजन्! विश्व इसके हृदय में स्थित है और भावना के अनुसार आगे देखता है। इस जीवमें विश्व है और विश्व में जीव नहीं। जैसे तिल में तेल है और तेल में तिल नहीं और सुवर्ण में भूषण कल्पित है भूषण में सुवर्ण कल्पित नहीं वैसेही विश्व सत् भी नहीं और असत् भी नहीं। सत् इस कारण नहीं कि, चलरूप है स्थित नहीं और असत् इससे नहीं कि, विद्यमान भासताहै। इससे इसकी भावना त्यागो; यह दृश्य मिथ्याहै और इसका अनुभव मिथ्याहै और इसका जाननेवाला अहंकार जीवभी मिथ्या है। जैसे मरुस्थल में जल मिथ्या है तैसेही आत्मा में अहंकार और जीव मिथ्या है। हे राजन्! जबतक शास्त्रके अर्थ में चपलता है और स्थिति से रहित है तबतक संसार की निवृत्ति नहीं होती और जब दृश्यके फुरने और अहंकार से जड़ हो तब इसको आत्मपद की प्राप्ति हो। जबतक दृश्य की ओर फुरता है और चेतन सावधानहै तबतक संसारमें भ्रमताहै। हे राजन्! आत्मा न कहीं जाता है; न आता है; न जन्मता है; न मरता है। जब चेत और चित्तका संबंध मिटजावे तब आनन्दरूप ही है। चेत दृश्यको कहते हैं और चित्त अहंकारसंवित् का नामहै। जब दोनों का सम्बन्ध आपस में मिटजावेगा तब शेष आत्मा ही रहेगा। वह ब्रह्म आत्मा और शिवपद है जिसमें वाणी की गम नहीं और अनुभव निर्वाच्य पदहै उसीमें स्थित हो। हे रामजी! जिस युक्ति से इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्त हो सो युक्ति श्रेष्ठ है। जबतक फुरना उठता है कि, यह भाव है यह अभाव है; तबतक इसको जीव कहते हैं और जब भाव अभाव का फुरना मिट जाता है तब जीवसंज्ञा भी जाती रहती है। शिवपद आत्माको प्राप्त हो जहां वाणी की गम नहीं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनं नाम शताधिकैकविंशतितमस्सर्गः॥ १२१॥

वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! इस प्रकार बृहस्पति ने बलिराजा से कहा था वह तेरे प्रश्न के उत्तर निमित्त मैंने कहा है। जबतक हृदय में संसार की सत्यता है तबतक जैसे कर्म करेगा तैसाही शरीर धरेगा। हे रामजी! जिस वस्तु को चित्त देखता है उसकी ओर अवश्य जाता है; उसका संस्कार उसके हृदय में होता है और जिस पदार्थ को सत् जानता है उस पदार्थ का संस्कार स्थित होजाता है। जैसे मोर के अण्डे में शक्ति होती है और जब समय आता है तब नाना प्रकारके रङ्ग उसमें प्रकट भासते हैं; तैसेही चित्त का संस्कार भी समय पाकर जागता है। हे रामजी! चित्त अज्ञान से उपजता है। फिर बृहस्पति ने कहा, हे राजन्! बीज पृथ्वी पर उगता है आकाश में नहीं उगता; जैसा बीज पृथ्वी में बोया जाता है तैसाही फल होता है। यहां अहंरूप अपना होना यही पृथ्वी है; जैसी २ भावनासे कर्म करता है तैसा २ चित्तरूपी पृथ्वीपर उत्पन्न होताहै और फिर उसमें फल होता है। उन कर्मों के अनुसार देह धारके सुख दुःख को भोगता है। ज्ञानवान् आकाशरूप है आकाश में बीज कैसे उपजे? बीज भावना से अज्ञानरूपी पृथ्वी में उगता है। बलि ने पूछा, हे देवगुरो! आपने कहा कि, जीव जीता हो अथवा मृतक हो इसे अपनी भावनाही से अनुभव होताहै तो जब यह मृतक हुआ और इसकी पिण्डादिक में भावना न हुई तो फिर इसका शरीर कैसे होता है? बृहस्पति बोले, हे राजन्! पिण्डदान आदिक क्रिया न हों पर उसके हृदय में भावना हो और उसी समय किसीने किया तौभी वह जो हृदयमें भावना है वही कर्मरूप है और उसीसे भासि आता है और जो उसके हृदय में भावना नहीं और किसी बान्धवने इसके निमित्त पिण्डदान किया तौभी इसको भासि आता है क्योंकि; वह भी इसकी वासनामें स्पन्द है। हे राजन्! जो अज्ञानी जीव हैं और जिनको अनात्म में आत्मबुद्धि है उनके कर्म कहांगये हैं, वे जो कर्म करते हैं वही उनके चित्तरूपी भूमि में उगते हैं। उनके शरीर की क्या संख्या है? वे वासनारूपी अनेक शरीर ज्ञान विना स्वप्नवत् धारतेहैं। बलि बोले, हे देवगुरो! यह निश्चय करके मैंने जाना

है कि, जिसको निष्किंचन की भावना होतीहै वह निष्किंचन पदको प्राप्त होता है और संसारकी ओरसे शिला की नाईं होजाता है। जिसकी जैसी भावना होती है तैसाही स्वरूप होजाता है। जब संसार से पत्थरवत् हो तब मुक्त हो। बृहस्पति बोले, हे राजन्! निष्किंचन को जब जानता है तब संसार की ओर से जड़ होजाता है। संसार के न फुरनेही का नाम जड़ है और केवल सारपद के स्थित होताहै। जिसे गुण चला न सकें उसे जानिये कि, निष्किंचनपद को प्राप्त हुआ है। वही निःसंदेह मुक्त है। हे राजन्! जबतक संसार की सत्यता चित्त में स्थित है तबतक वासना है और जबतक वासना है तबतक संसार है। संसार के अभाव विना शान्ति नहीं होती। स्वरूप के प्रमाद से चित्त हुआ है; चित्त से वासना हुईहै और वासना से संसार हुआ है; इससे इस वासना को त्याग करो। कोई फुरना फुरे तो निष्किंचनभाव हो और शान्तभागी हो। हे राजन्! जिस युक्ति और क्रमसे यह निष्किंचनरूप हो वही करे। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकारसे सुरपुर में असुरनायक को सुरगुरु ने जो पिण्डादानादि क्रिया कही वह मैंने तुमको सुनाई।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबलिसंवादो नाम शताधिकद्वाविंशतितमस्सर्गः ॥ १२२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चाहे जीता हो चाहे मृतक हो जो कुछ इसके चित्त के साथ स्पर्श होगा उसका अनुभव अवश्य करेगा। जैसे मोर के अण्डे में रस होता है तो वह समय पाकर विस्तार पाता है तैसेही इसके भीतर जो वासना का बीज है वह यदि प्रकट नहीं भासता तौ भी समय पाकर विस्तारवान् होता है। जबतक चित्त है-तबतक संसार है और जब चित्त नष्ट हो तब सब भ्रम मिटजावे। हे रामजी! चित्त भी असत् है तो विश्व भी असत्यहै। जैसे आकाशरूप में नीलता भ्रमसे भासती है तैसेही आत्मा में विश्वभ्रम है। हे रामजी! हमको न चित्त भासता है न विश्व भासता है; मैं भी आकाश हूं और तुम भी आकाशरूप हो। यह चित्तस्वरूप के प्रमाद करके उपजता है। जैसे जहांका जल होता है वहां

श्यामता होती है तैसेही जहां चित्त होता है वहां वासना होती है । जब ज्ञानरूपी अग्नि से वासना दग्ध हो तब चित्त सत्पद को प्राप्त होता है और जीवितसंज्ञा निवृत्त होती है । हे रामजी ! चित्त के उपशम का उपाय मुझसे सुनो तो उससे चित्त निर्वाण होजावेगा । जो सात भूमिका ज्ञान की हैं उनसे चित्त नष्ट होजावेगा । उनमें से तीन भूमिका तो तुमसे क्रम से कही हैं और चार कहने को रही हैं । हे रामजी ! प्रथम तीन भूमिकाओं में से जिसको एक भी प्राप्त होती है; उसको महापुरुष जानो । उसके मान और मोह निवृत्त होजाते हैं और उसे संगदोष नहीं लगता । उसमें विचार स्थिति से कामना नष्ट होजाती है और राग द्वेष न रहकर सुख दुःख में सम रहता है । ऐसा अमूढ़ पुरुष अव्ययपद को प्राप्त होता है । इतने गुण तीसरी भूमिका में प्राप्त होते हैं और चित्त नष्ट होजाता है तब संसार को नहीं दृष्टि आता है जैसे दीपक से देखिये तो अन्धकार नहीं मिलता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्ताभावप्रतिपादनं नाम शताधिकत्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥ १२३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब तृतीय भूमिका दृढ़ पूर्ण होके दृढ़ अभ्यास से चौथी भूमिका उदय होती है तो अज्ञान नष्ट हो जाता है और सम्यक्ज्ञान चित्त में उदय होता है । तब वह पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शोभा पाता है और आदि अन्त से रहित निर्विभाग चेतन तत्त्व में उस योगी का चित्त स्थित होता है और वह सबको सम देखता है । जिस योगी को चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है उसके नाना प्रकार के भेदभाव निवृत्त होजाते हैं और अभेद सर्व आत्माभाव उदय होता है । उसको जगत् स्वप्न की नाईं भासता है और इन्द्रियों का व्यवहार स्वप्नवत् होजाता है । जैसे जिसको अर्धसुषुप्ति होती है उसे उस काल में खाना पीना रससे रहित होजाता है तैसेही चतुर्थभूमिका वाले का व्यवहार रससे रहित होता है । जैसे सूर्य अपने प्रकाश से प्रकाशता है तैसेही उसको आत्मा का प्रकाश उदय होता है और उसकी सब कल्पना नाश हो-

जाती है; न किसी पदार्थ में राग रहता है, न किसीमें द्वेष रहता है। संसारसमुद्र में डुबानेवाले राग और द्वेष हैं। इष्टपदार्थ में राग होता है और अनिष्ट में द्वेष होता है। इससे वह संसारसमुद्र में गोते नहीं खाता और उसके चित्त को कोई मोहित नहीं कर सक्ता। हे रामजी! जबतक तृतीयभूमिका होती है तबतक उसको जाग्रत् अवस्था होती है और जब चतुर्थभूमिका प्राप्त होती है तब जगत् स्वप्न होजाता है। तब वह सर्वजगत् को क्षणभंगुर और नाशवन्त देखता है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य भावना का अभाव होजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति का लक्षण कहिये और तुरीया और तुरीयातीत मुझसे कहिये। गुरु शिष्य को उपदेश करते खेदवान् नहीं होते। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तत्त्व का विस्मरण, पदार्थों की भावना और नाशवन्त पदार्थों को सत् की नाईं जाननाही जाग्रत् है। पदार्थों में भाव-अभाव की सत्यता और जगत् को मिथ्या भावनामात्र जानना स्वप्ना कहाता है और जाग्रत् और स्वप्न जिसमें लय हो जावें सो सुषुप्ति है यदि ज्ञानभाव से भेद की शान्ति होजावे और जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों का अभाव हो ऐसी जो निर्मल स्थिति है सो तुरीया है। हे रामजी! अज्ञानी जीव संसार को वर्षाकाल के मेघकी नाईं देखते हैं क्योंकि, उनको दृढ़ होकर भासता है पर जिसको चतुर्थभूमिका प्राप्त हुई है वह शरत्काल के मेघ की नाईं संसार को देखता है और जिसको पञ्चमभूमिका प्राप्त हुई है वह शरत्काल के मेघ नष्ट हुये की नाईं देखता है। जैसे निर्मल आकाश होता है तैसेही उसको निर्मल भासता है। इन तीनों का वृत्तान्त सुनो। अज्ञानी जगत् को जाग्रत् की नाईं देखता है और उसको जगत्की दृढ़ सत्यता भासती है इससे उसे राग द्वेष उपजता है। चतुर्थभूमिका वाला जगत्को ऐसे देखताहै जैसे शरत्कालका मेघ वर्षा से रहित होता है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि होती है तैसेही उसको जगत् की सत्यता नहीं भासती क्योंकि; उसकी स्मृति स्वप्ने की होती है और वह जगत् को स्वप्नवत् देखता है इससे उसको राग द्वेष नहीं उपजता। पञ्चमभूमिका की प्राप्तिवाला जगत्

को सुषुप्ति की नाईं देखता है। जैसे शरत्काल का मेघ नष्ट होके फिर नहीं दीखता तैसेही उसको संसार का भान नहीं होता और उसकी चेष्टा स्वाभाविक होती है। जैसे कमल स्वाभाविक ही खुलता और मूंद जाता है तैसेही उसको कुछ यत्न नहीं–चेष्टा में जैसा प्रतियोगी स्वाभाविक प्राप्त होता है सो करता है। जैसे कमल के खुलने का प्रतियोगी जब सूर्य उदय हुआ तब खुल गया और जब मूंदने का प्रतियोगी रात्रि हुई तब मूंदजाता है–उसको कुछ खेद नहीं; तैसेही उस पुरुष की अहंममता से रहित स्वाभाविक चेष्टा होती है। हे रामजी! अहंता ममतारूपी जाग्रत्से वह पुरुष सुषुप्त होजाताहै और सम्पूर्ण भावरूप जो शब्द और अर्थ हैं उनका उसको अभाव होजाताहै; उसका अशेष शेष का मनन नष्ट होजाता है और उसको पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता, भला, बुरा इत्यादिक भिन्न २ पदार्थों की भावना नहीं रहती; उसकी द्वैतकलना नष्ट होजाती है और एक ब्रह्मसत्ताही भासती है–संसार नहीं भासता। हे रामजी! अहंतारूपी तिलसे संसाररूपी तेल उपजता है और अहंतारूपी फूल से संसाररूपी गन्ध उपजती है। संसार का कारण अहंताही है। जिस पुरुष की अहंता नष्ट होजाती है वह इन्द्रियों के इष्टको पाकर हर्षवान् नहीं होता और अनिष्टके प्राप्त हुये द्वेष नहीं करता। वह ऐसे आपको नहीं जानता कि, मैं खड़ा हूं वा बैठा हूं अथवा चलता हूं; वह आपको सर्वदा आकाशरूप जानता है और न भीतर देखता है, न बाहर देखता है; न आकाश को देखता है और न पृथ्वी को देखता है सर्व ब्रह्मही देखता है। उसको भिन्न कुछ नहीं भासता और वह द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों का साक्षी रहता है। वह अहंकार का भी साक्षी; इन्द्रियों का भी साक्षी और विश्वका भी साक्षी है और इनके साथ स्पर्श कदाचित् नहीं करता। जैसे ब्राह्मण चाण्डाल से स्पर्श नहीं करता। जैसे बीजसे अंकुर होता है और फिर अंकुर से डाल होते हैं; इसी प्रकार सब पदार्थों का परिणाम है पर उनमें आकाश ज्यों का त्यों रहता है क्योंकि, उनके साथ स्पर्श नहीं करता; तैसेही वह पुरुष द्रष्टा, दर्शन,

दृश्य से अतीत रहता है। जैसे मरुस्थल में जल असत् है तैसेही उस पुरुष को त्रिपुटी असत्य है। त्रिपुटी और अहंता उस पुरुष की नष्ट होजाती है इससे भेदबुद्धि भी नहीं रहती और इसीसे वह शान्त; निर्मल, संसार से सुषुप्त; चेतन घनता से पूर्ण और सर्वदा शान्तरूप है। जिन नेत्रोंसे लोग संसार देखते हैं उनसे वह अन्धा हुआ है—अर्थ यह कि, जिस मन से फुरना होता है उसको उसने नाश किया है और यदि भय, क्रोध, अहंकार, मोह इत्यादि उस पुरुष में दीखते भी हैं पर उसके हृदय में कुछ स्पर्श नहीं करते। जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं करसक्ता तैसेही उस पुरुष को कोई विकार स्पर्श नहीं करता। हे रामजी ! उस पुरुष के संपूर्ण संशय नष्ट होगये हैं और वह सर्वदा स्वरूप में स्थित और शान्तरूप है; आत्मासे भिन्न वह किसी सुख की वाञ्छा नहीं करता और उसके सर्व संकल्प नष्ट हुये हैं। उसे आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता; जाग्रत् की नाईं दृष्टि आता है पर सर्वदा जाग्रत् से सुषुप्त है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पञ्चमभूमिकावर्णनं नाम चतुर्विंशतिशताधिकतमस्सर्गः ॥ १२४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तीसरी भूमिका पर्यन्त जाग्रत् है और चतुर्थ भूमिका में जाग्रत् अवस्था को स्वप्नवत् देखता है। पञ्चम भूमिकावाला संसार से सुषुप्त होता है और छठी भूमिकावाला तुरीयापद में स्थित होता है और सर्वदा अक्रिय है अर्थात् किसी क्रिया में बन्धवान् नहीं होता। वह सर्वकाल आनन्दरूप है; भिन्न होकर आनन्द को नहीं भोगता आपही आनन्द है; केवल अपने आप स्वतः स्थित है और सर्वदा निर्वाण है। हे रामजी ! सर्वक्रिया में वह यथाशास्त्र बिचरता दृष्टि आता है परन्तु हृदय में शून्य है—उसको किसी से स्पर्श नहीं। जैसे आकाश में सर्व पदार्थ भासते हैं और आकाश का स्पर्श किसी से नहीं; तैसेही सर्वक्रिया उसमें विद्यमान दृष्टि भी आती हैं तौभी वह हृदय से किसी से स्पर्श नहीं करता क्योंकि; उसको क्रियामें बन्धवान् करनेवाला जो अहंकार था सो उसका नष्ट

होगया है-केवल शान्तरूप है। उसमें अहंकार फुरना चिन्मात्रमें से निवृत्त हुआहै। चिन्मात्र से अहंभाव का उत्थान हीं अज्ञान है और वही दुःखदायी है। जब अहंभाव निवृत्त होता है तब कोई कर्म स्पर्श नहीं करता। यद्यपि उसको विश्व दृष्टि भी आताहै तौभी वास्तवसे नहीं देखता; क्योंकि उसको सर्वब्रह्महीं भासता है; खाता है और नहीं खाता; देता भी है और कदाचित् नहीं देता; लेता है तौभी कदाचित् किसी से कुछ नहीं लेता और चलता है परन्तु कदाचित् नहीं चला। हे रामजी! जो देश काल-वस्तु पदार्थ हैं उन सबमें वह आत्मभाव रखता है यद्यपि उसमें प्रत्यक्ष चेष्टा दीखती है तौभी उसके हृदय में कुछ नहीं। जैसे सुपने में खाता, पीता, लेता, देता आपको भासता है और जागेसे सबका अभाव होजाता है तैसेही जो पुरुष परमार्थसत्ता में जगा है उसको गुणकी क्रिया अपनेसे नहीं भासती और जो करता है उसमें अभिलाषा नहीं रखता, उसकी सब चेष्टा स्वाभाविक होती है। अपने निमित्त उसे कुछ कर्तव्य नहीं। ऐसे भगवान् ने भी कहा है और वह सर्व आत्मा ही दीखता है। आकाश, पृथ्वी, सूर्य, ब्राह्मण, हाथी, श्वान, चाण्डाल आदिक सर्वमें वह आत्मभाव देखता है और आकार को मृगतृष्णा के जलवत् देखता है कि, इसका अत्यन्त अभाव है। द्रष्टा, दर्शन, दृश्य भी उसको आकाशवत् भासते हैं और वह निर्मल आकाशवत् शान्तरूप है। अहंभाव से रहित वह केवल चिन्मात्र में स्थित है और ग्रहण-त्याग से अतीत; सर्वकलना से रहित; निर्वाण, स्वच्छ, निर्मल आकाशरूप स्थित है। अहं मम आदिक चिद्ग्रन्थि उसकी भेदी हैं और अनात्म में अहं अभिमान उसका नष्ट होताहै-केवल शान्तरूप हो रहता है। जैसे क्षीरसमुद्रसे मन्दराचल पर्वत निकलकर शान्तरूप हुआ तैसेही वह राग-द्वेषरूपी क्षोभ करनेवाले अन्तःकरणरूपी समुद्र से निकलगया तब शान्तरूप अक्षोभ हुआ परम शोभा से शोभता है। जैसे विश्वकर्मा ने सूर्य का मण्डल रचा है और वह प्रकाश से शोभा पाता है तैसेही ज्ञानरूपी प्रकाश से वह प्रकाशता है। जैसे चक्र फिरता २ रहजाता है और शान्त होताहै तैसेही अज्ञानसे फिरता २ ठहरकर वह सदा शान्ति

को प्राप्त हुआ है और अपने आपसे प्रकाशता है। जैसे पवन से रहित दीपक प्रकाशता है तैसेही कलनारूपी पवनसे रहित पुरुष अपने आपसे प्रकाशता है और सर्वदा निर्मल और एकरस है। जैसे घट के भीतर और बाहर शून्य है तैसेही देह के भीतर बाहर आत्मा है। जैसे जल में घट रखिये तो उसके भीतर बाहर जल होताहै तैसेही वह पुरुष अपने आपसे भीतर बाहर पूर्ण होरहा है और एकरस है-द्वैतकलना को नहीं प्राप्त होता और उस पद को पाकर आनन्दवान् है। जैसे कोई मारेजाने के निमित्त पकड़ा गया हो और उसकी रक्षा हो तो वह बड़े आनन्द को प्राप्त होताहै तैसेही वह पुरुष आनन्द को प्राप्त होताहै। जैसे कोई आधि व्याधि से छूटा आनन्द को प्राप्त होता है तैसेही वह ज्ञानवान् आनन्द को प्राप्त होता है। जैसे कोई मंज़िल चलनेसे थका हुआ शय्या पर विश्राम करे और आनन्द को प्राप्त होता है तैसे ही ज्ञानवान् को आनन्द है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से आनन्दवान् होता है तैसे ही वह पुरुष अपने आनन्द से घूर्म है। जैसे काष्ठ के जले से रहित अग्नि धुयें से रहित प्रज्वलित होती है; तैसे ही ज्ञानवान् अज्ञानरूपी धुयें से रहित शोभता है। हे रामजी! जब वह संसार की ओर देखता है तो उसे अग्नि से जलता हुआ आपसे जुदा देखता है और ज्ञानरूपी पर्वत के ऊपर स्थित होकर संसार को जलता देखता है। हे रामजी! यह जो कहा है कि; संसार को जलता देखता है सो ऐसे भी नहीं फुरता कि; मैं ज्ञानी हूं और यह संसार है। स्वरूप की अपेक्षा से यह कहा है कि, संसार उसको दुःखदायी भासता है। वह आनन्द से रहित परमानन्द को प्राप्त हुआ है और सत् असत् से रहित जो अपना आप है उसमें स्थित है। जैसे पर्वत भीतर बाहर अपने आप में स्थित और एकरस है तैसे ही वह पुरुष एकरस है। संसार में जाग्रत् होकर चेष्टा करता है पर हृदय में संसार की भावना से रहित है। उस पद में वाणी की गम नहीं परन्तु कुछ कहता हूं सुनो; कोई उसे ब्रह्म कहते हैं; कोई चेतन कहते हैं; कोई आत्मा कहते हैं; कोई साक्षी कहते हैं; कालवाले उसी को काल कहते हैं; ईश्वरवादी ईश्वर

कहते हैं; सांख्यवाले प्रकृति इत्यादिक संज्ञाओं से कहते हैं। ये सब उसी के नाम हैं—उससे भिन्न नहीं। उस पद को सन्तजन जानते हैं। हे रामजी! ऐसे पद को पाय के वह अपने आपसे शोभता है। जैसे मणि के भीतर बाहर प्रकाश होता है तैसे ही वह पुरुष भीतर बाहर से शोभता है और अपने स्वरूप से सदा घूर्म रहता है। जो पुरुष छठी भूमिका में स्थित है उसके ये लक्षण होते हैं कि, संसार से सुषुप्त होकर स्वरूप में चेतन होता है और उसका जीवत्वभाव जाता रहता है। जैसे घट की उपाधि से घटाकाश परिच्छिन्न भासता है और जब घट भग्न हुआ तब घटाकाश महाकाश एक हो जाता है तैसे ही अहंकाररूपी घटके भग्न हुये आत्माही भासता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे षष्ठभूमिकाउपदेशो नाम शताधिकपञ्चविंशतितमस्सर्गः॥ १२५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसके अनन्तर जब सप्तमभूमिका उस पुरुष को प्राप्त होती है तब आपको आत्मा ही जानता है और भूतों का ज्ञान जाता रहता है। तब केवल आत्मत्वमात्र होता है और दृश्य का ज्ञान नहीं रहता; बल्कि यह भी ज्ञान नहीं रहता कि, विश्व मेरे आश्रय फुरती है। देहसहित हो अथवा विदेह हो उसको आत्मा से उत्थान कदाचित् नहीं होता। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसेही वह आत्मस्वरूप में स्थित होता है और उसकी चेष्टा भी स्वाभाविक होती है। जैसे बालक पालने में अपने अङ्ग स्वाभाविक हिलाता है तैसेही उसकी खान, पान आदिक चेष्टा स्वाभाविक ही है और जैसे काष्ठ की पुतली तागे से चेष्टा करती है तैसेही प्रारब्ध वेग के तागे से उसकी चेष्टा होती है—उसको अपनी कुछ इच्छा नहीं रहती। हे रामजी! सप्तम भूमिकावाला जैसी अवस्था को प्राप्त होता है सो आपही जानता है और कोई नहीं जान सक्ता जिसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है वह भी उस अवस्था को नहीं जानसक्ता; जिसको वह पद प्राप्त हुआ है वही जानै है। हे रामजी! जीवन्मुक्त का चित्त सत्पद को प्राप्त होता है और यह तुरीयापद में स्थित होता है। उसका चित्त निर्वाण हो जाता है और तुरीयातीत पद को प्राप्त

होकर विदेहमुक्त होता है। उसको अहंभाव का उत्थान कदाचित् नहीं होता और सत्रूप है पर असत की नाईं स्थित है। हे रामजी! वह पुरुष उस पद को प्राप्त होता है जिसको वाणी की गम नहीं परन्तु कुछ कहता हूं। वह पद, शुद्ध, निर्मल, अद्वैत, चेतन, ब्रह्म और कालका भी काल केवल चिन्मात्र है और ज्यों का त्यों अच्युत पद है। उस पद को पाकर ऐसे होता है। जैसे वस्त्र के ऊपर मूर्ति लिखी हो तैसेही यह उत्थान से रहित है और उसको अहंब्रह्म का उत्थान भी नहीं रहता।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्तभूमिकालक्षणविचारो नाम षड्विंशाधिकशततमस्सर्गः॥ १२६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये सप्तभूमिका जो तुम से कही हैं, ज्ञान की प्राप्ति इनहीं से होती है; अन्य साधन से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। हे रामजी! जब पुरुष ज्ञानवान् हो तब जानिये कि, उसकी वृत्ति प्रथम भूमिका में स्थित हुई है। इससे तुम भूमिका की ओर चित्तरूप चरण रक्खो तब तुमको स्वरूप की प्राप्ति होगी। हे रामजी! तीसरी भूमिका पर्यन्त सर्वकामना निवृत्त होती हैं केवल एक आत्मपद की कामना रहती है। यदि उस अवस्था में शरीर छूट जावे तो और जन्म पाकर ज्ञान को प्राप्त होता है और यदि चतुर्थ भूमिका में प्राप्त होकर शरीर छूटे तो फिर जन्म नहीं पाता क्योंकि; आत्मपद की प्राप्ति हुये से फिर कुछ पाने की इच्छा नहीं रहती। जन्म का कारण इच्छा है; जब कुछ इच्छा न रही तब जन्म भी न रहा। जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है उसको स्वरूप की प्राप्ति होती है तो फिर इच्छा कैसे हो? जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसे ही उसका चित्त ज्ञान अग्नि से दग्ध होता है क्योंकि; वह सत्पद को प्राप्त होता है; इसीसे वह जन्म नहीं लेता और मरता भी नहीं—संसार को स्वप्नवत् देखता है। पञ्चम भूमिकावाला सुषुप्ति की नाईं होता है और छठी भूमिका साक्षीरूप तुरीयापद है; सप्तम तुरीयातीत निर्वाच्य पद है। हे रामजी! मुझे इतने कहने का प्रयोजन यही है कि, वासना का त्याग करो और अचित् पद को प्राप्त हो। इसका अभिमान होना ही वासना है;

जब इसका अभिमान निवृत्त हो तब शान्ति होगी यह परिच्छिन्न अहंकार न रहेगा। आत्मा के अज्ञान से हुआ है और आत्मज्ञान से लीन हो जाता है। हे रामजी! संसाररूपी एक नदी में आधि--व्याधि उपाधि रोग तरङ्गें हैं; रागद्वेषरूपी छोटे मच्छ हैं और तृष्णारूपी बड़े मच्छ हैं उसमें जीव दुःख पाते हैं। जैसे जल नीचे को चला जाता है तैसेही मृत्यु के मुख में संसार चला जाता है और अज्ञानरूपी जल है। हे रामजी! तृष्णा से पुरुष बांधे हैं; इससे तुम हाथी की नाईं वैराग्य और अभ्यासरूपी दांतों से तृष्णारूपी जंजीर काटो। हे रामजी! तृष्णारूपी सर्पिणी विषयरूपी फूत्कारे से विचाररूपी बेलि को जलाती है इससे जीवरूपी किसान दुःख पाता है। इससे तुम वैराग्यरूपी अग्नि से उस सर्पिणी को जलाओ। हे रामजी! तृष्णा दुःखदायी है। जब तक तृष्णा है तब तक सन्तों के वचन स्थित नहीं होते। जैसे दर्पण पर मोती नहीं ठहरता तैसेही तृष्णावान् के हृदय में सन्तों के वचन नहीं ठहरते। तृष्णा के इतने नाम हैं–तृष्णा, अभिलाषा, इच्छा, फूरना, संसरना इत्यादिक सर्व इसी के नाम हैं इच्छारूपी मेघ ने ज्ञानरूपी सूर्य को ढांका है इससे वह नहीं भासता जब विचाररूपी पवन चले तब इच्छारूपी मेघ नष्ट हो जावे और आत्मरूपी सूर्य का साक्षात्कार हो। हे रामजी! यह जीव आकाश का पक्षी है पर कर्म में इच्छारूपी तागे से बँधा है इससे नहीं उड़सक्का और परमात्मपद को भी प्राप्त नहीं होता–इच्छा ही से दीन है जब इच्छा नष्ट हो तब आत्मस्वरूप है। इससे तुम इच्छा को नाशकर आत्मपरायण हो अर्थात् विषय संसार से वैराग्य और आत्माभ्यास करो। हे रामजी! यह जो मैंने तुम से भूमिका का क्रम कहा है जब इसमें आवे तब ज्ञान की प्राप्ति हो पर इनको तब प्राप्त होता है जब कि, एक हथिनी को जीते जो एकवन में रहती और महामत्तरूप उसके दो पुत्र हैं जो अनेक जीवों को मारकर अनर्थ प्राप्त करते हैं। उसके जीते से सर्व जगत् जीता जाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसी मत्तरूप हथिनी कौन है और कहां रहती है? उसके दांत और पुत्र कौन हैं? कैसे वह मरती है, कैसे उत्पन्न हुई है और कौन वन है? यह

सब मुझ से कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इच्छारूपी हथिनी शरीररूपी वन है और मनरूपी गुफा में रहती; इन्द्रियांरूपी उसके बालक हैं और संकल्प विकल्परूपी दांत हैं उनसे छेदती है । हे रामजी ! एक नदी है जिसका प्रवाह सदा चला जाता है और जिसमें दो मच्छ रहते हैं जो कभी नाश नहीं होते संसरना ही नदी है जिसमें रागद्वेष मच्छ रहते हैं सो नाश नहीं होते । हे रामजी । वे मच्छ तब नाश हों जब संसरण-रूपी जल नष्ट हो जिसके सुकृत दुष्कृतरूपी किनारे हैं; चिन्तारूपी ग्राह हैं और कर्मरूपी लहरें हैं उनमें जीवरूपी तृण आकर भटकता है । इस तृष्णा-रूपी विषबेलिका नाश करो । हे रामजी ! तृष्णारूपी अंकुर का बढ़ाना घटाना अपने ही आधीन है; जो अंकुर को जल दीजिये तो बढ़ता जाता है और जो न दीजिये तो जल जाता है । फुरनरूपी जल देने से तृष्णा-रूपी अंकुर बढ़ता जाता है और न देने से स्वरूप के अभ्यास द्वारा जल जाता है । हे रामजी ! तृष्णारूपी बड़ा मच्छ है जो धैर्य आदिक मांस को भक्षण करनेवाला है; उसे वैराग्यरूपी करडी और अभ्यासरूपी दांतों से नाश करो । हे रामजी ! इच्छा का नाम बन्धन है और निरिच्छा का नाम मुक्ति है । हे रामजी ! एक सुगम उपाय कहता हूं जिससे तृष्णा नष्ट हो जावेगी निज अर्थ की भावना करो तो उस भावना से शीघ्रही आत्म-पद की प्राप्ति होगी, एवम् तुम्हारी जय होगी और सब से उत्तम पद को प्राप्त होगे; फिर तुम्हें वासना न रहेगी और शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और सर्व संकल्प नष्ट हो जावेंगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसरणभावप्रतिपादनं
नाम शताधिकसप्तविंशतितमस्सर्गः ॥ १२७ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! आप कहते हैं कि, निज अर्थ की भावना से वासना नष्ट हो जावेगी और शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी सो वासना तो चिरकाल की चित्त में स्थित है एकही बार कैसे नष्ट होगी ? तथा आप कहते हैं कि; वासना के नष्ट हुये जीवन्मुक्त होता है पर जिसकी वासना नष्ट होगी उसका शरीर कैसे रहेगा; वासना विना चेष्टा क्योंकर

होगी और जीवन्मुक्त पद कैसे होगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मेरे वचनों को जो कानों के भूषण हैं सुने से दरिद्र न रहेगा। निज अर्थ के धारने से संशय नष्ट हो जावेंगे और आत्मपद की प्राप्ति होगी। उस निज अक्षर के तीन अर्थ हैं-एक तो अन्य के अर्थ हैं कि, पञ्चभौतिक शरीर से तेरा स्वरूप विलक्षण है और दूसरा अर्थ विरुद्ध है अर्थात् शरीर जड़ और तमरूप है और तेरा स्वरूप आदित्यवर्ण और तम से परे है। हे रामजी! जब तूने ऐसे धारणा की कि, मैं आत्मा हूं और यह देहादिक अनात्मा है तब देह से मिलकर अभिलाषा कैसे रहेगी? अर्थ यह कि, अभिलाषा न करेगा क्योंकि, जब तक जाना नहीं तब तक अभिलाषा है। तीसरा अर्थ यह है कि, अभाव है अर्थात् न मैं हूं और न कोई जगत् है। जब ऐसे जाना तब किसकी इच्छा रहेगी? अर्थात् किसी की न रहेगी। अथवा जो तुम आपको देह से विलक्षण आत्मा जानोगे तौभी अविद्यक तमरूप शरीर की अभिलाषा न रहेगी। देह तमरूप है और तुम आदित्य वर्ण हो अर्थात् प्रकाशरूप हो; तुम्हारा और इसका क्या संयोग जैसे सूर्य के मण्डल में रात्रि नहीं दिखती तैसेही जब तुम आपको प्रकाशरूप जानोगे तब तमरूप संसार न दीखेगा। तब शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और तुममें कुछ चेष्टा न होगी। जैसे अर्ध निद्रावाले की चेष्टा होती है तैसे ही चेष्टा होगी और तुमको बालक की नाईं अभिमान न होगा। जैसे बालक की उन्मत्त चेष्टा होती है तैसेही तुम्हारी चेष्टा भी स्वाभाविक होगी। हे रामजी! यदि तुम यह इच्छा करो कि, यह सुख हो और यह दुःख न हो तो कदाचित् न होवेगा। जो कुछ शरीर की प्रारब्ध है सो अवश्य होती है परन्तु ज्ञानवान् के हृदय से संसार की सत्यता जाती रहती है और स्वाभाविक चेष्टा होती है; इच्छा नहीं रहती। हे रामजी! जैसे कोई पुरुष किसी देश को जाता है और पहुँचने का समय थोड़ा हो तो वह मार्ग के स्थान देखता भी जाता है परन्तु बन्धवान् किसी में नहीं होता; तैसे ही चित्त को आत्मपद में लगावो। ऐसा शरीर पाकर यदि आत्मपद न पाया तो कब पावेगा? जो आत्मपद से विमुख है वह

वृक्षादिक जन्मों को पावेगा; इससे हे रामजी ! चित्त आत्मपद में रक्खो और स्वाभाविक इच्छा विना चेष्टा करो इच्छाही दुःखदायक है। जब इच्छा नष्ट होती है तब उसी को ज्ञानवान् तुरीयापद कहते हैं जहां जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति का अभाव हो सो तुरीयापद है। हे रामजी ! यह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था जहां न पाइये सो तुरीयापद है। जब संवेदन फुरना अहंकार का अभाव हो जावे तब तुरीयापद प्राप्त होता है। हे रामजी ! अहंकार का होना दुःखदायक है। जब इसका नाश हो तबहीं आनन्दहै। आत्मपद से भिन्न जो माया की रचनाहै उससे मिलकर आपको जानता है कि, 'कि मैं हूं' यही अनर्थ है। इससे अहंकारका त्याग करो। जिसको देखकर यह फुरता है उसको निज अर्थ की भावना से नाश करो। और जो आत्मपद से भिन्न भासता है उसे मिथ्या जानो। यही निज अक्षर का अर्थ है जो कुछ संसार भासता है उसको स्वप्नमात्र जानो इसको सत्य जानकर इसकी इच्छा करना ही अनर्थ है और मिथ्या जान-कर इच्छा न करनी कल्याण है। हे रामजी ! मैं ऊंची बाहु करके पुकारता हूं पर मेरे वचन कोई नहीं सुनता कि; इच्छाही संसार का कारण है और इच्छा से रहित होना ही परमकल्याण है। जब जीव इच्छा से रहित होता है तब शान्तपद को प्राप्त होता है और निरिच्छित हुये से आत्मा ही भासताहै जो आनन्दरूप, सम और अद्वैत है और उसमें जगत् का अभाव है। हे रामजी ! मोह का बड़ा माहात्म्य है हृदय में जो आत्मरूपी चिन्ता-मणि स्थित है उसको विस्मरण करके मूर्ख अहंकाररूपी कांच को ग्रहण करते हैं। हे रामजी ! तुम निरभिमान होकर चेष्टा करो। जैसे यन्त्री की पुतली में अभिमान कुछ नहीं होता और उसकी चेष्टा होती है; तैसे ही प्रारब्ध वेग से तुम्हारी चेष्टा होगी। यह अभिमान तुम न करो कि, ऐसे हो और ऐसे न हो। जब ऐसे होगे तब शान्तपद को प्राप्त होगे; जहां वाणी की गम नहीं ऐसे आनन्द को प्राप्त होगे। जब तक इन्द्रियों के अर्थ की तृष्णा है तब तक जन्म मृत्यु के बन्धन में है इससे पुरुषप्रयत्न यही है कि, तृष्णा का नाश करो; कर्म के फल की तृष्णा न हो और कर्म

के करने की भी इच्छा न हो। इन दोनों को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो बल्कि ऐसा भी निश्चय न हो कि, मैंने त्याग किया है। हे रामजी! जिस पुरुष ने कर्म को त्याग किया है और अहंकार सहित है उसने पुण्य और पाप सब कुछ किया है और जिसमें अहंभाव नहीं है वह चाहे जैसे कर्म करे तौभी कुछ नहीं करता और वह बन्धन को नहीं प्राप्त होता। जो कर्म में आपको अकर्ता जानता है और न करने में अभिमान सहित है उसको कर्ता देखते हैं वह बन्धवान् है। हे रामजी! ऐसे आत्मा को जानकर अहंमम का त्याग करो। ऐसे संवेदन के त्यागने में कुछ यत्न नहीं है। स्मृति उसकी होती है जिसका अनुभव होता है पर जिसका अनुभव नहीं उसका त्याग करना सुगम है। अनुभव प्रत्यक्ष देखने को कहते हैं। तुम्हारे स्वरूप में विश्व नहीं है तो अनुभव क्या हो। ये पदार्थ जो तुमको भासते हैं उनके कारण को जानो। इनका कारण अनुभव है; जो अनुभव ही इनका मिथ्या है तो स्मृति कैसे सत् हो? रस्सी में सर्प का अनुभव हुआ और फिर स्मरण किया कि, वहां सर्प देखा था; जो सर्प का अनुभव ही मिथ्या है फिर उसका स्मरण कैसे सत् हो? इससे जो वस्तु मिथ्या है उसके त्यागने में क्या यत्न है? जब प्रपञ्च को मिथ्या जाना तब तुझको कोई क्रिया बन्धन न करेगी; चेष्टा स्वाभाविक होगी और रागद्वेष जाता रहेगा। जैसे शरत्काल की बेलि सूख जाती है और उसका आकार दृष्टि आता है; तैसेही तुम्हारा चित्त देखने में आवेगा और चित्त का धर्म जो रागद्वेष है वह जाता रहेगा—वह चित्त सत्पद को प्राप्त होगा। जब सब विस्मरण होता है उसको शिवपद कहते हैं। वह परमपद ब्रह्मशब्द-अर्थ से रहित केवल चिन्मात्र अद्वैत पद है; उसमें अहंमम का त्याग करके स्थित रहो। संसार इसी का नाम है कि, अहं हूं और यह मेरा है। इसको त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! जब तक अहंमम का संवेदन है तब तक दुःख नहीं मिटते और जब यह संवेदन मिटा तब आनन्द है। आगे जो इच्छा हो सो करो।

इति श्रीयो० इच्छाचिकित्सोपदेशन्नामशताधिकाष्टविंशतितमस्सर्गः १२८

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अद्वैत आत्मा जिसको एक दो नहीं कह सके अपने आप स्वभाव में स्थित है और अन्तःकरण चतुष्टय बाह्यपदार्थ सब चेतनमात्र हैं कुछ भिन्न नहीं। रूप, इन्द्रियां और मन का फुरना; देश, काल सर्व आत्मारूपही है। जैसे बालक मट्टी की सेना बनाकर हाथी, घोड़े, राजा, प्रजा नाम कल्पता है सो सब मट्टीही हैं-भिन्न कुछ नहीं; तैसेही अहंमम आदिक भी सर्व आत्मरूप है-कुछ पृथक् नहीं। जैसे मट्टी में हाथी, घोड़ा आदि नाम कल्पित हैं; तैसे आत्मा में ही जीव जगत् कल्पता है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। इस अहंकार को त्याग करो कि, आत्मपद से भिन्न कुछ न फुरे। हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार यह सब शिवरूपी मृत्तिका के नाम हैं और मान; मेय; प्रमाण आदिक यह सब वही रूप हुये तो किससे किसको संचित कहिये? यह अहं मम आदिक भी चिदाकाश से कुछ भिन्न वस्तु नहीं। इनको ऐसे जानकर अफुर शिलावत् निःसंग हो रहो। रामजीने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि; अहं मम फुरने का त्याग करो यह मिथ्या है और अहं मम असत् है। ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं कि, इनकी सत्ता कुछ नहीं और तुम असंग हो रहो पर असंग निष्कर्म से होता है अथवा सुकर्म से होता है यह कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तुमहीं कहो कि; कर्म क्या है और निष्कर्म क्या है; इनका कारण कौन है और इनका नाश कैसे हो और नाश होने से क्या सिद्धि होगी; जो तुम जानते हो तो कहो? रामजी बोले, हे भगवन्! जैसे आपसे सुना है और समझा है सो मैं कहताहूं। जो वस्तु नाश करनी हो उसको निश्चय करके मूल से नाश कीजिये तभी उसका नाश होता है, शाखा और पत्र काटेसे उसका नाश नहीं होता-इससे इनका क्रम सुनो। इस संसाररूपी वन में देहरूपी वृक्ष है जिसका बीज कर्म है; पाणि पाद आदिक पत्र हैं; रुधिर, श्वास और वासना रस हैं और सुख दुःख फूल हैं। जाग्रत् कर्म वासनारूपी बसन्त ऋतु है उससे वह प्रफुल्लित होता है और सुषुप्ति पापकर्मरूपी शरत्काल है उससे सूख जाता है। ऐसा शरीररूपी वृक्ष है। तरुणपनरूपी उसकी कली

है सो क्षण का क्षण सुन्दर है; जरारूपी फूल इसको हँसते हैं और द्वेषरूपी वानर क्षण क्षण में क्षोभते हैं। जाग्रत्‌रूपी बसन्तऋतु है जो सुषुप्तिरूपी हिम करती है और वासनारूपी रस से बढ़ता है। पुत्र कलत्र आदिक तृण और घास हैं और इन्द्रियों के गढ़रूपी मुख हैं जिनसे शरीर की चेष्टा होती है। ज्ञान इन्द्रियां पञ्चथम्भ हैं जिनसे वृक्ष सधा है और इच्छारूपी बेलि है जो अपने अपने को चाहती हैं। बड़ा थम्भ इसका मन है जो सबको धारता है और पञ्चप्राण इसके रस हैं उनसे प्रत्यक्ष सबको ग्रहण करता है। इनका बीज जीव है-जीव चैत्योन्मुखत्व चेतन को कहते हैं; जीवका बीज संवित् है जो मात्रपद से उत्थान हुआ है और उस संवित का बीज ब्रह्म है-उसका बीज कोई नहीं। हे भगवन्! सबका मूल संवित् का फुरना है; जब इसका अभाव होता है तब आत्मा ही शेष रहता है। हे भगवन्! यह तो मैं जानता हूं आगे आपभी कुछ कृपा करके कहिये। हे भगवन्! जबतक चित्त से सम्बन्ध है तबतक संसार में जन्म मरण होता है और जब चित्तसे रहित होता है तब परब्रह्म है-वह शिवपद अनिच्छित, शान्त और अनन्तरूप है। चिन्मात्र में जो अहंका उत्थान है वही कर्म-रूपी वृक्ष का कारण है। जबतक अनात्मा से मिलकर कहता है कि, 'मैं हूं' वही संसार का कारण है। यह आपके वचनों से मैंने समझा है सो प्रार्थना की है आगे कुछ कृपा करके आप भी कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी प्रकार कर्म का बीज सूक्ष्म संवित् है। जबतक संवित् है तबतक कर्मों का बीज नाश नहीं होता और ये सब संज्ञा इसी की हैं। कर्मों का बीज इच्छा, तृष्णा, अज्ञान, चित्त और ग्रहण त्याग की बुद्धि इत्यादिक बहुत संज्ञा हैं; क्या किसी में हेयोपादेय बुद्धि करे? हे रामजी! जबतक अज्ञान है तबतक इच्छा नाश नहीं होती और कर्म भी नाश नहीं होते। नाश दोनों का नहीं होता परन्तु भेद इतना ही है कि, अज्ञानी को भासता है कि, यह इच्छा है, यह कर्म है। ज्ञानवान् को सब ब्रह्मही भासता है इससे वह सुखी रहता है और अज्ञानी को कर्म में कर्म भासता है इसलिये बन्धवान् होता है। कर्म से कर्मबुद्धि जाने को

त्याग कहते हैं, क्रिया का त्याग करने को त्याग नहीं कहते। हे रामजी! बड़ी उपाधि अहंकार है। जिसका अहंकार नष्ट हुआ है वह पुरुष कर्म करता है तौभी उसने कभी कुछ नहीं किया और जो अहंकार सहित है वह पुरुष जो तूष्णी हो बैठा है तौभी सब कर्म करता है। इस अहं के त्याग का नाम सर्वत्याग है; क्रिया के त्याग का नाम सर्वत्याग नहीं। सब कर्मों के बीज अहंकार का त्यागना और परम शान्ति को प्राप्त होना ही पुरुषप्रयत्न है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मबीजदाहोपदेशं नाम
शताधिकनवविंशस्सर्गः॥ १२९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस संवेदन का होना ही अनर्थ है कि, आपको कुछ जानता है। जब यह निवृत्त हो तबहीं इसको आनन्द है। हे रामजी! ज्ञानी की चेष्टा अहंकार से रहित स्वाभाविक होती है। जैसे अर्धनिद्रित पुरुष होताहै तैसेही ज्ञानी अपने स्वरूप में घूर्म है। जैसे हाथी मदसे उन्मत्त होता है तैसेही ज्ञानवान् स्वयम्ब्रह्म लक्ष्मीसे घूर्म है। जैसे कामी को काम व्यसन होताहै तैसेही सुखरूपी स्त्री को पाकर ज्ञानी घूर्म रहताहै क्योंकि; निरहंकार है। सब दुःखों का बीज अहंकार है, जब अहंकार नष्ट हो तब आनन्द हो। हे रामजी! संसाररूपी विषकी बेलिका बीज अहंकारहै; जब अहंकार का अभाव हो तब संसार का भी अभाव होता है। हे रामजी! अहंकारही दुःख का मूल है। इस संवेदन का विस्मरण करना बड़ा कल्याणहै और अनात्मासे मिलकर आपको मानना ही अनर्थहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो वस्तु असत्य है वह नहीं होती और जो सत्यहै उसका अभाव नहीं होता फिर आप कैसे कहते हैं कि; अहं संवेदन का नाश करो? ये तो सत् भासती है संवेदन कैसे हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम सत्य कहते हो कि, जो वस्तु असत्य है वह नहीं होती और जो सत्य है उसका नाश नहीं होता। हे रामजी! यह जो अहंकार दृश्य तुमको भासता सो कदाचित् नहीं हुआ-मिथ्या कल्पित है। जैसे रस्सी में सर्प होता है तैसे ही

आत्मा में अहंकार है और जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है तैसे ही आत्मा में अहंकार शब्द अर्थ फुरता है। यह शब्द और अर्थ मिथ्या है। इसका लक्षण यह है कि, मैं हूं सो कल्पित है; आत्मा केवल शुद्धस्वरूप है उसमें अहं त्वं का शब्द अर्थ कोई नहीं! यह अबोध से भासते हैं और बोध से लीन होजाते हैं। वेदना का बोध अनर्थ का कारण है और अबोध तम है। जब यह निर्वाण हो तब कर्म का बीज मूलसे कटे। हे रामजी! जो कर्मों का त्यागकर एकान्त जाकर बैठता है और ऐसे मानता है कि मैं कर्म नहीं करता सो कहता ही है पर वास्तव में अहंकार से है इससे फल को भोगता ही है क्योंकि; अहंकार सहित फिर अहंकार करेगा। वह आत्मज्ञान विना अनात्म से मिलकर आपको मानता है। जो पुरुष कर्म इन्द्रियों से चेष्टा करता है और आत्मा को लेप नहीं जानता वह अकर्ता ही है—उसके करने से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होते और न करने से भी नहीं होते। ऐसा पुरुष परम निर्वाणपद को प्राप्त होता है जिसको वाणी की गम नहीं। हे रामजी! उसमें फुरना कोई नहीं—केवल चमत्कार है अर्थात् हुआ कुछ नहीं और भासता है। जैसे बिल्ली की मज्जा बिल्ली से भिन्न नहीं तैसेही जगत् है। जैसे सोने से भूषण भिन्न नहीं तैसे ही निज शब्दका अर्थ है पर ये भिन्न भिन्न शब्द अर्थ तबतक भासते हैं जबतक अहं वेदनाकार है। हे रामजी! आत्मपद सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे पत्थर अपनी जड़ता में स्थित है तैसे ही आत्मा अपनी चेतनघनता में स्थित है। उसको मुनीश्वर चेतनसार कहते हैं और उस अपने स्वरूप के प्रमाद से दुःख पाता है। हे रामजी! जो पुरुष गृहस्थी में स्थित है पर अहंकार से रहित है उसको वनवासी जानो और सदा एकान्त है और जो वनवासी अहंकार सहित है वह सदा जनों में स्थित है। प्रथम तो वह एक गढ़ेमें था फिर उसको त्याग कर दूसरे गढ़े में पड़ा है कि वेषधारी है और वनवास लिया है। ईश्वर चाहे तो निकसे नहीं तो बड़े कूप में पड़ा है। हे रामजी! जो पुरुष अर्ध त्याग करता है वा एक अङ्ग का त्याग करता है और दूसरे

का अङ्गीकार करता है ऐसा पुरुष आपको निष्कामी मानता है पर उसको यह त्यागरूपी पिशाचिनी भोगती है। हे रामजी ! यह जीव निष्कर्म तबहीं होता है जब इसकी अहंवेदना नष्ट होती है—अन्यथा नहीं होता। इससे कर्म को मूलसे उखाड़ो। जैसे सुरदण्ड बेलि और वृक्षको मूलसे काटते हैं, तैसे ही काटो। अहंवेदना ही मूल है उसकी मूल काटना चाहिये। हे रामजी ! पुरुषप्रयत्न इसीका नाम है कि, अपने आपका नाश करना और आपही रहना। देह से मिला हुआ आपको जानता है उसका नाश करना और शिवपद को प्राप्त होना जो सर्वदा सत्स्वरूप अद्वैत है—यह विश्व भी उसका चमत्कार है। जैसे नारियल में खोपरा होता है और उसके बहुत नाम रखते हैं सो नारियल से कुछ भिन्न नहीं, तैसे ही संसार आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे थम्भे में काष्ठ से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही यह संसार है। यह नानात्व भी चेतनघन आत्मा ही है निज अक्षर का अर्थ जो कहा है सो भी वही है तो विधि निषेध किसका कीजिये ? सब परमात्मतत्त्व है दूसरा किंचिन्मात्र भी नहीं। हे रामजी ! ऐसे आत्मा को जानकर सुखसे बिचरो। जैसे अर्द्धनिद्रित की चेष्टा होती है और जैसे बालक पालने में सोकर स्वाभाविक अङ्ग हिलाता है तैसे ही तुम्हारी चेष्टा होगी। अपना अभिमान तुम न करो। हे रामजी ! जो कुछ भाव-अभाव पदार्थ भिन्न २ भासते हैं वे असत्य हैं; आत्मा के साक्षात्कार हुये से परमात्मतत्त्व ही भासेंगे, तब अहंकार उत्थान निवृत्त होगा। हे रामजी ! एक और युक्ति सुनो जिससे आत्मज्ञान हो यह जो अहं अहं क्षण क्षण में फुरती है सो जब फुरे तब हीं उस क्षण में जानो कि, मैं नहीं। जब ऐसे दृढ़ हुआ तब अहंकाररूपी पिशाच नाश होजावेगा और आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होगा। इससे अहंकार के नाश का यत्न करो कि, 'न मैं हूं' 'न जगत् है'। हे रामजी ! ज्ञान इसीका नाम है कि, 'अहं' 'मम' न रहे। उसको मुनीश्वर परब्रह्म और सम्यक्पद कहते हैं। और जहां (अहंमम) है वहां अविद्यारूपी तम खड़ा है। हे रामजी ! अज्ञानी के हृदयमें सर्व पदार्थों का भाव स्थित है इससे उसको देश, काल,

घर, नगर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक त्रिगुण संसार भासता है। जब इनका अभाव होजावे तब शान्तिपद की प्राप्ति हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारनाशविचारो नाम शताधिकत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ १३० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसके मन से 'मैं' और 'मेरे' का अभिमान गया है उसको शान्ति हुई है और जिसके हृदय में 'मैं' देह, 'मेरे सम्बन्धी' 'गृह' आदिक का अभिमान है उसको कदाचित् शान्ति नहीं और शान्ति विना सुख नहीं। हे रामजी! प्रथम आप बनता है तब जगत् है। जो आप न बने तो जगत् कहां हो? इसका होना ही अनर्थ का कारण है। जिस पुरुष ने अहंकार का त्याग किया है वह सर्वत्यागी है और जिसने अहंकार का त्याग नहीं किया उसने कुछ नहीं त्यागा। जिसने क्रिया का त्याग किया और आपको सर्वत्यागी मानता है सो मिथ्या है। जैसे वृक्ष की डालें काटिये तो फिर उगता है नाश नहीं होता; तैसे ही क्रिया के त्याग किये त्याग नहीं होता। जो त्यागने योग्य अहंकार नष्ट नहीं होता तो क्रिया फिर उपजती है। इससे अहंकार का त्याग करो तब सर्वत्यागी होगे। इसका नाम महात्याग है और स्वप्ने में भी संसार न भासेगा, जाग्रत् का क्या कहना है—उसको संसार का ज्ञान कदाचित् नहीं होता। हे रामजी! संसार का बीज अहंभाव है; उसी से स्थावर जङ्गम जगत् भासता है; जब इसका नाश हुआ तब जगत्भ्रम मिटजाता है—इससे इसके अभाव की भावना करो। जब तुम्हें अहंभाव की भावना फुरे तो जानना कि, मैं नहीं। जब इसप्रकार अहं का अभाव हुआ तब पीछे जो शेष रहेगा सो ही आत्मपद है। हे रामजी! सब अनर्थों का कारण अहंभाव है उसका त्याग करो। हे रामजी! शस्त्र के प्रहार और व्याधिरोग को यह जीव सह सक्ता है तो इस अहं के त्यागने में क्या कदर्थना है? हे रामजी! संसार का बीज अहं का सद्भाव है, उसका नाश करना मानों संसार का मूलसंयुक्त नाश करनाहै—इसी के नाश का उपाय करो। जिसका अहंभाव नष्ट हुआ है उसको सब ठौर आकाशरूप

है और उसके हृदय में संसार की सत्ता कुछ नहीं फुरती । यद्यपि वह गृहस्थ में हो तौ भी उसको यह प्रपञ्च शून्य वन भासता है । जो अहंकार सहित है और वन में जा बैठे तौ भी वह जनों के समूह में बैठा है क्योंकि; उसका अज्ञान नष्ट नहीं हुआ । जिसने मन सहित षट् इन्द्रियों को वश नहीं किया उसको मेरी कथा के सुनने का अधिकार नहीं–वह पशु है । जिस पुरुष ने मनको जीता है अथवा दिन प्रति दिन जीतने की इच्छा करता है वह पुरुष है और जो इन्द्रियों का विश्रामी अर्थात् क्रोध, लोभ, मोह से संपन्न है वह पशुहै और महाअन्धतम को प्राप्त होता है । हे रामजी ! जो पुरुष ज्ञानवान्है उसमें यदि कर्मकी इच्छा दृष्ट आती है तौ भी वह उसकी इच्छा अनिच्छाही है और उसके कर्म अकर्म ही हैं । जैसे भूना दाना फिर नहीं उगता पर उसका आकार भासता है तैसे ही ज्ञानवान् की चेष्टा दृष्टआती है सो देखनेमात्रहै उसके हृदयमें कुछ नहीं हे रामजी ! जो पुरुष कर्मेन्द्रियों से चेष्टा करताहै और हृदय में जगत् की सत्यता नहीं मानता उसे कोई बन्धन नहीं होता और जो जगत्को सत्य मानकर थोड़ा भी कर्म करताहै तौ भी वह फैलजाता है–जैसे थोड़ी अग्नि जागकर बहुत होजाती है–ज्ञानीको नहीं होता । उसकी प्रारब्ध शेषहै सोभी हृदयमें नहीं मानता और जानता है कि, ये कर्म शरीर के हैं आत्मा के नहीं । जैसे कुम्हार के चक्रका वेग उतरता जाताहै तैसेही प्रारब्धवेग उसका उतरता जाताहै और फिर जन्म नहीं होता क्योंकि; उसको अहंकाररूपी चरण नहीं लागता । इससे अहंकारका नाशकरो; जब अहंकार नाश होगा तब सबके आदिपद की प्राप्ति होगी जो परम निर्वाणपद है और जिसमें निर्वाण भी निर्वाण होजाता है। हे रामजी! जब वर्षाकाल होताहै तब बादल होते हैं जब शरत् काल आताहै तब बादल जाते रहते हैं । हे रामजी ! जबतक अज्ञानरूपी वर्षाकाल है तबतक अहंकाररूपी वर्षा है और जब विचाररूपी शरत्काल आवेगा तब अहंकाररूपी मेघ जाते रहेंगे और आत्मरूपी आकाश निर्मल भासेगा । हे रामजी ! जैसे मलिन आदर्श में मुखका प्रतिबिम्ब उज्ज्वल नहीं भासता और जब मैल निवृत्त होता है तब मुखका प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष

भासता है तैसेही; अहंकाररूपी मैल से जीव ढांपा हुआ है इससे आत्मा नहीं भासता; जब अहंकाररूपी मैल निवृत्त हो तब आत्मा ज्यों का त्यों भासे। जैसे समुद्र में नानाप्रकार के तरङ्ग उठते हैं तो सम्यक्दर्शी को सब जलमय दृष्ट आते हैं और भूषण में सुवर्णही भासता है तैसेही नाना प्रकार के प्रपञ्च उस समदर्शी को चैतन्यघन आत्मा ही दृष्ट आते हैं-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं देखता। वह सबसे पत्थरकी शिलावत् होजाताहै क्योंकि; उसका अहंकार नष्ट होगया है और जो अहंकार संयुक्त है और क्रिया का त्याग कर आपको सुखी मानता है वह मूर्ख है। जैसे कोई लकड़ी लेकर आकाश को नाश किया चाहे तो वह नष्ट नहीं होता तैसेही क्रियाके त्याग से दुःख नष्ट नहीं होते-जब सम्पूर्ण संसार क्रियाके बीज अहंकारका नाश हो तब अक्रिय आत्मस्वरूप को प्राप्त होताहै। जैसे तांबा अपने ताम्रभाव को त्यागकर सुवर्ण होताहै तैसेही जब जीव अपना जीवत्वभाव त्यागे तब आत्मा होताहै और जैसे तेलकी बूंदजल में फैलजाती है और नानाप्रकार के रङ्ग जलमें भासते हैं तैसेही ब्रह्म में अहंता प्रकारकी कलना दिखाई देती हैं-आत्मा ब्रह्म, निराकार, निरञ्जन इत्यादिक नाम भी अहंकारसे शुद्धमें कल्पे हैं; वह अफुर केवल सत्तामात्र है और सत्य और असत्य की नाईं स्थितहै। हे रामजी! संसाररूपी मिरचका पेड़है अथवा संसाररूपी फूलहै उसमें अहंतारूपी सुगन्धहै; जब अहंता उदय होती है तब संसार क्षण में उदय होताहै और अहंता के नाश हुये संसार क्षण में नाश होजाता है क्षणमें उदय होता है और क्षण में नाश होता है सो अहंता का होनाही उदय होने का क्षण है और अहंता का लीन होना नाश का क्षण है। हे रामजी! जैसे मृत्तिका में जल के संयोग से घट बनता है तब मृत्तिका घटसंज्ञा पाती है; तैसे ही पुरुष को जब अहंकार का संग होता है तब संसारी होता है और जीवसंज्ञा पाता है और देश, काल, पृथ्वी, पर्वत आदिक दृश्य को प्रत्यक्ष देखता है; और जब अहंता नाश होती है तब सुखी होताहै; निदान जो कुछ मानरूप और उसका अर्थ है सो अहंता से भासता है और जब अहंताको त्यागे तब शान्तरूप आत्माही शेष रहता है। जैसे

पवनसे रहित दीपक प्रकाशता है तैसेही अहंकाररूपी पवन से रहित जीव अपने स्वभाव में स्थित होकर आनन्दपद को प्राप्त होता है; अनादिपद पाता है; सबका अपना आप होता है और देश, काल, वस्तु अपने में देखता है। हे रामजी! जबतक अहंता का नाश नहीं होता तबतक मेरे वचन हृदयमें स्थित न होंगे। जैसे रेतमें तेल निकलना कठिन है तैसेही जिस पुरुष ने अपना स्वभाव नहीं जाना उसको ब्रह्म का पाना कठिन है। अपना स्वभाव जानना अतिसुगम है। जब अहंता का त्यागकरे कि, न मैं हूं और न जगत् है तब कल्याण होता है और तभी अहंता का नाश होता है और कोई भ्रम नहीं रहता। जैसे रस्सी के जाने से सर्पभ्रम निवृत्त होजाता है। जबतक अहंता फुरती है तबतक उसको उपदेश नहीं लगता। जैसे आरसी पर मोती नहीं ठहरता तैसेही जिसको अहंता फुरती है उसके हृदयमें मेरे वचन नहीं ठहरते और जिसका हृदय शुद्धहै उसको मेरे वचन लगते हैं। जैसे तेल की बूंद जल में फैलजाती है तैसेही उसको थोड़े वचनभी बहुत लगते हैं। हे रामजी! इसीपर एक पुरातन इतिहास कहता हूं सो तुम सुनो; वह मेरा और काकभुशुण्डि का संवाद है। एक समय मैं सुमेरु पर्वत के शिखर पर गया तो वहां भुशुण्डि बैठा था, उससे मैंने प्रश्न किया कि, हे अङ्ग! ऐसा भी कोई पुरुष है जिसकी आयुर्बल बड़ी हो और ज्ञान से शून्य रहा हो? जो उसको देखा हो तो कहो। भुशुण्डि बोले, हे भगवन्! एक विद्याधर हुआहै जिसकी बड़ी आयुर्बल थी और जिसने बहुत विद्याध्ययन की थी। वह सत्कर्मों में बहुत विचरता था; उसने बहुत भोग भोगे थे और चार युग पर्यन्त जप, तप, नियम आदिक सकामकर्म किये थे। जब चतुर्थ युग का अन्त हुआ तब उसको विचार उपजा और जितने भोग सुखरूप जानकर भोगता था उनमें उसको वैराग्य हुआ; तब उनको त्यागकर लोकालोक पर्वत पर जा बिचरा और विचारा कि; यह संसार असाररूप है किसी प्रकार इससे छूटूं। इसमें बारम्बार जन्म और मरण है और कोई पदार्थ सत्य नहीं, किसका आश्रय करूं? ऐसे विचार करके वह विकृतआत्मा पुरुष सुमेरु पर्वत पर मेरे पास आया और शिर नीचा

करके मुझे दण्डवत् की । मैंने भी उसका बहुत आदर किया तब हाथ जोड़कर उसने कहा, हे भगवन्! इतने कालपर्यन्त मैं विषयों को भोगता रहा परन्तु मुझे शान्ति न हुई इससे मैं दुःखी हूं तुम कृपा करके शान्ति का उपाय कहो । हे भगवन्! चित्ररथ के बाग में जिसमें सदाशिवजी रहते हैं और जहां बहुत कल्पवृक्षहैं उसमें मैं चिरकाल रहा; फिर विद्याधरों के स्वर्ग में रहा; फिर इन्द्र के नन्दनवन और सुवर्ण की कन्दरा में रहकर सुन्दर अप्सराओं के साथ स्पर्श किया और विमान पर बहुत आरूढ़ रहाहूं । हे भगवन्! बहुत स्थान मैंने देखे हैं और तप, दान, यज्ञ, व्रतभी बहुत किये हैं । सहस्र वर्षतक ऐसे सुन्दर रूप देखता रहाहूं जिनकी सुन्दरता नहीं कह सक्ता तौ भी नेत्रों को तृप्ति न हुई; बहुत सुगंध सूंघी पर नासिका को तृप्ति न हुई; रसना से भोजन बहुत प्रकार के खाये पर शान्ति न हुई बल्कि तृष्णा बढ़ती गई; कानों से बहुत प्रकार शब्द और राग सुने और त्वचा से बहुत स्पर्श किये हैं तौ भी शान्ति न हुई । हे भगवन्! मैं जिस ओर सुख जानकर प्रवेश करूं उसी ओर दुःख प्राप्त होवे—जैसे मृग क्षुधा निवारने के लिये घास खाने जाता है और राग सुनकर मूर्च्छित होजाता है तब उसको बधिक पकड़लेता है तो मृग दुःख पाता है तैसेही मैं सुख जानकर विषयों को ग्रहण करता था और बड़े दुःखों को प्राप्त होता था हे भगवन्! मैंने चिरकालतक पांचों इन्द्रियों और छठे मन सहित दिव्यभोग भोगे हैं जो कुछ कहे नहीं जाते परन्तु मुझे शान्ति न हुई और न इन्द्रियां तृप्त हुईं । जैसे घृत से अग्नि तृप्त नहीं होती तैसेही दिन दिन प्रति तृष्णा वृद्ध होती जाती है और हृदय जलाती है । जो पुरुष इन भोगों के निमित्त यत्न करता है कि, मैं इनसे सुखी हूंगा वह मूर्ख है और उसको धिक्कार है—वह समुद्र में तरङ्ग का आश्रय करता है । ये तबतक सुखरूप भासते हैं जबतक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है; जब इन्द्रियों से विषयों का वियोग होता है तब महादुःख को प्राप्त होता है क्योंकि; तृष्णा हृदय में रहती है और भोग जाते रहते हैं तब जो २ विषय भोगे होते हैं वे दुःखदायक होजाते हैं । हे भगवन्! मैंने इसी से बहुत दुःख पाया है ।

यद्यपि इन्द्रियां कोमल हैं तौभी सुमेरु की नाईं कठिन हैं। कोमल भासती हैं परन्तु ऐसी हैं जैसे सर्पिणी और खड्ग की धार कोमल होती है पर स्पर्श किये से मरजाता है। जैसे जल में नाव पवन से भ्रमती है; तैसेही अज्ञानरूपी नदी में पवनरूपी इन्द्रियों ने मुझे दुःख दिया है। हे भगवन्! ऐसे भी मैंने देखे कि, सारा दिन मांगते रहे और भोजन खाने के निमित्त इकट्ठा नहीं हुआ और ऐसे भी देखे हैं कि, उन्होंने ब्रह्मा से आदि काष्ठ पर्यन्त सबभोग एकदिन में भोगे हैं पर जिसको दिन में भोजनमात्र भी प्राप्त नहीं होता और जो सब में इन्द्रियों के इष्टरूप भोगता है उन दोनों को भस्म होते देखा है और भस्म दोनों की तुल्य होजाती है—विशेषता कुछ नहीं। इन्द्रियों के बन्धन में बारम्बार जन्मते मरते अज्ञानी शान्ति नहीं पाते। जो तुम कहो कि, तू तो सुखी दृष्ट आता है तुझे क्या दुःख हैं तो हे भगवन्! यह दुःख देखने में नहीं आता परन्तु मेरे हृदयकी इन्द्रियां जलती हैं। हे भगवन्! ब्रह्मा के लोक में मैंने बड़े सुख देखे हैं परन्तु वहां भी दुःखी ही रहाहूं क्योंकि; क्षय और अतिशय वहांभी रहती है इससे वेभी जलते हैं। इन्द्रियोंका शस्त्र से भी कठिन घाव है जो नाना प्रकार की संसार की विषमता दिखाती हैं और उनमें सर्वदा रागद्वेष रहता है जिससे मैं बहुत जलतारहा हूं। इससे मुझसे वही उपाय कहिये जिससे मैं शान्ति पाऊं। वह कौन सुख है जिससे फिर दुःखी न होऊं और जिसका कदाचित् नाश नहीं और जो आदि अन्त से रहित है। जो उसके पाने में कष्ट है तो भी मैं यत्न करताहूं कि; किसी प्रकार प्राप्त हो। हे मुनीश्वर! इन्द्रियों ने मुझे बड़ा कष्ट दियाहै। ये इन्द्रियां गुणरूपी वृक्ष को अग्नि हैं; शुभगुणों को जलाती हैं और विचार, धैर्य, संतोष और शान्ति आदिक गुणरूपी वृक्ष के नाश करनेवाली हैं। हे भगवन्! इन्होंने मुझे दुःख दिया है। जैसे मृग का बच्चा सिंह के वश पड़े तो वह उसको मर्दन करताहै; तैसेही इन्द्रियोंने मुझे मर्दन कियाहै। हे भगवन्! जिस पुरुषने इन्द्रियों को वश कियाहै उसका पूजन सब देवता करते हैं और उसके दर्शन की इच्छा करते हैं और जिसने मनको नहीं वश किया उसको दीन जानते

हैं। जिस पुरुषने इन्द्रियों को वश कियाहै वह सुमेरु पर्वत की नाईं अपनी गम्भीरता में स्थितहै और जिसने इन्द्रियां वश नहीं कीं वह तृण की नाईं तुच्छ है। जिसको इन्द्रियों के अर्थ में सदा तृष्णा रहती है वह पशु है; उसको मेरा धिक्कार है। हे मुनीश्वर! जो बड़ा महन्त भी हो, यदि उसके इन्द्रियां वश नहीं तो वह महानीच है। हे मुनीश्वर! इन्द्रियों ने मुझे बड़ा दुःख दियाहै। जैसे महाशून्य उजाड़ में चोर लूटलेते हैं तैसेही इन्द्रियों ने मुझे लूट लिया है। इन्द्रियांरूपी सर्पिणी में तृष्णारूपी विष है इससे इनमें सारा विश्व मोहित देख पड़ता है और कोई बिरला इनसे बचा होगा। ये इन्द्रियां दुष्ट हैं जो अपने २ विषय को लेती हैं और को नहीं देतीं और तुच्छ और जड़ हैं। जैसे बिजली का चमत्कार होता है और फिर छिप जाता है तैसेही इन्द्रियों के सुख क्षणमात्र दिखाई देते हैं और फिर छिप जाते हैं। जबतक इन्द्रियों और विषयों का संयोगहै तबतक सुख भासता है और जब इनका वियोग होता है तब दुःख उत्पन्न होताहै क्योंकि; तृष्णा रहती है। एकसेना है उसमें इन्द्रियों के भोग उन्मत्त हाथी हैं; तृष्णारूपी जंजीर है; इन्द्रियांरूपी रथ हैं; नानाप्रकार के विषय घोड़े हैं और संकल्प विकल्परूपी खड्गों का धारनेवाला अहंकार है और यह जो क्रिया अहंकार सहित होती है सो शस्त्रों के समूह हैं। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने इस सेना को नहीं जीता वह मोहरूपी अन्धे कुयें में गिरके कष्ट पाता है और जिसने जीता है वह परमसुख को प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! ये इन्द्रियां भोग की इच्छारूपी खाईं में अहंकाररूपी राजा को डाल देती हैं और उसमें से निकलना कठिन होताहै। जिस पुरुष ने इनको जीता है उसकी त्रिलोकी में जय होती है और जिसने नहीं जीता वह महादीनता को प्राप्त होताहै और जन्म जन्मान्तर पाताहै। इन इन्द्रियों में रजोगुण और तमोगुण रहता है। ये तबतक दाह देती हैं जबतक रज तम वृत्ति है। यह भी मनकी वृत्तिहै। जब इनका अभाव होताहै तब शान्ति प्राप्त होती है। यह शोध करके देखाहै कि, इन्द्रियां तप, यज्ञ, व्रत, तीर्थ और किसी औषध से वश नहीं होतीं और न इनके वश करनेका कोई उपाय है; केवल सन्त

के संग से निरवासी हो तब वश होती हैं। इससे मैं तुम्हारी शरण हूं; कृपा करके मुझे आपदा के समुद्र से निकालो क्योंकि; मैं डूबता हूं। मैं इस संसारसमुद्र में दीन हूं, तुम पार करो और तुम्हारी महिमा सन्तों ने भी सुनी है। हे भगवन्! जो कोई आयुर्बलपर्यन्त विषयके दिव्यभोग भोगता रहे और इनसे शान्ति चाहे तो न प्राप्त होगी। बड़े सुख दुःख समान हैं। आकाश में उड़नेवाले भी इन्द्रियों को वश नहीं करसके इससे दीन और दुःखी रहते हैं। कोई पुरुष वीर्यवान् हो और फूल की नाईं महामत्त हाथी के दांत को चूर्ण करसक्ता हो परन्तु इन्द्रियों को अन्तर्मुख करना महाकठिन है। हे मुनीश्वर! इतने कालतक मैं महाअध्यात्म तपसे दुःखी रहा हूं। तुम कृपा करके निकालो, मैं तुम्हारी शरण हूं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरवैराग्यवर्णनं नाम शताधिकैकत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ १३१॥

भुशुण्डिजी बोले, हे वशिष्ठजी! जब इस प्रकार विद्याधर ने मेरे आगे प्रार्थना की तो मैंने कहा, हे अङ्ग! तू धन्य है। अब तू जागा है। जैसे कोई पुरुष अन्धे कुयें में पड़ा हो और उसकी इच्छा हो कि; निकले तो जानिये कि, निकलेगा। हे विद्याधर! मैं उपदेश करता हूं सो तू अङ्गीकार करियो और सत्य जानके मेरे वचनों में संशय न करना। जो सबके सार वचन हैं सो तुझसे कहता हूं। जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिम्ब को यत्न विना ग्रहण करती है तैसे ही मेरे वचन शीघ्रही तेरे हृदयमें प्रवेशकरेंगे। जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है उसको सन्त उपदेश करें अथवा न करें उसको सहज वचनही उपदेश हो लगते हैं। जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिम्बको यत्न विना ग्रहण करता है तैसेही मेरे वचनों को तू धार लेगा तो तेरे दुःख नाश हो जावेंगे और परमानन्दको जो अविनाशी सुख और आदि अन्तसे रहितहै सो प्राप्त होगा। इन्द्रियोंके सुख आगमापायी हैं सो दुःख के तुल्य हैं—इनसे रहित परमसुख है। हे विद्याधरों में श्रेष्ठ! जो कुछ तुझे सुखरूप दृष्ट आवे उसका त्याग कर तब तुझे परमसुख प्राप्त होगा। सब दुःखोंका मूल अहंभाव है; जब अहंकार नाश हो तब शान्ति होगी।

संसार का बीज भी अहंकारहै और संसार मृगतृष्णाके जलवत्‌है। तबतक संसार नष्ट नहीं होता जबतक अहंतारूपी संसार का बीज है; जब अहंतारूपी बीज नष्ट होजावे तब संसारभी निवृत्त होजावे। संसाररूपी वृक्ष के सुमेरु आदिक पर्वत पत्र हैं; तारागण कली और फूल हैं; सातो समुद्र रस हैं; जन्म मरण बेलहैं; सुख दुःख फलहैं और वह आकाश, दिशा, पातालको धारके स्थित हुआहै। अहंकाररूपी वृक्ष पृथ्वी पर उत्पन्न हुआहै; अहंकार ही उसका बीज है और वृक्ष मिथ्या भ्रममात्र असत्य और सत्य की नाईं स्थित हुआ है। इससे अहंकार के बीज का नाश करो और निरहंकाररूपी अग्निसे इसको जलाओ तब अत्यन्त अभाव होजावेगा। यह भ्रम करके भय देताहै। जैसे रस्सी में सर्पभ्रम और भय देता है इससे निरहंकाररूपी अग्नि से इसका नाश करो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शताधिकद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः ॥१३२॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह ज्ञान जैसे उत्पन्न होता है सो सुनो। ब्रह्मविद्या शास्त्र के सुनने और आत्मविचार से यह उपजताहै। उस आत्मज्ञानरूपी अग्निसे संसाररूपी वृक्षको जलाओ। यह आगे भी नहीं था, अनहोताही उदय हुआ है और मनके संकल्पसे हुये की नाईं स्थितहै। जैसे पत्थरमें शिल्पी कल्पताहै कि; इतनी पुतलियां निकलेंगी सो हुईं कुछ नहीं; तैसेही मनरूपी शिल्पी यह विश्वरूपी पुतलियां कल्पता है। जब मन का नाश करोगे तब संसारभ्रम मिटजावेगा; आत्मविचार करके परमपद को प्राप्त होगे और अपना आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासेगा। इससे अहंता को त्याग करके अपने स्वरूप में स्थित हो रहो। हे विद्याधर! यह जो संसाररूपी वृक्ष है सो अहंतारूपी बीज से उपजा है; उसको जब ज्ञानरूपी अग्नि से जलाइये तब फिर यह जगत् न उपजेगा। यदि इसको विचार करके देखिये तब अहं त्वं नहीं रहता। हे विद्याधर! यह अहं त्वं मिथ्या है—इनके अभावकी भावना करो, यही उत्तम ज्ञान है। हे साधो! जब गुरु के वचन सुनकर उनके अनुसार पुरुषार्थ करे तब परमपद को प्राप्त होता है और जय होती है। हे विद्यारूपी कन्दरा के धारनेवाले, पर्वत और विद्या-

रूपी पृथ्वी के धारनेवाले! यह संसाररूपी एक आडम्बर है और उसके सुमेरु ऐसे कई थम्भे हैं जो रत्नों की पंक्ति से जड़े हुये हैं और वन, दिशा, पहाड़, वृक्ष, कन्दरा, वैताल, देवता, पाताल, आकाश इत्यादिक ब्रह्माण्ड उसके ऊपर स्थित हैं। रात्रि, दिन, भूत, प्राणी और इनके जो घर हैं सो चौपड़ के खाने हैं; जो जैसा कर्म करता है वह उसके अनुसार दुःख सुख भोगता है। ऐसेही सम्पूर्ण प्रपञ्च जो क्रियासंयुक्त दिखाई देताहै सो भ्रमसे सिद्धहै-इससे मिथ्या है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि संकल्प से भासती है तैसेही यह सृष्टि भी भ्रम से भासती है और अज्ञान की रची हुई है; आत्मा के अज्ञानसे भासती है और आत्मा के ज्ञान से लीन होजाती है। जब सृष्टि है तब भी परमात्मतत्त्वही है और जब सृष्टि होगी तब भी परमात्मतत्त्व ही होगा; आगे भी वही था और जो कुछ प्रपञ्च तुझे दृष्ट आता है सो शून्य आकाश ही है। त्रिगुणमय प्रपञ्च गुणोंका रचाहुआ अपने स्वरूपके प्रमाद से स्थित हुआ है और आत्मज्ञान से शून्य होजावेगा। जब प्रपञ्च ही शून्य हुआ तब आत्मा और अनात्मा का कहना भी न रहेगा और पीछे जो शेष रहेगा सो केवल शुद्ध परमतत्त्व है और तेरा अपना आप है, उसमें स्थित होरह और दृश्य का त्यागकर कि, न मैं हूं और न जगत् है। जब तू ऐसा होगा तब तेरी जय होगी। आत्मपद सबसे उत्तम है जब तू आत्मपद में स्थित होगा तब सबसे उत्तम होगा और तेरी जय होगी-इससे आत्मपद में ही स्थित होरह।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसाराडम्बरोत्पत्ति-
नामशताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ १३३॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह प्रपञ्च भी आत्मा का चमत्कारहै आत्मा शुद्ध चेतन है जिसमें जड़ और चेतन स्थित हैं और वह सब-का अधिष्ठान है सो सत्तामात्र तेरा अपना आप है और अहं त्वं शब्द-अर्थ से रहित आत्मत्वमात्र है पर सत्यस्वरूप होके असत्य की नाईं स्थित है। हे विद्याधर! तू इस जड़ और चेतन से अबोधमान होरह। जब तू अबोध होगा तब शान्त और चिद्घन होगा। ये जो जड़ और चेतन हैं

इन दोनों का परमार्थ चेतन के आगे अन्तर रहता है; यद्यपि वह अदृश्य है तौ भी इनके भीतर ही रहता है । जैसे समुद्र के भीतर बड़वाग्नि रहती है । इन जड़ चेतनरूप का कारणरूप वही है, उत्पत्ति भी उसी से होती है और नाश भी वही करता है । हे विद्याधर! जब ऐसे जाना कि; मैं चेतनरूप भी नहीं और जड़ भी नहीं तो पीछे जो रहेगा वह तेरा स्वरूप है । जब तेरे भीतर इन जड़ और चेतन दोनों का स्पर्श नहीं हुआ तब सबके भीतर जो चेतन है वही ब्रह्म तुझे भासेगा और विश्व आत्मा में कुछ नहीं हुआ । जैसे सूर्य की किरणों का चमत्कार जलाभास होता है तैसेही शुद्ध चेतन का चमत्कार विश्व हो भासता है । हे अङ्ग! जैसे भीति पर पुतलियां लिखी होती हैं सो भीति से कुछ भिन्न नहीं, चितेरे ने लिखी हैं; तैसे ही शून्य आकाश में चित्तरूपी चितेरे ने विश्वरूपी पुतलियां कल्पी हैं सो आत्मरूपी भीति से भिन्न नहीं । जैसे सुवर्ण में भूषण कल्पित है सो सुवर्ण से भिन्न नहीं, तैसेही आत्मा में अज्ञान से विश्व देखते हैं वह आत्मा से भिन्न नहीं । जगत्, ब्रह्म, आत्मा, आकाश, देश, काल सब उसी तत्त्व की संज्ञा हैं । वही शुद्ध चेतन आकाश है जिसका चमत्कार ऐसे स्थित है । उसी तत्त्व में तू भी स्थित होरह । यह जगत् ऐसे है जैसे दूर दृष्टि से आकाश में बादल हाथी की सूंड़ से भासते हैं । यह जो अहं त्वं रूप जगत् है सो अबोध से भासता है और बोध करके लीन होजाता है—जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणों से जल भासता है और गन्धर्बनगर है तैसेही यह जगत् है—इससे इसका त्याग करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तचमत्कारोनाम
शताधिकचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ १३४ ॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह स्थावर जङ्गम जगत् सब आत्मा से उत्पन्न हुआ है और आत्मा ही में स्थित है और आत्मा ही विश्व में स्थित है । जैसे स्वप्ने का विश्व स्वप्नेवाले में स्थित है । आत्मा किसी का कारण नहीं क्योंकि; अद्वैत है । हे अङ्ग! जो तू उस पद के पाने की इच्छा करता है तो तू ऐसे निश्चयकर कि, न मैं हूं और न यह जगत् है । जब

तू ऐसा होगा तब आत्मपद की प्राप्ति होगी जो देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है और सर्व वही परमात्मतत्त्व स्थित है। जगत् का कर्ता संकल्प ही है क्योंकि; संकल्प से जगत् उत्पन्न होता है। जैसे पवन से अग्नि उत्पन्न होता है और पवन ही से दीपक निर्वाण होता है, तैसे ही जब संकल्प बहिर्मुख फुरता है तब संसार उदय हो भासता है और जब संकल्प अन्तर्मुख होता है तब आत्मपद प्राप्त होता है और सर्वप्रपञ्च लय हो जाता है। इससे संसार की नाना प्रकार की संज्ञा फुरने से ही होती हैं स्वरूप में कुछ नहीं, न सत्य है; न असत्य है; न स्वतः है; न अन्य है। यह सब कलनामात्र है सत्, असत् और स्वतः, अन्य का अभाव हुआ तो वहां अहं त्वं कहां पाइये ? वह है नहीं और बालक के यक्षवत् भ्रममात्रहै। हे साधो ! जहां अहं त्वं नष्ट होगये तहां जो सत्ता है सो परमपद है और जहां जगत् है वहां विचार से लीन होजाता है। वास्तव में पूछो तो ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं—नाममात्र दो हैं—जैसे घट और कुम्भहैं—परन्तु भ्रम से नानात्व भासते हैं। जैसे समुद्र में आवर्त और तरङ्ग उठते हैं सो जल से कुछ भिन्न नहीं और पवनके संयोग से आकार भासते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् कुछ भिन्न नहीं; संकल्पके फुरने से नानाप्रकार का जगत् भासता है। हे अङ्ग ! संकल्पके साथ मिलकर चित्त जैसी भावना करताहै तैसाही रूप अपना देखताहै स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं परन्तु भावना से और का और देखता है। जैसे शुद्ध मणि के निकट कोई रङ्ग रखिये तो तैसाही रूप भासता है और मणि में कुछ रङ्ग नहीं तैसेही चित्त शक्ति में कुछ हुआ नहीं और हुयेकी नाईं स्थितहै। इससे अपने स्वरूपकी भावना करो और जड़ चैतन्य को छोड़कर शुद्ध चैतन्यमें स्थित होरहो। जब ऐसे जानकर अपने स्वरूपमें स्थित होगे तब तुम्हें उत्थान में भी अपना स्वरूप भासेगा जैसे स्थिरसमुद्र में तरङ्ग फुरते हैं सो कारणरूप जल विना तो नहीं होते, तैसेही ब्रह्म कारणरूप विना जगत् नहीं परन्तु ब्रह्मसत्ता अकर्तारूप, अद्वैत और अच्युतहै इसीसे कहाहै कि, अकर्ता है और जगत् अकारणरूप है। जो जगत् अकारणरूप है तो न उपजता है और न नाश होता है—

मरुस्थल के जलवत है। इसी से कहा है कि, जगत् कुछ वस्तु नहीं केवल अज, अच्युत और शान्तरूप आत्मतत्त्वही अखण्डित स्थित है और शिला कोशवत् अचैत्य चिन्मात्रहै। जिसके हृदयमें चिन्मात्रकी भावना नहीं उस मूर्ख से हमारा क्या है? हे साधो! परमार्थ से कुछ नहीं बना पर जहां जहां मन है तहां तहां अनेक जगत् हैं और तृण सुमेरु आदिक सब में जगत् है। जो विचार कर देखिये तो वही रूप है और कुछ नहीं। जैसे सुवर्ण के जानने से भूषण भी सुवर्ण भासते हैं तैसेही केवल सत्ता समानपद एक अद्वैत है भिन्न कुछ नहीं और भिन्न२ संज्ञा भी वही है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शताधिकपञ्चत्रिंसत्तमस्सर्गः॥१३५॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! जब आत्मपद प्राप्त होता है तब ऐसी अवस्था होती है कि, जो नग्नशरीर हो और उस पर बहुत शस्त्रों की वर्षा हो तो उससे दुःखी नहीं होता और सुन्दर अप्सरा कण्ठ से मिले तो हर्षवान् नहीं होता अर्थात् दोनोंही में तुल्य रहता है। हे विद्याधर! तब तक आत्मपद का अभ्यास करे जबतक संसार से सुषुप्त की नाईं न हो। अभ्यास ही से आत्मपद को प्राप्त होगा। जब आत्मपद की प्राप्ति होगी तब पाञ्चभौतिक शरीर को ज्वर स्पर्श न करेंगे और यद्यपि शरीर में प्राप्त भी हों तो भी उसके भीतर प्रवेश नहीं करते। वह केवल शान्तपद में स्थित रहता है—जैसे जल में कमल को स्पर्श नहीं होता। हे देवपुत्र! जबतक देहादिकों में अभ्यास है तबतक आत्मा के प्रमाद से सुख दुःख स्पर्श करते हैं और जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब सब प्रपञ्च भी आत्मरूप होजाते हैं। हे विद्याधर! जैसे कोई पुरुष विष पान करता है तो उसको जलन और खाँसी होती है—यह अवस्था विष की है—सो विष से और कुछ नहीं परन्तु नामसंज्ञा हुई है। विष न जन्मता, न मरता है और धूप खाँसी उसमें दृष्टि आती है तैसेही आत्मा न जन्मता है और न मरता है और गुणों के साथ मिलकर अवस्था को प्राप्त हुआ दृष्टि आता है। आत्मा जन्म मरण से रहित है पर गुणों के संकल्प के साथ मिलने से जन्मता मरता भासता है और अन्तःकरण, देह, इन्द्रियादिक भिन्न २

भासते हैं। हे साधो! यह जगत् भ्रम से भासता है; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस जगत् को गोपद की नाईं अपने पुरुषार्थ से लांघ जाते हैं और जो अज्ञानी हैं उनको अल्प भी समुद्र समान होजाता है। इससे आत्मपद पाने का यत्न करो जिसके जानने से संसारसमुद्र तुच्छ होजावे। वह आत्मतत्त्व सब में अनुस्यूत और सब से अतीत है, उसके जानने से अन्तःकरण शीतल होजाता है और सब ताप नष्ट होजाते हैं। हे साधो! फिर उसका त्याग करना अविद्या है और बड़ी मूर्खता है। हे साधो! ये सब पदार्थ ब्रह्मस्वरूपही हैं और जो ब्रह्मस्वरूप हुये तो मन, अहंकार, कलङ्क आदिक भी वही है–किसी से किसी को कुछ दुःख सुख नहीं। हे विद्याधर! जब आत्मपद को जाना तब अन्तःकरण भी ब्रह्मस्वरूप भासेंगे। जो संकल्पसे भिन्न२ जानते हैं वे संकल्पके होते भी ब्रह्मस्वरूप भासेंगे। इससे निःसंकल्प होकर स्थित हो कि, न मैं हूं; न यह जगत् है और न इदम् है। इन शब्दों और अर्थों से रहित होकर स्थित होरह कि; सब संशय मिटि जावें। हे विद्याधर! जब तू ऐसा निरहंकार और निःसंकल्प होगा तब उत्थानकालमें भी बुद्धि, बोध, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, यश, कीर्ति इत्यादिक जो शुभाशुभ अवस्था हैं सब आत्मस्वरूप भासेंगी और सर्व आत्मबुद्धि रहेगी। इनके प्राप्त हुये भी केवल परमार्थ सत्ता से भिन्न न भासेगा–जैसे अन्धकार में सर्प के पैर का खोज नहीं भासता क्योंकि; है नहीं; तैसेही तुमको सर्व अवस्था न भासेंगी–सर्व आत्माही भासेगा–और जितने कुछ भावरूप पदार्थ स्थित हैं सो अभाव होजावेंगे। हे अङ्ग! जिस पुरुष ने विचार कर आत्मपद पाने का यत्न किया है वह पावेगा और जिसने कहा कि, मैं मुक्त हो रहूंगा और ईश्वर मुझपर दया करेंगे वह पुरुष कदाचित् मुक्त न होगा। पुरुष के प्रयत्न विना कदाचित् मुक्ति न होगी। आत्मस्वरूप में न कोई दुःख है और न किसी गुण से मिला हुआ सुखहै वह केवल शान्तरूपहै। किसी से किसी को कुछ सुख दुःख नहीं; न सुख है और न दुःख है, न कोई कर्ता है और न भोक्ता है केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है।
इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शताधिकषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥१३६॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! जैसे कोई कल्पना करे कि; आकाश में और आकाश स्थित है तो मिथ्या प्रतीति है; तैसेही आत्मा में जो अहंकार फुरता है सो मिथ्या है। जैसे आकाश में और आकाश कुछ वस्तु नहीं। परमार्थ तत्त्व ऐसा सूक्ष्म है कि; उसमें आकाश भी स्थूल है और ऐसा स्थूल है कि, जिसमें सुमेरु आदिक भी सूक्ष्म अणुरूप हैं और राग द्वेष से रहित चेतन केवल शान्तरूप है—गुण और तत्त्व के क्षोभ से रहित है। हे देवपुत्र! अपना अनुभवरूपी चन्द्रमा अमृत का वर्षनेवाला है। हे अङ्ग! जितने दृश्य पदार्थ भासते हैं सो हुये कुछ नहीं। हे अङ्ग! आत्मरूप अमृत की भावना कर कि, तू जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो। जैसे आकाश में दूसरे आकाश की कल्पना मिथ्या है तैसेही निराकार चिदात्मा में अहं मिथ्या है; और जैसे आकाश अपने आपमें स्थित है तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और अहं त्वं आदिक से रहितहै। जब उसमें अहं का उत्थान होता है तब जगत् फैल जाता है—जैसे वायु फुरने से रहित हुई आकाशरूप होजाती है तैसेही संवित् उत्थान अहं से रहित हुई आत्मरूप होजाती है और जगत् भ्रम मिट जाता है। फुरने से जगत् फुर आया है; वास्तव में कुछ नहीं। ज्ञानवान् को आत्मा ही भासता है और देश, काल, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, कीर्ति सब आकाशरूप हैं—ब्रह्मरूपी चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशते हैं। जैसे बादलों के संयोग से आकाश धूम्रभाव को प्राप्त होता है; तैसेही प्रमाद से संवित् दृश्यभाव को प्राप्त होती है परन्तु और कुछ नहीं होती। जैसे तरङ्ग उठने से जल और कुछ नहीं होता और जैसे काष्ठ छेदे से और कुछ नहीं होता; तैसेही द्रष्टा से दृश्य भिन्न नहीं होता। जैसे केले के थम्भ में पत्र विना और कुछ नहीं निकलता और पत्र शून्यरूप है तैसेही क्रूररूप जगत् भासता है परन्तु आत्मा से भिन्न नहीं शून्यरूप है। शीश, भुजा, नेत्र, चरण आदिक नाना प्रकार भिन्न २ भासते हैं परन्तु सब शून्यरूप केले के पत्रों की नाईं भासते हैं और सब असाररूप हैं। हे विद्याधर! चित्तमें रागरूपी मलिनता है; जब वैराग्यरूपी झाड़ से झाड़िये तब चित्त निर्मल

हो। जैसे दीवार पर चित्र लिखे होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और देवता, मनुष्य, नाग, दैत्य आदिक सब जगत् संकल्परूपी चितेरे ने चित्र लिखे हैं; स्वरूप के विचार से निवृत्त होजाते हैं। जब स्नेहरूप संकल्प फुरता है तब भाव अभावरूप जगत् फैल जाता है। जैसे जल में तेल के बूंद फैल जाते हैं और जैसे बाँस से अग्नि निकलकर बाँस को दग्ध करती है तैसेही स्नेह इससे उपजकर इसी को खाते हैं। आत्मा में जो देश काल पदार्थ भासते हैं यही अविद्या है—पुरुषार्थ से इसका अभाव करो। दो भाग साधु के संग और कथा सुनने में व्यतीत करो; तृतीय भाग शास्त्र का विचार करो और चतुर्थभाग में आत्मज्ञान का आपही अभ्यास करो। इस उपाय से अविद्या नष्ट होजावेगी और अशब्द और अरूपपद की प्राप्ति होगी। विद्याधर ने पूछा, हे मुनीश्वर! भाग में जो उपाय से अशब्दपद प्राप्त होता है सो सब काल क्या है? नाम अर्थ के अभाव हुये शेष क्या रहता है? भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! संसार-समुद्र के तरने को ज्ञानवानों का संग करना और जो विकृत निर्वैर पुरुष हैं उनकी भली प्रकार टहल करना; इससे अविद्या का अर्धभाग नष्ट होगा; तीसरा भाग मनन करके और चतुर्थ भाग अभ्यास करके नष्ट होगा। जो यह उपाय न कर सको तो यह युक्ति करो कि जिसमें चित्त अभिलाषा करके आसक्त हो उसीका त्याग करो। एकभाग अविद्या इस प्रकार नष्ट होगी। तीनभाग शास्त्र विचार और अपने यत्न से शनैः शनैः नष्ट होवेगी। साधुसंग; सत्शास्त्र विचार और अपना यत्न होवे तो एकही बार अविद्या नष्ट होजावेगी। यह समकाल कहे। एक एक के सेवने से एक एक भाग निवृत्त होताहै। पीछे जो शेष रहताहै उसमें नाम अर्थ सब असत्‌रूप हैं और वे अजर, अनन्त, एकरूप हैं। संकल्प के उपजे से पदार्थ भासते हैं और संकल्प के लीन हुये लीन होजाते हैं। हे विद्याधर! यह जगत् संकल्प से रचा है—जैसे आकाश में सूर्य निराधार स्थित होता है तैसेही देश काल की अपेक्षा से रहित यह मननमात्र स्थित है! तीनों जगत् मनके फुरनेसे फुरआते हैं और मन के लयहुये लय होजाते हैं—जैसे

स्वप्ने के पदार्थ जागे से अभाव होजाते हैं। हे विद्याधर! ब्रह्मरूपी वन में एक कल्पवृक्ष है जिसकी अनेक शाखा हैं। उसकी एक शाखा से जगत् रूपी पुरैन का फल है जिसमें देवता, दैत्य, मनुष्य पशुआदिक मच्छर हैं। वासनारूपी रस से पूर्ण मज्जा पहाड़ है, पञ्चभूत मुख द्वारा उसका निकलने का खुला मार्ग इत्यादिक सुन्दर रचना बनी हैं। उसमें त्रिलोकी का ईश्वर इन्द्र एक हुआ और गुरु के उपदेश से उसका आवरण नष्ट होगया। फिर इन्द्र और दैत्यों का युद्ध होने लगा और इन्द्र अपनी सेना को ले चला पर उसकी हीनता हुई इसलिये वह भागा और दशों दिशाओं में भ्रमता रहा पर जहां जावे वहां दैत्य उसके पीछे चले आवें। जैसे पापी परलोक में शोभा नहीं पाता तैसेही इन्द्र ने जब शान्ति न पाई तब अन्तवाहकरूप करके सूर्य की त्रसरेणु में प्रवेश कर गया। जैसे कमल में भँवरा प्रवेश करे तैसेही उसने प्रवेश किया तो वहां उसको युद्ध का वृत्तान्त विस्मरण होगया तब एक मन्दिर में बैठा आपको देखता हुआ। जैसे निद्रा से स्वप्नसृष्टि भास आवे तैसेही उसे वहां रत्न और मणियों संयुक्त संवित् नगर देखा—वह उसमें गया और पृथ्वी, पहाड़, नदियां, चन्द्र, सूर्य, त्रिलोकी इसको भासने लगी और उस जगत् का इन्द्र आपको देखा कि, दिव्य भोग और ऐश्वर्य से संपन्न मैं इन्द्र स्थित हूं। वह इन्द्र कुछ काल के उपरान्त शरीर को त्याग के निर्वाण हुआ—जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण होता है—तब कुन्दनाम उसका पुत्र इन्द्र हुआ और राज्य करने लगा। फिर उसके एक पुत्र हुआ तब कुन्द भी इन्द्र शरीर को त्यागकर परमपद को प्राप्त हुआ और उसका पुत्र राज्य करने लगा। फिर उसके भी एक पुत्र हुआ; इसी प्रकार सहस्र पुत्र होकर राज्य करते रहे उन्हीं के कुल में यह हमारा इन्द्र राज्य करता है। इससे यह जगत् संकल्पमात्र है और उस त्रसरेणु में यह सृष्टि है। इसलिये इसजगत् को संकल्पमात्र जानकर इसकी आस्था त्यागो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इन्द्रोपाख्याने त्रसरेणुजगत्-
वर्णनन्नाम शताधिकसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः॥१३७॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! फिर उनके कुल में एक बड़ा श्रीमान् इन्द्र हुआ जो त्रिलोकी का राज्य करता रहा और फिर निर्वाण हुआ। उसके एक पुत्र था जिसको बृहस्पतिजी के वचनों से ज्ञानरूप प्रतिभा उदय हुई तब वह विदितवेद होकर स्थित हुआ; यथाप्राप्ति में इन्द्र होकर राज्य करने लगा और दैत्यों को जीता। एक काल में वह किसी कार्य के निमित्त कमल की तन्तु में घुस गया तो वहां उसको नानाप्रकार का जगत् भासने लगा और अपनी इन्द्र की प्रतिभा हुई इससे उसे इच्छा उपजी कि; मैं ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त हो जाऊं और दृश्यपदार्थ की नाईं उसे प्रत्यक्ष देखूं। इसलिये वह एकान्त बैठकर समाधि में स्थित हुआ तो उसको भीतर बाहर ब्रह्म साक्षात्कार हुआ और उस प्रतिभा के उदय होने से यह निश्चय हुआ कि; सर्व ब्रह्म ही है और सब ओर पूजने योग्य है। सब उसीको पूजते भी हैं और सर्व हैं। सर्व शब्द, रूप, अवलोक और मनन से भी रहित केवल शुद्ध आत्मपद है और सर्व ओर उसी के प्राणपद हैं। सब शीश और मुख उसीके हैं; सब ओर उसीके श्रवण हैं; सब ओर उसीके नेत्र हैं और सब में आत्मत्व से वही स्थित होरहा है। सब इन्द्रियों और विषयों को वही प्रकाशता है और सब इन्द्रियों से रहित है और अशक्त हुआ भी सबको धार रहा है। वह निर्गुण है और इन्द्रियों के साथ मिल कर गुणों का भोक्ता है और सब भूतों के भीतर बाहर व्याप रहा है। सूक्ष्म है इससे दुर्विज्ञेय है और इन्द्रियों का विषय नहीं। अज्ञानी को अज्ञान से दूर है और आत्मत्व द्वारा ज्ञानी को ज्ञान से निकट है और अनन्त, सर्व-व्यापी केवल शान्तरूप है जिसमें दूसरा कोई नहीं। घट, पट, दीवार, गाय, आवा, बरा, नरा, सब में वही तत्त्व भासता है और पर्वत, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, देश, काल वस्तु सब ब्रह्म ही है—ब्रह्म से भिन्न नहीं। हे विद्याधर! इस प्रकार इन्द्र को ज्ञान हुआ और जीवन्मुक्त हुआ। तब वह सब चेष्टा करे परन्तु अन्तःकरण में बन्धवान् न हो। जब कुछ काल बीता तब इन्द्र उस निर्वाणपद को प्राप्त हुआ जिसमें आकाश भी स्थूल है। फिर उस इन्द्र का एक बड़ा शूरवीर पुत्र सब दैत्यों को जीतकर देवता

और त्रिलोकी का राज्य करने लगा और उसको भी ज्ञान उत्पन्न हुआ। सत्शास्त्र और गुरु के वचनों से कुछ काल में वह भी निर्वाण हुआ तब उसका जो पुत्र रहा वह राज्य करनेलगा। इसी प्रकार कई इन्द्र हुये और राज्य करते रहे और नाना प्रकार के व्यवहारों को देखते रहे। फिर उसके कुल में कोई पुत्र था उसको यह हमारी सृष्टि भासि आई तो वह भी ब्रह्मध्यानी हुआ और इस त्रिलोकी का राज्य करने लगा और अबतक विश्व का इन्द्र वही है। हे विद्याधर! इस प्रकार जो विश्व की उत्पत्ति है सो संकल्पमात्र है और सब मैंने तुझसे कही हैं। पहले उसको त्रसरेणु में सृष्टि भासी; फिर उस सृष्टि के एक कमल की तन्तु में भासी और फिर उसमें कई वृत्तान्त जो संकल्पमात्र थे उसने देखे और उस अणु में अनेक अवस्था देखीं। हे विद्याधर! पर वास्तव में वह कुछ हुई नहीं। जैसे आकाश में नीलता भासतीहै और है नहीं; तैसेही यह विश्व है। आत्मा में विश्वका अत्यन्त अभावहै। यह विश्व अहंभावसे उपजाहै। जब अहंभाव फुरता है तब आगे सृष्टि बनती है और जब अहं का अभाव होता है तब विश्व कोई नहीं। इस विश्व का बीज अहं है, इससे तू ऐसी भावना कर कि, न मैं हूं और न जगत् है। जब ऐसी भावना की तब आत्मा ही शेष रहैगा जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपना आप है। हे विद्याधर! इस मेरे उपदेश को अङ्गीकार कर।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनन्नामशताधिकअष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ १३८॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! जब अहं का उत्थान होता है तब आगे सृष्टि बनकर भासता है और जब अहं का अभाव होता है तब विश्व कुछ नहीं भासता केवल शुद्ध आत्माही भासता है। हे विद्याधर! इन्द्र ने कहा कि, मैं हूं, उसको सूर्य की किरणों के अणु में ऐसे अहं हुआ तो उसमें नाना विस्तार देखा और कष्ट पाया। जो उसको अहं न होता तो दुःख न पाता। दुःखरूपी वृक्ष का अहंरूपी बीज है और आत्मविचार से इसका नाश होता है। जब अहं का नाश होता है तब आत्मपद का

साक्षात्कार होता है और आत्मपद के साक्षात्कार हुये से प्रच्छन्न अहं का नाश होता है। हे विद्याधर! आत्मरूपी एक पर्वत है जिस पर आकाश-रूपी वन है और उसमें संसाररूपी वृक्ष लगा है। उसमें वासनारूपी रस है; अज्ञानरूपी भूमि से उत्पन्न हुआ है; नदियां-समुद्र उसकी नाड़ी हैं; चन्द्रमा और तारे फूल हैं; वासनारूपी जल से बढ़ता है और अहंकाररूपी वृक्ष का बीज है। सुख-दुःखरूपी इसके फल हैं; आकाश इसकी डालें हैं और जड़ पाताल है। तुम इस वृक्ष को ज्ञानरूपी अग्नि से जलावो और अहंरूपी वृक्ष के बीज का नाश करो। हे विद्याधर! एक खाई है जिसके जन्ममरणरूपी दो किनारे हैं; अनात्मरूपी उसमें जलहै; वासनारूपीतरङ्ग हैं और विश्वरूपी बुद्बुदे होते भी हैं और मिट भी जाते हैं। शरीररूपी झागहै और अहंकाररूपी वायु है; जब वायु हुई तब तरङ्ग और बुद्बुदे सब होते हैं और जब वायु मिट गई तब केवल स्वच्छ निर्मलही भासता है। हे विद्याधर! जो वायु हुई तौ जल से भिन्न कुछ न हुआ और जो न हुई तौ भी जल से भिन्न कुछ नहीं—जलही है; तैसेही अज्ञान के होते और निवृत्त हुये भी आत्मपद ज्यों का त्यों है परन्तु सम्यक्दर्शन से आत्मपद भासता है और अज्ञान से जगत् भासता है। अहं का होनाही अज्ञान है। जब अहं हुआ तब मम भी होता है। सो 'अहं' 'मम' नाम संसार का है, जब अहं मम मिटता है तब जगत् का अभाव होता है। अहं के होते दृश्य भासता है और दृश्य में अहं होता है; इससे संवेदन को त्यागकर निर्वाण पद में प्राप्त हो। इतना कह भुशुण्डिजी ने मुझसे कहा कि, हे वशिष्ठजी! इस प्रकार जब वह मैंने विद्याधर को उपदेश किया तो वह समाधि में स्थित हुआ और परम निर्वाणपद को प्राप्त हुआ। जैसे दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही उसका चित्त क्षोभ से रहित शान्ति को प्राप्त हुआ। हे ब्राह्मण! उसका हृदय शुद्ध था इस कारण मेरे वचन शीघ्रही उसके हृदय में प्रवेश कर गये। जब वह समाधि में स्थितहुआ तो मैंने उसको बारम्बार जगाया परन्तु वह न जागा—जैसे कोई जलता जलता शीतल समुद्र में जाय बैठे और उससे कहिये कि, तू निकल तो वह नहीं निकलता, तैसेही संसार

ताप से जलता हुआ जब आत्मसमुद्र को प्राप्त होता है तब वह अज्ञानरूपी संसार के प्रवाह को नहीं देखता। हे वशिष्ठजी! जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है उसको थोड़े वचन भी बहुत हो लगते हैं। जैसे तेल की एक बूंद जल में बहुत फैल जाती है तैसेही जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है उसको थोड़ा वचन भी बहुत होकर लगता है और जिसका अन्तःकरण मलिन होता है उसको वचन नहीं लगते। जैसे आरसी पर मोती नहीं ठहरता तैसेही गुरुशास्त्र के वचन उसको नहीं लगते। जब विषयों से वैराग उपजै तब जानिये कि; हृदय शुद्ध हुआ है। हे वशिष्ठजी! जब मैंने विद्याधर को उपदेश किया तब वह शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त हुआ क्योंकि; उसका चित्त निर्मल था। हे मुनीश्वर! जो तुमने मुझसे पूछा था सो कहा कि, उस विद्याधर को मैंने ज्ञान से रहित चिरकाल जीता देखा। इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे कहकर काकभुशुण्डि चुप हो रहा और मैं नमस्कार करके आकाशमार्ग से अपने घर आया। हे रामजी! मेरे और काकभुशुण्डि के इस संवाद को एकादश चौकड़ी युग बीते हैं। हे रामजी! यह नियम नहीं है कि; थोड़े काल में ज्ञान उपजै वा बहुत काल में यह हृदय की शुद्धता की बात है; जिसका हृदय शुद्ध होता है उसको गुरु और शास्त्रों का वचन शीघ्रही लगता है—जैसे जल नीचे को स्वाभाविक जाता है। हे रामजी! इतना उपदेश जो तुमको मैंने क्रम से किया है उसका तात्पर्य यही है कि; फुरने को त्याग करो कि; न मैं हूं और न कोई जगत् है—तब पीछे निर्विकल्प केवल आत्मपद रहेगा जो सबका अपना आप है और उसका साक्षात्कार तुमको होगा। जैसे मलिन दर्पण में मुख नहीं दीखता तैसेही आत्मरूपी दर्पण अहंरूपी मल से ढपा है; जब इसका त्याग करो तब आत्मपद की प्राप्ति होगी और जगत् भी अपना आप भासेगा। आत्मा से कुछ भिन्न नहीं क्योंकि; केवल आत्मत्वमात्र है और जो कुछ भासता है उसे मृगतृष्णा के जलवत् और बन्ध्या के पुत्रवत् जानो, यह जगत् आत्मा के प्रमाद से भासता है—जैसे आकाश में नीलता भासती है पर है नहीं; तैसेही जगत् प्रत्यक्ष

भासता है और है नहीं। जैसे रस्सी में सर्प मिथ्या है तैसेही आत्मा में जगत् मिथ्या है। जब आत्मा का ज्ञान होगा तब जगत् का अत्यन्त अभाव होगा और केवल आत्मतत्वमात्र अपना आप भासेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डिविद्याधरोपाख्यान-समाप्तिर्नामशताधिकनवत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ १३९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम अहंवेदना से रहित होरहो। संसार-रूपी वृक्ष का बीज अहं ही है। वासना से शुभ अशुभरूप कर्म का सुख दुःख फल है और वासनाही से प्रफुल्लित होता है; इससे अहंभाव को निवृत्त करो। जब अहं फुरता है तब आगे जगत् भासता है; जब अहंता से रहित होगे तब जगत् भ्रम मिट जावेगा। अहंता आत्मबोध से नष्ट होता है। आत्मबोधरूपी खंभारी से उड़ाया अहंतारूपी पाषाण न जानोगे कि, कहां गया और सुवर्ण पाषाण तुल्य तुमको होजावेगा शरीररूपी पत्र पर अहंतारूपी अणु स्थित है; जब बोधरूपी वायु चलेगी तब न जानोगे कि कहां गया। शरीररूपी पत्र पर अहंतारूपी बरफ़ का कणका स्थित है; बोधरूपी सूर्य के उदय हुये न जानोगे कि वह कहां गया बोध विना अहंता नष्ट नहीं होती चाहे कीचड़ में रहे और चाहे पहाड़ में जावे; चाहे घर में रहे और चाहे स्थल में रहे; चाहे स्थूल हो और चाहे सूक्ष्म हो चाहे निरा-कार हो और चाहे रूपान्तर को प्राप्त हो; चाहे भस्म हो और चाहे मृतक हो; चाहे दूर हो अथवा निकट हो जहां रहेगा वहांही अहंता इसके साथ है। हे रामजी! संसाररूपी वट का बीज अहंता है उसीसे सब शाखा फैली हैं। सब अर्थों का कारण अहंता है; जबतक अहंता है तबतक दुःख नहीं मिटता और जब अहंभाव नष्ट हो तब परमसिद्धि की प्राप्ति हो। हे रामजी! जो कुछ मैंने उपदेश किया है उसको भली प्रकार विचारकर उसका अभ्यास करो तब संसाररूपी वृक्ष का बीज जल जावेगा और आत्मपद की प्राप्ति होगी।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारअस्तयोगोपदेशोनाम शताधिकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! संसार संकल्पमात्र सिद्ध है और भ्रम से उदय हुआ है। आत्मस्वरूप में अनेक सृष्टि बसती हैं; कोई लीन होती हैं; कोई उत्पन्न होती हैं और कोई उड़ती हैं; कहीं इकट्ठी होती हैं और कहीं भिन्न २ उड़ती हैं सो सब मुझको प्रत्यक्ष भासती हैं। देखो वे उड़ती जाती हैं सो ये सब आकाशरूप हैं और आकाशही से मिलती हैं। जैसे केले का वृक्ष देखनेमात्र सुन्दर होता है पर उसमें कुछ सार नहीं होता तैसे ही विश्व देखनेमात्र सुन्दर है पर आकाशरूप है। जैसे जल में पहाड़ का प्रतिबिम्ब पड़ता है और हिलता भासता है तैसेही यह जगत् है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप कहते हैं, कि सृष्टि मुझे प्रत्यक्ष उड़ती भासती हैं—तुम भी देखो; यह तो मैंने कुछ नहीं समझा कि, आप क्या कहते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अनेक सृष्टि उड़ती हैं सो सुनो। पञ्चभौतिक शरीर में प्राण स्थित हैं; प्राण में चित्त स्थितहै और उस चित्त में अपनी २ सृष्टि है। जब यह पुरुष शरीर का त्याग करता है तब लिङ्ग-शरीर जो वासना और प्राणवायु हैं वे उड़ते हैं। उस लिङ्गशरीर में जो विश्व है सो सूक्ष्मदृष्टि से मुझ को भासती है। हे रामजी ! आकाश की जो वायु है जिसका रूप रङ्ग कुछ नहीं वही वायु प्राणों से मिलकर मुझे प्रत्यक्ष दिखाई देती है—इसीका नाम जीव है। स्वरूप से न कोई आता है न जाता है परन्तु लिङ्गशरीर के संयोग से आता-जाता और जन्मता-मरता दीखताहै और अपनी वासना के अनुसार आत्मा में विश्व देखता है और कुछ नहीं बना। यह वासनामात्र सृष्टि है; जैसी वासना होती है तैसाही विश्व भासता है। हे रामजी ! यह पुरुष आत्मस्वरूप है परन्तु लिङ्गशरीर के मिलने से इसका नाम जीव हुआ है और आपको प्रच्छिन्न जानता है; वास्तव में ब्रह्मस्वरूपहै। देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित ब्रह्म है पर उसके प्रमाद से आपको कुछ मानता है इसीका नाम लिङ्गशरीर है। जैसे घटाकाश भी महाकाश है परन्तु घट के खप्पर से परिच्छिन्न हुआ है तैसेही यह पुरुष भी आत्मस्वरूप है और अहंकार के संयोग से प्रच्छिन्न हुआहै। जैसे घट को एकदेश से उठाकर देशान्तर में

लेजा रक्खो तो आकाश तो न कहीं गया और न आया परन्तु आता जाता भासताहै, तैसेही आत्मा अखण्डरूप है परन्तु प्राण चित्त से चलता भासता है। जब अहंकाररूप चित्त नष्ट हो तब अखण्डरूप हो; जबतक अहंकार नहीं जाता तबतक जगत्भ्रम दिखता है और वासना करके भटकता फिरता है। वासना की सृष्टि अपने २ चित्त में स्थित है। जब शरीर का त्याग करता है तब आकाश में उड़ता है और प्राणवायु उड़कर जो आकाश में शून्यरूप वायु है उससे जा मिलती है। वहां सबको अपनी २ वासना के अनुसार सृष्टि भासि आती है और अपनी सृष्टि लेकर इस प्रकार उड़ते हैं जैसे वायु गन्ध को ले जाती है सोही मुझको सूक्ष्मदृष्टि से उड़ते भासते हैं। हे रामजी! स्थूलदृष्टि से लिङ्गशरीर नहीं भासता; सूक्ष्मदृष्टि से दिखता है। जिस पुरुष को सूक्ष्मदृष्टि से लिङ्गशरीर देखने की शक्ति है और ज्ञान से रहित है वह भी मेरे मत में मूर्ख और पशु है। हे रामजी! जब मनुष्य वासना का त्याग करता है—अर्थात् इस अहंकार को कि, मैं हूं त्याग करता है तो आगे विश्व नहीं दिखाई देता केवल निर्विकल्प ब्रह्म भासता है और उसके प्राण नहीं उड़ते वहांहीं लीन हो जाते हैं क्योंकि; उसका चित्त अचित्त होजाता है। जबतक अहंकार का संयोग है तबतक विश्व भी चित्त में स्थित है। जैसे बीज में वृक्ष और तिलों में तेल स्थित होता है तैसेही उसके हृदय में विश्व स्थित है। जैसे मृत्तिका में बड़े छोटे बासन; लोहे में सुई और खड्ग और बीज में वृक्षभाव स्थित है चैतन्य अथवा जड़ हो तैसेही यह संकल्पकलना में भेद है, स्वरूप से कुछ नहीं और वैसेही यह जगत् भी है। हे रामजी! विश्व संकल्पमात्र है क्योंकि; दूसरी अवस्था में नाश होजाता है। यह जाग्रत् जो तुमको भासती है सो मिथ्या है। जब स्वप्न आता है तब जाग्रत् नहीं रहती और जब जाग्रत् आती है तब स्वप्न नष्ट होजाता है; जब मृत्यु आती है तब सृष्टि का अत्यन्त अभाव होजाता है और देश, काल, पदार्थ सहित वासना के अनुसार और सृष्टि भासती है। हे रामजी! यह विश्व ऐसा है जैसे स्वप्ननगर। जैसे संकल्पपुर होते हैं तैसेही ये सब संकल्प उड़ते फिरते

हैं । कई सृष्टि परस्पर मिलती हैं; कई नहीं मिलतीं परन्तु सब संकल्परूप हैं और भ्रम से और का और भासता है । जैसे कोई पुरुष बड़ा होता है और कोई छोटा भासता है तो छोटे को बड़ा भासता है और जैसे हाथी के निकट और पशु तुच्छ भासते हैं और चींटी के निकट और बड़े भासते हैं तैसेही जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको बड़े पदार्थ देश, काल संयुक्त विश्व तुच्छ भासता है और वह उन्हें असत्य जानता और जो अज्ञानी है उसको संकल्प सृष्टि बड़ी होकर भासती है । जैसे पहाड़ बड़ा भी होता है परन्तु जिसकी दृष्टि से दूर है उसको महालघु और तुच्छसा भासता है और चींटी के निकट तुच्छ मृत्तिका का ढेला भी पहाड़ के समान है तैसेही ज्ञानी की दृष्टिसे यह जगत् रहित है इससे बड़ा जगत् भी उसको तुच्छरूप भासता है और अज्ञानी को तुच्छरूप भी बड़ा भासता है । हे रामजी ! यह विश्व भ्रम से सिद्ध हुआ है । जैसे भ्रम से सीपी में रूपा और रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा के प्रमाद से यह विश्व भासता है पर आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे निद्रा दोष से जीव अपने अङ्ग भूल जाते हैं और जागे हुये सब अङ्ग भासते हैं तैसेही अविद्यारूपी निद्रा में सोया हुआ जब जागता है तब उसे सब विश्व अपना आप दिखाई देता है । जैसे स्वप्ने से जगा हुआ स्वप्ने के विश्व को अपना आपही देखता है तैसेही यह विश्व अपना आपही भासेगा । हे रामजी ! जब मनुष्य निद्रा में होता है तब उसे शुभ अशुभ विश्व में राग कुछ नहीं होता और जब जागता है तब इष्ट में राग और अनिष्ट में द्वेष होता है इसी प्रकार जबतक विश्व में हेयोपादेय बुद्धि है तबतक जो सर्वज्ञ भी हो तौ भी मूर्ख है । हे रामजी ! जब जड़ होजावे तब कल्याण हो । जड़ होना यही है कि, दृश्य से रहित आत्मा में स्थित हो वह आत्मा चिन्मात्र है । जबतक आत्मा से भिन्न जो कुछ सत्य अथवा असत्य जानता है तबतक स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती और जब संवित् फुरने से रहित हो तब स्वरूप का साक्षात्कार हो । इससे फुरने का त्याग करो । यह स्थावर जङ्गम जगत् जो तुमको भासता है सो सर्व ब्रह्मस्वरूपहै । जब तुम ऐसे निश्चय करोगे तब सर्व विवर्त्तका अभाव

हो जावेगा और आत्मपदही शेष रहेगा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जीव जो आपने कहा सो जीवका स्वरूप क्या है; वह आकार को कैसे ग्रहण करता है; उसका अधिष्ठान परमात्मा कैसे है और उसके रहने का स्थान कौनहै सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जीव शुद्ध परमात्मतत्त्व निर्विकल्प चिन्मात्र पद है; उसमें चैत्योन्मुखत्व हुआ कि, 'मैं हूं' ऐसे जो चित्कला ज्ञानरूप फुरी है और उसको चित् का सम्बन्ध हुआ है उसीका नाम जीव है। वह जीव न सूक्ष्म है; न स्थूल है; न शून्य है; न अशून्य है; न थोड़ाहै; न बहुत है; केवल शुद्ध आत्मत्वमात्र है। वह न अणुहै, न स्थूलहै; अनन्त चैतन्य आकाशरूपहै उसीको जीव कहते हैं। स्थूल से स्थूल वही है और सूक्ष्म से सूक्ष्म वही है। अनुभव चैतन्य सर्वगतरूप जीव है; उसमें वास्तव शब्द कोई नहीं और जो कोई शब्द है सो प्रतियोगी से मिलकर हुआ है। जीव अद्वैत है उसका प्रतियोगी कैसे हो। यही जीव का स्वरूप है। चैत्य के संयोग से जीव हुआ है और उसका अधिष्ठान चैतन्य आकाश, निर्विकल्प, चैत्यसे रहित, शुद्ध, चैतन्य परमात्मतत्त्व है; उसमें जो संवित् फुरी है उसीका नाम जीव है वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल और सर्वका बीज है। इसीका नाम विराट् कहते हैं और उसका शरीर मनोमय है। आदि परमात्मतत्त्व से फुरा है और और अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् प्रच्छिन्नता को नहीं प्राप्त हुआ—आपको सर्व आत्मा जानता है। इसका नाम विराट् है उसका प्रथम शरीर मनोमात्र और शुद्ध प्रकाशरूप राग-द्वेषरूपी मलसे रहित अनन्त आत्मा है और सर्व मन, कर्मों और देहों का बीज है; सब में व्याप रहा है और सब जीवों का अधिष्ठाता है। उसी के संकल्प से ये जीव रचे हैं और पञ्चज्ञान इन्द्रियों, अहंकार; मन और संकल्प इन आठों के आकार धारे है और आपही ग्रहण किये है। परमार्थरूपको त्याग फुरने से जो आकार उत्पन्न हुये हैं उनको ग्रहण करना इसीका नाम पुर्यष्टका है। फिर इन इन्द्रियों के छिद्र रचे और स्थूल रूप रचकर उनमें आत्मा प्रतीत किया। जैसे जीव शयनकाल में जाग्रत्

शरीर को त्यागकर स्वप्न शरीर का अङ्गीकार करता है, तैसेही शुद्ध, चिन्मात्र, निर्विकार, अद्वैतस्वरूप को त्यागकर उसने वासनामय शरीर का अङ्गीकार किया है पर वास्तवस्वरूप का कुछ त्याग नहीं किया और स्वरूप से नहीं गिरा शुद्ध निर्विकल्प भाव को त्यागकर विराट्भाव हुआ है । इसी प्रकार आगे उस पुरुष ने ज्ञान से चारों वेद रचे और नीति को निश्चय किया । नीति इसे कहते हैं कि; यह पदार्थ ऐसे हो और इतने कालतक रहे—निदान यह रचना रची और जो २ संकल्प करता गया सो २ देश, काल, पदार्थ, दिशा, ब्रह्माण्ड सब आगे हुये । ईश्वर, विराट्, आत्मा, परमेश्वर इत्यादिक जीव के नाम हैं पर जीव का वासनारूप स्वरूप कुछ झूंठ नहीं । वासना के शरीर ग्रहण करने से वासनारूप कहा है पर वास्तवरूप शुद्ध, निर्विकार और अद्वैत है और कदाचित् स्वरूप से अन्य अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ; सदा ज्ञानरूप, अद्वैत और परमशुद्ध है । उसको अपने चैतन्यस्वभाव से चैत्य का संयोग हुआ है इससे कहा है कि; उसका वपु वासनारूप है । उसी आदि जीव से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता, दैत्य, आकाश, मध्य, पाताल और त्रिलोकी उत्पन्न हुई हैं । जैसे दीपक से दीपक होता है और जल से जल होता है तैसेही सब विराट् स्वरूप है । महाआकाश उस विराट् का उदर है; समुद्र रुधिर है; नदियां नाड़ी हैं और दिशा वपु हैं । उसके उदर में कई ब्रह्माण्ड सुमेरु पर्वत सहित समाये रहते हैं पवन उसका मूंड़ है उश्वास पवन प्राणवायु हैं; पृथ्वी मांस है; सुमेरु आदिक पर्वत हाथ हैं; तारे रोमावली हैं; सहस्र शीश नेत्र हैं और अनन्त और अनादि है । चन्द्रमा उसका कफ है जिससे अमृत स्रवता है और भूत उपजते हैं और सूर्य पित्त है जो सर्व का उत्पन्नकर्ता है और सब मन; सब कर्मों और सब शरीरों का आदि बीज विराट् है । हे रामजी ! इस चित्त के सम्बन्ध से तुच्छ हुआ है पर वास्तव में परमात्मस्वरूप है । जैसे महाकाश घट के संयोग से घटाकाश होता है तैसेही विराट् परमात्मा ने फुरने से सृष्टि रची है और उसमें अहं प्रत्यय की है इससे तुच्छ हुआ है; सो इसको मिथ्या भ्रम हुआ है । जैसे स्वप्न में कोई अपना मरना देखता

है तैसेही आपको दृश्य देखता है। लघुता भी आत्मा की अपेक्षा से है; दृश्य में विराट् है और आत्मा में इसका अनुभव है। हे रामजी ! इसी प्रकार उसने उपजकर सृष्टि रची है। जैसे एक विराट् पुरुष ने आदि निश्चय किया है तैसेही अबतक है। यह आपही उपजा है और आपही लीन होजाता है। हे रामजी ! जिस प्रकार विराट् की आत्मा से उत्पत्ति हुई है तैसेही सब जीवों की है। यह सब विराट्रूप है परन्तु जो स्वरूप से उपजकर दृश्य से तद्रूपहुये हैं और जिनका वास्तवस्वरूप भूल गया है सो तुच्छरूप जीव हुये और जो स्वरूप से फुरकर स्वरूप से न गिरे और जिसे आगे अपनाही संकल्परूप विश्व देखकर प्रमाद न हुआ उसका नाम विराट् आत्मा है। हे रामजी ! जीव चैतन्य और निराकाररूप है इसको शरीर का संयोग कलना से हुआ है। जब आपको दृश्य संयुक्त देखता है तब महाआपदा को प्राप्त होता है और जब द्वैत से रहित निर्विकल्प होकर देखे तब शुद्ध चैतन्य आत्मपद को प्राप्त होता है। हे रामजी ! यह विराट् सबको उत्पन्न करता है। ऐसे कई विराट् आत्मपद से उदय हुये हैं; कई मिट गये हैं और कई आगे होंगे। जैसे समुद्र से कई तरङ्ग बुद्बुदे उठते हैं और लीन होते हैं तैसेही आत्मारूपी समुद्र से कई विराट् उठते हैं; कई लीन होते हैं और कई उपजेंगे। ऐसा परमात्मा सबका अधिष्ठान है और सबके भीतर बाहर पूर्ण ज्ञानस्वरूप है। ऐसा तेरा अपना आप अनुभवरूप है। हे रामजी ! इस संवेदन को त्यागकर देखो वही परमात्मस्वरूप है यह जो कुछ तुमको भासता है उसको विचारकर त्यागो। जब तुम इसका त्याग करोगे तब चिन्मात्र जो परमशुद्ध तुम्हारा स्वरूप है सो तुम को भासेगा—उसके आगे चैतन्यता ही आवरणरूप है। जैसे सूर्य के आगे बादलों का आवरण होता है और जबतक बादल होते हैं तबतक सूर्य का प्रकाश ज्योंका त्यों नहीं भासता पर जब बादल दूर होते तब प्रकाश स्वच्छ भासता है, तैसेही जब फुरना निवृत्त होवेगा तब शुद्ध आत्माही प्रकाशेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराडात्मवर्णनं नाम शताधिकैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४१ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह परमात्मा पुरुष फुरने से जीवसंज्ञा को प्राप्त हुआ है। फुरने में भी वही है पर अपने स्वरूपको नहीं जानता इसीसे दुःख पाता है। जैसे पवन चलता है तौभी वही रूप है और जब ठहरता है तौभी वही रूप है—दोनों में तुल्य है—तैसेही आत्मा सर्वदा एकरस है कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ। जीव प्रमाद से दृश्य को कल्पता है और दृश्यको आप जानता है इसीसे दुःख पाताहै पर जो इसको अपना स्वरूप स्मरण रहे तो दृश्य में भी अपना रूप भासे और जो निःसंकल्प हो तौभी विश्व अपना रूप भासे। विश्वभी इसी का रूप है परन्तु अविचार से भिन्न २ भासता है। जैसे स्वप्न का विश्व स्वप्नेवाले का रूपहै परन्तु निद्रादोष से नहीं जानता और जब जागताहै तब जानताहै कि; मैंही था; तैसेही यह प्रपञ्च सब तुम्हारा स्वरूपहै। तुम अपने स्वरूप में निरहंकार स्थितहोकर देखो तो कुछ नहीं बना। जो आत्मासे भिन्न तुम कुछ बनोगे तो प्रपञ्च विश्व भासेगा और जो आत्मस्वरूपमें स्थित हो तो अपना आप भासेगा और प्रपञ्च का अभाव होजावेगा। हे रामजी ! शून्याशून्य; जड़, चैतन्य; किंचन—निष्किंचन; सत्य—असत्य सब आत्मा ही पूर्ण है तो निषेध किसका करिये ? हे रामजी ! वह ऐसा अनुभव-रूप है जिससे सर्वपदार्थ सिद्ध होते हैं पर ऐसे आत्मा को मूर्ख नहीं जानते। जैसे जन्म का अन्धा मार्ग को नहीं जानता तैसे ही अज्ञानी महाअन्ध जागती ज्योति आत्मा को नहीं जानते और जैसे उलूकादिक सूर्य उदय हुये को नहीं जानते तैसेही वासना से घेरेहुये आपको नहीं जान सक्के। जैसे जाल में पक्षी फँसा होता है तैसेही जीव फँसे हुये हैं। इसीका नाम बन्धन है। जब वासना का वियोग हो तो इसीका नाम मुक्कि है। हे रामजी ! विषमता से जीव संज्ञा हुई है; जब सम हुआ तब ब्रह्म है सो ब्रह्म अहंकार को त्यागकर होता है जैसे खप्पर के संयोग से घटाकाश कहाता है और जब खप्पर टूट जाता है तब महाकाश होजाता है; तैसेही जब अहंकार नष्ट होता है तब आत्मस्वरूप है। हे रामजी ! अज्ञान से एकदेशी जीव हुआ है; जब प्रच्छिन्नता का वियोग हो तब

आत्मस्वरूपही है। हे रामजी! अपने वास्तव निर्गुण स्वरूप में गुणों का संयोग उपाधि से भासता है सो अनर्थरूप है। जब निर्गुण और सगुण की गांठ टूटे तब केवल अद्वैततत्त्व अपना आप भासेगा जो अनामय और दुःख से रहित है और सत् असत् से परे ज्ञानरूप और आदि-अन्त से रहितहै जिसके पायेसे फिर कुछ पाना नहीं रहता और जिसके जानने से और कुछ जानना नहीं रहता। ऐसा जो उत्तम पद है उसको आत्मतत्त्व से प्राप्त होगे। हे रामजी! यह जो ज्ञान तुमसे कहा है उसका आश्रय करके तुम ज्ञानवान् होना; ज्ञानबन्ध न होना। ज्ञानबन्ध से तो अज्ञानी भला है क्योंकि; अज्ञानीभी साधुओं के संग और सत्शास्त्रों के सुनने से ज्ञानवान् होता है पर ज्ञानबन्ध मुक्त नहीं होता। जैसे रोगी कहे कि, मुझ को कोई रोग नहीं है, मैं अरोग हूं; तो वह वैद्य की औषध भी नहीं खाता क्योंकि; वह आपको अरोग जानता है तैसेही जो ज्ञानबन्ध है उससे सन्तों का संग और सत्शास्त्रों का श्रवण भी नहीं होता इससे वह अन्धतम को प्राप्त होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ज्ञान और ज्ञानबन्ध का लक्षण क्या है और ज्ञानबन्ध का फल क्या है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष ने आत्मा के विशेषण शास्त्रों से श्रवण किये हैं कि; आत्मा नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप और तीनों शरीरों से भिन्न है और ऐसे सुनकर आपको मानता है पर विषयों के भोगने की सदा तृष्णा करता है कि किसी प्रकार इन्द्रियों के विषय मेरे लिये प्राप्त हों ऐसा पुरुष ज्ञानबन्ध है। वह बोधशिल्पी है जो कर्मफल के विचार से रहित है अर्थात् भला बुरा विचार नहीं करता और उसमें बिचरता है और जो मुख से शुभ अशुभ निरूपण करता है वह शास्त्रशिल्पी है और फल के अर्थ कर्म करता है। कोई ऐसा है कि, शास्त्रोक्त आपको उत्तम मानता है; शास्त्रों के अर्थ बहुत प्रकार भी कहता है, पढ़ता और पढ़ाता भी है पर विषयों से बन्धायमान है और सदा विषयों की चिन्तना करता है—ऐसा पुरुष ज्ञानबन्ध है और इसी निमित्त अर्थशिल्पी भी कहाता है अर्थात् चितेरा करने को समर्थ है और धारने को समर्थ नहीं। हे रामजी! एक प्रवृत्तिमार्ग है और

एक निवृत्तिमार्ग है। प्रवृत्ति संसारमार्ग है और निवृत्ति आत्मज्ञानमार्ग है। जिस पुरुष ने निवृत्तिमार्ग धारण किया है पर प्रवृत्तिमार्ग में अर्थात् बहिर्मुख विषय की ओर बर्तता है; इन्द्रियों के विषयों की वाञ्छा करता और विषयों से उपराम नहीं होता एवम् उनसे तुष्टिमान् होकर स्वरूप का अभ्यास नहीं करता वह ज्ञानबन्ध कहाताहै। हे रामजी ! जो पुरुष श्रुतिउक्त शुभकर्म फल की हृदय में कामना धारता है वह पुरुष ज्ञान के निकटवर्ती है तौ भी ज्ञानबन्ध है। जिसको आत्मा में प्रीति भी है पर विषय को चिन्तता है और आपको उत्तम मानता है वह ज्ञानबन्ध कहाता है और जो आत्मतत्त्व का यथार्थ निरूपण करताहै और स्थित नहीं वह ज्ञान आभासहै और ज्ञान का फल उसको साक्षात्कार नहीं। जिस पुरुष ने सिद्धि और ऐश्वर्य पाया है और उससे आपको बड़ा जानता है पर आत्मज्ञान से रहितहै वह ज्ञानबन्ध कहाताहै। हे रामजी ! निदिध्यास से ज्ञान की प्राप्ति होती है और उससे शान्ति का प्रकाश होताहै जबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती तबतक आपको बड़ा ज्ञान न माने। हे रामजी ! ज्ञान से बड़ा होता है; जबतक ज्ञान नहीं उपजा तबतक आत्मपरायण हो; अभ्यास और यत्न करो; शुभ व्यवहार से प्राणों की रक्षाके निमित्त उपजीविका उत्पन्न करो और ब्रह्मजिज्ञासा के अर्थ प्राणों की धारणा करो। ब्रह्मजिज्ञासा इस निमित्त है कि, दुःखरूप संसार समुद्र से मुक्त हो; फिर संसारी न हो और आत्मपरायण हो। जब आत्मपरायण होंगे तब सब दुःख मिटजावेंगे। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मपदके प्राप्त हुये सब दुःख नष्ट होजाते हैं। उस पद के प्राप्त होने का उपाय यह है कि, सत्शास्त्रोंसे जो विशेषण सुनेहो उनको समझकर बारम्बार अभ्यास करना; दृश्य के उपरान्त होना और उनको मिथ्या जानकर वैराग्य करना। इसी से आत्मपदकी प्राप्ति होती है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानबन्धयोगोनामशताधिकद्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ १४२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिज्ञासी होकर ज्ञाननिष्ठ होना और जो कुछ गुरुशास्त्रों से आत्मविशेषण सुने हैं उनमें अहंप्रत्यय करके स्थित

होना इसीका नाम ज्ञाननिष्ठा है। इस ज्ञाननिष्ठा से परम उच्चपद को प्राप्त होताहै जो सबका अधिष्ठानपदहै। जब उस पद में स्थित हुआ तब कर्मों के फल का ज्ञान नहीं रहता क्योंकि; शुभकर्मों में फलका राग नहीं रहता और अशुभ कर्मों के फल में द्वेष नहीं रहता। ऐसा पुरुष ज्ञानी कहाता है और वह शीतल चित्त रहता है; अकृत्रिम शान्ति को प्राप्त होता है; किसी विषय के सम्बन्ध से नहीं फँसता और उसकी वासना की गांठ टूट जाती है। हे रामजी! बोध वही है जिसको पाये से फिर जन्म न हो और जो जन्म मरण से रहित हो उसीको ज्ञानी कहते हैं। जब संसार से विमुख हो और संसार की सत्यता न भासे तब जानिये कि, फिर जन्म न पावेगा क्योंकि; उसकी संसार की वासना नष्ट होगई है हे रामजी! जिससे ज्ञानी की वासना नष्ट होती है वह भी सुनो। वह इस संसार का कारण नहीं देखता। जो पदार्थ कारण से उत्पन्न नहीं हुआ वह सत्य नहीं होता; इससे संसार मिथ्या है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है तो उसका कारण कोई नहीं भ्रम से सिद्ध हुआ है, तैसेही यह विश्व कारण विना दृष्टि आता है इससे मिथ्या है। जो मिथ्या है तो उसकी वासना कैसे हो? हे रामजी! जो प्रवाहपतित कार्य प्राप्त हो उसमें ज्ञानी बिचरता है और संकल्प से रहित होकर अपना अभिमान कुछ नहीं करता कि, इस प्रकार हो और इस प्रकार न हो। वह हृदय से आकाश की नाईं संसार से न्यारा रहता है और फुरने से शून्य है। ऐसा पुरुष पण्डित कहाता है। हे रामजी! यह जीव परमात्मरूप है। जब अचेतन अर्थात् संसार के फुरने से रहित हो तब आत्मपद को प्राप्त हो। जैसे आंब का वृक्ष फल से रहित है तौ भी उसका नाम आंब है परंतु निष्फल है तैसेही यह जीव आत्मस्वरूप है परन्तु चित्त के सम्बन्ध से इसका नाम जीव है। जब चित्त को त्यागकरे तब आत्मा हो। जैसे आंब के पेड़ में फल लगने से शोभता है और सफल कहाता है तैसेही जब जीव आत्मपद को प्राप्त होता है तब महाशोभा से विराजता है। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष कर्म के फल की स्तुति नहीं करता अर्थात् इन्द्रियों के इष्ट विषय की वाञ्छा नहीं करता।

जैसे जिस पुरुष ने अमृत पान किया हो वह मद्यपान करने की इच्छा नहीं करता तैसेही जिसको आत्मसुख प्राप्त होता है वह विषयों के सुख की इच्छा नहीं करता। जो किसी पदार्थ को पाकर सुख मानते हैं वे मूढ़ हैं। जैसे कोई पुरुष कहे कि; बन्ध्या के पुत्र के कांधे पर आरूढ़ होकर नदी के पार उतरते हैं तो वह पुरुष महामूढ़ है क्योंकि; जो बन्ध्या के पुत्र हैही नहीं तो उसके कांधे पर कैसे आरूढ़ होगा; तैसे ही जो कोई कहे कि, मैं संसार के किसी पदार्थ को लेकर मुक्त हूंगा तो वह महामूढ़ है। हे रामजी! ऐसा पुरुष ज्ञान से शून्य है उसकी इन्द्रियां स्थिर नहीं होतीं और वह शास्त्रों के अर्थ प्रकट भी करता है परमात्मा के ज्ञान से रहित है उसको इन्द्रियां बल से विषयों में गिरा देती हैं जैसे चील पक्षी आकाश में उड़ता २ मांस को देख कर पृथ्वी पर गिर पड़ता है तैसे ही अज्ञानी विषय को देखकर गिर पड़ता है। इससे इन इन्द्रियों को मन संयुक्त वश करो और युक्ति से तत्परायण और अंतर्मुख होरहो। यह जो संवेदन फुरती है उसका त्याग करो। जब फुरना निवृत्त होगा तब परमात्माका साक्षात्कार होगा और जब परमात्माका साक्षात्कार होगा तब रूप अवलोक और मनस्कार, जो त्रिपुटी है उसके सब अर्थ की भावना जाती रहेगी; केवल आत्मतत्त्वही प्रत्यक्ष भासेगा और संसारका अत्यन्त अभाव होजावेगा। हे रामजी! संसारका आद्य परमात्मतत्त्वहै और अन्तभी वही है। जैसे स्वर्ण गलाइये तौभी स्वर्ण है और जो न गलाइये तौभी स्वर्ण है; तैसेही जब सृष्टिका अभाव होताहै तौभी आत्माही शेष रहताहै; जब उपजी न थी तब भी आत्माही था और मध्यभी वही है परन्तु सम्यक्दर्शी को भासता है और असम्यक्दर्शीको आत्मसत्ता नहीं भासती। हे रामजी! विश्व आत्माका परिणाम नहीं, चमत्कारहै। जैसे सुवर्ण गलताहै तो उसकी रेणीसंज्ञा होतीहै अथवा शलाका कहाताहै। यद्यपि उसमें भूषण नहीं हुये तौभी उसका चमत्कार ऐसाही होता है कि, उससे भूषण उपजकर लीन होजाताहै और जैसे सूर्यकी किरणें जलाभासहो भासती हैं, तैसेही विश्व आत्माका चमत्कारहै और बना कुछ नहीं आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है और

उसका चमत्कार विश्व होकर स्थित हुआहै। हे रामजी ! जब तुमने ऐसे जाना कि केवल आत्मसत्ताहै तब वासना क्षय होजावेगी और चेष्टा स्वाभाविक होगी। जैसे वृक्षके पत्र पवन से हिलते हैं तैसेही शरीर की चेष्टा प्रारब्धवेगसे होगी। हे रामजी ! देखनेमात्र तुम्हारे में क्रिया होगी और हृदयमें शून्य भासेगा। जैसे यन्त्रीकी पुतली संवेदन विना तागेसे चेष्टा करती है तैसेही शरीरकी चेष्टा प्रारब्धसे स्वाभाविक होवेगी और तुमको अभिमान न होगा। जैसे कोई पुरुष दूधके निमित्त अहीरके पास बासन लेजाय और उसको दूध दुहने में कुछ विलम्ब हो तो कहे कि, बासन यहां रक्खा है मैं गृह से कोई कार्य शीघ्रही कर आऊं तो यद्यपि वह गृह का कार्य करने लगता है पर उसका मन दूधकी ओरही रहताहै कि, शीघ्रही जाऊं, ऐसा न हो कि; वह दुहता हो, तैसेही तुम्हारी क्रिया प्रारब्धवेगसे होगी पर मन आत्मतत्त्व में रहेगा और अहंकार से रहित होगे। जबतक अहंकार फुरता है तबतक प्रच्छिन्न अर्थात् तुच्छ जीव है और उसको शरीर मात्र का ज्ञान होता है और अन्तःकरण में जो प्रतिबिम्ब जीव है उसको नखशिख पर्यन्त शरीर का ज्ञान होता है। इसी में आत्मअभिमान होता है और ज्ञान नहीं होता इससे जीवहै और विराट् जो आगे तुमसे कहाहै सो ईश्वर है; सर्वशरीर और अन्तःकरणका ज्ञाताहै; सर्वलिङ्गशरीरका अभिमानी है और सब को अपना आप जानताहै। हे रामजी ! यद्यपि विश्व रूपहै तौभी अहंकारसे तुच्छसा हुआ है। जैसे मेघसे भिन्न हुआ एक बादर कहाता है और घटसे घटाकाश कहाता है पर वह बादलभी मेघहै और घटाकाशभी महाकाशहै तैसेही अहं फुरने से प्रच्छिन्न हुआ है सो फुरना दृश्यमें हुआहै और दृश्य फुरनेमें हुई है। जैसे फूलों में गन्ध और तिलों में तेल है तैसेही फुरने में दृश्य है। हे रामजी ! आत्मा में बुद्धि आदिक फुरनाहै कि; 'मैंहूं' जब ऐसे फुरताहै तब आगे दृश्य होती है और जब अहंकार होताहै तब आगे देह इन्द्रियादिक विश्व रचताहै; इससे फुरने में दृश्य हुई और फुरना दृश्यमें हुआ। देह, इन्द्रियां, मन आदिक जो दृश्यहैं उसमें अहंप्रत्यय से फुरना हुआ है इसी कारण से इसकी जीवसंज्ञा हुई है; जब

फुरना नष्ट होजावे तब आत्माका साक्षात्कार हो। यह जन्म, मरण, आना, जाना आदिक विकारसंयुक्त प्रपञ्च भासता है तौ भी मिथ्या है क्योंकि; विचार किये से कुछ नहीं रहता। जैसे केले के थंभे में कुछ सार नहीं तैसेही विचार कियेसे प्रपञ्च नहीं रहता और जैसे स्वप्ने में जन्म, मरण, आना, जाना देखता है परन्तु मिथ्या है तैसेही जाग्रत् क्रिया भी सर्वमिथ्या हैं हे रामजी! जो पारावारदर्शी है वह इतनी अवस्थाओं में निर्विकल्प है और जन्मता भी है परन्तु नहीं जन्मता और सर्वक्रिया करता भी है परन्तु नहीं करता—वह सबको स्वप्नवत् समझता है और स्वरूप से कदाचित् कुछ नहीं हुआ। हे रामजी! ज्ञानी जाग्रत् में भी ऐसेही देखता है। जब यह आत्मपद में जागता है तब सर्वविकार का अभाव होजाता है और कोई विकार नहीं भासता हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियों के विषय की चिन्तना करता रहताहै सो बन्धहै क्योंकि; अभिलाषही दुःखदायक है। यद्यपि वह राजा हो पर उसके हृदयमें अभिलाषहै इससे उसे दरिद्री जानो और जिस पुरुषका छादन, भोजन, शयन, कष्टसे देखते हो कि; भोजन तो भिक्षा से होताहै अथवा किसी और यत्न से होता है और छादन भी निर्गुणसा पहिरता है और शयन करने का स्थान भी जैसा तैसा हो पर ज्ञानसे सम्पन्नहै तो उसको चक्रवर्ती जानो—यथा॥

दो०—सात गांठ कोपीन की, साधु न मानै शङ्क।
राम अमल माता फिरै, गिनै इन्द्र को रङ्क॥ ७॥

हे रामजी! उसको चक्रवर्ती से भी अधिक जानो। यद्यपि वह आरम्भ क्रिया करता भी दृष्ट आताहै पर संकल्पसे रहितहै तो कुछ नहीं करता; उसका करना, न करना दोनों तुल्य हैं क्योंकि; वह निरभिमानहै और शुभकर्मों के करने से स्वर्ग नहीं भोगता और अशुभकर्म से नरक नहीं भोगता—उसको दोनों एक समान हैं। हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानी की चेष्टा समानहै परन्तु अज्ञानी अहंकार सहित करताहै इससे दुःख पाता है। इससे तुम अहंकार का त्याग करो और अपना स्वरूप जो चैत्यसे रहित चैतन्य है उसमें स्थित होरहो कि, सब संशय मिटजावें। जितने जीव

तुमको भासते हैं सो सब संवित् अर्थात् ज्ञानरूप हैं परन्तु बहिर्मुख जो फुरते हैं उससे भ्रमको प्राप्त हुये हैं और जब अन्तर्मुखहो तब केवल शान्तरूपहो जहां गुणों और तत्त्वोंका क्षोभ नहीं। वह शान्तपद कहाताहै। हे रामजी! जैसे विराट्का मन चन्द्रमाहै तैसेही सब जीवों का है अर्थात् सब विराट्-रूप हैं परन्तु प्रमादसे वास्तव स्वरूप नहीं भासता। हे रामजी! जैसे गुलाब की सुगन्ध संपूर्ण वृक्षमें व्यापकहै परन्तु फूलही में भासती है तैसेही चैतन्य सत्ता सब शरीर में व्यापक है परन्तु हृदय में भासती है जो त्रिकोण-रूप निर्मल चक्र है वहां हीं अहंब्रह्म का उत्थान होता है; वहां से वृत्ति फैलकर पञ्चइन्द्रियों के छिद्र से निकलकर विषयको ग्रहण करती है और उन इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति में राग द्वेष मानताहै। इससे, हे रामजी! इतना कष्ट प्रमादसे है; जब बोध होताहै तब संसारभ्रम मिट जाताहै। हे रामजी! वासनारूप जो संसारहै उसका बीज अहंभावहै और वह प्रत्यक्ष संसारमें फुरताहै। जब इसकी अचिन्तना हो और स्वरूप में अहंप्रत्यय हो तब संसारभ्रम मिटजावे। अहंभाव के शान्तहुये ज्ञानवान् यन्त्रीकी पुतली-वत् चेष्टा करता है। हे रामजी! जो पदार्थ सत्यहै उसका कदाचित् अभाव नहीं होता और जो असत्य है वह सत्य नहीं होता और यद्यपि होनेकी भावना कीजिये तौभी नहीं होता। जैसे अग्निको जानकर स्पर्श कीजिये तौभी जलाती है और अजान स्पर्श करिये तौभी जलाती है क्योंकि; सत्य है और जैसे जल की भावना से मृग मरुस्थल में धावता है परन्तु जल नहीं पाता क्योंकि; असत्य है; तैसेही हे रामजी! अहंकार जो फुरताहै सो असत्य है; भ्रमसे सिद्धहै और विचारसे नष्ट होजावेगा हे रामजी! यह अहंकाररूपी कलङ्क उठा है। यदि निरहंकार होकर देखो तो मुक्तरूप हो और यदि अहंकार संयुक्त हो तो बन्ध है। इससे निरहंकार होकर परमनिर्वाण को प्राप्त होरहो यही हमारा सिद्धान्त है और परमभूमिका भी यही है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभताहै तैसेही तुम ब्राह्मी लक्ष्मीसे शोभा पावोगे। हे रामजी! ज्ञानवान् का चित्त सत्पद को प्राप्त होताहै इससे अहंकार नहीं रहता और उसके चित्त की चेष्टा फलदायक नहीं होती। जैसे भूना बीज

नहीं उगता तैसेही उसको जन्मफल नहीं होता और अज्ञानी का चित्त जन्म मरण का कारण होताहै। जैसे कच्चा बीज उगताहै तैसेही अज्ञानी की चेष्टा जन्म फल देती है। हे रामजी! जितने पदार्थ हैं उन सबसे निराश होरहो कि, हृदय में किसी की अभिलाषा न फुरे और न किसी का सद्भाव फुरे और पाषाणकी नाईं तुम्हारा हृदयहो। हे रामजी! जिसका हृदय कोमल स्नेहसंयुक्त है वह अज्ञानी है और जिसका हृदय पाषाणसमान और स्नेहसे रहित है वह ज्ञानी है; इससे निर्मम और निरहंकाररूप होकर स्थित होरहो। ये भोग मिथ्या हैं–इनकी इच्छा में सुख नहीं। हे रामजी! जब संसार से उपरान्त और अन्तर्मुख आत्मपरायण होगे तब अहंकार निवृत्त हो जावेगा और आत्माही भासेगा। जैसे वसन्तऋतु आताहै तो वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं और पुरातन पत्र त्यागकर नूतन होआते हैं तैसेही जब तुम अन्तर्मुख होगे तब अहंकार निवृत्त होजावेगा, विभुता को प्राप्त होगे; अहंप्रत्यय जाती रहेगी और परमनिर्वाण पद पावोगे। इससे एक अहंकार संवेदन का त्याग करो और कोई यत्न न करो। तुमको यही हमारा उपदेश है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुखेन योगोपदेशो नाम शताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो वासनारूपी संसार है उससे तुम मङ्कीऋषि के सदृश तरजाओ। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मङ्कीऋषि किसप्रकार तरे हैं सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मङ्कीऋषि का वृत्तान्त सुनो, उसने महातीक्ष्ण तप कियेथे। एक समय मैं आकाश में अपने गृह में था और तुम्हारे पितामह राजा अज ने मेरा आवाहन किया तब मैं राजा अज के निमित्त आकाश से उतरा तो मार्ग में एक वन देखा जिसमें अनेक वनके समूह थे जो भयानक और शून्य थे। वहां न कोई मनुष्य दृष्टि आताथा और न कोई पशु केवल महाशून्य वन था–मानो एकान्त ब्रह्मस्थानहै–और कई योजनपर्यन्त मरुस्थलही दृष्टि आता था। मध्याह्न का समय था और अतितीक्ष्ण धूप पड़ती थी, ऊरुपर्यन्त तपी हुई रेत में मैंने प्रवेश किया और कई वृक्ष वहां दग्ध हुये

दृष्टि आये। हे रामजी! उस शून्यस्थलमें एक अतिदुःखित विदेशी मुझ भ्राता को दृष्टि आया और उसने यह वाक्य मुख से निकाला कि, हाय हाय! मैंने महाकष्ट पाया है। जैसे किसीको दुष्टजन दुःख देते हैं और दया नहीं करते तैसेही मुझको धूप और मंज़िलने जलायाहै और मैं अतिदुःख को प्राप्त हुआ हूं। हे रामजी! ऐसे वचन कहता हुआ वह मेरे साथ चलाजाता था। जब कुछ मार्ग आगे गया तो एक धीवरका गांव दृष्टि पड़ा जहां पांच अथवा सात गृह थे; उसको देखकर वह शीघ्र चलने लगा कि, वहां मुझको शान्ति होगी और मैं जल पान करके छाया के नीचे बैठूंगा। हे रामजी! उसको देखकर मुझे दया उपजी तो मैंने कहा कि, हे मार्ग के मीत! तू कहां जाता है? जिनको सुखदायी जानकर तू धावता है सो तो दुःखदायक हैं जैसे मरुस्थल को नदी जानकर मृग जलपान के निमित्त धावता है कि, शान्ति पाऊं सो अतिदुःख पाता है तैसेही जिस स्थानको तू सुखरूप जानता है सो दुःखरूपहै। हे अङ्ग! ये जो इस गांव के वासी हैं उनका संग कदापि न करना। इनका संग दुःखरूपहै जो पुरुष विचारपूर्वक चेष्टा करता है उसको दुःख नहीं होता और जो विचारे विना चेष्टा करताहै सो दुःख पाता है। ये जो नगरवासी हैं वे आप जलते हैं तो तुझको सुख कैसे देंगे। जैसे कोई पुरुष अग्निकुण्ड में जलता हो और उससे कहिये कि, तू मेरी तपन शान्तकर तो कहनेवाला मूढ़ होताहै क्योंकि, वह तो आपही जलता है और की तपन कैसे शान्त करेगा; तैसे ही वे तो आप इन्द्रियों के विषयकी तृष्णारूपी अग्निमें जलते हैं तुझको कैसे शान्त करेंगे? हे मार्ग के मीत! पृथ्वी के छिद्रमें सर्प होना; मरुस्थल का मृग होना और पाषाणकी शिलामें कीट होकर रहना अङ्गीकार कीजिये; परंतु अज्ञानीका सङ्ग न कीजिये, जिनको इन्द्रियोंके सुखकी तृष्णा रहती है। इन्द्रियों के सुख कैसे हैं कि, आपातरमणीय हैं अर्थात् यह कि, जबतक इन्द्रियोंका विषयके साथ संयोगहै तबतक सुखहै और जब वियोग होताहै तब दुःख होताहै। विषयीजनोंकी प्रीतिभी विषवत्है और विचारवती बुद्धिरूपी कमलिनी के नाश करनेवाली बरफ़ है। इनकी संगति में वचनरूपी

पवन से राख उड़ती है और पास बैठनेवाले को अन्धकार में डालती है। इससे इन ग्रामवासी अज्ञानियों का संग न करना। ये अज्ञानी विचारवती बुद्धिरूपी सूर्य के आवरण करनेवाले बादल हैं। जैसे बेलि पर अग्नि डालिये तो जलाती है तैसेही वैराग्य को ग्रहण करनेवाली बुद्धि के नाश करनेवाली इनकी संगति है–इससे इनका संग न करना। हे साधो! संग उसका कर जिसके संग से तेरा ताप मिटे। इनके संगसे शान्ति न पावेगा। हे रामजी! इस प्रकार जब मैंने कहा तब वह मेरे निकट आकर बोला; हे भगवन्! तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारे वचन सुनकर मैं शान्ति को प्राप्त हुआ हूं। तुम शून्य ऐसे दृष्टि आते हो; पर सर्वगुणों से पूर्ण हो और तुम्हारा दिव्यप्रकाश मुझको भासता है। तुम आदि पुरुष विराट् हो और तुम सुन्दर दृष्टि आते हो। हे भगवन्! जो सुन्दर होताहै उसको देखकर राग उपजताहै और चित्त क्षोभको भी प्राप्त होताहै। तुम ऐसे सुन्दरहो कि; तुम्हारे दर्शन से मुझको शान्ति आती जाती है। तुम दिव्य तेजको धारेहुये दृष्टि आते हो और ऐसे तेजवान् हो कि, देखने नहीं देते–अर्थ यह है कि, तुम्हारे समान किसी की सुन्दरता नहीं और तुम्हारा तेज हृदय में शान्ति उपजाता है और शीतल प्रकाश है। हे भगवन्! तुम धर्म से उन्मत्तवत् दृष्टि आते हो सो तुम कैसी शान्ति को लेकर एकान्त में स्थित हो? अपने स्वरूप प्रकाशको तुम दया करते दृष्टि आतेहो और पृथ्वी पर स्थित भी दृष्टि आते हो परन्तु त्रिलोकी के ऊपर विराजमान भासते हो। एकही दृष्टि आतेहो परन्तु सर्वात्मा हो और किंचित्–अकिंचित् और सर्वभावपदार्थों से शून्य दृष्टि आते हो पर सर्व पदार्थ तुम्हारी सत्तासे प्रकाशते हैं। तुम सर्वपदार्थों के अधिष्ठान हो और तुम्हारे नेत्रों के खोलने से उत्पत्ति होती है और मूंदने से लय होजाती है; इससे ईश्वर हो। तुम सकलङ्क दृष्टि आते हो परन्तु निष्कलङ्क हो अर्थात् तुम्हारे में फुरना दृष्टि आता है परन्तु हृदय से शून्य हो। तुम किसी अमृतको पान करके आये हो और बड़े ऐश्वर्य से सम्पन्न दृष्टि आते हो। इससे, हे भगवन्! तुम कौन हो? यदि मुझसे पूछो कि, तू कौन है तो

मैं माण्डव्य ऋषि के कुल में हूं और मेरा नाम मङ्की है। मैं ब्राह्मण हूं और तीर्थयात्राके निमित्त निकला था। मैं सर्वदिशाओं में भ्रमा और अतिभयानक स्थानों में जो तीर्थ हैं वहां भी गया परन्तु मुझको शान्ति न हुई। ऐसी शान्ति कहीं न पाई कि, इन्द्रियों की जलन से रहित हो रहूं-अब मैं अपने गृहको चला हूं। हे भगवन्! अब गृह से भी मेरा चित्त विरक्त हुआ है कि; यह संसार ही मिथ्या है तो गृह किसका है? संसार में सुख कहीं नहीं। यह प्राण ऐसे हैं जैसा दामिनी का चमत्कार होता है और तैसेही यह संसार भी नष्ट होता दृष्टि आता है। शरीर उपजते भी हैं और मिट भी जाते हैं-दृष्टिमात्र हैं। जैसे रात्रि आती है और फिर नहीं जान पड़ती कि, कहां गई। हे भगवन्! इस संसार को असार जान कर मैं उदासीन हुआ हूं क्योंकि; अनेक जन्म पाये हैं सो नष्ट होगये हैं और इसी प्रकार भ्रमता फिरता हूं। अब तुम्हारी शरणागत हूं और जानता हूं कि, तुमसे मेरा कल्याण होगा। तुम कल्याणरूप दृष्टि आते हो इससे कृपा करके कहो कि, कौन हो? हे रामजी! इतना सुन मैंने कहा; हे मङ्कीऋषि! मैं वशिष्ठ ब्राह्मण हूं और मेरा गृह आकाश में है। मुझको राजा अज ने स्मरण किया है इसलिये मैं इस मार्ग से जाता हूं। अब तुम संशय मत करो ज्ञानमार्ग को पावोगे। हे रामजी! जब मैंने ऐसे कहा तब वह मेरे चरणों पर गिरपड़ा और उसके नेत्रों से जल चलने लगा; और महाआनन्द को प्राप्त हुआ। तब मैंने कहा कि हे ऋषे! तू संशय मतकर। मैं तुझको अकृत्रिम शान्ति को प्राप्त करके जाऊंगा। जो कुछ तू पूछा चाहता है सो पूछ; मैं तुझको उपदेश करूंगा और मैं जानता हूं कि; तू कल्याणकृतहै इसलिये जो कुछ मैं कहूंगा सो तू धारेगा। तू कुछ प्रश्न कर क्योंकि; तेरे कषाय परिपक्क हुये हैं। और तू मेरे वचनों का अधिकारी है तुझको मैं उपदेश करूंगा। अब तू संसार के तटको प्राप्त हुआ है और अब तुझको निकालने का विलम्ब है अर्थात् तू वैराग्य से पूर्ण है और संसार का तट वैराग्यही है; इससे संशय मतकर।

इति श्रीयोग० निर्वाणप्रकरणे शताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥१४४॥

मङ्की बोले; हे भगवन्! अब मैं जानता हूं कि, मेरा कार्य सिद्ध हुआ है। मुझको अज्ञान से मोह था उसके नाश करनेको तुम समर्थ दृष्टि आते हो और मेरे हृदय के तम नाश करने को तुम सूर्य उदय हुये हो। हे भगवन्! यह संसार असार है पर लोगों की बुद्धि विषयों की ओर ही धावती है जहां दुःखही होते हैं। जैसे जल नीचे स्थान को चलाजाता है तैसेही हमारी बुद्धि नीचे स्थानों में धावती है और वही चाहती है। हे भगवन्! जितने भोग हैं उनको मैंने भोगा है परन्तु शान्ति न पाई बल्कि, उलटी तृष्णा बढ़ती गई। जैसे तृषा लगे और खारा जलपान करिये तो तृषा नहीं मिटती बल्कि बढ़तीही जाती है; तैसे ही विषयों के भोगने से शान्ति नहीं प्राप्त होती—तृष्णा बढ़ती जाती है। हे मुनिराय! देह जर्जरीभाव होजाती है दाँत गिर पड़ते हैं और अतिक्षोभ होता है तौ भी तृष्णा नहीं मिटती; इससे अब मैं दुःख चाहता हूं, सुख कोई नहीं चाहता क्योंकि; संसार के जितने सुख हैं उनका परिणाम दुःख है। जो प्रथम दुःख हैं उनका परिणाम सुख है इसी से दुःख चाहता हूं और संसार के सुख नहीं चाहता। हे भगवन्! अपनी वासना ही दुःखदायकहै। जैसे कुसवारी गुफा बनाकर उसमें आपही फँस मरती है तैसे ही अपनी वासना से जीव आपही बन्धायमान होता है। हे मुने! वह कौन काल था जब अज्ञानरूपी हाथी ने मुझको वश किया था और उसका नाश करनेवाला ज्ञानरूपी सिंह कब प्रकट होगा? कर्मरूपी तृणों का नाशकर्ता विवेकरूपी वसन्त कब प्रकटेगा और वासनारूपी अन्धेरी रात्रिका नाशकर्ता ज्ञानरूपी सूर्य कब उदय होगा? हे भगवन्! वैताल तबतक भासता है जबतक निशा है और जब सूर्य उदय होता है तब निशा जाती रहती है और वैताल नहीं भासता तैसेही अहंकाररूपी वैताल तबतक है जबतक अज्ञानरूपी रात्रि दूर नहीं हुई। हे भगवन्! जब सन्तजनों के उपदेश से आत्मज्ञानरूपी सूर्य प्रकट होता है तब अहंकाररूपी वैताल वहां नहीं बिचरता। सन्तजनों का संग और सत्शास्त्रों का देखना चांदनी रात्रिवत् है; उनसे जब स्वरूप का साक्षात्कार हो तब दिन हुआ जानिये और जब

तक सन्तजनों का संग न करे और सत्शास्त्रों को न देखे तबतक अंधेरी रात्रि है। हे भगवन्! जो सत्शास्त्रों को भी सुने और फिर विषयों की ओर भी गिरे उसे बड़ा अभागी जानिये सो मैं हूं; परन्तु अब मैं तुम्हारी शरण आया हूं मेरे हृदयरूपी आकाश में जो अज्ञानरूपी कुहिरा है सो तुम्हारे वचनरूपी शरत्काल से नष्ट हो जावेगा और हृदयाकाश निर्मल होगा। हे भगवन्! मैंने त्रिदण्ड साधे हैं अर्थात् मन, शरीर और वाणी से तीन तप दीर्घ कालपर्यन्त किये हैं परन्तु आत्मप्रकाश नहीं हुआ। अब मैं तुम्हारी शरणागत होके तरूंगा इसलिये कृपा करके उपदेश करो कि, मेरे हृदय का तम दूर हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मङ्किवैराग्ययोगो नाम शताधिकपञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४५॥

वशिष्ठजी ने कहा; हे तात! संवेदन, भावना, वासना और कलना ये चारों अनर्थ के कारण हैं। जब इनका अभाव हो तब कल्याण हो। शुद्ध-चिन्मात्रपद प्रत्यक्ष चैतन्य अपने आप में स्थित है। जो अहंकार का उत्थान है सोही संवेदन है। भावना यह है कि; पहले आप कुछ बना फिर चेता और अपना आप चित्त स्मरण हुआ तब भ्रम मिटजाता है और जो कुछ बना उसकी भावना होती है कि, मैं यह हूं तो इससे संसार दृढ़ होता है फिर तैसेही वासना दृढ़ होती है और अपने शरीर के अनुसार नानाप्रकार की कलना होती हैं और फिर संसार के संकल्प विकल्प उठते हैं। हे ब्राह्मण! ये चारों अनर्थ के कारण हैं। जब इनका अभाव हो तब कल्याण हो। जितने कुछ शब्द अर्थ हैं उनका अधिष्ठान प्रत्येक चैतन्य है; सर्व शब्द उसी के आश्रित हैं और सर्व वही है जब तू ऐसे जानेगा तब वासना क्षय होजावेगी। जब अहंसंवेदन फुरती है तब आगे संसार भासता है। जैसे जब वसन्त ऋतु आती है तब बेलें प्रफुल्लित होती हैं तैसेही जब संवेदन फुरती है तब आगे संसार सिद्ध होता है और जब संसार हुआ तब नाना प्रकार की वासना फुरती हैं और संसार नहीं मिटता। हे अङ्ग! संसार इसी का नाम है कि, संसरता है। जब संसरता मिटे तब आत्मपद ही शेष रहेगा

सो तेरा अपना आप है इससे इस फुरने को त्यागकर अपने आप में स्थित होरह–सब तेराही रूप है। जबतक वासना फुरती है तबतक संसार दृढ़ रहता है। जैसे वृक्ष को जल दीजिये तो बढ़ता जाता है तैसेही वासनारूपी जल देनेसे संसाररूपी वृक्ष वृद्ध होजाताहै। इससे वासनाका नाश करो कि यह संवेदन न फुरे। जब जलसे रहित होता है तब आपही जलजाता है। हे पुत्र! आत्मा में जगत् कुछ हुआ नहीं केवल परमार्थसत्ता है। जैसे रस्सी में सर्प कुछ वस्तु नहीं रस्सी के अज्ञानसे ही भासता है तैसे ही आत्मा के अज्ञान से संसार भासता है। जब तू आत्मपद को जानेगा तब परमार्थ-सत्ताही भासेगी। जैसे बालक अपनी परछाहीं में भूत कल्प कर भय पाता है और जब विचारकर देखता है तब भूत कोई नहीं सब भय दूर होजाता है; तैसेही आत्मा के अज्ञान से संसार के राग द्वेष जलाते हैं। ज्ञानवान् को वासनासंयुक्त संसार का अभाव होजाता है और केवल अद्वैत आत्म-सत्ता ही भासती है जैसे स्वप्न से जागकर स्वप्न के प्रपञ्च का वासना संयुक्त अभाव होजाता है; तैसेही जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब वासना संयुक्त संसार का अभाव होजाता है क्योंकि; है नहीं। जैसे घटादिक में मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं तैसेही सर्व प्रपञ्च चिन्मात्रस्वरूप है कुछ भिन्न नहीं। जितने शब्द अर्थ हैं सर्व आत्माही हैं। हे मित्र! जो कुछ आत्मा से इतर भासता है उसको भ्रममात्र जानो। जैसे आकाश में नीलता भासती है सो भ्रममात्रहै तैसेही विश्व असम्यक्दृष्टि से भासताहै और सम्यक्दृष्टि से सर्व प्रपञ्च आत्मस्वरूप हैं और दृष्टि, दर्शन, दृश्य–त्रिपुटी भी बोध-स्वरूप है। बोधही त्रिपुटीरूप होकर स्थित होता है। जैसे स्वप्न में एकही अनुभव त्रिपुटीरूप हो भासता है तैसेही यह जाग्रत् की त्रिपुटी भी आत्म-स्वरूप है। हे अङ्ग! जितने स्थावर–जंगम पदार्थ हैं सो सर्व आत्मस्वरूप हैं–जो परमात्मस्वरूप न हों तो भासें नहीं। द्रष्टारूप जो अनुभव करता है सो एक अद्वैतरूप है–उसी स्वरूप के प्रमाद से भिन्न २ त्रिपुटी भासती है तो भी कुछ भिन्न नहीं। जैसे स्वप्न में त्रिपुटी अपने अनुभव से भासती है; जो अनुभव न हो तो क्योंकर भासे? तैसेही यह त्रिपुटी भी अनुभव आत्मा

से भासती है। इससे सर्व परमात्मस्वरूप है कुछ भिन्न नहीं और जो भिन्न नहीं तो है नहीं क्योंकि; सबकी एकता परमार्थस्वरूप में होती है। हे ऋषीश्वर! सजातीय वस्तु मिलजाती है। जैसे जल में जल की बुन्द डालिये तो मिलजाती है क्योंकि; एक रूप है; तैसेही बोध से सर्व पदार्थों की एकता भासती है क्योंकि; द्वैतसत्ता नहीं है। जैसे स्पन्द और निस्पन्द दोनों पवनही हैं और जल और तरङ्ग अभेदरूप है तैसेही विश्व परमार्थस्वरूप है। इससे ऐसे निश्चय करो कि, सर्वब्रह्मस्वरूप है अथवा आपको उठादो कि, मैं नहीं—जब तू न होगा तब विश्व कहांसे होगा। हे मङ्कीऋषि! प्रथम जो अहं होताहै तो पीछे ममत्व भी होताहै; इसलिये जो अहं ही न रहेगा तो ममत्व कहां रहेगा? इस अहंका होनाही बन्धनहै और इसके अभाव का नाम मुक्तिहै। हे मित्र! इस युक्ति में क्या यत्नहै? यह तो अपने आधीन है कि मैं नहीं। जब अहंकार को निवृत्त किया तब शेष वही रहेगा जो सर्व का परमार्थरूपहै और उसीको ब्रह्म कहते हैं। हे मुनीश्वर! जब अहंकार फुरता है तब नानाप्रकार की वासना होती हैं और उन वासना के अनुसार अनेक जन्म पाताहै जो वर्णन नहीं किये जाते। जैसे पवनसे तृण भटकते फिरते हैं तैसेही वासना करके जीव भटकते फिरते हैं। जब पर्वत से कंकड़ गिरता है तब चोटें खाता नीचे को चला जाता है तैसेही स्वरूप के प्रमाद से जीव जन्म जन्मान्तर पाते चले जाते हैं और वासनानुसार घटीयन्त्र की नाईं कभी ऊर्ध्व और कभी अध को जाते हैं। जैसे हाथ से ताड़ना किया गेंद कभी ऊर्ध्व और कभी अधको जाता है। हे अङ्ग! इस संसार का बीज वासना है। जब वासना निवृत्त हो तब सबकी एकता हो जाती है और जबतक संसार की वासना दृढ़ है तबतक एकता नहीं होती। जैसे दूध और जल मिलता है तो उनका संयोग होजाता है तैसेही आत्मा और विश्व का संयोग नहीं—आत्मा केवल अद्वैत और सबका अपना आप है। जैसे मृत्तिकाही घटादिकरूप हो भासती है तैसे ही आत्मसत्ता ही जगत्‌रूप हो भासती है—इससे आत्मासे भिन्न कुछ वस्तु नहीं। हे साधो! आत्मा और दृश्य का काष्ठ और लाखवत् अथवा घट और आकाशवत्

कुछ संयोग नहीं क्योंकि; आत्मा अद्वैत है और सर्वदृश्य बोधमात्र है। हे साधो! जो जड़ है सो चैतन्य नहीं होता और चैतन्य जड़ नहीं होता इससे न कोई जड़ है, न चैतन्य है; चैतन्य आत्मा ही भावना से जड़ दृश्य हो भासता है और उसके बोध से एक अद्वैतरूप होजाता है तो जानता है कि; सर्व वही है भिन्न कुछ नहीं। हे मित्र! अज्ञान से नाना प्रकार का विश्व भासता है। जैसे मेघ की वर्षा से नाना प्रकार के बीज प्रफुल्लित हो आते हैं तैसेही अहंरूपी बीज से संसाररूपी वृक्ष वासनामुख से प्रफुल्लित होताहै। जब अहंकाररूपी बीज नष्ट हो तब संसाररूपी वृक्ष भी नष्ट होजावेगा। हे अङ्ग! जैसे वानर चपलता करता है तैसेही आत्मतत्त्व से विमुख अहंकाररूपी वानर वासना से चपलता करताहै। जैसे गेंद हाथ के प्रहारसे अध और ऊर्ध्व को उछलता है तैसेही जीव वासना के प्रहारसे जन्मान्तरों में भटकता फिरताहै और कभी स्वर्ग, कभी पाताल और कभी भूलोक में आता है स्थिर कदाचित् नहीं होता। इससे वासना को त्याग कर आत्मपद में स्थित हो रहो। हे तात! यह संसार रात्रिकी मंज़िल है देखते २ नष्ट होजाती है इसको देखकर इसमें प्रीति करनी और सत्य जानना ही अनर्थ है। इससे संसार को त्याग करके आत्मपद में स्थित हो रहो। चित्त की वृत्ति जो संसरती है इसीका नाम संसार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मङ्किऋषिप्रबोधो नाम शताधिकषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४६॥

वशिष्ठजी बोले, हे तात! यह संसार का मार्ग गहन है और इसमें जीव भटकते हैं। यह चैतन्यवृत्ति जो संसरती है यही संसार है। जब यह संसरना मिटे तब स्वच्छ अपना आपही स्वरूप भासे। चेतनावृत्ति जो बहिर्मुख फुरती है इसीका नाम बन्धन है; और कोई बन्धन नहीं। हे साधो! यह जगत् वासना से बांधा है। जैसे वसन्त ऋतु से रस फैलता है तैसेही वासना से जगत् फैलता है। बड़ा आश्चर्य है कि; मिथ्या वासना से जीव भटकते फिरते हैं; दुःख भोगते हैं और बारम्बार जन्म मृत्यु पाते हैं। बड़ा आश्चर्य है कि, विषमरूप वासना से वश हुये जीव अविद्यमान

जगत् को भ्रम से सत्य जानते हैं। हे साधो! जो इस वासनारूप संसार से तरगये हैं वे धन्य हैं और वे प्रत्यक्ष चन्द्रमा की नाईं हैं। जैसे चन्द्रमा अमृतरूप, शीतल और प्रकाशवान् है और सबको प्रसन्न करता है; तैसेही ज्ञानी पुरुष है। इससे तू धन्य है जिसको आत्मपद की इच्छा हुई है। हे अङ्ग! यह संसार तृष्णा से जलता है। जिनकी चेष्टा तृष्णासंयुक्त है उनको तू बिल्ला जान। जैसे बिल्ला तृष्णा से चूहे को ग्रहण करता है तैसे ही वे भी अपनी तृष्णासंयुक्त चेष्टा करते हैं। इस मनुष्य शरीर में यही विशेषताहै कि, किसी प्रकार आत्मपद को प्राप्त हो। जो नर देह पाकर भी आत्मपद पानेकी इच्छा न करे तो वह पशुसमान है। हे मित्र! मूढ़ जीव ऐसी चेष्टा करते हैं कि; प्राणों के अन्तपर्यन्त भी तृष्णा करते रहते हैं। हे अङ्ग! ब्रह्मलोक से काष्ठपर्यन्त जितने इन्द्रियों के विषय हैं उनके भोगने से शान्ति नहीं होती क्योंकि, आपातरमणीय हैं—इनमें सुख कदाचित् नहीं—जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनकी शान्ति ऐसी है जैसे चन्द्रमा में, और वे सूर्य की नाईं प्रकाशते हैं विषयों की तृष्णा कदाचित् नहीं करते। जैसे कोई पुरुष अमृत पान करके तृप्त हुआ हो तो वह खली खाने की इच्छा नहीं करता, तैसेही जिस पुरुष को आनन्द प्राप्त होता है वह विषयों के भोगने की इच्छा नहीं करता। इससे इसी वासना का त्याग करो। वासना का बीज अहंकार है उसको निवृत्त करो कि, 'मैं नहीं' क्योंकि; मेरा होनाही अनर्थ है। हे साधो! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकारपद में जो कुछ तू आपको प्रसन्न जानता है कि, 'मैं ब्राह्मण हूं' अथवा किसी प्रकृति से मिलकर आपको मानता है कि, 'मैं यह हूं' यही अनर्थ है। हे ऋषे! तेरे नेत्रों के खोलने से संसार उत्पन्न होता है और नेत्रों के मूंदने से नष्ट होजाता है; सो नेत्र अहंकार का फुरना है; इसी से आगे विश्व सिद्ध होता है। इससे तेरा होना ही अनर्थ है। हे अङ्ग! जैसे रस्सी में सर्प भ्रममात्र उदय होता है तैसेही आत्मा में अहंकार उदय हुआ है। इसी के अभाव से भय शान्त होती है। जब अहंकार होता है तब आगे स्त्री, कुटुम्ब और धन होते हैं सो ही बन्धन हैं। इनके चमत्कार ऐसे हैं जैसे दामिनी का

चमत्कार क्षण में उदय होकर नष्ट होजाता है; इससे इनमें बन्धवान् न होना चाहिये। हे अङ्ग! जब तू कुछ बना तब सब आपदा तुझे प्राप्त होंगी और यदि तू अपना अभाव जानेगा तो पीछे आत्मपद ही शेष रहेगा जो परमशान्तरूप है और जिसकी अपेक्षा से चन्द्रमा भी अग्निवत् जान पड़ताहै। वह परमशून्य और सर्व पदार्थों की सत्ता और आकाशरूप है। हे मित्र! मेरे इन वचनों को धारणकर कि, तेरा मोह नष्ट होजाय। यह विश्व कुछ हुआ नहीं। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है पर है नहीं तैसेही विश्व नहीं आत्मा के प्रमाद से भासता है। हे ऋषे! तू उसी को जान जिसके अज्ञान से विश्व भासता है और जिसके ज्ञान से लय होजाता है। हे मङ्की! जैसे आकाश शून्यमात्र है; पवन स्पन्दमात्र है और जल तरङ्गमात्र है तैसेही जगत् संवित्मात्र है उस संवित् आकाश से जो भिन्न भासता है उसे भ्रममात्र जानो। जैसे असम्यक्‌दृष्टि से जल पहाड़रूप भासता तैसेही असम्यक्‌दृष्टि से जगत् भासता है और सम्यक् अवलोकन से परमार्थसत्ता ही भासती है। जिसके अज्ञान से विश्व भासता है उसको भी ज्ञानवान् ब्रह्मशब्द कहते हैं उस ब्रह्मपद के अहंकार ही व्यवधानहैं सो ज्ञानवान् का नष्ट भयाहै इससे वह सर्व का अधिष्ठान एक परमार्थस्वरूप देखता है उसी में तू भी एकत्र होरह जैसे आकाश अनेक घट के संयोग से भिन्न२ भासता है और घट को फोड़िये तो सर्व एकही होजाता है तैसेही अहंकाररूपी घट फोड़िये तो सर्व पदार्थ एकत्र होजाते हैं। हे अङ्ग! सर्व की परमार्थसत्ता एक ब्रह्मपद है जो अजन्मा, अच्युत, आनन्द, शान्तरूप, निर्विकल्प, अद्वैत, सर्व का अधिष्ठान है; उस शिलावत् आत्मसत्ता से भिन्न कुछ न फुरे; इससे निर्बोध बोध होजावो। हे मङ्कीऋषि! ये जो पदार्थ दुःख के देनेवाले हैं और ऐसे जो शब्द अर्थ हैं सो आकाश के फूल हैं; इससे शोक मतकर क्योंकि; सर्व परमार्थसत्ता ही है। जैसे पुरुष निराकार है पर उसकी भावना से अङ्ग का संयोग होता है तैसे ही विश्व भी इसकी भावना से होता है और जैसी२ संसार की भावना दृढ़ होती है तैसाही रूप आगे दृष्टि आता है। जो विश्व उपादान

से नहीं हुआ तो आरम्भ परिणाम से भी कुछ नहीं बना। हे मित्र! शुद्ध परमात्मा का पाना साधन है, विश्व उपादान है सो शब्द है। आत्मा अद्वैत है सो इनका हेतु है और अचिन्त्य है इसीसे विश्व निरुपादान स्वप्नवत् है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि निरुपादान होती है तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी है। जैसे मृत्तिका से घटकार्य बनता है आत्मा विश्व का उपादान ऐसे भी नहीं क्योंकि, मृत्तिका परिणाम से घटाकार होती है और आत्मा अच्युत है। जैसे भीत विना चित्र हो सो है ही नहीं—इससे यह विश्व आकाश में चित्र है। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार का विश्व आधार भीत विना चित्र होता है तैसेही यह विश्व भी आकाश में चित्र हुआ है। इसीसे आत्मा अकर्ता है और विश्व जो दृष्टि आता है सो निरुपादान है इसका शोक और हर्ष क्या करें? यह प्रपञ्च सर्व आत्मरूप है प्रमाद से नहीं जाना जाता। हे साधो! संवेदन से जो अहंकार फुरता है तब विश्व भासताहै। जैसे स्वप्ने में जो कुछ बनता है सो अपने स्वरूप से भिन्न देखता है और उसी में रागद्वेष भासते हैं पर जागे हुये और कुछ नहीं सब कल्पनाही का अनुभव था, तैसेही जब संवेदन उठगई तब सब विश्व अपना आप होजाता है। यह अहंकार होना ही विश्व है; जब अहंकार नष्ट हो तब सर्व शब्द अर्थ कि, मैं दुःखी हूं; मैं सुखी हूं; यह नरक है; यह स्वर्ग है इत्यादिक परमार्थसत्ताही में फुरते हैं। सर्व का अधिष्ठान आत्मा है इससे सर्व आत्मस्वरूप है जो दृश्यसे रहित द्रष्टा है, ज्ञेयसे रहित ज्ञाता है और निर्बोध बोध है; इच्छासे रहित इच्छा है; अद्वैत है और नानात्व भी वही है; निराकार है और आकार भी वही है; अकिञ्चन और किञ्चन भी वही है और अक्रिय है और सर्वक्रिया भी वही करता है। ऐसे आत्मज्ञान को पाकर आत्मवेत्ता बिचरते हैं और जगत् का भान उनको किंचित् भी नहीं होता। जैसे सुवर्ण के भूषण जल के तरङ्ग होते हैं तैसेही सब विश्व उसको आत्मस्वरूप भासता है। ऐसे जानकर वे सर्व चेष्टा करते हैं। जैसे यन्त्री की पुतली में संवेदन नहीं फुरती तैसेही उनको जगत् में सत्यता नहीं फुरती क्योंकि; वे निरहंकार हुये हैं। हे मंकीऋषि! जैसे सुवर्ण में भूषण

घन आये हैं तैसेही आत्मामें विश्व फुर आया है सो अहंकार फुरा है; इससे इसके अभाव की भावना करो और निरहंकार होकर चेष्टा करो। जैसे पालने में बालक के अङ्ग स्वाभाविक हिलते हैं तैसेही ज्ञानी की निर्वेदन चेष्टा होती है। हे ऋषे! जब तू इस मेरे उपदेश को धारेगा तब सुखसेही आत्मपद की प्राप्ति होगी और यह विश्व भी आत्मस्वरूप ही भासेगा। जो कुछ विश्व भासताहै सो सब आत्मरूप ही है। हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार कहा तब मङ्कीऋषि परमनिर्वाण पद को प्राप्त हुआ और परम-समाधि में एक वर्ष स्थित रहा शिलावत् कुछ न फुरा। हे रामजी! जैसे मङ्कीऋषि स्वरूप को प्राप्त हुआ है तैसेही तुम भी स्थित हो रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मङ्किऋषिनिर्वाणप्राप्तिर्नाम शताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ १४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व आत्मा का चमत्कार है और सर्व वही चिन्मात्रस्वरूप है। हे रामजी! मेरा आशीर्वाद है कि, तुम चिन्मात्रस्वरूप को प्राप्त हो रहो और जो तुम्हारा अपना शाप है उसको अपना आप जानो कि, तुम्हारे दुःख नष्ट होजावें। हे रामजी! तुम निर्वाण शान्त आत्मा होरहो; यथालाभ में सन्तुष्ट रहो, सत्य हुये भी असत्य की नाईं स्थित होरहो और रागद्वेष का रङ्ग तुमको स्पर्श न करे। हे रामजी! यह सब जगत् एकही स्थित है और वास्तव में एक में कुछ स्थित नहीं— आदि अन्त से रहित एक चिदाकाश अपने आप में स्थित है और शरीरा-दिकके नाश में भी अखण्डरूपहै उसीका यह जगत् चमत्कार है जो उपज उपज कर लय होजाताहै। हे रामजी! ध्याता, ध्यान, ध्येय, त्रिपुटी भ्रान्ति-मात्र सिद्ध है और वास्तव में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य सर्व आत्मस्वरूप है; उससे भिन्न कुछ नहीं और सदा एक रस है कदाचित् क्षोभ को नहीं प्राप्त होता। यद्यपि यह दशा हो कि; अमावस का चन्द्रमा दृष्टि आवे और प्रलयकाल विना प्रलयकाल की वायु चले तौभी आत्मा को क्षोभ नहीं होता—आत्म-पद सदा ज्यों का त्यों है। हे रामजी! ऐसे आत्मा के प्रमाद से जीव दुःख पाते हैं। जब आत्मा का प्रमाद होताहै तब देह और इन्द्रियां अपने आप

में प्रत्यक्ष भासती हैं पर जैसे बालू से तेल नहीं निकलता; आकाश में वन नहीं होता और चन्द्रमा के मण्डल में ताप नहीं होता तैसेही आत्मा में देह इन्द्रियां कदाचित् नहीं। हे रामजी! ये सर्वजीव आत्मरूप हैं, इससे इनको देह इन्द्रियों का सम्बन्ध कुछ नहीं; परन्तु इनको जो क्रियामें अभिमान होताहै इसीसे बन्धवान् होते हैं। हे रामजी! जैसे नाव पर बैठेहुये पुरुष को भ्रान्ति से नदीतट के वृक्ष चलते भासते हैं तैसेही मन के भ्रम से आत्मा में चित्त और देह इन्द्रियां भासती हैं। वास्तव में चित्त, देह और इन्द्रियां कुछ भिन्न वस्तु नहीं ये भी आत्मस्वरूपही हैं तो निषेध किसका कीजिये? हे रामजी! मन और इन्द्रियादिक को अपनी सत्ता कुछ नहीं भ्रान्ति से भासती हैं। जैसे पर्वतपर उज्ज्वल मेघ होताहै और उसमें वस्त्रबुद्धि निष्फल होती है तैसेही देहादिक हैं; इनमें अहंबुद्धि निष्फल है। इससे हे रामजी! एक अखण्ड आत्मतत्त्व है और द्वैत कुछ नहीं जब तुम ऐसे धारो तो निरञ्जन स्वरूप हो। हे रामजी! ये सर्वशरीर चित्त के फुरने से स्थित हैं जैसे चित्त के फुरने से शरीर है तैसेही जीव में चित्तहै और परमात्मा में जीव है। हे रामजी! इस प्रकार फुरनेमात्र दृश्य हुई तो द्वैत तो कुछ न हुआ? इस प्रकार विचारपूर्वक दृश्यभ्रम को त्यागकर स्वरूपमें स्थित हो रहो। हे रामजी! ऐसे धारणकर सुखसे विचरो और जो कुछ चेष्टा नीतिसे प्राप्तहो उसको करो परन्तु अपना अभिमान न हो। जब अपना अहंभाव दूर होगा तब स्पन्द हो अथवा निस्स्पन्द हो, समाधि में स्थित हो अथवा राज्य करो तुमको दोनों तुल्य होजावेंगे। जब अपनी अभिलाषा दूर होती है तब जैसी चेष्टा प्राप्त हो तैसाही हो वह फुरना भी अफुर है और एक अद्वैत की सत्ताही भान होगी। जैसे सम्यक्दर्शी को तरङ्ग और सोम जल एक भासता है तैसेही तुमको भी एकही भासेगा। चाहे जीवन्मुक्त होरहो अथवा विदेहमुक्त हो; समाधि हो अथवा राज्य हो तुमको दोनों तुल्य हैं। हे रघुकुल आकाश के चन्द्रमा रामचन्द्रजी! जीव को अपनी अभिलाषाही बन्धन करती है। जब अभिलाषा मिटती है तब कर्म करो अथवा न करो कुछ बन्धन नहीं क्योंकि; करने में भी आत्मा को अक्रिय देखता

है और न करने में भी वैसेही देखता है और उसकी द्वैतभावना निवृत्त होजाती है इससे उसको चित्त, देह इन्द्रियादिक सर्वपदार्थ आत्मरूप ही भासते हैं । हे रामजी ! मैं जानता हूं कि, तुम्हारे हृदय का मोह निवृत्त हुआ है अब तुम जागे हो । यदि कुछ तुमको संशय रहा हो तो फिर प्रश्न करो कि, मैं उत्तर दूं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुखेनयोगोपदेशो नाम शताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ १४८ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! एक संशय मुझको और है उसको भी आप निवृत्त कीजिये । कोई कहते हैं कि, वीर्य से अंकुर होताहै और कोई कहते हैं कि, अंकुर से वीर्य होता है; कोई कहते हैं कि, जो कुछ कर्ता है सो दैवही कर्ता है और कोई कहते हैं कि, कर्म करते हैं तब जन्म पाते हैं और कर्मही से सब कुछ होताहै किसीके अधीन नहीं, कोई कहते हैं कि, जब देह होती है तब कर्म करते हैं और कोई कहते हैं कि, कर्मों से देह होती है; बाजे कहते हैं कि, देह से कर्म होते हैं और कोई पुरुषप्रयत्न मानते हैं सो यह जैसे है तैसे तुम कहो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक २ मैं तुमको क्या कहूं; कर्म से दैव और घट से आकाश पर्यन्त जितने क्रिया, कर्म और द्रव्य हैं, ये सब विकल्पजाल भ्रान्तिमात्र हैं केवल आत्मस्वरूप अपने आपमें स्थित है—द्वैत कुछ नहीं हुआ । हे रामजी ! जब संवेदन फुरतीहै तब सब कुछ भासता है और निःसंवेदन हुये कुछ नहीं । जैसे शीत, श्वेत आदिक बरफ़ के पर्याय हैं तैसेही कर्म, पुरुषप्रयत्न आदि सब आत्मा के पर्याय हैं । दैव पुरुष है और पुरुष दैव है; कर्म देह है और देह कर्म है; वीर्य अंकुर है और अंकुर वीर्य है; दैव कर्म है और कर्म दैवहै और वही पुरुषप्रयत्न है; जो इनमें भेद मानते हैं वे पण्डितों में पशु हैं क्योंकि; उनका वीर्य अहंकारहै—जब अहंकार हुआ तब सब कुछ सिद्धहुआ । जैसे वीर्यसे वृक्ष,फल,फूल औरडालहोतेहैं पर जो वीर्यही न हो तो वृक्ष कैसेउपजे । हे रामजी ! इनका वीर्य संवेदन है । अहंकार, संकल्प और संवेदन तीनों पर्याय हैं । जब फुरना हुआ तब कर्म, देह, दैव सर्व सिद्ध होते हैं और जब

फुरना मिटगया तब कुछ नहीं भासता। इसी को ज्ञान अग्नि से जलाओ कि, फूल, फल, टहनी सब जल जावें। यह जो संवेदन फुरती है कि, 'मैं हूं' यही संसार का वीर्य है; इसे ज्ञानरूपी अग्नि से जलाओ। जब अहंकार नष्ट होगा तब द्वैत कुछ न भासेगा। हे रामजी! यह जो प्रपञ्च भासता है उसका वीर्य संवेदन है और संवेदन का वर्यि शुद्ध संवित्तत्त्व है पर उसका वीर्य और कोई नहीं। हे रामजी! आदि जो स्पन्द संवेदन फुरना हुआ है उसीका नाम दैव है क्योंकि; वह कर्म से आदिही फुरता है; फिर जो आगे क्रिया करती है सो कर्म है और इसीका नाम पुरुषप्रयत्न है। वह जो कर्मसे आदिदैवरूप फुराहै सो क्या रूपहै? इसीका जो प्रकृत कर्म हुआ है उसी का नाम दैव कहते हैं। इन सबका वीर्य संवेदन है हे रामजी! वह स्वतःपुरुष चिन्मात्रपद एकही था; जब उससे विकार संयुक्त उत्थान हुआ तब प्रपञ्च भासने लगा और फिर जब उत्थान का अभाव हो तब प्रपञ्च का भी अभाव होजावे। हे रामजी! जब जीव कुछ बनता है तब सर्व आपदा उसको प्राप्त होती हैं। जैसे सुई वस्त्र में प्रवेश करती है तो उसके पीछे तागा भी चलाजाता है और जो सुई प्रवेश न करे तो तागा कहां से जावे; तैसेही जब अहंकार प्रवेश करता है तब सब आपदा भी आती हैं और जब अहंकार निवृत्त हो तब सब विश्व आनन्दरूप और अपना आप भासता है। इससे अहंकार का अभाव करो क्योंकि; विश्व भ्रान्ति से सिद्धहै, आगे कुछहुआ नहीं; सर्व आत्मस्वरूपहै। हे रामजी! विश्व वासनामात्र है; जब वासना नष्ट हो तब परमकल्याण है! जिस प्रकार वासना क्षय हो वही युक्ति श्रेष्ठ है। जब युक्ति से वासना क्षय होगी तब चेष्टा भी होगी परन्तु फिर जन्म न देगी। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य दृष्टि आती है परन्तु ज्ञानी का संकल्प दग्धवीर्यवत् है-फिर जन्म नहीं देता और अज्ञानी का संकल्प कच्चे वीर्यवत् है-फिर जन्म देता है पर वास्तव में देखिये तो न कोई जन्म ही पाता है और न कोई मृतक होता है केवल अपने आप भाव में स्थित है और भ्रान्ति करके भिन्न २ भासते हैं। स्वरूप से सब अपनाही आप

है-द्वैत कुछ नहीं हुआ और जो भासता है सो मिथ्या है। जैसे केलेके थम्भ में सार कुछ नहीं होता तैसेही सर्वप्रपञ्च मिथ्या है इसमें सार कुछ नहीं-इससे इसकी वासना त्यागकर अपने आपमें स्थित हो। हे रामजी! जिस प्रकार तुम्हारी वासना निर्मूल हो उसी यत्न से निर्मूल करो तब परम शिवपद ही शेष रहेगा। हे रामजी! पुरुषप्रयत्न से जब निरहंकार होगे तब वासना आपही क्षय हो जावेगी। वासनाक्षयका उपाय अपने पुरुषप्रयत्न के सिवा और कोई नहीं। इससे हे रामजी! पुरुषार्थ करके इसी एकदेव के परायण हो रहो, कर्म, दैव आदिक वही पुरुष होकर भासता है और कुछ हुआ नहीं-जैसे एकही पुरुष देवन का स्वांग धारे। हे रामजी! इस प्रकार विचारपूर्वक सब ईक्षणा को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निराशयोगोपदेशो नाम शताधिकनवचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ १४९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानवान् की बुद्धि निर्मल होजाती है। उसके हृदय में शीतलता होती है और उसकी बुद्धि चैतन्य से पूर्ण होती है और दूसरा भान उठ जाता है। इससे तुम भी नित अन्तर्मुख और वीतराग निर्वासी होरहो और चिन्मात्र, निर्मल और शान्तरूप सर्वब्रह्म की भावना करो। उस ब्रह्मपद को पाकर नीति के अनुसार अज्ञानी के समान चेष्टा करो; जो हर्ष का स्थान हो उसमें हर्ष करो और शोकके स्थान में शोक करो पर हृदय में आकाश की नाईं रहो। हे रामजी! जब इष्ट की प्राप्ति हो तो उससे स्पर्श करो परन्तु हृदय में तृष्णा न करो; जब युद्ध प्राप्त हो तब शूरमा होकर युद्ध करो; जो दीन हो उसपर दया करो; जो राज्य प्राप्त हो तो उसको भोगो और जो कोई कष्ट प्राप्त हो तो उसको भी भोगो ये सब चेष्टा अज्ञानी की नाईं करो पर हृदय में समता रक्खो; आत्मा से भिन्न कुछ न फुरने दो और रागद्वेष से रहित सदा निर्मल होरहो। जब तुम ऐसे निश्चय को धारोगे तब तुमको कुछ खेद न होगा। यद्यपि बड़ा दुःख और इन्द्र का वज्र पड़े तो भी तुमको स्पर्श न करेगा। हे रामजी! तुम्हारा रूप न शस्त्र से कटता है न अग्नि से जलता है; न जल से गलता

है और न पवन से सूखता है—केवल निराकार, अजर अमर और सबका अपना आप है। हे रामजी! कष्ट तब होता है जब विलक्षण वस्तु होती है और अग्नि तब जलती है जब काष्ठ आदिक भिन्न वस्तु होती हैं; अग्नि को अग्नि तो नहीं जलाती और जलको जल तो नहीं गलाता? इससे तुम अपने आपमें स्थित होरहो। हे रामजी! संवित्रूप आलयवत् स्थिर स्थान है उसीमें स्थित होरहो—जैसे पक्षी सर्व ओर से संकल्प को त्यागकर आलय में स्थित होता है तब सुख पाता है तैसेही जब तुम सर्वकलना को त्यागकर अन्तर्मुख संवित् में स्थित होगे तब राग द्वेषरूपी धुंध कोई न रहेगा। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र का बड़ा प्रवाह है, आश्रय विना उससे नहीं निकल सक्ता; सो आश्रय मैं तुमसे कहता हूं कि; अनुभवरूप आत्मा को आश्रय करके संसारसमुद्र के पार होरहो; विलम्ब न करो और अपने आपमें स्थित होरहो। हे रामजी! यदि कोई संसाररूपी वृक्ष का अन्त लिया चाहे तो नहीं लेसक्ता। संसाररूपी एक वृक्ष है उसमें चैतन्य-मात्र सुगन्ध है सो तेरा अपना आप है उसको ग्रहण कर। जो सर्व का अधिष्ठान है जब उसको ग्रहण किया तब सबको ग्रहण किया। हे रामजी! जो कुछ प्रपञ्च तुमको भासता है सो सब आत्मरूप है—उसीकी भावना करो जाग्रत् में सुषुप्त होरहो और सुषुप्ति में जाग्रत होरहो। संसार की सत्ता जो जाग्रत् है उसकी ओर से सुषुप्त होरहो अर्थात् फुरने से रहित होकर तुरीयापद में स्थित होरहो जहां गुण का क्षोभ कोई नहीं और निर्मल शान्तिरूप है और जहां एक और दो की कलना कोई नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसे जो शान्तिरूप तुरीयापद में स्थित होना तुमने कहा सो तुम्हारे में यह नहीं फुरता कि, मैं वशिष्ठ हूं; उसका रूप क्या है कि, अहंप्रतीति तुमको नहीं होती है? इतना कह बाल्मीकिजी बोले; हे भर-द्वाज! जब इस प्रकार रामजी ने प्रश्न किया तब वशिष्ठजी चुप होगये और सब सभा संशय के समुद्र में मग्न हुई। तब रामजी बोले, हे भगवन्! चुप होना तुम्हारा अयोग्य है। तुम साक्षात् विश्वगुरु और ब्रह्मवेत्ता हो। ऐसी कौन बात है जो तुमको न आवे? क्या मुझको समर्थ नहीं देखते?

जब ऐसे रामजी ने कहा तब वशिष्ठजी एक घड़ी के उपरान्त बोले, हे रामजी! असामर्थ्य से मैं चुप नहीं हुआ परन्तु जैसा तेरे प्रश्न का उत्तर है वही दिखाया कि; तेरे प्रश्नका चुपही उत्तर है। जो प्रश्न करनेवाला अज्ञान हो तो उसको अज्ञान लेकर उत्तर देते हैं और जो ज्ञानवान् हो उसको ज्ञान से उत्तर देते हैं। आगे तुम अज्ञानी थे तब मैं सविकल्प उत्तर देता था और अब तुम ज्ञानवान् हो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तूष्णींही है। हे रामजी! जो कुछ कहनाहै सो प्रतियोगी से मिलाहुआ है; प्रतियोगी विना शब्द मैं कैसे कहूं? आगे तुम सविकल्प शब्द के अधिकारी थे और अब तुमको निर्विकल्प का उपदेश कियाहै। हे रामजी! शब्द चार प्रकार के हैं-एक सूक्ष्म अर्थ का; दूसरा परमार्थ का; तीसरा अल्प और चौथा दीर्घ। तीनि कलङ्क इनमें रहते हैं-एक संशय; दूसरा प्रतियोग और तीसरा भेद। जैसे सूर्यकी किरणों में त्रसरेणु रहते हैं तैसेही शब्द में कलङ्क रहते हैं पर जो पद मन और वाणी से अतीत हैं उनको कलङ्कित शब्द कैसे ग्रहण करें? हे रामजी! काष्ठमौन उसको कहते हैं जहां इन्द्रियां न फुरें; न मन फुरे और कोई फुरना न फुरे-ऐसे पद को मैं वाणीसे कैसे कहूं? जो कुछ बोला जाता है सो सविकल्प होता है-तुम्हारे उस प्रश्न का उत्तर तूष्णीं है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि, बोलना सविकल्प और प्रतियोगी सहित होता है तो जो कुछ ब्रह्म में दूषण है उसका निषेध करके कहो मैं प्रतियोगी को न विचारूंगा। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं चिदाकाशस्वरूप; चैत्य से रहित; चिन्मात्र; शान्तरूप; सम और सर्व कलना से रहित केवल आत्मत्वमात्र हूं; और तुम और जगत् भी चिदाकाश है अहं त्वं कोई नहीं क्योंकि; दूसरी सत्ता कोई नहीं सब अहंसंवेदन से रहित शुद्ध चिदाकाश है। जो सापेक्षक अहं अहं फुरती है और मोक्ष की भी इच्छा होती है तो सिद्ध नहीं होती क्योंकि; आपको कुछ भानकर फुरती है इससे एक अहंकार के कई अहंकार होजाते हैं। यही अहं गले में फांसी पड़ती है; जब अहन्तासे रहित हो तब आत्मपद को प्राप्त हो। हे रामजी! जब शवकी नाईं होजावे और कुछ अपना अहन्ता अभिमान

न फुरे तब संसारसमुद्र से पार हो और जबतक द्वैत से मिला हुआ जीता है तबतक जन्म मरण के बन्धन में है कदाचित् मुक्त नहीं होता। जैसे जन्म का अन्धा चित्र की पुतली को नहीं देखसक्ता तैसेही अहन्ता-संयुक्त मुक्ति नहीं पाता। जब अहन्ता का अभाव हो तब कल्याण हो-स्वरूप के आगे अहन्ताही आवरण है। हे रामजी! जब जीव चैतन्य हुआ फुरा तब उसको बन्धन पड़ा और जब जड़-अफुर हो तब कल्याण हो। जब चैतन्योन्मुखत्व होताहै तब इसका नाम पशु होता है और पशु का शरीर पा जब चैत्य से रहित शुद्ध चैतन्य प्रत्यक्आत्मामें स्थित होता है तब मनुष्यजन्म सफल होताहै। मनुष्यजन्म पा जो कुछ पाना है सो पाता है। हे रामजी! यदि मनुष्यजन्म को पाकर न जानेगा तो और किस जन्म में जानेगा? यह संसार चित्त के फुरने से उत्पन्न हुआ है; जब चित्तसंसरने से रहित हो तब केवल केवलीभाव स्वरूप भासे। ज्ञानवान् की दृष्टि में अब भी कुछ नहीं हुआ केवल आत्मस्वरूप ही भासता है और फुरना न फुरना दोनों तुल्य दिखाई देते हैं। अन्तःकरणचतुष्टय आत्मस्वरूप है और अज्ञानी को भिन्न २ भासते हैं इसीसे चित्त आदिक जड़ और मिथ्या हैं और आत्मस्वरूप से सब आत्मस्वरूप हैं आत्मा देश, काल और वस्तुके परिच्छेद से रहित है-ज्ञानी को सर्व आत्माही भासता है चाहे वह कैसीही चेष्टाकरे वह लोक, धन, पुत्र आदि सर्वईक्षणासे रहित है; केवल आत्म अनुभवरूप में स्थित है और सबको अपना आप जानता है। हे रामजी! जिसपद को वह प्राप्त होताहै उस पद को मेरी वाणी नहीं कहसक्ती वह अनिर्वाच्यपद है। जो पुरुष कहता है कि, "अहंब्रह्मअस्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूं और यह जगत् है तो जानिये कि, उसको ज्ञान नहीं उपजा-उसको शास्त्र श्रवण का अधिकार है। जैसे कोई कहे कि, मेरे हाथ में दीपक है और अन्धकार भी मुझको दृष्टि आता है तो जानिये कि, इसके हाथ में दीपक नहीं; तैसेही जबलग जगत् भासता है तबलग ज्ञान नहीं उपजा यह जीव निर्वाण होजावेगा। जब प्रत्यक् चैतन्य में स्थित हो तब जड़ होजावेगा और संसार का भास कुछ न रहेगा-ऐसी भी दृष्टि न

रहेगी कि, मैं सम्यक्दर्शी हूं, केवल निर्वाण होजावेगा । हे रामजी ! अब भी निर्वाणपद है, किससे किसको कौन उपदेश करे ? केवल एकरस शून्य है; शून्य और आत्मा में कुछ भेद नहीं और जो कुछ भेद है उसको ज्ञानवान् जानते हैं वाणी की गम नहीं । उसमें जो अनन्त संवेदन फुरती है तिससे संसार फुरता है और संवेदन ही से लीन होता है । जैसे पवनसे अग्नि प्रज्वलित होताहै और पवनही से लीन होताहै तैसेही जब संवेदन बहिर्मुख फुरती है तब संसार भासता है और जब अन्तर्मुख होती है तब जगत् लीन होजाताहै—इसमें संसार फुरनेमात्रहै । जैसे आकाश में नीलता भ्रमसे भासती है तैसेही आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं केवल ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है—उसी में स्थित होरहो । जब उसमें स्थित होगे तब अशेष भाव मिटजावेगा । हे रामजी ! तब ग्राह्य और ग्राहकसम्बन्ध भी जाता रहेगा और केवल परमात्मतत्त्व जो शुद्ध, अजर और अमरहै उसमें खाते, पीते, चलते, फिरते वृत्ति रहेगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भावनाप्रतिपादनोपदेशो नाम शताधिकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ १५० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जिस प्रकार पुरुष आत्मपद को प्राप्त होता है सो सुनो । जब निरहंकार होता है तब आत्मपद को प्राप्त होता है । जो सर्वात्माहै उसको आवरण करनेहारी अविद्याही है । जैसे सूर्यमण्डल को बादल ढाँप लेता है तैसेही अविद्या आत्मा में आवरण करती है । उस अविद्या से उन्मत्त की नाईं मूर्ख चेष्टा करते हैं और जो अहंसत्ता से रहित ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको कोई दुःख नहीं स्पर्श करता—संदेह भी निर्दुःख होता है । जैसे भीतपर लिखी युद्ध की सेना देखनेमात्र क्षोभित दृष्टि आती है परन्तु शान्तरूप है; तैसेही ज्ञानवान् की चेष्टा में भी क्षोभ दृष्टि आता है परन्तु सदा अक्षोभ और निर्वाणरूप है और वासनासहित दृष्टि आता है पर सदा निर्वासनिक है । जैसे जल में लहर और चक्र क्षोभ दृष्टि आते हैं परन्तु जल से भिन्न नहीं; तैसे ही ज्ञानवान् को ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता । जिसके हृदय से दृश्यभाव

शान्त होगया है और बाहर से क्षोभवान् दृष्टि आता है तौ भी वह मुक्तरूप है। जैसे धुयें के बादल आकाश में हाथी, घोड़ा और पहाड़रूप दृष्टि आते हैं परन्तु हैं कुछ नहीं; तैसेही जगत् दृष्टि आताहै परन्तु है कुछ नहीं; अहंकारसे भासता है और अहंकार से रहित निर्विकार शान्तरूप होता जाता है। ऐसा जो निरहंकार आत्मपद है उसको पाकर ज्ञानवान् शोभता है। शरत्काल का आकाश, क्षीरसमुद्र और पूर्णमासी का चन्द्रमा भी ऐसा नहीं शोभता जैसा ज्ञानवान् पुरुष शोभता है। हे रामजी! अहन्ताही इस पुरुष को मल है; जब अहन्ता नष्ट हो तब स्वरूप की प्राप्ति हो और संसार के पदार्थों की भावना निवृत्त हो क्योंकि; भ्रम से उपजी थी। जो वस्तु भ्रम से उपजी होती है उसका भ्रम के अभाव हुये अभाव होजाताहै। जैसे आकाश में धुयें का बादल नाना प्रकार के आकार हो भासता है पर है नहीं; तैसेही यह विश्व अनहोता भासता है और विचार किये से नहीं रहता। हे रामजी! जबतक संसार की वासना है तबतक बन्ध है और जब वासना निवृत्त हो तब आत्मपद की प्राप्ति हो, संपूर्ण कलना मिटजावे और इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट में तुल्य होजावे। तब वह यद्यपि व्यवहारकर्ता हो तौभी शान्तरूप है। जैसे शब्द को राग द्वेष नहीं फुरता तैसेही ज्ञानी निर्वाणपद को प्राप्त होता है जिसमें सत् असत् शब्द कोई नहीं केवल ब्रह्मस्वरूप है बल्कि ब्रह्म कहना भी वहां नहीं रहता केवल आत्मतत्त्वमात्र है और अद्वैत है। हे रामजी! विश्वभी वही रूप चैतन्य आकाश है। जैसी २ भावना होती है तैसाही तैसा चैतन्य होकर भासता है। जब जगत् की भावना होती है तब नाना प्रकार के आकार दृष्टि आते हैं और ब्रह्म की भावना से ब्रह्म भासता है। जैसे विष में यदि अमृत की भावना होती है और विधिसंयुक्त खाते हैं तो वह विष भी अमृत होजाता है और जो विधि विना खाइये तो मृत्युका कारण होताहै; तैसेही इस संसार को यदि विधिसंयुक्त देखिये अर्थात् विचार करके देखिये तो ब्रह्मस्वरूप भासता है और जो विचार विना देखिये तो जगद्रूप भासताहै पर विचार तब होताहै जब अहंकार निवृत्त होता है। अहंकार आकाश में

उपजा है; आकाश शून्यता में उपजा है और शून्यता आत्मा के प्रमाद से उपजी है। फिर अहंकार से जगत् हुआ है और अहंकार मिथ्या है। हे रामजी! शरीर आदिक चित्तपर्यन्त विचारकर देखिये तो दृष्टि कहीं नहीं आते; इनमें जो अहंप्रत्यय है वह भ्रान्तिमात्र है। जब तुम विचार करके देखोगे तब मरीचिका के जलवत् भासेगा। हे रामजी! जैसे स्वप्न के पर्वतके त्यागने में कुछ यत्न नहीं तैसेही मिथ्या संसारके त्यागनेमें कुछ यत्न नहीं-फिर इसका निर्णय क्या कीजिये? जैसे बन्ध्या के पुत्र की वाणी विचारिये कि, सत्य कहता है अथवा असत्य कहता है तो मिथ्या कल्पना है क्योंकि, बन्ध्या का पुत्र हैही नहीं तो उसका विचार क्या करिये; तैसेही प्रपञ्च है नहीं तो इसका निर्णय क्या कीजिये? इससे तुम ऐसे होरहो जैसे मैं कहताहूं तब आत्मपद की प्राप्ति होगी। हे रामजी! ऐसी भावना करो कि, न मैं हूं और न जगत् है जब अहंकार ही न रहा तब कलना कहां हो; इसका होनाही अनर्थ है। जब ऐसा विचार उत्पन्न होताहै तब भोगों की वासना क्षय होजाती है और सन्तों की संगति होती है-अन्यथा भोग की वासना नष्ट होती। हे रामजी! जबतक अहन्ता उठती है अर्थात् दृश्य और प्रकृति से मिलाप है तबतक द्वैतभ्रम नहीं मिटता और जब अहंकार का उत्थान मिटजावे तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ता होरहे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हंससंन्यासयोगो नाम शताधिकैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ १५१ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब अहन्ता का उत्थान होता है तब स्वरूपका आवरण होता है और जब अहन्ता मिटजाती है तब स्वरूप की प्राप्ति होती है। इस संसार का वीर्य अहन्ताही है; सो अहंकारही मिथ्या है तो उसका कार्य कैसे सत्य हो और जो प्रपञ्च मिथ्या हुआ तो पदार्थ कहांसे सत्य हों? हे रामजी! ऐसा जो ब्रह्म है उसकी युक्ति क्या है? संकल्पपुरुषभी असत्यहै; उसका संशयभी मिथ्याहै और जिस प्रति प्रश्न करता है सोभी मिथ्याहै। जैसे स्वप्न में द्वैतकलना होती है सो असत् है

तैसेही यह जगत् द्वैत भी असत्य है। हे रामजी! यह सब जगत् इसके भीतर स्थित है और प्रमाद से बाहर भासता है। यह अपनाही स्वप्न दृष्टि आताहै कि, भीतर की बाहर सृष्टि भासती है। इससे यह जगत् सब चिद्-रूप है–भिन्न कुछ नहीं। यह चैतन्यसत्ता आकाशसे भी अतिसूक्ष्म और स्वच्छ है। हे रामजी! यह जगत् चित्त से चेता है इससे कहीं हुआ नहीं और न किसीका नाश होताहै; न कोई उत्पन्न होताहै, न कहीं जन्म है और न मरण है–सर्वब्रह्म ही है। हे रामजी! जगत् के नाशहुये कुछ नाश नहीं होता क्योंकि, हुआ कुछ नहीं। जैसे स्वप्न के पहाड़ और संकल्पपुर नष्ट हुये तो क्या नष्ट हुये वे तो कुछ उपजेही नहीं, तैसेही यह जगत् है। यह विचारकर देखाहै कि जो वस्तु अविचार से उपजी होती है सो विचार करनेसे नहीं रहती। जैसे जो पदार्थ तम से उपजा होताहै सो प्रकाश हुये से नहीं रहता तैसेही यह जगत् है; अविचार से भासता है और विचार करे से नाश होजाताहै। हे रामजी! यह जगत् संकल्पहीमात्र है–जैसे संकल्प-नगर होताहै तैसेही यह संसार है इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं; इससे रूप, इन्द्रियां और मन के अभाव की चिन्तना करना। यह संसार ऐसाहै जैसे समुद्र में चक्र; इसमें प्रीतिभावना करनी अज्ञानता है। हे रामजी! कोई ऐसे हैं कि, बाहरसे शान्तरूप दृष्टि आते हैं पर उनके हृदय में क्षोभ होताहै और कोई पुरुष ऐसे हैं कि, हृदयसे शीतल हैं और बाहर नानाप्रकार की चेष्टा करते हैं पर जिनके दोनों मिट जाते हैं वे मोक्षके भागी होते हैं और उनके भीतर बाहर एकता होती है–जैसे समुद्रमें घट भरके रखिये तो उसके भीतर बाहर जलही होताहै। हे रामजी! जिस पुरुषने आत्माको ज्यों का त्यों जानाहै उसको भय, शोक और मोह नहीं होता वह केवल स्वच्छरूप शान्त आत्मा में स्थितहै। भय तब होताहै जब दूसरा भासताहै सो उसको सर्वद्वैत का अभाव होकर शान्तरूप होताहै। हे रामजी! सम्यक्‌दर्शी को जगत् दुःख नहीं देता और असम्यक्‌दर्शी को दुःख देता है। जैसे रस्सी को जो जानताहै उसको रस्सीही भासती है और जो नहीं जानता उसको सर्प भासताहै और भय पाताहै; तैसेही जिसको आत्मा का साक्षात्कार है

उसको जगत्कल्पना कोई नहीं भासती केवल चिदानन्दब्रह्म अधिष्ठानरूप भासताहै और जिसको अधिष्ठानका अज्ञानहै उसको जगत् द्वैतरूप होकर भासताहै और वह रागद्वेषमें जलताहै। हे रामजी! और जगत् कोई नहीं इसके अनुभव में ही जगत्कल्पना होती है और अज्ञान से द्वैतरूप हो भासता है पर जब अपने स्वभावसत्ता में जागता है तब सब अपना आप भासता है। जैसे स्वप्न में अपना आपही द्वैतरूप हो भासता है और राग-द्वेष उपजता है पर जब जागता है तब सब आत्मरूप हो भासता है; तैसे ही यह जगत् है; न इस जगत् का कोई निमित्त कारण है और न कोई उपादान कारण है। जो पदार्थ कारण विना भासे उसे असत् जानिये वह वास्तव में उपजा नहीं भ्रमसे सिद्ध हुआ है। जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है तैसेही यह जगत् अकारण है और भ्रम करके भासता है। हे रामजी! शास्त्र की युक्ति से विचार करके देखो तो द्वैतभ्रम मिट जावे रञ्चकमात्र भी कुछ बना नहीं। जैसे आकाश में नीलता नहीं और मरुस्थल में नदी नहीं तैसेही इस जगत् को भी जानो। आत्मा शुद्ध और अद्वैत है उसमें अहंकृत का फुरनाही दुःख है और दुःख का कारण है। जो स्वरूप का प्रमाद न हो तो अहंकृत भी दुःख का कारण नहीं और जो स्वरूप भूला तो अहंकृतादिक दृश्य विष की बेलि बढ़ती जाती है और नाना प्रकार के आकार धारती है और वासना दृढ़ होती है। जब तक वासना होती है तब तक बन्ध है और जब वासना निवृत्त हो तबहीं कल्याण होता है। हे रामजी! जिस दृश्य की जीव भावना करता है वह जैसे समुद्र में तरङ्ग और चक्र होते हैं सो समुद्र से भिन्न कुछ नहीं होते तैसे ही अहंकार आदिक जो दृश्य हैं सो हैं नहीं और जो हैं नहीं तो उनकी इच्छा करनी मूर्खता है। ज्ञानवान् की वासना क्षय होजाती है और उसको बन्धन का कारण नहीं होता क्योंकि; संसार की सत्यता उसके हृदय में नहीं रहती और सत्यता इससे नहीं रहती कि; आत्मा का साक्षात्कार हुआ है। जब आत्मा का प्रमाद होताहै तब अहन्ता उदय होती है और दृश्य भासती है। जैसे नेत्र के खोलने से दृश्य का ग्रहण करता है और

जब नेत्र मूंद लिये तब दृश्यरूप का अभाव होजाता है तैसेही जब अहन्ता उदय होती है तब दृश्य भी होती है और जब अहन्ता नष्ट होती है तब संसार का अभाव होजाता है । हे रामजी ! अहन्ता का उदय होनाही अज्ञानता है और अहन्ता से ही बन्ध है; अहन्ता से रहित मोक्ष है—आगे जो इच्छा हो सो करो । हे रामजी ! देह, इन्द्रियादिक मृगतृष्णा के जलवत् हैं; इनमें अहन्ता करनी मूर्खता है । ज्ञानवान् अहन्ता को त्यागकर आत्मपद में स्थित होता है और संसार के इष्ट अनिष्ट में हर्ष और शोक नहीं करता । जैसे आकाश में बादल हुआ तौ भी वह ज्यों का त्यों है; तैसेही ज्ञानी ज्यों का त्यों है । उसमें अहंकार नहीं होता इससे वह सुखरूप है । हे रामजी ! रूप, दृश्य, इन्द्रियां और मन उसके जाते रहते हैं । जैसे बन्ध्या के पुत्रका नृत्य नहीं होता तैसेही ज्ञानीके रूप, अवलोक, मनस्कार नष्ट होजाते हैं क्योंकि; उसको सर्व ब्रह्म भासता है और द्वैत भावना उसकी नष्ट होजाती है संसार का बीज अहन्ता अज्ञानियों में दृढ़ है । हे रामजी ! अहन्ता से जीव की बुद्धि बुरी होजाती है अर्थात् स्थूल होजाती है इससे वह दुःख पाता है । इस दुःख के नाश का उपाय यह है कि, सन्तजनों के वचनों की भावना करना और विचार करके हृदय में धारणा—इससे अहन्तारूपी दुःख नष्ट होजाता है । सन्तों के वचनों का निषेध करना मुक्तिफल के नाश करनेवाला है और अहन्तारूपी वैताल के उपजानेवाला है—इसलिये सन्तों की शरण में जाओ और अहन्ता को दूर करो इसमें कुछ खेद नहीं; यह अपने अधीन है । अपने अभाव के चिन्तने में क्या खेद है ? हे रामजी ! आत्मपद सन्तों की संगति द्वारा बहुत सुगमता से प्राप्त होता है । ज्ञानवानों की पृथक् २ सेवा करो और उनके वाक्य विचार करके बुद्धि को तीक्ष्ण करो; जब बुद्धि तीक्ष्ण होगी तब अहन्तारूपी विष की बेलि का नाश करेगी । यह विचार करना चाहिये कि; 'मैं कौन हूं' और 'यह जगत् क्या है'; इस प्रकार सन्तों के वचनों और शास्त्रों के वचनों के निर्णय किये से सत्य २ होता है और जो असत्य है वह असत्य होजाता है । सत्य जानकर आत्मा की भावना करना और असत्य जगत्

को मृगतृष्णा के जलवत् जानकर भावना त्यागना तो जिनको सुख जानकर पाने की भावना करता था सो दुःखदायी भासते हैं। जैसे अधिष्ठानके अज्ञान से मरुस्थल में जल जानकर मृग दौड़ताहै तो दुःख पाताहै तैसेही सबका अधिष्ठान आत्मतत्त्व है; सो शुद्धरूप, परमशान्त और परमानन्दस्वरूप है जिसको पाकर फिर दुःखी नहीं होता। हे रामजी! बन्धन का कारण भोग की वासना है पर भोगों से शान्ति नहीं होती; जब सन्तोंकी संगति होती है तब कल्याण होता है और अनात्म में अहंभाव छूट जाता है; और प्रकार शान्ति नहीं होती। हे रामजी! बालक की नाईं हमारे वचन नहीं हैं, हमारा कहना यथार्थ है क्योंकि; हमको स्वरूप का स्पष्ट भान है। जब अहन्ता मिट जावे तब सुखी हो। इससे अहंता का नाश करो। जब अहंता नाश हो तब जानिये कि, चैत्यकी भावना मिट जाती है। हे रामजी! जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होताहै तब अहंतारूपी अन्धकार नष्ट होजाता है। ज्ञान तब होताहै जब सन्तोंका विचार, विषयों से वैराग्य और स्वरूप का अभ्यास करे—इससे स्वरूप की प्राप्ति होती है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणयुतयुक्त्युपदेशो नाम शताधिकद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ १५२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिन पुरुषों ने ज्ञानसे अपना अज्ञान नष्ट नहीं किया उन्होंने करने योग्य कुछ नहीं किया। अज्ञान से पहले अहंभावना होती है तब आगे जगत् भासता है और लोक परलोक की भावना करता है और इसी वासना से जन्म मरण पाताहै। हे रामजी! जब तक हृदयमें संसारका शब्द अर्थ दृढ़है तबतक शब्द अर्थ के अभाव की चिन्तना करे और जहां जगत् भासता है तहां ब्रह्म की भावनाकरे। जब ब्रह्मभावना करेगा तब संसार के शब्द अर्थ से रहित होगा और आत्मपद भासेगा। हे रामजी! इस संसारमें दो पदार्थ हैं—एक यह लोक और दूसरा परलोक। अज्ञानी इस लोक का उद्यम करते हैं और परलोक का नहीं करते इससे दुःख पाते हैं और तृष्णा नहीं मिटती और विचारवान् पुरुष परलोक का उद्यम करते हैं इससे यहां भी शोभा पाते हैं और परलोक में भी सुख पाते हैं और

उनके दोनों लोकों के कष्ट मिट जाते हैं। जो इसी लोक का उद्यम करते हैं उनको दोनोंही दुःखदायक होते हैं अर्थात् यहां तृष्णा नहीं मिटती और आगे जाकर नरक भोगते हैं। जिन पुरुषों ने आत्मा का यत्न किया है उनको वही सिद्ध होता है और वे सुखी होते हैं और जिसने यत्न नहीं किया वह दुःखी होता है। इससे अहंकार से रहित होनेसे ही आत्मपद की प्राप्ति है। जबतक परिच्छिन्न अहंकार होताहै तबतक दुःखी होताहै और नाम इसका जीव है। जो कुछ फुरता है उससे विश्व की उत्पत्ति होती है। जैसे नेत्रों के खोलने से रूप भासता है और नेत्रों के मूंदने से रूपका अभाव होजाता है; तैसेही जब अहंता फुरती है तब दृश्य भासती है और जब अहंता का अभाव होता है तब दृश्य का भी अभाव होजाता है। अहंता अज्ञान से सिद्ध होती है और ज्ञान के उपजे से निवृत्त होजाती है। हे रामजी! यदि पुरुष अपना प्रयत्न करे और साथही सत्संग करे तो इस संसारसमुद्र से उतर जावेगा; और किसी प्रकार नहीं तरता। हे रामजी! युक्ति करके जैसे विषभी अमृत होजाता है तैसेही पुरुषार्थ से सिद्धि प्राप्त होती है। हे रामजी! इस जीव को दो व्याधि रोग हैं—एक यह लोक और दूसरा परलोक है उनसे दुःख पाताहै। जिन पुरुषों ने सन्तों के मिलापरूपी औषध से चिकित्सा की है वे मुक्तरूप हैं और जिन्होंने वह औषध नहीं की वे पुरुष पण्डित हों तौ भी दुःख पाते हैं। सो औषध क्या है? शम, दम और सत्संग; इन साधनों के यत्न से जिसने आत्मपद पायाहै वह कल्याण-मूर्ति है। हे रामजी! चिकित्सा की औषध भी यही है। जिसने किया है उसने किया और जिन्होंने न किया वे भोग में लम्पट रहे। वे मूर्ख वहां पड़ेंगे जहां फिर कोई औषध न पावेंगे। इससे, हे रामजी! इन भोगों का त्याग करो और आत्मविचारमें सावधान होरहो—यही औषधहै। हे रामजी! जिस पुरुष ने मन नहीं जीता वह मूढ़ है—वह भोगरूपी कीचड़ में मग्न है और आपदा का पात्र है। जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करती हैं, तैसेही उसको आपदा प्राप्त होती है। जिसकी तृष्णा भोगसे निवृत्त हुई है और वैराग्य उपजाहै वह मुक्त होताहै। जैसे जीवनेकी आदि बालक अवस्था है

तैसेही निर्वाणपदकी आदि वैराग्य है । हे रामजी ! जैसे दूसरा चन्द्रमा, संकल्पनगर और मृगतृष्णा का जल भ्रम से भासता है तैसेही यह जगत् भ्रम से भासता है । संसार का बीज अहंता है; जब अहंता उदय होती है तब रूप और अवलोक भासते हैं, इससे यही चिन्तना करो कि, मैं नहीं । जब यही भावना करोगे तब शेष जो रहेगा सो तुम्हारा शान्तरूप है; जिसमें आकाश भी शून्य है और अहं के उत्थान से रहित जड़ अजड़ केवल आत्मत्वमात्र है । जड़ता का उसमें अभाव है इससे अजड़ है और केवल ज्ञानमात्र है । उसमें विश्व ऐसे है जैसे जल में तरङ्ग; पवन में स्पन्द और आकाश में शून्यता । आत्मा से भिन्न कुछ नहीं जो आत्मा से कुछ भिन्न होता तो प्रलय में नाश होजाता पर आत्मा तो प्रलयकाल में भी रहता है । जैसे सूर्य की किरणों में सदा जलाभास रहता है तैसेही आत्मा में विश्व का चमत्कार रहताहै और जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवरूप होती है तैसेही यह जाग्रत्सृष्टि भी अनुभव है । आत्मा भीतर बाहर से रहित, अद्वैत, अजर, अमर, चैत्यसे रहित, चैतन्य और सर्व शब्द अर्थ का अधिष्ठान है; फुरने से दूसरा भासता है और फुरना न फुरना वही है । जैसे चलना और ठहरना दोनों पवन के रूप हैं—जब चलता है तब भासता है और जब ठहरता है तब नहीं भासता; तैसेही जब चित्तशक्ति फुरती है तब विश्वरूप होकर भासती है और जब अफुर होती है तब केवलमात्र पद रहता है सो निराभास, अविनाशी, निर्विकल्प और सबका अपना आप है और सत्य, असत्य; जड़, चैतन्य आदिक शब्द अर्थ सब उसी अधिष्ठानसत्ता में फुरते हैं । इससे उसी अपने स्वरूप में स्थित होरहो जो परमार्थसत्ता आत्मतत्त्व अपने स्वभाव में स्थित और अहं त्वं से रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शान्तिस्थितियोगोपदेशो नाम शताधिकत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ १५३ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जिनको दुःख सुख चलाते हैं और जो इन्द्रियों के इष्ट में सुखी और अनिष्ट में दुःखी होते हैं और राग द्वेष के

आधीन बर्तते हैं उनको ऐसे जानो कि, वे नष्ट हुये हैं। जिनका पुरुष प्रयत्न नष्ट हुआ है वे बारम्बार जन्म पावेंगे और जिनको सुख दुःख नहीं चलाते उनको अविनाशी जानो। वे जन्ममरण की फांसी से मुक्त हुये हैं और उनको शास्त्र का उपदेश नहीं है। हे रामजी! राग द्वेष तब फुरताहै जब मनमें इच्छा होती है और इच्छा तब होती है जब संसारकी सत्यता दृढ़ होती है। जिसको असत्य जानता है उसको बुद्धि नहीं ग्रहण करती और इच्छा भी नहीं होती और जिसको सत्य जानताहै उसमें बुद्धि दौड़ती है। हे रामजी! अज्ञानी को संसार सत्य भासता है इससे वह दुःख पाता है। जब वह शान्तपद का यत्न करे तब दुःख से मुक्त हो। जिसमें अहं, त्वं, जगत्, ब्रह्मआदि शब्द कोई नहीं और जो केवल चिन्मात्र आकाशरूपहै उसमें ये शब्द कैसेहों? ये सब शब्द विचार के निमित्त कहे हैं पर वास्तव में शब्द कोई नहीं अद्वैत और चैत्यसे रहित चिन्मात्र है। जब सर्व शब्द का बोध किया तब शेष शान्तपद रहता है—अभाव से नहीं—इसीसे आत्मत्वमात्र कहा है और जगत् फुरने से उसी में भासता है। उस जगत् में जहां ज्ञप्ति जाती है उसका ज्ञान होता है। हे रामजी! एक अधिष्ठान ज्ञान है और दूसरा ज्ञप्तिज्ञान है; अधिष्ठान ज्ञान सर्वज्ञ ईश्वर को है और ज्ञप्तिज्ञान जीव को है। एक लिङ्ग शरीर का जिसको अभिमान है वह जीव है और सर्वलिङ्ग शरीर का अभिमानी ईश्वर है। जहां इस जीवकी ज्ञप्ति पहुँचती है उसको जानताहै। जैसे एक शय्यापर दो पुरुष सोये हों और एक को स्वप्न आवे उसमें मेघ गर्जते हैं और दूसरा वह मेघका शब्द नहीं सुनता क्योंकि; ज्ञप्ति उसके नहीं आई परन्तु मेघ तो उसके स्वप्न में है। जैसे सिद्ध बिचरते हैं और जीव को दृष्ट नहीं आते क्योंकि; इसकी ज्ञप्ति नहीं जाती और सब सृष्टि बसती है तिसका ज्ञान ईश्वर को है सो सृष्टि भी संकल्पमात्र है; कुछ बनी नहीं और भ्रम से भासती है। जैसे बादल में हाथी, घोड़े, मनुष्य आदिक विकार भासते हैं वे भ्रान्तिमात्र हैं तैसेही आत्मा के अज्ञान से यह सृष्टि नाना प्रकार की भासती है, हे रामजी! यह आश्चर्य है कि आत्मा में अहंकार का उत्थान होताहै कि, मैं हूं और अपने को वर्णाश्रम

मानता है पर विचार करके देखिये तो अहं कुछ वस्तु नहीं सिद्ध होती है और अहं अहं फुरती है। यह आश्चर्य है कि, भूत कहांसे उठा है और शुद्ध आत्मब्रह्म यह कैसे हुआ है? अनहोते अहंकार ने तुमको मोहित कियाहै इसके त्यागने में तो कुछ यत्न नहीं इसका त्याग करो। हे रामजी! यह मिथ्यासंकल्प उठा है। जब अहंकार का उत्थान होता है तब जगत् होताहै और जब अहन्ता मिटजाती है तब जगत् का भी अभाव होजाताहै क्योंकि; कुछ बना नहीं भ्रममात्र है। जैसे संकल्पनगर और स्वप्न की सृष्टि भ्रममात्र है तैसेही यह विश्व भी भ्रममात्र है। कुछ बना नहीं और आत्मतत्त्वरूप है—भिन्न नहीं। जैसे पवन के दोरूप हैं चलता है तौभी पवन है और ठहरता है तौभी पवन है; तैसेही विश्व भी आत्मस्वरूप है। जैसे पवन चलता है तब भासता है और ठहर जाताहै तब नहीं भासता, तैसेही चित्त चैत्यशक्ति का चमत्कार है; जब फुरता है तब विश्व भासता है पर तौभी चिद्घन है और जब ठहर जाताहै तब विश्व नहीं भासता परन्तु आत्मा सदा एकरस है। जैसे जल में तरङ्ग और सुवर्ण में भूषण हैं सो भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा में विश्व कुछ हुआ नहीं—आत्मस्वरूपही है। ज्ञप्ति भी ब्रह्म है और ज्ञप्ति में फुरा विश्व भी ब्रह्म है तो विधि, निषेध और हर्ष, शोक किसका करें? सब वही है। हे रामजी! संकल्प को स्थिर करके देखो कि, सब तुम्हारा ही स्वरूप है। जैसे मनुष्य शयन करता है तो उसको स्वप्नसृष्टि भासती है और जब जागता है तब देखता है कि; सब मेराही स्वरूप है; तैसेही जाग्रत् विश्व भी तुम्हारा स्वरूप है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उठते हैं सो जलरूप हैं तैसेही विश्व आत्मस्वरूप है और जैसे चितेरा काष्ठ में कल्पना करता है कि; इतनी पुतलियां निकलेंगी और जैसे मृत्तिका में कुम्हार घटादिक कल्पता है कि, इसमें इतने पात्र बनेंगे पर काष्ठ और मृत्तिका में तो कुछ नहीं; ज्योंका त्यों काष्ठ है और ज्यों की त्यों मृत्तिका है परन्तु उनके मन में आकार की कल्पना है; तैसेही आत्मा में संसाररूपी पुतलियां मन कल्पताहै। जब मनका संकल्प निवृत्त हो तब ज्यों का त्यों आत्मपद भासे। जैसे तरङ्ग जलरूप है; जिसको जल का ज्ञान है सो तरङ्ग भी जलरूप

जानता है और जिसको जल का ज्ञान नहीं सो भिन्न२ तरङ्ग के आकार देखता है; तैसेही जब निस्संकल्प होकर स्वरूप को देखे तब फुरने में भी आत्मसत्ता भासेगी। अहंत्वमादिक सब जगत् ब्रह्मस्वरूपही है तो भ्रम कैसे हो और किसको हो। सब विश्व आत्मस्वरूप है और आत्मा निरालम्ब अर्थात् चैत्य और अहंकार से रहित केवल आकाशरूप है। जब तुम उसमें स्थित होगे तब नानाप्रकार की भावना मिटजावेगी क्योंकि, नानाप्रकार की भावना जगत् में फुरती है। जगत् का बीज अहन्ता है; जब अहन्ता नष्टहो तब जगत् का भी अभाव होजावेगा। हे रामजी! अहन्ताका फुरना ही बन्धन है और निरहंकार होनाही मोक्षहै। एक चित्तबोध है और दूसरा ब्रह्मबोध है-चित्तबोध जगत् है और ब्रह्मबोध मोक्ष है। चित्तबोध अहन्ता का नाम है, जबतक चित्तबोध फुरता है तबतक संसार है और जब चित्त का अभाव होताहै तब मुक्त होता है। इस चित्त के अभाव का नाम ब्रह्मबोध है। हे रामजी! जैसे पवन फुरता है तैसेही ब्रह्म में चित्तबोध है और जैसे पवन ठहर जाता है तैसेही चित्त का ठहरना ब्रह्मबोध है। जैसे फुर अफुर दोनों पवनही है तैसेही चित्तबोध और ब्रह्मबोध ब्रह्महीहै-भिन्न कुछ नहीं। हमको तो ब्रह्मही भासता है जो चैतन्यमात्र और शान्तरूप अपने स्वभाव में स्थितहै। जिसको अधिष्ठानका ज्ञान होताहै उसको निवृत्त भी वहीरूप भासताहै और जिसको अधिष्ठानका ज्ञान नहीं होता उसको भिन्न२ जगत् भासता है। जैसे एक बीज में पत्र, डाल फूल और फल भासते हैं पर जिसको बीज का ज्ञान नहीं उसको भिन्न२ भासते हैं। हे रामजी! हमको अधिष्ठान आत्मतत्त्व का ज्ञान है इससे सब विश्व आत्मस्वरूप भासता है और अज्ञानी को नाना प्रकार का विश्व और जन्म मरण भासते हैं। हे रामजी! सब शब्द आत्मतत्त्व में फुरते हैं और सबका अधिष्ठान, निराकार, निर्विकार, शुद्ध आत्मा सबका अपना आप है; इससे सब विश्व आकाशरूप है कुछ भिन्न नहीं। जैसे तरङ्ग जलरूप है तैसेही विश्व आत्मस्वरूप है चित्त जो फुरता है उसके अनुभव करनेवाली चैतन्य सत्ता है सोही ब्रह्महै और तुम्हारा स्वरूप भी वही है; इससे अहं त्वं आदिक

जगत् सब ब्रह्मरूप है तुम संशय त्यागकर अपने स्वरूप में स्थितहो। आगे तुमसे जो द्वैत अद्वैत कहाहै वह सब उपदेशमात्र है एकचित्त की वृत्ति को स्थित करके देखो सब ब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं तो निषेध किसका कीजिये ? हे रामजी ! चित्तकी दो वृत्ति ज्ञानवान् कहते हैं—एक मोक्षरूप है और दूसरी बन्धरूप है। जो वृत्ति स्वरूप की ओर फुरती है सो मोक्षरूप और जो दृश्य की ओर फुरती है सो बन्धरूप है। जो तुमको शुद्ध भासती हो वही करो। जो द्रष्टाहै सो दृश्य नहीं होता और दृश्य है वह द्रष्टा नहीं होता पर आत्मा तो अद्वैतहै इससे द्रष्टामें दृश्य पदार्थ कोई नहीं। तुम क्यों दृश्यकी ओर फुरते हो और अनहोती दृश्य को ग्रहण करते हो ? द्रष्टा भी तुम्हारा नाम दृश्य से होताहै। जब दृश्य का अभाव जानो तब अवाच्यपद है उसको वाणी से कुछ कहा नहीं जाता। हे रामजी ! जैसे अङ्गी और अङ्गवाले; आकाश और शून्यता; जल और द्रवता और बरफ़ और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। कोई जगत् कहे अथवा ब्रह्म कहे एकही पर्याय है; जगत्ही ब्रह्म है और ब्रह्मही जगत् है। इससे आत्मपद में स्थित होरहो; भ्रम करके जो आपको कुछ और मानते हो उसको त्यागकर ब्रह्मही की भावना करो और आपको मनुष्य कदाचित् न जानो जो आपको मनुष्य जानोगे तो यह निश्चय अधोगति को प्राप्त करनेवाला है इससे अपने स्वरूप में स्थित होरहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम शताधिकचतुःपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ १५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब देश से देशान्तर को वृत्ति जाती है तो उसके मध्य जो संवित्तत्त्व है उसको जो अनुभव करता है सो तुम्हारा स्वरूप है उसमें स्थित हो रहो और जैसी चेष्टा आवे तैसी करो। देखो, सुनो, स्पर्श करो, गन्ध लो, बोलो, चलो, हँसो, सब क्रिया करो परन्तु इनके जाननेवाली जो अनुभवसत्ता है उसी में स्थित होरहो। यह जाग्रत् में सुषुप्ति है। चेष्टा शुभ करो और हृदय में फुरनेसे रहित शिलावत् होरहो। हे रामजी ! तुम्हारा स्वरूप निराभास; निर्मल और शान्तरूप है। जैसे

सुमेरु पर्वत स्थित है तैसेही होरहो। यह दृश्य अज्ञान से भासता है पर तमरूप है और आत्मा सदा प्रकाशरूप है; उस प्रकाश में अज्ञानी को तम भासता है। जैसे सूर्य सदा प्रकाशरूपहै पर उलूक को नहीं भासताहै और अज्ञानकरके तमही भासताहै तैसेही अज्ञानीको जो अविद्यारूप जगत् भासताहै सो अविचार से सिद्ध है। अविद्या से इसकी विपर्यय दृष्टि हुई है पर इसका वास्तवस्वरूप निर्विकार है अर्थात् जायते, अस्ति, वर्द्धते, परिणमते, विपक्षीयते, नश्यते इन षट् विकारों से रहित है पर उसको विकार जानता है; आत्मा निर्विकार निराकार है पर उसको साकार जानता है; आत्मा आनन्दरूप है पर उसको दुःखी जानता है; आत्मा शान्तरूप है पर उसको अशान्त जानताहै; आत्मा महत् है पर उसको लघु जानताहै; आत्मा पुरातन है पर उसको उपजा मानता है; आत्मा सर्वव्यापक है पर उसको प्रच्छन्न मानता है; आत्मा नित्य है पर उसको अनित्य देखता है; आत्मा चैत्य से रहित शुद्ध चिन्मात्र है पर यह उसे चैत्यसंयुक्त देखता है; आत्मा चैतन्य है यह उसे जड़ देखताहै; आत्मा अहं से रहित सदा अपने स्वभाव में स्थितहै और यह अनात्म अहंकार में अहंप्रतीति करताहै और आत्मा में अनात्मभावना करताहै और अनात्मा में आत्मभावना करता है; आत्मा निरवयव है उसको यह अवयवी देखता है; आत्मा अक्रिय है उसको यह सक्रिय देखता है; आत्मा निरंश है उसको अंशांशीभाव करके देखताहै; आत्मा निरामयहै पर उसको रोगी देखताहै; आत्मा निष्कलङ्कहै पर उसको कलङ्कसहित देखता है; आत्मा सदा प्रत्यक्ष है उसको परोक्ष जानताहै और जो परोक्ष है उसको प्रत्यक्ष जानताहै। हे रामजी! यह सब विकार आत्मा में अज्ञानसे देखता है पर आत्मा शुद्ध और सूक्ष्म से सूक्ष्म; स्थूलसे स्थूल, बड़ेसे बड़ा और लघु से लघु है और सर्वशब्द और अर्थका अधिष्ठानहै। हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक डब्बाहै उसमें जगत्रूपी रत्नहै। पर्वत और वनसहितभी जगत् दृष्ट आताहै परन्तु आत्माके निकट रुई के रोमसा लघुहै। आत्मरूपी वन है उसमें संसाररूपी मञ्जरी उपजी है। पांचों तत्त्व—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश उसके पत्रहैं उनसे शोभती है सो अहन्ता

के उदय हुये उदय होती है और अहन्ता के नाशहुये नाश होती है। आत्मरूपी समुद्र है उसमें जगत्‌रूपी तरङ्ग हैं सो उठते भी हैं और लीन भी होजाते हैं। आत्माकाशमें संसार भ्रममात्रहै और आकाश वृक्षकी नाईं है और आत्मा के प्रमाद से भासता है। हे रामजी ! मायारूपी चन्द्रमा की किरणें जगत्‌है और नेतिशक्ति नृत्य करनेवाली है सो तीनों अविचार सिद्ध हैं और विचार कियेसे शान्त होजाते हैं। जैसे दीपक हाथमें लेकर अन्धकार देखिये तो दृष्ट नहीं आता तैसेही विचार करके देखिये तो जगत्‌का अभाव होजाता है और केवल शुद्ध आत्मा ही प्रत्यक्ष भासता है। हे रामजी ! जगत् कुछ बना नहीं–जैसे किसी ने बरफ़ कही और किसी ने शीतलता कही तो उसमें भेद नहीं; तैसे ही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं और जो भासताहै सो भ्रममात्र है। जैसे तागे और पटमें भेद कुछ नहीं तैसेही आत्मा और जगत् है। हे रामजी ! आत्मरूपी रङ्ग में जगत्‌रूपी चित्र पुतलियां हैं और आत्मरूपी समुद्र में जगत्‌रूपी तरङ्गहैं सो जलरूपहैं; तैसेही आत्मा और जगत्‌में भेद कुछ नहीं–आत्माही है आत्मासे भिन्न कुछ नहीं बना। जिससे सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं; जिससे सर्व क्रिया सिद्ध होती हैं और जो अनुभवरूप सदा अप्रौढ़ है उसको प्रौढ़ जाननाही मूर्खता है। हे रामजी ! यह विश्व तुम्हाराही स्वरूप है; तुम जागकर देखो तुमही खड़े हो और स्वच्छ आकाश, सूक्ष्म, प्रत्यक्ष ज्योति अपने आपमें स्थित है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम शताधिकपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ १५५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे जल में लहर और तरङ्ग उठते हैं सो जलरूप हैं; तैसेही आत्मा में रूप, अवलोक और मनस्कार फुरते हैं सो सब आत्मरूपहैं-भिन्न नहीं। हे रामजी! यह शुद्ध परमात्मा का चमत्कार है और आत्मा दृश्य से रहित, शुद्ध, चिन्मात्र निर्मल और अद्वैत है उसमें जगत् कुछ नहीं बना। हमको तो सदा वही भासता है–जगत् कुछ नहीं भासता। जैसे कोई आकाश में नगर कल्पता है और उसमें सब रचना देखता है सो उसके हृदय में दृढ़ होजाती है और जो संकल्प की सृष्टि

को मिथ्या जानता है उसको शून्याकाश ही भासता है। तैसेही यह विश्व मूर्ख के हृदय में दृढ़ होता है और ज्ञानवान् को आत्मरूपही भासता है। जैसे मट्टी के खिलौने की सेना होती है तो जिसको मट्टी का ज्ञान है वह उसमें राग द्वेष नहीं करता और बालक मट्टी के ज्ञान से रहित है इससे वह उसमें राग द्वेष करता है; तैसेही ज्ञानवान् इस जगत् में राग द्वेष नहीं करते और अज्ञानी राग द्वेष करते हैं। जैसे खिलौने में सारभूत मृत्तिका होती है तैसेही इस जगत् में सारभूत चैतन्य आत्मा है। जो कुछ पदार्थ भासते हैं वे आत्मा के विवृत्त हैं। और मिथ्याही भ्रम से सिद्ध हुये हैं। जो वस्तु मिथ्या भ्रममात्र हो उसमें सुखके निमित्त इच्छा करनाही मूर्खता है। हे रामजी! हमको तो इच्छा कुछ नहीं क्योंकि, हमको जगत् मृगतृष्णा के जलवत् भासता है किसकी इच्छा करें। जिसमें सत्य प्रतीति होती है उसमें इच्छा भी होती है और जो सत्यही न भासे तो इच्छा कैसे हो? हे रामजी! इच्छाही बन्धन है और इच्छा से रहित होने का नाम मुक्ति है। इससे ज्ञानवान् को इच्छा कुछ नहीं रहती उसकी अनिच्छितही चेष्टा होती है। जैसे सूखे बाँस के भीतर बाहर शून्य होता है और संवेदन उसको कुछ नहीं फुरती तैसेही ज्ञानवान् के अन्तःकरण और बाह्यकरण में भी शान्ति होती है; अन्तःकरण में संकल्प कोई नहीं उठता और बाहर भी कोई उपाधि नहीं निःसंकल्प निरुपाधि उसकी चेष्टा होती है। हे रामजी! जिस पुरुषके हृदय से संसार का रस सूख गया है वह संसार-समुद्र से पार हुआ है और जिसका रस नहीं सूखा उसको रागद्वेष फुरते हैं उसे संसार बन्धन में जानो। हे रामजी! मैं तुमसे ऐसी समाधि कहता हूं कि, जो सुख से प्राप्त हो और जिससे मुक्त हो। सर्व इच्छा से रहित होना ही परमसमाधि है। जिस पुरुष को इच्छा फुरती है उसको उपदेश भी नहीं लगता। जैसे आरसी के ऊपर मोती नहीं ठहरता तैसेही उसके हृदय में उपदेश नहीं ठहरता। इच्छाही जीव को दीन करती है और इच्छा से रहित हुआ शान्तरूप होताहै और फिर शान्तिके निमित्त कर्तव्य कुछ नहीं रहता। हे रामजी! हम तो निरिच्छित हैं इससे हमको भीतर बाहर शान्ति

है और हमको कर्तव्य करने योग्य कुछ नहीं—यह सब प्रारब्ध के अनुसार राग द्वेष से रहित चेष्टा होती है और बोलते हैं परन्तु बांसुरी की नाईं। जैसे बांसुरी अहंकार से रहित बोलती है तैसेही ज्ञानवान् अहंकार से रहित हैं और स्वाद को ग्रहण करते हैं। जैसे करछी सब व्यञ्जनों में डाली जाती है और उसी के द्वारा सब व्यञ्जन निकलते हैं परन्तु उसको कुछ राग द्वेष नहीं फुरता; तैसेही ज्ञानवान् स्वाद लेता है। जैसे पवन भली बुरी गन्ध को लेता है परन्तु राग द्वेष से रहित है तैसेही ज्ञानवान् राग द्वेष की संवेदन से रहित गन्ध को लेता है और इसी प्रकार सर्व इन्द्रियों की चेष्टा करता है परन्तु इच्छा से रहित होता है इसीसे परमसुखरूप है। जिसकी चेष्टा इच्छा सहित है वह परमदुःखी है। हे रामजी! जिस पुरुष को भोग रस नहीं देते वही सुखी है और जिसको रस देते हैं और जिसकी राग से तृष्णा बढ़ती जाती है उसको ऐसे जानो जैसे किसी के मस्तक पर अग्नि लगे और उसपर तृण बुझाने के निमित्त डाले तो वह बुझती नहीं बल्कि बढ़ती जाती है; तैसेही विषयोंकी इच्छा भोगनेसे तृप्त नहीं होगी। इच्छाही बन्धन है और इच्छा की निवृत्ति का नाम मोक्ष है। हे रामजी! संसाररूपी विष का वृक्ष है और उसका बीज इच्छा है जिसकी इच्छा बढ़ती जाती है उसका संसार बढ़ता जाता है और उससे वह बारम्बार जन्म पाता है। हे रामजी! ऐसा सुख ब्रह्मा के लोक में भी नहीं जैसा सुख इच्छा की निवृत्ति में है और ऐसा दुःख नरक में भी नहीं जैसा दुःख इच्छा के उपजाने में है। इच्छा के नाश का नाम मोक्षहै और इच्छा के उपजाने का नाम बन्धन है। जिस पुरुष को इच्छा उत्पन्न होती है वह दुःख पाता है और संसाररूपी गढ़े और खत्ते में पड़ता है इच्छारूपी विष की बेल है उसको समतारूपी अग्निसे जलाओ। सम्यक्दर्शनसे जलाये विना बड़ादुःख देगी और बढ़ती जावेगी। हे रामजी! जिस पुरुष ने इच्छा के दूर करने का उपाय नहीं किया उसने अन्धेकूपमें प्रवेशकियाहै। शास्त्र का श्रवण और तप, दान, यज्ञ इसी निमित्तहै कि, किसी प्रकारइच्छा निवृत्त हो जो एकही बार निवृत्त न कर सको तो शनैःशनैः निवृत्त करो। हे रामजी! यह विष की बेल बढ़ी हुई

दुःख देती है। जो पुरुष शास्त्रों को पढ़ता और इच्छा को बढ़ाता है वह मानो दीपक हाथ में लेकर कूप में गिरता है। इच्छारूपी कँटिआरी का वृक्ष है जिसमें सर्वदा कण्टक लगे रहते हैं—उसमें कदाचित् सुख नहीं। जो पुरुष कांटेकी शय्यापर शयन करके सुखी हुआ चाहे तो नहीं होता; तैसेही संसार से कोई सुख पाया चाहे तो कदाचित् न होगा। जिससे इच्छा निवृत्ति हो वही उपाय किया चाहिये। इच्छा के निवृत्त होने में सुख है और इच्छा के उत्पन्न होने में बड़ा दुःख है। हे रामजी! जो अनिच्छित पद में स्थित हुआ है उसको यदि एक क्षण भी इच्छा उपजती है तो वह रुदन करता है। जैसे चोर से लूटा रुदन करता है तैसेही वह रुदन और पश्चात्ताप करताहै और उसके नाश करने का उपाय करताहै। हे रामजी! इच्छारूपी क्षेत्र में राग द्वेषरूपी विषकी बेल है। जो पुरुष उसके दूर करने का उपाय नहीं करता वह मनुष्यों में पशु है यह इच्छारूपी विष का वृक्ष बढ़ा हुआ नाश का कारण है। इससे तुम इसका नाश करो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इच्छानिषेधयोगोपदेशो नामशताधिकषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ १५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इच्छारूपी विष के नाश करने का उपाय तुम से आगे भी कहा है और अब फिर स्पष्ट करके कहता हूं। इच्छा त्याग करने के योग्य संसार है; यदि आत्मसत्ता से भिन्न कीजिये तो मिथ्या है उसमें क्या इच्छा उसकी करनी है और जो आत्मा की ओर देखिये तो सर्व आत्माही है क्या इच्छा करनीहै; इच्छा दूसरे में होती है पर दूसरा तो कुछ हैही नहीं तो इच्छा किसकी कीजिये? हे रामजी! द्रष्टा और दृश्य भी मिथ्या है; द्रष्टा इन्द्रियां और दृश्य विषय; ग्राहक इन्द्रियां और ग्राह्य विषय अविचार सिद्ध है और भ्रम करके भासते हैं आत्मा में कोई नहीं। जैसे स्वप्न में भ्रम से रूप भासते हैं तैसेही यह ग्राह्य-ग्राहक भ्रम से भासते हैं और सुख दुःखभी इनहीं से होताहै आत्मा में कोई नहीं। हे रामजी! द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनों ब्रह्ममें कल्पित हैं और वास्तव में ब्रह्मही है; चिरकाल से हम खोज रहे हैं परन्तु द्वैत हमको कुछ दृष्टि नहीं

आता, एक ब्रह्मसत्ताही ज्यों की त्यों भासती है जो निराभास, फुरने से रहित और ज्ञानरूप है; आकाश से भी सूक्ष्म है और सर्व जगत् भी वही है-सो मैं हूं। हे रामजी! जैसे जलमें तरङ्ग; आकाश में शून्यता; पवन में स्पन्द और अग्नि में उष्णता है सो सबही अनन्यरूप है तैसेही आत्मा में जगत् अनन्यरूप है। आत्माही विश्वआकार होकर भासता है और कुछ नहीं हुआ। हे रामजी! जो वही है तो इच्छा किसकी करते हो। यह जो मैं तुमसे मोक्ष उपाय कहता हूं तो तुम आपको क्यों बन्धन करते हो? बड़ा बन्धन इच्छाही है जिसपुरुष की इच्छा बढ़ती जाती है वह जगत्रूपी वन का मृगहै, उस मृग और पशुका संग कदाचित् न करना; मूर्खका संग बुद्धि को विपर्यय कर डालता है इससे विपर्ययबुद्धि को त्यागकर आत्मपद में स्थित होरहो। विश्वभी सब तुम्हारा अनुभवरूप है और इसका सुख दुःख विद्यमान भी दिखता है परन्तु आत्मा में भ्रममात्र भासता है-कुछ है नहीं। विश्वभी आनन्दरूप शिवही है; तुम विचार करके देखो दूसरा तो कुछ नहींहै जैसे मृत्तिकामें नानाप्रकार की सेना, हाथी, घोड़ा आदिक होती हैं परन्तु मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं तैसेही सब विश्व आत्मरूप है, भिन्न नहीं और उसमें कारण कार्यभाव देखना भी मूर्खता है। क्योंकि जो दूसरी वस्तुही नहीं तो कारण कार्य किसका हो और इच्छा किसकी करते हो? जिस संसार की इच्छा करते हो वह हैही नहीं। जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है और सीपी में रूपा भासता है सो दूसरी वस्तु कुछ नहीं अधिष्ठान किरण और सीपी है, तैसेही अधिष्ठानरूप परमार्थसत्ताही है। न सुख है, न दुःख है; यह जगत् केवल शिवरूप है। उस शिव चिन्मात्र से मृत्तिका की सेनावत् अन्य कुछ नहीं तो इच्छा कैसे उदय हो? रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जो सर्व ब्रह्महीहै तो इच्छा अनिच्छा भी भिन्न नहीं? इच्छा उदय हो चाहे न हो। फिर आप कैसे कहते हैं कि; इच्छा का त्याग करो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष की ज्ञप्ति जागीहै अर्थात् जो ज्ञानरूप आत्मा में जागा है उसको सब ब्रह्मही है और इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं। इच्छाभी ब्रह्म है और अनिच्छा भी ब्रह्म है। हे रामजी!

ज्योंज्यों ज्ञानसंवित् होती है त्यों त्यों वासना क्षय होती है जैसे सूर्य के उदय हुये रात्रि नष्ट होजाती है तैसेही ज्ञान के उपजेसे वासना नहीं रहती। हे रामजी! ज्ञानवान् को ग्रहण और त्याग का कर्तव्य नहीं और उसे इच्छा अनिच्छा तुल्य है। यद्यपि ऐसेही है परन्तु स्वाभाविकही उसे वासना नहीं रहती। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नहीं रहता तैसेही आत्मा के साक्षात्कारहुये द्वैतवासना नहीं रहती। ज्यों ज्यों ज्ञानकला जागती है त्यों त्यों द्वैत नाश होता जाताहै और द्वैत के निवृत्त होनेसे वासना भी निवृत्त होजाती है। हे रामजी! ज्यों ज्यों स्वरूपानन्द उसको प्राप्त होता है त्यों त्यों संसार विरस होता जाता है और जब संसार विरस होगया तब वह वासना किसकी करे? हे रामजी! अमृत में इसको विष की भावना हुई थी इससे अमृत विष भासता था पर जब विषकी भावना का त्याग हुआ तब अमृत तो आगेही था सोई होजाता है; तैसेही जो कुछ तुमको भासता है सो सब ब्रह्मरूपी अमृतही है। जब उस ब्रह्मरूपी अमृत में अज्ञान से जगत्रूपी विष की भावना होतीहै तब दुःख पाताहै और जब संसार की भावना त्यागी तब आनन्दरूप ही है और उसको करना, न करना दोनों तुल्य हैं। यद्यपि ज्ञानवान् में इच्छा दृष्टि आती है तो भी उसके निश्चयमें नहीं उसकी इच्छा भी अनिच्छाही है क्योंकि; उसके हृदय में संसार की भावना नहीं तो इच्छा किसकी रहे? हे रामजी! यह संसार है नहीं; हमको तो आकाशरूप भासताहै। जैसे और के मनोराजके संकल्प में आनेजाने का खेद नहीं होता तैसेही यह जगत् हमको और की चिन्तनावत् है। जैसे किसी पुरुष ने मनोराज से मार्ग में कोई स्थान रचकर उसमें किवाड़ लगाये हों और नाना प्रकार का प्रपञ्च रचाहो तो दूसरे पुरुष को उसमें जाने के लिये कोई नहीं रोंकता और न कोई किवाड़ हैं, न कोई पदार्थ है; उसको शून्यमार्ग का निश्चय होता है; तैसेही हमको तो सब प्रपञ्च शून्यही भासता है। अज्ञानी के हृदय में हमारी चेष्टा है पर हमको ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता। हे रामजी! जिसको जगत्ही न भासे उसको इच्छा किसकी हो? जिसके हृदयमें संसारकी सत्यताहै उसको इच्छा भी फुरती है

और राग द्वेष भी उठता है। जिसको राग द्वेष उठता है तो जानिये कि, संसारसत्ता उसके हृदय में स्थित है और जिसको नानापदार्थसहित संसार सत्य भासता है सो मूर्ख है और वह अज्ञाननिद्रा में सोया हुआ है। जैसे निद्रादोष से कोई स्वप्न में अपना मरण देखता है तैसेही जिसको यह जगत् सत्य भासता है सो निद्रा में सोया है। हे रामजी! मैंने बहुत प्रकार के स्थान देखे हैं जिनमें रोग और औषध भी नाना प्रकार के हैं परन्तु इच्छा-रूपी छुरीके घाव की औषध नहीं दृष्टि आई। वह जप, तप, पाठ, यज्ञ, दान और तीर्थसे निवृत्त नहीं होती और जितने संसारके पदार्थ हैं उनसे भी इच्छारूपी रोग नष्ट नहीं होता; जब आत्मरूपी औषध कीजावे तबहीं नाश होता है अन्यथा किसी प्रकार यह रोग नहीं जाता। हे रामजी! जिस पुरुष को ज्ञान प्राप्त होता है उसकी इच्छा स्वाभाविक ही निवृत्त होजाती है और आत्मज्ञान विना अनेक यत्न से भी न जावेगी। जैसे स्वप्न की वासना जागे विना नहीं जाती और अनेक उपाय करिये तौभी दूर नहीं होती। हे रामजी! ज्यों ज्यों वासना क्षीण होती है त्यों त्यों सुखकी प्राप्ति होती है और ज्यों ज्यों वासना की अधिकता है त्यों त्यों दुःख अधिक हैं। यह आश्चर्य है कि, मिथ्या संसार सत्य हो भासता है। जैसे बालक को वृक्ष में वैताल हो भासता है और उससे वह भय पाता है पर वह है नहीं; तैसेही मूर्खता से आत्मा में संसार कल्पना है उससे जीव दुःखी होता है। हे रामजी! स्थावर जङ्गम जो कुछ जगत् भासताहै सो सब ब्रह्मरूप है, ब्रह्म से भिन्न नहीं पर भ्रम से भिन्न भिन्न हो भासताहै। जैसे आकाश में शून्यता जल में द्रवता और सत्यता में सत्यता ही है; तैसेही आत्मा में जगत् है सो न सत्य है और न असत्य है—आत्मा अनिर्वाच्य है। हेरामजी! दूसरा कुछ बना नहीं तो क्या कहिये? केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है सो सबका अपना आप वास्तवरूप है। जब उसका साक्षात्कार होता है तब अहंरूप भ्रम मिट जाता है। जैसे सूर्य के उदयहुये अन्धकार का अभाव होजाता है तैसेही आत्मा के साक्षात्कार हुये अनात्म अभि-मानरूपी अन्धकार का अभाव होजाता है और परम निर्वाण भासता है।

उसको एक और दो भी नहीं कहसक्ते; वह केवल शान्तरूप परम शिव है। जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। हे रामजी ! जिन्होंने ऐसे निश्चय किया है उनको इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं तौभी मेरे निश्चय में यह है कि; इच्छा के त्याग में सुख है। जिसकी इच्छा दिन दिन घटतीजावे और आत्मा की ओर आवे उसको ज्ञानवान् मोक्षभागी कहते हैं क्योंकि; संसार भ्रम से सिद्ध है और अपनी ही कल्पना जगत्रूप होकर भासती है; विचार किये से कुछ नहीं निकलता। संसार के उदय होनेसे आत्मा को कुछ आनन्द नहीं और नाश होनेसे खेद नहीं होता क्योंकि; कुछ भिन्न नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और विनशते हैं तो जल को हर्ष और शोक कुछ नहीं होता क्योंकि; वे जल से भिन्न नहीं हैं; तैसेही सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है तो इच्छा क्या और अनिच्छा क्या ? हे रामजी ! आदि जो परमात्मा से चित्तशक्ति फुरी है उसमें जब अहं हुआ तब स्वरूप का प्रमाद हुआ और यही चित्तशक्ति मनरूप हुई; फिर आगे देह इन्द्रियां हुईं और अज्ञान से मिथ्याभ्रम उदय हुआ इसी प्रकार अपने साथ मिथ्या शरीर देखता है। जैसे जल दृढ़ जड़ता से बरफ़रूप होजाता है तैसेही चित्संवित् प्रमाद की दृढ़ता से मन, इन्द्रियां, देहरूप होताहै। जैसे कोई स्वप्ने में अपना मरना देखता है तैसेही अपने साथ जीव शरीर को देखता है। जब चित्तशक्ति नष्ट होती है तब शरीर कहां—और मन कहां यह कोई नहीं भासता ? जैसे स्वप्ने में भ्रम से शरीरादिक भासते हैं तैसेही इस जगत् को भी जानो कि, मिथ्याभ्रम से उदय हुये हैं। जब अपने स्वरूप की ओर आवे तब सबही भ्रम मिटजाते हैं हे रामजी ! जैसे भ्रम से आकाश में नीलता भासती है तैसेही विश्वभी अनहोताही भ्रम से भासता है; आत्मा में कुछ आरम्भ और परिणाम करके नहीं बना—वही स्वरूप है। जैसे आकाश और शून्यता और पवन और स्पन्द में भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभवरूप है—कुछ भिन्न नहीं; तैसेही जगत् और आत्मा अनुभव से कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी ! चेतन आकाश

परमशान्तरूप है; उसमें देह और इन्द्रियां भ्रम से भासती हैं और क्रिया, काल, पदार्थ सब भ्रममात्र हैं जब आत्मस्वरूप में जागकर देखोगे तब द्वैतभ्रम निवृत्त होजावेगा और कैवल्य, अद्वैत आत्मा ही भासेगा—दृश्य का अभाव होजावेगा । यह पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं सो अविद्यमान हैं और इनकी प्रतिभा मिथ्या उदय हुई है । जैसे स्वप्ने में अनहोते पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं परन्तु हैं नहीं तैसेही आत्मा में यह जगत् भासता है । हे रामजी ! पृथ्वी, दीवार, कीट, पर्वत आदि प्रपञ्च आकाशरूप हैं तो ग्रहण त्याग किसका हो ? आकाशरूपी दीवार पर संकल्प ने चित्र रचे हैं और रङ्ग आत्मचैतन्यता है इससे विश्व संकल्पमात्र है और जैसा २ निश्चय होता है तैसीही तैसी सृष्टि भासती है । यदि कुछ बना होता तो और का और न भासता; इससे कुछ बना नहीं जैसा संकल्प होता है तैसाही आगे रूप हो भासता है । हे रामजी ! सिद्धों के पास एक चूर्ण होता है उससे वे जो चाहते हैं सो करते हैं पर्वत को आकाश और आकाश को पर्वत करते हैं—वह चूर्ण मैं तुमसे कहता हूं । जब चित्तरूपी सिद्ध संकल्परूपी चूर्ण से फुरता है तब आत्मरूपी आकाश में पर्वत हो भासते हैं और जब चित्तरूपी सिद्ध का संकल्प उलटता है तब पर्वत भी आकाशरूप हो भासता है । जैसे स्वप्ने में संकल्प फुरता है तब अनुभव में पर्वत आदिक पदार्थ भासि आते हैं और जब संकल्प से जागता है तब स्वप्ने के पर्वत आकाशरूप होजाते हैं तो आकाशही पर्वतरूप हुआ और पर्वतही आकाशरूप होता है; तैसेही हे रामजी ! यह सृष्टि कुछ बनी नहीं संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प होता है तैसा भासता है । जब विश्व के अत्यन्त अभाव का संकल्प किया तब तैसेही भासता है । जैसे विश्व का अभ्यास किया है और विश्व भासा है तैसे ही आत्मा का अभ्यास कीजिये तो क्यों न भासे ? वह तो अपना आप है, जब आत्मा का अभ्यास कीजियेगा तब आत्माही भासेगा विश्व का अभाव होजावेगा । अनेक सृष्टि अपने २ संकल्प से आकाश में भासती हैं; जैसा किसी का संकल्प होताहै तैसीही सृष्टि उसको भासती है । जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष में

दृढ़ संकल्प होता है तो यथाइच्छित पदार्थ निकल आते हैं पर वे कुछ बने नहीं और चिन्तामणि भी परिणाम को प्राप्त हुई ज्योंकी त्यों पड़ी है केवल संकल्प की दृढ़ता से भासि आते हैं; तैसेही यह प्रपञ्च भी आकाशरूप है। जैसे आकाश में शून्यता है तैसेही आत्मा में जगत् है। हे रामजी! सिद्ध के जो वचन फुरते हैं सोही संकल्प की तीव्रता होती है; जो चित्त शुद्ध होताहै तो दूसरी सृष्टि को भी जानता है। जो पुरुष वचन सिद्धि होने के निमित्त वासना को सूक्ष्म करता है अर्थात् रोंकता है तो उससे वचन सिद्धि पाता है और जैसा संकल्प करता है तैसाही सिद्ध होता है। हे रामजी! जितना यह दृश्य की ओर से उपरान्त होकर अन्तर्मुख होता है उतनीही वचनसिद्धि होती जाती है—चाहे वर दे, चाहे शाप दे वह सिद्ध होता है। हे रामजी! एक प्रमाण ज्ञान है कि, यह पदार्थ इस प्रकार है। उसका जो नामरूप है वह सब आकाशरूप भ्रममात्र है—आत्मा में और कुछ नहीं। आत्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग उठते हैं सो आत्मरूपही है; जिनको ऐसा ज्ञान हुआहै उनको इच्छा और अनिच्छा का ज्ञान नहीं रहता और सब आकाशरूप भासता है। हे रामजी! आत्मरूपी फूलमें जगत्रूपी गन्धहै। जैसे पवन और स्पन्द में भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। पत्थर पर लकीर खैंचिये तो वह पत्थर से भिन्न नहीं होती तैसेही ब्रह्म से जगत् भिन्न नहीं। हे रामजी! देश, काल, पृथ्वी आदिक तत्त्व और मैं, मेरा सब आत्मरूप है और अविनाशी है। जिन को ऐसे निश्चय हुआ है उनको राग द्वेष नहीं रहता, उन्हें सब आत्मरूप ही भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपदेशोनाम
शताधिक सप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ १५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्त्व में जो संवेदन फुरी है उससे आगे जगत् भासित हुआ है। जैसे किसी के नेत्र में एक अञ्जन डालकर आकाश में पर्वत उड़ते दिखाते हैं तैसही अनहोता जगत् फुरने से भासता है। हे रामजी! ब्रह्मस्वर्ग और चित्तस्वर्ग में कुछ भेद नहीं परमार्थसे एकही है

और दृष्टि, सृष्टि और वस्तुपर्याय है और नाना तत्त्व भी इसकी भावना से भासते हैं आत्मा में दूसरा कुछ नहीं बना। चित्त और चैत्य आत्मा से भिन्न नहीं; चित्तही चैत्यहोकर भासताहै और ज्ञानसे इनकी एकता होती है-इसीसे दृश्य भी द्रष्टारूप है। जैसे स्वप्न में शुद्ध संवित्‌ही दृश्यरूप होकर स्थित होती है और जागे से एक होजाती है। एकता भी तब होती है जब वही रूप हो, इससे तुम अब भी वही जानो। दृश्य, दर्शन और द्रष्टा त्रिपुटी भी सब वही रूप है। हे रामजी! जो सजाति है उसकी एकता होती है, विजाति की एकता नहीं होती। जैसे जल में जल की एकता होती है, तैसेही बोध से सब की एकता होती है-इससे दृश्य भी वही रूपहै कि, एकता होजाती है। जो दृश्य कुछ आत्मा से भिन्न होती तो एकता न होती। हे रामजी! आकाश आदिक तत्त्व भी आत्मरूप हैं। जिससे ये सर्व हैं; जो यह सर्व है और जो सर्वव्यापी सर्वगत सबको धार रहाहै और सब वही है ऐसे सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है। जो कुछ भासता है सर्व वही है। जैसे जल में गलाने की शक्ति है और काष्ठ में नहीं तैसेही ब्रह्म में भावना स्वभाव है और में नहीं। ब्रह्मभावना से सर्व ब्रह्मही भासता है। हे रामजी! जड़ पदार्थ भी ब्रह्मही हैं क्योंकि; जो भासता है सो ब्रह्मही है जड़ हो तो भासे नहीं। जड़ भी चेतनता शुद्ध संवित् में है; उसमें शब्द चेतन है भिन्न कुछ नहीं भासता। जैसे शुद्ध संवित् में स्वप्ना फुरताहै और उसमें जड़ और चेतन भी भासते हैं परन्तु जो जड़ भासते हैं वे भी उस संवित् में चेतन हैं क्योंकि चेतन हैं तब फुरते हैं। जिनको शुद्ध संवित् में अहंप्रयत्न नहीं वह जान नहीं सक्ता अज्ञानी है परन्तु सब ब्रह्म है। जैसे समुद्र में जल होताहै सो ऊंचे आवे तौ भी जल है और नीचे को जावे तौ भी जल है तैसेही जो कुछ दिखता और भासता है सो सब ब्रह्मस्वरूप है भिन्न नहीं और इन्द्रियों का ग्राम भी आत्मा है। पृथ्वी आदिक तत्त्व जो फुरे हैं उनमें प्रथम आकाश फुराहै, फिर वायु फुरी है; फिर अग्नि, फिर जल और फिर पृथ्वी फुरी है सो सब अनिच्छित चमत्कारकी नाईं फुरे हैं-इससे सब आत्मरूप हैं। जैसे वट-बीजमें वृक्ष होताहै तैसेही आत्मरूपी

बीज में जगत् होता है और नाना प्रकार भासते हैं। हे रामजी! जैसे एक बीजही नानाप्रकार के रूप धारता है परन्तु बीज से भिन्न कुछ नहीं तैसेही आत्मसत्ता नानाप्रकार हो भासती है परन्तु बीज की नाईं भी प्रमाण नहीं। विश्व आत्मा का चमत्कार है इससे वही रूपहै। जैसे सुवर्ण में अनेक भूषण होते हैं सो सुवर्ण से भिन्न नहीं तैसेही विश्व आत्मस्वरूप है द्वैत नहीं और जो आत्मा से इतर हो तो भासे नहीं; इससे जो भासता है सो चेतन रूपहै और दृश्य और द्रष्टा एकही रूपहै; द्रष्टाही दृश्यकी नाईं हो भासता है। हे रामजी! जैसे कोई पुरुष तुम्हारे निकट सोया हो और उसको स्वप्न आवे कि, मेघ गर्जते हैं और नानाप्रकार की चेष्टा होती है तो वह सब उसीको भासता है और तुमको नहीं भासता; तैसेही यह दृश्य तुम्हारी भावना में स्थित है और हमको आकाशरूप है। हे रामजी! चेतन आकाश शान्तरूप है; उसमें सृष्टि कुछ बनी नहीं और जो कुछ उपजा नहीं तो नष्ट भी नहीं होता केवल शान्तरूप है पर भ्रम से जगत् भासता है। जैसे कोई बालक मनोराजसे आकाश में पुतलियां रचे तो आकाश में कुछ नहीं बना परन्तु उसके संकल्प में है; तैसेही यह विश्व मनरूपी बालक ने रचा है उसके रचेहुये में ज्ञानवान् को शून्यता भासती है। हे रामजी! संकल्पमात्रही सृष्टि हुई है; जब इसका संकल्प नष्ट होताहै तब शान्तपद शेष रहताहै। निरहंकार सत्तामात्र असत् की नाईं स्थितहै फिर उस चिन्मात्र अद्वैत में अहन्ता करके जगत् भासि आता है। जब अहन्ता फुरती है तब जगत् भासता है और जब स्वरूप का साक्षात्कार होताहै तब अहन्तारूप भ्रम मिटजाता है। जब अहन्तारूप भ्रम मिटजाता है तब जगत् और इच्छा का भी अभाव होजाताहै, इससे ज्ञानी को इच्छा और वासना कोई नहीं रहती। जब प्रच्छन्नरूप अहन्ता नष्ट होती है तब उस पद को प्राप्त होता है जिस पद में अणिमा आदिक सिद्धियां भी सूखे तृण की नाईं भासती हैं और वह ऐसा आनन्दरूपहै जिसमें ब्रह्मादिक का सुख भी तृण समान भासता है। हे रामजी! जिसको ऐसा ब्रह्मानन्दपद प्राप्त हुआ है उसको फिर किसी की इच्छा नहीं रहती और उसको मारने-

वाले विषयादिक पदार्थ मृतक नहीं करते और जिलानेवाले पदार्थ अमृत आदिक नहीं जिलाते केवल निर्वाणपद में उसकी स्थिति है। हे रामजी! जिस पुरुष को संपूर्ण संसार से वैराग्य हुआहै उसको संसार के पदार्थ सुखदायक नहीं भासते, मिथ्या भासते हैं और वह संसारसमुद्र से पार हुआहै। जिनको संसार की वासना और अहन्ता नष्ट हुई है उनकी मूर्ति देखनेमात्र भासती है और वे निर्वासी ज्ञानवान् शान्तरूप हैं। हे रामजी! इच्छाही बन्धन है जब इच्छा का अभाव हो तब आनन्द हो। इच्छा भी तब फुरती है जब संसर को सत्य जानताहै और संसार की सत्यता अहन्ता से भासती है। जब अहन्तारूपी बीज नष्ट हो तब निर्वाण-पद की प्राप्ति हो। हे रामजी! संसार कुछ बना नहीं—भ्रम से सिद्ध हुआ है। सर्वही ब्रह्म है; उस परमात्मा में जो प्रच्छन्न अहन्ता फुरी वही उपाधि है। हे रामजी! बुद्धि से आदि लेकर जितनी दृश्य है यह जिसको अपने में स्वाद नहीं देती और जो आकाश की नाईं रहता है उसको सन्त मुक्त-रूप कहते हैं। हे रामजी! यह अहं विचार से सत्य भासती है और विचार कियेसे असत्य होजाती है। अनहोती अहन्ता ने दुःख दियाहै; इससे तुम निरहंकार होकर चेष्टा करो। जैसे यन्त्री की पुतली अभिमान से रहित चेष्टा करती है तैसेही तुम निरहंकार होकर चेष्टा करो और अपने स्वरूप में स्थित होरहो तब व्यवहार और अव्यवहार तुमको तुल्य होजावेगा। जैसे पवनको स्पन्द निस्स्पन्द दोनों तुल्य होते हैं तैसेही तुमको होजावेगा और अहंकार से रहित तेरी चेष्टा होगी। अहन्ताही दुःख है; जब अहन्ता का नाश होगा तब तुम शान्त, निर्मल और अनामय पद को प्राप्त होगे जो सर्वपदार्थ का अधिष्ठान है और सबका अपना आप है; उसमें न कोई सुख है; न दुःख है; न कोई इन्द्रियों का विषय है परम शान्तरूप है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणयोगोपदेशो नाम शताधिकाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ १५८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है वह निरावरण है अर्थात् दोनों आवरणों से रहित है। एक असत्यत्वापादक आवरण है

और दूसरा अभावनापादक आवरण है। जो आत्मब्रह्म की सत्यता हृदय में न भासे सो असत्यत्वापादक है और जो आत्मा की सत्यता हृदय में भासे परन्तु दृढ़ प्रत्यक्ष न भासे सो अभावनापादक आवरण है। असत्यत्वापादक आवरण अज्ञानी को भासता है और अभावनापादक आवरण जिज्ञासी को होता है पर ज्ञानवान् को ये दोनों आवरण नहीं रहते इससे वह निरावरण; शान्तरूप, आकाशवत् निर्मल और निरालम्ब किसी गुणत्व के आश्रय नहीं होता और एक द्वैतभ्रम उसका नष्ट हो जाता है क्योंकि, उसने आत्मरूपी तीर्थ का स्नान किया है जो अपवित्र को भी पवित्र करता है। जिस पुरुष ने शरीर में आत्मा का दर्शन किया है उसका शरीर भी पवित्र होताहै। ऐसे पुरुषको शरीरकी सत्यता नहीं रहती और संसार भी नहीं रहता। आत्मा के साक्षात्कार हुये से सब इच्छा नष्ट होजाती हैं और सर्व ब्रह्मही भासताहै—द्वैत कुछ नहीं भासता। सर्व आत्मस्वरूप है पर उसमें संकल्प से नाना प्रकार की सृष्टि भासतीहै। हे रामजी! तुम संकल्प की ओर मत जाओ क्योंकि; चित्त की वृत्ति क्षण क्षण में प्रणमती है और अनन्त योजनपर्यन्त चली जाती है। जो उसके अनुभव करनेवाली सत्ता मध्य में है और जिसके आश्रय वह जाती है सो चिन्मात्र तेरा स्वरूप है। जब तुम उसमें स्थित होकर देखोगे तब फुरने में भी ब्रह्मसत्ता भासेगी। हे रामजी! यह संवित् सदा प्रकाशरूप; चित्त के क्षोभ से रहित और द्वैतरूप विकार से रहित शुद्ध है। जितने प्रकाश हैं उनके विरोधी भी हैं जैसे दीपक का विरोधी पवन है जो निर्वाण करता है और सूर्य का विरोधी राहु केतु है जो घेर लेता है और महाप्रलय में सर्व प्रकाश तम रूप हो जाते हैं पर आत्मप्रकाशतत्त्व सिद्ध है; तम को भी प्रकाशता है और सदा ज्ञानरूप एकरस है। उसको त्यागकर और किसी ओर न लगना। हे रामजी! यह दृश्य सब मिथ्या है; जैसे रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा कल्पित है। जब तुम जागकर देखोगे तब सबका अभाव होजावेगा—जैसे वन्ध्या के पुत्र के रूप का अभाव है तैसेही सब विश्व मिथ्या भासेगा क्योंकि; है नहीं—भ्रममात्र स्वप्ने की नाईं अविचारसिद्ध है और

विचार कियेसे आत्माही है; भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभव से कुछ भिन्न नहीं तैसेही यह आत्मस्वरूप विश्व भी ज्ञानमात्र है और अहं, मम, देह, इन्द्रियादिक भी सब ज्ञानमात्र हैं-दृश्य कुछ दूसरी वस्तु नहीं। जब ऐसे निश्चय धारोगे तब निश्शोक और मोहसे भी रहित होगे और परमार्थसत्ता ज्यों की त्यों भासेगी। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उठते हैं; तैसेही आत्मामें दृश्य उठती है सो वही रूप है और जो भिन्न भासे सो मिथ्या है। सब सृष्टि इसके हृदय में स्थित है पर अज्ञान से बाह्य भासती है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपने भीतर होती है और अपना स्वरूप होता है पर निद्रा-दोष से बाहर भासती है और जब जागता है तब अपनाही स्वरूप भासता है; तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी विचार किये से अपने अनुभव में भासती है। इससे स्थित होकर देखो कि, सर्वदा जागती ज्योति है; उसको त्यागकर और यत्न करना व्यर्थ है। हे रामजी! अपने अनुभव में स्थित होना क्या कष्ट है? जो इसे कठिन जानते हैं वे मूढ़ हैं और उनको मेरी धिक्कार है क्योंकि; वे गऊ के पग को समुद्रवत् जानते हैं उनसे और कौन मूर्ख है। अनुभव में स्थित होना गऊ के पग की नाईं ही तरना सुगम है और जो और पदार्थों के पाने की इच्छा करेगा तो उनमें व्यवधान है पर आत्मा में व्यवधान कुछ नहीं क्योंकि, अपना आप है। हे रामजी! जिन पुरुषों ने आत्मा में स्थिति पाई है उनको मोक्ष की इच्छा भी नहीं तो स्वर्गादिक की इच्छा कैसे हो? मोक्ष और स्वर्ग आत्मामें रस्सी के सर्पवत् मिथ्या भासते हैं-उनको केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होताहै। हे रामजी! स्वप्ने में सुषुप्ति नहीं और सुषुप्तिमें स्वप्ना नहीं-इनके अनुभव करनेवाली शुद्ध सत्ताहै और ये दोनों मिथ्या हैं। उनको निर्वाण और जीना दोनों तुल्य हैं। ऐसे जानकर वे इच्छा किसीकी नहीं करते-प्रपञ्च उनको शशे के सींग और बन्ध्या के पुत्रवत् भासते हैं। हे रामजी! हमको तो संसार सदा आकाशरूप भासता है। यदि तुम कहो कि उपदेश क्यों करते हो? तो हमको कुछ भास नहीं तुम्हारीही इच्छा तुमको वशिष्ठरूप होकर उपदेश करती है। हमको विश्व सदा शून्यरूप भासता है और हमको चेष्टा करते

भी अज्ञानी जानते हैं पर हमारे निश्चय में चेष्टा भी नहीं और हमारी चेष्टा कुछ अर्थाकार भी नहीं। अज्ञानी की चेष्टा अर्थाकार होती है हमारी चेष्टा सत्य नहीं इससे अर्थाकार भी नहीं होती। जैसे ढोल के शब्द का अर्थ नहीं होता कि, क्या कहता है और वाणी से जो शब्द बोला जाता है उसका अर्थ होता है; तैसेही हमारी चेष्टा अर्थाकार नहीं अर्थात् जन्म नहीं देती और अज्ञानी की चेष्टा जन्म देती है। हमको संसार ऐसे भासता है जैसे अवयवी सर्व अवयवों को अपना स्वरूपही देखता है अर्थात् हस्त, पाद, शीश आदिक सबको अपनेही अङ्ग देखताहै। हे रामजी! जगत में एक ऐसे जीव दृष्टि आते हैं कि, उनको हम स्वप्न के जीव भासते हैं और हमको वे शून्य आकाशवत् दृष्टि आते हैं और उनके हृदय में हम नाना प्रकार की चेष्टा करते और की नाईं भासते हैं। हमको तो जगत् ऐसे भासता है जैसे समुद्र में तरङ्ग। मैं भी ब्रह्म हूं; तुमभी ब्रह्म हो, जगत भी ब्रह्म है और रूप, अवलोक, मनस्कार सब ब्रह्मरूप है; इससे तुम भी ब्रह्मकी भावना करो। अपने स्वभाव में स्थित होना परमकल्याण है और परस्वभाव में स्थित होना दुःख है। हे रामजी! अपना स्वभाव साधने का नाम मोक्ष है और न साधने का नाम बन्धन है। हे रामजी! धन, मित्र क्रिया आदि कोई पदार्थ उपकार नहीं करता केवल अपना पुरुषार्थ ही उपकार करता है सो यही है कि, अपने चैतन्य स्वभाव में स्थित होना और परस्वभाव का त्याग करना। जब अपने स्वभाव में स्थित होगे तब सब अपना स्वरूपही भासेगा। जो स्वरूप से भिन्न होके देखो तो न मैं हूं; न तुमहो और न जगत् है; सब भ्रममात्र है और मृगतृष्णा के जलवत् भासता है। ऐसे जानो कि, मैं भी ब्रह्म हूं; तुमभी ब्रह्म हो और जगत् भी ब्रह्म है; वा ऐसे जानो कि, न तुमहो, न मैं हूं और न जगत् है तो पीछे जो शेष रहेगा सो तुम्हारा स्वरूप है। हे रामजी! जिन पुरुषों को ऐसे निश्चय हुआ है कि; मैं, तू, और जगत् सब ब्रह्म है अथवा मैं, तू और जगत् सब मिथ्या है; उनको फिर कोई इच्छा नहीं रहती और जिनको इच्छा उठती है उनको जानिये कि, ब्रह्मआत्मा का साक्षात्कार

नहीं हुआ। जब भोगों की वासना निवृत्त हो और संसार विरस होजावे तब जानिये कि, यह संसार से पार हुआ अथवा होगा। हे रामजी! यह निश्चय करके जानो कि; जिसको भोगों की वासना क्षीण होती है उसको स्वभावरूपी सूर्य उदय होता है और भोगों की तृष्णारूपी रात्रि नष्ट होती है। यद्यपि उसमें प्रत्यक्ष भोगों की तृष्णा दृष्टि आती है तौ भी उसकी भास जाती रहती है और ब्रह्मसत्ता ही भासती है। संसार की ओर से वह सुषुप्त और मृतक की नाईं होजाता है, अपने स्वरूप में सदा जाग्रत् रहता है और अपने स्वभावरूपी अमृत में मग्न होताहै।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वशिष्ठगीतोपदेशो नाम शताधिकैकोनषष्टितमस्सर्गः ॥ १५९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार यह परस्वभावहै; इन को ब्रह्मरूप जानो। परस्वभाव क्याहै और ब्रह्मरूप क्याहै? सो भी सुनो। हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप शुद्ध आकाश है और उसमें जो रूप, अवलोक और मनस्कार फुरे हैं सो प्रकृतिकी मायासे फुरे हैं। माया स्वभावसे परस्वभावहै परन्तु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ताहै इससे आत्मस्वरूप है। आत्मा के जानेसे इसका अभाव होजाता है। हे रामजी! जब ज्ञान उपजताहै तब संसार स्वप्नवत् होजाताहै और उसकी सत्ता कुछ नहीं भासती। जब दृढ़ता होती है तब सुषुप्त होजाता है इनका भाव भी नहीं रहता और तुरीया में स्थित होता है। जब तुरीयातीत होता है तब अभाव का भी अभाव होजाता है और परमकल्याणरूप सत्ता समानपद को प्राप्त होता है जो आदि अन्त से रहित परमपद है। ऐसा मैं ब्रह्मस्वरूप परमशान्तरूप और निर्दोष हूं और जगत् भी सब ब्रह्मरूप है। हमको सदा यही निश्चय रहता है और ऐसा उत्थान नहीं होता कि; मैं वशिष्ठ हूं। हमारा प्रच्छन्न अहंकार नष्ट होगया है इससे हम निरहंकारपद में स्थित हैं। जब तुम ऐसे होकर स्थित होगे तब परम निर्मल स्वरूप होजाओगे। जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभताहै तैसेही तुमभी शोभोगे। हे रामजी! कैसे पुरुष को बन्धन है सो भी सुनो जिससे वह आत्मपद को

नहीं प्राप्त होता। प्रथम धन मणि का बन्धन है, दूसरे भोग की तृष्णा और तीसरे बान्धवों का बन्धन है। जिसको इन तीनों की वासना रहती है उसको मेरा धिक्कारहै। बड़े अनर्थ की देनेवाली यह वासना है। यह भोग महारोग है; बान्धव दृढ़बन्धनरूप है और अर्थ की प्राप्ति अनर्थ का कारण है। इससे इस वासना को त्यागकर आत्मपद में स्थित होरहो। यह संसार भ्रममात्र है, इसकी वासना करना व्यर्थ है और इसको सत्य न जानना। यह जो तुम को संग और मिलाप भासता है सो कैसा है जैसे बैठे हुये स्मरण आवे कि, मैं अमुक से मिला था तो वह प्रतिभा प्रत्यक्ष हृदय में भासती है। जैसे संकल्प से नगर रच लिया तो उसमें मनुष्यादिकके चित्र भासनेलगते हैं तैसेही इस जगत् को भी जानो। हे रामजी! तुम, मैं और यह जगत् भ्रममात्र संकल्पनगरके समानहै। जैसे भविष्यत् नगर की रचना है तैसेही यह जगत् है। कर्ता क्रिया कर्म जो भासते हैं सोभी भ्रममात्र हैं केवल आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। आत्मरूपी आकाश में यह जगत्रूपी पुतलियां हैं और संकल्पमात्र प्रत्यक्ष हुआ है वास्तव में केवल शान्तरूप आत्मतत्त्व है। हे रामजी! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं उनको आत्मतत्त्वही भासताहै और जिनको आत्मतत्त्व का प्रमाद है उनको नाना प्रकार का जगत् भासता है पर आत्मा में यह जगत् कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना। जैसे सूर्य की किरणों में अज्ञान से जलाभास भासते हैं तैसे ही आत्मा में अज्ञान से जगत् की प्रतीति होतीहै। जब आत्मा का सम्यक्ज्ञान हो तब जगत् भ्रम निवृत्त होजाता है—जैसे सूर्य की किरणों के जानेसे जलभ्रम निवृत्त होजाता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वशिष्ठगीतासंसारोपदेशोनाम शताधिकषष्टितमस्सर्गः ॥ १६० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! रूप, अवलोक, मनस्कार सब ब्रह्मरूप हैं। जिसको ज्ञान प्राप्त होता है उसको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है—यही ज्ञान का लक्षण है। ज्यों ज्यों ज्ञानकला उदय होती है त्यों त्यों भोगों की वासना क्षीण होती जाती है और जब पूर्णबोध की प्राप्ति होतीहै तब किसीको इच्छा

नहीं रहती । जैसे ज्यों ज्यों सूर्य प्रकाशता है त्यों त्यों अन्धकार नष्ट होता जाता है और जब पूर्ण प्रकाश होता है तब रात्रि का अभाव होजाता है; तैसेही जिसको ज्ञान उत्पन्न हुआ है उसको भोगों की वासना नहीं रहती और संसार उसको जले वस्त्र की नाईं भासता है पर अज्ञानी को सत्य भासता है । जैसे स्वप्नेमें सुषुप्ति नहीं होती और सुषुप्ति में स्वप्न नहीं होता और स्वप्ने का पुरुष सुषुप्ति को नहीं जानता और सुषुप्तिवाला स्वप्ने-वाले को नहीं जानता तैसेही जिसको तुरीयापदकी प्राप्ति होती है उसको संसार का अभाव होजाता है और वह अपने स्वभाव में स्थित होता है। जो संसार को सत् जानते हैं वे स्वप्ननगर हैं—सुषुप्ति को नहीं जानते। हे रामजी ! तेरा स्वरूप जो तुरीयापद है उसको अज्ञानी नहीं जानसक्के और जो जानें तो उनका प्रच्छन्न अहंकार नष्ट होजावे । जब अहंकार नष्ट हो तब सर्व आत्मा हुआ । हे रामजी ! जीव को अहन्ता ने तुच्छ किया है; इससे तुम अहन्तारूप दृश्य का त्याग करके अपने स्वभाव में स्थित होरहो । संसाररूपी एक पुतली है जो भ्रमसे उठी है; उसका शीश ऊर्ध्व ब्रह्मलोक है; टखने और पांव पाताललोक हैं; दशोंदिशा वक्षस्स्थल हैं; चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं; तारागण रोम हैं; आकाश वस्त्र है; सुखदुःख-रूपी स्वभाव है; पवन प्राणवायु है; बग़ीचे भूषण हैं; द्वीप और समुद्र कङ्कण हैं और लोकालोकपर्वत मेखला है । हे रामजी ! ऐसी जो पुतली है सो नृत्य करती है । जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और नाश होते हैं परन्तु जल ज्योंका त्योंही है तैसेही जल की नाईं सर्व ब्रह्मरूप है और भ्रम से विकार दृष्टि आते हैं । हे रामजी ! कर्ता, क्रिया और कर्म भी आत्मस्वरूप हैं । जब तुम आत्माकी भावना करोगे तब तुम्हारा हृदय आकाशवत् शून्य हो जावेगा । जैसे पत्थर की शिला जड़ होती है; तैसेही तुम्हारा हृदय जगत् से जड़ और शून्य हो जावेगा । हे रामजी ! आत्मपद शान्तरूप और आकाशवत् निर्मल है । जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मा में जगत् है; न उदय होता है और न अस्त होता है केवल शान्तरूप है । उदय अस्त भी तब होता है जब

कुछ दूसरी वस्तु होती है पर जगत् कुछ भिन्न नहीं आत्मास्वरूप ही है। द्वैत और एक कल्पना से रहित आत्मा अपने आप में स्थित है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपशमयोगोपदेशो नाम शताधिकैकषष्टितमस्सर्गः॥ १६१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व आत्माका चमत्कार है! जैसे मृत्तिकाकी पुतली मृत्तिकारूप और काग़ज़की पुतली काग़ज़रूप होती है तैसेही विश्व आत्मरूप है। जैसे मृत्तिका का दीपक देखनेमात्र होताहै और प्रकाश का कार्य नहीं करता तैसेही यह जगत् देखनेमात्र है विचार किये से आत्मा के सिवा भिन्नसत्ता कुछ नहीं; इससे जगतकी सत्यता आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। जगत् की आस्था आत्मा के आश्रित होती है। जैसे जल में तरङ्ग; आकाश में शून्यता और पवन में फुरना है तैसेही आत्मा में जगत् अभिन्नरूप है; और जैसे वायु चलती है तबभी पवन है क्योंकि, उसको वायुका निश्चय है; तैसेही चैतन्य में निश्चय है कि, जगत् वही स्वरूप है-इससे चैतन्य है। ज्ञानवान् जानता है कि, जगत् मेराही स्वरूप है। हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि, जगत् कुछ दूसरी वस्तु नहीं और भ्रम करके भिन्न भासता है। जैसे कथा में कथा के पुरुष विद्यमान भासते हैं और क्रिया करते हैं तैसेही इस जगत् को भी मनोमात्र जानो। हे रामजी! जो विद्यमान है सो अविद्यमान होजाता है और जो अविद्यमान है सो विद्यमान होजाता है। जैसे स्वप्न में जगत् अनुभवस्वरूप है-भिन्न नहीं तैसेही जाग्रत् जगत् विचारकर देखोगे तब ब्रह्मस्वरूपही भासेगा। जैसे जो पुरुष सोया होता है और स्वप्न जगत् उसीका रूपहै परन्तु जबतक निद्रादोष है तबतक भिन्न भासता है पर जब जागा तब सब अपनाही आप भासता है, तैसेही जब मनुष्य अपने स्वरूप में स्थित होकर देखता है तब सब अपना आपही भासता है। हे रामजी! रूप, अवलोक, मनस्कार भी ब्रह्मस्वरूप है पर आत्मा इन्द्रियों का विषय नहीं, वह तो निराकार है और मन के चिन्तने से रहित है। संकल्प से आपही रूप, अवलोक और मनस्कार करके स्थित हुआ है, भिन्न नहीं। सर्व वही है

और शास्त्रकारोंने शिव, ब्रह्म, आत्मा, शून्य आदि उसके नाम संकल्प में कहे हैं। आत्मा केवल चिन्मात्र है; वह वाणी का विषय नहीं और शान्तरूप, चैत अर्थात् दृश्यसे रहित और सर्व शब्दअर्थोंका अधिष्ठान है और जगत् उसका चमत्कार है। हे रामजी! आत्मा में एक और द्वैत-कल्पना कोई नहीं क्योंकि; वह आत्मत्वमात्रहै और जगत् भी आत्मरूप है। जैसे आकाश और शून्यता में भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत्में भेद नहीं। हे रामजी! यदि ऐसा भी किसी देश अथवा काल में हो कि; सुवर्ण और भूषण में कुछ भेद हो अर्थात् सुवर्ण भिन्न हो और भूषण भिन्न हो परन्तु आत्मा और जगत्में भेद नहीं; आत्माही ऐसे प्रकाशता है और अपने स्वभाव में स्थित है दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे मृत्तिकाकी सेना नाना प्रकारकी संज्ञा धारती है परन्तु मृत्तिका से भिन्न कुछ दूसरी वस्तु नहीं है तैसेही फुरने से नाना प्रकार की संज्ञा दृष्टि भी आती हैं परन्तु आत्मासे भिन्न नहीं—वही रूप है। हे रामजी! यह सर्वपदार्थ अनुभव से भासते हैं। पदार्थ की सत्ता अनुभव से भिन्न नहीं। जब तुम अनुभवमें स्थित होकर देखोगे तब अनुभवरूप अपना आपही भासेगा। अपना स्वभाव ज्ञानमात्र है; उसीके जाननेका नाम ज्ञान है। हे रामजी! ज्ञान विना जो तप, यज्ञ, दान आदिक क्रिया हैं सो सब व्यर्थ हैं। सब क्रियाओंकी सिद्धि ज्ञानसे होती है। हे रामजी! जो कुछ क्रिया ज्ञानके निमित्त कीजिये सोही पुरुषप्रयत्न श्रेष्ठ है और इससे अन्यथा व्यर्थ है। धन के उपजाने में भी और रखने में भी कष्ट है परन्तु जो ज्ञान के साधन निमित्त इसको रखिये और दीजिये तो यह अमृत होजाता है। हेरामजी! यह जगत् भ्रममात्र है। जैसे मलीन नेत्रवाले को रूप विपर्यय भासता है और स्वप्ने की सृष्टि में अज्ञ तज्ञ भी भासते हैं परन्तु असत्यरूप हैं; तैसेही यह जगत् विद्यमान भासता है पर अविद्यमान है और आत्मा सदा विद्यमान है। हे रामजी! विद्यमान देव जो विष्णु हैं उनको त्याग कर जो और देव का पूजन करते हैं उनकी पूजा सफल नहीं होती और विष्णु उन पर कोपमान भी होते हैं इसी तरह आत्मा जो अनुभवरूप

विद्यमान है उसको त्यागकर जो और की पूजन करते हैं वे जन्म मरण के बन्धन से मुक्त नहीं होते-मूढ़ता में रहते हैं। आत्मदेव की पूजा सुनो। जो कुछ अनिच्छित आवे सो उसको अर्पण कीजिये और इसके जानने-वाले में अहंप्रत्यक्ष करना-यही बड़ी पूजा है। हे रामजी! इस आत्मदेव से भिन्न जो सूर्य, चन्द्रमा आदिक भेदपूजा है सो तुच्छ है। जब तुम आत्मपूजा में स्थित होगे तब और पूजा तुमको सूखे तृण की नाईं भासेगी। दान भी आत्मदेव को ही करना है सो बोध से करने योग्य है और वैराग्य, धैर्य और संतोष बोध का कारण है। यथालाभ में संतुष्ट रहकर ब्रह्मविद्या का विचार करो और सन्तों का संग करो। इन साधनों से जब बोधरूपी सूर्य उदय होगा तब द्वैतरूपी अन्धकार नष्ट होजावेगा और ज्ञानरूप ही भासेगा। फिर जो ज्ञान उपजा है वह भी शान्त होजावेगा-इससे उसी देव की पूजा करो जिससे आत्मपद को प्राप्त हो। आत्मदेव की पूजा के निमित्त फूल भी चाहिये इसलिये आत्मविचार करके चित्त की वृत्ति अन्तर्मुख करना और यथालाभ में संतुष्ट रहकर सन्तों की संगति करना-इन फूलों से निवेदन करना। यह पूजा भी तब होती है जब अन्तःकरण शुद्ध होता है; उससे ज्ञान उत्पन्न होता है और जब ज्ञान उपजता है तब आत्मदेव का साक्षात्कार होता है। ज्ञान का लक्षण सुनो। गुरु और शास्त्रसे जो वस्तु सुनी है उसमें स्थित होती है और संसार की वासना क्षीण होजातीहै तब ज्ञानी कहाता है। जब इस ज्ञान की पूर्णता होती है तब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूपही भासताहै और तब उसको शस्त्र काट नहीं सके और सिंह, सर्प, अग्नि और विषका भी भय नहीं होता। हे रामजी! यह विश्व सब आत्मरूपहै। जैसी भावना कोई करता है तैसाही आगे हो भासताहै। जब शस्त्र में शस्त्रके अर्थकी भावना होती है तब शस्त्र ही भासते हैं; इसीप्रकार सर्प और अग्नि सब अपने २ अर्थाकार भासते हैं। जो सर्व आत्मभावना होती है तब सर्व आत्मा ही भासताहै क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ बनी नहीं तो दिखाई कैसे दे। जो पुरुष कृतकृत्य नहीं हुआ और आपको कृतार्थ मानताहै पर दुःख की निवृत्तिका उपाय नहीं

करता तो दुःखके आयेसे दुःखही होवेगा और दुःख उसको चलालेजावेगा और जब सुख आवेगा तब सुखभी चलालेजावेगा। हे रामजी! जो पुरुष सर्व ब्रह्म कहाता है पर निश्चय से रहित है और शास्त्र भी बहुत देखता है वह महामूर्ख है। जैसे जन्म का अन्धा सूर्य को नहीं जानता तैसेही वह आत्मअनुभव से रहित है। जब आत्मपद का साक्षात्कार होगा तब ऐसा आनन्द प्राप्त होगा जिसके पाये से और पदार्थ रससे रहित भासेंगे और ब्रह्मा से काष्ठपर्यन्त सब पदार्थ विरस होजावेंगे। इससे आत्मपरायण होकर सदा आत्मपदकी भावना करो। हे रामजी! जैसे शुद्धमणि के निकट जैसी वस्तु रखिये तैसाही प्रतिबिम्ब होता है तैसेही जीव जैसी भावना करता है तैसाही रूप भासता है। इससे जगत् को ब्रह्मस्वरूप जानो और जो दूसरा भासे उसे भ्रममात्र जानो। जैसे पत्थर की शिलापर पुतलियां लिखते हैं सो शिलारूप ही हैं तैसेही यह सब जगत् आत्मस्वरूप है। जब आत्मपद की तुमको प्राप्ति होगी तब सब पदार्थ विरस होंगे। हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है। जो पुरुष इस जगत् को पदार्थ जानता है और कहता है कि, हम मुक्त होंगे सो ऐसा है जैसे अन्धेकूप में जन्म का अन्धा गिरे और कहे कि, अन्धकार के साथ मैं सचक्षु हूंगा। वह मूर्ख है क्योंकि, आत्मज्ञान विना मुक्त नहीं होता।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पुनर्निर्वाणोपदेशो नाम शताधिकद्विषष्टितमस्सर्गः ॥ १६२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अहन्ता आदि जो जगत् भासता हैं सो मिथ्या भ्रम करके उदय हुआहै; इसको त्यागकर अपने अनुभवस्वरूप में स्थित हो। इस मिथ्या जगत् में आस्था करनी तो मूर्खता है। जो ज्ञानवान् है उसको जगतभ्रम का अभाव है। अब ज्ञानी और अज्ञानी का लक्षण सुनो। हे रामजी! जैसे किसी पुरुष को ताप चढ़ता है तो उसका हृदय जलता है और तृषा बहुत होती है पर जिसका ताप नष्ट होगया है उसका हृदय शीतल होता है और जल की तृषा भी नहीं होती; तैसेही जिस पुरुष को अज्ञानरूपी ताप चढ़ाहुआ है उसका हृदय जलता है और

भोगरूपी जल की तृष्णा बहुत होतीहै पर जिसके हृदय में अज्ञानरूपी ताप मिटगयाहै उसका हृदय शीतल होता है और भोगरूपी जल की तृष्णा मिटजातीहै। अब ताप निवृत्त करने का उपाय सुनो। शास्त्रों के अर्थवाद से तो बुद्धिभ्रम होजाता है और मैं तुमसे सुगम उपाय कहताहूं कि; निरहंकार होनाही सुगम उपायहै। 'न मैं हूं' और 'न यह जगत् है'; जब तुम ऐसा निश्चय धारोगे तब सब जगत् तुमको ब्रह्मस्वरूप भासेगा और किसी पदार्थ की वाञ्छा न रहेगी। जब सब पदार्थों को मिथ्या जानकर अपना भी अभाव करोगे तब पीछे प्रत्येक चैतन्य परमानन्दस्वरूप सबका अधिष्ठान शेष रहेगा। हे रामजी! यह अहन्तारूपी यक्ष जो उठा है सो मिथ्या है और उस मिथ्या पुरुष ने नाना प्रकार का जगत् कल्पाहै। अहंकार भी मिथ्याहै और जगत् भी मिथ्या है। जब तुम अपने स्वरूप में स्थित होगे तब जगत् भ्रम मिटजावेगा। जैसे स्वप्न के जगत् में सुन्दर पदार्थ भासते हैं और मनुष्य उनकी इच्छा करता है। जबतक जागता नहीं तबतक जानता है कि, ये पदार्थ कदाचित् नाश न होंगे और कहता है कि, अमुकरूप देखिये और अमुक भोजन कीजिये पर जब जाग उठा तब जानता है कि, मेराही संकल्प था और फिर वे पदार्थ सुन्दर स्मरण भी होते हैं अथवा भासते हैं तो भी उनको मिथ्या जानता है; तैसेही जब आत्मस्थिति में जागताहै तब सर्वब्रह्म ही भासता है। हे रामजी! इस जगत् का बीज अहन्ताहै। जैसे दुःख का बीज पाप होता है तैसेही जगत् का बीज अहन्ताहै, इससे तुम निरहंकार पद में स्थित होरहो। यह सब तुम्हाराही स्वरूप है पर भ्रम से जगत् भासताहै। हे रामजी! जगत् का अत्यन्ताभाव है। जैसे रस्सी में सर्प का अत्यन्ताभाव है पर भ्रमदृष्टि से सर्प भासताहै और जब विचाररूपी दीपक से देखिये तो सर्प का अभाव होजाताहै तैसेही आत्मा में यह जगत् भ्रम से भासताहै। जब विचार करके जगत् का अभाव निश्चय करोगे तब आत्मपद ज्यों का त्यों भासेगा। जैसे जब वसन्तऋतु आतीहै तब सब फूल, फल और डालें दृष्टि आते हैं सो एकही रस इतनी संज्ञा को धारता है; तैसेही तुम जब

आत्मपद में स्थित होगे तब तुमको सब आत्मरूपही भासेगा। और सर्व-
नामभी आत्माही भासेगा। हे रामजी! आदि भी आत्माहीहै और अन्त
में भी आत्माही होगा पर मध्य में जो जगत् के पदार्थ भासते हैं उनकी
ओर मतजाओ-जो इनका जाननेवाला है और जिससे सबपदार्थ प्रका-
शते हैं उसमें स्थित होरहो। ये सब मनुष्य मृगकी नाईं हैं। जैसे मरुस्थल
में जल जानकर मृग दौड़तेहैं तैसेही जगत्रूपी मरुस्थल की भूमिका शून्य
है और तीनोंलोक मृगतृष्णाके जल हैं उनमें मनुष्यरूपी मृग दौड़ते हैं
और दौड़ते २ हारजाते हैं कदाचित् शान्ति नहीं होती क्योंकि; जगत् के
पदार्थ सब असत्य हैं। हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार सब
मृगतृष्णाके जल हैं; इनको जो सत्य जानता है वह मूर्ख है। यह जगत्
गन्धर्बनगर की नाईंहै तुम जागकर देखो; इनको सत्य जानकर क्यों तृष्णा
करतेहो। इनको सत्य जानकर तृष्णा करनाही बन्धन है। हे रामजी!
तुम आत्मा हो। इसकी इच्छा से बन्धवान् क्यों होतेहो? जैसे सिंह पिंजरे
में आकर दीन होता है पर बल करके जब पिंजरे को तोड़डालता है
तब बड़े वनमें जाय निवास करता है और निर्भय होता है तैसेही तुमभी
वासनारूपी पिंजरे को तोड़कर आत्मपद में स्थित होरहो जो सर्वका अधि-
ष्ठान और सबसे उत्कृष्ट है। जब तुम उस पद को प्राप्त होगे तब इस संसार
की वासना नष्ट होकर आनन्द होगा और तुम निर्वाण पद को प्राप्त
होकर अफुर होगे; परम उपशम ज्ञेय पद को प्राप्त होगे और द्वैतभाव मिट-
कर केवल परमार्थसत्ता भासेगी-इसीका नाम निर्वाणहै। जैसे कोई मार्ग
चलकर तपता आवे तो वह शीतल स्थान में आकर शान्ति पाताहै तैसेही
यह चारों भूमिका शान्ति का स्थान है। निर्वाणता, निरहंकारता, वासना
का त्याग और परम उपशम इनसे ज्ञेय में स्थित होना। जब तुमभी इन
शान्तियों में स्थित होगे तब द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटी का अभाव हो
जावेगा और केवल द्रष्टाही रहेगा। हे रामजी! द्रष्टा भी उपदेश जताने
के निमित्त कहा है; जब दृश्य का अभाव हुआ तब द्रष्टा किसका हो;
केवल अपने आपमें स्थित हो जो शुद्ध है यह जगत् बुद्धि जन्म का

देनेवाला है। जो जगत् के पदार्थ सुखदायी भासते हैं सो दुःख के देनेवाले हैं, इनको विष जानकर त्याग करो। जैसे आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसेही यह जगत् अनहोता भासता है–आत्मा में दृश्य नहीं। एकही पदार्थ में दो दृष्टि हैं ज्ञानी उसको आत्मा और अज्ञानी जगत् जानते हैं।

दो० सब भूतन की रात्रि में, सन्तन का दिन होय।
जो लोकन दिन मानियां, सन्त रहे तब सोय॥

ज्ञानी परमार्थतत्त्व में जागते हैं और संसार की ओर से सोरहे हैं और अज्ञानी परमार्थतत्त्व में सोये हुये हैं और संसार की ओर सावधान हैं। हे रामजी! यह जगत् मन से फुरा है और ज्ञानी का मन सत्पद को प्राप्त हुआ है इससे उसे जगत् की भावना नहीं फुरती। जैसे बालक को संसार के पदार्थों का ज्ञान नहीं होता तैसेही ज्ञानी के निश्चय में जगत् कुछ वस्तु नहीं। हे रामजी! जब ज्ञान उपजता है तब जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं भासता। जैसे जल की बूंदें जल में डालिये तो भिन्न नहीं भासतीं तैसेही ज्ञानी को जगत् भिन्न नहीं भासता। जैसे बीज में वृक्ष होता है तैसेही मन में जगत् स्थित होता है और जैसे वृक्ष बीजरूप है; तैसेही जगत् मनरूप है जब जगत् नष्ट हो तब मन भी नष्ट होजावेगा और मन नष्ट हो तब दृश्य भी नष्ट होगी–एकके अभाव हुये दोनों का अभाव होजाता है–मन नष्ट हो तो फुरना भी नष्ट हो और फुरना नष्ट हो तो मन भी नष्ट होताहै। हे रामजी! जगत् के भी भीतर बाहर जो भासताहै वही मन है। इससे जब मन को स्थित करके देखोगे तब जगत् की सत्यता न भासेगी। अज्ञानी के हृदय में जगत् दृढ़ स्थित है इससे वह दुःख पाता है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में भूत भासता है तिससे वह दुःख पाता है और जो कोई निकट खड़ाहै उसको नहीं भासता इससे वह दुःख नहीं पाता। हे रामजी! यह जगत् कुछ सत्य वस्तु होती तो ज्ञानवान् को भी भासता पर ज्ञानी को नहीं भासता इससे जगत् कुछ वस्तु नहीं है। जैसे एकही स्थान में दो पुरुष बैठे हों और एक को निद्रा आवे तो उसको स्वप्न का जगत् भासता

है और नानाप्रकार की चेष्टा होतीहै पर दूसरा जो बैठा जागताहै उसको उसका जगत् नहीं भासता; तैसेही जो पुरुष परमार्थसत्ता से जाग्रत् है उसको जगत शून्य भासता है। हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है; उसकी तृष्णा तुम काहेको करते हो—अपने स्वभाव में स्थित होरहो। यह जगत् परस्वभाव है—ऐसे जानकर चाहे जैसी चेष्टा करो तुमको बन्धन न करेगी और पूर्णपद की प्राप्ति होगी। जैसे अग्नि से जले सूखे तृण को पवन उड़ा लेजाता है और नहीं जाना जाता कि, कहां गया; तैसेही ज्ञानरूपी अग्नि से जलाया और निरहंकारतारूप पवन से उड़ाया हुआ संसाररूपी तृण न जाना जायगा कि; कहां गया? जैसे लाखयोजन पर्यन्त चला जावे तौ भी यही दृष्टि आताहै कि आकाशही सब सृष्टि को धार रहाहै; तैसेही सब दृश्य जगत् को आत्मा धारताहै। संसारका शब्द अर्थ आत्मा में कोई नहीं, इसको छोड़कर देखो कि, सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान आत्माही है। हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार मिथ्या उदय हुयेहैं—इनका त्याग करो। जैसे मरुस्थल में जलाभास मिथ्या है तैसेही आत्मा में जगत् मिथ्या भ्रममात्र है। इसका सम्बन्ध करके जीव दुःखी होताहै। जैसे रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा मिथ्या है, तैसेही आत्मा में जगत् है। तुम आत्मब्रह्म हो, दुःखसे रहित अपने स्वभाव में स्थित रहो और आत्मदृष्टि से देखो कि, सर्व आत्मा है; अथवा जगत् को मिथ्या जानो तौभी शेष आत्मपद ही रहेगा। जैसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके अभाव हुयेसे शान्तपद शेष रहताहै, तैसेही जगत् के अभाव कियेसे आत्मपद शेष भासेगा। इस जगत् का अत्यन्ताभावहै और जो दृष्टि आता है सो भ्रममात्रहै। जो एक काल में होताहै वह दूसरे काल में नष्ट होजाताहै। स्वप्न में जाग्रत् का अभाव होजाताहै और जाग्रत् में स्वप्न का अभाव होजाताहै पर सुषुप्ति में दोनों का अभाव होजाता है इससे वे भ्रममात्र हैं विश्व आत्मा का चमत्कार है। जैसे समुद्र में तरङ्ग होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् है। अहन्ता से यह उदय होता है और अहन्ता के अभाव से अभाव होजाता है। जिनकी अहन्ता का अभाव हुआ है वेही सन्त और उत्तम पुरुष हैं; उन

महानुभाव पुरुषों का अभिमान और भोगों की आशा नष्ट होजाती है वे निर्भ्रान्तिरूप नित्यही समाधिरूप होते हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनन्नाम शताधिकत्रिषष्टितमस्सर्गः ॥ १६३ ॥

रामजी बोले; हे भगवन्! यह मनरूपी मृग भटकता है और वन में जलता है; वह समाधानरूप कौन वृक्ष है जिसके नीचे आकर शान्त हो? उसके फूल, फल और लता कैसे हैं और वह वृक्ष कहां होता है। सो कृपा-करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसप्रकार समाधानरूप वृक्ष उत्पन्न होता है सो सुनो। इसके पत्र, पुष्प और लता आदि सब समा-धानरूप हैं। हे रामजी! यह वृक्ष सबजीवों को कल्याण के निमित्त साधना योग्य है अब तुम इसका क्रम सुनो। बलसे तो यह उत्पन्न होता है और सन्तजनों के वन में यह वृक्ष उपजता है; चित्तरूपी पृथ्वी में लगता है और वैरागरूपी इसका बीज है। वैराग दो प्रकार से प्राप्त होता है—एक तो दुःख और कष्ट प्राप्त होनेसे वैराग उपज आता है; दूसरे शुद्ध निष्काम हृदय होता है तौभी वैराग उपजता है। उस वैरागरूपी बीजको जब चित्तरूपी भूमिका में डालते हैं; वासनारूपी हल फेरते हैं और सन्तों की संगति और सत्शास्त्ररूपी जल जो निर्मल; शीतल और हृदयागम्य है मनरूपी क्यारी में पड़ता है तब उस वृक्ष के बढ़ने की आशा होती है। क्रियारूपी झाड़ू से जब अनुभवरूपी कूड़ेको दूर करते हैं; बहुत जलसे भी उसकी रक्षा करते हैं अर्थात् आत्मविचाररूपी सूर्य की किरणों से सुखाते हैं और उसके चहुँफेर धैर्यरूपी बाड़ी करते हैं और तप, दान, तीर्थ, स्नान-रूपी चौतरे पर उस बीज को रखके बैठते हैं कि, जल न जावे और आशा-रूपी पक्षीसे रक्षा करते हैं कि; वैरागरूपी बीज को काढ़ न लेजावे और अभिलाषारूपी बूढ़े बैलसे रक्षा करते हैं कि, क्षेत्र में प्रवेश करके उसको मर्दन न करे उसके निमित्त सन्तोष और सन्तोष की स्त्री मुदिता दोनों बैठारखते हैं और इस बीज का नाशकर्ता जो मेघसे उपजता है कुहिरा उससे भी रक्षा करते हैं। संपदा, धन और सुन्दर स्त्रियोंकी प्राप्ति होनीही

वैरागरूपी बीजका नाशकर्ता ओला है। इसकी रक्षा का एक सामान्य उपाय है और एक विशेष उपाय है। तप करके इन्द्रियों को सकुचाना; दुःखीपर दया करना और सन्तोषमात्र पाठ और जाप करना इत्यादिक शुभ क्रियारूपी यन्त्री की पुतली इसके विद्यमान रखिये तो सब विघ्न दूर होजाता है। दूसरा परम उपाय यहहै कि, सन्तोंकी संगति करके सत्शास्त्रों का सुनना, प्रणव जो ॐकार[1] है उसका ध्यान और जप करना और उसका अर्थ विचारना यही त्रिशूलरूप ओलों के नाश का परमउपाय है। जब इतने शत्रुओं से रक्षा करे तब उस बीज की उत्पत्ति हो। सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के विचाररूपी वर्षाकाल के जल से सींचिये तब अंकुर निकलता है और बड़ा प्रकाश होताहै। जैसे द्वितीया के चन्द्रमा को सबकोई प्रणाम करताहै तैसेही सन्तोष दया और यशरूपी अंकुर निकलता है। उसके दो पत्र निकलते हैं–एक वैराग दूसरा विचार और वे दिन प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं। शास्त्रों से जो सुना है कि; आत्मा सत्य है और जगत् मिथ्याहै उसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये इस जल के सींचने से वे अंकुर दिन प्रतिदिन बढ़ते जावेंगे और उनके थम्भ बड़े होंगे। हे रामजी! जब डालें बड़ी होतीहैं तब राग द्वेषरूपी वानर उनपर चढ़कर तोड़ डालते हैं इससे इस वृक्षको दृढ़ वैराग, सन्तोष और अभ्यासरूपी रससे पुष्ट करना योग्यहै। जैसे सुमेरुपर्वत है तैसेही सन्तोषसे उसे पुष्ट करना। जब ऐसे होगा तब उसमें सुन्दर पत्र, डालें, फूल और मञ्जरी लगेंगी; बड़े मार्गपर्यन्त इसकी छाया होगी और शान्ति, शीतलता, शुद्धता, कोमलता, दया, यश और कीर्ति इत्यादिक गुण प्रकट होंगे। उसके नीचे मनरूपी मृग विश्राम पाकर शीतल होता है और आध्यात्मिक; आधिभौतिक और आधिदैविक ताप मिटजाते हैं और परमशान्ति पाता है। हे रामजी! यह मैंने तुमसे समाधानरूपी वृक्ष कहाहै। जहां यह वृक्ष उत्पन्न होताहै उस स्थान की शोभा कही नहीं जाती और जो इस वृक्ष की शरण जाताहै उसके ताप मिटजाते हैं और शान्तिमान् होता है। यह वृक्ष ब्रह्मरूपी आकाश के आश्रय बढ़ता

१–ॐकार एवेदं सर्वम्।

है और वैरागरूपी रस और सन्तोषरूपी छाल से पुष्ट होता है। जो पुरुष इसका आश्रय लेगा सो शान्तिमान् होगा। हे रामजी! जबतक मनरूपी मृग इस समाधानरूपी वृक्षका आश्रय नहीं लेता तबतक भटकता फिरताहै पर शान्ति नहीं पाता। जैसे मृग वनमें भटकताहै तैसेही मन मृग भटकताहै और द्वैत, अज्ञान और प्रमादरूपी बेधक मारने लगते हैं उससे दुःख पाता है जब भय से इन्द्रियरूपी गांववासियों के निकट जाता है तब वे आपही इसको खेदकर पकड़ लेते हैं अर्थात् विषयों की ओर खींचते हैं और उससे बड़ा कष्ट पाता है। इनके भय से जब फिर वनमें जाता है तो वहां विषय की अप्राप्तिरूपी तपन से दुःखी होता है। जब उसको भी त्यागकर रस-रूपी स्थानों को शान्ति के निमित्त दौड़ताहै तो कामरूपी श्वान मारने को दौड़ता है और उसके भयसे जब फिर वैरागरूपी वन की ओर धावता है तब क्रोधरूपी अग्नि जलाती है; वासनारूपी मच्छर दुःख देते हैं और लोभ और मोहरूपी अँधेरी में अन्धा होजाता है। निदान पुत्र और धनरूपी हरेहरे तृणों को देखकर ग्रहण करताहै तब गढ़े में गिर पड़ताहै। वह गढ़ा तृण से ढपाहुआ है सो तृण पुत्र धनहै तिनको सुन्दर देख तब ममतारूपी गढ़े में गिरपड़ता है। इस प्रकार दुःख पाता है। हे रामजी! जब यह मन झूंठ बोलता है तब मृत्तिका में लोटते कीसी चेष्टा करता है और जब मनरूपी भेड़िया आता है तब उसको भक्षण करजाता है। जब समाधानरूपी वृक्ष से जीव विमुख होता है तब इतने कष्ट पाता है। और जब मनरूपी भेड़िये से छूटताहै तब आशारूपी ज़ंजीर में बन्धवान् होता है; निदान जबतक इस वृक्ष के निकट नहीं आता है तबतक बड़े कष्टस्थानों को जाता है। तमाल वृक्षादिक के तले भी जाता है और कण्टक के वृक्षों के तले भी जाता है परन्तु शान्तिमान् किसी स्थान में नहीं होता—बड़े २ कष्टों को ही पाता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हरिणोपाख्याने वृत्तान्तयोगोपदेशोनाम शताधिकचतुःषष्टितमस्सर्गः॥ १६४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार मूढ़ बुद्ध मनरूपी हरिण भटकता

है। इससे मेरा यही आशीर्वाद है कि, तुमको उस वृक्षका संग हो। जब उस वृक्षके निकट जीव जाताहै तब शान्ति होती है और जब इसके नीचे आ बैठताहै तब तीनों ताप अन्तःकरण से मिटजाते हैं। जितने विषयरूपी वृक्ष हैं उनके निकट गया मनरूपी मृग शान्ति नहीं पाता पर जब समाधानरूपी वृक्ष के निकट आता है तब शान्ति पाताहै और बुद्धि खिलआती है–जैसे सूर्यमुखीकमल सूर्य को देखकर खिलआता है। उस वृक्षके अनुभवरूपी फल और शास्त्रके विचाररूपी पत्र और फूलों को देखकर वह बड़े आनन्दको पाताहै और उस वृक्षके ऊपर चढ़जाताहै और पृथ्वी का त्याग करता है। जैसे सर्प अपनी पुरानी कञ्चुकी का त्याग करताहै और नूतन सुन्दर शरीर से शोभताहै। जब उस वृक्ष पर चढ़ताहै तब गिरता नहीं। क्योंकि, उसके पत्र बहुत बली हैं उनके आश्रय ठहरता है। समाधानरूपी वृक्ष के सत्शास्त्ररूपी पत्र हैं। जब समाधानरूपी वृक्ष से उतरता है तब शास्त्र के अर्थ में ठहरताहै और जितने पदार्थ देखता है वे उसे क्षारवत् दृष्ट आते हैं और अपनी पिछली चेष्टा को स्मरण करके पछताता है। जैसे कोई मद्यपान करके उसमें नीच चेष्टा करे तो जब मद उतरता है तब पछताता है तैसेही मनरूपी मृग अपनी पिछली चेष्टा को धिक्कार करता है और कहता है कि; बड़ा आश्चर्य है जो मैं इतने काल इस वृक्ष से विमुख हुआ भटकता रहा–अब मुझको शान्ति हुई है। जैसे दिनकी तपन के अभाव हुये से चन्द्रमुखी कमलिनी को शान्ति होती है तैसेही मनरूपी मृग को शान्ति होती है। हे रामजी! पुत्र, धन, स्त्री आदिक जो दीखते हैं उनको वह संकल्पपुर और स्वप्नवत् देखता है। जैसे स्वप्ने से जागकर कोई स्वप्नपुर को स्मरण करताहै परन्तु उसमें अभिमान नहीं होता तैसेही उसमें भी अभिमान नहीं होता। जब जीव अनुभवरूपी फल को पान करताहै तब बड़े आनन्द पाता है जिसको वाणी नहीं कहसक्की और शान्त; निर्मल और निरतिशयपद को प्राप्त होता है। जो मन का विषय हो सो सातिशयपद है और जो मन का विषय नहीं वह निरतिशयपद है। जो इन्द्रियों का विषय है उसका नाश भी होता है और जो इन्द्रियों और

मन का विषय नहीं उसका नाश नहीं होता । वह उसी अविनाशी पद को पाताहै । जैसे किसी को बाण लगता है और उसकी विरोधी बूटी उसके सन्मुख रखिये तो निकल आता है तैसेही अनुभवरूपी बूटी के सन्मुख हुये मोह बन्धनरूपी शर खुलपड़ते हैं और परमपद पाता है । हे रामजी ! ज्ञानवान् जगत् से मृतक होजाताहै; उसको संसार का कुछ लेप नहीं लगता । जैसे लकड़ी विना अग्नि शान्त होजाती है तैसेही वासना से रहित ज्ञानवान् की चेष्टा शान्त होजाती है अर्थात् संसार की सत्यता से रहित चेष्टा होती है और फिर संसाररूपी अग्नि नहीं उदय होती । तब द्वैत और एक कल्पना भी मिटजाती है और उन्मत्त की नाईं अपने स्वरूप में घुर्म रहता है जैसे मरुस्थलका मार्ग चलनेवाला धूपकी इच्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानी विषयकी तृष्णा नहीं करता । जिसने आत्म अनुभवरूपी अमृत पान किया है उसको विषयरूपी कांजीकी इच्छा नहीं रहती—वह पुरुष सदा निर्वासी है । जब जीव निर्वासी होता है तब चञ्चल जो मन की वृत्ति है सो सब लीन होजाती है और केवल आत्मतत्वमात्रपद रहताहै 'मैं' 'मेरा' इत्यादि भावना नष्ट होजाती है जब तक चित्त का सम्बन्ध होता है तबतक 'मैं' और 'मेरा' भासता है और जब चित्त का सम्बन्ध मिटजाता है तब एकाकार होजाताहै । जैसे एक सूखा काष्ठ होता है और एक गीला काष्ठ होता है; सूखा तो शुद्ध कहाता है और गीला उपाधिक कहाता है और जब जल सूखगया तब वह भी शुद्ध होताहै; तैसेही जब मन की उपाधि नष्ट होती है तब शुद्ध आत्माही रहता है और एकरस भासता है । हे रामजी ! संसार द्वितीयभ्रम से भासता है । जैसे पत्थर की शिला में पुतली अनउपजी ही भासती हैं सो न सत् हैं और न असत् हैं; यदि पत्थर से भिन्न करके देखिये तो सत् नहीं और जो शिला में देखिये तो वेही रूप हैं; तैसेही जगत् आत्मा से भिन्न सत्य नहीं और आत्मसत्ता में आत्मरूप है । जैसे छोटे बालक के हृदय में जगत् का शब्द अर्थ नहीं होता; तैसेही ज्ञानी की चेष्टा भी प्रारब्धवेगसे होती है और उसके हृदय में जगत् के शब्द अर्थ का अभाव है । हे रामजी ! जो कुछ प्रारब्ध होतीहै सो अवश्य उसको भी प्राप्त होतीहै, मिटती

नहीं; शुभ हो अथवा अशुभहो। जैसे मेघ से गिरती हुई बूंद नहीं नष्ट होती मेघ मन्त्रशक्तिसे नष्ट होताहै; तैसेही प्रारब्धकर्म[1] उसका भी नष्ट नहीं होता परन्तु वह उनमें बन्धायमान नहीं होता। अज्ञानीके हृदय में संसार सत्य भासताहै और भिन्न २ पदार्थ संयुक्त भासता है; क्योंकि, उसे पदार्थ का ज्ञानहै पर ज्ञानी के हृदय में आत्मा का ज्ञान है उसको संसार की सत्यता नहीं भासती। हे रामजी! यह जो समाधानरूपी वृक्ष मैंने तुमसे कहा है उसकी विधि संयुक्त सेवा करने से अनुभवरूपी फल प्राप्त होताहै और जो बोध से रहित होकर सेवन करताहै तो अनेक यत्नसे भी फल की प्राप्ति न होती क्योंकि; उसे ऐसी भावना नहीं होती कि; आत्मा शुद्ध है और सत-चित् आनन्द है। जिनको यह भावना प्राप्त होती है उनको भोगों की इच्छा नहीं रहती। जैसे किसी ने अमृत पान किया हो तो अमल और कटुक फलकी वाञ्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानी किसीकी इच्छा नहीं करता। जैसे रुई के फाहे को अग्नि लगे और ऊपरसे तीक्ष्ण पवन चले तो नहीं जानाजाता कि, कहां जापड़ा; तैसेही जगत्‌रूपी रुईका फाहा ज्ञान अग्निसे दग्ध किया हुआ और वैरागरूपी पवन से उड़ाया नहीं जाना जाता कि, कहां जा पड़ा। तब आकाशही आकाश भासता है और जगत् सत्य नहीं भासता तो फिर तृष्णा किसकी करे—तब वह तृष्णा से रहित स्थित होता है। हे रामजी! दुःख का मूल तृष्णाहै; तृष्णाहीसे भटकता है। जैसे जब-तक पर्वतों के पंख थे तबतक वे उड़ते थे, पंख बिना उड़नेसे रहित होकर गम्भीर स्थित होरहे हैं; तैसेही जब मन से वासना नष्ट होती है तब मन स्थिर होजाता है। हे रामजी! वाञ्छितदेश को विदेशी तब जा प्राप्त होता है जब एक देश का त्याग करताहै; तैसेही शुद्धस्वरूप परमानन्द अपना आप आत्मा तब प्राप्त होता है जब धन, लोग और पुत्र एषणा का त्याग करे। जब आत्मा की प्राप्ति होती है तब निर्विकल्पसमाधि से निर्विकल्प चैतन्य का साक्षात्कार होताहै और जब समाधिमें उसका साक्षात्कार होता है तब उत्थानकाल में भी समाधि में स्थित रहता है; परम निर्वाणपदको

१—प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः।

प्राप्त होताहै और चित्तरूपी बेलि दूर होजाती है। जैसे रस्सी में जो बल होता है तो उसको खैंचकर फिर छोड़ते हैं तब वह सीधी होजाती है; तैसेही जिसको समाधि में चैतन्य का साक्षात्कार होताहै उसको उत्थानकाल में भी वही भासताहै और जिसको उसका प्रमादहै उसको जगत् भासताहै। हे रामजी! वस्तु एक है परन्तु उसमें दो दृष्टि हैं। जैसे रस्सी एकहै पर सम्यक्दर्शीको रस्सी भासतीहै और असम्यक्दर्शी को सर्प हो भासताहै; तैसेही ज्ञानवान् को आत्मा भासता है और अज्ञानी को जगत् भासता है। जिस पुरुष ने ज्ञान से जगत् को असत्य नहीं जाना वह मानो चित्त की अग्नि है उससे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता और जिसको स्वरूपकी इच्छाहै और जो तृष्णाके नाश करनेका प्रयत्न करताहै और जगत्को मिथ्या विचारताहै वह आत्मपदको प्राप्त होगा और उसकी तृष्णाभी निवृत्त होजावेगी। हे रामजी! ज्ञानवान्की तृष्णा स्वाभाविक मिटजाती है। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार मिटजाता है तैसेही वस्तु की सत्ता पाकर उसकी तृष्णा नष्ट होजाती है और परमपद में स्थित होताहै। हे रामजी! जिसको दृश्य में निरसता है वह उत्तम पुरुष है, वह मनुष्य शरीर पाकर ब्रह्म होता है; उसको मेरा नमस्कार है और वह मेरा गुरु है। हे रामजी! जब जीवकी बुद्धि विषय से विरस होती है तब कल्याण होताहै। वैराग से बोध होता है और बोध से वैराग होता है क्योंकि; परस्पर दोनों सम्बन्धी हैं—जब एक आता है तब दूसरा भी आता है। जब यह आते हैं तब तीनों एषणा निवृत्त होजाती हैं और जब तीनों एषणा होती हैं तब अमृत की प्राप्ति होती है। हे रामजी! सन्तों के संग और सत्शास्त्रोंके सुननेसे अपने स्वरूपका अभ्यास करो—इससे आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै। यह तीनों परस्पर श्रेष्ठ हैं। जैसे आठ पांववाला कीट प्रथमचरण को रखकर और चरण को रखता है तब सुख से चला जाताहै, तैसेही सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के सुननेसे जो आत्मपद का अभ्यास करता है वह शीघ्रही आत्मपद को प्राप्त होता है और उसे जगत् का अभाव होजाताहै। हे रामजी! जगत् के भाव और अभावको ज्ञानी जानताहै। जैसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति को तुरीयावाला

जानता है; तैसेही जगत्के भाव अभावको ज्ञानी जानताहै। जैसे अग्नि में सूखा तृण डाला दृष्ट नहीं आता, तैसेही ज्ञानवान्को जगत् नहीं दृष्ट आता। हे रामजी ! ज्ञानवान्को सर्वदा समाधि है, कदाचित् उत्थान नहीं होता। जबतक उस पद को प्राप्त न हो तबतक साधना में लगा रहे और जब उस पद को प्राप्त हो तब फिर कोई यत्न नहीं रहता। हे रामजी ! इस चित्त के दो प्रवाह हैं—एक तो जगत् की ओर जाता है और दूसरा स्वरूप की ओर जाता है। जो जगत् की ओर जाता है सो उपाधिक है और जो स्वरूप की ओर जाता है सो उपाधिको दूर करनेवाला है। जैसे एक लकड़ी गीली और एक सूखी होती है; जो गीली है उसमें उपाधि जल है सो फैल-जाता है और जब जल नष्ट होजाता है तब वह शुद्ध होती है फिर प्रफुल्लित नहीं होती; तैसेही संसार की सत्यता से चित्त वृद्ध होताहै और जब संसारकी वासना नष्ट होतीहै तब शुद्धपद पाता है। हे रामजी ! वाद जो करते हैं सो भी दो प्रकारके हैं; जो वाद किसीको दुःख दे उसे मूर्ख करते हैं और जो परस्पर मित्रभावसे निरूपण तत्त्व का करे सो ज्ञानवान् करते हैं। जैसा जो वाद करते हैं उसका उन्हें दृढ़ अभ्यास होताहै और तैसाही रूप होजाता है। जो कष्ट और झगड़ा करतेहैं उनका वही रूप होजाता है और जो मित्रतासे स्वरूप का वाद करते हैं तो वही रूप होता है—उस पद को पाकर परम शान्ति होती है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनमृगोपाख्यानयोगोपदेशो नामशताधिकपञ्चषष्टितमस्सर्गः ॥ १६५ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्ध समाप्तम्।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीयोगवाशिष्ठ

निर्वाणप्रकरण उत्तरार्द्ध प्रारम्भः ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिस पुरुष ने समाधानरूपी वृक्ष के फल को जानकर पान किया है और उसको पचाया है उसे परम स्थिति प्राप्त होती है । जैसे पंख टूटेसे पर्वत स्थित होरहे हैं तैसेही तृष्णारूपी पंख के टूटे से जीव स्थित होता है । हे रामजी ! जब उसको फल प्राप्त होता है तब उसका चित्तभी आत्मरूप होजाता है । जैसे दीपक निर्वाण होता है तब जाना नहीं जाता कि, कहां गया; तैसेही आत्मपद के प्राप्त हुये चित्त भिन्न होकर दिखाई नहीं देता । हे रामजी ! जबतक वह अकृत्रिम आनन्द प्राप्त नहीं हुआ और उस पद में विश्रान्ति नहीं पाई तबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती । वह पद निर्गुण, शुद्ध, स्वच्छ और परमशान्त है जब उस पद में स्थिति होती है तब परम समाधि होजाती है । ऐसा त्रिलोकी में कोई नहीं जो उसको उतारे । जैसे चित्त की मूर्ति होती है तैसेही उसकी अवस्था होती है और उसकी सब चेष्टा इच्छा से रहित होती है । जैसे पंख से रहित पर्वत स्थित होता है तैसेही मन अमन होजाता है और शान्तिपद को प्राप्त होताहै । हे रामजी ! जिसके मन में संसार का अभाव हुआ है वह शान्तिपद को प्राप्त होताहै और जो वासनासंयुक्तहै तो मनहै । जिस क्रम और युक्ति से वासना क्षय हो सोही कर्त्तव्य है । हे रामजी ! जब वासना क्षय होती है तब बोधरूप शेष रहता है, इसलिये जिस क्रम से वह प्राप्त हो वही किया चाहिये क्योंकि; उस पद के प्राप्त हुये विना शान्ति कदाचित् न होगी । जब चित्त उस पद की ओर आवे तब शान्त होकर दुःख

से रहित और अविनाशी हो क्योंकि; सर्व आत्मा निर्विभाग; अनन्त परम शान्तिरूप और सबको कर्म के फल का देनेवाला है। हे रामजी! जब ऐसे पद को जीव प्राप्त होता है तब उसको उत्थानकाल में भी आत्माही भासताहै द्वैत नहीं भासता तो समाधि से उत्थान कैसे हो? ऐसा कोई समर्थ नहीं कि, उसको समाधि से उतारे। जब ऐसा पद प्राप्त होता है तब संसार विरस होजाता है हे रामजी! जबतक मनुष्य मूर्तिवत् नहीं होता तबतक विषय का त्याग करे और जब ऐसी दशा हो तब कुछ कर्तव्य नहीं रहता त्याग करे अथवा न करे। यह मुझे निश्चय है कि, जब ज्ञान उपजेगा तब विषयों से विरक्त होजावेगा। ब्रह्मा से आदि काष्ठ पर्यन्त जितने पदार्थ हैं वे सब उसको विरस होजाते हैं। ऐसा जो पुरुषहै उसको सदा समाधिहै। हे रामजी! जिसको समाधि का सुख आता है वह स्वाभाविक समाधि की ओर आता है। जैसे वर्षाकाल की नदी स्वाभाविक समुद्र को जाती हैं तैसेही वह पुरुष समाधिकी ओर लगा रहता है। जो पुरुष विषयों से निरिच्छित और आत्मारामी होता है उसको वज्रसार की नाईं स्थिति होती है। जैसे पंख से रहित पर्वत स्थित होते हैं तैसेही जिस पुरुष ने संसार को विरस जानकर त्याग किया है और आत्मा में क्रीड़ा करके तृप्त हुआ है उसका ध्यान चलायमान नहीं होता। हे रामजी! जिस पुरुष की चेष्टा भी होती है पर संकल्प विकल्प से रहित है वह सदा मुक्तरूप है; उसको कोई क्रिया बन्धायमान नहीं करतीं क्योंकि; क्रिया और साधन का अभाव होजाता है। जिस पुरुष को जगत् विरस होगया है उसको विषयोंकी तृष्णा कैसे हो और जब तृष्णा न रही तब दुःख कैसे हो? दुःख तबतक होता है जबतक विषयों की तृष्णा होती है और विषयों की तृष्णा तब होती है जब अपने स्वभाव को त्यागता है। हे रामजी! जब अपने स्वभाव में स्थित हो तब परस्वभाव जो इन्द्रियों के विषय हैं सो रससंयुक्त कैसे भासें और दुःख और तृष्णा कैसे हो? हे रामजी! जब अपने स्वभाव को जानता है तब उस परम निर्वाणपद को प्राप्त होता है जो आदि और अन्त से रहित है। तिसकी प्राप्ति का उपाय यह है कि, वेद का अध्ययन करना

और प्रणव का जप करना। जब इनसे थके तब समाधि करे और जब फिर थके तब वहीं जा पाठ करे। जब ऐसे दृढ़ अभ्यास हो तब उस पद को प्राप्त होवेगा जो संसार के पार गमन का मार्ग है और जब उसको पाया तब परमशान्ति को प्राप्त होवेगा और स्वच्छ निर्मल अपने स्वभाव में स्थित होवेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वभावसत्तायोगोपदेशो नाम शताधिकषट्षष्टितमस्सर्गः॥ १६६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार बड़ा गम्भीर है और इसका तरना कठिन है जिसको इससे तरने की इच्छा हो उसको यह कर्तव्य है कि, वेद का अध्ययन; प्रणव का जाप और चित्त को स्थित करे। जब ऐसा उपाय करे तब ईश्वर उस पर प्रसन्न होंगे और उसके हृदय में विवेक का कण उत्पन्न होगा जिससे संसार असत्य भासेगा और सन्तजनों का संग प्राप्त होगा; जिनका शुभ आचार है और जो परमशीतल और गम्भीर ऊंचे अनुभवरूपी फलसंयुक्त वृक्ष हैं और यश, कीर्ति और शुभ आचाररूपी फूल और पत्रों सहित हैं। ऐसे सन्तजनों की संगति जब प्राप्त होती है तब जगत् के राग द्वेषरूपी तम मिट जाते हैं। जैसे किसी मजूर के शिरपर भार हो और तपन से दुःखी हो पर जब वृक्ष की शीतल छाया प्राप्त हो तब शीतल होता है और फलके भक्षणसे तृप्त होता है और थकान का कष्ट दूर होजाताहै तैसेही सन्तों के संग से सुख को प्राप्त होताहै। जैसे चन्द्रमा की किरणों से शीतल होताहै तैसेही सन्तजनों के वचनों से शान्ति होती है। हे रामजी! सन्तजनों के दर्शन किये से पाप दग्ध होजाते हैं जो पुरुष सकाम तप, यज्ञ और व्रत करते हैं उनकी संगति न कीजिये क्योंकि; वे ऐसे हैं जैसे यज्ञ का थम्भा जो पवित्र भी होता है परन्तु उसकी छाया कुछ नहीं इससे उसके नीचे कोई सुख नहीं पाता। हे रामजी! सब सकाम कर्म जन्म मरण देनेवाले हैं। यद्यपि यज्ञ, व्रत और तप जिज्ञासी भी करते हैं तौ भी उनसे विशेष हैं क्योंकि; निष्काम हैं। उनको विषयों में विरस भावना है और उनका शुभ आचार है। हे रामजी! ऐसे जिज्ञासी की संगति विशेष है

जिसकी चेष्टाकी सब कोई स्तुति करता है और जो सबको सुखदायक भासता है। जो जिज्ञासी नवनीतवत् कोमल, सुन्दर और स्निग्ध होता है उसको सन्तों की संगति प्राप्त होती है। हे रामजी! फूलों के बग़ीचे और सुन्दर फूलों की शय्या आदिक विषयों से भी ऐसा निर्भय सुख नहीं प्राप्त होता जैसा निर्भय सुख सन्तों की संगति से प्राप्त होता है क्योंकि, उनका निश्चय सदा आत्मा में रहता है। हे रामजी! ऐसे ज्ञानवानों की संगति करके जब हृदय शुद्ध होता है तब आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है और जबतक हृदय मलिन है तबतक प्राप्ति नहीं होती। जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है और लोहे की शिला प्रतिबिम्ब को नहीं ग्रहण करती; तैसेही जब हृदय उज्ज्वल होता है तब सन्तों के वचन हृदय में ठहरते हैं। और जैसे वर्षाकाल का बादल थोड़ेसे बहुत होजाताहै तैसेही जब हृदय शुद्ध होताहै तब बुद्धि बढ़ती जाती है। जैसे वन में केले का वृक्ष बढ़ता जाता है तैसेही बुद्धि बढ़ती जाती है। जब आत्मविषयिणी बुद्धि होती है तब वही रूप होजाता है और बुद्धि की भिन्नसंज्ञा का अभाव होजाता है जैसे लोहे को पारस का स्पर्श होता है तब सुवर्ण होजाता है और फिर लोहे की संज्ञा नहीं रहती तैसेही आत्मपद की प्राप्ति हुये बुद्धि की संज्ञा नहीं रहती और विषय भोग की तृष्णा भी नहीं रहती। हे रामजी! विषयों की तृष्णा और अभिलाषा ने जीव को दीन किया है; जब तृष्णा का त्याग करे तब परम निर्मलताको प्राप्त होता है। जैसे हस्ती शिर पर मृत्तिका डालताहै तबतक मलीनहै और जब नदी में प्रवेश करता है तब निर्मल होजाताहै; तैसेही जब जीव तृष्णारूपी राख का त्याग करता है और आत्मा में स्थित होता है तब निर्मल होता है। हे रामजी! जब भोगों की इच्छा त्यागता है तब बड़ी शोभा धारता है। जैसे सुवर्ण को अग्नि में डालने से उसका मैल जलजाता है और उज्ज्वल रूप धारता है। हे रामजी! भोगरूपी बड़ा विष है; उसको दिन २ त्याग करना विशेष है। जब तृष्णा का त्याग करता है तब मुख भी बड़ी शोभा से शोभता है जैसे राहु दैत्य से रहित हुआ चन्द्रमा का मुख शोभा पाता

है तैसेही तृष्णाके वियोग हुये पुरुषका मुख शोभताहै। हे रामजी! जब भोगों से वैराग होता है तब दो पदार्थों की प्राप्ति होती है। जैसे नूतन अंकुर के दो पत्र होते हैं तैसेही तृष्णा के त्याग से एकतो सन्तों की संगति और दूसरा सत्शास्त्र का विचार उत्पन्न होता है। और उनमें जब दृढ़ भावना होती है तब अभ्यास करके वही परमानन्दरूप होता है जिसको वाणी की गम नहीं। तब भोगों की इच्छा से मुक्त होता है और परमशान्त सुख पाता है। जैसे पिंजरे से निकल कर पक्षी सुखी होता है तैसेही वह सुखी होता है। हे रामजी! जीव को भोग की इच्छानेही दीन किया है। जब इच्छा निवृत्त होती है तब गोपद की नाईं संसारसमुद्र को लांघजाता है और तब उसको तीनों जगत् सूखे तृण की नाईं भासते हैं। हे रामजी! जब वह भोग की इच्छा से मुक्त होता है तब ईश्वर होता है। जिस पुरुष को आत्मसुख प्राप्त हुआ है वह भोगों की इच्छा कदाचित् नहीं करता और जब वे आन प्राप्त होते हैं तब भी उसको विरस और मिथ्या भासते हैं इससे उनके भोग को नहीं चाहता। जैसे जाल से निकला हुआ पक्षी फिर जाल को नहीं चाहता तैसेही वह पुरुष भोगों को नहीं चाहता। जब विषयों की तृष्णा निवृत्त होती है तब परम शोभा पाता है और सन्तों के वचन उसके हृदय में शीघ्रही प्रवेश करते हैं। हे रामजी! मोक्षरूपी स्त्री के कानों के भूषण सन्तों की संगति है। जब साधु की संगति होती है तब अशुभ क्रिया का त्याग होजाताहै और बिराने धन की इच्छा नहीं रहती। तब जो कुछ अपना होता है उसके भी त्यागने की इच्छा होती है और भले भोग जो भोगने के निमित्त आते हैं उनको विभाग देकर खाता है। निदान बड़े उत्तम भोगोंसे लेकर साग पर्यन्त जो कुछ प्राप्त होताहै उसमें से देकर खाताहै। तथाशक्ति जब ऐसे प्रमाण हुआ तब फिर ऐसा होजाता है कि; यदि कोई शरीर मांगता तो शरीर भी देताहै क्योंकि; उसको देने का अभ्यास होजाताहै पर और से साग मांगने की भी इच्छा नहीं रखता उसीमें संतोषसे यथाप्राप्त चेष्टा और तप, दान करता है; यज्ञ, व्रत और ध्यान करके पवित्र रहता है और तृष्णा का त्याग करता है। हे रामजी!

ऐसा दुःख क्रूर नरक में भी नहीं होता जैसा दुःख तृष्णासे होताहै। जो धनवान् हैं उनको धनके उपजने की चिन्ताहै; रखनेकी चिन्ताहै और उठते, बैठते, खाते, पीते, चलते, सोते सदा धनकीही चिन्ता रहती है। इस ही चिन्तामें वे मचिमचि मरजाते हैं और फिर जन्मते हैं। हे रामजी! निर्धनको भी चिन्ता रहती है परन्तु थोड़ी होती है जबतक चिन्ता रहती है तबतक दुःखी रहताहै पर जब चिन्ता नष्ट होती तब परमसुखी होताहै। हे रामजी! यद्यपि धनी हो और उसे संतोष नहीं तो वह परम दरिद्री है और जो धन से हीन है परन्तु संतोषवान् है वह परम ईश्वर है। जिसको संतोष है उसको विषय बन्ध नहीं करसक्के। हे रामजी! जबतक धन की इच्छा नहीं की तबतक भोगरूपी विष नहीं लगता और जब धन की इच्छा उपजती है तब परम विष लगता है; विपरीत भावना में दुःख होता है और जो दुःखदायक पदार्थ हैं उनको सुखदायक जानता है। हे रामजी! जो कुछ अर्थ है वही अनर्थ है; जिसको संपदा जाना है वही आपदा है और जिनको भोग जाना है वही सब रोगरूप हैं। इनको संपदा जानकर बिचरता है इससे बड़ा दुःखी होता है। हे रामजी! रसायन सब दुःख नाश करती है परन्तु वह देवताओं के पास होती है। यदि अमृत चाहिये तो संतोष परम रसायन है। जब विषयों में दोषदृष्टि होती है और संतोष धारण करता है तब मूर्खता दूर होजाती है और गोपद की नाईं संसारसमुद्र से शीघ्रही तरजाता है। जैसे गोपद को सुगमही लंघजाते हैं तैसेही संसारसमुद्र को वह सुगम तर जाता है। हे रामजी! जिसको संतोष प्राप्त होता है उसको परमशान्ति होती है। कदाचित् वसन्तऋतु भी सुख का स्थान हो; नन्दन वन भी सुख का स्थान हो; उर्वशी आदिक अप्सरा हों; चन्द्रमा विद्यमान बैठा हो; कामधेनु विद्यमान हो और इन्द्रियों के सब सुख विद्यमान हों तो भी शान्ति न होगी परन्तु एक संतोषसे ही शान्ति होगी। संतोषवान् को यह विषय चला नहीं सक्के। हे रामजी! जैसे अर्घा भरभर छोड़ने से तालाब नहीं भरा जाता और जब मेघ के जल की वर्षा होती है तबशीघ्र

ही भर जाता है; तैसेही विषय के भोगने से शान्ति नहीं होती पर संतोष से पूर्ण आनन्द और ओज की प्राप्ति होती है। गम्भीर, निर्मल, शीतल हृदयगम्य और सबका हितकारी ओज संतोषी पुरुषों को प्राप्त होता है। और जो ओज हैं वे सात्त्विकी, राजसी और तामसी होते हैं पर यह शुद्ध सात्त्विकी है। जिस पुरुष को संतोष होता है वह ऐसे शोभता है जैसे वसन्तऋतु का वृक्ष फूल, फल और पत्रों से शोभा पाता है और जिसको तृष्णा है वह चरणों के नीचे आये कीटवत् मर्दन होता है। हे रामजी! जिसको तृष्णा है उसको संतोष और शान्ति कदाचित् नहीं होती। जैसे जल में डाला तृणों का पूला तीक्ष्ण पवन से बड़े क्षोभ को प्राप्त होता है तैसेही तृष्णावान् पुरुष को क्षोभ होता है। हे रामजी! जो पुरुष अर्थ के निमित्त सदा इच्छा करता है वह अग्नि में प्रवेश करता है अर्थात् सर्वदाकाल तपता रहता है और जैसे गर्दभ विष्ठा के स्थान में प्रवेश करता है तैसेही तृष्णावान् जो विषयरूपी स्थान में प्रवेश करता है सो गर्दभ है। जैसे गर्दभ के साथ स्पर्श करना योग्य नहीं तैसेही तृष्णावान् गर्दभ से स्पर्श करना योग्य नहीं है। हे रामजी! यह संसार मिथ्या है; जो इस संसार के पदार्थों को चाहता है वह मूर्ख है। इस जगत् के अधिष्ठान के प्राप्त होने से निर्वासनिक होता है और जब निर्वासनिक होता है तब संतोष को प्राप्त होता है। तब ऐसा होता है जैसे तारों में चन्द्रमा शोभा पाता है—इससे इच्छा के नाश करने का उपाय करो। हे रामजी! जब इच्छा नष्ट होती है और संतोषरूपी गम्भीरता प्राप्त होकर द्वैतकलना मिटती है तब उसीको परिडत परमपद कहते हैं। यह पद कैसे प्राप्त होता है सो भी श्रवण करो। हे रामजी! जब संसारसे वैराग, सन्तोंकी संगति और सत्शास्त्रों के अर्थों और आत्मा में दृढ़भावना होती है तब जगत् विरस होजाता है अर्थात् जगत् असत् भासता है हृदय में शान्ति होती है; स्वाभाविक आपको ब्रह्म जानने लगता है और प्रच्छन्नता मिट जाती है जब तक आपको प्रच्छन्न जानता था तबतक सब दुःख का अनुभव करता था और जब सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों से जगत् विरस हुआ तब परमपद को प्राप्त होता है।

इति श्रीयोग॰नि॰मोक्षोपदेशोनाम,शताधिकसप्तषष्टितमस्सर्गः॥१६७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब संसार से वैराग होता है तब सन्तों की संगति होती है; फिर शास्त्र सुनता है तब सम्पूर्ण जगत् विरस होजाता है। जब जगत् विरस हुआ और आत्मा में दृढ़ अभ्यास हुआ तब अपनी स्वभाव सत्ता प्रकाशित होती है, उसी स्वभावसत्ता में स्थित हुये तब परमानन्द की प्राप्ति होती है जिसमें वाणी की गम नहीं। हे रामजी! जब यह अवस्था प्राप्त होती है तब मन अमन होजाता है; अर्थों की तृष्णा नहीं रहती; जो अपने पास होता है उसको रखने की भी इच्छा नहीं रहती—सहज त्याग होजाता है—और पुत्र, धन, स्त्री आदिक सब विरस होजाते हैं। यद्यपि वह इनके बीच भी रहता है तौ भी इनमें, 'अहं' 'मम' अभिमान नहीं करता। जैसे मज़दूर किसी मार्ग में आ उतरता है और मार्गवाले से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता तैसेही वह किसी विषय से सम्बन्ध नहीं रखता और जो अनिच्छित इन्द्रियों के सुख प्राप्त होते हैं उनमें राग द्वेष नहीं करता। जैसे किसी पत्थर की शिलापर जल चला जाता है तो उसको कुछ राग द्वेष नहीं होता, तैसेही ज्ञानवान् को राग द्वेष किसी में नहीं होता। हे रामजी! उसके शरीर की यह स्वाभाविक अवस्था होजाती है कि, वह एकान्त को चाहता है और वन और कन्दरा में रहने की इच्छा करता है। मुमुक्षु को अज्ञान के स्थान स्त्रीभोग, राग-द्वेष के इष्ट-अनिष्ट भी जो दैवसंयोग से प्राप्त होते हैं तौ भी शीघ्रही त्याग देता है। हे रामजी! जब क्षेत्रमें बीज डालना होता है तब पहले जो कांटा आदि होते हैं उन्हें फडुवे से काटकर दूर किया जाता है तब खेत अच्छा और सुन्दर फलता है; तैसेही जिस पुरुष को मनरूपी क्षेत्र में अनुभवरूपी फल देखना हो सो इच्छारूपी कण्टक और वृक्षों को अनिच्छारूपी फड़वे से काटे और संतोषरूपी बीज को बोवे तो क्षेत्र भी सुन्दर फलेगा। हे रामजी! जब अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है तब मनुष्य सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से भी स्थूल होजाता है और सर्व आत्मा होकर स्थित होता है। हे रामजी! जब चित्त अदृश्य होता है तब द्वैत भावना मिट जाती है और जब द्वैतभावना मिटी तब चित्त अदृश्य को प्राप्त होता है। उस चित्तको जो उपशम का सुख होता

है सो वाणी से कहा नहीं जाता—उसका नाम निर्वाणपद है। जब ईश्वर की भक्ति करता है और दिन रात्रि चिरकाल पर्यन्त भक्ति करता रहता है तब ईश्वर प्रसन्न होता है और निर्वाणपद की प्राप्ति होती है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सर्वतत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ! वह कौन ईश्वर है और उसकी भक्ति क्या है जिसके करने से निर्वाणपद को प्राप्त होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वह ईश्वर दूर नहीं; उसमें भेद भी कुछ नहीं और दुर्लभ भी नहीं क्योंकि; अनुभव ज्योति है और परमबोध स्वरूप है। सर्व जिसके वश है; जो सर्व हैं और जिससे सर्व है उस सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है। हे रामजी! सब कोई उसीको पूजते हैं। जाप, मन्त्र, तप, दान, होम जो कुछ कोई करता है सो सर्वही उसको पूजते हैं। देवता, दैत्य, मनुष्य जो कुछ स्थावर-जङ्गम जगत् है वे सब उसीको पूजते हैं और सबको फल देनेवाला भी वही है। उत्पत्ति और प्रलय में जो पदार्थ भासते हैं वे सब उसी से सिद्ध होते हैं—ऐसा वह ईश्वर है। जब उस ईश्वर की प्रसन्नता होती है तब वह अपना एक दूत जो शुभक्रिया संयुक्त पवित्र है भेजता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ईश्वर जो अद्वैतआत्मा शुद्धब्रह्म है उसका दूत कौन है और वह कैसे आता है सो मुझे कहिये? वशिष्ठजी ने कहा हे रामजी! वह ईश्वर जो परमदेव है उसका दूत विवेक है और हृदयरूपी गुफा में उदय होता है। जब वह उदय होता है तब उससे परमशोभा प्राप्त करता है। जैसे चन्द्रमा के उदय हुये आकाश शोभा पाता है तैसेही वह पुरुष शोभा पाता है। हे रामजी! जब विवेकरूपी दूत आता है तब जीव को संसार से पवित्र करता है। प्रथम वासनारूपी मैल से भरा था और चिन्तारूपी शत्रु ने बांधा था पर जब विवेकरूपी दूत आताहै तब चित्तरूपी शत्रुको मारताहै और वासनारूपी मैल को नाश करके देव के निकट लेजाता है। जब उस देव का दर्शन होता है तब परमानन्द को प्राप्त होता है और बड़ा सुख पाता है। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र में मृत्युरूपी भँवर हैं; तृष्णारूपी तरङ्ग है, अज्ञानरूपी जल है और इन्द्रियांरूपी तँदुये हैं। उसी समुद्र में यह जीव पड़े हैं जब

विवेकरूपी नौका अकस्मात् प्राप्त होती है तब संसारसमुद्र से पार होते हैं। हे रामजी! जीव प्रमाद सेही जड़ता को प्राप्त हुये हैं। जैसे जल शीतलता से ओले की संज्ञा को पाताहै तैसेही प्रमाद से जीवसंज्ञा को पाता है और वासना से ढपगया है पर जब अन्तर्मुख होता है उस देव के सन्मुख होता है और वह देव प्रसन्न होता है। उस जीव के सहस्रशीश, सहस्रपद, सहस्रभुजा, सहस्रनेत्र और सहस्रकर्ण हैं। सर्वचेष्टा का वही कर्ता है और देखता, सुनता, बोलता और चलता भी वही है और अपने स्वभावसत्ता से प्रकाशता है। जैसे सब घटों में चलनाशक्ति पवन की है तैसेही प्रकाशशक्ति उस देव की है जब जीव उसके सन्मुख अन्तर्मुख होताहै तब वह प्रसन्न होके विवेकरूपी दूत भेजता है तब इसको सन्त की संगति होती है और सत्शास्त्रों को सुनकर उनके अर्थ में दृढ़भावना होती है और वह विवेकरूपी दूत इसको अदृश्यता में प्राप्त करता है तब यह शून्य हो जाता है। फिर यह शून्यको भी त्यागकर बोधमात्र में स्थित होता है तब पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है। हे रामजी! मनुष्य आनन्दस्वरूप है और यह विश्व भी अपना आप है परन्तु अज्ञानसे भिन्न भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा मरुस्थल में जल और आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही भ्रान्ति से जगत् भासताहै पर भूतोंके भीतर बाहर और अध ऊर्ध्व में सब ब्रह्मदेवही व्यापरहा है और स्थावर; जङ्गम आदि सब जगत् उसी आत्मतत्त्वके आश्रय फुरता है; इससे वही स्वरूप है और वही सबको धाररहाहै। वही ईश्वर ब्रह्म है और गम्भीर, साक्षी, आत्मा, ॐकार, प्रणव सब उसी के नाम हैं। जब ऐसे ईश्वर की कृपा होतीहै तब जीव अन्तर्मुख होकर शुद्ध और निर्मल होताहै। हे रामजी! जब हृदय शुद्ध होताहै तब आत्मपदकी ओर भावना होती है कि; सब आत्माही है। जब यह भावना होतीहै सोही भक्ति है—तब वह ईश्वर कृपा करके विवेकरूपी दूत भेजता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विवेकदूतवर्णनंनाम शताधिकाष्टषष्टितमस्सर्गः॥ १६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब विवेक की दृढ़ता होती है तब जीव उस परमपद को प्राप्त होता है जो चैतसे रहित चैतन्य घन है। तब चैत का सम्बन्ध टूट जाताहै और जब चैतका सम्बन्ध टूटा तब विश्वका क्षय होजाता है; जब विश्व क्षय हुआ तब वासना भी नहीं रहती। हे रामजी! यह जगत् भी फुरने से है। जब जीव शुद्ध चैतन्य में चैत्योन्मुखत्व होता है तब मनोमात्र शरीर होता है जिसको अन्तवाहक कहते हैं और जब वासना की दृढ़ता होती है तब आधिभौतिक भासने लगता है। हे रामजी! इसका उत्थानही अनर्थका कारणहै; जब यह चेतनभाव होताहै तब इसको अनर्थ की प्राप्ति होतीहै और मैं-मेरा इत्यादिक जगत् भासि आताहै; जो यह न हो तो जगत् भी न हो; इसके होने सेही जगत् भासता है। इससे मेरा यही आशीर्वाद है कि, तुम चेतनता से शून्य होजाओ और अहन्ता-रूपी चेतनता से रहित अपने बोध में स्थित रहो। हे रामजी! मन से ही जगत् हुआ है सो मन और जगत् दोनों मिथ्या और शून्य हैं। रूप, अवलोक और मनस्कार तीनोंका नाम जगत् है सो मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या शून्य है। जब इनका अभाव होताहै तब शून्य भी नहीं रहता केवल बोधमात्र चेतन होताहै। हे रामजी! दृश्य, दर्शन और द्रष्टा ये तीनों भावनामात्र हैं; जब ये होते हैं; तब जगत् भासता है और जब अहन्ताका अभावहोता है तब आत्मपद शेष रहता है। जैसे सुवर्ण में भूषण होते हैं तैसेही आत्मामें जगत् है दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी। वासना से दृश्य भासती है सो वासना मनसे फुरीहै और मन अज्ञान से हुआहै। जब मन अमन पदको प्राप्त होता है तब दृश्य सब एकही रूप होजाती है। जबतक वासना उठती है, तबतक मन में शान्ति नहीं होती। जैसे कोई पुरुष भँवरी घुमाता है तो बल चढ़ते जाते हैं और जब ठहरता है तब वह बल उतरजाता है; तैसेही जबतक चित्तवासना करके भ्रमता है तबतक जन्म-रूपी बल चढ़ते जाते हैं और जब चित्त ठहरताहै तब जन्मका अभाव होजाता है। हे रामजी! जबतक चित्त का दृश्य के साथ सम्बन्ध है तब तक कर्म से नहीं छूटता और जब चित्त का दृश्यसे सम्बन्ध टूटताहै तब

शुद्ध अद्वैतपदको प्राप्त होताहै। हे रामजी! जब शुद्धचिन्मात्रमें उत्थान होताहै तब उसका नाम चैत्योन्मुखत्व होताहै, वही अहन्ता दृश्यकी ओर फुरती जाती है तब प्रमाद होजाता है और जड़ता होती है। जैसे जल ओला हो जाता है तैसेही चित्तशक्ति प्रमाद से जड़ होजाती है। जब दृढ़ वासना ग्रहण करता है तब अन्तवाहकसे आधिभौतिक अपना शरीरदृष्टि आता है; फिर पृथ्वी आदिक भूत भासने लगते हैं और ज्यों ज्यों चित्त-शक्ति बहिर्मुख फिरती जाती है त्यों त्यों संसार होता जाता है। जब चित्त-वृत्ति फुरने से रहित होकर अपने स्वरूपकी ओर आती है तब अपना आपही भासता है; द्वैत मिटजाता है और परमानन्द अद्वैतपद भासता है। जब पूर्णबोध होता है तब द्वैत और एक संज्ञा भी जाती रहती है केवल आत्ममात्र शुद्ध चैतन्य रहता है और ईश्वर से एकता होती है और जगत् की भास जाती रहती है। जब उस पद की प्राप्ति होती है तब दृश्य का अभाव होजाता है क्योंकि; जगत् भावनामात्र है। जैसे भविष्यकाल का वृक्ष आकाश में हो तैसेही यह जगत् है क्योंकि; इसका अत्यन्त अभावहै—कुछ बना नहीं भ्रान्ति करके भासता है। हे रामजी! मेरे वचनों का अनुभव तब होगा जब स्वरूप का ज्ञान होगा और तभी ये वचन हृदय में फुरेंगे। जैसे कथावाले के हृदय में कथा के अर्थ फुरते हैं तैसेही मेरे ये वचन आन फुरेंगे। हे रामजी! जबतक मन फुरता है तब तक जगत् का अभाव नहीं होता और जब मन उपशम होता है तब जगत् का अभाव होजाता है। जैसे स्वप्न को जब स्वप्न जानता है तब फिर स्वप्न के पदार्थों की इच्छा नहीं करता पर जबतक सत्य जानता है तबतक इच्छा करता है। हे रामजी! सब जीव वासनासे ढँपे हुये हैं। जब वासना का क्षय होताहै उसीका नाम ज्ञानहै। अज्ञानरूपी भूत इनको लगाहै उससे उन्मत्त होकर जगत् भासता है और जगत् के भासने से नाना प्रकार की वासना दृढ़ होगई है उससे दुःखपाते हैं। जब यह चित्त उलटकर अन्तर्मुख हो और आत्मा में दृढ़ भावना करे तब ज्ञानरूपी मन्त्र प्राप्त होता है और अज्ञानरूपी भूत जाता रहताहै। हे रामजी! अनुभव-

रूपी कल्पवृक्ष में जैसी भावना होती है तैसाही भान होता है। हे रामजी! प्रथम इसका शरीर अन्तवाहक था और अपना स्वरूप भूला न था इससे आपको आत्माही जानता था और जगत् अपना संकल्पमात्र भासता था। जब उस संकल्प में दृढ़ भावना हुई तब वह शरीर आधिभौतिक भासने लगा और जब उसमें दृढ़भावना हुई तब देह और इन्द्रियां सब अपने में भासने लगीं तो इनके सुख दुःख को जानने लगा और जब जगत् के सुख दुःख भासे तब सर्वआपदा प्राप्त हुई पर वास्तव में न कोई सुख है, न दुःख है और न जगत् है केवल भावना मात्र है। जैसी चित्त की भावना होतीहै तैसेही आगे भासता है। हे रामजी! जब यह भावना उलटकर अन्तर्मुख आत्मा की ओर होती है तब एकही बोध का भान होताहै और जब एक बोध का भान होता है तब द्वैत सब मिट जाता है। हे रामजी! आत्मा में अन्तवाहक भी नहीं है। यह जो ब्रह्मा है वह भी बोधस्वरूप है; यदि बोध से भिन्न अन्तवाहक कुछ होता तो भासता। अन्तवाहक भी उसीसे है—अन्तवाहक शुद्धचिन्मात्र में चैत्योन्मुख होना और चित्तशक्ति फुर रहने का नाम है जब उसको पञ्चतन्मात्राका सम्बन्ध होताहै तो यही जड़-चेतन ग्रन्थि है। चित्तशक्ति चेतन है और पञ्चतन्मात्रा जड़ है—इनके इकट्ठा होनेका नाम अन्तवाहक शरीर है। यदि यह भी आत्मामें कुछ हुआ होता तो ये वचन न होते—इससे चिन्मात्र है, कुछ बना नहीं क्योंकि; आत्मा अद्वैत है। हे रामजी! दूसरा कुछ बना नहीं पर भ्रमसे द्वैत भासताहै; तैसेही यह जाग्रत् भी भ्रान्तिसे भासताहै—कुछहै नहीं हे रामजी! जड़ है नहीं तो किसकी इच्छा करता है? इतना सुख इन्द्रियों के इष्टभोग से नहीं होता जितना इनके त्यागनेसे होताहै। हे रामजी! एक यज्ञ है जिसके किये से पुरुष परमपद को प्राप्त होता है पर वह यज्ञ तब होता है जब एक थम्भा गड़े और उसके नीचे बलि करे। जब यज्ञ कर चुके तब सर्व त्याग करना होता है तब फल की प्राप्ति होती है। इस क्रम के किये विना यज्ञ सफल नहीं होता। सो वह थम्भा क्या है; बलि क्या है; यज्ञ क्या है; त्याग क्या है और फल क्या है सो

श्रवण करो। हे रामजी! ध्यानरूपी तो थंभा गाड़े कि; आत्मपदका सदा अभ्यास हो और उसके आगे तृष्णारूपी बलि करे और ज्ञानरूपी यज्ञ करे-अर्थात् आत्मा के जो नित्य, शुद्ध, बोधरूप; अद्वैत, निर्विकल्प, देह, इन्द्रियां, प्राण आदिक से रहित इत्यादि विशेषण वेदशास्त्र में कहे हैं ऐसे जानने का नाम ज्ञान है। यही यज्ञ है। ध्यानरूपी थम्भे तृष्णारूपी बलि और मनरूपी दृश्य को जीतकर यह यज्ञ पूर्ण होता है। जब ऐसा यज्ञ समाप्त होता है तब उसके पीछे दक्षिणा भी चाहिये तब यज्ञका फल हो। सर्वस्व देना ही दक्षिणा है-सो अहंकार त्याग करना ही सर्वस्वत्याग है जब सर्वस्व त्याग होता तब यह यज्ञ सफल होता है। इसका नाम विश्वजित् यज्ञ है। जब इस प्रकार यज्ञ होता है तब इसका फल भी होता है-सो फल यह है कि, यद्यपि अङ्गार की वर्षा हो, प्रलयकाल का पवन चले और पृथ्वी आदिक तत्त्व नाश हों तो ऐसे क्षोभों में भी चलायमान नहीं होता। यह फल प्राप्त होताहै कि, कदाचित् स्वरूप से नहीं गिरता-यह शत्रु नाश वज्र ध्यान है। हे रामजी! अहन्ता का त्याग करना सबसे श्रेष्ठ त्याग है। जो कार्य अहन्ता के त्याग किये से होता है सो और उपाय से नहीं होता और तप, दान, यज्ञ, दमन, उपदेश इन उपाधियों से भी अहन्ता का त्याग करना बड़ा साधन है; और सर्व साधन इसके अन्तर्भूत होते हैं। हे रामजी! जब तुम अहन्ता का त्याग करोगे तब तुमको भीतर बाहर ब्रह्मसत्ताही भासेगी और द्वैतभ्रम सम्पूर्ण मिटजावेगा। हे रामजी! मनके सर्व अर्थरूपी तृणों को ज्ञानरूपी अग्नि लगाइये और वैरागरूपी वायु से जगाइये। जब इन तृणोंको भस्म कर डालो तब तुम परम शान्तिको प्राप्त होगे। मनके जलाने से परम संपदा प्राप्त होती है-इससे भिन्न सब आपदा है। मन उपशम करने में कल्याण है। यह जो भीतर बाहर नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं सो मन के मोह से उत्पन्न हुये हैं; जब मन उपशम को प्राप्त हो तब नाना प्रकार जो भूतों की संज्ञा है अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, पृथ्वी आदिक सो सब आकाशरूप होजाते हैं। हे रामजी! यह सर्व ब्रह्महै; ज्ञानी को एकसत्ता

भासती है क्योंकि, दूसरा कुछ बना नहीं भ्रमसे जगत् भासता है । उसमें जब नानाप्रकार की वासना होती है तो अपनी २ वासना के अनुसार जगत् को देखता है । इससे तुम जागो और वासना के पिंजरे को काटकर आत्मपद को प्राप्त होरहो । हे रामजी ! अज्ञान से जो आत्मपद की तरफ़ से सोयेपड़े हैं और वासना के पिंजरे में पड़े हैं उन अज्ञानियों की नाईं तुम न होना । अज्ञान से जीव का नाश होता है; जो कुछ जगत् देखते हो सो भ्रममात्र है । जैसे बांसुरी में पवन का शब्द होताहै तैसेही यह भी प्राणवायु से बोलते दृष्टि आते जानो । जगत् भ्रममात्र है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वसत्तोपदेशोनाम शताधिकनवषष्टितमस्सर्गः ॥ १६९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! सम्पूर्ण जगत् में सप्तप्रकार की सृष्टि है और सातही भांति के जीव हैं उनको भिन्न २ सुनो । एक स्वप्न जाग्रत् हैं; दूसरे संकल्पजाग्रत् हैं; तीसरे केवल जाग्रत् हैं; चौथे फिर जाग्रत् हैं; पञ्चम दृढ़ जाग्रत् हैं; षष्ठम जाग्रत्स्वप्न हैं और सप्तम क्षीणजाग्रत् हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! आपने जो यह सात प्रकार की सृष्टि कही सो बोध के निमित्त मुझसे खोल कर कहिये । यह ऐसे है जैसे नदियों के जल का समुद्र में भेद हो और इनका पूछना भी ऐसेही है जैसे एक जल से फेन, बुद्बुदे और तरङ्ग वायु से होते हैं इसलिये विस्तारसे कहो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक तो यह है कि; किसी जीव को किसी कल्प में अपनी जाग्रत् में सुषुप्ति हुई और उसमें जो स्वप्न हुआ तो उसको हमारी जाग्रत् का जगत् भासि आया और वह उसको शब्द अर्थ संयुक्त सत् जानकर ग्रहण करनेलगा तो उसके स्वप्नमें हम स्वप्न नर हैं परन्तु उसके निश्चयमें नहीं क्योंकि, वह अपनी जाग्रत् मानता है पर हमारा और उसका कल्प एक होगया है इसी से वह भी जाग्रत् जानता है और पूर्वकल्प में भी उसका शरीर चैतन्य फुरता था परन्तु सोया पड़ा है । रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! जब वह पुरुष अपने कल्प में जागता है तब यह उसको क्या भासता है और जब वह जागे और वहां कल्प का प्रलय हो तब उसके शरीर की क्या अवस्था

हो? एवम् यदि यहां ज्ञान की प्राप्ति हो तो उस शरीर की क्या अवस्था हो सो क्रम करके कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यदि वह पुरुष अपने कल्प में जागे तो यह जाग्रत् उसको स्वप्न भासे और जो वहां न जागे और उस कल्प का प्रलय हो तो वह जीव वही चेष्टा करे। यदि ज्ञान की प्राप्ति हो तो उस शरीर और इस शरीर की वासना इकट्ठी होकर निर्वाण को प्राप्त हो और जो ज्ञान न प्राप्त हो तो उस जीव के शरीर को त्यागकर और जगत्भ्रम भास आवे। आपको पूर्ववत् जाने चाहे न जाने परन्तु जगत्भ्रम विना ज्ञान नहीं मिटता। हे रामजी! यह और वह दोनों तुल्य हैं; ब्रह्मसत्ता सर्व ठौर समान प्रकाशती है। हे रामजी! जैसे गूलर में मच्छर होते हैं तैसेही ये जीव भी भ्रम से फुरते हैं। यह जाग्रत् कही स्वप्न में जो जाग्रत् है उसका नाम स्वप्न जाग्रत् है। पुरुष बैठा हो और एक ऐसी चित्त की वृत्ति ठहर जाय पर निद्रा नहीं आई पर उसमें जो मनोराज हुआ और उस मनोराज में जगत् होके उसीमें दृढ़ वासना होगई और पूर्व की वासना विस्मरण हुई; यह सत्ता भासी और उसमें मनोराज का शरीर रचा वही आधिभौतिकता दृढ़ होगई उसका नाम संकल्प जाग्रत् है। आदि परमात्मतत्त्व से फुरा और निश्चयात्मपद में जो और जगत् भासित हुआ उसको संकल्पमात्र जाना उसका नाम केवल जाग्रत् है। आदि परमात्मतत्त्व से फुरना हुआ; उसमें सृष्टि हुई और उसको सत् जानकर ग्रहण किया; स्वरूप का प्रमाद हुआ और आगे जन्मान्तर को प्राप्त हुआ उसका नाम चिरजाग्रत् है जब इसमें दृढ़ घनभूत वासना हुई और पापकर्म करने लगा उसके वश से स्थावर योनि पाई तो उसका नाम घनजाग्रत् और सुषुप्त जाग्रत् है। जब इसमें सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों के विचार से बोध प्राप्त हुआ तब यह जाग्रत् उसको स्वप्न होजाती है उसका नाम स्वप्नजाग्रत् है। जब बोध में दृढ़ स्थिति हुई तब उसको तुरीयापद कहते हैं—इसका नाम क्षीणजाग्रत् है। जब इस पद को प्राप्त होता है तब परमानन्द की प्राप्ति होती है। हे रामजी! ये सात प्रकार के जीव और सृष्टि मैंने तुमसे कही हैं इनको विचार करके

देखो कि, तुम्हारा भ्रम निवृत्त होजावे। यह भी क्या कहना है कि, यह जीव है और यह सृष्टि है; सर्व ब्रह्मसत्ता है, दूसरा कुछ हुआ नहीं, मन के फुरने से दृश्य भासती है और मनको स्थिर करके देखो तो सब शून्य होजावेगी और शून्य भी न रहकर शून्य का कहना भी न रहेगा— इस गिनती को भी स्मरण करो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनं नाम शताधिकसप्ततितमस्सर्गः॥ १७०॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो केवल जाग्रत् की उत्पत्ति अकारण, अकर्मक और बोधमात्र में कही सो असम्भव है—जैसे आकाश में वृक्ष नहीं हो सक्ता तैसेही आत्मा में सृष्टि नहीं हो सक्ती—क्योंकि, आत्मा निराकार है और निष्क्रिय है; वह न समवायकारण है और न निमित्तकारण है। जैसे मृत्तिका घट आदिक का कारण होती है तैसेही आत्मा सृष्टि का समवायकारण भी नहीं क्योंकि; अद्वैत है और जैसे कुलाल घटादिकका निमित्तकारण होताहै तैसे आत्मा सृष्टिका निमित्त-कारणभी नहीं क्योंकि; अक्रिय है। उस अकारणक और अकर्मक में सृष्टि कैसे होसक्ती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम धन्य हो और अब तुम जागे हो। आत्मा में सृष्टि का अत्यन्त अभाव है क्योंकि; वह निर्विकार और निष्क्रियहै। वह न भीतरहै, न बाहर है; न ऊर्ध्व है, न अध है; केवल बोधमात्र है और उसमें न कोई आरम्भ है और न परिणाम है; केवल बोधमात्र अपने आपमें स्थित है। जैसे सूर्य की किरणों में जल कल्पित है; तैसेही आत्मा में जगत् मिथ्या है। हे महाबुद्धिमन्! आत्मा अकारणरूप है उसमें कार्यरूप जगत् कैसेहो? उसमें जगत् कुछ नहीं उत्पन्न हुआ। उसके अभाव से सबका अभाव है, न कुछ उपजा है; न भास होता है; उपदेश और उसका अर्थ आरोपित है और कुछ है ही नहीं। आरोपित शब्द भी जिज्ञासी के जतानेके निमित्त कहा है, है कुछ नहीं; आत्मा सदा अद्वैतरूप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो आत्मा में सृष्टि है ही नहीं तो पिण्डाकार कैसे भासते हैं? उनको किसने

रचा है और मन, बुद्धि, इन्द्रियों का भान क्या होताहै? चैतन्य को स्नेह और राग से किसने मोहित किया है और आत्मामें आवरण कैसे होताहै सो मुझे समझाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई पिण्ड है, न किसीने इनको किया है; न कोई भूत है, न किसी ने इनको मोहित किया है और न किसीको आवरण किया है; भ्रान्ति से आवरण भासता है। जो आत्मा को आवरण होता तो किसी प्रकार नष्ट होता परन्तु आवरण ही नहीं तो नष्ट कैसे होवे? हे रामजी! जिसको आवरण होताहै उसका स्वरूप एक अवस्था को त्यागकर दूसरी अवस्था को ग्रहण करता है पर आत्मा तो सदा ज्ञानस्वरूप है इससे अन्य अवस्था को कदाचित् नहीं प्राप्त होता सदा ज्यों का त्यों है। उसमें मन, बुद्धि आदिक भी कुछ नहीं बने तब मोह कहां और आवरण कहां? सदा एकरस आत्मतत्त्व है; ज्ञानी को ऐसे भासता है और अज्ञानी को नानाप्रकार का जगत् भासता है। वह आत्मा ज्ञान काल में और अज्ञानकाल में एकरस है पर उसमें दो दृष्टि होती हैं, ज्ञानदृष्टि से तो सर्व आत्मा है और अज्ञान से नानाप्रकार का जगत् भासता है। हे रामजी! जैसे एक समुद्र से अनेक तरङ्ग और बुद्बुदे उठते और लीन होते हैं पर उनका उत्पन्न और लीन होना जलमें है, जलसे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही जितने विचार और इच्छा भासते हैं सो सब आत्मामें होते हैं और दूसरी वस्तु नहीं। विकार और अविकार सब परमात्मतत्त्व है समुद्र में लहरें और बुद्बुदे परिणाम से होतेहैं; आत्मा सदा ज्यों का त्यों है और नानाप्रकार के आकार भासते हैं सो भी वही रूप है। जैसे सुवर्ण में नानाप्रकार के भूषण होते हैं सो सब सुवर्ण ही हैं दूसरी वस्तु कुछ नहीं और भ्रान्तिसे नानाप्रकार की संज्ञा होती है। जैसे कोई पुरुष जाग्रत् बैठा हो और नींद आनेसे स्वप्नसृष्टि भासे तो चाहे वह जाग्रत् के अज्ञान से स्वप्नसृष्टि भासी हो पर जब निद्रा निवृत्त होती है तब जाग्रत् ही भासती है सो जाग्रत् भी परमात्मतत्त्व के अज्ञान से भासती है। जब उस पद में जागोगे तब जाग्रत्भ्रम निवृत्त हो जावेगा। हे रामजी! यह संसार

अपने फुरने से हुआ है। जब फुरना दृढ़ हुआ तब दुःख पाने लगा। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पितकर आपही दुःख पाता है तैसेही जीव अपने फुरनेसे आपही दुःख पाता है। जब आत्मबोध होता है तब संसारभ्रम निवृत्त होजाता है। हे रामजी! यह संसार जो रससंयुक्त भासता है सो भावनामात्र है। जब यही भावना उलटकर आत्मा की ओर आवे तब जगत्भ्रम मिट जावेगा। देह, इन्द्रियादिक जो आत्मा के अज्ञान से फुरे हैं और उनमें अहंकार हुआ है सो आत्मभावना से निवृत्त होजावेगा। जैसे वर्षाकाल में मेघ घन होते हैं और जब शरत्-काल आता है तब नष्ट होजाते हैं तैसेही जब बोधरूपी शरत्काल आता है तब अनात्म में आत्म अभिमानरूपी मेघ नष्ट हो जाता है और परम-स्वच्छता प्रकट होती है। हे रामजी! जितना जगत् पिण्डरूप होकर भासताहै सो जब आत्मा का साक्षात्कार होगा तब पिण्डबुद्धि जाती रहेगी और सब जगत् आकाशरूप होजावेगा। जैसे शरत्काल में मेघ की घनता जाती रहती है और आकाशरूप होजाता है। हे रामजी! यह भ्रान्ति की कठिनता तबतक भासती है जब तक स्वरूप से सुषुप्ति-वत है, जब जागेगा तब जगत् सब आकाशरूप होजावेगा। जैसे स्वप्ने से जागकर स्वप्न जगत् आकाशरूप होजाता है। हे रामजी! यह विकार; क्षोभ और नानात्व प्रमाद से भासते हैं, जब आत्मबोध होताहै तब सब क्षोभ और विकार मिटजाते हैं और सर्व प्रपञ्च एकता को प्राप्त होकर द्वैतभाव मिट जाता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि में घृत अथवा ईंधन और मिष्टान्न जो कुछ डालिये सो एक रूप होजाता है; तैसेही जब बोध की प्राप्ति होती है तब सब जगत् एकरूप होजाता है; और जैसे नानाप्रकार के भूषण अग्नि में डालिये तो एक सुवर्ण ही होजाता है और भूषण की संज्ञा नहीं रहती है तैसेही मन को जब आत्मबोध में स्थित किया तब जगत्संज्ञा नहीं रहती केवल परमात्मतत्त्व होजाता है। हे रामजी! इन्द्रियां और जगत् तबतक भासता है जबतक स्वरूप में सोया पड़ा है; जब जागेगा तब संसार की सत्यता मिट जावेगी और इच्छा भी कोई न

रहेगी । जैसे किसी पुरुष को स्वप्न आताहै और जब उस स्वप्ने से जागता है तब स्वप्ने के स्मरण की इच्छा नहीं करता कि, मुझ को प्राप्त हो क्योंकि; उसकी सत्यता नहीं भासती तो इच्छा कैसे करे; तैसेही जबतक स्वरूपसे सोया पड़ा है तबतक संसार के पदार्थों को मिथ्या नहीं जानता उनकी इच्छा करता है । जब तुम स्वरूपमें जागोगे तब सब पदार्थ विरस होजावेंगे और जब ज्ञान से जगत् को मिथ्या स्वप्नवत् जानोगे तब इच्छा भी न करोगे । हे रामजी ! जीवन्मुक्त की चेष्टा सब दृष्टि आती है परन्तु उसके हृदय में जगत्की सत्यता नहीं होती क्योंकि, उसको आत्मानुभव हुआ है । जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासता है पर जिसने सूर्य की किरणें जानी हैं उसको जल नहीं भासता किरणेंही भासती हैं और जिसने किरणें नहीं जानीं उसको जल भासताहै । दृष्टि दोनोंकी तुल्यहै परन्तु ज्ञानवान् के निश्चय में जगत् जलवत् नहीं और अज्ञानी को जगत् जलवत् दृढ़ भासता है । हे रामजी ! मनरूपी दीपक प्रज्वलित है; उसमें ज्ञानरूपी जल डालिये तो निर्वाण होजावे । जब मन निर्वाण होगा तब उस पदको प्राप्त होगे जहां जगत् और अहंकार का अभाव है; वह न शून्य है, न अशून्य है और केवल, अकेवल; उदय अस्तभी नहीं । हे रामजी ! जो पुरुष ऐसे पदको प्राप्त हुआहै वह कृतकृत्य होताहै और रागद्वेष से रहित परम शान्ति-पदको प्राप्त होता है । उसका अहंकार निर्वाण होजाता है और केवल निर्वाच्य पद को प्राप्त होता है जहां कोई उत्थान नहीं । हे रामजी ! आत्मा में जगत् के पदार्थ कोई नहीं परन्तु मन के संकल्प से भासते हैं । जैसे थम्भेमें चितेरा कल्पना करताहै कि; इतनी पुतलियां इस थम्भेमें हैं सो उसके निश्चय में हैं, थम्भे में पुतलियों का अभाव है; तैसेही मन के निश्चय में जगत् है; आत्मा में कुछ नहीं बना जिस पुरुष का मन सूक्ष्म होगया है उसको जगत् स्वप्न भासता है; जब उसने स्वप्न जाना तब वह इच्छा और त्याग किसका करे । हे रामजी ! जगत् तबतक भासता है जबतक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ; जब आत्मानुभव होगा तब जगत् रस संयुक्त कदाचित् न भासेगा । जैसे धूप और छाया इकट्ठी नहीं होती तैसेही ज्ञान

और जगत् इकट्ठे नहीं होते आत्मज्ञान हुये जगत् का अभाव होजाता है और जैसे पूर्वकाल वर्तमानकाल में नहीं होता; तैसेही आत्मा में जगत् नहीं होता। हे रामजी! यह जगत् भ्रमसे भासता है और विचार कियेसे इसका अभाव होजाता है। द्रष्टा-दर्शन-दृश्य जो त्रिपुटी भासती है सो भी मिथ्याहै। जैसे निद्रादोष से स्वप्नेमें तीनों भासते हैं और जागेसे अभाव होजाते हैं तैसेही अज्ञान से ये भासते हैं और ज्ञानसे त्रिपुटी का अभाव होजाता है। हे रामजी! जैसे मनोराज करके मनमें जगत् स्थित होता है तैसेही ये पर्वत, नदियां, देश, काल, जगत् भी जानो। इससे इस जगत् भ्रमका त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित होरहो। यह जगत् भ्रमसे उदय हुआहै। विचार कियेसे नष्ट होजावेगा और तुमको परमशान्ति प्राप्त होगी। हे रामजी! जिसका मन उपशमभाव को प्राप्त हुआ है, वह पुरुष मौनी है। वह निरोधपद को प्राप्त हुआ है और संसारसमुद्र से तरकर कर्मों के अन्त को प्राप्त हुआ है। उसको सम्पूर्ण जगत्, पहाड़, नदियां, संयुक्त लीन होजाताहै। अज्ञानके नष्ट हुये विद्यमान जगत्भी नष्ट होजाता है क्योंकि; वह शान्त अन्तःकरण और परमशान्तिरूप अमृत से तृप्त है। वह ज्ञानवान् निरावरण होकर स्थित होता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वशान्त्युपदेशो नाम शताधिकैकसप्ततितमस्सर्गः॥ १७१॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिस क्रम से बोध आत्मा जगत्रूप हो भासता है सो क्रमभेद के निवृत्ति के अर्थ फिर मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितना जगत् दृष्टि आता है उसका चित्त में निश्चय होता है। ज्ञानवान् को भी चित्त से भासता है और अज्ञानी को भी चित्त से भासता है परन्तु इतना भेद है कि, अज्ञानी जगत् को देखता है तब सत् मानता है और ज्ञानवान् शास्त्रयुक्ति से देखकर पूर्व अपर अर्थ के विचारसे भ्रान्तिमात्र जानता है। यह जगत् अविद्यासे भासता है सो अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं। जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है सो कुछ है नहीं, तैसेही अविद्या कुछ वस्तु नहीं है। जितना स्थावर-जङ्गम जगत्

भासता है सो कल्प के अन्त में नष्ट होजाता है। जैसे समुद्र से एक बुन्द निकालिये तो नष्ट होजाती है क्योंकि; विभागरूप है तैसेही माया, अविद्या, सत्, असत् आदिक सर्व सम्बन्ध का अभाव होजाता है क्योंकि; सब शब्द जगत् में हैं; जब जगत् लीन हुआ तब शब्द कहां रहे? और वास्तव में न कुछ उपजा है; न लीन होताहै—एकही चिदाकाशहै जो तुम कहो कि, देह उपजती है सो देह और तत्त्व को स्वप्नवत् जानो। जो तुम कहो कि, जगत् प्रलय में लीन होता है इससे कुछ है; तो नाश वही होताहै जो असत्य होता है। जो तुम कहो कि, असत्य है तो फिर क्यों उपजता है तो उपजी वस्तुभी सत् नहीं होती। जो तुम कहो कि, महाप्रलय में चिदाकाशही रहताहै और वही जगत्रूपहो भासताहै तो जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं हुआ—बोधमात्रही इस प्रकार हो भासताहै जैसे बीज और वृक्ष में कुछ भेद नहीं तैसेही जिससे जगत् भासताहै वही रूप है, कुछ उपजा नहीं; जो उपजा नहीं तो विकार और भेद कैसेहो—इससे बोधमात्रही अपने आपमें स्थितहै। कारण कार्यसे रहित परमशान्तरूप अपने आपमें आत्म-सत्ता स्थित है, वही जगत्रूप होकर भासता है और देश, काल, पदार्थ भी सब महाप्रलयरूप हैं। जब महाप्रलय होता है तब ब्रह्मदेव पर्यन्त सबपदार्थ नष्ट होजाते हैं और आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी का नाम भी नहीं रहता और अर्थ भी नहीं रहता; तब केवल बोधमात्र और बोध से भी रहित शेष रहता है जो परमशान्तरूप है और उसमें वाणी और मन की गम नहीं—केवल अचेत चिन्मात्र सत्ताही है। उसी को तत्त्ववेत्ता अनुभव कहते हैं और कोई नहीं जान सक्ता। हे रामजी। जो पुरुष अविद्या रूपी निद्रा से जागा है वह निराभास होता है अर्थात् चित्त से चैत्य का सम्बन्ध टूट जाताहै और उसको परम प्रकाशरूप आत्मपद प्राप्त होकर स्वभाव में स्थिति होती है और परभाव जो प्रकृति है उसका अभाव होजाता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् परभाव से भिन्न २ भासता था सो सब एकरूप होजाता है। जैसे स्वप्न में सब पदार्थ भिन्न २ भासते हैं और जागेसे सब एकरूप होजाते हैं, अपना आपही भासता है; तैसेही जब आत्मा का अनुभव होताहै तब

जगत् अपना आपही भासताहै। हे रामजी! एकरूप तब हो भासता है जब और कुछ नहीं बना। जैसे सुवर्ण के भूषण अग्नि में डालिये तो अनेकभूषणों का एक पिण्ड होजाता है और एकही आकार भासता है; तैसेही जब बोध का अनुभव होताहै तब सर्व एकरूप होजाताहै। हे रामजी! भूषणों के होतेभी सुवर्णही था इसीसे सब एकरूप होगया, तैसेही जब बोधका अनुभव होता है तब सर्व एकरूप हो भासता है इससे जगत् के होते भी जगत् आत्मरूप है। जगत् है नहीं और हुये की नाईं भासित होकर भिन्न २ दृष्टि आता है—जैसे सोमजल में तरङ्ग हैं नहीं और भासते हैं तौभी जलरूप हैं—असम्यक्दृष्टि करके भिन्न २ भासते हैं। हे रामजी! ज्ञानीको जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त तुल्यहैं। जैसे भूषणके होतेभी स्वर्ण है और भूषण के अभाव हुये भी स्वर्णहै तैसेही ज्ञानवान् को देह के होते भी ब्रह्म है और देह के अभाव हुये भी ब्रह्म है। जो अज्ञानी है उसको नानाप्रकार का जगत् फुरता है। अज्ञानी वही है जिसको मन का सम्बन्ध है। हे रामजी! यह जगत् भिन्न २ फुरता है। जैसे काष्ठ के थम्भे में चितेरा पुतलियां कल्पता है सो और को नहीं भासतीं उसीके मन में होती हैं; तैसेही भिन्न २ पदार्थरूपी पुतलियां अज्ञानी के मन में फुरती हैं और ज्ञानवान् को नहीं भासतीं। जब काष्ठ का आधार होताहै तब चितेरा पुतलियां कल्पता है पर यह आश्चर्य देखो कि, मनरूपी ऐसा चितेरा है कि, आकाश में पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है औरबिन खोदी भासती हैं। हे रामजी! और दूसरा कुछ नहीं बना; जैसे किसी पुरुष ने काग़ज़ पर पुतली लिखी हो सो काग़ज़रूप है और कुछ नहीं बनी; तैसेही यह जगत् भी वही स्वरूपहै। हे रामजी! जब तुमको आत्मपद का अनुभव होगा तब जितने जगत् के शब्द अर्थ हैं वे सब उसीमें भासेंगे जैसे जिसने स्वर्ण को जाना उसको भूषण के शब्द-अर्थ स्वर्णही भासते हैं, तैसेही जब आत्मपद को जानोगे तब तुमको जगत् के शब्द अर्थ आत्मा ही में दृष्टि आवेंगे। हे रामजी! यह जीव महासूक्ष्मरूप हैं। और इनमें अपनी २ सृष्टि है। जबतक फुरना है तबतक सृष्टि है; जब सृष्टि फुरना

अपनी ओर आता है तब सब सृष्टि एक आत्मरूप हो जाती है और आकाश, काल, दिशा, पदार्थ सर्व आत्मा है; आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, वह अपने आपमें स्थित है—जो अद्वैत चिन्मात्रपद है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनं नाम शताधिकद्विसप्ततितमस्सर्गः ॥ १७२ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सर्वतत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ द्रष्टा और दृश्य का सम्बन्ध कैसे हुआ है? काल में कालत्व; आकाश में शून्यता और वायु में स्पन्द कैसे हुई है? जड़ में जड़ता; भूतों में भूतता; संकल्प में स्पन्द; सृष्टि में सृष्टिता; मूर्ति में मूर्तिता; भिन्न में भिन्नता और दृश्य में दृश्यता किससे हुये हैं सो मुझसे कहिये क्योंकि; अर्धप्रबुद्ध को बोध के निमित्त कहना योग्य है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर आदिक जो सब हैं सो प्रलयकाल में जिसमें लीन होते हैं उसका नाम प्रलय है। उसका शब्द 'प्रलय' शब्द है और सर्व 'निर्वाण' होजाते हैं 'यह' अर्थ है। हे रामजी! ऐसा जो अनन्त आकाश है सो सम, शुद्ध, आदि-अन्त-मध्य से भी रहित; चैतन्यघन और अद्वैत है जहां एक और दो शब्द भी नहीं और जिसमें आकाश भी पहाड़ के समान स्थूल है और ऐसा सूक्ष्म है कि, 'है', 'नहीं', दोनों 'शब्दों' से रहित अपने आपमें स्थित है। जैसे पाषाण का शिलाकोष होता है तैसे ही वह चित्त के फुरने से रहित है। ऐसे परमात्म-तत्त्व अकारण से सृष्टि का उपजना कैसे कहिये? जैसे आकाश अपने आप में स्थित है तैसे ही ब्रह्म अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! एक निमेष के फुरने से जो वृत्ति अनेक योजन पर्यन्त जाती है उसके मध्य जो अनुभव करनेवाली सत्ता है उसमें तुम स्थित होकर देखो कि, जगत् और उसकी उत्पत्ति कहां है? हे रामजी! उत्पत्ति जो होती है सो समवायकारण और निमित्तकारण से होती है पर आत्मा निराकार, अद्वैत और सन्मात्र है—न समवायकारण है और न निमित्तकारण है। इससे आत्मा अच्युत है अर्थात् स्वरूप से कदाचित् नहीं गिरा तो समवायकारण कैसे होवे? निमित्तकारण भी नहीं क्योंकि, निराकार है; इससे आत्मा में जगत् कोई नहीं भ्रान्तिमात्र

और अविद्या करके भासता है। जो वस्तु होवे नहीं और प्रत्यक्ष भासे उसे अविद्या से जानिये। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है। जल में जो तरङ्ग और आवर्त उठते हैं सो जलरूप हैं जल से भिन्न कुछ नहीं। जब तुम अपने आपमें स्थित होगे तब जगत् का शब्द अर्थ भिन्न न भासेगा क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ नहीं है। हे रामजी! ब्रह्म अमूर्त है; उसमें यह मूर्ति कैसे उत्पन्न हो? यह भ्रान्तिमात्र है। जो वस्तु कारण से उपजी हो सो सत् होती है और जो कारण विना दृष्टि आवे उसे भ्रममात्र जानिये। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है उसका कोई कारण नहीं इससे मिथ्याभ्रम से भासता है, तैसेही यह जगत् मिथ्यामात्र है विचार किये से नहीं रहता। हे रामजी! आकाश काल आदिक जो पदार्थ हैं सो सब शून्य हैं; आत्मा में न उदय हुये हैं और न अस्त होते हैं—ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थित है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम
शताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्गः॥ १७३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसेही ब्रह्मरूपी आकाश अपने आपमें स्थित है सो कैसे किसीका कारण हो? कारण और कार्य तब होता है जब द्वैत होता और आरम्भ, परिणाम होता है पर आत्मा तो अद्वैत, अच्युत और निर्गुण है उसमें आरम्भ कैसे हो? हे रामजी! जो कुछ जगत् तुमको भासता है सो सब काष्ठवत् मौन है अर्थात् वहां मन का फुरना शून्य है। हे रामजी! जो कुछ द्वैत भासता है सो भ्रममात्रहै। जो कुछ हुआ होता तो ज्ञानी को भी प्रत्यक्ष होता पर ज्ञानकालमें नहीं भासता इससे भ्रममात्र है। हे रामजी! पृथ्वी, जल आदि जो पदार्थ हैं तिनका फुरना स्वप्ने की नाईं है। जैसे स्वप्ने में चेष्टा होती है सो पास बैठे की नहीं भासती क्योंकि, है नहीं; तैसेही सृष्टि अकारण संकल्पमात्र है। हे रामजी! जैसे शशे के सींगों का कारण कोई नहीं तैसेही जगत् का कारण कोई नहीं। जो कुछ हो तो उसका कारण भी हो पर जो कुछ हो ही नहीं तो किसका कारण कौन हो। रामजी ने पूछा,

हे भगवन् ! जैसे वट के बीज में वृक्ष का भाव होता है पर काल पाकर बीजसे वृक्ष होआताहै तैसेही इस जगत् का कारण परमाणु क्यों न हुआ ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सूक्ष्म में स्थूल संकल्पमात्र होता है । मैं भी कहता हूं कि, सूक्ष्म में स्थूल होताहै परन्तु संकल्पमात्र होताहै—कुछ सत्य नहीं होता । जो कहिये कि, सत्य होता है तो नहीं होसक्ता । जैसे राईके कणके में सुमेरु पर्वत का होना नहीं होसक्ता तैसेही सुक्ष्म परमाणु से जगत् का उत्पन्न होना असम्भव है । हे रामजी ! सूक्ष्म परमाणु का कार्य भी जगत् तब कहा जाय जब सूक्ष्म अणु भी आत्मामें पाया जावे; आत्मा तो अद्वैत है और उसमें एक और दो कहने का अभाव है । आत्मा में जानना भी नहीं—केवल आत्मतत्त्वमात्र है और आधार आधेय से रहित है । बीज भी तब प्रणमता है जब उसको जल देते हैं और रक्षा करने का स्थान होता है पर आत्मा आधार आधेय से रहित केवल अपने भाव में स्थित है और अद्वैत सत्तामात्र है । जैसे बन्ध्या के पुत्र का कारण कोई नहीं, तैसेही जगत् का कारण कोई नहीं; जो बन्ध्या का पुत्र ही नहीं तो उसका कारण कौन हो तैसेही जगत् है नहीं तो ब्रह्म इसका कारण कैसे हो ? जिसको तुम दृश्य कहते हो सो द्रष्टा ही दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है । हे रामजी ! जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होकर स्थित है; तैसेही ब्रह्म ही जगत् आकार होकर दृष्टि आता है; दृश्य भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं । जैसे समुद्रही तरङ्ग और आवर्तरूप होकर भासता है तैसेही अनन्तशक्ति होकर परमात्मसत्ताही स्थित है । हे रामजी ! मैं और तुम आदि जगत् के पदार्थ सब फुरनेमात्र हैं । जैसे संकल्प नगर होताहै जो मन से रचा है; तैसेही यह जगत् आत्मा में कुछ बना नहीं केवल ब्रह्म अपने आप में स्थित है—हमको तो सदा वही भासता है । हे रामजी ! आत्मा में यह जगत् न उदय होता है और न अस्त होता है सदा ज्यों का त्यों निर्मल शान्तपद है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्वैतैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकचतुःसप्ततितमस्सर्गः ॥ १७४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जगत् का भाव–अभाव; जड़–चैतन्य; स्थावर–जङ्गम; सूक्ष्म–स्थूल; शुभ–अशुभ कुछ हुआ नहीं तो मैं तुमसे क्या कहूं कि, यह कार्य है और इसका यह कारण है? यह हुआ ही नहीं तो फिर कारण कार्य कैसे हो? जो सर्व देश, सर्वकाल और सर्ववस्तु हो सो कारण कार्य कैसे हो? आत्मा केवल अपने आप में स्थित है और जो है और नहीं की नाईं स्थित हुआ है; उसमें संवेदन है और उसके फुरने से जगत् भासता है। वह फुरना चैतन्यमात्र का विवर्त है और उस विवर्त से जगत् भ्रम हुआ है; जब यही फुरना उलटकर अपनी ओर आता है तब जगत्भ्रम मिट जाता है और जब फुरता है तब ध्यान, ध्याता और ध्येयरूप होकर स्थित होता है। इसही का नाम जगत् है और इसीमें बन्ध और मुक्त होता है; आत्मा में न बन्ध है और न मोक्ष है। हे रामजी! जब तरङ्ग घनभूत होकर बहता है तब एक नदी होकर चलता है; तैसेही जब वासना दृढ़ होती है तब जगत्-रूप होकर स्थित होता है और भासता है। जब ऐसी वासना दृढ़ हुई तब राग द्वेष संकल्प से बन्धवान् होताहै और जब वासना क्षय होती है तब जगत् का अभाव होकर स्वच्छ आत्मा भासता है। जैसे शरत्काल का आकाश स्वच्छ होता है–उससे भी निर्मल भासता है। हे रामजी! जीव जो निकल जाताहै सो मरता नहीं; मुआ तब कहाजाय जब अत्यन्त अभाव को प्राप्त हो और न जाना जाय; इससे यह मरना नहीं क्योंकि; फिर जगत् भासताहै। यह मरना सुषुप्ति की नाईं हुआ–जैसे सुषुप्तिसे जागे हुये जगत् भासता है और वही चेष्टा करने लगता है और जैसे स्वप्न और जाग्रत् होता है तैसेही मृत्यु और जन्म भी है। यदि मरने का शोक उपजे तो जीने का सुख भी मानिये और जो जीने का हर्ष उपजे तो उसमें मरने का शोक मानिये–दोनों अवस्था शरीर की सम रची हैं। जब यह अवस्था शरीर की जानी तब तुम्हारा हृदय शीतल हो जावेगा। जब संवेदन फुरने का अत्यन्त अभाव हो तब परम शान्ति होती है। ध्यान, ध्याता और ध्येय तीनों का अभाव हो जाता है और अज्ञान भी नहीं

रहता। जब ऐसा अभाव होता है तब पीछे स्वच्छ निर्मल पद रहता है। हे रामजी! अब भी निर्मलपद है परन्तु भ्रम से पदार्थसत्ता भासती है। जैसे निद्रा दोष से केवल अनुभव में पदार्थसत्ता होकर भासती है और जागे से कहता है कि, केवल भ्रममात्र ही था; तैसेही इस जगत्को भी भ्रममात्र जानो। परमार्थस्वरूपके प्रमादसे यह जगत् भासताहै और स्वरूपमें जागेसे इसका अभाव होजाता है। हे रामजी! जैसे स्वप्न में जीव अनहोता ही राज्य देखताहै तैसेही तुम इस जगत् को जानो। इसका फुरना ही इसको बन्धन का कारण है। जैसे कुसवारी आपही स्थान बनाकर आपही फँस मरती है और जैसे मद्यपान करनेवाला मद्यपान करके मुख से और का और बोलता है और उससे बन्ध्यायमान होता है; तैसेही जीव अपने संकल्पही से बँधता है और जब संकल्प मिटता है तब परमानन्द को प्राप्त होकर परम स्वच्छ शान्ति उदय होती है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमशान्तिनिर्वाणवर्णनं नाम शताधिकपञ्चसप्ततितमस्सर्गः॥ १७५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जहां आकाश होता है वहां शून्यता भी होतीहै; जहां अवकाश होता है वहां आकाश भी होता है और जहां आकाश है वहां पदार्थ भी होते हैं; तैसेही जहां चैतन्यसत्ता है वहां सृष्टि भी भासती है पर बनी कुछ नहीं और सदा रहती है। जैसे सूर्य की किरणों में जल कदाचित नहीं उत्पन्न हुआ और जलाभास सदा रहता है क्योंकि, उसीका विवर्त है; तैसेही सृष्टि आत्मा का विवर्त है—जहां चैतन्य सत्ता है वहां सृष्टि भी है। इसीपर मैं एक इतिहास तुमसे कहता हूं जिसके सुने और समझे से जरा मृत्यु से रहित होगे। वह इतिहास परमसुन्दर और चित्त का मोहनेवाला आश्चर्यरूप है और मेरा देखा हुआ है। हे रामजी! एककाल में मेरा चित्त जगत् से उपरत हुआ तौ मैंने विचार किया कि; किसी एकान्त स्थान में जाकर समाधान करूं क्योंकि; जगत् मोहरूप व्यवहार से दृढ़ हुआ है और जितना कुछ जानने योग्य है उसको मैं जाननेवाला हूं परन्तु व्यवहार करके भी

शान्तरूप होऊं । तब ऐसा मैंने विचार किया कि, निर्विकल्प समाधि करके परमशान्ति पाऊं और जो आदि, अन्त और मध्यसे रहित परमानन्दस्वरूप और अविनाशी पद है उसमें विश्राम करूं । हे रामजी ! तब भी मैं ज्ञान वृत्तिमान् और परमात्मस्वरूप ही था परन्तु चित्त की वृत्ति जब जगत्भाव से उपरत हुई तो व्यवहार से भी एकान्त समाधि की इच्छा की कि; जहां कोई क्षोभ न हो वहां स्थित हूं । ऐसे विचार करके मैं आकाश में उड़ा और एक देवता के पर्वत पर जा बैठा तो वहां बहुत प्रकार के इन्द्रियों के विषय देखे कि; अङ्गना गान करती हैं । शिरपर चमर होते हैं; और मन्द मन्द पवन चलता है । पर वह भी मुझको आपातरमणीय भासे क्योंकि, किसी काल में किसी को सुखदायक नहीं—समाधिवाले के ये शत्रु हैं । उनको विरस जानकर मैं फिर उड़ा और एक पर्वत की कन्दरा में जो बहुत सुन्दर थी और जहां एक सुन्दर वन था और उसमें सुन्दर पवन चलता था पहुँचा । ऐसे स्थान को मैंने देखा तो वह भी मुझको शत्रुवत् भासित हुआ क्योंकि; पक्षियों के शब्द होते थे और पवन का स्पर्श होता था व और भी अनेक विघ्न थे । उनको देखकर मैं आगे चला तो नागोंके देश और सुन्दर नागकन्या देखीं और इन्द्रियों के बहुत सुन्दर विषय भी देखे पर वह भी मुझको सर्पवत् भासे । जैसे सर्प के स्पर्श किये से अनर्थ होता है तैसेही मुझको विषय भासे । हे रामजी ! जितने इन्द्रियों के विषय हैं वे सब अनर्थ के कारण हैं; उनमें प्रीति मूढ़ और अज्ञानी करते हैं । फिर मैं समुद्र के किनारे गया और उसके पास जो पुष्प के स्थान थे उनमें बिचरा और कन्दरा और वन को देखता हुआ पर्वत, पाताल और दशों दिशा देखता फिरा परन्तु एकान्त स्थान मुझको कोई दृष्ट न आया । तब मैं फिर आकाशको उड़ा और पवन; मेघों; देवगणों; विद्याधरों और सिद्धोंके स्थान लांघतागया तो आगे देखा कि, कई ब्रह्माण्ड भूतों के उड़ते थे उनमें मैंने अपूर्व भूत और नानाप्रकार के स्थान देखे । फिर गरुड़ के स्थान लांघे तो कहीं सूर्य का प्रकाश होता था और कहीं सूर्य का प्रकाश ही न था । फिर मैं चन्द्रमा के

मण्डल को लांघ गया और अग्नि के स्थान लांघकर महाआकाश में गया जहां इन्द्रियों का रोकना भी न था क्योंकि; इन्द्रियों के विषय कोई दृष्ट न आते थे केवल एक आकाश ही आकाश दृष्ट आता था और वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी चारों का अभाव था। हे रामजी! निदान में उस स्थान में गया जहां भूत स्वप्न में भी दृष्ट न आते थे और सिद्धों की भी गम न थी। वहां मैंने संकल्प की एक कुटी रची और उसके साथ फूल और पत्रों से पूर्ण कल्पवृक्ष रचे और उसके एक ओर मैंने छिद्र रक्खा। मेरा तो सूक्ष्मसंकल्प था इसलिये सब प्रत्यक्ष आन हुआ। उस कुटी को रच कर उसमें मैंने प्रवेश किया और संकल्प किया कि; एक वर्ष पर्यन्त मैं समाधि में रहूंगा और उससे उपरान्त समाधि से उतरूंगा। ऐसे विचार-कर मैंने पद्मासन बांधा और समाधि में स्थित होकर परमशान्ति में एक वर्ष पर्यन्त स्थित हुआ जहां कोई क्षोभ न था जब वर्ष व्यतीत हुआ तब वह भावी समाधि के उतरने की थी इसलिये वह संकल्प आन फुरा। जैसे पृथ्वी में बोया हुआ बीज काल पाकर अंकुर लेता है तैसे ही वह संकल्प आन फुरा। प्रथम, जैसे सूखा वृक्ष वसन्तऋतु में हरा हो आता है तैसे ही प्राण फुरि आये; फिर, जैसे वसन्तऋतु में फूल खिल आते हैं तैसेही ज्ञान इन्द्रियां खिल आईं और फिर स्पन्द जो अहंकाररूपी पिशाच है सो फुरा कि, मैं वशिष्ठ हूं; और उसकी इच्छारूपी स्त्री फुरी। हे रामजी! वह वर्ष मुझको ऐसे व्यतीत हुआ जैसे निमेष का खोलना होता है। काल भी बहुतप्रकारसे व्यतीत होताहै; किसी को थोड़ा ही बहुत होजाता है और किसीको बहुत थोड़ा होजाता है। जब सुख होता है तब बहुत काल भी थोड़ा हो भासता है और जब दुःख होता है तब थोड़ा काल बहुत हो जाता है। हे रामजी! इस समाधि का जो मैंने वर्णन किया यह शक्ति सब जीवों में है परन्तु सिद्ध नहीं होती क्योंकि, नानाप्रकार की वासना से अन्तः-करण मलीन है। जब अन्तःकरण शुद्ध हो तब जैसा संकल्प करे तैसा ही सिद्ध होता है और मलीन अन्तःकरणवाले का संकल्प सिद्ध नहीं होता।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे आकाशकुटीवशिष्ठसमाधि-वर्णनं नाम शताधिकषट्सप्ततितमस्सर्गः ॥ १७६ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम तो निर्वाणस्वरूप हो तुमको अहंकाररूपी पिशाच कैसे फुरा—यह मेरा संशय दूर कीजिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी जबतक शरीर का सम्बन्ध है तबतक अहंकार दूर नहीं होता। जैसे जहां आधार होताहै वहां आधेय भी होता है और जहां आधेय होता है वहां आधार भी होताहै; तैसेही जहां देह होती है वहां अहंकार भी होताहै और जहां अहंकार होताहै वहां देह भी होती है। हे रामजी! अहंकार विना शरीर नहीं रहता पर वह अहंकार अज्ञानरूपी बालक ने कल्पा है और ज्ञानी को अहंकार नष्ट होजाता है। हे रामजी! यह अहंकार अविद्या ने कल्पा है। जो वास्तव में मिथ्या हो और भासे वह अविद्या है। और जो अविद्याही मिथ्या है तो उसका कार्य अहंकार कैसे सत् हो? यह केवल मिथ्या भ्रम से उदय हुआ है जैसे भ्रम से वृक्ष में वैताल भासता है तैसेही भ्रम से अहंकाररूपी वैताल उदय हुआ है और इसका कारण अविचार सिद्ध है; विचार किये से इसका अभाव होजाता है। जहां विचार होता है वहां अविद्या नहीं रहती। जैसे जहां दीपक होता है तहां अन्धकार नहीं रहता क्योंकि; दीपक के जागेते अन्धकार का अभाव होजाता है; तैसेही विचार के उदय हुये अविद्या का अभाव होजाता है। जो वस्तु विचार कियेसे न रहे उसे मिथ्या जानिये और जो आपही मिथ्या है तो उसका कार्य कैसे सत्य हो? इससे अहंकार को मिथ्या जानो। हे रामजी! जैसे आकाश के वृक्ष का कारण कोई नहीं; तैसेही अहंकार का कारण कोई नहीं। मन सहित जो षट्इन्द्रियां हैं शुद्ध आत्मा उनका विषय नहीं क्योंकि; वे साकार और दृश्य हैं। साकार का कारण निराकार आत्मा कैसे हो? जो कुछ आकार है सो सब मिथ्या है। जो बीज होता है उससे अंकुर उत्पन्न होताहै तब जाना जाता है कि, बीज से अंकुर उत्पन्न हुआ है परन्तु बीजही न हो तो उसका कार्य अंकुर कैसे उत्पन्न हो? तैसेही जगत् का कारण संवेदन ही न हो तो जगत् कैसे हो? जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा हो तो उसका कारण भी मानिये और जो दूसरा चन्द्रमाही

न हो तो उसका कारण कैसे मानिये? हे रामजी! ब्रह्म आकाश, अद्वैत, शुद्ध, फुरने से रहित, अच्युत और अविनाशी है, वह कारण कार्य कैसे हो? हे रामजी! पृथ्वी आदिक तत्त्व अविद्यमान हैं पर भ्रम से भासते हैं। केवल शुद्ध आत्मा अपने आपमें स्थित है। जो तुम कहो कि, अविद्यमान हैं तो भासते क्यों हैं तो उसका उत्तर यह है कि; जैसे स्वप्ने में अनहोती सृष्टि भासती है तैसेही यह जगत् भी अनहोता भासता है। जैसे भ्रम से आकाश में वृक्ष अनहोते भासते हैं तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं और संकल्पनगर रच लीजे तो चेष्टा भी होती है परन्तु इसका स्वरूप संकल्पमात्र है वास्तव में अर्थाकार कुछ नहीं होता और अपने काल में सत्य भासता है पर जब संकल्प का लय होता है तब उसका भी अभाव होजाता है—इससे आकाश के वृक्ष की नाईं हुआ है। जैसे आकाश के वृक्ष भावना से भासते हैं। तैसेही यह जगत् संकल्पमात्र है। स्वरूप से कुछ नहीं है जो विचार करके देखिये तो इसका अभाव होजाता है। हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्त्व अपने आप में स्थित है वही जगत् का आकार हो भासता है—दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में जितने पदार्थ भासते हैं सो सब अनुभवरूप हैं तैसेही जगत् भी ब्रह्मरूपहै। हे रामजी! हमको सदा वही भासता है तो अहंकार कहां हो? न मैं अहंकार हूं और न मेरा अहंकार है केवल आकाश में अहंकार कहां हो? हे रामजी! न मैं हूं और न मेरे में कुछ फुरना है; अथवा सर्व आत्मसत्ता मैं ही हूं तो भी अहंकार न हुआ। हे रामजी! हमारा अहंकार ऐसाहै जैसे अग्नि की मूर्ति लिखी होती है तो उससे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता—दृश्यमात्र होती है। तैसेही ज्ञानी का अहंकार देखनेमात्र है उन्हें कर्तृत्व भोक्तृत्व का नहीं होता और वे अपने स्वभाव में स्थित हैं। सर्व ज्ञानवानों का एकही निश्चय है कि, ब्रह्मही भासता है और अहंकार का अभाव है। अहंकार न आगे था, न अब है और न फिर होगा—भ्रम से अहंकार शब्द जाना जाता है। हे रामजी! जब ऐसे जानोगे तब अहंकार नष्ट होजावेगा। जैसे शरत्काल में मेघ देखने मात्र वर्षा से रहित होता है तैसेही ज्ञानीका अहंकार देखनेमात्र होताहै। और की

बुद्धि में भासता है परन्तु ज्ञानी के निश्चय में असंभव है क्योंकि; उसका अहंप्रत्यय आत्मामें रहता है और प्रच्छन्न अहंकारका अभाव होजाता है। जब अहंकार नाश होताहै तब अविद्या का भी नाश होजाता है और यही अज्ञान का नाशहै-यह तीनों पर्याय हैं। हे रामजी! अपने स्वभाव में स्थित रहो और प्रकृत आचार करो; हृदय से शिलाकोषवत् होरहो और बाहर इन्द्रियों की सब क्रिया हों; अपने निश्चय को गुप्त रक्खो और सब इन्द्रियों को इस प्रकार धारो जैसे आकाश सबको धार रहाहै; अन्तर से शिला के जठरवत् रहो और देखनेमात्र तुम्हारे में भी अहंकार दृष्ट आवेगा। जैसे अग्नि की मूर्ति लिखी दृष्टि आती है तैसेही तुम्हारे में अहंकार दृष्ट आवेगा परन्तु अर्थ कारण होगा और केवल ब्रह्मसत्ता ही भासेगी और कुछ न भासेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विदितवेदाहंकारवर्णनं
नाम शताधिकसप्तसप्ततितमस्सर्गः॥ १७७॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि, तुमने अहंकार के त्यागे से परम सात्त्विकी प्राप्ति का उपदेश किया है। यह परम दशा है और राग द्वेष मल से रहित; निर्मल, उत्तम, अविनाशी और आदि-अन्त से रहित है। यह दशा तुमने परमविभुता के अर्थ कही है। हे भगवन्! सर्वदाकाल और सर्वप्रकार सर्ववस्तु वही ब्रह्मसत्ता है और समरूपसत्ता के अनुभव से परम निर्मल है तो शिलाख्यान किस निमित्त कहा है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह तो सर्वमें; सर्वदाकाल और सबसे रहित है पर उसके बोध के अर्थ मैंने तुझको शिलाख्यान का दृष्टान्त कहा है। हे रामजी! ऐसा स्थान कोई नहीं जहां सृष्टि न हो। सब स्थान में सृष्टि भासती है पर आदि से कुछ नहीं बना और सर्वदाकाल बसती है-शिला के कोष में भी अनेक सृष्टि भासती हैं। जैसे आकाशमें शून्यता है तैसेही शिलाकोष में भी सृष्टि बसती हैं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो सर्वमें सृष्टि बसती है तो आकाशरूप क्यों न हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यही मैं भी तुमसे कहताहूं कि; जो कुछ सृष्टि है वह सब आकाशरूप है। स्वरूप में तो सृष्टि उपजीही नहीं; सर्वदाआत्म-

सत्ता अपने आपमें स्थित है और आकाश की वार्ता क्या कहनी है कि; शिलाकोष में सृष्टि बसती है और आकाशरूप है—अर्थात् कुछ हुई नहीं हे रामजी! पृथ्वी में ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें सृष्टि न हो। अणु अणु में सृष्टि है और सर्व ओरसे बसती है परन्तु परमार्थ से कुछ नहीं बना केवल आत्मरूप है और सर्वसृष्टि शब्दमात्र है। जैसे यह सृष्टि भासती है तैसेही वह भी है। जो यह शब्दमात्र है तो वह भी शब्दमात्र है और जो यह सत्य भासती है तो वह भी सत्य भासती है। हे रामजी! ऐसा कोई जल का कण नहीं जिसमें सृष्टि न हो; सर्वमें ही सृष्टि है और यह आश्चर्य देखो कि, इस विना कुछ नहीं और ऐसा कोई अग्नि और वायु का कण नहीं जिसमें सृष्टि न हो। सबमें सृष्टि है और आकाशरूप है, कुछ बना नहीं—ब्रह्मसत्ता अपने आप में सदा ज्यों की त्यों स्थित है। हे रामजी! आकाश में ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें सृष्टि न हो परन्तु कुछ उपजी नहीं। ऐसा ब्रह्म अणु कोई नहीं जहां सृष्टि न हो परन्तु स्वरूप से कुछ हुई नहीं—ब्रह्मसत्ता अपने आपमें सदा स्थित है। हे रामजी! ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें ब्रह्मसत्ता नहीं और ऐसा कोई चिद्‌अणु नहीं जिसमें सृष्टि नहीं पर जैसे किसी ने अग्नि कही और किसी ने उष्णता कही तो उसमें भेद कोई नहीं तैसेही कोई ब्रह्म कहते हैं और कोई जगत् कहते हैं। शब्द दो हैं परन्तु वस्तु एकही है—जगत्‌ही ब्रह्म है और ब्रह्मही जगत् है—कुछ भेद नहीं। जैसे बहते जल का शब्द होताहै पर उसमें कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता; तैसेही जगत् मुझको कुछ पदार्थ नहीं भासता है क्योंकि दूसरी वस्तु बनी नहीं। मैं, तुम और यह जगत्, सुमेरु आदि पर्वत, देवता, किन्नर, दैत्य, नाग इत्यादिक जगत् सब निर्वाणस्वरूप हैं—आत्मतत्त्व में कुछ नहीं बना। यह बोलते और चालते जो भासते हैं उसे स्वप्न की नाईं जानो। जैसे कोई पुरुष सोया हो और स्वप्न में उसे नाना प्रकार के युद्ध होते वा यन्त्र बजते और चेष्टा होती दिखाई दें पर जो उसके निकट जाग्रत् पुरुष बैठा हो उसको कुछ नहीं भासता क्योंकि; बना कुछ नहीं और उसको सब कुछ भासता है; तैसेही ज्ञानी के हृदय में जगत्

शून्य है और अज्ञानी को भ्रम से नाना प्रकार का भासताहै। इससे, हे रामजी! स्वप्नवत् इस जगत्को जानकर प्रकृत आचार करो और हृदय से शिला की नाईं हो कि; कुछ न फुरै। ब्रह्म और जगत्में रञ्चक भी भेद नहीं; ब्रह्मही जगत् है और जगत् ब्रह्म है। जगतका स्पष्ट अर्थ ब्रह्म से भिन्न नहीं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम शताधिकाष्टसप्ततितमस्सर्गः॥ १७८॥

रामजीने पूछा; हे भगवन्! आपने आकाशकोष में कुटी बनाकर एक वर्ष की समाधि लगाई तो उसके अनन्तर जो वृत्तान्त हुआ सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैं समाधि से उतरा तब आकाश में एक परम मनोहर मतुरी की तान के सदृश अङ्गना का शब्द सुना तब मैंने विचार किया कि, मैं तो बहुत ऊंचे पर आयाहूं जहां सिद्धों की भी गम नहीं और सिद्धों से भी तीनलाख योजन ऊंचा आया हूं यह शब्द कहां से आया? ऐसे विचारकर मैं देखनेलगा तो दशोंदिशाओं में आकाशही दीखा परन्तु सृष्टि का कर्ता कोई दृष्टि न आया। तब मैंने विचार किया कि, सृष्टि आकाश में होती है इससे मैं आकाश ही होजाऊं और इस शब्द को पाऊं कि; किसका शब्द है; बल्कि आकाश को भी त्यागकर चिदाकाश होजाऊं जहां भूताकाश भी कुटीवत् भासता है तब इसका भी अन्त भासेगा और जान लूंगा कि, यह किसका शब्द होता है। ऐसे विचार कर मैंने निश्चय किया कि, यह शरीर यहां रहे और नेत्र मुँदे रहैं। तब पद्मासन बांध कर मैंने बाहर की इन्द्रियों को रोका और जो इन्द्रियों की वृत्ति शब्द आदिक को ग्रहण करती थी उसको भी रोक लिया। निदान भीतर बाहर की सब वृत्तियों और अहंवृत्ति को त्यागकर मैं आकाशरूप होगया। जैसे इस ब्रह्माण्ड में आकाश का अन्त नहीं मिलता तैसेही मैं इसको त्यागकर चित्ताकाशरूप होगया जिसका संकल्पही रूप है। उसको भी त्यागकर मैं बुद्धि आकाशमें आया; फिर उसकोभी त्याग करके चिदाकाश में आया और उस शब्द के सुनने के संकल्प से चिदाकाशरूप होगया। जैसे समुद्र में मिली जलकी बूंद

समुद्ररूप होजाती है तैसेही मैं चिदाकाश होगया जो निराकार और निराधार है; सबको धार रहा है और परमानन्दस्वरूप, शान्त और अनन्त है और जिसमें सर्व ब्रह्माण्ड प्रतिबिम्बित होते हैं जब मैं आत्मा आदर्श में स्थित हुआ तब मुझको अनन्त सृष्टि अपने आपमें भासने लगीं। जैसे सूर्य की किरणोंमें त्रसरेणु होतेहैं तैसेही ब्रह्म में सृष्टियां हैं परन्तु जीव २ की अपनी २ सृष्टि है एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता। जैसे कई एक मनुष्य सोये हों और अपनी २ स्वप्नसृष्टि को देखें तो उसमें अपना आकाश और काल देखते हैं; इसकी सृष्टि को वह नहीं जानता और उसकी सृष्टिको यह नहीं जानता परन्तु ज्ञानी सर्वसृष्टियां देखताहै; तैसेही मुझको सर्वसृष्टियां चिदाकाश में भासीं पर जीवों को अपनी २ सृष्टि भासती थी। हे रामजी! एक सृष्टि ऐसी भासीं कि, उसमें कोई आवरण न था जैसे पृथ्वी के चौफेर समुद्र होते हैं—कहीं कहीं एकही भूत का आवरण था और कहीं ऐसी सृष्टि दृष्ट आईं जिनको पांचो तत्त्वोंका आवरण था प्रथम पृथ्वी का, दूसरा जल का, तीसरा अग्नि का, चतुर्थ वायु का और पञ्चम आकाश का आवरण था। कहीं ऐसी सृष्टियां देखीं जिनको चार ही तत्त्वों का आवरण था; कहीं ऐसी देखीं जिनको षट् आवरण थे; कहीं दश आवरण दृष्ट आये, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवे जिसको षोडश आवरण हैं और कहीं ऐसी दृष्ट आवें जिनको चौंतीस आवरण थे और कहीं तत्त्वों के छत्तीस आवरण संयुक्त सृष्टि देखीं। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां चिदाकाश में देखीं परन्तु सब आकाशरूप थीं; आत्मा से कुछ भिन्न वस्तु न थी, मन के फुरनेसे मुझको सृष्टि दृष्ट आई क्योंकि, सब संकल्पमात्रही थी—कुछ बना नहीं। जैसे दीवार पर चित्र लिखे हों तैसेही आत्मारूपी दीवार पर चित्ररूप सृष्टि दृष्ट आई कि; अपने २ व्यवहार में मग्न हैं। हे रामजी! ऐसी अनन्त सृष्टियां देखीं पर एककी सृष्टि को दूसरा न जानता था सब अपनी २ सृष्टि को जानते थे। जैसे अनेक मनुष्य एकही काल में शयन करें और अपनी २ स्वप्न सृष्टि देखें तौभी दूसरी सृष्टि को वे नहीं जानते। हे रामजी! कुछ ऐसी सृष्टि देखीं जहां न सूर्य का प्रकाश था

न चन्द्रमा का प्रकाश था और न अग्नि का प्रकाश था और उनकी चेष्टा बड़ी होती थी कहीं ऐसी सृष्टि देखी जहां सूर्य और चन्द्रमा हैं और कहीं ऐसी देखी कि; उनको कलाका ज्ञान भी नहीं और न वहां कोई दिन है, न रात्रि है; सदा एक समान रहते हैं। कहीं महाशून्यरूप तमही दृष्ट आया; कहीं ऐसे दृष्ट आया कि, देवताही रहते हैं; कहीं मनुष्यही रहते हैं; कहीं तिर्यक् ही रहते हैं; कहीं दैत्यही दृष्ट आये; कहीं जल ही दृष्ट आया और कोई तत्त्व न दृष्ट आया और कहीं ऐसी सृष्टि दृष्ट आई जहां शास्त्र का विचारही नहीं; कहीं शास्त्र पुराण विपर्ययरूप थे और कहीं समान थे। कहीं प्रलय होती दृष्ट आई और कहीं उत्पत्ति होती दृष्ट आई। हे रामजी! इसी प्रकार अनन्त सृष्टि मैंने देखीं परन्तु जब स्वरूप की ओर देखूं तब केवल ब्रह्मरूपही भासे और कुछ बना दृष्ट न आवे और जब संकल्प करके देखूं तब अनन्त सृष्टि दृष्ट आवें। कहीं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवे जहां बालक, वृद्ध, यौवन अवस्था की मर्यादाही नहीं—जैसे जन्मे तैसेही रहे—कहीं ऐसी सृष्टि है कि; चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाश नहीं और अग्नि के प्रकाश से उनकी चेष्टा होती है और कहीं ऐसे देखे कि, ऊर्ध्व को चले जावें; कहीं नीचे को चले जावें। कहीं ऐसे देखे जो शास्त्र की मर्यादा से चेष्टा करें और कहीं कृमिही बसते हैं और कोई नहीं। हे रामजी! चैतन्यरूपी वन में मैंने अनन्त सृष्टिरूपी वृक्ष देखे परन्तु दूसरा कुछ बना दृष्ट न आया; सब चैतन्य का आभासही दृष्ट आया। जैसे सूर्य की किरणोंमें जलाभास होताहै और बना कुछ नहीं; तैसेही सृष्टि बनी कुछ नहीं और जैसे आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही अनहोती सृष्टि भासे। जैसे मरुस्थल में जल और गन्धर्बनगर की सृष्टि भासती है तैसेही सम्पूर्ण सृष्टि भासी हैं। हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश में चित्तरूपी गन्धर्ब ने सृष्टि रची है पर स्वरूप से भिन्न कुछ उपजा नहीं—सब अकारण है। जो समवायकारण विना सृष्टि भासे उसे भ्रममात्र जानिये। जैसे स्वप्ने की सृष्टि कारण विना होती है और अर्थाकार हो भासतीहै तौभी अजात-जात है अर्थात् उपजे विना उपजी भासती है; तैसेही सम्पूर्ण सृष्टि आभास-

मात्र है । हे रामजी ! आभास में भी अधिष्ठानसत्ता होती है जिसके आश्रय आभास फुरता है । सच्चिदानन्द ब्रह्म सबका अधिष्ठान है और सर्व आत्मता से ही स्थित हैं—ब्रह्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं । चेतना करकेही नानात्व भासता है परन्तु नानात्व हुआ कुछ नहीं; आत्माही सर्वदा अपने आपमें स्थित है । जैसे क्षीरसमुद्रमें वायु से नाना प्रकार के तरङ्ग उपजते भासते हैं तौभी क्षीर से भिन्न नहीं—ऐसा क्षीरसमुद्र का तरङ्ग कोई नहीं जिसमें घृत न हो; तैसेही जो कुछ पदार्थ हैं उन सबमें ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत है । जैसे क्षीरमथन किये से घृत निकलता है; तैसेही विचार कियेसे जगत्-ब्रह्मस्वरूप भासताहै—कुछ भिन्न नहीं दिखता क्योंकि; कारण द्वारा कुछ नहीं उपजा परमार्थ से केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है । फुरन-रूपी भ्रम से कुछ हुआ दृष्ट आता है और जब फुरनरूपी भ्रम निवृत्त होता है तब ब्रह्मही भासता है; इससे अविद्यारूप फुरने को त्यागकर अपने निर्विकल्पस्वरूप में स्थित होरहो तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगज्जालसमूहवर्णनन्नाम शताधिकनवसप्ततितमस्सर्गः ॥ १७९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब इस प्रकार मैंने सृष्टि देखी तब फिर विचार हुआ कि, वह शब्द करनेवाला कौन था उसको देखूं । तब मैं देखने लगा तो देखते २ तीतरी की नाईं शब्द सुना परन्तु उसको न देखा । तब फिर देखा तो शब्द का अर्थ भासने लगा और फिर देखा तो एक अङ्गना दृष्ट आई जिसका शरीर सुवर्णवत् था; बहुत सुन्दर वस्त्र पहिरे हुये थी और सब अङ्ग भूषणों से पूर्ण थे; मानो लक्ष्मी वा भवानी थी । जब मैंने उसको देखा तब वह मेरे निकट आई और कहने लगी; हे मुनीश्वर ! और संसार जो मैंने देखाहै वह सामान्यधर्मा मुझको दृष्ट आया है पर तुम उत्तमधर्मा और संसारसमुद्र के पार हुये दृष्ट आते हो । तुम संसारसमुद्र पार के वृक्ष हो; जो कोई तुम्हारी ओर आताहै उसके आश्रयभूत हो और उसको निकाल भी लेते हो पर और जीव संसारसमुद्र में बहे जाते हैं और तुम पार हुये हो; इससे तुमको नमस्कार है । हे रामजी ! जब इस

प्रकार उस अङ्गना ने कहा तब मैं आश्चर्य में हुआ कि; इसने मुझे कदाचित् देखा भी नहीं और सुना भी नहीं फिर इसने क्योंकर जाना? तब मैंने ऐसे विचार किया कि, यह माया का कोई चरित्र है और सब ब्रह्माण्ड मुझको इस करके दृष्ट आये हैं। हे रामजी! ऐसे विचारकर मैं फिर आकाश को उड़ा तब और सृष्टि भासने लगी। जैसे स्वप्न की सृष्टि, संकल्प की सृष्टि और गन्धर्बनगर की सृष्टि होती हैं तैसेही यह सृष्टि है—वास्तव में कुछ बना नहीं। जैसे स्वप्नादिक की सृष्टि अनहोती भासती है तैसेही यह जगत् है—केवल बोधमात्र आत्मा अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! जब मैं बोध में स्थित होकर देखूं तब मुझको आत्मा ही भासे और जब संकल्प करके देखूं तब नाना प्रकार के जगत् भासें कहीं नष्ट होते भासें और कहीं नष्ट होकर उत्पन्न होते भासें। जैसे पीपल के पत्ते गिरते हैं और तैसेही उपजते हैं; तैसेही जगत् उपजते भासें। कहीं ऐसे दृष्ट आवें कि; नाश होकर और के और उत्पन्न हों, कहीं उत्पन्न होतेही दृष्ट आवें और कहीं भिन्न २ सृष्टि और भिन्न २ शास्त्र दीखे। कहीं सूर्य चन्द्रमा और तारों का चक्र ऐसेही फिरता दृष्ट आवे और कहीं और प्रकार दृष्ट आवे; कहीं नरक की सृष्टि और कहीं स्वर्ग के स्थान दृष्ट आवें। इसी प्रकार अनन्त सृष्टियां देखीं; अनन्तही रुद्र देखे; अनन्तही ब्रह्मा देखे और अनन्तही विष्णु देखे। कहीं प्रलय के मेघ गर्जते थे; कहीं सुमेरु आदिक पर्वत उड़ते दृष्ट आते थे; कहीं ब्रह्माण्ड जलते और द्वादश सूर्य तपते थे और कहीं ऐसे स्थान दृष्ट आते थे कि, जन्मतेही पुष्ट होजावें। कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि आई कि; एक सृष्टि में मुआ और दूसरी सृष्टि में आया और दूसरी सृष्टि में मुआ उसी सृष्टि में आया। कहीं प्रलय होती दृष्टि आवे; कहीं ज्योंकी त्यों सृष्टि दृष्ट आवे और उनके निकट उनको कुछ कष्ट न हो। जैसे दो पुरुष एकही शय्यापर सोये हों और दोनों को स्वप्ना आवे तो एककी सृष्टि में प्रलय होती है और दूसरे की ज्यों की त्यों रहे—इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां देखीं परन्तु उनमें सार ब्रह्मसत्ताही थी और सब स्वप्नवत् थे जैसे केले के वृक्ष

में सार कुछ नहीं निकलता, तैसेही उस स्थान में सार कुछ न देखा। हे रामजी! क्रिया-काल सब विश्व ब्रह्मस्वरूप है। जैसे समुद्र में तरङ्ग बुद्बुदे सब जलरूप हैं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, भिन्न नहीं। जैसे क्षीरसमुद्र में तरङ्ग आवृत क्षीर से भिन्न कुछ नहीं होते, तैसेही तुम और मैं, सब जगत् ब्रह्मही है। जब मैं बोध की ओर देखूं तब सर्व ब्रह्मही दृष्टि आवे और जब संकल्प की ओर देखूं तब नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आवे। इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां देखीं। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, अधही है, कहीं गुण की सृष्टि देखी और कहीं ऐसी सृष्टि थी कि, धर्म अधर्म को जानती ही न थी। हे रामजी! एक सौ पचास सृष्टियां त्रेतायुग की मैंने देखीं जो भिन्न २ थीं और भिन्नही भिन्न जगत् भी थे। उनमें ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ भिन्न २ देखे जिसको मेरे समान ज्ञान था और मेरेही समान मूर्ति थी। फिर कोई २ मुझ से उत्तम भी थे और उन सबके आगे उपदेश लेनेके निमित्त रामजी बैठे थे। त्रेतायुग में अनेकयुग और अनेक द्वापर, त्रेता और सतयुग देखे कि, सब चैतन्य आकाश के आश्रय हैं। हे रामजी! हुये विनाही यह सब दृष्टिआये। जैसे मरुस्थल में जल, आकाश में अनहोती नीलता और रस्सी में सर्प भासता है तैसेही ब्रह्म से अनहोता जगत् भासता है। हे रामजी! मन के फुरने से जगत् भासता है और फुरने के मिटे से सब ब्रह्मही भासता है। हे रामजी! जैसे सूर्य की किरणों में अनन्त त्रसरेणु दृष्टि आते हैं, तैसेही अनन्तसृष्टि देखीं जो एक चैतन्य से अनेक चैतन्य दृष्टि आई। जैसे वृक्ष से फल प्रकट होते हैं, तैसेही संकल्परूपी वृक्ष से सृष्टिरूपी फल दृष्टि आये। जैसे एक गूलर के फल में अनन्त मच्छर होते हैं, तैसेही एक आत्मसत्ता के आश्रय अनन्त सृष्टि संकल्प के फुरनेसे मुझको दृष्टि आईं। कहीं महाप्रलय के क्षोभ होते थे और समुद्र उछलते थे उनके तरङ्ग देवलोक को गिराते, कहीं श्यामरूप चन्द्रमा उष्ण और सूर्य शीतल दृष्टि आता था, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि आई कि, दिन को अन्धेरा होजावे और रात्रि को जीव उलूकादिक की नाईं चेष्टा करते थे और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, उनको रात्रि और दिन का कुछ ज्ञान नहीं; काल का

ज्ञान भी नहीं और धर्म अधर्म का भी ज्ञान नहीं; जैसी अपनी इच्छा हो तैसेही करते थे। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, पुण्य करनेवाले नरक को प्राप्त होते थे और पापकर्ता स्वर्ग को जाते थे और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, बालू से तेल निकलता था; विषपान किये से अमर होते थे और अमृत पान किये से मरजाते थे। हे रामजी! जैसे किसी का निश्चय होता है तैसेही आगे भासता है। यह जगत् संकल्पमात्र है। जैसी भावना होती है तैसाही आगे होकर भासता है। कहीं पत्थरों में कमल उपजते थे और कहीं वृक्षों में रत्न और हीरे दृष्टि आते थे और बड़े प्रकाश संयुक्त आकाश में वृक्षों के वन दृष्टि आये। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, मेघ के बादलही उनके वस्त्र हैं और वस्त्रों की नाईं बादलों को पकड़ लें; कहीं शीश पर भार लिये सब चेष्टा करते थे। निदान अन्धे, काने, बहरे इत्यादिक नाना प्रकार की सृष्टि देखी। हे रामजी! जब मैं स्वरूप की ओर देखूं तब सब सृष्टि शून्यरूप दृष्टि आवे और जब संकल्प की ओर देखूं तब नाना प्रकार का जगत् भासे। कहीं ऐसेही सृष्टि दृष्टि आवे कि, वे चन्द्रमा और सूर्य को जानतेही नहीं, कहीं एक पृथ्वी की सृष्टि पृथ्वी में; अग्नि की सृष्टि अग्नि में और जलकी सृष्टि जल में देखी; कहीं पांच भूत की सृष्टि देखी—जैसे यह विद्यमान है और कहीं काष्ठ की पुतलीवत् सृष्टि चेष्टा करती देखी—जैसे यह विद्यमान है और भोजन करती है और कहीं २ प्राणों विना यन्त्री की पुतलीवत् चेष्टा करती हैं। हे रामजी! जब ऐसे सृष्टि देखी तो मैं महाआकाश में अनन्तयोजन पर्यन्त चला गया परन्तु एक आकाशही दृष्टि आता था और कोई तत्त्व न दीखा। फिर ऐसी सृष्टि देखी कि, वे खाना, पीना आदि सब चेष्टा वैताल की नाईं करते थे परन्तु दृष्टि न आते थे। जैसे वैताल सब चेष्टा करते हैं और दृष्टि नहीं आते तैसेही वे दृष्टि न आवें। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, जहां मैं और तुमकी कल्पना भी नहीं केवल निश्चितपद था और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, उनका मनही नहीं। कहीं अहंकार सृष्टि देखी; कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि; वे सबमें आत्मभावना करते हैं, कहीं सब अपना आपही जानें और भेदभावना किसीकी न करें कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, सब मोक्ष की लक्ष्मी से शोभते

हैं; कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि; उपजकर नाश होजावें–जैसे नख और केश उपजते हैं–और कहीं ऐसे देखे कि, चिरकालपर्यन्त रहें। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टि देखी जो अनहोती ही फुरती हैं और संकल्पमात्र हैं। और जब संकल्प लय होजाता है तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है। चित्त के स्पन्द में सब जगत्जाल देखे पर वास्तव में मैं ऊर्ध्व गया, अध गया और दशोंदिशा गया परन्तु सब चेतनरूपी समुद्र के बुद्बुदे हैं और कुछ न भासा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगज्जालवर्णनं नाम
शताधिकाशीतितमस्सर्गः॥ १८०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चिदाकाश ब्रह्म अपने आप में स्थित है–जैसे जल अपने जलभाव में स्थित है–और उसमें जो चैत्योन्मुखत्व होता है मुनीश्वर उसको चिदाकाश कहते हैं। उस मन में संकल्प विकल्प फुरने से जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड बनगये हैं उनका नाम भूताकाश है। मनसे उपजे हैं इस कारण इनका नाम भूताकाश है ये संकल्पमात्र हैं–आत्मा से भिन्न नहीं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो संकल्प है कि, ब्रह्मा के दिन में भूत उत्पन्न होतेहैं; रात्रिमें प्रलय होजाते हैं और जब महाप्रलय होता है तब कोई भूत नहीं रहता सब ब्रह्मसत्ता में लीन होजाते हैं और सब जीवन्मुक्त होजाते हैं केवल सूक्ष्म ब्रह्मही शेष रहता है; तो उस सूक्ष्म ब्रह्म से फिर कैसे सृष्टि उत्पन्न होती है सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब सब भूत नष्ट होजाते हैं और ब्रह्मसत्ताही शेष रहती है। उसको तुम मानते हो क्योंकि; तुमनेभी कहा कि, पीछे ब्रह्मसत्ताही शेष रहती है। जब तुमने माना कि, सब का कारण ब्रह्म शेष रहता है तो वह ब्रह्मसत्ता शुद्धस्वरूप है और आकाश से भी सूक्ष्म है; बरन आकाश के हजारहवें भाग से भी अतिसूक्ष्म है। हे राम जी! ऐसे सूक्ष्म ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति कैसे कहूं? और जो उत्पत्ति ही नहीं तो उसका प्रलय कैसे हो। यह जगत् जो दृष्टि आता है सो ब्रह्म का हृदय है। अपनी जो स्वभावसत्ता है तिसका नाम हृदय है सो यह और

जगत् ब्रह्म का वपुहै। जैसे स्वप्न में अपनी संवित् ही देश, काल, पर्वत आदिकरूप होती है तैसेही यह जगत् संवित्रूप है और अपने स्वरूप के अज्ञानसे हुये की नाईं दुःखदायक भासता है। जैसे अपनी परछाहीं में अज्ञानसे भूत कल्प के बालक भय पाता है पर जब विचार से देखता है तब भय निवृत्त होजाता है, तैसेही यह जगत् कुछ उपजा नहीं। हे रामजी! चेतन-संवित् ही जगत् आकार होकर भासती है और कुछ वस्तु नहीं। जो सब वही हुआ तो आदिसर्ग का होना और प्रलय सब उसीके अङ्गहैं भिन्न नहीं। 'अस्ति', 'नास्ति', 'उदय', 'अस्त' आदि जो शब्द हैं वे सब आकाशरूप हैं और सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है। सर्व शब्द ब्रह्मही में होते हैं और ब्रह्म सर्वशब्दों से रहित भी है। जो वह सर्वशब्दों से रहित हुआ तो जगत् की उत्पत्ति और प्रलय क्योंकर कही जावे। आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अदृश्य है इन्द्रियों का विषय नहीं और जगत् भी अविनाशी है क्योंकि, उपजाही नहीं। हे रामजी! जगत् भी आत्मा से भिन्न नहीं-आत्मरूप ही है और जो आत्मरूपहै तो विकार कहां हो? सर्व-शब्द और अर्थका अधिष्ठान आत्मसत्ता है इससे जगत् ब्रह्मस्वरूप है। जैसे अङ्गवाला सर्वअङ्ग अपनेही जानता है तैसेही सब जगत् ब्रह्मके अङ्ग हैं और वह सबको जानता है। वास्तव में सुस्वच्छ; आकाशवत् और देश, काल, वस्तु, सुख, दुःख; जन्म, मरण; साकार, निराकार; केवल, अकेवल; नाशी अविनाशी इत्यादिक सर्वशब्द और अर्थ उसहीके नाम हैं। जैसे अवयव अवयवी पुरुष के हैं जो फैलावे तौ भी अपना स्वरूपहै जो संकोचे तौ भी अपने अवयव हैं; तैसेही उत्पत्ति और प्रलय सब ब्रह्म ही के अवयव हैं; भिन्न नहीं परन्तु भिन्न की नाईं जगत् हुआ भासताहै। जैसे सूर्य की किरणों में जल कुछ उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु हुयेकी नाईं दृष्टि आता है और किरणें ही जल होकर भासती हैं; तैसेही आत्मा जगत् आकार होकर भासता है सो आत्मा स्वरूप ही है। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मरूपी एक वृक्ष है उसमें जो संवित् फुरना हुआ है सोही दृढ़मूल है; चित्त शरीररूपी थम्भ है; लोकपाल डालें हैं; शाखा जगत् है; फल प्रकाश है जिससे जगत्

प्रकाशता है; अन्धकार श्यामताहै; पोल आकाश है; फूलों के गुच्छे प्रलय हैं; गुच्छों के हिलानेवाले भँवरे विष्णु, रुद्रादिक हैं और जड़ता त्वचा है। इस प्रकार सम और सत् आत्मब्रह्म है। ब्रह्मत्वभावसे भी कुछ नहीं बना सर्वदा अपने स्वभावमें स्थित है। हे रामजी! जगत् का भाव, अभाव; उत्पत्ति प्रलयादिक सर्वस्वभाव अनुभवरूप ब्रह्म स्थित है और उसमें कोई विकार नहीं; वह केवल, शुद्ध; निरञ्जन, आत्मआकाश निर्मल है। जैसे चन्द्रमा के मण्डलमें विष की बेल नहीं होती, तैसेही आत्मा में कोई विकार नहीं होता निर्मल आकाशरूप है और आदि-अन्त-मध्य की कलना से रहित है तो लोकपाल भ्रम कैसे हो? यह सम्पूर्ण विकार आत्मा के अज्ञान से भासते हैं; जब तुम एकाग्रचित्त करके देखोगे तब जगत्भ्रम शान्त हो जावेगा। यह जगत्भ्रम फुरने से भासित हुआ है, जब फुरना उलटकर आत्मा की ओर आवेगा तब यह जगत्भ्रम मिट जावेगा। जैसे पवन से अग्नि जागता है और पवन ही से दीपक लीन होजाता है तैसेही चित्त के फुरने से जगत् भासता है और जब चित्त का फुरना अन्तर्मुख होता है तब जगत्भ्रम मिट जाता है। हे रामजी! जब ज्ञान से देखोगे तब अज्ञानरूप फुरने का त्रिकाल अभाव होजावेगा और बन्ध मुक्ति आत्मा में न भासेगी—इसमें कुछ संशय नहीं। यह जगत्जाल आत्मा में कुछ उपजा नहीं अज्ञान से भासता है; जब विचार करके देखोगे तब अष्टसिद्धि का ऐश्वर्य तृणवत् भासेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बोधजगदेकताप्रतिपादनं नाम शताधिकैकाशीतितमस्सर्गः ॥ १८१ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जगत्जाल तुमने चिद्रूप होकर एक स्थान में बैठ कर देखा अथवा सृष्टि में जाकर देखा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं अनन्त आत्मा सर्वशक्तिसम्पन्न और सर्वव्यापी चिदाकाश हूं मुझमें आना जाना कैसेहो? न एक स्थान में बैठकर देखी और न सृष्टि में जाकर देखी। हे रामजी! मैं चिदाकाश हूं मैंने चिदाकाश में देखी। हे रामजी! जैसे तुम अपने अङ्गोंको शिखा से लेकर नखपर्यन्त देखते हो तैसेही मैंने ज्ञाननेत्र से अपने आपही में जगत् देखा जो निराकार, निर-

वयव, आशरूप निर्मल; सावयव और फुरने से दृष्टि आये हैं; वास्तव में कुछ नहीं केवल आकाशरूपहै। जैसे स्वप्नेमें सृष्टि का अनुभव हो परन्तु संवित्रूप है बना कुछ नहीं और जैसे वृक्ष के पत्र, टास, फूल, फल सब वृक्ष के अङ्ग होतेहैं तैसेही ज्ञाननेत्र से मैंने जगत् को देखा। हे रामजी! जैसे समुद्र तरङ्ग, फेन, बुद्बुदे और जल को अपने आपही में देखता है; तैसेही मैं अपने आपमें जगत् को देखताहूं और अब भी मैं इस देह में स्थित हुआ पर्वत की सृष्टि को ज्ञान से देखता हूं। जैसे कुटी के भीतर बाहर आकाश एकरूपहै तैसेही मुझको आगे और अब भी जगत् आकाशरूप अपने आप में भासते हैं। जैसे जल अपने रस को जानताहै; बरफ़ अपनी शीतलताको जानताहै और पवन अपनी स्पन्दता को जानता है तैसेही मैं ज्ञान से सृष्टि अपने में देखता भया। जिस ज्ञानवान् पुरुष को शुद्ध बुद्धि में एकता हुई है वह अपने को सर्वात्मा देखता है और जिसको आत्मस्थिति हुई है वह वेदन को भी अवेदन देखता है और कदाचित् उपजा नहीं मानता। जैसे देवता अपने २ स्थानों में बैठे हुये दिव्यनेत्र से कोटि योजनपर्यन्त अपने को विद्यमान देखते हैं तैसेही जगतों को मैंने सर्वात्म होकर देखा। जैसे पृथ्वी में निधि; औषध और रससहित पदार्थ होते हैं सो पृथ्वी अपने में ही देखती है, तैसेही मैंने जगत् को अपनेमेंही देखा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह जो कमलनयनी कान्ता छन्दके पाठ करनेवाली थी उसने फिर क्या किया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह आकाशवपु को धारके मेरे निकट आई और जैसे भवानी आकाश में आन स्थित हो तैसेही आन स्थित हुई। जैसे मैं आकाशवपु था तैसेही उसको भी मैंने आकाशवपु देखा। प्रथम मैंने आकाश में इस कारण न देखा कि, मेरा आधिभौतिक शरीर था। जब चित्तपद होकर मैं स्थित हुआ तब वह कान्ता देखी। मैं आकाशरूपी हूं और वह सुन्दरी भी आकाशरूप है और जगत्जाल जो देखे सो भी आकाशरूप हैं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमभी आकाशरूप थे और वह भी आकाशरूप थी पर बचनविलास तो तब होता है जब शरीर होता है और उसमें बोलनेका स्थान

कण्ठ, तालु, नासिका, दन्त, होठ और हृदय में प्रेरनेवाले प्राण होते हैं और अक्षर का उच्चार होताहै और तुमतो दोनों निराकारथे; तुम्हारा देखना और बोलना किस प्रकार हुआ ? बोलना रूप, अवलोक और मनस्कारसे होताहै—रूप अर्थात् दृश्य; अवलोक अर्थात् इन्द्रियां और मनस्कार अर्थात् मनका फुरना—इन तीनों विना तुम्हारा बोलना कैसे हुआ ? वशिष्ठजी बोले हे रामजी ! जैसे स्वप्ने में रूप, अवलोक और मनस्कार; शब्दपाठ और परस्पर वचन होते हैं सो आकाशरूप होते हैं तैसेही हमारा देखना, बोलना और आपस में संवाद हुआ था। जैसे स्वप्ने में रूप अवलोक और मनस्कार आकाशरूप होते हैं और प्रत्यक्ष भासते हैं तैसे ही हमारा देखना और बोलना हुआ। यह प्रश्न तुम्हारा नहीं बनता कि, देखना और बोलना कैसे हुआ ? जैसे आकाश में सृष्टि देखी है तैसे यह सृष्टि भी है और जैसे उनके शरीर थे तैसेही इनके और हमारे शरीर हैं जैसे यह जगत् है तैसेही वह जगत् है। हे रामजी ! यह आश्चर्य है कि, सत् वस्तु नहीं भासती और असत् वस्तु भासती है। जैसे स्वप्ने में पृथ्वी, पर्वत, समुद्र और जगत् व्यवहार है नहीं पर प्रत्यक्ष भासता है और सत् वस्तु अनुभवरूप नहीं भासती तैसेही हम तुम जगत् सब आकाशरूप हैं जैसे स्वप्ने में युद्ध होते भासते हैं और शब्द होते हैं और आना जाना भासता है वह सब आकाशरूप है और हुआ कुछ नहीं तैसेही यह जगत् भी है। हे रामजी ! स्वप्नसृष्टि मिथ्या है, कुछ बनी नहीं और जो कुछ है सो अनुभवरूप है—भिन्न कुछ नहीं। जो तुम पूछो कि, स्वप्ना क्या है और कैसे होता है तो सुनो, आदि परमात्मतत्त्व में स्वप्ने में वचन हुआहै सो विराट् आत्माहै और फिर उससे यह जीव हुये हैं सो आकाशरूप हैं क्योंकि; विराट् आकाशरूप है और ये सब आकाशरूपहैं। स्वप्ने का दृष्टान्त भी मैंने तुमसे बोधकेनिमित्त कहाहै क्योंकि; स्वप्ना भी कुछ हुआ नहीं केवल आत्ममात्रहै; ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है। हे रामजी ! वह कान्ता जब मैंने देखी तो मैंने उससे पूछा क्योंकि; संकल्प मेरा और उसका एक था। जैसे स्वप्ने में स्वप्ना होता है तैसेही हमारा हुआ। हे रामजी ! जैसे स्वप्ने की सृष्टि आकाशरूप होती

है तैसेही हम, तुम और सब जगत् आकाशरूप हैं कुछ हुआ नहीं। स्वप्न जगत् और जाग्रत् जगत् एक रूप है परन्तु जाग्रत् दीर्घकाल का स्वप्ना है इससे इसमें दृढ़ व्यवहार; उत्पन्न और प्रलय होते भासते हैं। हे रामजी! स्वप्ने में भोग होते भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र हैं; निर्मल आकाशरूप आत्मा से भिन्न कुछ नहीं बना। दृश्य और द्रष्टा स्वप्ने की नाईं अनहोते भासते हैं। जो हम तुम आदिक दृश्यको मनरूपी द्रष्टा सत्य मानता है सो दोनों अज्ञान से भ्रममात्र उदय हुये हैं और जो शुद्ध द्रष्टाहै सो दृश्य से रहित है। जैसे द्रष्टा आकाशरूप है तैसेही दृश्य भी आकाशरूप है और जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभव से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही यह जाग्रत् भी अनुभवरूप है। हे रामजी! चिदाकाश जो अनन्त आत्मा है वह इस जगत् का कारण कैसे हो? जैसे स्वप्ने की सृष्टि का कारण कोई नहीं; तैसेही इस जाग्रत् जगत्का कारण भी कोई नहीं क्योंकि; हुआ कुछ नहीं और जो कुछ है सो अनुभवरूप है–इससे यह जगत् अकारण है। हे रामजी! सबजीव साकाररूप हैं और इनके स्वप्ने की सृष्टि जो नाना प्रकारकी होती है सो भी आकाशरूपहै कुछ आकार नहीं। जो निराकार अद्वैत आत्मसत्ता है उसमें आदि आभासरूप जगत् फुरा है तो वह आकाशरूप क्यों न हो? अब साकार और निराकार का भेद कहते हैं सो सुनो। एक चित्त है और दूसरा चैत्य है–चित्त शुद्ध चिन्मात्र का नाम है और चैत्य दृश्य फुरने को कहते हैं। जिस चित्त को दृश्य का सम्बन्धहै उसका नाम जीव है। जिस चित्त को अज्ञान से द्वैत का सम्बन्ध है और अनात्म में आत्म अभिमान करता है ऐसा जीव साकाररूप है और उसके स्वप्नेकी सृष्टि आकाशरूप है सो अचैत्य चिन्मात्र निराकार सत्ता है तो उसका स्वप्ना आभासरूप जगत् आकाशरूप क्यों न हो? हे रामजी! यह जगत् निरुपादानरूप है अर्थात् कुछ बना नहीं और चिदाकाश निराकाररूप है। जैसे स्वप्नेमें जगत् अकृत्रिम होता है तैसेही यह जगत् है; न इसको कोई निमित्त कारणहै और न समवायकारण है पर आत्मा अच्युत और अद्वैत है सो दृश्य का कारण कैसे कहिये? हे रामजी! न कोई कर्त्ता है, न भोक्ता है

और न कोई जगत् है और नाहीं कहना भी नहीं बनता । ऐसा जो ज्ञानवान् है सो पाषाणवत् मौन स्थित होता है और जब प्रकृत आचार आन पड़ता है तब उसको भी करता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदेकताप्रतिपादनं नाम शताधिकद्व्यशीतितमस्सर्गः ॥ १८२ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह जो तुम्हारे निकट आकाशरूप कान्ता आई तो वह शरीर विना अनेक क, च, ट, तादिक अक्षर कैसे बोली और जो तुम स्वप्नेकी नाई कहो तो स्वप्ने में भी केवल आकाश होता है वहां य, र, ल, वादिक कैसे बोलते हैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! स्वप्ने में जो शरीर होताहै सो आकाशरूप है; उसमें क, च, ट, तादिक अक्षर कदाचित् उद्देश नहीं हुये । जैसे मृतक कदाचित् नहीं बोलता तैसेही आकाशरूप आत्मा में शब्द कदाचित् नहीं होता । जो तुम कहो कि, स्वप्ने में जो य, र, ल, वादिक अक्षर प्रवृत्त होते हैं; तो उसका उत्तर यह है कि; जो कुछ शब्द वहां सत् हुये होते तो निकट बैठे भी सुनते । हे रामजी! निकट बैठे जगत् को नहीं सुना तो ऐसे मैं कहता हूं कि; आकाशरूप है कुछ हुआ नहीं और जो हुआ भासता है सो भ्रान्तिमात्र केवल चिन्मात्र आकाश का किञ्चन है और आकाश में आकाश ही स्थित है; तैसेही यह जगत् भी कुछ हुआ नहीं । हे रामजी ! जैसे चन्द्रमा में श्यामता; आकाश में वृक्ष और पत्थर में पुतलियां नृत्य करतीं भासें तो मिथ्या है तैसेही इस जगत् का होना भी मिथ्या है । हे रामजी ! स्वप्ने में जो जगत् भासता है सो चिदाकाश का किञ्चन है सो भी आकाशरूप है—भिन्न कुछ नहीं । जैसे स्वप्ने का जगत् आकाशरूप है तैसेही यह जगत् भी आकाशरूप है और जैसे यह जगत् है तैसेही वे जगत् भी थे और यह जो आकाश है सो आत्माकाश में अनाकाश है । जैसे स्वप्ने की सृष्टि भ्रम से प्रवृत्त भासती है तैसेही जगत्भी भ्रमसे प्रत्यक्ष भासता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! जो यह जगत् स्वप्ना है तो जाग्रत् क्यों भासता है और जो असत् है तो सत्य की नाईं क्यों भासता है ? वशिष्ठजी बोले हे रामजी !

एक मृदुसंवेग है; दूसरा मध्यसंवेग है और तीसरा तीव्रसंवेग है–संवेग संकल्प के प्रमाण को कहते हैं सो त्रिविध है। जैसे कोई पुरुष अपने स्थान में बैठा हुआ मनोराज से किसी व्यवहार को रचता है सो उसको जानता है कि; संकल्पमात्र है और नट स्वांग धारता है तब वह जानता है कि, मेरा स्वांग है और अपने स्वरूप को सत्य जानता है। इसका नाम मृदुसंवेग है क्योंकि; अपना स्वरूप नहीं भूला। मध्यसंवेग यह है कि, जैसे किसी पुरुष को स्वप्न आताहै तो उसमें स्वप्न सृष्टि भासती है और एक शरीर अपना भासता है; तब अपने शरीर को सत्य जानता है और जगत् को भी सत्य जानता है क्योंकि; स्वरूप का प्रमाद है इससे स्वप्न-काल की सृष्टि को सत्य जानता है और आगे हुये को असत्य जानता है। इसका नाम मध्यसंवेग है क्योंकि; सोया हुआ शीघ्रही जाग उठता है और जो सोया और जागे नहीं उसका नाम तीव्रसंवेग है। हे रामजी! आदिसंकल्प स्वप्नमें रूप भासते हैं और उसमें नाना प्रकार की सृष्टि होकर स्थित है। जिनको आदिस्वरूप का प्रमाद नहीं हुआ उनको यह जगत् मृदुसंवेगहै क्योंकि; वे अपनी लीलामात्र असत्य जानते हैं और जिनको आदिस्वरूप का प्रमाद हुआहै वे फिर शीघ्रही जाग उठते हैं तब उनको वह जगत् असत्य भासता है और इस जगत्में सत्य प्रतीति नहीं होती। जिनको प्रमाद हुआ है और फिर नहीं जागे। उनको यह जगत् सत्यही भासता है क्योंकि; उनकी चित्त की वृत्ति का प्रमाण तीव्र होगया है इस कारण अज्ञानी को यह जगत् स्वप्न जाग्रत् हो भासता है–जैसे स्वप्नकाल में स्वप्न की सृष्टि सत्य हो भासती है। हे रामजी! चित्त के फुरनेका नाम जगत्है; जब चित्त बहिर्मुख होताहै तब जगत् हो भासता है और स्वरूप का अज्ञान होताहै और जब अज्ञान होताहै तब जगत्भ्रम दृढ़ होता जाता है–इससे इस जगत् का कारण अज्ञान है। हे रामजी! आत्मा के अज्ञानसे जगत् भासताहै; जब आत्मज्ञान होगा तब जगत्-भ्रम निवृत्त हो जावेगा। वह आत्मा अपना आप है इससे आत्मपद में स्थित होरहो तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा। हे रामजी! अज्ञान से इस

जगत् की सत्य प्रतीति होती है और उसमें जैसी २ भावना होती है तैसेही जगत् हो भासता है। हे रामजी ! जिस प्रकार जगत्भ्रम सत्य हो भासता है सो भी सुनो कि, जो अज्ञानी जीव है वह जब मृतक होता है तब मुक्त नहीं होता बल्कि अज्ञान के वश से जड़ पत्थरवत् होता है क्योंकि; चेतनरूप है। हे रामजी ! जब मृत्यु होती है तब आकाशरूप चित्त मेंही जगत् फुर आता है और अपनी वासना के अनुसार नाना प्रकार का जगत् हो भासता है, एवं नाना प्रकार के व्यवहार रचना क्रियासहित होकर भासते हैं। कल्पपर्यन्त सब क्रिया जीवों की अन्तवाहक होती हैं-जैसी हमारी है। हे रामजी ! तुम देखो वह जगत् क्या रूप है-किसी कारण से तो नहीं उपजा ? जैसे वह जगत् कलनामात्र सत् हो भासता है; तैसेही इस जगत् को भी जानो। हे रामजी! यह जो तुमको स्वप्न आता है और उसमें पुरुष पदार्थ हैं वेभी सत्य हैं क्योंकि; ब्रह्मसत्ता सर्वात्मक है। हे रामजी ! प्रबोध हुये से भी स्वप्न के पदार्थ विद्यमान भासते हैं, इसीसे कहाहै कि; स्वप्न संकल्प और जाग्रत् तुल्य है। जैसे आगे शुक, ब्राह्मण के पुत्र इन्द्र, लवण और गाधि का उदाहरण कहा है, इनको मनोराजभ्रम प्रत्यक्ष हुआ है और दीर्घतपा को जिसका उदाहरण आगे कहेंगे प्रत्यक्ष स्वप्न हुआ है। जीव जीवप्रति अपनी २ सृष्टि है क्योंकि; संकल्प अपना २ है इससे सृष्टि भिन्न २ है और सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है। सर्व सृष्टि का प्रतिबिम्ब आत्मरूपी आदर्श में होता है और सर्वसृष्टि आत्मा का अनुभव है जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है और उस वृक्षसे और वृक्ष होते हैं तोभी विचार से देखो कि, बीज तो एकही था और सब वृक्ष आदि उसी बीज से उपजे हैं; तैसेही एक आत्मा से अनेक सृष्टि प्रकाशती हैं परन्तु स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं। जैसे एक पुरुष सोया है और उसको स्वप्ने की सृष्टि भासती है और फिर स्वप्ने में जो बहुत जीव भासते हैं उनको भी अपने २ स्वप्ने की सृष्टि भासती है। हे रामजी ! जिससे आदि स्वप्ने की सृष्टि भासती है वह पुरुष एकही है और उसे एकही में अनन्तसृष्टि चित्त के फुरने से होती हैं; तैसेही आत्मसत्ता के आश्रय अनन्तसृष्टि फुरती हैं परन्तु स्वरूप

से कुछ हुआ नहीं सब आकाशरूप हैं और जीवों को अपनी २ सृष्टि अज्ञान से भासती है। हे रामजी ! जीवों को और सृष्टि का ज्ञान नहीं होता अपनीही सृष्टि को जानते हैं क्योंकि; संकल्प भिन्न २ हैं। कितनों को हम स्वप्नों के नर हैं और कितने हमको स्वप्ने के नर हैं; वे और सृष्टि में सोये हैं और हमारी सृष्टि उनको स्वप्ने में भासती है तिनको हम स्वप्ने के नर हैं और जो हमारी सृष्टि में सोये हैं उनको स्वप्ने में और सृष्टि भासि आई है सो हमारे स्वप्ने के नर हैं। हे रामजी ! इस प्रकार आत्मतत्त्व के आश्रय अनन्तसृष्टि भासती हैं। जो जीव सृष्टि को सत् जानकर बिचरते हैं वे मोक्षमार्ग से शून्य हैं। जैसे मनुष्य जो शयन करता है तो उसको स्वप्नेमें प्रमाण होता है और उसमें जो जीव होते हैं उनको फिर स्वप्न होता है तब अपनी २ सृष्टि उनको भासती है तो वह अनन्तसृष्टि अनुभवके आश्रय होती है; तैसेही एक आत्मा के आश्रय असंख्य सृष्टि फुरती हैं सो कई समान; कई अर्धसमान और कई विलक्षण भासती हैं पर अपनी २ सृष्टि को जीव जानते हैं। जैसे एक मन्दिर में दश पुरुष सोये हैं और उनको अपना २ स्वप्न आवे तब उसकी सृष्टि को वह नहीं जानता उसकी सृष्टि को वह नहीं जानता; तैसेही यह सृष्टि भी और को नहीं भासती क्योंकि; संकल्प अपना २ है। जैसे पत्थर को पत्थर नहीं जानता और जो अन्तवाहक शरीर योगेश्वर हैं उनको सृष्टि का ज्ञान होता है। हे रामजी ! वास्तव में सृष्टि भी निराकार आकाशरूप है। जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है तैसे ही आत्मा में सृष्टि है और जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसे ही आत्मा में सृष्टि भासती है। हे रामजी ! वास्तव में कुछ हुआ नहीं; सर्वदा काल सर्वप्रकार आत्माही अपने आपमें स्थितहै; जिनको आत्मा का प्रमाद हुआहै उनको जगत् भासताहै वास्तव में जगत् किसी कारण से नहीं उपजा-आभासरूप है। सम्यक्ज्ञान के हुये से ब्रह्म अद्वैत भासता है और असम्यक्ज्ञान से अद्वैतरूप जगत् हो भासता है। जैसे रस्सी के सम्यक्ज्ञान से रस्सी ही भासती है और असम्यक्ज्ञान से सर्प भासता है; तैसेही आत्मा के असम्यक्ज्ञान से

जगत् भान होता है। हे रामजी! मैंने उस देवी से प्रश्न किया कि; हे देवि! तुम कहां से आई हो; तुम्हारा स्थान कहां है; तुम कौन हो और यहां किस निमित्त आई हो? तब वह देवी बोली, हे मुनीश्वर! ब्रह्मरूपी महाकाश के अणु का भी जो अणु है और उसके छिद्र में भी जो छिद्र है तिसमें तुम रहते हो और तुम्हारा यह जगत् भी उसीमें है। तुम्हारी सृष्टि का जो ब्रह्मा है तिसकी संवेदनरूपी कन्याने यह जगत् रचा है। उस तुम्हारे जगत में पृथ्वी है और उसके ऊपर समुद्र है जिनसे पृथ्वी घेरी हुई है; उसके ऊपर दूना और द्वीप है और उस द्वीप के ऊपर दूना समुद्र है। इसी प्रकार पृथ्वी को लंघ के आगे सुवर्ण की पृथ्वी आती है जो दशसहस्र योजनपर्यन्त महासुन्दर प्रकाशरूप है और उसने सूर्य चन्द्रमा के प्रकाश को भी लज्जित किया है। उसके परे और लोकालोक पर्वत हैं जो सब ठौर प्रसिद्ध हैं और उनमें बहुत से नगर बसते हैं। कहीं ऐसे स्थान हैं जहां सदा प्रकाश ही रहता है—जैसे ज्ञानी के हृदय में सदा प्रकाश रहता है; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां सर्वदा अन्धकार ही रहता है—जैसे अज्ञानी के हृदय में अन्धकार रहता है; कहीं ऐसे ही स्थान हैं जहां प्रत्यक्ष पदार्थ मिलते हैं—जैसे पण्डित के हृदय में अर्थ प्रत्यक्ष होते हैं; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां पदार्थ नहीं मिलते—जैसे मूर्ख के हृदय में श्रुति का अर्थ नहीं होता; कहीं ऐसे स्थान हैं जिनके देखने से हृदय प्रसन्न होता है—जैसे सन्तों के दर्शन से हृदय प्रसन्न होता है; कहीं ऐसे स्थान हैं जिनमें सदा दुःख ही रहता है—जैसे अज्ञानी की संगति में सदा दुःख रहता है; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां सूर्य उदय नहीं होता; कहीं सूर्य चन्द्रमा दोनों उदय होते हैं; कहीं पशु ही रहते हैं; कहीं मनुष्य ही रहते हैं; कहीं दैत्य और कहीं देवता ही रहते हैं; कहीं किसान रहते हैं; कहा धर्म का व्यवहार होता है; कहीं विद्याधर ही रहते हैं; कहीं उन्मत्त हाथी हैं; कहीं बड़े नन्दनवन हैं; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां शास्त्र का विचार ही नहीं; कहीं शास्त्र के विचारवान् हैं; कहीं राज्य ही करते हैं; कहीं बड़ी बस्तियां हैं; कहीं उजाड़ वन हैं; कहीं पवन चलता है; कहीं बड़े खात छिद्र हैं; कहीं ऊर्ध्वशिखर हैं जहां विद्याधर और देवता रहते हैं;

कहीं मच्छ, यक्ष और राक्षस हैं और कहीं विद्याधरी देवियां महामत्त रहती हैं। इसी प्रकार अनन्त देशों और स्थानों की बस्तियां हैं। उस लोका-लोक के शिखर पर सात योजन का एक तालाब है जिसमें फूले कमल लगे हैं; सब ओर कल्पवृक्ष हैं और वहां के सब पत्थर चिन्तामणि हैं। उसके उत्तर दिशा में एक सुवर्ण की शिला पड़ी है जिसके शिखर पर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र बैठते हैं और विलास करते हैं उसके ऊपर शिला में मैं रहती हूं और मेरा भर्ता और सम्पूर्ण परिवार भी वहां ही रहता है। हे मुनीश्वर! उसमें एक वृद्ध ब्राह्मण रहता है जो अबतक जीता है और एकान्त जाकर सदा वेद का अध्ययन करता है। उसने मुझको अपने विवाह के निमित्त अपने मन से उपजाया है और अब मैं बड़ी हुई हूं तो वह मेरे साथ विवाह नहीं करता। वह जब से उपजा है तब से ब्रह्मचारी ही रहता है और वेद का अध्ययन करके विरक्तचित्त हुआ है। हे मुनीश्वर! मैं वस्त्रों और भूषणों से संयुक्त हूं; चन्द्रमा की नाईं मेरे सुन्दर अङ्ग हैं और मैं सब जीवों के मोहनेवाली हूं। मुझको देखकर कामदेव भी मूर्च्छित होजाता है; फूलों की नाईं मेरा हँसना है और सब गुण मेरे में हैं। महालक्ष्मी की मैं सखी हूं पर मुझको त्यागकर वह ब्राह्मण एकान्त जाकर बैठा है और सदा वेद का अध्ययन करता है। वह बड़ा दीर्घसूत्री है; जब मैं उत्पन्न हुई थी तब वह कहता था कि; मैं तुझको विवाहूंगा पर अब मैं यौवन अवस्था को प्राप्त हुई हूं तब त्यागकर एकान्त जा बैठा है। हे मुनीश्वर! स्त्री को सदा भर्ता चाहिये। अब मैं यौवन अवस्था से जलती हूं और बड़े तालाब जो कमलसहित दृष्टि आते हैं वे भर्ता के वियोग से मुझे अग्नि के अङ्गारे से भासते हैं और नन्दनवन आदिक बड़े बाग़ मुझको मरुस्थल की नाईं भासते हैं। इनको देखकर मैं रुदन करती हूं और नेत्रों से ऐसा जल चलता है जैसे वर्षाकाल का मेघ वर्षता है। जब मैं मुख आदिक अपने अङ्गों को देखती हूं तब नेत्रों के जल से कमलिनी डूब जाती है और जब कल्प-तरु और तमाल वृक्ष के फूल और पत्र शय्या पर बिछाकर शयन करती हूं तब अङ्गों के स्पर्श से फूल जलते हैं। जिस कमल से मेरा स्पर्श होता है

सो जल जाता है । हे भगवन् ! भर्ता के वियोग से मैं तपी हुई हूं । जब मैं बरफ़ के पर्वत पर जा बैठती हूं तब वह भी अग्निवत् होजाता है और मैं नानाप्रकार के फूलों को गले में डालती हूं तब भी तप्तता निवृत्त नहीं होती । मेरे भर्ता की देह त्रिलोकी है और उसके चरणों में सदा मेरी प्रीति रहतीहै । मैं गृह के सब आचार करतीहूं और सब गुणोंसे सम्पन्नहूं; सबको धार रही हूं; सबकी प्रतिपालक हूं और ज्ञेय की मुझको सदा इच्छा रहती है । हे मुनीश्वर ! मैं पतिव्रता हूं; जो पुरुष पतिव्रता स्त्री के साथ स्पर्श करताहै वह बहुत सुख पाता है और तीनों ताप से रहित होता है क्योंकि, उसमें सब गुण मिलते हैं और वह सदा भर्ता में प्रीति करती है और भर्ता की प्रीति उसमें होती है—ऐसी मैं हूं पर मुझको त्यागकर वह ब्राह्मण एकान्त जा बैठा है और सर्वकाल वेद का अध्ययन और विचार करता रहता है । मेरे भर्त्ता ने कामना का त्याग किया है, उसको कोई इच्छा नहीं रही और मैं उसके वियोग से जलती हूं । हे भगवन् ! वह स्त्री भी भली है जिसका भर्त्ता विवाह करके मर गया हो; कुँवारी भी भली है और जो भर्त्ता के संयोग से प्रथमही मरजाती है वह भी श्रेष्ठ है पर जिसको भर्ता प्राप्त हुआ है परन्तु उसको स्पर्श नहीं करता तो उसको बड़ा दुःख होता है । हे मुनीश्वर ! जो पुरुष परमात्मा की भावना के संस्कार से रहित उत्पन्न हुआ है वह निष्फल है । जैसे पात्र विना अन्न निष्फल होता है—अर्थ यह कि सन्तजन, तीर्थ आदिक से रहित पापस्थानों में डाला हुआ धन निष्फल होता है और जैसे समदृष्टि विना बोध और वेश्या की लज्जा निष्फल है; तैसेही मैं पति विना निष्फल हूं । हे भगवन् ! जब मैं शय्या बिछाकर शयन करती हूं तब फूल भी जल जाते हैं । जैसे समुद्र को बड़वाग्नि जलाता है तैसेही कमलों को मेरे अङ्ग जलाते हैं । हे मुनीश्वर ! जो सुख के स्थान हैं सो मुझको दुःखदायक भासते हैं और जो मध्य स्थान हैं सो न सुख देते हैं न दुःख देते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरीविशोकवर्णनं नाम शताधिकत्र्यशीतितमस्सर्गः ॥ १८३ ॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं तप करती फिरतीहूं। अब मुझको भी भर्ता के वियोग से वैराग्य उपजा है। भर्ता का वैराग्यरूपी ओला मेरी तृष्णारूपी कमलिनी पर पड़ा है और उससे मैं जलगई हूं इससे जगत् मुझको विरस भासता है। हे मुनीश्वर! यह जगत् असार है, इसमें स्थिर वस्तु कोई नहीं; इस कारण मुझको भी वैराग्य उपजा है। मेरा भर्ता जो स्वभूत है सो संसार से विरक्त होकर एकान्त जा बैठा है और वेद को विचारता रहता है परन्तु आत्मपद को नहीं प्राप्त हुआ। वह मन के स्थिर करने का उपाय करता है परन्तु अबतक उसका मन स्थिर नहीं हुआ। सर्व एषणा से रहित हो कर वह शास्त्र को विचारता रहता है पर आत्मा का साक्षात्कार उसे नहीं हुआ। मुझको भी वैराग्य उपजा है; अब हम दोनों वैराग्य से संपन्न हुये हैं और परमपद पाने की इच्छा हुई है। शरीर हमको विरस होगया है—जैसे शरत्काल की बेलि विरस होती है—इस कारण मैं योग की धारणा करने लगी हूं। यह शक्ति अब मुझको उत्पन्न हुई है कि; आकाशमार्ग को आऊं और जाऊं; योगधारणा से आकाश पर उड़ने की भी शक्ति हुई है और सिद्धमार्ग की धारणा से सिद्धों के मार्ग में भी आती जाती हूं परन्तु अर्थ कुछ सिद्ध न हुआ क्योंकि; पाने योग्य आत्मपद प्राप्त नहीं हुआ। जिसके पाये से कोई दुःख न रहे। अब मुझको निर्वाण की इच्छा हुई है। मैंने सिद्धों के गण; देवता; विद्याधर और ज्ञानियों के बहुत स्थान देखे हैं परन्तु जहां गई वहां सब तुम्हारी ही स्तुति करते हैं कि; वशिष्ठजी बल के द्वारा अज्ञान को निवृत्त करते हैं। जैसे बड़ा मेघ वर्षता है परन्तु जब वायु चलता है तब मेघ को दूर करता है तैसेही तुम्हारे वचन अज्ञान को दूर करते हैं। जब ऐसे मैंने तुम्हारी स्तुति सुनी तब मैंने इस सृष्टि में आने का अभ्यास किया और धारणा के अभ्यास से तुम्हारी सृष्टि में आई हूं। इससे, हे मुनीश्वर! मेरे और मेरे भर्ता को शान्ति के अर्थ आत्मज्ञान का उपदेश करो। मेरा भर्ता जो मन के स्थित करने का यत्न करता है उसको तुम ऐसा उपदेश करो कि, शीघ्रही स्थित हो और आत्मपदको प्राप्त करे और मुझको भी आत्मज्ञान का उपदेश करे। हे भगवन्!

तुम माया से पार मुझको दृष्टि आते हो इस कारण मैं तुम्हारी शरण आई हूं। मैं स्त्री बुद्धि करके तुम्हारे निकट नहीं आई पर शिष्यभाव को लेकर आई हूं और मैं जानती हूं कि; मेरा अर्थ सिद्ध होरहा है क्योंकि; जो कोई महापुरुष की शरण आय प्राप्त होता है तो निष्फल नहीं जाता बल्कि सब अर्थ सम्पूर्ण होता है। जैसा किसीका अर्थ होता है वैसा महापुरुष सिद्ध कर देते हैं। जैसे कल्पवृक्ष के निकट कोई जाता है तो उसका अर्थ पूर्ण होताहै, तैसेही मेरा अर्थ सफल होजावेगा। इससे कृपा करके मुझको उपदेश करो। हे मुनीश्वर! तुम मानो दया के समुद्र हो। सबके अर्थ सम्पूर्ण करने को तुम समर्थ हो और सुहृद् हो अर्थात् उपकार की अपेक्षा विना उपकार करते हो; इससे मैं अनाथ तुम्हारी शरण में आई हूं मुझको आत्मपद को प्राप्त करो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरीवेगवर्णनन्नाम शताधिकचतुरशीतितमस्सर्गः ॥ १८४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार विद्याधरी ने मुझसे कहा तब मैं आकाश में संकल्प का आसन रचकर उसपर बैठा और संकल्प से ही एक आधारभूत का आसन रचकर उसको बैठाया क्योंकि, हमारा शुद्ध संकल्प है जो कुछ चिन्तना करते हैं सो होजाता है। तब मैंने कहा, हे देवि! यह तू कैसे कहती है कि; शिला में हमारी सृष्टि है सो कह? शिला में सृष्टि कैसे बसती है? विद्याधरी बोली; हे भगवन्! तुम्हारी सृष्टि में जो लोकालोक पर्वत हैं सो प्रसिद्ध हैं, उनके उत्तर दिशा शिखर पर एक सुवर्ण की शिला है उसमें हमारी सृष्टि है, तैसे उस शिला में सृष्टि बसती है। उस सृष्टि का ब्रह्मा मेरा भर्ता है और मैं उसकी स्त्री हूं। त्रिलोकी इस प्रकार बसती है कि, ऊर्ध्वलोक में देवता रहते हैं; पाताल में दैत्य और नाग रहते हैं; मध्यमण्डल में मनुष्य और पशु, पक्षी बसते रहते हैं और समुद्र, पर्वत, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशभी हैं। समुद्र ने गम्भीरता; जीवों ने प्राण; पवन ने आकाश में चलना; आकाश ने पोल; पृथ्वी ने धैर्य; विद्याधरों ने ज्ञान; अग्निने उष्णता; सूर्यने प्रकाश; दैत्योंने क्रूरता; विष्णुने

जगत् की रक्षा के निमित्त अवतार; नदियों ने चलना और पर्वतों ने स्थिरता अंगीकार किया है। इस प्रकार सब नीति परमात्मा के आश्रय रची हुई है और कल्पपर्यन्त ज्यों की त्यों मर्यादा रहती है। इसी प्रकार जीव जन्मते और मरते हैं; देवता विमान पर आरूढ़ फिरते हैं; दिन का स्वामी सूर्य है; रात्रि का स्वामी चन्द्रमा है और नक्षत्र और तारों का चक्र पवन से फिरता है। इस चक्र के दो ध्रुव हैं और काल इस चक्र को फेरता है सो फेरता फेरता नाशरूप जो काल है सो कल्पके अन्तमें उस चक्र के मुख में जा रहता है। हे मुनीश्वर! परमात्मा अनन्त है, उसका कोई अन्त नहीं जान सक्ता; जब संवेदन फुरती है तब जानता है कि, यह जगत् ईश्वर की सत्तासे है। और जब फुरने से रहित होता है तब जाना नहीं जाता कि, जगत् कहां गया। हे मुनीश्वर! तुम चलो और हमारी सृष्टि का विलास देखो। तुम तो जगत् के विलास से पार हुये हो और यद्यपि तुमको इच्छा नहीं है तौभी कृपा करके उस शिला में हमारी सृष्टि देखो। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह आकाशमार्ग में मुझे लेचली–जैसे गन्ध को वायु लेजाता है तब हम और वह दोनों आकाशमार्ग में उड़े और भूताकाश में चिरकाल उड़ते गये तब हमको लोकालोक पर्वत दृष्टि में आया, उसके निकट जाकर उसके शिखर देखे कि; बहुत ऊंचे गये हैं और बड़े मेघ उसपर विचरते हैं और शिखर ऐसे सुन्दर हैं कि मानों क्षीरसमुद्र से चन्द्रमा निकला है वहां जाकर मैंने महासुन्दर सुवर्ण की एक शिला देखी और उसके निकट गया तो मैंने कहा, हे देवि! यह तो शिला पड़ी है, तुम्हारी सृष्टि कहां है? इसमें पृथ्वी द्वीपकी मर्यादा जिसका आवरण चहुँफेर समुद्र होता है और उनपर की दशसहस्र योजनपर्यन्त सुवर्ण की पृथ्वी, पर्वत, सप्तलोक, आकाश, दशोंदिशा, तारामण्डल, सूर्य, चन्द्रमा जो रात्रि दिन के प्रकाशक हैं और भूतों का संचार, देवगण, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, योगीश्वर, वरुण, कुबेर, जगत्की और उत्पत्ति प्रलयका संचार, पाताल की भूमिका; मण्डलेश्वर; न्याय करनेवाले; मरुस्थल की भूमिका; नन्दन वनादिक; दैत्यों के विरोध संचारक देवता कहां हैं? यह तो एक शिला दृष्टि में

आती है । हे रामजी ! जब मैंने आश्चर्य को प्राप्त होकर ऐसे कहा तब विद्याधरी बोली; हे भगवन् ! मुझको तो प्रत्यक्ष इस शिलाविषय में अपनी सृष्टि भासती है—जैसे शुद्ध आदर्श में अपना मुख भासता है तैसेही मुझको अपनी सृष्टि इस शिला में प्रत्यक्ष भासती है—जैसी मर्यादा देश देशान्तर की मुझको भासती है इसका संस्कार पूर्व का मेरे हृदय में है इसीसे मुझको प्रत्यक्ष भासती है और तुम्हारे हृदय में इसका संस्कार नहीं है इसीसे तुमको नहीं भासती । तुम्हारी सृष्टि की अपेक्षा से यह शिला पड़ी है और तुमको शिला का निश्चय है इस कारण तुमको इसमें जगत् नहीं भासता । हे भगवन् ! जिसका अभ्यास होता है सो पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है और वही भासता है । हे मुनीश्वर ! गुरु शिष्य को उपदेश करता है पर उपदेशमात्र से इष्टकी प्राप्ति नहीं होती, जब उसका अभ्यास करे तब इष्ट की प्राप्ति होती है । हे मुनीश्वर ! ऐसा शास्त्र कोई नहीं कि, अभ्यास किये से न मिले; ऐसा न्याय और सिद्धता कोई नहीं जो अभ्यास किये से न मिले; ऐसी कला कोई नहीं जो अभ्यास किये से न पाइये और ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो अभ्यास की प्रबलता से सिद्ध न हो; जो थक-कर फिरे नहीं तो अवश्य सिद्ध होते हैं। हे मुनीश्वर ! जो कुछ सिद्ध होता दृष्ट आता है सो सब अभ्यास के वश से होता है । प्रथम जब मैं तुम्हारे साथ आई थी तब मुझको भी शिला में सृष्टि नहीं भासी थी क्योंकि, यह सृष्टि अन्तवाहक शरीर में स्थित है । तुम्हारे साथ द्वैतरूपी कथा के कहने से अन्तवाहक शरीर मुझको विस्मरण होगया था इससे विश्व की चर्चा और तुम्हारी सृष्टि की चर्चा करके मुझको वह स्पष्ट नहीं भासती । जैसे मलिनदर्पण में मुख नहीं भासता तैसेही तुम्हारी सृष्टि के संकल्प से मुझको भी अपनी सृष्टि भासती नहीं परन्तु चिरकाल जो अभ्यास किया है इससे फिर भासती है क्योंकि, जो कुछ दृढ़ अभ्यास होता है उसकी जय होती है । हे मुनीश्वर ! चिन्मात्रपद में फुरनेसे आदि जीवों के शरीर अन्तवाहक हुये हैं अर्थात् आकाशरूप शरीर थे; जब उनमें प्रमाद करके दृढ़ अभ्यास हुआ तब आधिभौतिक होकर भासने लगे । जब फिर

भावना उलटकर योग की धारणा से अभ्यास होता है तब आधिभौतिकता क्षीण होजाती है और अन्तवाहक प्रकट होता है उससे आकाश में पक्षी की नाईं उड़ता फिरता है। इससे तुम देखो कि, अभ्यास के बल से सब कुछ सिद्ध होता है। हे मुनीश्वर! अज्ञान से जगत् को अहंकाररूपी पिशाच लगा है सो दृढ़ स्थित हुआ है; जब शास्त्र के वचनों में दृढ़ अभ्यास होता है तब क्षीण होजाता है। हे मुनीश्वर! तुम देखो कि, जिस किसी को सृष्टि की प्राप्ति होती है सो अभ्यास के बल से होती है; जो अज्ञानी होता है और ब्रह्म अभ्यास करता है तो ज्ञानी होता है। पर्वत बड़ा है परन्तु अभ्यास से चूर्ण किया चाहे तो चूर्ण होता है; और सम्पूर्ण वृक्ष को भोजन करना कठिन है परन्तु अभ्यास करके शनैः शनैः घुन खाजाता है; आपतो छोटा है परन्तु जो वस्तु पानी कठिन हो सो अभ्यास से सुगम होजाती है। जैसे चिन्तामणि और कल्पतरु के निकट जाकर जिस पदार्थ की वाञ्छा करो सो सिद्ध होती है, तैसेही आत्मरूपी चिन्तामणि और कल्पतरु है उसमें जिस पदार्थ का अभ्यास करता है सो सिद्ध होता है और अभ्यासरूपी भूमिका फल देती है। जो बालक अवस्था से अभ्यास होता है सो ही वृद्धावस्था पर्यन्त रहता है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष बान्धव नहीं होता और निकट आ रहता है तो निकट के अभ्यास से बान्धव होजाता है परन्तु बान्धव जो विदेश में रहता है तो अभ्यास की क्षीणता से अबान्धव होजाता है। हे मुनीश्वर! विष भी अमृत की भावना करने से अभ्यास के द्वारा अमृत होजाता है। जो मिष्टान्न में कटुक भावना होती है तो कटु भासता है और कटु में मिष्टान्न की भावना कीजिये तो मिष्टान्न हो भासता है—जैसे किसी को नींब प्रियतम है और किसी को मिष्टान्न प्रियतम है। हे मुनीश्वर! जो कुछ सिद्ध होता है सो अभ्यास के बल से सिद्ध होता है; जो पुण्य किया होता है तो पाप के अभ्यास से नष्ट होजाता है और पाप पुण्य के अभ्यास से नाश होता है; माता भी अमाता होजाती है; अर्थ के अनर्थ होजाते हैं; मित्र अमित्र होजाता है और भाग्य अभाग्यरूप होजाते हैं; निदान सब पदार्थ

चल होजाते हैं परन्तु अभ्यास का नाश कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! जो पदार्थ निकट पड़ा होता है और साधक इन्द्रियां भी विद्यमान होती हैं तौ भी अभ्यास विना प्राप्त नहीं होता। जहां अभ्यासरूपी सूर्य उदय होता है वहां दृष्टिरूप पदार्थ की प्राप्ति होती है। अज्ञानरूपी विसूचिका रोग ब्रह्मचर्चा के अभ्यास से नाश होजाता है। हे मुनीश्वर! संसाररूपी समुद्र आदि-अन्त से रहित है पर आत्मअभ्यासरूपी नौका द्वारा उससे तर जाता है-जो अभ्यास को न त्यागोगे तो अवश्य तरोगे। हे मुनीश्वर! जो पदार्थ उदय हो उसके अभाव की भावना कीजिये तो अस्त होजाता है और जो अस्त हो पर उसके उदय होने की भावना कीजिये तो उदय होता है। जैसे सिद्ध के शाप से उदय पदार्थ की नष्टता होती है और वर से अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति होती है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र से इष्ट पदार्थ को सुनता है और उसका अभ्यास नहीं करता उसे मनुष्यों में नीच जानो; उसको इष्ट पदार्थ की प्राप्ति कदाचित् नहीं होती जैसे बन्ध्या के पुत्र नहीं होता, तैसेही उसको इष्ट पदार्थ की सिद्धि नहीं होती। हे मुनीश्वर! जो आत्मरूपी इष्ट को त्यागकर और किसी पदार्थ की वाञ्छा करता है वह अनिष्ट से अनिष्ट पाकर नरक से नरक को भोगता है। हे मुनीश्वर! जिसको अभ्यास का भी अभ्यास प्राप्त हुआ है उसको शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होती है और अभ्यास के बल से इष्ट को पाता है-जैसे प्रकाश से पदार्थ देखिये कि, वह पड़ा है तो उसका नाम अभ्यास है और उसके निमित्त यत्न करना अभ्यास का अभ्यास है। जब यत्न और अभ्यास करते हैं तब पदार्थ पाते हैं। बारम्बार चिन्तना करने का नाम अभ्यास है; जब ऐसा अभ्यास हो तब इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होती है-अन्यथा नहीं होती। हे मुनीश्वर! चौदह प्रकार के भूतजात हैं; जैसा २ किसी को अभ्यास है उसके बल से तैसाही तैसा सिद्ध होता है। अभ्यासरूपी सूर्य के प्रकाश से जीव अपने इष्ट पदार्थ पाता है और अभ्यास के बल से भय निवृत्त होता है और पृथ्वी, पर्वत, वन, कन्दरा में निर्भय होकर विचरता है।

इति श्रीयो० नि० प्र० शताधिकपञ्चाशीतितमस्सर्गः॥ १८५ ॥

विद्याधरी बोली, हे मुनीश्वर ! सर्वपदार्थ निरन्तर अभ्यास से सिद्ध होते हैं। तुम्हारा शिला में दृढ़ निश्चय होता है इससे तुमको शिला ही भासती है और मुझको इसमें सृष्टि भासती है। जब तुम्हारा संकल्प भी मेरे संकल्प के साथ मिले तब तुमको भी यह जगत् भासे। यह जगत् जो स्थित है सो मेरे अन्तवाहक में है और आदिवपु सबका अन्तवाहक है सो अन्तवाहक में सबकी एकता है—जैसे समुद्र में सब तरङ्गों की एकता होती है। हे मुनीश्वर ! जब तुम धारणा का अभ्यास करके शुद्धबुद्धि में प्राप्त होगे तब तुमको इस शिला में सृष्टि भासेगी। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब उसने इस प्रकार मुझसे शुद्ध युक्ति कही तब मैंने पद्मासन बांधकर सब विषय त्याग किये और कथा के क्षोभ का भी त्यागकर अपने आधिभौतिक का भी त्याग किया, तब निरन्तर शुद्ध बोध का अभ्यास करने से मुझको बोध का अनुभव उदय हुआ। जैसे मेघ के अभाव से शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही कलना से रहित मुझको शुद्ध बोध का अनुभव उदय हुआ जो उदय और अस्त से रहित परमशान्त रूप है और उसमें वह शिला मुझको आकाशरूप दृष्टि आई और शिला तत्त्व करके केवल बोधमात्र दृष्टि आई। पृथ्वी आदिक तत्त्व मुझको कोई दृष्टि न आये केवल अद्वैत आकाश आत्मतत्त्वमात्र अपना आपही दृष्टि आया पर जब बोधमात्र से अन्तवाहकरूप होकर स्पन्द फुरा तब अन्तवाहक करके उस शिला में सृष्टि भासने लगी—जैसे मनोराज की सृष्टि होती है और बोध से भिन्न २ नहीं होती तैसेही वह सृष्टि मुझको दृष्टि आई और शिला का रूप भासी। जैसे स्वप्न के गृह में शिला दृष्टि आवे तो वह अनुभव ही शिला और गृहरूप होकर भासता है कुछ भिन्न नहीं होता, तैसेही वह शिला दृष्टि आई। हे रामजी ! जैसे मैंने आकाशरूप वह शिला देखी, तैसेही सब जगत् चिदाकाशरूप है कुछ द्वैत नहीं बना। सर्वदाकाल आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है पर आत्मा के अज्ञान से द्वैत भासता है—जैसे कोई पुरुष स्वप्न में अपना शिर कटा देखे और रुदन करे पर जागकर आपको ज्यों का त्यों आनन्द देखता है; तैसेही जबतक

जीव अज्ञाननिद्रा में सोता है तबतक जगत् भ्रम पर नहीं मिटता पर जब स्वरूप में जागकर देखेगा तब सब भ्रम मिट जावेगा और केवल अपना ही आप भासेगा । हे रामजी ! यह आश्चर्य देखो कि; जो वस्तु सत्रूप है सो असत् की नाईं भासती है । आत्मा सदा सत्रूप है पर ज्ञान करके नहीं भासता और जो असत्यरूप है वह सत् की नाईं हो भासती है । शरीरादिक दृश्य असत्रूप हैं सो सत्यवत् होकर भासते हैं । हे रामचन्द्र ! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है और शरीरादिक परोक्ष हैं पर अज्ञान से शरीरादिक प्रत्यक्ष भासते हैं और आत्मपद परोक्ष भासता है । हे रामजी ! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है और इस लोक अथवा परलोक की क्रिया जो सिद्ध होती है सो सम्पूर्ण आत्मसत्ता से ही सिद्ध होती है । प्रत्यक्ष प्रमाण आत्मसत्ता से ही भासता है-आदि प्रत्यक्ष आत्मा ही है और सब कुछ आत्मा के पीछे जानता है । जो पुरुष कहते हैं कि, आत्मा योग और मन से प्रत्यक्ष होता है सो मूर्ख हैं; आत्मा सदा प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण भी आत्मा से सिद्ध होते हैं । माया इसीका नाम है कि, सदा अपरोक्ष वस्तु आत्मा को परोक्ष जानना और शरीरादिक असत्य को सत्य मानना । हे रामजी ! जितने जीव हैं उनका वास्तवरूप ब्रह्मही है और उनमें आदि फुरना अन्तवाहकरूप हुआ है; उसके अनन्तर आधिभौतिक भासने लगा है और भ्रम करके आधिभौतिक को अपना आप जानते हैं पर जो सदा निर्विकार, निराकार, निर्गुण स्वरूप अपना आप अनुभवरूप है उसको कोई नहीं जानते । आदि शरीर सर्वजीव का अन्तवाहक है सो शुद्ध आत्मा का किञ्चन केवल आकाशरूप है और कुछ बना नहीं संकल्प करके आधिभौतिकता दृढ़ हुई है सो मिथ्याभ्रान्ति से भासती है जैसे स्वप्न में आधिभौतिक शरीर भासता है तैसेही जाग्रत् में आधिभौतिक शरीर भासता है और अन्तवाहक अविनाशी है-इस लोक और परलोक में इसका नाश नहीं होता । वास्तवबोध स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं, भ्रम करके आधिभौतिक दृष्टि आता है । जैसे सूर्य की किरणों में जल; सीपी में रूपा; रस्सी में सर्प और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता

है; तैसेही भ्रम से अपने में आधिभौतिक शरीर भासता है। हे रामजी! यह आश्चर्य है कि, सत्य वस्तु असत्य हो भासती है और जो असत्य वस्तु है वह सत्य होकर भासती है सो अविचार से भासती है। यह मोह का माहात्म्य है कि, सबके आदि जो प्रत्यक्ष आत्मा है उसको लोग अप्रत्यक्ष जानते हैं और अप्रत्यक्ष जगत् को प्रत्यक्ष जानते हैं। हे रामजी! यह जगत् भ्रम से भासता है और स्वप्ने की नाईं मिथ्या है। जो पदार्थ जीव सुखरूप मानते हैं वे दुःख के कारण हैं क्योंकि; परिणाम इनका दुःख होता है। जो प्रथम क्षीणसुख भासता है और फिर उनके वियोग से दुःख होता है इसी कारण इनका नाम आपातरमणीय है—इनको पाकर शान्तिमान् कोई नहीं होता। जैसे मृगतृष्णा का क्षीणसुख भासता है और फिर उनके वियोग से दुःख होता है क्योंकि, उस जल को पाकर कोई तृप्त नहीं होता; तैसेही विषय के सुखों से कोई तृप्त नहीं होता—जो उनमें लगते हैं वे मूर्ख हैं। जो अत्युत्तम सुख है वह अनुभव करके प्रकाशता है; उसको त्यागकर विषय के सुख में जो लगते हैं सो मूर्ख हैं; वे शुद्ध आकाशरूप अन्तवाहक में जगत् देखते हैं। हे रामजी! जगत् जाल हुये की नाईं भासते हैं तो भी हुये कुछ नहीं—जैसे स्थान में पुरुष भासता है तो भी हुआ नहीं और जैसे सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसेही यह जगत् प्रत्यक्ष भासता है पर कुछ नहीं है। हे रामजी! प्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं है तो अनुमानादिक प्रमाण कहां से सत्य हों? जैसे जिस नदी में हाथी बहे जाते हैं तो उसमें रुई के बहने में क्या आश्चर्य है? तैसेही सब प्रत्यक्ष प्रमाण जगत् को असत् जानो तो अनुमानप्रमाण कर क्या सत् होना है? हे रामजी! केवल बोधमात्र में जगत् कुछ बना नहीं। हमको तो सदा ऐसेही भासता है और अज्ञानी को जगत् भासता है—जैसे किसी पुरुष को स्वप्ने में पर्वत दृष्ट आते हैं और जाग्रत् पुरुष को नहीं भासते तैसेही अज्ञानी को यह जगत् भासता है पर हमको तो आकाश, समुद्र, पर्वत, सब केवल बोधमात्र भासते हैं। जैसे कथा के अर्थ श्रोता के हृदय में होते हैं और जिसने नहीं सुनी उसके हृदय में नहीं होते, तैसेही मेरे सिद्धान्त को ज्ञानवान् जानते हैं और अज्ञानी

जान नहीं सकते। हे रामजी! जितना कुछ आधिभौतिक जगत् भासता है सो अप्रत्यक्ष है और आत्मा सदा प्रत्यक्ष है। जो इस लोक अथवा परलोक का अर्थ है सो अनुभव से सिद्ध होता है क्योंकि, सबके आदि अनुभव प्रत्यक्ष है; उसको त्यागकर जो देहादिक दृश्य को अपना आप जानते हैं और इनहीं को प्रत्यक्ष जानते हैं वे मूर्ख पशु और पत्थरवत् हैं और सूखे तृण की नाईं तुच्छ हैं। जैसे भ्रमण से पर्वत आदिक पदार्थ भ्रम से भासते हैं तैसेही अज्ञानी को आधिभौतिक भासते हैं। हे रामजी! यह जगत् सब परोक्ष है क्योंकि; इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होता है। जो नेत्र होते हैं तो रूप भासते हैं और जो नेत्र न हों तो न भासें; इसी प्रकार सब इन्द्रियों के विषय हैं जो होवें तो भासें नहीं तो न भासें और आत्मा सदा प्रत्यक्ष है उसके देखने में किसी विषय की अपेक्षा नहीं। हे रामजी! जो इन्द्रियों करके सिद्ध हो सो असत् है; जो जगत् ही असत् हुआ तो उसके पदार्थ कैसे सत् हों? इससे इस जगत् की सत्यता त्यागकर शुद्धबोध में स्थित हो रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रत्यक्षप्रमाणजगन्निराकरणं नाम शताधिकषडशीतितमस्सर्गः॥ १८६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैं उस शिला को बोधदृष्टि से देखूं तब वह मुझको ब्रह्मरूप भासे और जब संकल्पदृष्टि से देखूं तब पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, पर्वत, लोक, लोकपाल, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पातालसंयुक्त जगत् दृष्ट आवे। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब भासता है, तैसेही आत्मारूपी आदर्श में जगत् भासता है। तब देवी ने शिला में प्रवेश किया और मैं भी संकल्परूपी शरीर से उसके साथ चला गया। हम दोनों जगत् के व्यवहार को लांघते गये और जहां परमेष्ठी ब्रह्मा का स्थान था वहां हम जा बैठे। तब देवी ने कहा, हे भगवन्! तुम परमेष्ठी से ऐसे कहना कि, मुझको यह ले आई है; और यह पूछना कि, इसको जो तुमने विवाह के निमित्त उपजाया था तो फिर क्यों इसका त्याग किया? हे मुनीश्वर! उसने मुझको विवाह के अर्थ उत्पन्न किया

था पर जब मैं बड़ी हुई तब उसने मेरा त्याग किया है। उसको वैराग्य उपजाहै और उसे देखकर अब मुझको भी वैराग्य उपजा है; इसीसे हम परमपद की इच्छा रखती हैं जहां न द्रष्टा है, न दृश्य है और न शून्य है केवल शान्तरूपहै और जो सर्गके आदि और महाकल्पके अन्त में रहताहै उसमें स्थित होने की इच्छा है जिसमें स्थित हुये पहाड़वत् समाधि होजावे। ऐसे परमपद का उपदेश करो। हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह भर्ताके जगाने के निमित्त निकट जाकर बोली, हे नाथ! तुम जागो; तुम्हारे गृह में दूसरी सृष्टि के ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठमुनि आये हैं। तुम उठकर इनका अर्घ्यपाद्य से पूजन करो क्योंकि, गृह में अतिथि आये हैं। महापुरुष केवल पूजासेही प्रसन्न होते हैं। हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने कहा तब ब्रह्माजी समाधि से उतरे और उनके प्राण देह और नाड़ियों में आन स्थित हुये। जैसे वसन्तऋतु से सब वृक्षों में रस होआता है तैसेही उसकी दशों इन्द्रियों और चारों अन्तःकरण में शनैः २ करके प्राण स्थित हुये और सब इन्द्रियां खिल आईं। तब उन्होंने मुझको और देवी को अपने सन्मुख देखा और ज्ञानसे ॐकार का उच्चार करके सिंहासन पर बैठे। ब्रह्माजी के जागने से बड़ा शब्द होने लगा और विद्याधर गन्धर्व, ऋषि, मुनि आ प्रणाम करके स्तुति और वेद की ध्वनि से पाठ करने लगे। ब्रह्मा बोले, हे ऋषे! कुशल तो है? तुम इतनी दूर से क्यों आये हो तुम तो सार असारको जाननेवाले हो? जैसे हाथमें बेलका फल होता है तैसेही तुमको ज्ञानहै बल्कि ज्ञानरूपी समुद्र हो। ऐसे कहकर उसने अपने निकट आसन दिया और नेत्रों से आज्ञा की कि, इसपर विश्राम करो। हे रामजी! जब इस प्रकार उसने मुझसे कहा तब मैं प्रणाम करके उसके निकट जा बैठा और एक मुहूर्तपर्यन्त देवता, सिद्ध और ऋषियों के प्रणाम होते रहे। उसके अनन्तर जब विद्याधर और देवता सब चले गये तब मैंने कहा, हे भूत-भविष्य-वर्तमान तीनोंकालों के ज्ञाता ईश्वर परमेष्ठी! तुम ऊंचे आसन पर विराजमान हो और साक्षात् ब्रह्मज्ञान के समुद्र हो यह जो तुम्हारी शक्ति देवी है जिसको तुमने भार्या करने के

निमित्त उत्पन्न किया था और फिर उसे विरस जानकर त्याग किया है तो तुम्हारे वैराग्य करने से इसको भी वैराग्य उपजा है इस निमित्त यह मुझको यहां लेआई है कि, तुम परमात्मतत्त्व की वाणी से हमको उपदेश करो सो इससे इसका क्या अभिप्राय है? ब्रह्मा बोले, हे मुनीश्वर! मैं शान्त, अजर अमररूप हूं और मुझमें उदय अस्त कदाचित् नहीं। मैं परम आकाशरूप हूं और अपने आपमें स्थित हूं। न मेरी कोई स्त्री है और न मैंने किसी को उत्पन्न किया है तथापि जैसे वृत्तान्त हुआ है तैसे मैं कहता हूं क्योंकि; महापुरुष के विद्यमान ज्यों का त्यों कहना योग्य है। हे मुनीश्वर! आदि शुद्ध चिदात्मा चिन्मात्रपद है, उसका वचन जो अहं होकर फुरा है उसका नाम आदि ब्रह्मा है सो मैं हूं जैसे भविष्यत् सृष्टि का हो—अर्थ यह है कि, संकल्परूप द्रष्टा और संकल्परूप मैं हूं—और वास्तव में आकाशरूप सदा निरावरण हूं और अपने आपही में मेरी अहंप्रतीति है। उसमें आदि जो संकल्प का फुरना हुआ है उसमें जगत् भ्रम रचा है और उस जगत्भ्रम में मर्यादा हुई है और संकल्प का अधिष्ठाता जो ब्रह्मशक्ति है सो भी शुद्ध है। हे मुनीश्वर! उस मर्यादा को सहस्र चौकड़ी युगों की बीती हैं—अब कलियुग है। कल्प और महाकल्प की मर्यादा पूरी हुई है इससे मुझको परम चिदाकाश में स्थित होने की इच्छा हुई है और इसीसे इसको विरस जानकर मैंने त्याग किया है। जब इसका त्याग करूंगा तब निर्वाणपद को प्राप्त होऊं क्योंकि; यह मेरी इच्छा वासनारूपहै जो वासना का त्याग हो तो निर्वाणपद प्राप्त हो। यह जो शुद्ध चित्तकला है इसने धारणा का अभ्यास किया था इससे इसमें अन्तवाहक शक्ति प्राप्त हुई है अन्तवाहक शक्ति से यह आकाश में फुरीहै और संसार से विरक्त हुई है। आकाश मार्गमें इसको तुम्हारी सृष्टि भासि आई और परमपद पाने की इच्छा से इसको तुम्हारी संगति प्राप्त हुई—इससे तुम्हारी शरण आई है और तुमको ले आई है। जो श्रेष्ठ हैं वे बड़ों की शरण जाते हैं; यह अपने कल्याण के निमित्त तुमको लेआई है। हे मुनीश्वर! यह मेरी मूर्तिरूप वासनाशक्ति है; आगे मैंने इसको उत्पन्न करके इस जगत्-

जाल को रचा पर अब मुझको निर्विकल्प निर्वाणपद की इच्छा हुई है इससे मैंने इसका त्याग किया है। अब इसको भी वैराग उपजा है इस कारण तुम बोधरूप की शरण में आई है। हे मुनीश्वर ! यह जगत् विलास संकल्प हुआ है; वास्तव में कुछ हुआ नहीं; परमात्मतत्त्व ज्योंका त्यों अपने आपमें स्थितहै और मैं; तुम; मेरा, तेरा इत्यादिक शब्द समुद्र के तरङ्ग की नाईं हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर शब्द करते हैं और फिर लीन होजाते हैं; तैसे ही हमारा तुम्हारा बोलना और मिलाप होता है। हे मुनीश्वर ! वास्तव में न कोई उपजा है और न कोई लीन होता है। जैसे तरङ्ग जलरूप है- भिन्न कुछ नहीं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है-भिन्न कुछ नहीं; इन्द्रियां, मन, बुद्धि सब वहीरूप हैं। हे मुनीश्वर ! मैं चिदाकाश हूं और चिदाकाश में स्थित हूं। यह ब्रह्मशक्ति है जिसने जगत् रचा है; यह भी अजर और अमर है और न कदाचित् उपजा है और न नाश होगा। शुद्ध आत्मा किञ्चन द्वारा जगत् हो भासता है। जैसे सूर्य की किरणें जल हो भासती हैं; परन्तु जल कुछ हुआ नहीं तैसेही आत्मा ही है; विश्व कुछ हुआ नहीं। हे मुनीश्वर ! जगत्जाल होकर आत्मा भासता है पर जगत्के उदय अस्त होनेसे आत्मामें कुछ क्षोभ नहीं होता; वह ज्योंका त्यों एकरस स्थित है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते और लीन होते हैं परन्तु समुद्र ज्योंका त्यों रहता है; तैसेही जगत् कुछ उपजा नहीं संकल्प से उपजेकी नाईं भासता है। जैसे दृढ़ता से जल ओला होजाता है, तैसे ही चिन्मात्र में चैतन्यता से पिण्डाकार भासता है परन्तु उपजा कुछ नहीं। हे मुनीश्वर ! यह जो शिला है जिसमें हमारी सृष्टि है सो केवल चिद्घनरूप है। तुम्हारी सृष्टि में यह शिला है और हम चैतन्य घन हैं चैतन्य आकाश आत्मा शिला होकर भासता है। जैसे स्वप्ने में सृष्टि सब जाग्रत् भासती है सो बोधरूप है-बोध ही जगत् सा भासता है; तैसेही यह जगत् और शिलारूप होकर बोध ही भासता है। हे मुनीश्वर ! जैसे स्वप्ने में ग्रह का चक्र फिरता दृष्ट आता है तैसेही सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, नदी, वरुण, कुबेर आदिक जगत् जो भ्रम से दृष्ट आता है सो बना कुछ नहीं-चैतन्य का किञ्चन ही ऐसे

भासता है। जैसे सूर्य की किरणों में किञ्चन जलाभास होता है तैसे ही जहां आत्मसत्ता है वहां जगत भासता है। सब पदार्थ आत्मसत्ता से ही भासते हैं ब्रह्मसत्ता सब में अनुस्यूत है इससे सब ओर से सृष्टि बसती है। जैसे एक शिला में हमारी सृष्टि में जो कुछ पदार्थ भासते हैं और इनमें सृष्टि बसती है सो प्रच्छन्नदृष्टि से नहीं भासती पर जब अन्तवाहक दृष्टि से देखिये तब सृष्टि भासती है। घटों में, गढ़ों में और पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदि ठौरों में सृष्टि है और बना कुछ नहीं। जैसे जहां समुद्र है तहां तरङ्ग भी होते हैं परन्तु समुद्र से भिन्न कुछ तरङ्ग हुये भी नहीं—वही रूप हैं; तैसेही यह जगत् कुछ उपजता नहीं और न लीन होताहै; ज्योंका त्यों आत्मसमुद्र अपने आपमें स्थित है; जगत् संकल्पशक्ति से फुरता है और संकल्पशक्ति अहंरूपी किञ्चनमात्र उदय हुई है। जैसे कमल से सुगन्ध लेकर तरियां निकलती हैं तैसेही मूल से देवी जगत्रूपी सुगन्ध को लेकर उदय हुई है परन्तु वास्तव जगत् कुछ बना नहीं केवल संकल्पशक्ति से बने की नाईं भासता है। हे मुनीश्वर! वास्तव में न कोई संकल्प है और न प्रलय है ज्योंका त्यों ब्रह्म अपने स्वभाव में स्थित है। जैसे आकाश में आकाश और समुद्र में समुद्र स्थित है, तैसेही ब्रह्म में ब्रह्म स्थित है। हे मुनीश्वर! यह जगत् न सत्य है और न असत्य है; आत्मा में न यह उदय हुआ और न अस्त होवेगा। जैसे आकाश में नीलता न सत्य है, न असत्य है; तैसेही ब्रह्म में जगत् न सत्य है और न असत्य है। मैं उस ब्रह्म का किञ्चन ब्रह्मा हूं और यह जगत् मेरे संकल्प से उत्पन्न हुआहै। अब मैं संकल्प को निर्वाण करता हूं; जब संकल्प निर्वाण होगा तब जैसे कमल के नाश हुये सुगन्ध का अभाव होजाता है तैसेही जगत् का अभाव हो जावेगा। मेरेसे इच्छा फुरी थी, उसमें वासना है और वासना में जगत् है। अब मैं इसको निर्वाण करता हूँ; जब इच्छा निर्वाण होगी तब जगत् का भी स्वाभाविक अभाव होजावेगा। तुम्हारा शरीर संकल्प से भासता है इससे तुम अपनी सृष्टि में जाओ; ऐसा नहीं कि, तुम्हारा शरीर भी यहां निर्वाण हो जावे। हे रामजी! इस प्रकार वह मुझसे कह कर फिर देवी से बोला, हे देवि!

अब तू निर्वाण हो और अपने आप में बोध आदिक को भी लीन कर ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिलान्तरवशिष्ठब्रह्मसंवाद-
वर्णनन्नाम शताधिकसप्ताशीतितमस्सर्गः ॥ १८७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार ब्रह्मा ने कह कर पद्मासन बांधा और सब जनों के संयुक्त 'अकार', 'उकार', 'मकार' को छोड़कर अर्धमात्रा में स्थित हुआ तब उसकी मूर्ति ऐसी दृष्टि आने लगी जैसे काग़ज़ पर मूर्ति लिखी होती है और उसे सम्पूर्ण जगत्‌जाल का ज्ञान विस्मरण होगया और देवी भी उसी प्रकार पद्मासन बांध कर ब्रह्माजी के निश्चय में लीन होजाने लगी । जब ब्रह्माजी निर्वेदना ब्रह्म में लीन होने लगे उस समय जितने उपद्रव थे सब उदय हुये मनुष्य पाप करने लगे, स्त्रियां दुराचारिणी होगईं; सब जीवों ने धर्म को त्याग दिया; कामी पुरुष बहुत हुये जो परस्त्रियों के साथ संग करते थे और पुरुष स्त्रियां किसी की शङ्का न करती थीं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष बढ़ गये और शास्त्र की मर्यादा त्याग कर लोग अनीश्वरवादी हुये । वर्षा बन्द होगई और कुहिरा पड़ने लगा, काल पड़ा; दुष्टजन धनपात्र होने लगे, धर्मात्मा आपदा भोगने लगे, चोर चोरी करने लगे, राजा मद्यपान करने लगे; जीवों को बड़े दुःख प्राप्त होने लगे और तीनों तापों से जलने लगे और राजाओं ने न्याय को त्याग दिया । निदान जो पाप आचार थे सो उदय हुये और धर्म छिप गया; अज्ञानी राज्य करें; पण्डित ज्ञानी टहल करें; दुर्जनों की मान पूजा हो, सत् पण्डितों का निरादर हो; जीवों के समूह इकट्ठे हुये और पृथ्वी ने अपनी सत्ता को त्याग दिया क्योंकि, पृथ्वी ब्रह्मा के संकल्प में पड़ी थी, जब उसने अपना संकल्प खैंचा तब निर्जीव होगई और चैतन्यता निकल गई । जो स्थान भूतों के बिचरने के थे सो खाईं की नाईं होगये, भूतानाश होगये और पृथ्वी भी नाश होने लगी; पर्वत कांपने लगे; और भूचाल और हाहाकार शब्द होने लगे जैसे शरत्काल में बेल सूख जाती है और जर्जरी भाव को प्राप्त होती है तैसे ही पृथ्वी जर्जरीभाव को प्राप्त हुई क्योंकि; चैतन्यता और शरीर सर्वजगत् का

ब्रह्मा है, ज्यों ज्यों संकल्परूपी चैतन्यता क्षीण होती गई त्यों त्यों पृथ्वी जर्जरीभूत होती गई। जैसे किसी पुरुष का अर्धाङ्ग मर जाता है तब वह अङ्ग शव-सा होजाता है और फुरना उसमें नहीं रहता तैसेही ब्रह्मा की संकल्प रूप चैतन्यता पृथ्वी से निकलती जाती थी इस कारण पृथ्वी दुःखी हुई; धूलि उड़ने लगी और नगर नष्ट होने लगे। इस प्रकार उपद्रव उदय हुये क्योंकि; पृथ्वी के नाश का समय निकट आया और समुद्र जो अपनी मर्यादा में स्थित थे उन्होंने भी अपनी मर्यादा त्याग दी। जैसे कामी पुरुष मद्यपान किये से अपनी मर्यादा को त्यागता है, तैसेही समुद्र उछले, किनारे गिरगये और पर्वत कन्दरा से निकल कर पृथ्वी को नाश करनेलगे। राजा और नगरवासी भागने लगे और उनके पीछे तीक्ष्ण वेगसे जल चलने लगा; बड़े पर्वत गिरने लगे और चक्र की नाईं फिरने लगे। समुद्र के तरङ्गों से पर्वत गिरते थे और उड़ते थे और तरङ्गें उछलकर पाताल को गईं और पाताल का नाश होनेलगा। बड़े रत्नों के पर्वत जब गिरे, तब रत्नों का ऐसा चमत्कार हो जैसे तारामण्डल का होताहै। इसी प्रकार बड़ा क्षोभ होने लगा और तरङ्ग उछलकर सूर्य चन्द्रमा के मण्डल को जाने लगे और उनका प्रकाश जातारहा। बड़वाग्नि उदय हुई तब वरुण, कुबेर आदि देवताओं के वाहन भयवान् हुये और जल के वेग से पर्वत नृत्य करने लगे—मानों पर्वतों के पंख लगे हैं और स्वर्ग के कल्पतरु समुद्र में आन पड़े और चिन्तामणि, सिद्ध और गन्धर्व गिरने लगे। समुद्र इकट्ठे होगये। जैसे गङ्गा, यमुना और सरस्वती एकत्र होती हैं तैसेही समुद्र मिलकर शब्द करने लगे और उनमें से ऐसे मच्छ निकले जिनकी पूँछों के लगने से पर्वत उड़ जावें कन्दरा में जो हाथी थे वे पुकार करने लगे और सूर्य, चन्द्रमा, तारागण क्षोभ को प्राप्त होकर समुद्र में गिरने लगे। हे रामजी ! इस प्रकार प्रलय के क्षोभ से जितने लोकपाल थे वे सब समुद्र के मुख में आनपड़े और मच्छ उनको भक्षण कर गये। तरङ्ग आपस में युद्ध करने लगे जैसे मतवाले हाथी शब्द करते हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे शताधिकाष्टाशीतितमस्सर्गः॥ १८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस विराट्रूप ब्रह्माने जिसका देह संपूर्ण जगत् था अपने प्राणको खैंचा तब छत्र चक्रके फेरनेवाला जो वायुहै सो अपनी मर्यादा त्याग कर क्षोभ करने लगा और वे चक्र नाश होने लगे क्योंकि; ब्रह्मा के संकल्प में वे थे किसीको सामर्थ्य नहीं कि, उनको रक्खे। तेजमें जो देवता थे सो पवन के आधार थे, पवन के निकलने से वे निराधार होकर समुद्र में गिरनेलगे और जैसे वृक्ष से फल गिरतेहैं तैसेही गिरते भये। जैसे संकल्पके नाश हुये संकल्प का वृक्ष गिरताहै और जैसे पक्क फल समय पर वृक्ष से गिरता है, तैसेही सब गिरते भये। सुमेरु की कन्दरा गिरी और पवन का बड़ा क्षोभ और शब्द हुआ। जैसे अपनी शान्ति के निमित्त पवन में तृण फिरता है तैसेही आकाशमें पवन फिरनेलगा देवताओं के रहनेवाला जो सुमेरु पर्वत था सोभी गिरपड़ा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! संकल्परूप जो ब्रह्मा था सो तो विराट् आत्मा है और सब जगत् उसकी देह है। भूमण्डल, पाताल और स्वर्गलोक उसके कौन अङ्ग हैं और संकल्परूप कैसे अङ्ग होते हैं? संकल्प तो आकाशरूप होते हैं और जगत् प्रत्यक्ष पिण्डाकार दृष्ट आताहै? जो जिससे उपजता है सो वैसाही होताहै तो यह जगत् ब्रह्मा के अङ्ग कैसे हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस जगत् से पूर्व केवल चिन्मात्र था और उसमें जगत् न सत्य था, न असत्य था; केवल आत्मत्वमात्र अपने आप में स्थित था। जैसे आकाश अपने आपमें स्थित है और एक और दो शब्द से रहित है। उस केवल चिन्मात्र का किञ्चन अहं होकर स्थित हुआ है; उसका दृश्य से सम्बन्ध हुआ और उसके अनुभव ग्रहणसे जो निश्चय हुआ उसका नाम बुद्धि है और वह जब व्यतीत हुआ उसका नाम मन है; उस मन के फुरने से जगत् दृश्य हुआहै। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्त्यहै वही ब्रह्मारूप कहाता है; उसके फुरने में आगे जगत् खड़ा हुआ है और उस संकल्परूप जगत् का वह विराट् है परन्तु आकाशरूपहै और कुछ नहीं बना। यह जो आकारसहित जगत् भासताहै सो ब्रह्मसे भासताहै पर सब संकल्प आकाशरूप हैं। जैसे स्वप्ने में जगत् भासता है सो सब आकाशरूप होताहै परन्तु

निद्रादोष से पिण्डाकार भासता है और आत्मसत्ता सदा केवल आकाश ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! अहं जो फुरा है सो मिथ्या है अज्ञान से दृढ़ स्थित हुआ है और असम्यक्दर्शी को दृढ़ भासता है सो केवल संकल्पमात्र है और कुछ नहीं बना। इससे जितना जगत् भासता है सो सब चिदाकाश है; एक और द्वैतकलना और सर्वशब्दों से रहित आत्मामात्र है; मैं और तुम शब्द कोई नहीं और यह जगत् उनका किञ्चन है। जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है वैसेही आत्मा का आभास जगत् है; संकल्प की दृढ़ता से दृश्य भासता है पर है नहीं। जैसे संकल्परूप गन्धर्वनगर और स्वप्नपुर होते हैं, तैसेही यह जगत् है। हे रामजी! जिस प्रकार मैंने जगत् वर्णन किया है उसे जो पुरुष मेरे कहे के अनुसार ज्यों का त्यों धारे तो उसकी वासना नष्ट होजावे और पूर्ववत् आत्मा ज्यों का त्यों भासे। तब जैसे जगत् के आदि आत्मत्वमात्र था तैसेही भासेगा क्योंकि; और कुछ हुआ नहीं केवल आत्मत्वमात्र ज्यों का त्यों स्थित है। जो आत्माही है तो समवायकारण और निमित्तकारण कैसे हो? जगत् का उदय और नाश होना असत्य है और अद्वैत और अनन्त कहना भी कोई नहीं। जब सब शब्दों का अभाव होता है तब परम चिदाकाश अनुभवसत्ता ही शेष रहती है इसी का नाम मोक्ष है। हे रामजी! हमको तो अब भी संवित्सत्ता ही भासती है और मैं शुद्ध हूं; सर्वकल्पना से रहित हूं; और चिदाकाश हूं। मुझमें जो वशिष्ठ अहं फुरा है सो फुरा नहीं फुरेकी नाईं भासता है और आत्मा का ही किञ्चन है; हुआ कुछ नहीं। इससे तुम भी इसी प्रकार जाग कर निर्वासनिक हो रहो और अपने प्रकृत आचार को करो अथवा न करो, जो इच्छा है सो करो परन्तु करने और न करने का संकल्प मत करो और परम मौन में स्थित हो रहो ज्ञानवान् को यही अनुभव होता है, इससे तुम भी ऐसे ही धारो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनन्नाम शताधिकनवाशीतितमस्सर्गः ॥ १८९ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! बन्धमोक्ष जगत् बुद्धि न सत् है और न

असत् है; उदय भी नहीं हुआ और अस्त भी नहीं होता केवल ज्यों का त्यों आत्मा स्थित है; ऐसे आपने मुझको उपदेश किया है इसलिये मैंने जाना है कि, आत्मा में जगत् न उपजता है और न मिटता है पर तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को सुनता मैं तृप्त नहीं होता और अमृत की नाईं पान करता हूं । जगत् सत् असत् से रहित सन्मात्र है उसको भी मैंने जाना है अब यह कहिये कि, संसारभ्रम कैसे उपजता है और अनुभव कैसे होता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ तुमको स्थावर-जङ्गम जगत् सर्वप्रकार देशकाल संयुक्त दीखता है उसके नाश का नाम महाप्रलय है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र भी लीन हो जाते हैं और उसके पीछे जो शेष रहता है वह स्वच्छ, अज, अनादि, केवल आत्मतत्त्वमात्र है-उसमें वाणी की गम नहीं वह केवल अपने आपमें स्थित है और परम-सूक्ष्म है जिसमें आकाश भी स्थूल है। जैसे सुमेरुपर्वत के निकट राई का दाना सूक्ष्म है तैसेही आकाश से भी आत्मा सूक्ष्म है और संवेदन से रहित चिन्मात्र है उसमें अहं किञ्चन होकर फुरा है। आत्मा सदा निर्विकल्प है, समुद्रवत् है, देशकाल के भ्रम से रहित है और केवल चेतन घन अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्न में अपने भाव को लेकर जीव स्थित होता है तैसेही आत्मा अपने भाव को लेकर चेतन किञ्चन होता है। उसी का नाम ब्रह्मा है और वह भी चिद्रूप है। हे रामजी ! चिद्अणु जो अपने भाव को लेकर उदय हुआ है उसने चैत्यनाम दृश्य को देखा इससे उसका अनुभव मिथ्या हुआ। जैसे स्वप्न में कोई अपना मरण देखता है सो अनुभव मिथ्या है; तैसेही चिद्अणु दृष्टि से दृश्य को देखता है सो मिथ्यादृष्टि है। जब चिद्अणु अपने स्वरूप को देखताहै सो केवल निराकाररूप है परन्तु अहं ऐसे बीज दृढ़ होता है उससे अपने आप से निकल दृश्य को संकल्प से देखता है। जैसे बीज से अंकुर निकलता है तैसेही संकल्प के फुरने से देश, काल, द्रव्य, द्रष्टा, दर्शन और दृश्य होता है, वास्तव में हुआ कुछ नहीं, आत्मा सदा अपने स्वभाव में स्थित है परन्तु संकल्प से हुये की नाईं भासता है। जहां चिद्अणु भासे वह देश

है; जिस समय भासे वह काल है; जो भान हो वह क्रिया हुई; भान का ग्रहण द्रव्य है और देखने को जो वृत्ति दौड़ती है वह नेत्र होकर स्थित हुई है। जिसको देखते हैं वह भी शून्य है और देखनेवाले भी शून्य हैं; सब अस्त है—कुछ बना नहीं। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मा अपने आपमें स्थित है। संकल्पद्वारा सब कुछ बनता जाता है। चिद्अणु जो भासित हुआ वह दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है। जब चिद्-अणु में स्वरूप की वृत्ति फुरती है तब चक्षु इन्द्रियां होकर स्थित होती हैं; जब सुनने की वृत्ति फुरती है तब श्रोत्र होकर स्थित होते हैं, जब स्पर्श की वृत्ति फुरती है तब त्वचा इन्द्रिय होकर स्थित होती है; जब सुगन्ध लेने की वृत्ति फुरती है तब नासिका इन्द्रिय होकर स्थित होती है और जब रस लेने की इच्छा होती है तब जिह्वा इन्द्रिय होकर स्वाद लेती है। हे रामजी! प्रथम यह चिद्अणु नाम से रहित फुरा है और सम्पूर्ण जगत् भी तद्रूपही था और अब भी वही केवल आकाशरूप है। संकल्प से अपने में पिण्डघन देखकर शरीर और इन्द्रियां देखीं। अनादि सत्स्वरूप चिद्-अणु इन्द्रियों के संयोग से पदार्थों को ग्रहण करता है और स्पन्दरूप जो वृत्ति फुरी है उसीका नाम मन हुआ। जब निश्चयात्मक बुद्धि होकर स्थित हुई तब चिद्अणु में यह निश्चय हुआ कि, मैं द्रष्टाहूं—यही अहं-कार हुआ। जब अहंकारसे चिद्अणु का संयोग हुआ तब अपनेमें देश-काल का परिच्छेद देखा, आगे दृश्य और पूर्व उत्तरकाल देखा कि, इस देश में बैठा हूं और यह मैंने कर्म किया है—यह विषम अहंकार हुआ। निदान देश, काल, क्रिया, द्रव्य के अर्थ को भिन्न २ ग्रहण करता है और आकाश होकर आकाश को ग्रहण करता है। हे रामजी! आदि फुरने से चिद्अणु में प्रथम अन्तवाहक शरीर हुआ, फिर संकल्प के दृढ़ अभ्यास से आधिभौतिक भासने लगा है। जैसे आकाश में और आकाश हो तैसेही यह आकाश है और अनहोते भ्रम से उदय हुये हैं और सत् की नाईं भासते हैं। जैसे मरुस्थल में भ्रम से नदी भासती है तैसेही अवि-चार से संकल्प की दृढ़ता से पाञ्चभौतिक आकार भासते हैं। उनमें अहं-

प्रत्यय होनेसे देखता है कि, यह मेरा शिर है; यह मेरे चरण हैं; यह अमुक देश है इत्यादिक शब्द अर्थ और नाना प्रकार का जगत् और भाव अभाव ग्रहण करताहै और इस प्रकार कहता है कि; यह देश है; यह काल है; यह क्रिया है और यह पदार्थ है। हे रामजी! जब इस प्रकार जगत् के पदार्थों का ज्ञान होता है तब चित्त विषयों की ओर दौड़ता है और राग-द्वेष को ग्रहण करता है। जो कुछ देहादिक भूत फुरनेसे भासते हैं सो केवल संकल्पमात्र हैं और संकल्प की दृढ़ता से दृढ़ हुये हैं। हे रामजी! इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पन्न हुये हैं और इसी प्रकार कीट उत्पन्न हुये हैं परन्तु प्रमाद अप्रमाद का भेद है। जो अप्रमादी हैं वे सदा आनन्दरूप स्वतन्त्र ईश्वर हैं, उनको यह जगत् और वह जगत् अपना आपरूप है और जो प्रमादी हैं वे तुच्छ हैं और सदा दुःखी हैं पर वास्तव में परमात्मतत्त्व से भिन्न कुछ हुआ नहीं। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और सर्वका बीज; त्रिलोकीरूप बूंद का मेघ; कारण का कारण; काल में नीति और क्रिया से क्रिया वही है। आदि विराट् पुरुष का शरीर भी नहीं और हम तुम भी नहीं—केवल चिदाकाशरूप है। अब भी इनका शरीर आकाशरूप है और आत्मसत्ता भिन्न अवस्था को नहीं प्राप्त हुई—केवल आकाशरूप है। जैसे स्वप्ने में युद्ध होते और मेघ गर्जते इत्यादि शब्द-अर्थ भासते हैं सो केवल आकाशरूप है बना कुछ नहीं परन्तु निद्रादोष से भासते हैं और जब जागता है तब जानता है कि हुआ कुछ न था—आकाश-रूप है; तैसेही जो पुरुष अनादि अविद्या से जागा है उसको जगत् आकाश रूप भासता है। हे रामजी ! बहुत योजन पर्यन्त विराट् पुरुष का देह है तौ भी ब्रह्म आकाश के सूक्ष्मअणु में स्थित है। यह त्रिलोकी एक चिद्अणु में स्थित है और विराट् पुरुष इसका ऐसा है जिसका आदि, अन्त और मध्य नहीं भासता तौ भी एक चावल के समान भी नहीं है। हे रामचन्द्र! यह जगत् और जगत् के भाग विस्तीर्ण दृष्ट आते हैं पर जैसे स्वप्ने के पर्वत जाग्रत् के एक अणु के समान नहीं

तैसेही विचाररूपी तराजू से तोलिये तो परमार्थसत्ता में इनकी कुछ सत्यता नहीं दृष्ट आती परन्तु आत्मसत्ता से कुछ भिन्न नहीं हुआ, आत्मसत्ता ही इसप्रकार भासती है। इसी का नाम स्वायम्भुव मनु और विराट् है और इसीको जगत् कहते हैं। जगत् और विराट् में कुछ भेद नहीं—वास्तव में आकाशरूप है। सनातन भी इसी को कहते हैं और रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र, पवन, मेघ, पर्वत, जल, जितने भूत हैं सो उसका वपु हैं। हे रामजी !इसका आदि वपु जो चिन्मात्र रूप है उसमें चैतन्यता से अपना अणु सा वपु देखता है—जैसे तेज का कणका होता है उस तेज अणु से चैतन्यता—और क्रम करके अपना बड़ा शरीर जगत्रूप देखता है। जैसे स्वप्ने में कोई पुरुष आपको पर्वत देखे, तैसेही वह आपको विराट्रूप देखता है। जैसे पवन के दो रूप हैं—चलता है तो भी पवन है और नहीं चलता तो भी पवन है—तैसे ही जब चित्त फुरता है तब भी ब्रह्मसत्ता ज्यों का त्यों है और जब चित्त नहीं फुरता तब भी ज्यों का त्यों है परन्तु जब स्पन्द फुरता है तब विराट्रूप होकर स्थित होता है और जब चित्त अफुर होता है तब अद्वैतसत्ता भासती है और सदा अद्वैत ही विराट्स्वरूप है। हे रामजी ! इस दृष्टि से उसके शिर और पाद नहीं भासते। जितनी ब्रह्माण्ड की पृथ्वी है सो उसका मांस है; सब समुद्र उसका रुधिर है; नदी नाड़ी हैं; दशो दिशा वक्षस्थल है; तारागण रोमावली हैं; सुमेरु आदिक अंगुलियां हैं; सूर्यादिक तेज पित्त है; चन्द्रमा कफ है; पवन प्राणवायु है; सम्पूर्ण जगत्-जाल उसका शरीर है और ब्रह्मा हृदय है सो आकाशरूप है पर संकल्प से नानारूप हो भासता है, स्वरूप से कुछ बना नहीं। आकाश आदिक जगत् सब चिदाकाश रूप है और अपने आपही में स्थित है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराडात्मवर्णनन्नाम शताधिकनवतितमस्सर्गः ॥ १९० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! आदि जो विराट् है सो ब्रह्म है उसका तो आदि-अन्त कुछ नहीं और यह जगत् उसका छोटा वपु है; उसी चैतन्यवपु का किञ्चन ब्रह्मारूप हुआ है। उसके विस्तार का क्रम सुनो—

उस ब्रह्मा ने, जिसका वपु संकल्पमात्र है, अपने संकल्प से एक अण्ड रचा और उसको तोड़ फोड़ कर ऊर्ध्वभाग ऊपर किया और नीचे का भाग नीचे गया। पाताल ब्रह्मा का चरण हुआ; ऊर्ध्व शिर हुआ; मध्य आकाश उदर हुआ; दशोदिशा वक्षस्स्थल; हाथ सुमेरु आदिक पर्वत; मांस पृथ्वी; समुद्र और सब नदियां उसकी नाड़ी; जल रुधिर; प्राण अपान वायु पवन; हिमालय पर्वत कफ; सर्वतेज पित्त; चन्द्रमा और सूर्य नेत्र; तारागण स्थूल लार और लार प्राण के बल से निकलती है–जैसे ताराचक्र को पवन फेरता है–ऊर्ध्वलोक उसकी शिखा मनुष्य, पशु और पक्षी रोम; सब भूतों की चेष्टा उसका व्यवहार है; पर्वत अस्थि ब्रह्मलोक उसका मुख है और सब जगत् उस विराट् का वपु है। रामजी बोले, हे भगवन्! यह जो आपने संकल्परूप ब्रह्मा और जगत् उसका वपु कहा उसे मैं मानता हूं परन्तु यह जगत् तो उसी का शरीर हुआ फिर ब्रह्मलोक में ब्रह्मा कैसे बैठता है और अपने शरीर में भिन्न होकर कैसे स्थित होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है? जो तुम ध्यान लगा कर बैठो और अपनी मूर्ति अपने हृदय में रच कर स्थित हो तो बन जावे। जैसे मनुष्य को स्वप्न आता है और उसमें जगत् भासता है सो सब अपना स्वरूप है परन्तु अपनी मुक्ति धार कर और को देखता है; तैसे ही ब्रह्मा का एक शरीर ब्रह्म लोक में भी होता है। ब्रह्मा और जीव में इतना भेद है कि, जीव भी अपनी स्वप्न सृष्टि का विराट् है परन्तु उसको प्रमाद से नहीं भासती और ब्रह्मा सदा अप्रमादी है उसको सब जगत् अपना शरीर भासता है। हे रामजी! देवता, सिद्ध, ऋषीश्वर और विद्याधर उस विराट् पुरुष की ग्रीवा में स्थित हैं, भूत, प्रेत, पिशाच सब उस विराट् पुरुष के मल से उपजे हैं और कीट की नाईं उदर में स्थित हैं और स्थावर-जङ्गम जगत् सब संकल्प से रचा हुआ विराट् में स्थित है–सब उसी के अङ्ग हैं। जो जगत् है तो विराट् भी है और जगत् नहीं तो विराट् भी नहीं। जगत्, ब्रह्म और विराट् तीनों पर्याय हैं; इससे सम्पूर्ण जगत् विराट् का वपु है–निराकार क्या और आकार क्या–सब भीतर

बाहर विराट् का वपु है। जैसे भीतर बाहर आकाश में भेद नहीं तैसेही विराट् आत्मा में भेद नहीं। जैसे पवन के चलने और ठहरने में भेद नहीं तैसे ही विराट् और आत्मा में भेद नहीं। जैसे चलना और ठहरना दोनों रूप पवन के हैं तैसेही साकार निराकार सब विराट् का शरीर है। हे रामजी! इस प्रकार जगत् हुआ है सो कुछ उपजा नहीं संकल्पसे उपजे की नाईं भासता है। जैसे सूर्य की किरणों में जल है नहीं और हुये की नाईं भासता है; तैसेही ब्रह्मसत्ता में जगत उपजे की नाईं भासता है और उपजा कुछ नहीं—केवल अपने आप में स्थित है वह शिला जठर की नाईं स्थित है अर्थात् तुम्हारा संकल्प विकल्प और चैतन्यरूप चैत्य से रहित चिन्मात्रस्वरूप है—इससे कलना को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराट्शरीरवर्णनन्नाम शताधिकैकनवतितमस्सर्गः ॥ १९१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम प्रलय का प्रसंग फिर सुनो। मैं ब्रह्मपुरी में ब्रह्मा के पास बैठा था, जब मैंने नेत्र खोलकर देखा कि, मध्याह्न का समय है और दूसरा सूर्य पश्चिम दिशा में उदय हुआ है उसका बड़ा प्रकाशहै—मानो सम्पूर्ण तेज इकट्ठा हुआहै वा वड़वाग्नि की नाईं प्रकाश हुआहै और बिजली की नाईं स्थित हुआ है—उसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ। ऐसे देखताथा कि, एक और सूर्य उदय हुआ; फिर उत्तर दिशा की ओर और सूर्य उदय हुआ; इसी प्रकार दश सूर्य आकाश में प्रकट हुये और एक प्रथम था और द्वादशवड़वाग्नि समुद्र से उदय हुईं उनसे एक सूर्य निकला सब द्वादश सूर्य इकट्ठे होकर विश्व को तपाने लगे। हे रामजी! प्रलय के तीन नेत्र उदय हुये—एक नेत्र सूर्य, दूसरा नेत्र वड़वाग्नि और तीसरा नेत्र बिजली वे तीनों विश्व को जलाने लगे; दिशा सब रक्त होगईं; अट्टअट्ट शब्द होने लगे; नगर, वन, कन्दरा, पृथ्वी जलने लगीं; देवताओं के स्थान जलजलकर गिरने लगे; पर्वत जलकर श्याम होगये; ज्वाला के कण निकलकर पाताल को गये वह

भी जल गया; समुद्र जलकर सूखगये और हिमालय पर्वत के बरफ़ का जल होकर जलने लगा–जैसे दुर्जनों के संगकर साधु का हृदय तप्त होताहै–जब इसी प्रकार बड़ी अग्नि प्रज्वलित हुई तब मुझको भी तपन आन लगी और मैं वहां से दौड़कर नीचे जाकर स्थित हुआ। वहां मैंने देखा कि, अस्ताचल पर्वत जलता हुआ उदयाचल पर्वत के पास आपड़ा; मन्दराचल और सुमेरुपर्वत जलकर गिरने लगे और अग्नि की ज्वाला ऊंचे उठकर भड़भड़ शब्द करनेलगी। हे रामजी ! इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व जलनेलगा; बड़ा क्षोभ हुआ और जहां कुछ रस था सो सब फैल गया। हे रामजी ! जिसको अज्ञानी रस कहते हैं सो सब विरस हैं परन्तु अपने २ काल में रससंयुक्त दृष्टि आते हैं। उस काल में मुझको सब ऐसे भासे जैसे जली हुई बेल होती है। हे रामजी ! इस प्रकार मैंने सब विश्व जलता देखा परन्तु ज्ञान से जिसका अज्ञान नष्ट हुआ था सो सुखी दृष्टि आता था और सब अग्नि में जलते दृष्टि आते थे और बड़े भयानक शब्द होते थे। शिव का जो कैलासपर्वत है उसके निकट जब अग्नि आई तब सदाशिव ने अपने नेत्र से अग्नि प्रकट की जिससे बड़ा क्षोभ हुआ और ब्रह्माण्ड जलने लगा। तब महापवन चला और बड़े पर्वत उड़ने लगे–जैसे तृण उड़ते हैं। जो स्थान जलेथे उनकी अँधेरी होकर यक्षों के स्थान भी उड़ने लगे, निदान बड़ा क्षोभ उदय हुआ और इन्द्रादिक देवता अपने स्थानको त्यागकर ब्रह्मलोकमें चलेगये; बड़े मेघ जो जलसे पूर्ण थे सूखकर जलने लगे और कल्परूपी पुतली नृत्य करनेलगी। जले स्थानों से जो धूम्र निकलताथा वह उसके केश थे और प्रलय शब्द उसका बोलना था। बड़ा पवन चलने लगा, पर्वत जलकर उड़नेलगे और सुमेरु आदिक पर्वत तृणों की नाईं उड़ते थे। निदान जीवों को बड़ा कष्ट हुआ जो कहा नहीं जाता।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगद्ब्रह्मप्रलयवर्णनन्नाम शताधिकद्विनवतितमस्सर्गः ॥ १६२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब अग्नि से सब स्थान जलगये उसके

उपरान्त पुष्कल मेघ गर्जकर वर्षनेलगे और प्रथम मुसल की, फिर थम्भ-धारा, फिर नदी की नाईं और फिर महानद की नाईं वर्षनेलगे जिनकी गङ्गा यमुना नदी लहरें हैं और उनसे सब स्थान शीतल होगये–जैसे तीनों तापों से जला हुआ अज्ञानी सन्तों के संग से शीतल होता है। हे रामजी! फिर ऐसा जल चढ़ा जिससे सुमेरु आदिक पर्वत नृत्य करने लगे और जैसे समुद्र में झाग होते हैं तैसेही होगये अथवा ऐसे जान पड़ते थे जैसे जलचर होते हैं। हे रामजी! ऐसे जल चढ़े कि, कहा नहीं जाता; बड़े बड़े स्थान और देवता, सिद्ध, गन्धर्ब बहे जाते थे। जिनको अज्ञानी परमार्थ जानकर सेवन करते हैं वे भी बहुत दृष्टि आये। जैसे कोई पुरुष कण्टक के अन्धे कूप में गिरके दुःख पावे तैसेही वे दृष्टि आवें पर मुझको सब ब्रह्म दृष्टि आवे पर जब संकल्प की ओर देखूं तब महाप्रलय दृष्टि आवे और मेघ गर्जते जटा होकर दृष्टि आवें। निदान ब्रह्मलोक पर्यन्त जल चढ़गया और मैं देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुआ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजलमयवर्णनं नाम शताधिकत्रिनवतितमस्सर्गः॥ १९३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस ब्रह्मा का जगत् जलमय होगया और मुझे जल से भिन्न कुछ न भासे सब शून्यही भासे। ऊर्ध्व, अध और मध्य दिशा भी न भासें और न कोई तत्त्व; न कोई पर्वत; न कोई देवता; न पशु और न पक्षी भासें। तब मैंने ब्रह्मपुरी को देखा कि, इसकी क्या दशा है। फिर जैसे प्रातःकालका सूर्य अपनी प्रतिभा को फैलाताहै; तैसेही मैंने ब्रह्मपुरी को दृष्टि फैलाके देखा तब ब्रह्माजी मुझको परमसमाधि में दृष्टि आये और २ जो जीवन्मुक्त ब्रह्मा के परिवारवाले थे वे भी सब पद्मासन बांध करके परम-समाधि लगाये बैठे थे और जैसे पत्थर पर मूर्ति हो तैसेही सब परमसमाधि में अचल स्थित थे और संवेदन फुरनेसे रहित थे। चारों वेद मूर्ति धरे और बृहस्पति, वरुण, कुबेर, इन्द्र, यम, चन्द्रमा, अग्नि, देवता इत्यादि ऋषीश्वर मुनीश्वर जीवन्मुक्त सबको मैंने ध्यान में स्थित देखा और द्वादशसूर्य भी जो विश्व को तपाये थे सो पद्मासन बांधकर समाधि में स्थित हुये थे। एक

मुहूर्त पर्यन्त मैंने इसी प्रकार देखा जब एक मुहूर्त बीता तब सूर्य विना सब अन्तर्धान होगये। जैसे स्वप्न की सृष्टि अपने में विद्यमान होती है और जागे से अभावना होजाती है; तैसेही मेरे देखते २ ब्रह्मपुरी शून्य वन की नाईं होगई। जैसे राजपतन से मार्गप्रलय होजाते हैं तैसे प्रलय होगई। हे रामजी! जैसे स्वप्न में मेघ गर्जते दृष्टि आते हैं—और यह दृष्टान्त तो बालक भी जानते हैं कि, प्रत्यक्ष अनुभव को छिपाते हैं वे मूर्ख हैं। मैं अनुभव से भी जानता हूं; स्मृति भी होती है और सुना भी है कि, जबतक निद्रा है तबतक स्वप्न की सृष्टि भासती है और जागे से उसका अभाव होता है—तैसेही जबतक ब्रह्मा की वासना थी तबतक सृष्टि थी, जब वासना क्षय हुई तब सृष्टि कहां रही। जब वासना नष्ट होती है तब अन्तवाहक आधिभौतिक शरीर नहीं रहते। हे रामजी! जब शुद्धमात्र पद से चित्तशक्ति फुरती है तब पिण्डाकार हो भासती है और जबतक वह शरीर है तबतक संसार उपजाता भी है और नष्ट भी होता है; तैसेही ब्रह्मा की सुषुप्ति में जगत् लीन होजाता है और जाग्रत् में उत्पन्न होता है क्योंकि; ब्रह्मा के शरीर का सुषुप्ति में लीन होनाही प्रलय है। यदि कहिये कि, इस शरीर के नाश का नाम महाप्रलय हो तो ऐसे नहीं है क्योंकि; मृतक हुये शरीर का नाश होता है और फिर लोक भासता है। और जो कहिये कि, वह परलोक भ्रममात्र है तैसेही यह भी भ्रान्तिमात्र है और वह परलोक भ्रान्तिमात्र है इसी का नाम महाप्रलय है; तो ऐसे भी नहीं है क्योंकि; श्रुति, स्मृति और पुराण सब कहते हैं कि महाप्रलयमें कुछ नहीं रहता केवल आत्मसत्ताही रहती है। और जो कहिये कि, परलोक भ्रान्तिमात्र है इसका नाम होना क्या है तो श्रुति और शास्त्रका कहना व्यर्थ होता है और जो उनका कहना व्यर्थ हो तो इनके कहनेसे ब्रह्माकार वृत्ति किसीको उत्पन्न न हो। जो तुम कहो कि, जैसे अङ्गवाला अङ्ग को सकुचा लेता है तैसेही स्थूलभूत सकुचकर अपने सूक्ष्मकारण में जा लीन होते हैं इसीका नाम महाप्रलय है, तो ऐसे भी नहीं क्योंकि; सूक्ष्मभूतके रहते महाप्रलय नहीं होता और जो तुम कहो कि,

संवेदन जो अज्ञान है जिसमें अहं फुरता है उसका नाम महाप्रलय है तो यह भी नहीं क्योंकि; मूर्च्छा में इसको अज्ञान होता है परन्तु फिर सृष्टि भासती है और मृत्यु होती है सो बड़ी मूर्च्छा है पर उसमें भी फिर पाञ्चभौतिक शरीर भासता है और आगे जगत् भासता है इससे इसका नाम भी महाप्रलय नहीं। जो तुम कहो कि; जबतक यह पाञ्चभौतिक शरीर है तबतक जगत् है और इसका अभाव हो तब महाप्रलय है तो यह भी नहीं क्योंकि; जब शरीर को जीव त्यागता है और उसकी क्रिया नहीं होती तो पिशाच होता है। इस शरीर का जब नीरूप होता है और मनुष्य शव होजाता है तब क्षत्रिय ब्राह्मण की संज्ञा नहीं रहती, इससे तुम देखो कि; बस देहका नाम भी महाप्रलय नहीं और प्रमाद करके विपर्यय का नाम भी महाप्रलय नहीं। महाप्रलय उसको कहते हैं कि, जिसमें सबका अभाव होजावे और सबका अभाव तब होता है जब वासना क्षय होजाती है। इसलिये वासना के क्षय का नाम ज्ञानी निर्वाण कहते हैं। जैसे जब तक निद्रा है तबतक स्वप्न का जगत् भासता है और जब जाग्रत् में स्वप्न के जगत् का अभाव होजाता है, तैसेही जबतक वासना है तबतक जगत् है, जब वासना का क्षय होता है तब जगत् का अभाव होता है। हे रामजी! वासना भी फुरती नहीं आभासमात्र है और तुम जो कहो कि, भासता क्यों है? तो जो कुछ भासता है सो वही अपने भाव में आप स्थित है। हे रामजी! भाव से उत्थान होनेका नाम बन्धन है और उत्थान के मिटने का नाम मोक्ष है। हे रामजी! नेत्र के खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्न है पर मुक्त होनेमें कुछ यत्न नहीं। जो वृत्ति बहिर्मुख हुई तो बन्धन हुआ और वृत्ति अन्तर्मुख हुई तो मुक्त हुआ। इसमें क्या यत्न है? इसलिये सुषुप्त की नाईं निर्वासनिक स्थित होरहो। जब अहंसंवेदन फुरता है तब मिथ्या जगत् सत्ता हो भासता है। आगे जो इच्छा है सो करो पर जब अहं उत्थान से रहित होगे तब निर्वाणपद को प्राप्त होगे, जहां एक और दो कल्पना कोई नहीं उस परमशान्त निर्विकल्प पद को प्राप्त होगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे नि० वा० शताधिकचतुर्णवतितमस्सर्गः॥ १९४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! निदान वे ब्रह्माजी अन्तर्धान होगये—जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होजावे। जब ब्रह्माजी ब्रह्मपदमें निर्वाण हुये और द्वादश सूर्य फिर ब्रह्मपुरी को जलाने लगे और सम्पूर्ण ब्रह्मपुरी जल गई तब वे सूर्य भी ब्रह्मा की नाईं पद्मासन बांध स्थित हुये। जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होताहै तैसेही वे सूर्य भी निर्वाण होगये। हे रामजी! जब द्वादश सूर्य निर्वाण होगये तब समुद्र उछले और ब्रह्मपुरी को ढाँप लिया। जैसे रात्रि में अन्धकार नगर को ढाँप लेता है तैसेही ब्रह्मपुरी को उन्होंने आच्छादित किया; बड़े तरङ्ग उछले और पुष्करमेघ भी तरङ्गों से छेदेगये और जलरूप होगये। हे रामजी! तब एक पुरुष आकाश से निकला मुझको दृष्ट आया, जो महाभयानक श्यामरूप उग्र आकाश था। उसने सबको ढाँप लिया और वह कृष्णमूर्ति मानों कल्पपर्यन्त रात इकट्ठी होकर उसका रूप आन स्थित हुआ है। और मुख से ज्वाला निकलती है। उसके शरीर का बड़ा प्रकाश था मानों कोटि सूर्य स्थित हैं और बिजली का प्रकाश इकट्ठा हुआ है। उसके पञ्चमुख थे, दश भुजा थीं और तीन नेत्र थे—मानों तीनों सूर्य चमत्कार करते हैं। हाथ में उसके त्रिशूल था और आकाश की नाईं उसकी मूर्ति थी। जैसे क्षीरसमुद्र के मथने को भुजा बड़ी करके विष्णु ने शरीर धारा था और क्षीरसमुद्र को क्षोभाया था तैसेही नासिका के पवन से वह समुद्र को क्षोभित करता हुआ। जैसे आकाश का बड़ा वपु है तैसाही उसने स्वरूप धारण किया—मानों प्रलयकाल के समुद्र मूर्ति धर के स्थित हुये हैं; अथवा मानों सर्व अहंकार की समष्टिता अथवा महाप्रलय की बड़वाग्नि की मूर्ति स्थित वा प्रलयकाल के मेघ मूर्ति धरके स्थित हुये हैं। हे रामजी! मैंने जाना कि, यह महारुद्र है क्योंकि, इसके हाथ में त्रिशूल है, तीन नेत्र और पञ्चमुख हैं। ऐसे जानकर मैंने उसे प्रणाम किया। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उसका भयानक रूप क्या था और रुद्र किसको कहते हैं? उसका बड़ा आकार, दश भुजा, पञ्च मुख और तीन नेत्र क्या थे और हाथ में त्रिशूल क्या था? क्या वह किसीका भेजा आया था उसने क्या किया और कहां

गया ? वह अकेला था अथवा उसके साथ कोई और था और वह श्याम मूर्ति क्यों था ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! विषम विष प्रच्छन्न जो अहंकार है सो त्यागने योग्य है और समष्टि अहंकार सेवने योग्य है। सर्व आत्मा प्रतीत का नाम समष्टि अहंकार और उसीका नाम रुद्र है। कृष्णमूर्ति इस निमित्त थी कि, आकाशरूप है। जैसे आकाश में नीलता है तैसेही उसमें कृष्णता थी। सर्वजीव जो अपने अहंकार को त्याग कर निर्वाण हुये उनकी समष्टिता होकर रुद्ररूप भासी इसी से उग्र था। पञ्चमुख ज्ञान इन्द्रियों की समष्टिता थी और दश भुजा कर्म इन्द्रियों की समष्टिता थी राजस, तामस और सात्त्विक तीन गुण तीनों नेत्र थे अथवा भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान; वा ऋग्, यजुः और साम तीनों वेद नेत्र थे; अथवा मन, बुद्धि और चित्त तीनों नेत्र थे। ॐकार की तीन मात्रा उसके नेत्र और आकाशरूपी वपु था और त्रिलोकीरूपी हाथ में त्रिशूल थे। चित्संवित् से फुरा था इससे उसी का भेजा आया था और फिर उसी में लीन होगा। वह केवल आकाशरूप था। जो कुछ उसने किया वह भी सुनो। हे रामजी ! ऐसा वह रुद्र था मानों आकाश के पंख लगे हैं; उसने अपने नेत्र प्राणों को खींचा तो सर्व जल उसके मुख में प्रवेश करने लगे। जैसे नदी समुद्र में प्रवेश करती है तैसेही सब जल रुद्र में लीन हुये और जैसे वड़वाग्नि समुद्र को पान करलेती है, तैसेही उस रुद्र ने एक मुहूर्त में सब जल पान कर लिया; कहीं जल का अंश भी दृष्टि न आवे। जैसे अन्धकार को सूर्य लीन कर लेता है तैसेही उसने जल पान कर लिया और जैसे अज्ञानी का अज्ञान सन्त के संग से नष्ट होजाता है तैसेही उसने जल को पान कर लिया। तब केवल शुद्ध आकाश होगया; न कहीं पृथ्वी दृष्टि आवे; न अग्नि; न वायुः; कोई तत्त्व कहीं दृष्टि न आवे—एक आकाश ही दृष्टि आवे— जैसे उज्ज्वल मोती होता है तैसेही उज्ज्वल आकाश में दृष्टि आवे और चारों तत्त्व कहीं न भासें। एक तो अधोभाग दृष्टि आवे; दूसरे मध्य भाग आकाश सो रुद्र ही दृष्टि आवे; तीसरे ऊर्ध्वभाग दृष्टि आवे और चौथे चिदाकाश दृष्टि आवे कि, सर्वात्मा है और

कुछ दृष्टि न आवे। हे रामजी! वह रुद्र भी आकाशरूप था और उसका कोई आकार न था केवल भ्रान्ति से आकार भासता था। जैसे भ्रम से आकाश में नीलता और तरुवरे भासते हैं और जैसे स्वप्न में भ्रम से आकार भासते हैं; तैसेही उस रुद्र का आकार दृष्टि आया पर आत्मा आकाश से भिन्न न था। जैसे चिदाकाश में भूताकाश भ्रम से भासता है, तैसेही रुद्र का शरीर भासा। वह रुद्र सर्वात्मा था और आकाश होकर भासा सो किञ्चन था। हे रामजी! आकाश में रुद्र निराधार भासा था। जैसे मेघ निराधार होते हैं तेसेही वह निराधार दृष्टि आता था। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! इस ब्रह्माण्ड के ऊपर क्या है और फिर उसके ऊपर क्या है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जो ब्रह्माण्ड का आकाश है उस पर दश गुणा जल अवशेष है; जल के ऊपर दशगुण अग्नि है उसके ऊपर दशगुण वायु है और उसके ऊपर दशगुण आकाश है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ये तत्त्व जो तुमने वर्णन किये सो किसके ऊपर हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये तत्त्व पृथ्वी के ऊपर स्थित हैं। जैसे माता की गोद में बालक आन बैठता है तैसेही ये तत्त्व पृथ्वी पर हैं और पृथ्वी भाग के आश्रय है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पृथ्वी आदिक तत्त्व सहित निराधार ब्रह्माण्ड किसके आश्रय स्थित हुआ है; उनका चलना और ठहरना कैसे होता है और नाश कैसे होते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हीं कहो कि आकाश में मेघ किसके आश्रय होते हैं? सूर्य और चन्द्रमा किसके आश्रय होते हैं? जैसे ये संकल्प के आश्रय हैं तैसेही ब्रह्माण्ड भी संकल्प के आश्रय है और जैसे स्वप्न की सृष्टि संकल्प ही के आश्रय है और संकल्प आत्मा के आश्रय है; तैसेही यह जगत् और तत्त्व भी आत्मसत्ता के आश्रय स्थित हैं और इन का ठहरना और गिरना भी आत्मा के आश्रय है। जैसे आदि चित्त स्पन्द होकर नीति हुई है तैसेही है। इस प्रकार गिरना है; इस प्रकार ठहरना है; इस प्रकार इसका नाश होना है और इस प्रकार रहना है तैसेही परम स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं—केवल भ्रममात्र है जैसे सूर्य की किरणों में

जलाभास होता है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और चित्तसंवित् ही जगत् आकार हो भासती है । जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और जैसे तलवार में श्यामता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् है । जैसे नेत्रदोष से आकाश में मोती भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत भासता है और मिथ्या जगत् की संख्या कीजिये तो नहीं होती । जैसे सूर्य की किरणों का आभास और रेत के कणके में संख्या नहीं होती; तैसेही जगत् की संख्या नहीं होती और वास्तव में कुछ बना नहीं—अजातजात हैं । जैसे स्वप्न में अनहोती सृष्टि भासती है तैसेही यह जगत् भासता है; इससे दृश्य को मिथ्या जान कर जगत् की वासना त्यागो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नाम शताधिकपञ्चनवतितमस्सर्गः ॥ १९५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! उस रुद्र का तो मैंने बड़ा भयानक रूप देखा था । उसके नेत्र बड़े तेजसे पूर्ण थे—चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि ये तीनों उसके नेत्र थे और वह महाभयानक था—मानों प्रलय के समुद्र मूर्ति धरके स्थित हुये हैं । रुण्डों की माला उसके कण्ठ में थी और उसकी परछाहीं बड़ी और श्यामरूपी निकलती थी; उसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ, कि यहां सूर्य और अग्नि भी नहीं और किसी का प्रकाश भी नहीं तो यह परछाहीं किस प्रकार है और क्या है । ऐसे मैं देखताही था कि, वह परछाहीं नृत्य करनेलगी और उससे एक स्त्री निकली जिसका शरीर दुर्बल, बड़ा ऊंचा आकार और कृष्णवर्ण था—मानों अँधेरी रात्रि मूर्ति धरके स्थित हुई है । और उसके तीन नेत्र बड़ी भुजा और ऊंची ग्रीवा थी—मानों प्रलयकाल के मेघ मूर्ति धारके स्थित हुये हैं । उसके गले में रुद्राक्ष और रुण्डों की माला पड़ी हुई थी और त्रिकराल स्वभाव, हाथों में त्रिशूल, खड्ग, बाण, ध्वजा, ऊखल, मूशल आदिक आयुध लिये थी । ऐसा भयानक आकार देखकर मैंने विचार किया कि, यह काली भवानी है । उसको जानकर मैंने नमस्कार किया । जैसे अग्नि के जले

हुये पर्वत के शिखर श्याम होते हैं तैसेही वह श्याम आकार थी और उसके मस्तकमें तीसरा नेत्र वड़वाग्नि की नाईं तेजवान् निकला था। कभी उसकी दो भुजा दृष्टि आवें; कभी सहस्रभुजा दृष्टि आवें; कभी अनन्त भुजा हों; कभी एक एक भुजा दीखे और कभी कोई भुजा न दृष्टि आवे; कभी शिर पाद कोई न रहे केवल एक बुतसी भासे और नृत्य करे। ज्यों ज्यों वह नृत्य करे त्यों त्यों शरीर स्थूल दृष्टि आवे—मानों आकाश को भी ढाँप लिया है और दशों दिशा आकाश से पूर्ण किये हैं नख शिख की भी मर्यादा कुछ न दृष्टि आवे ऐसा आकार बढ़ाया। जब वह भुजा को हिलावे तब मानों आकाश को मापती है। पाताल पर्यन्त उसके चरण; आकाश पर्यन्त शीश; पृथ्वी उसका उदर, सुमेरु आदिक पर्वत नाभिस्थान और दशों दिशा भुजा थीं—मानों प्रलयकाल की मूर्ति धारकर स्थित भई है बड़े पर्वत की कन्दरावत् जिसकी नासिका थी; लोकालोक पर्वत हाड़ थे और कण्ठ में नदियों की माला थी जो चलती थी। वरुण, कुबेर आदिक देवतों के शिर की माला उसके कण्ठ में थी; पवन नासिका के मार्ग से निकलता था उससे सुमेरु आदिक पर्वत तृणों की नाईं उड़े जाते थे। ब्रह्माण्ड की माला उसके गले में थी, हाथों में ब्रह्माण्डरूपी भूषण थे और कटि में ब्रह्माण्ड के घुंघुरू और करधनी थी। जब वह नृत्य करे तब सब ब्रह्माण्ड नृत्य करे। जैसे पवन से पत्र नृत्य करते हैं तैसेही सुमेरु आदिक नृत्य करें और उसके एक एक रोम में ब्रह्माण्ड थे। जैसे तारागण वायु के आधीन हैं। उसके कानों में धर्म अधर्मरूपी मुद्रा थी और बड़े २ कान और बड़ा मुख था—मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भक्षण करती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों स्थान थे और उन स्थानों में चारों वेदों और शास्त्रों के अर्थरूपी दूध निकलता था। निदान जगत् की सब मर्यादा मुझको उसमें दृष्टि आई। उसके नृत्य करने से कई ब्रह्माण्ड और अस्ताचल आदिक पर्वत तृणों की नाईं नृत्य करें और सब कुछ विपर्यय होता दृष्टि आवे। उसके शरीर में आकाश अधको दृष्टि आवे; पृथ्वी ऊर्ध्व को दृष्टि आवे और तारामण्डल, सिद्ध, देवता, विद्याधर,

गन्धर्व, किन्नर, दैत्य, स्थावर, जङ्गम सब उसमें दृष्टि आवें—मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का आदर्श है। भुजों के उछलने से चन्द्रमा की नाईं नखों का प्रकाश हो और मन्दराचल, उदयाचल पर्वत कानों में भूषण दृष्टि आवें और हिमालय पर्वत बरफ़ के कण के समान दृष्टि आवे। हे रामजी! इस प्रकार उस देवी के शरीर में मुझको अनन्त सृष्टि दृष्टि आई। कहीं इकट्ठी और कहीं भिन्न २ कहीं एकही सी चेष्टा करे और कहीं भिन्न २ चेष्टा करे। मानों ब्रह्माण्डरूपी रत्नों का डब्बा है। हे रामजी! जब मैं संकल्प सहित देखूं तब मुझको सृष्टि दृष्टि आवे और जब आत्मा की ओर देखूं तब केवल आत्मरूप ही भासे और कुछ दृष्टि न आवे। संकल्प दृष्टि से सम्पूर्ण जगत् नृत्य करते दृष्टि आवें पर ऐसी सामर्थ्य किसी की दृष्टि न आवे कि, नृत्य न करे। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सब उसही में दृष्टि आवें और सम्पूर्ण क्रिया उसही से होती दृष्टि आवें। उसही में सिद्ध, देवता, गन्धर्व, अप्सरा विमान पर आरूढ़ फिरैं और नक्षत्रों के चक्र फिरें—मानों ब्रह्माण्ड फिर उदय हुये हैं। जब मैं फिर आत्मदृष्टि से देखूं तब ब्रह्मस्वरूप भासे और संकल्पदृष्टि से जगत् भासे। वह चित्तकला जो संकल्परूप है उसमें सबही दृष्टि आवे। हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा आदि सब उसीमें दृष्टि आते थे। जैसे मच्छर वायु से उड़ते हैं तैसेही अनन्त सृष्टि उसके शरीर में उड़ती दृष्टि आवें इससे मैं महा आश्चर्यवान् हुआ। वह भैरव था और यह भैरवी उसकी शक्ति थी; दोनों मुझको दृष्टि आये कि, बड़े वपुधारी हैं। यह नित्य शक्ति सर्वात्मा थी और परमात्मा की क्रिया शक्ति सब विश्व को अपने आपमें जानती थी। जैसे समुद्र सब तरङ्गोंको अपनेमें अपना आप जानताहै तैसे ही सर्वब्रह्माण्डको वह अपने में अपना आप जानतीथी। वह तो सदाशिवसे भी बड़े अहंकार को धारे थी मानों सब ब्रह्माण्ड की माला कण्ठ में डाले है और यमादिक सब उसकी मर्यादा हैं। हे रामजी! इस प्रकार मैंने रुद्र और काली भवानी को देखा। रुद्र के शिर पर जो जटा थीं सो मोर की पंख की नाईं थीं और काली को मैंने देखा कि, नाना प्रकार के मृग और दम दम से

आदि लेकर शब्द करती थी और यह शब्द भी करती थी–"दिग्वंदिग्वं तुदिग्वं पंचमनावह संमंमप्रलये मियतुयत्रिपंत्रो त्रीलं त्रीषलषलुमं षनुपंसुमंष मषमभ्रिगुही गुंहीगुंही उग्गुमियगुंदलुमददारी मीदातंदती"। हे रामजी! इस प्रकार के शब्द करती हुई वह श्मशानों में नृत्य करती थी। हे रामजी! ऐसी देवी तुम्हारे सहाय हो जो सर्वशक्ति परमात्मा है और सब ब्रह्माण्ड उसके आश्रय है। क्षण में वह अंगुष्ठप्रमाण होजाती थी और क्षण में बड़े दीर्घ आकार धारण करती थी। सब जगत् में जो क्रिया होती हैं सो उसके आश्रय होती हैं; कहीं उत्पत्ति होती है और कहीं युद्ध होते हैं और नाना प्रकार की क्रिया उस देवी के आश्रय होती हैं। जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब होता है तैसेही उस देवी में क्रिया होती हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देवीरुद्रोपाख्यानवर्णनन्नाम शताधिकषण्णवतितमस्सर्गः ॥ १९६ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो तुमने रुद्र और कालिका का वर्णन किया सो कौन थे महाप्रलय में तो कुछ नहीं रहता? उसके शरीर में तुमने सृष्टि कैसे देखी और महाप्रलय होकर उसके शरीर में सृष्टि ने कैसे प्रवेश किया? उसके हाथ में शस्त्र क्या थे; कहां से आई थी और कहां गई और उसका आकार क्या था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई रुद्र है; न काली है; न कोई पुरुष है; न कोई स्त्री है; न कोई नपुंसक है; न पुरुष मिलकर कुछ हुआ है; न ब्रह्माण्ड है और न पिण्ड है; केवल चिदाकाश है और संकल्प से उपजे आकार भासते हैं। जैसे स्वप्ने में आकार भासते हैं। तैसेही वे आकार भी भासते हैं वास्तव में केवल चिदाकाश ज्यों का त्यों है। हे रामजी! आत्मपद अनन्त; चैतन्य, सत्य, प्रकाशरूप, अविनाशी और अपने आप स्वभाव में स्थित है। रुद्रदेव का आकार जो भासा था सो चेतन आत्माही ऐसे होकर भासित हुआ था–कोई और आकार न था। जैसे सुवर्णही भूषण होकर भासता है तैसेही परमदेव चिदाकाश ऐसे होकर भासा था क्योंकि, चेतनस्वरूप है। जैसे मधुरता पौंड़े का स्वरूप है, तैसेही आत्मा का चेतन स्वरूप है। हे रामजी! चैतन-

सत्ता अपने स्वरूप को नहीं त्यागती, आकार होकर भासती है और सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे पौंड़े के रस में मधुरता न हो तो उसको कोई रस नहीं कहता, तैसेही आत्मसत्ता में चेतनता न हो तो चेतन कोई न कहे। जो आत्मा चेतनता को त्यागे तो परिणामी हो और चेतन न कहावे परन्तु वह तो सदा अपने आप स्वभाव में स्थित है और किसी और अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ, इसीसे कहा है कि; जो कुछ भासता है सो आत्मा का किञ्चन है। हे रामजी! जैसे पौंड़े के रस में मधुरता होती है तैसेही आत्मा में चेतनता है। चेतनमात्र में चेतनता लक्षण चेतनतारूप रहता है इससे यह जगत् भावरूप लखाता है; जो शुद्धचिन्मात्र में चित्त का उत्थान न होता तो जगत्भाव न लखाता। आत्मसत्ता दोनों अवस्थाओं में सदा ज्यों की त्यों है—जैसे वायु जब स्पन्द होता है तब उसका स्पर्शरूप लक्षण प्रतीत होता है और जब निस्पन्द होता है तब उसमें कोई शब्द नहीं प्रवेश करसक्ता; पर वायु दोनों अवस्थाओं से तुल्य है; तैसेही शुद्ध चेतन में किसी शब्द का प्रवेश नहीं पर चेतनताभाव में है और आत्मसत्ता सदा तुल्य है—इससे वास्तव यह जगत्ही नहीं है। हे रामजी! आदि, मध्य, अन्त, जगत्, आकाश, कल्प, महाकल्प, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जन्म, मरण, सत्, असत्, प्रकाश, अन्धकार, पण्डित, मूर्ख, ज्ञानी, अज्ञानी, नामरूप, कर्मरूप, अवलोक, मनस्कार, विद्या, अविद्या, दुःख, सुख, बन्ध, मोक्ष, जड़, चेतन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आना, जाना, जगत्, अजगत् कुछ नहीं है। बढ़ना, घटना, मैं, तुम, वेद, शास्त्र, पुराण, मन्त्र, आकार, उकार, मकार, जय, नाम आदिक स्थावर—जङ्गम सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग, बुद्बुदे और आवृत सब जलरूप हैं, तैसेही सब ब्रह्म-स्वरूप है ब्रह्म से भिन्न जगत् कुछ वस्तु नहीं। जैसे स्वप्न में पर्वत भासते हैं सो अनुभव से भिन्न नहीं होते तैसेही यह जगत् ब्रह्म से भिन्न नहीं। जैसे सूर्य की किरणों में जलरूप होकर भासता है तैसेही आत्मसत्ता जगत्-रूप होकर भासती है। हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, कुबेर,

यम, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश आदिक जितने शब्द हैं वे सब ब्रह्मसत्ता ही से होकर स्थित हुये हैं परन्तु सत्ता अपने आप में ज्यों की त्यों है कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त हुई और वही सत्ता सर्वकी आत्मा है। जैसे समुद्र अपने तरङ्गभाव को त्यागे तो अपने सौम्यभाव में स्थित होता है, तैसेही ब्रह्मसत्ता फुरने को त्यागे तो अपने स्वभाव में स्थित हो सो अनामय है अर्थात् दुःखों से रहित, परमशान्तिरूप, अनन्त और निर्विकार है जब इस प्रकार बोध हो तब उस ब्रह्मसत्ता को प्राप्त हो और बोध, अबोध, विधि, निषेध भी वही है। जैसे जल और समुद्र की संज्ञा कही है और तरङ्ग शब्द कहने से विलक्षण भासता है पर जब जल तरङ्ग बुद्धि को त्यागे तब केवल समुद्ररूप है, तैसेही यह जीव जब अपने जीवत्वभाव को त्यागे तब आत्मरूपी समुद्र को प्राप्त हो अर्थात् जब दृश्य का सम्बन्ध त्याग करे तब आत्मा हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अन्तरोपाख्यानवर्णनन्नाम शताधिकसप्तनवतितमस्सर्गः॥ १९७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमसे मैंने जो चिदाकाश कहा है सो परमचिदाकाश है और सदा अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! शुद्ध-चिदाकाश जो मैंने तुमसे कहा है वही यह रुद्ररूप है और वही नृत्य करता था। वहां आकार कोई न था केवल चिद्घनसत्ता थी और वही ऐसे होकर किञ्चन होती थी। हे रामजी! जब मैं आत्मदृष्टि से देखता था तब मुझको चिदाकाशरूप ही भासा था। हे रामजी! मेरे सा हो वही तैसा रूप देखे और नहीं देख सक्ता है। हे रामजी! जिसका नाम कल्पान्त कहाता है वही रुद्र और भैरव है और वही कल्पान्त की मूर्ति नृत्य करके अन्तर्धान होगई और वास्तव में मायामात्र रूप था। यह चेत-नसत्ता के आश्रय नाचते थे। हे रामजी! जैसे सोनेमें भूषण हैं परन्तु सोने विना नहीं होते तैसेही चेतनता किञ्चन से जगत् भासता है और फिर वही प्रमाद से आधिभौतिक होजाता है, वास्तव में शुद्ध चिदाकाशरूप ही है और चेतनता से वही जगतरूप हो भासता है। रामजी ने पूछा,

हे भगवन्! प्रथम तो आपने कहा कि आत्मतत्त्व अद्वैत यह जगत् प्रमाद से नाशरूप कल्पित है और जो है तो कल्प के अन्त में नाश होजाता है, केवल अद्वैतसत्ता रहती है और फिर आपही कहते हैं कि, चैत्यता से जगत्-रूप भासता है। अद्वैत में चैत्यता कैसे हुई है और कौन चेतनेवाला हुआ? प्रलय के अनन्तर काली क्योंकर भासी? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई चैत्य है और न कोई चेतता है केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है जो चेतन घन, परम निर्मल और शान्तरूप है और शिवतत्त्व भी उसी को कहते हैं। वही शिवतत्त्व रुद्र आकार को धारण किये दृष्ट आया था दूसरा कुछ नहीं—केवल परम चिदाकाश है। वही चिदाकाश आकार हो भासता है और कोई आकार नहीं हुआ; न भैरव है, न भैरवी है, न काली है न यह जगत्है सब मायामात्रहै। जैसे स्वप्ने में आत्मसत्ता चैत्यता के कारण जगत्रूप हो भासती है पर स्वरूप ते न कुछ चैत्यता है और न जगत् है, आत्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है; तैसेही उस जगत् को भी जानो। कुछ और नहीं हुआ अद्वैतसत्ताही है; इससे चेत और चेतनेवाला मैं तुमको क्या कहूं सब वृत्ति के बल भासते हैं आत्मा में यह कुछ नहीं उपजे केवल स्वच्छ चिदाकाश है। हमको तो सदा वही स्वरूप भासता है पर अज्ञानी को नाना प्रकार का जगत् भासता है और आत्मा सदा एक है—किञ्चन करके उसमें आकार भासते हैं। भैरव और काली सब निराकार हैं और भ्रान्ति करके आकार भासते हैं। जैसे मनोराज में युद्ध भासते हैं और जैसे कथा में अर्थ भासते हैं सो अनहोते ही संकल्प विलासते हैं; तैसेही चिदात्मा में यह जगत् भासता है। जैसे आकाश में तरुवरे भासते हैं; तैसेही यह आकार भासते हैं। हे रामजी! यह जो जगत् प्रलय और महाप्रलयादिक शब्द हैं उनका नाश करने के लिये मैं तुमको कहता हूं। आत्मा एक अद्वैत चैतन्य है, उस चेतनता का अभाव कभी नहीं होता अपने आपमें स्थित है और किञ्चन है। जैसे सूर्य की किरणें किञ्चन-रूप होती हैं और उनमें जल भासता है; तैसेही चैत्य का किञ्चन जगत् भासता और वही महाप्रलय में रुद्र और भैरवी हो भासती है वास्तव में न

कुछ रुद्र है और न काली है सर्व आत्माही है। हे रामजी ! जो कुछ कहना सुनना होता है तो वाच्य वाचक कहाता है आत्मा में कहना और सुनना कुछ नहीं। वही चिदाकाश संकल्प से रुद्र नृत्य करता था। जैसे सुवर्ण भूषण होकर भासता है, तैसेही चिदाकाश संकल्प से आकार होकर भासता है दूसरा कुछ नहीं बना। मैं, तुम और जगत्, चेत और अचेत सब वही रूप है; उसमें कोई शब्द नहीं फुरा। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के शब्द भासते हैं सो कुछ वास्तव नहीं—पत्थर की नाईं मौन है—तैसेही जाग्रत् जगत् में भी जितना शब्द होता है सो सब स्वप्न है; कुछ हुआ नहीं केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, तैसेही आत्मसत्ता अपने आपभाव में स्थित है जहां न एक है; न द्वैत है; न सत्य है; न असत्य है; न चित्त है; न चेत है; न मौन है; न अमौन है और न कोई चेतनेवाला है; चेत के अभाववत् केवल अचेत चिन्मात्र आत्मसत्ता निर्विकल्परूप स्थित है। हे रामजी ! सबसे बड़ा शास्त्र का सिद्धान्त यही है; इस दृष्टि मौन में तुम स्थित हो। हे रामजी ! सर्वसिद्धान्तों की समता यही है कि, निर्विकल्प होना। जैसे पत्थर की शिला परम मौन होती है, तैसेही चेत से रहित हो जो कुछ प्रत्यक्ष आचार प्राप्त हो उसमें प्रवर्तना और सदा आत्मनिश्चय रखना इसी का नाम परममौन है। सब क्रिया होती रहें पर अपने से कुछ न देखना—जैसे नट स्वांग धरता है और उसके अनुसार बिचरता है परन्तु निश्चय उसका आदि ही वपु में होता है, उससे चलायमान नहीं होता; तैसेही जो कुछ अनिश्चित प्राप्त हो उसको यथाशास्त्र करना परन्तु अपने निर्गुण निष्क्रियस्वरूप से चलायमान न होना उसी अद्वैत स्वरूप में स्थित रहना। रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! वह रुद्र क्या था और वह काली शक्ति क्या थी ? उनके अङ्ग जो बढ़ते घटते थे; नृत्य करना क्या था और वस्त्र क्या थे सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! शिवतत्त्वही आकार होकर भासता है और कोई आकार नहीं जो चिन्मात्र; अमल, विद्या और अविद्या के कार्य से रहित; शान्त और अवाच्यपद है। यह

संज्ञा भी संकल्प में तुमसे कही है; आत्मवेत्ता आत्मपद को अवाच्यपद कहते हैं तथापि मैं कुछ कहता हूं। हे रामजी! केवल आत्मतत्त्वमात्र जो चिदाकाश है, वही शिव भैरव है; उसी के चमत्कार का नाम चित्तशक्ति है और उसी का नाम काली है उस काली आत्मा और शिवरूप में कुछ भेद नहीं। जैसे पवन और स्पन्द में; और अग्नि और उष्णता में कुछ भेद नहीं होता तैसेही चित्तकला और आत्मा में कुछ भेद नहीं। जैसे पवन निस्पन्द होता है तब उसका लक्षण नहीं होता अवाचकरूप होता है और जब स्पन्द होता है तब उसका लक्षण भी होता है और उसमें शब्दप्रयोग होता है; तैसेही चित्तशक्ति से उसका लक्षण होता है। उसके अनेक नाम हैं; उसी का नाम स्पन्द और इच्छा है; उसी को चैत्योन्मुखत्व से वासना कहते हैं; उसी के स्वाद की इच्छा से जब चित्तसंवित् में वासना फुरती है तब उसका नाम वासना करनेवाला वासक कहाता है-फिर आगे दृश्य होती है। जब त्रिपुटी हुई अर्थात् वासना, वासक और वास्य हुये तब वासक को जीव कहते हैं-जो जीवत्वभाव लेकर स्थित होती है। जब इसको यह भावना होती है कि, मैं जीव हूं और मेरा नाश कदाचित् न हो इस इच्छा से जीव कहाता है ऐसी संज्ञा जो चित्तशक्ति की होती है सो स्पन्द में होती है पर शिवतत्त्व अफुर है और अचेत शक्ति में फुरने की नाईं स्थित है। जैसे सूर्य की किरणों में जल नहीं होता और हुये की नाईं भासता है, तैसेही यह जगत है नहीं और हुये की नाईं भासता है इससे उसमें यह संज्ञा देते हैं। काली जो परमात्मा की क्रियाशक्ति है सो प्रथम तो कारण-रूप प्रकृति है और उसी से सब हैं-इसीसे प्रकृतिरूप है, विकृति नहीं; अर्थात् किसी का कार्य नहीं। महदादिक पञ्चभूत, महत्तत्त्व और अहंकार यह सप्त प्रकृति-विकृति है-अर्थात् कार्यभी हैं और कारण भी हैं। कार्य आदि देवी के हैं और कारण षोडश हैं-पञ्चज्ञान इन्द्रियां, पञ्चकर्म इन्द्रियां, पञ्चप्राण और एक मन। इनके सप्तदश कारण हैं। षोडश तो विकृत हैं अर्थात् कार्यरूप हैं, कारण किसी का नहीं, और पुरुष जो परमात्मा है वह अद्वैत, अचित्त और चिन्मात्र है, न किसी का कारण है और

न कार्य है अपने आपमें स्थित है इससे जितनी द्वैतकलना कारण कार्य में है वह सब चित्तशक्ति में स्थित है। जब यह निस्पन्द होती है तब तत्त्व-रूप शिवपद में निर्वाण होजाती है और कारण कार्यरूपी भ्रम सब मिट जाता है केवल आकाशवत् शेष रहता है। वह शुद्ध, अद्वैत, अचेत, चिन्मात्र सदा अपने आपभाव में स्थित है और उसकी स्पन्दरूप क्रिया-शक्ति की इतनी संज्ञा है। प्रथम तो सबका कारणरूप प्रकृति है जो शोष है अर्थात् जैसे वड़वाग्नि समुद्र को सुखाती है तैसेही वह जगत् को सुखाती है; सिद्धि है अर्थात् सिद्ध उसे आश्रयभूत करके सेवते हैं; जयन्ती है अर्थात् उसकी जय है, चण्डिका है अर्थात् जिसके क्रोध से जगत् प्रलय होता है और भय पाता है; वीर्य है अर्थात् जिसका अनन्तवीर्य है; दुर्गा है अर्थात् इसका रूप जानना कठिन है; गायत्री है अर्थात् जिसके पाठ से संसारसमुद्र से रक्षा होती है; सावित्री है अर्थात जगत् की पालना करती है; कुमारी है अर्थात् कोमलस्वभाव है; गौरी है अर्थात् गौर अङ्ग है; शिवाहै अर्थात् शिवके बायें अङ्ग में उसका निवास है; विजयाहै अर्थात् सब जगत् को जीत रही है; सुशक्ति है अर्थात् अद्वैत आत्मा में उसने विलास रचाहै और इन्द्र साराहै अर्थात् यह जो उकार इन्द्र आत्मा है उसका सार अर्धमात्रा है और उकार-अकार-मकार तीनों मात्रा अधिष्ठान है। हे रामजी ! राजसी; तामसी और सात्त्विकी तीन प्रकार की जो क्रिया होती हैं सो इसीसे होती हैं; यह सब संज्ञा क्रियाशक्ति की कही। अब उसका शस्त्र और बढ़ना-घटना सुनो। हे रामजी ! वह नृत्य जो करती थी सोही क्रिया है; सो क्रिया सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीनप्रकार की है। गुसल जो था सो ग्राम, पुर और नगर थे और उसके अङ्ग सृष्टि थे। जब वह शिव से व्यतिरेक होती थी तब उसके अङ्ग सृष्टिरूप बहुत होजाते थे; जब शिव की ओर आती थी तब सृष्टिरूप अङ्ग थोड़े होजाते थे और जब शिव को आ मिलती थी तब शिवही होती थी—सृष्टिरूपी अङ्ग कोई न रहता था। यह तो आत्मा की कालीशक्ति की क्रिया का वर्णन तुमको सुनाया है अब शिव का वर्णन सुनो। वह तो वाणी से अतीत है तथापि मैं कुछ कहता हूं।

वह परमशुद्ध, निर्मल और अच्युतहै और उसमें कुछ हुआ नहीं केवल क्रिया शक्ति के फुरने से जगत् हो भासताहै। जब वह अपने अधिष्ठान की ओर देखताहै तब अपना स्वरूप दृष्टि आताहै। क्रियाशक्ति और आत्मा में कुछ भेद नहीं—जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं क्योंकि; आकाश का अङ्ग शून्यता है—और अवयवी और अवयव में भी कुछ भेद नहीं जैसे अग्नि का रूप उष्णता है, तैसेही आत्मा का स्वभाव चित्तशक्तिहै। इसका नाम काली इससे है कि कृष्णरूप है। जैसे आकाश ऊर्ध्व को श्याम भासताहै तैसेही आकाश वपुहै। और जैसे आकाश निराकारहै तैसेही काली निराकार श्यामा भासती है। आकाश की नाईं इसका वपु है इससे इसका नाम कृष्णवपु है और काली जगत् के नाश के अर्थ है। वह जब स्वरूप की ओर आती है तब जगत् का नाश करती है। हे रामजी! स्पन्द-शक्ति जबतक शिव से व्यतिरेक है तबतक जगत् को रचती है—जहां यह है तहां जगत् है—जगत् से विलक्षण नहीं रहती। जैसे जहां सूर्य की किरणें हैं वहां जलाभास होताहै—किरण विना जलाभास नहीं रहता; तैसेही स्पन्द-शक्ति जगत् विना नहीं रहती। जैसे आकाश के अङ्ग आकाश हैं तैसेही इसके अङ्ग जगतहैं और जैसे समुद्रमें तरङ्ग समुद्ररूपहैं; तैसेही जगत् इसका रूपहै और यह शक्ति चिदाकाशहै उससे व्यतिरेक नहीं। जब यह फुरतीहै तब जगत् आकार हो भासतीहै और जब शिवकी ओर आतीहै तब शिव रूप होजाती है। और जगत्का भाव कोई नहीं रहता। इससे, हे रामजी! तुम्हारी चित्तशक्ति जब तुम्हारी ओर आवे तब जगत्भ्रम मिटे। इस चित्त शक्ति ने ही जगत्भ्रम रचा है। शिवपूजा निर्मल और शान्तरूप है और अजर, अमर, अचेत, चिन्मात्र है उसमें कुछ क्षोभ नहीं—आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमने काली के अङ्ग की जो सृष्टि देखी थी वह आत्मामें सत् है अथवा असत है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह कालीदेवी आत्माकी क्रियाशक्ति है अर्थात् फुरनशक्ति है इससे आत्मा में सत्य है और वास्तव में आत्मा में कुछ नहीं मिथ्या है। जैसे तुम मनोराज से अपने में दूसरी चिन्तना करो तो वह कुछ

वस्तु नहीं पर उस काल में सत् भासती है; तैसेही जितनी सृष्टि है सो आत्मा में कोई सत्य नहीं परन्तु चित्तशक्ति से बसती दृष्टि आती है। जैसे कुछ विधि–निषेध पदार्थ और आकाश, पर्वत, समुद्र, वन, जगत्, तीर्थ, कर्म, बन्ध, मोक्ष, गुरु, शास्त्र, युद्ध, शस्त्र आदिक जो भासते हैं वह सब चिदाकाश ब्रह्मरूप हैं और वास्तव में इनका होना ब्रह्म से भिन्न नहीं; सर्वप्रकार और सर्वदाकाल आत्मा अपने आपमें स्थितहै जो शुद्ध, अद्वैत, निराकार, निर्विकार और ज्यों का त्यों है उसमें जगत् कोई नहीं उपजा। सब जगत् आत्मा में क्रियाशक्ति ने रचा है सो माया काल में सत्य है वास्तव में कुछ नहीं। जैसे सोनेवाले को स्वप्न में सृष्टि भासती है और उसके शरीर को कोई हिलावे तो वह नहीं जागता पर जो कुछ सृष्टि होती तो हिलाने से उसका कोई स्थान गिर पड़ता–इसी से जाना जाता है कि, किसी का नाश नहीं होता–वास्तव में कुछ नहीं। हे रामजी! वह सृष्टि जो प्रत्यक्ष अर्थाकार होती है उसके चित्तस्पन्द में स्थित है परन्तु जब तक निद्रा है तब तक वह सृष्टि है और जब निद्रा निवृत्त होती है तब स्वप्नसृष्टि भी नहीं भासती तैसेही यह सृष्टि भी कुछ वास्तव में नहीं अज्ञान से चित्तशक्ति में भासती है। हे रामजी! सब पदार्थ चित्त के फुरने से भासते हैं। जिसका संकल्प शुद्ध होता है उसके मनोराज की सृष्टि यदि देशकाल से प्रत्यक्ष होती है तो संकल्परूप होती है क्योंकि, कुछ बना नहीं। जब संकल्प फुरता है तब संकल्प के अनुसार सृष्टि भासती है; इससे संकल्परूपही हुई और जो उसकी सत्यता हृदय में होती है तब इसका अर्थ हृदय में अनुभव होता है। जैसे परलोक अदृष्टि है पर जब उसकी सत्यता हृदय में होती है तब उसका राग द्वेष भी हृदय में फुरता है क्योंकि; संकल्प में उसका भाव खड़ा है; तैसेही जब तक चित्त-स्पन्द फुरता है तब तक जगत् सब खड़ा है। और जब चित्त निस्पन्द होता है तब जगत् की सत्यता नहीं भासती। हे रामजी! यह सब जगत् क्रियाशक्ति ने आत्मा में रचा है। जब तक यह काली क्रियाशक्ति शिव से व्यतिरेक होती है तब तक नाना प्रकार के जगत् रचती है और क्षोभ

को प्राप्त होती है और जब शिव की ओर आती है तब शान्तरूप होजाती है; तब फिर प्रकृति संज्ञा उसकी नहीं रहती—अद्वैततत्त्व में अद्वैतरूप ही होजाती है। जैसे जब तक पवन चलता है तब तक शीत, उष्ण, सुगन्ध, दुर्गन्ध, बड़ी और छोटी संज्ञा होती है और जब ठहरता है तब कहा नहीं जाता कि; ऐसा है अथवा वैसा है; तैसेही जब तक चित्तशक्ति स्पन्दरूप होती है तब तक जगत् रचती है और प्रकृति कारणरूप कहाती है और उसमें दो प्रकार के शब्द होते हैं—विद्या और अविद्या। हे रामजी! जो कुछ कहना होता है सो स्पन्दरूप जो चित्र लिखा है उसमें है और जब शिवतत्त्व में अंकुर होता है तब अद्वैतरूप होजाती है—वहां किसी शब्द की गम नहीं। हे रामजी! शिव क्या है और शक्ति क्या है सो भी सुनो? ये सब जीव शिवरूप हैं और इनके चित्त का फुरना काली है। जब तक इच्छा से चित्तशक्ति बाहर फुरती है जब तक भ्रम का अन्त नहीं आता और नाना प्रकार के विकारों का अनुभव होता है कदाचित् शान्ति नहीं होती और जब चित्तशक्ति उलट कर अधिष्ठान को देखती है तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है और परमशान्ति को प्राप्त होता है। हे रामजी! आत्मा और चित्संवित् में कुछ भेद नहीं। जैसे वायु के स्पन्द और निस्पन्द में कुछ भेद नहीं होता परन्तु जब स्पन्द होती है तब जानी जाती है और निस्पन्द नहीं जानी जाती; तैसेही चित्तसंवित् जब फुरता है तब जाना जाता है और नहीं फुरता तब नहीं जाना जाता और जानना और न जानना दोनों नहीं रहते हैं। हे रामजी! जब तक इच्छाशक्ति शिव की ओर नहीं देखती तब तक नाना प्रकार का नृत्य करती है अर्थात् जगत् को रचती है और जब शिव की ओर देखती है तब नृत्य विरस होजाता है और सब अङ्ग सूक्ष्म होजाते हैं। हे रामजी! इस काली का आकार प्रमाण में आता न था पर शिव की ओर देखने से सूक्ष्म होगया। प्रथम पर्वत समान था; फिर निकट आई तब ग्राम के समान हुआ; फिर वृक्ष के समान रहा और जब निकट आई तब सूक्ष्म आकार होगया और शिव के साथ मिली तब शिवरूप होगई। शिव के

सम्मिलन से इसका जो विलास है सो शून्य होजाता है और परमशान्त शिवपद की प्राप्ति होती है। श्रीरामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! यह जो परमेश्वरी कालीशक्ति है सो उसको मिलकर शान्त कैसे हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवी परमात्मा की इच्छाशक्ति है और जगन्माता इसका नाम है। जब तक यह शिवतत्त्व से व्यतिरेक रहती है तब तक जगत को रचती और जब अपने अधिष्ठान की ओर आती है जो नित्य-तृप्त, अनामय, निर्विकार, द्वैतभाव से रहित परमशान्ति को प्राप्त होती है। तब इसकी प्रकृतसंज्ञा जाती रहती है। जैसे नदी जब तक समुद्र को नहीं प्राप्त हुई तब तक दौड़ती और शब्द करती है पर जब समुद्र को मिली तब शब्द करना और दौड़ना नष्ट होजाता है और नदी संज्ञा भी नहीं रहती—समुद्र को मिल कर परमगम्भीर समुद्ररूप होजाती है; तैसेही जब तक चित्तशक्ति शिव से व्यतिरेक होती है तब तक जगत् भ्रम को रचती है और जब शिवतत्त्व को मिली तब शिवरूप होजाती है और द्वैतभ्रम मिट जाता है। हे रामजी! जब यह चित्तशक्ति शिव पद में लीन होजाती है तब प्रथम जो देह और इन्द्रियों से तद्रूप हुई थी; इन्द्रियों के इष्ट—अनिष्ट में आपको सुखी दुःखी मानती थी और राग द्वेष से जलती थी सो नित्यतृप्त और अनामय पद के मिले से सुख दुःख से रहित होती है क्योंकि; अनात्मदेह इन्द्रियों की तद्रूपता का अभाव होजाता है और आत्मतत्त्व के साथ तद्रूप होती है। जैसे पत्थर की शिला के साथ मिल कर खड्ग की धार तीक्ष्ण होती है तैसेही चित्तसंवित् जब आत्म-पद में मिलती है तब एक अद्वैतरूप होजाती है। और आत्मपद के स्पर्श किये से अनात्मभाव का त्याग करती है। जैसे तांबा पारस के स्पर्श से सुवर्ण हो जाता है और फिर तांबा नहीं होता तैसेही यह वृत्ति अनात्मभाव को नहीं प्राप्त होती। चित्तकला तबतक विषय की ओर धावती है जबतक अपने वास्तवस्वरूप को नहीं प्राप्त हुई; जब अपने वास्तव स्वरूप को प्राप्त होती है तब विषय की ओर नहीं धावती है। जैसे जिस पुरुष को अमृत प्राप्त होता है और उसके स्वाद का उसे

अनुभव होता है तब वह नींब पान करने की इच्छा नहीं करता; तैसेही जिसको आत्मानन्द प्राप्त हुआ है वह विषयों के सुख की इच्छा नहीं करता। हे रामजी ! यह संसारभ्रम चित्तसंवित्में दृढ़ सत्य होकर स्थित हुआ है और संसार के सुख का त्याग नहीं कर सक्ता पर जब आत्मसुख प्राप्त होगा तब त्याग देगा। जैसे किसी पुरुष को जबतक पारस नहीं प्राप्त हुआ तबतक वह और धन को त्याग नहीं सक्ता पर जब पारस प्राप्त होता है तब तुच्छधन का त्याग करता है और फिर यत्न नहीं करता; तेसेही जब जीव को आत्मानन्द प्राप्त होता है तब विषय के सुख का त्याग करता है और पाने का यत्न नहीं करता। हे रामजी ! भँवरा तबतक और स्थानों में भ्रमताहै जबतक कमल की पंक्तिपर नहीं पहुँचता पर जब उस पंक्ति पर पहुँचता है तब और स्थान को त्याग देता है; तैसेही चित्तशक्ति जब आत्मपद में लीन होती है तब किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करती। निर्विकल्पपद को प्राप्त होती है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पुरुषप्रकृतिविचारो नाम शताधिकाष्टनवतितमस्सर्गः ॥ १९८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! अब पूर्व का प्रसंग फिर सुनो। जब काली नृत्य करके निर्वाण होगई तब शिव अकेला रह गया वही मुझको दृष्टि आवे और दो खण्ड आकाश के दृष्टि आवें-एक अधोभाग और दूसरा ऊर्ध्वभाग और कुछ दृष्टि न आवे। तब रुद्र ने नेत्रों को फैलाकर दोनों खण्ड देखे-जैसे सूर्य जगत् को देखता है-और प्राण को भी खैंचा तब ऊर्ध्व और अधः दोनों खण्ड इकट्ठे होगये और ब्रह्माण्ड को अन्तर्मुख करलिया-एक शिवही रह गया और कुछ दृष्टि न आवे। हे रामजी ! जब एक क्षण व्यतीत हुआ तब रुद्र बड़े आकार को धारे हुये ब्रह्माण्ड को भी लांघ गया और एक वृक्ष के समान होगया। फिर अंगुष्ठमात्र शरीर होकर एक क्षण में सूक्ष्मअणु सा होगया; फिर रेत के कणके से भी सूक्ष्म होगया और फिर नेत्रों से दृष्टि न आवे तब दिव्यदृष्टि से मैं देखता रहा और फिर वह भी नष्ट होगया केवल चिदाकाश ही शेष रहा और दूसरी वस्तु कुछ न भासे।

जैसे वर्षाकाल के मेघ शरत्काल में नष्ट होजाते हैं तैसेही वह रुद्र भी नष्ट होगया। हे रामजी! उस काल में मुझको तीनों इकट्ठे दीखे-एक देवी ब्रह्मा की शक्ति; दूसरी कालीशक्ति और तीसरी शिला। तब मैंने विचार किया कि, यह स्वप्न नगरवत् आश्चर्य था और कुछ नहीं। तब मैंने क्या देखा कि; स्वर्ण की शिलाही पड़ी है। यह श्रेष्ठशिला के कोष में स्थित थी। तब मैंने विचार किया कि; यह सृष्टि शिला के एक कोष में है और सृष्टि भी होगी क्योंकि; सर्व वस्तु सर्वप्रकार और सर्वठौर पूर्ण हैं; इसलिये उसमें भी मैं सृष्टि देखने लगा और नाना प्रकार की सृष्टि देखीं। जब मैं बोधदृष्टि से देखूं तब सब ब्रह्मही भासे। संकल्पदृष्टि से आत्मरूपी आदर्श में अनन्त सृष्टि दृष्ट आवें और चर्मदृष्टि से शिलाही पड़ी दीखे। इस प्रकार मैं शिला-कोष में चला तो वहां मुझे घास, तृण, पत्थर, फल और फूलों में अनन्त सृष्टि दृष्टि आवें और निस्संकल्प आत्मदृष्टि से देखूं तब अद्वैत आत्माही भासे। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टि देखीं; कहीं ऐसी सृष्टि भासे कि, ब्रह्मा उपजे हैं और रचना रचने को समर्थ हुये हैं; कहीं ब्रह्मा ने चन्द्रमा सूर्य उपजाये हैं और मर्यादा स्थापित की है; कहीं सम्पूर्ण पृथ्वी आदिक तत्त्व उपजाये हैं पर प्राण नहीं हुये; कहीं समुद्र नहीं उपजे; कहीं आचार सहित सृष्टि दृष्टि आवे; कहीं चन्द्रमा सूर्य नहीं उपजे और कहीं उपजे हैं; कहीं चन्द्रमा शिव से नहीं निकले; कहीं क्षीरसमुद्र मथा नहीं गया और अमृत नहीं निकला और लक्ष्मी, हाथी, घोड़ा, धन्वन्तरि वैद्य भी नहीं निकले; कहीं विष और अमृत नहीं निकला-देवता मरते हैं; कहीं क्षीरसमुद्र मथा है उससे अमृत निकलाहै; कहीं प्रकाश नहीं होता; कहीं सदा प्रकाश ही रहता है; कहीं पृथ्वी पर पर्वतों के सिवा कुछ दृष्ट न आवे; कहीं इन्द्र के वज्र से पर्वत कटते हैं और उड़ते थे; कहीं प्राणियों को जरा मृत्यु नहीं होता कल्पपर्यन्त ज्यों के त्यों रहते हैं; कहीं प्रलय होती है; कहीं मेघ गर्जते हैं; कहीं सम्पूर्ण जलही दृष्ट आवे; कहीं आकाश दृष्ट आवे और प्राणी कोई न दीखे; कहीं देवताओं के युद्ध होते थे; कहीं देवों को दैत्य जीतते थे; कहीं दैत्यों को देवता जीतते थे; कहीं देवता और दैत्यों की परस्पर

प्रीति थी; कहीं बलि और इन्द्र; रुद्र और वृत्रासुर का युद्ध होता था; कहीं मधुकैटभ दैत्य ब्रह्मा की कन्या से उत्पन्न होते थे, कहीं सदा प्रसन्नता ही रहती है और तीनों कालों को जानते हैं; कहीं सदा शोकवान् ही रहते हैं; कहीं सतयुग का समय है और दान, पुरय, तप होते थे; कहीं कलियुग का समय था और प्राणी पाप में बिचरते थे; कहीं अर्द्धयुग बीता था; कहीं रामजी और रावण का युद्ध होता था; कहीं रावण को रामजी ने मर्दन किया था; कहीं रामजी को रावणने मर्दन कियाथा; कहीं सुमेरु पर्वत तलेहै और पृथ्वी ऊपर है; कहीं शेषनाग पर पृथ्वी है और भूचाल से भ्रमती है; कहीं प्रलयकाल का जल चढ़ा है और एक बालक वट के वृक्ष पर बैठा अपने अंगुष्ठ को चूसता है सो विष्णु भगवान् हैं और कहीं ब्रह्मा के कल्प की रात्रि है और महाशून्य अन्धकार है; कहीं कौरव पाराडव की सहायता कृष्ण करते हैं; कहीं महाभारत का युद्ध होता है और दोनों ओर से अक्षौहिणी सेना निकली है और श्रीकृष्णजी पाराडवों की सहायता करते हैं; कहीं एक सृष्टि नाश होती है और दूसरी उसी में उसीकी सी और उत्पन्न होती है और उसीका सा कर्म, उसीका सा कुल, जाति और गोत्र होते हैं कहीं उससे अर्धभाग मिलता है; कहीं चतुर्थ भाग उसीका सा मिलता है और कहीं विलक्षण भाग होता है। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्तसृष्टि देखीं जो आत्मआदर्श में प्रतिबिम्बित हैं। जब मैं आत्मदृष्टि से देखूं तब सब चिदाकाश ही भासे और जब संकल्प दृष्टि से देखूं तब जगत् भासे। कहीं ऐसी सृष्टि देखी जहां दशरथ के पुत्र राम हैं और रावण के मारने को समर्थ हुये हैं; कहीं तुम्हारे रूप बड़े तपस्वी रहते हैं जिनके मन सदा प्रसन्न हैं। ऐसी अनन्तसृष्टि देखीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं आगेभी ऐसाही हुआ हूं अथवा किसी और प्रकार हुआ हूं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कई उसी कैसे; कई अर्धलक्षणके और कई चतुर्थ भाग लक्षणवाले होते हैं। जैसे अन्नका बीज उसीका सा होता है और कोई उससे विशेष भी होताहै; तैसेही ये सब पदार्थ होते हैं। हे रामजी! तुम भी आगे होगे और मैं भी आगे हूंगा परन्तु आत्मा का विवर्त है। जैसे

समुद्र में एकसे तरङ्गभी होते हैं और विलक्षणभी दृष्ट आते हैं परन्तु वही रूप हैं; तैसेही हमारे सदृशभी फिर होंगे परन्तु आत्मत्व भिन्न कुछ नहीं— संकल्प से भिन्न की नाईं विलक्षणरूप भासते हैं जैसे समुद्र में वायु से तरङ्ग भासते हैं; तैसेही आत्मा संकल्प से जगत्‌रूप हो भासता है। यद्यपि नाना प्रकार हो भासता है तौभी दूसरा कुछ हुआ नहीं। यह जगत् चैतन्य का विलास है और चित्तके फुरने में अनन्तसृष्टि भासती हैं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि बड़े आरम्भ से भासती है परन्तु स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं; तैसेही यह जगत् आरम्भ परिणामसे कुछ बना नहीं आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अनन्तजगद्वर्णनं नाम शताधिकनवनवतितमस्सर्गः ॥ १९९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार मैंने सृष्टि देखी और फिर दृश्य भ्रम को त्याग कर अपने वास्तव स्वरूप में स्थित हुआ। मैं अनन्त, नित्य, शुद्ध, बोध, चिदाकाश और सर्वदा अपने आप में स्थित हूं। हे रामजी! चिन्मात्र आत्मा किसी स्थान में संवेदन आभास फुरा है—जैसे अनाज के कोठे से एक मूठीभर निकालिये और क्षेत्र में डालिये तो उसी से किसी ठौर में अंकुर निकले; तैसेही चैतन्यमें संवेदन फुरा है और उस संवेदन से जगत् उपजाहै। जैसे जल के दिये से अंकुर निकल आता है, तैसे ही मेरे में सृष्टि का अनुभव होने लगा और मैंने जाना कि, सृष्टि मुझसे फुरी है। रामजी बोले, हे भगवन्! तुम जो आकाशरूप अपने आप में स्थित थे उसमें सृष्टि तुमको कैसे फुरी? दृढ़बोध के निमित्त मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वास्तव तो कुछ उपजा नहीं परन्तु जैसे हुई है तैसे सुनो। मुझ अनुभव आकाश और अनन्त के किसी स्थान में संवेदन चित्त 'अहं' फुरा अर्थात 'मैंहूं'; उस अहंभाव के होने से मैं आपको सूक्ष्म तेज अणुसा जाननेलगा और उस अणु में अहंकार फुरा जिसको तुम ऐसे अहंकार कहते हो उस अहंकार की दृढ़ता से निश्चयात्मक बुद्धि फुरी; उस बुद्धिसे संकल्प विकल्परूप मन फुरा और उस मन ने प्रपञ्च रचा। उस मनमें देखने का स्पन्द

फुरा तब चक्षुइन्द्रियां हुईं और जिसको देखने लगा वह रूप दृश्य हुआ। फिर सुनने की इच्छा फुरी तब श्रवण इन्द्रिय हुई और वह शब्दही सुनने लगी। फिर रसलेने की इच्छा हुई तब जिह्वा इन्द्रिय हुई और वह रसको ग्रहण करने लगी। जब सुगन्ध लेने की इच्छा की तब नासिका इन्द्रिय हुई और सुगन्ध ग्रहण करनेलगी और फिर स्पर्श करने की इच्छा से त्वचा इन्द्रिय प्रकट होकर स्पर्श ग्रहण करने लगी। इस प्रकार मुझको ज्ञान-इन्द्रिय आन फुरी और उनमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध उदय हुई तब मैंने अपने साथ स्थूल वपु देखा। जैसे कोई स्वप्न देखताहै और उसमें अपना शरीर देखताहै तैसेही मैं देखता हुआ। हे रामजी! जिस-को मैं देखने लगा वह दृश्य हुआ और जिससे मैं देखता था वे इन्द्रियां हुईं। जब दृश्य फुरना हुआ वह काल हुआ; जहां हुआ वह देश हुआ और ज्योंकर हुआ वह क्रिया हुई। इस प्रकार सब देश काल पदार्थ हुये हैं सो मैंने तुमसे कहे। हे रामजी! वास्तव में न कोई देह है; न इन्द्रियां हैं और न सृष्टि है पर चित्तकला में हुये की नाईं दृष्ट आते हैं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि भासती है। जब वह सृष्टि मुझको फुरी तब पूर्वस्वरूप मुझे विस्म-रण हुआ। जैसे सुषुप्ति में अपना स्वरूप विस्मरण की नाईं होताहै; तैसे-ही मुझको विस्मरण हुये की नाईं भासा। तब जैसे स्वप्ने में जाग्रत्स्वरूप का विस्मरण होताहै और जाग्रत् में स्वप्ने के स्वरूप का विस्मरण होताहै, तैसेही पूर्व का स्वरूप मुझको विस्मरण हुआ। जब शरीर और इन्द्रियां मुझको अपने साथ भासीं तो उनमें मैंने अहंप्रत्यय करके ॐकार शब्द उच्चार किया। जैसे बालक माता के गर्भ से उत्पन्न होकर शब्द करता है, तैसेही मैंने ॐ शब्द का उच्चार किया। जैसे कोई पुरुष स्वप्ने में उड़ता और शब्द करता है तैसेही मैंने ॐकारका उच्चार किया जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित परमब्रह्महै और सर्वब्रह्माण्डरूपी तरङ्गका आधार समुद्र है। हे रामजी! जब मैं आधिभौतिक दृष्टि से देखूं तब मुझको शिला ही भासे और जब अन्तवाहक दृष्टि से देखूं तब अनन्तब्रह्माण्ड दृष्ट आवे और नाना प्रकारकी क्रिया और मर्यादा सहित भासे पर जब आत्मदृष्टि

से देखूं तब अद्वैत अपना आपही भासे। हे रामजी! जैसे सूर्य की किरणों में मरुस्थल की नदी भासती है तैसेही मुझको सृष्टि भासे। जैसे मरुस्थल की नदी मिथ्याहै, तैसेही ग्रहण करनेवाली वृत्ति मिथ्याहै। जैसे संवेदन में मनन फुरता है सोभी मिथ्या है क्योंकि, नदी मिथ्या है तो मनन उसका सत् कैसे हो; तैसेही यहभी जीव का रूप-अवलोक मिथ्या है और भ्रान्ति करके सत्य भासता है। जैसे स्वप्नसृष्टि, संकल्पपुर और मनोराज का नगर मिथ्या है और कथा का वृत्तान्त अनहोताही भ्रान्ति से प्रत्यक्ष भासता है; तैसेही यह जगत् भ्रान्ति से सत्य भासता है—वास्तव में कुछ नहीं पर संकल्पविलासमें बना दृष्ट आताहै। हे रामजी! जिस प्रकार मुझको सृष्टि भासी है सो सुनो। जब मेरे में पृथ्वी की धारणा हुई तब पृथ्वी मुझको शरीर होकर भासनेलगी क्योंकि; मैं विराट् आत्मा था। उस पृथ्वीपर वन, पर्वत, नदी, समुद्र, वृक्ष, फल, फूल, मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, ऋषीश्वर, दैत्य और नाग आदिक जो स्थित हैं सो पृथ्वी मेरा शरीर हुआ; पर्वत मेरे मुख हुये; सुमेरु आदि पर्वत मेरी भुजा हुईं; सप्तसमुद्र इन्द्रिय हुईं; सर्वनदी मेरे कण्ठमें माला और वन मेरी रोमावली हुई; मरुस्थल की नदी मेरे ऊपर विस्तार हुई और देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी और दैत्य इत्यादि मेरे में कीट भासे—शरीर में जुआं लीख आदिक हैं। किसी ठौर मेरे ऊपर हल चलाते हैं और बीज बोते हैं जिससे खेती उगती है और प्राणी खाते हैं; कहीं खोदते हैं; कहीं पूजा करते हैं; कहीं समुद्र स्थित हैं; कहीं नदी चलती हैं; कहीं राजा राज्य करते हैं और कहीं मेरे ऊपर झगड़ मरते हैं। एक कहता है पृथ्वी मेरी है और दूसरा कहता है मेरी है; इस प्रकार ममता करके युद्ध करते हैं। कहीं हाथी चेष्टा करते हैं; कई रुदन करते हैं; कई हास्य करते; कहीं वृत्ति फैलाते हैं; कहीं सुगन्ध है; कहीं दुर्गन्ध है; कहीं नदियां चलती और क्षोभ करती हैं; कहीं देवता और दैत्य मेरे ऊपर युद्ध करते हैं; कहीं शीतलता से जल मेरे ऊपर बरफ़ होजाता है। इस प्रकार इष्ट—अनिष्ट स्थान मैंने अपने ऊपर देखे और राजसी, तामसी और सात्त्विकी जितनी जीवों की क्रिया होती हैं उन सबका आधार मैं हुआ पूर्व,

पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं की संज्ञा संवेदन फुरने से हुई है।
इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्याने पृथ्वीधातु-
वर्णनन्नाम द्विशततमस्सर्गः ॥ २०० ॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! तुमको जो धारणा से पृथ्वी का अनुभव हुआ और उसमें जगत् उत्पन्न हुआ वह संकल्परूप था वा मन से उपजा था अथवा आधिभौतिक था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सब जगत् संकल्परूप है और आधिभौतिक की नाईं भासता है परन्तु केवल चिदाकाश अपने आप में स्थित है। वह चिदाकाश मैं हूं, न कदाचित् उपजा हूं और न नाश होऊंगा; सर्वदा अद्वैत, अचैत्य, चिन्मात्ररूप हूं। उसके संकल्प का नाम मन है; आभास का नाम संकल्प है और उसी का नाम ब्रह्मा और इच्छा है; उसी में जगत् स्थित है सो आकाशरूप है—कुछ बना नहीं। हे रामजी! जिसको सत्य और असत्य कहते हो वह शुभ-अशुभरूप जगत् मन में स्थित है और सर्वआकार निराकार रूप हैं; भ्रान्ति से पिण्डाकार भासते हैं। जैसे स्वप्न में शुभ अशुभ पदार्थ भासते हैं सो निराकार हैं पर भ्रान्ति से पिण्डाकार भासते हैं; तैसेही वे जगत् भी निराकार हैं पर भ्रम से पिण्डाकार भासते हैं और विचार किये से शून्य होजाते हैं। जैसे मनोराज से आकार रचित है, तैसेही हमारे आकार जानो—स्वरूप से कुछ उपजे नहीं। जैसे मृत्तिका में बालक नाना प्रकारकी सेना रचतेहैं और उस मृत्तिका का उनको भिन्न २ भाव निश्चय होता है; तैसेही अद्वैत आत्मा में मनरूपी बालक ने जगत् कल्पा है, वास्तव में कुछ नहीं—आत्मतत्त्व सदा अपने आप में स्थित है। जैसे मृगतृष्णा का जलही नहीं तो उसमें डूबा किसे कहिये; तैसेही मन आप आभासरूप है तो उसका रचा जगत् कैसे सत् हो? हे रामजी! सब चिदाकाशरूप है—दूसरा कुछ बना नहीं। आत्मरूप आकाश में मनरूपी नीलता है सो अविचार सिद्ध है और विचार किये से नीलता कुछ वस्तु नहीं। जैसे दीपक के विद्यमान अन्धकार नहीं रहता, तैसेही विचार किये से मन और मन की रचना जगत् नहीं रहती। मन का निर्वाण करना

ही परमशान्ति है और कोई उपाय नहीं। हे रामजी ! जितने क्षोभ हैं उनका कर्त्ता मन है और सम्पूर्ण शब्द अर्थ कल्पना मन से उठती है–मन के निर्वाण हुये कोई नहीं रहती। रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर ! आप अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुये सो कुछ और रूप भी हुये अथवा न हुये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मरूपी जो जाग्रत् है उसमें मैं अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुआ। मैं चैतन्य था और जड़ की नाईं स्थित हुआ–वास्तव में मैं जगत् न था केवल चिदाकाश था जिसमें न कुछ नाना है; न अनाना है; न अस्ति है; न नास्ति है; और जिसमें अहं-त्वं-इदं का अभाव है। वह केवल परम आकाश है जो आकाश से भी निर्मल चिदाकाश है और जो है सो सर्व शब्द ब्रह्म है। जगत् के होते भी वह अरूप है क्योंकि; कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना–केवल आत्मा का चमत्कार है। हे रामजी ! जहां जहां पदार्थसत्ता है वहां वहां जगत् वस्तु है। सर्वदाकाल, सर्वप्रकार, सब पदार्थों का स्पन्द ब्रह्म है; जहां ब्रह्मसत्ता है वहां जगत् है। इस प्रकार मैंने अनन्त ब्रह्माण्ड को देखा। जब मैं अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुआ तो जब जल की धारणा की तब जलरूप होकर फैला और वृक्ष, घास, फूल, फल, गुच्छे, डाल, तमाल और पत्रों में रस होकर स्थित हुआ; थम्भे में मैंहीं बल हुआ और समुद्र हुआ; नदियों के प्रवाह होकर मैंहीं बहने लगा और उनमें गड़ गड़ शब्द करने लगा और तरङ्ग बुद्बुदे फेन को फैला कर विलास किया; उसके कण के होकर मैंहीं स्थित हुआ; आकाश में मेघ होकर वर्षता और प्राणियों को तृप्त करने लगा। उनमें रुधिर आदि रस होकर मैंहीं स्थित हुआ और उनकी नाड़ियों में मथन करके आपही प्रवेश किया। जैसी जैसी नाड़ी होती है तैसा तैसा रस होकर मैं स्थित हुआ। रस, बीज, कफ, पित्त, मूत्र आदिक सब नाड़ियों में मैंहीं स्थित हुआ। सर्व प्राणियों की जिह्वा के अग्रभाग में रस होकर मैं स्थित हुआ और अपने आपका आपसे स्वादु को ग्रहण करने लगा और हिमालय में बरफ़ होकर स्थित हुआ। हे रामजी ! मैं चैतन्य होके जड़ की नाईं स्थित हुआ; बीज होकर

मैंने हीं उत्पन्न किया और प्रलय के मेघ होकर मैंहीं ने नाश किया । इस प्रकार जल होकर स्थावर, जङ्गम सर्व जगत् में स्थित हुआ और सदा अपने आपमें स्थित होकर अपने स्वरूप को न त्यागा । जैसे स्वप्न में जगत् अनुभवरूप है और अनहोता भासता है; तैसेही मैं जलरूप होकर जगत् को धारता भया । हे रामजी ! नाना प्रकार के स्थानों में मैं स्थित हुआ; फूलों की शय्या पर चिरकाल पर्यन्त विश्राम करता रहा; गन्ध होकर फूलों में स्थित हुआ और मेघ होकर आकाश में बिचरा और ऐसी वर्षा की कि, पर्वतों पर वेग से प्रवाह चलने लगा और मैं कणके कणके होके समुद्र और नदी में बिचरा । यह प्रतिभास चिद्अणु में मुझको हुई ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्याने जलरूपवर्णनन्नाम द्विशताधिकप्रथमस्सर्गः ॥ २०१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जल के अनन्तर मैंने तेज की भावना की अर्थात् तेज धारा, तब मुझ में इतने अङ्ग उदय हुये—चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि—और इनसे जगत् की क्रिया सिद्ध होने लगी । जैसे राजा के अङ्ग अनुचर और हरकारे होते हैं तैसेही तमरूपी चोर को दीपकरूपी हरकारे मारनेलगे आकाशरूपी जो मैं था इससे मेरे कण्ठ में तारावलीरूपी माला पड़ी थी । सूर्य होकर मैं जल को सोखता और दशों दिशाओं को प्रकाशता रहा । आकाश जो ऊर्ध्वता से श्याम भासता है वह मेरे निकट प्रकाशमान होता था; सब जगत् में मैंहीं फैलरहाथा और जहां मैं रहूं तहां से तम का अभाव होजावे । चन्द्रमा और सूर्यरूपी डब्बा है जिसमें दिन, रात और काल, वर्षरूपी अनेक रत्न सर्वदा निकलते रहते हैं । राजसी, सात्त्विकी और तामसी क्रियारूपी कमलिनी का मैं सूर्य हुआ और सर्वदेवतों और पितरों को तृप्त करता रहा । यज्ञ की अग्नि और रत्न, मोती, मणि आदिक जो प्रकाश पदार्थ हैं उनमें प्रकाश मैं हीं हुआ । प्राणों के भीतर मैं स्थित हुआ और प्राण-अपान के क्षोभ से अन्नको पचाने लगा । जैसे आत्मा के प्रकाश से रूप, अवलोक और मनस्कार प्रकाशते हैं; तैसेही सब पदार्थ मेरे प्रकाश से प्रकाशित होनेलगे क्योंकि; मैं तेजरूप था—मानों चैतन्यसत्ता

का दूसरा भाई हूं। जैसे सर्वपदार्थ आत्मा से सिद्ध होते हैं, तैसेही मुझसे सिद्ध होनेलगे। हे रामजी! राजों में तेज और सिद्धों में वीर्य मैं हीं था; बलरूप होकर जगत् को मैंहीं पुष्ट करता था; वड़वाग्नि दाहकशक्ति होकर जगत् को मैंहीं नष्ट करता था और तेजवानों में तेज; बलवानों में बल मैंहीं था। तले भी मैं था; मध्य भी मैंहीं था और चन्द्रमा सूर्य से रहित जो स्थान हैं उनमें भी मैंहीं था। अग्निरूपी दीपक और चन्द्रमा और सूर्यरूपी नेत्रों से मध्यमण्डल में स्पष्ट मैं देखता था। हे रामजी! इस प्रकार तेजरूप होकर भीतर बाहर स्थावर जङ्गम पदार्थों में मैं स्थित हुआ पर जब बोधदृष्टि से देखूं तब सर्व आत्मा ही का भान हो और जब अन्तवाहक दृष्टि से आपको विराट्रूप जानूं कि; सर्वजगत् में मैंहीं फैलरहा हूं और सर्व पदार्थ मेरेही अङ्ग हैं। निदान तेजवानों में तेज और क्रोधवानों में क्रोध; यतियों में यती और अजीत मैं हुआ और सर्व ओर मेरी ही जय है क्योंकि; जय उसकी होती है जिसमें बल और तेज होता है—सो बल मैं हूं और तेज भी मैं हूं इससे मेरी जय है। हे रामजी! सुवर्ण और रत्नमणि में जो प्रकाश और रूप है सो मैं हुआ। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! इसप्रकार जो आप जगत् की क्रिया अनुभव करने लगे कि, जलरूप होकर अग्नि को बुझाना और अग्नि होकर जल को जलाना इत्यादिक क्रिया जो तुम्हारे ऊपर इष्ट अनिष्ट से होती रहीं उनको तुम ने सुख दुःख से अनुभव किया वा न किया सो मेरे बोध के निमित्त कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे चैतन्य पुरुष स्वप्ने में पर्वत, वृक्ष, देह, इन्द्रियां और नानाप्रकार के जड़पदार्थ देखते हैं जो वास्तव में उनमें नहीं हैं; केवल अनुभवरूप हैं परन्तु निद्रा-दोष से वे उन्हें द्वैत की नाईं जानते हैं और उनका राग-द्वेष अपने में मानते हैं, यथार्थ में द्रष्टाही दृश्यरूप होकर स्थित होता है परन्तु निद्रादोष से नहीं जान सक्ता और जब जागता है तब स्वप्ने की सब सृष्टि को अपना आपही जानता है; तैसेही यह जगत् अपने स्वरूप में नहीं है; जब बोध-स्वरूप में जागोगे तब पदार्थ भावना जाती रहेगी और सब जगत् बोध-स्वरूप भासेगा। हे रामजी! जिस पुरुष को देश, काल और वस्तु के

परिच्छेद से रहित अखण्ड सत्ता उदय हुई है उसको ज्ञानी कहते हैं। जब यह पुरुष परमात्म अवलोकन करता है तब सब जगत् आत्मस्वरूपही भासता है। जिस पुरुष को स्वप्ने की सृष्टि में पूर्व का स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ उसको अन्तवाहक कहते हैं और उसको पत्थर, जल और अग्नि में प्रवेश करने से भी खेद नहीं होता है। हे रामजी! मैं जो आकाश में उड़ता फिरा और आकाश को भी लांघकर ब्रह्माण्ड के खप्पर पर फिराहूं सो अन्तवाहक शरीर से ही फिरा हूं। जिसको अन्तवाहक शरीर प्राप्त होता है उसको कोई आवरण नहीं रोक सक्ता क्योंकि; सब उसके अङ्ग होते हैं। मुझको शुद्ध आत्मा में स्वप्ना हुआ था पर पूर्व का स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ इससे सब जगत् मुझको अपना स्वरूप ही भासता रहा और अपने संकल्प से कल्पे अपनेही अङ्ग भासते थे। जैसे कोई मनोराज से अग्नि का समुद्र रचे और उसमें स्नान करे तो वह भी होता है क्योंकि; उसको खेद नहीं होता सब अपने संकल्प में ही उसको भासते हैं। अन्तवाहक शरीर से विराट् सबको अपना आप देखता है तैसेही सब जगत् मुझको अपना आप भासता था तो खेद कैसे हो? जैसे स्वप्नेवाला स्वप्ने में पर्वत, नादियां और अग्नि देखता है सो वही रूप है और आप भी एक आकार धारण करके बन जाता है और पूर्व का स्वरूप उसकी प्रच्छन्नता से भूल जाता है और राग द्वेष से जलता है। मैंने तत्त्वरूप बनके जो आपको जड़रूप देखा तो मैंने आपको चैतन्यरूप देखा और जड़ की नाईं भी जाना। इस प्रकार मुझको अपना स्वरूप विस्मरण न हुआ तब मैं विराट्रूप सबको अपना अङ्गही देखतारहा इससे मुझे खेद कैसे होता? खेद तब होता है जब अपना स्वरूप भूलता है और प्रच्छन्न बनजाता है, पर मैं तो बोधवान् रहा कि, मैंने स्पन्द से सब रूप धारे हैं। हे रामजी! जिसको यह निश्चय है उसको दुःख कहां? सुखदुःखरूप जो पदार्थ हैं सो मैंने अपनेमें ऐसे देखे जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब भासता है। जिसको यह दृष्टि हो उसको दुःख कहां है? हे रामजी! जिसको अन्तवाहक शक्ति प्राप्त होती है वह पाताल और आकाश में जाने को समर्थ होता है और

जहां प्रवेश किया चाहे वहां जासक्ता है क्योंकि; सृष्टि संकल्पमात्र है। हे रामजी! और कुछ सृष्टि बनी नहीं आत्मा का किञ्चनही सृष्टिरूप होकर भासता है। हे रामजी! यह सृष्टि सब ब्रह्मस्वरूप है। हमको तो सदा ऐसेही भासती है। जब तुम जागोगे तब तुमको भी ऐसेही भासेगी। तुम भी अब जागे हो। उस प्रकार मैं अग्नि होकर स्थित हुआ कि, जिसकी शिखा से कालख निकलती थी। प्रकाश मैंहीं हुआ और अपने चिद्स्वरूप अनुभव में मुझको जगत् भासे उसमें मैं स्थित हुआ। अन्धकार और उलूकादि भी मेरे प्रकाशसे प्रकाशते हैं और भावरूप पदार्थ भी मैं अपने में जानताभया क्योंकि; भावरूप पदार्थ तब भासते हैं जब उनका रूप होता है; सो रूपवान् पदार्थ मैंहीं था इस कारण सब मेरेही में सिद्ध होते थे। इस प्रकार मुझको प्रतिभा हुई।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्याने चिद्रूपवर्णनन्नामद्विशताधिकद्वितीयस्सर्गः॥ २०२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर मैंने पवन की धारणा का अभ्यास किया तब पवनरूप होकर विचरनेलगा और कमल के फूलों और वृक्षों को हिलाने लगा। तारों और नक्षत्रों का आधारभूत हुआ और वे मेरे आधार पर फिरने लगे। चन्द्रमा और सूर्य के चलानेवाला भी मैंहीं हुआ और समुद्र और नदियों के प्रवाह मेरीही शक्ति से चलते रहे मनका बड़ा वेग भी मैंहीं हुआ और प्राणियों के शरीरों में मेरा निवास हुआ मैंहीं प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान पञ्चरूप होकर स्थित हुआ और सब नाड़ियों में मेरा निवास हुआ। सब नाड़ियों को रस अपना अपना भाग मैंहीं पहुँचाता रहा और हलना, चलना, बोलना, लेना देना सब मुझही से सिद्ध होता था निदान सर्वपदार्थों में स्पर्शशक्ति मैंहीं हुआ और सर्वशब्द मेरेहीसे सिद्ध होते थे। क्रियारूपी बुन्द का मैं मेघ हुआ; आकाशरूपी गृह में मेरा निवास था और दशोंदिशा सब मेरे मेंही फुरी थीं। देवताओं को गन्ध से मैंहीं सुख देता था और दीपक को मैंहीं प्रज्वलित करता था। पक्षियों में मेरा सदा निवास था। जैसे अग्नि में उष्णता रहती है तैसेही

सबके सुखाने और हरियावल करनेवाला मैंहीं हूं । हे रामजी ! इस प्रकार मैं पवन होकर स्थित हुआ इसलिये रूप, अवलोक और मनस्कार सर्व-पदार्थ मैंहीं हुआ और चन्द्रमा, सूर्य, तारे, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वरुण, कुबेर और यम आदिक जगत् होकर मैंहीं स्थित हुआ । पञ्चभूतों के भीतर और बाहर भी मैं था; प्राण-अपान के क्षोभ से दुःख होता है सो मैंहीं साकार निराकाररूप हूं और रक्त पीत श्यामरङ्ग पदार्थ सब मैंहीं हूं । पञ्चभूत जो चिद्अणु फुरे हैं सो उसीका रूप है जैसे स्वप्न की सृष्टि सब अपनाही रूप होती है—इतर कुछ नहीं होती । हाड़, मांस, पृथ्वी होकर भूतों में स्थित हुआ और वायुरूप प्राण, अग्निरूप सुधा और आकाशरूप अवकाश भया हूं । इस प्रकार मैं सर्व में स्थित भया । मैं भी चैतन्यवपु था और वे तत्त्व भी चैतन्यवपु थे । जैसे स्वप्न में जगत् आकाशरूप होता है तैसेही वे भी आकाशरूप हैं । हे रामजी ! सर्वकाल, सर्वप्रकार सर्वका सर्वात्मा स्थित है दूसरा कुछ नहीं । आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है इससे भिन्न जानना भ्रान्तिमात्र है । यह दृष्टि ज्ञान-वान् की है पर जो असम्यक्दर्शी हैं उनको भिन्न २ पदार्थ भासते हैं । इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण जगत् अपने में ही देखा । हे रामजी ! मैं ब्रह्मरूप था इससे उसमें जगत् उत्पन्न होते दृष्ट आये और जो मैं ब्रह्म से इतर होता तो एकतृण भी न उत्पन्न होता । मैं जो ब्रह्मरूप था इससे सृष्टि उत्पन्न होती है । हे रामजी ! जब मैंने बोधदृष्टि से देखा तब आत्मा से भिन्न कुछ न दीखा और जब अन्तवाहक दृष्टि से देखा तब स्पन्द के कारण अणु अणु में सृष्टि भासी । जैसे जहां चन्दन का अणु होता है वहां सुगन्ध भी होती है; तैसेही जहां जहां तत्त्व के अणु हैं वहां वहां सृष्टि भी है । हे रामजी ! एक अणु में अनन्त सृष्टि मुझको भासी । जैसे एक पुरुष शयन करता है और उसको स्वप्न में सृष्टि भासती है और फिर स्वप्न से स्वप्नान्तर की सृष्टि देखता है तो एकही जीव में बहुत भासते हैं; तैसेही एक अणु से अनेक सृष्टि होती हैं । हे रामजी ! जो सृष्टि है सो आभासरूप है और आभास अधि-ष्ठान के आश्रय होता है । सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है जो देश और काल

के प्रच्छेद से रहित अखण्ड अद्वैतसत्ता है। इसीसे कहा है कि, अणु अणु में सृष्टि है क्योंकि; कोई अणु भिन्न वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ताही है; जो सर्वब्रह्म है तो सृष्टि भी ब्रह्मरूप है—इससे सब ब्रह्म ही जानो। ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे वायु और स्पन्द में भेद नहीं, तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादन-
न्नाम द्विशताधिकतृतीयस्सर्गः॥ २०३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार जब मेरे में सृष्टि फुरी तब मैं उनके भ्रम को त्याग और संकल्प को खैंच कर अन्तर्मुख हुआ और अपनी जो कुटी थी उसकी ओर आया। जब मैंने कुटी देखी तो उसमें एक पुरुष बैठा मुझको दृष्ट आया। तब मैंने विचार किया कि, यह तो किञ्चन है; मेरा शरीर कहां है? मैंने विचार करके देखा कि, यह कोई महासिद्ध है। मेरा शरीर इसने मृतक जान कर गिरा दिया है और आप पद्मासन बांध कर दोनों टखने पुट्ठों के ऊपर किये और शिर और ग्रीवा सूधे किये बैठा है। दोनों हाथ कांधों पर ऊर्ध्व किये हैं—मानों कमल फूल हैं वा मानों अन्तर का प्रकाश बाहर उदय हुआ है और नेत्र मूंदे हैं—मानों सब वृत्ति खैंच ली है। हे रामजी! इस प्रकार समाधि लगा कर पद्मासन बांधे वह आत्मपद में स्थित बैठा था और उसका मुख सूर्य की नाईं प्रकाशतां था। जैसे धुयें से रहित अग्नि प्रकाशता है, तैसेही वह सिद्ध प्रकाशमान स्थित था। इस प्रकार मैंने उसको आत्मपद में स्थित देखा। जैसे दीपक निर्वाण स्थित होता है, तैसेही उसे स्थित देख कर मैंने विचार किया कि इसे इहां हीं बैठा रहने दूं और मैं अपने स्थान सप्तर्षिलोक में जाऊं। इस प्रकार कुटी के संकल्प को त्याग कर मैं उड़ा और उड़ते हुये मार्ग में मुझको विचार उपजा कि; देखूं अब उस सिद्ध की क्या दशा है फिर निदान उलट कर देखा तो कुटी सहित सिद्ध वहां नहीं था क्योंकि; कुटी उसकी आधारभूत थी सो मेरे संकल्प में स्थित थी, जब मेरा संकल्प निर्वाण हो गया तब वह कुटी गिर पड़ी तो उसमें वह सिद्ध कैसे रहे; वह भी गिर

पड़ा। हे रामजी! उसको गिरता देख कर मैं भी उसके पीछे हुआ कि, उसका कौतुक देखूं। निदान आगे वह चला और मैं पीछे नीचे को चला परन्तु मैं स्वाधीन चला जाता था और वह पराधीन चला जाता था। जैसे मेघ से बूंद गिरती है तो वही ठहरती तैसेही वह चला और सप्तद्वीप के पार दशसहस्र योजन स्वर्ण की धरती है उस पर आन पड़ा और उसी प्रकार पद्मासन बांधे हुये शीश और ग्रीवा उसी प्रकार सम ठहरे रहे क्योंकि; उसके शीश और ग्रीवा ऊर्ध्व को थे। हे रामजी! शरीर प्राण से हलता चलता है; जब प्राण ठहर जाते हैं तब शरीर नहीं हलता चलता इस कारण उसका शरीर समही रहा और जैसे कुटी में बैठा था उसी प्रकार आसन करके पृथ्वी पर आपड़ा। तब मेरे मन में आया कि, इसके साथ कुछ चर्चा भी करना चाहिये परन्तु यह तो समाधि में स्थित है इसलिये प्रथम किसी प्रकार इसको जगाऊं। हे रामजी! ऐसा विचार करके मैं मेघ होकर उसके शिर पर वर्षा करने लगा और बड़ा शब्द किया जिससे पहाड़ फटने लगे पर उस शब्द और वर्षा से भी वह न जागा। फिर जब मैं ओले होकर उसके ऊपर वर्षा करने लगा—जैसे पत्थर की वर्षा होती है तब ऐसी वर्षा होने से वह नेत्र खोल कर देखने लगा—जैसे पर्वत पर मोर मेघ को देखने लगे और मैं वपु त्याग कर उसके आगे आ स्थित हुआ। तब उसने समाधि खोली और उसकी प्राण इन्द्रियां अपने स्थान में आईं। हे रामजी! जब मुझको उसने अपने आगे देखा तब मैं अद्वैतभाव को त्याग कर बोला, हे साधो! तू कौन है; कहां स्थित है; क्या करता था और किस निमित्त कुटी में स्थित था? सिद्ध बोले; हे मुनीश्वर! मैं अपने प्रकृतभाव में स्थित हूं और सब कुछ कहूंगा परन्तु जल्दी मत कर—मैं स्मरण करके कहता हूं। हे रामजी! मुझसे इस प्रकार कह कर वह स्मरण करने लगा और फिर स्मरण करके बोला; हे वशिष्ठजी! मुझ पर क्षमा करो क्योंकि सन्तों का शान्त स्वभाव होता है। मुझसे तुम्हारी बड़ी अवज्ञा हुई है परन्तु तुम क्षमा करो—मेरा तुमको नमस्कार है। हे रामजी! इस प्रकार नमस्कार करके उसने निर्मल आनन्द के उपजानेवाले यह

वचन कहे कि; हे मुनीश्वर! संसाररूपी नदी है जिसका बड़ा प्रवाह है और कदाचित् नहीं सूखता। चित्तरूपी समुद्र से यह प्रवाह निकलता है; जन्म-मरण इसके दोनों किनारे हैं; रागद्वेषरूपी इसमें तरङ्ग हैं और भोग की तृष्णा इसमें चक्र फिरता है—उसमें मैंने बड़ा दुःख पाया है। हे मुनीश्वर! अपने सुख के निमित्त देवों के स्थानों में भी मैं गया; दिव्यभोग भोगे और स्पर्श आदिक जो भोग हैं वे भी सब मैंने भोगे हैं परन्तु शान्ति मुझको नहीं प्राप्त हुई और जिस सुख को मैं चाहता था सो न पाया। जैसे पपीहा मेघ की बूंद चाहता है और मरुस्थल की भूमिका में उसको शान्ति नहीं होती; तैसेही मुझको विषयों के सुख में शान्ति न हुई। हे मुनीश्वर! इस जगत् को असार जान कर मेरा चित्त विरक्त हुआ है कि; इतने काल मैंने भोग भोगे परन्तु मुझको शान्ति न हुई। इनको असत् जानकर मैं फिरा और विचार किया कि, जो सार हो उसमें स्थित होरहूं। तब मैंने जाना कि, सार अपना अनुभवरूप ज्ञानसंवित्ही है—इससे मैं उसी में स्थित हुआ हूं। हे मुनीश्वर! जितने विषय हैं वे विषरूप हैं। विष के पान किये से मृत्यु ही होती है। स्त्री, धन आदिक सुख मोह और दुःख के देनेवाले हैं। ऐसा कौन पुरुष है जो इनमें आया सावधान रहताहै? ये तो स्वरूप से नष्ट करनेवाले हैं। हे मुनीश्वर! देहरूपी एक नदी है जिसमें बुद्धिरूपी एक मछली रहती है; जब वह शिर बाहर निकालती है अर्थात् इच्छा करतीहै तब भोगरूपी बगला इसको खाजाताहै अर्थात् आत्ममार्ग से शून्य करता है। ये जो भोगरूपी चोर हैं जब इनका संग जीव करताहै तब वे इसको लूट लेते हैं अर्थात् आत्मज्ञान से शून्य करते हैं और जब आत्मज्ञानसे शून्य होता है तब जन्मों का अन्त नहीं आता—अनेक शरीर धारता है। जैसे चक्रपर चढ़ीहुई मृत्तिका अनेक वासनाओं के आकार धारती है तैसे ही आत्मज्ञान से रहित जीव अनेक शरीर धारताहै पर अब मैं जागाहूं मुझको वे अब नहीं लूटसक्ते। हे मुनीश्वर! भोगरूपी बड़े नाग हैं; और जो नाग हैं उनके डसे से शरीर मृतक होते हैं पर विषयरूपी सर्प के फूत्कार सेही मृतक होताहै अर्थात् इच्छा करनेसे ही आत्मपद से शून्य

होता है। जब जीव को विषयों की इच्छा से सम्बन्ध होताहै तब उसका क्षण क्षण में निरादर होता है–जैसे कदली वनसे रहित हुआ और महावत के वशमें आया हस्ती निरादर पाता है। हे मुनीश्वर! जिस शरीर के निमित्त जीव विषयों की इच्छा करता है वह शरीर भी नाशरूप है। इसमें अहंप्रतीति करनी परम आपदा का कारण है और अहंप्रतीति न करनी परमसुख का कारण है। जैसे सर्प के मुख में पड़ा हुआ दर्दुर व मच्छर खाने की इच्छा करता है सो महामूर्ख है। किसी क्षण काल इसको ग्रास लेगा; इससे भोगों की इच्छा करनी व्यर्थ है और दुःख का कारण है। हे मुनीश्वर! जब बाल अवस्था व्यतीत होतीहै तब युवा अवस्था आती है और युवा के उपरान्त जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता है। जैसे वसन्तऋतु की मञ्जरी जेठ आषाढ़ में सूख जाती है, तैसेही वृद्धावस्था में शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता और दुःख पाता है। बालक अवस्था में जीव क्रीड़ा में मग्न होताहै; यौवन अवस्था में कामादिक सेवता और वृद्ध होकर चिन्तामें मग्न रहता है। इस प्रकार जब यह तीनों अवस्था व्यतीत होती हैं तब मरजाता है। जीवों की अवधि इस प्रकार व्यतीत होती है और परमपद से अप्राप्त रहते हैं। हे मुनीश्वर! यह आयुर्बल बिजली के चमत्कार की नाईं है। इस क्षणभंगुर अवस्था में जो भोगों की वाञ्छा करते हैं वे महादुःख को प्राप्त होते हैं। इनमें सुख देखकर जो कोई कहे कि मैं स्वस्थ रहूंगा तो कदाचित् न होगा। जैसे जल के तरङ्गों में बैठकर कोई स्थित हुआ चाहे तो नहीं होसकता–अवश्य मरेगा–तैसेही विषयभोगों से शान्ति सुख नहीं होता। जैसे कोई महाधूप से तपा हुआ सर्प के फन की छाया के नीचे बैठकर सुख की वाञ्छा करे तो सुख न पावेगा पर जब आत्मज्ञानरूपी वृक्ष की छाया के नीचे बैठे तब शान्त और सुखी होगा। जिन पुरुषों ने विषयों की सेवना की है वे परमदुःख को प्राप्त होते हैं और जिन्होंने आत्मपद की सेवना की है वे परमानन्द को प्राप्त होते हैं। जैसे नदी का प्रवाह नीचे चला जाता है, तैसेही मूर्ख का मन विषयों की ओर

धावता है। यह संसार मायामात्र है और इसमें शान्ति कदाचित् नहीं प्राप्त होती। जैसे मरुस्थल की नदी के जल से तृषा निवृत्त नहीं होती तैसेही विषयभोग से शान्ति कदाचित् नहीं होती। जो आत्मपद से विमुख हैं वे विषयों की ओर धावते हैं और जो आत्मपद में स्थित हैं वे विषयों की ओर नहीं दौड़ते। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर नष्ट होते हैं और जैसे नदी का वेग समुद्र की ओर गमन करता है पर पत्थर की शिला गमन नहीं करती; तैसेही भोगरूपी समुद्र की ओर अज्ञानरूपी नदी गमन करती है पर ज्ञानरूपी पत्थर की शिला नहीं गमन करती। हे मुनीश्वर! कमल में सुगन्ध तब तक होती है जबतक सर्प के मुख का वायु नहीं लगा; तैसेही बुद्धि में विचार तबतक है जबतक चित्तरूपी सर्प के भोग और इच्छारूपी वायु नहीं लगा। जब यह लगता है तब विचार-रूपी सुगन्ध लेजाता है और विषरूपी तृष्णा को छोड़जाता है। बाण निशान की ओर तब धावता है जब धनुष और चिल्ले को त्यागता है और त्यागेसे फिर नहीं मिलता, तैसेही आत्मारूपी चिल्ले से जब चित्त-रूपी बाण छूटता है तब भोगरूपी निशान की ओर धावताहै और जब जाता है तब फिर आना कठिन होता है—अर्थात् अन्तर्मुख होना कठिन होता है। हे मुनीश्वर! यह आश्चर्यहै कि, जो पदार्थ सुखदायक नहीं हैं उनकी ओर चित्त बड़ा यत्न करता है पर तौ भी वे सिद्ध नहीं होते और अयत्नसिद्ध आत्मपद है उसको त्यागते हैं। जिनको यह सुख जानता है वे सब दुःख के स्थान हैं। जिस अपने होनेको यह भला जानता है वह अनर्थ का कारण है। जिस देह को जीव सुखरूप जानता है वह सर्व-रोग का मूल है। जिनको यह भोग जानता है वे इसको दुःख देनेवाले परमरोग हैं और जिनको यह सत्य जानता है वे सब मिथ्या हैं; जिनको यह स्थिर जानता है वे स्थिर नहीं चलरूप हैं; जिनको यह रस जानता है वे सब विरस हैं; जिनको बान्धव जानता है वे सब अबान्धव हैं और दृढ़ बन्धनरूप हैं और जिसको यह सुख देनेवाली स्त्री जानता है वह सर्पिणी है और परमविष के देनेवाली है जिसका काटा मर जाता है फिर नहीं

जीता अर्थात् आत्मपद में स्थित नहीं होता। हे मुनीश्वर! मैं परम आपदा का कारण देह को जानता हूं। इसके निवृत्त हुये जीव परमपद को प्राप्त होता है। जिस पुत्र, धन आदिक को जीव संपदा जानता है सो परम दुःखरूप आपदा हैं; इनमें सुख कदाचित् नहीं। यह वार्ता मैं सुनकर नहीं कहता; मैंने देखकर विचार किया है; विचार करके अनुभव किया है और अनुभव करके कहा है कि; यह संसार मायामात्र है। बड़े बड़े स्थानों में भी मैं गया हूं परन्तु सारपदार्थ मुझको कोई दृष्ट नहीं आया। स्वर्ग में नन्दनवन आदि काष्ठरूपही दीखे; पृथ्वी में आकर देखे तो पञ्चभूतही दृष्ट आये और शरीर में रक्त, मांस, हाड़, मूत्र आदिक देखे; इससे कि; जो ऐसे शरीर में अहं प्रत्यय करते हैं मैं उनको धिक्कार देता हूं। शरीर की आयुर्बल ऐसी है जैसे दोनों हाथों में जल लीजिये तो बह जाता है अथवा जैसे जल में तरङ्ग बुद्बुदे उपजकर नष्ट होते हैं वा बिजली का चमत्कार होकर नष्ट होजाता है। जो ऐसे शरीर को पाकर सुख की तृष्णा करते हैं वे महामूर्ख हैं बालक अवस्था तरङ्ग की नाईं नष्ट होजाती है; यौवन अवस्था बिजली के चमत्कारवत् छिप जाती है और वृद्ध अवस्था में केश श्वेत हो जाते हैं और दांत घिसकर गिर पड़ते हैं। जैसे नीचे स्थान में जल स्थित होजाता है तैसेही सब रोग वृद्ध अवस्था में आ स्थित होते हैं और तृष्णा दिन दिन बढ़ती जाती है। हे मुनीश्वर! उस समय सब पदार्थ जर्जरीभूत होजाते हैं और तृष्णा जवान होती है—जैसे वसन्तऋतु की मञ्जरी बढ़ती जाती है—और जो सुख भोग प्राप्त होकर बिछुर जाते हैं उनका दुःख होता है। हे मुनीश्वर! इस प्रकार इनको असत्य जानकर मैं स्वरूप में स्थित हुआ हूं। यदि पाँचों इन्द्रियों के इष्ट बड़ी उत्तम मूर्ति धारके आ स्थित हों तो भी हमको खैंच नहीं सक्ते। जैसे मूर्ति की लिखी कमलिनी भँवर को नहीं खैंच सक्ती; तैसेही हम सरीखों को विषय नहीं चला सक्ते। हे मुनीश्वर! तुम्हारा शरीर मैंने अवज्ञा करके डाल दियाहै—विचार से नहीं फेंका। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जो त्रिकालज्ञ हैं वे भी इस चर्मदृष्टि से नहीं जान सक्ते; जब विचार से देखते हैं तभी जानते हैं; इस कारण विचार विना मैंने तुम्हारा

शरीर फेंक दिया था। अब तुम क्षमा करो। ज्ञानी विचार से ही भूत, भविष्यत् और वर्तमान को जानता है; इन नेत्रों से तो वही जाना जाताहै कि; जो अग्रभाग में होता है विशेष नहीं जाना जाता, इस कारण मुझसे तुम्हारा शरीर गिरा है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे आकाशकुटीसिद्धसमाधि-
योगवर्णनन्नाम द्विशताधिकचतुर्थस्सर्गः ॥ २०४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे साधो ! मुझसे भी तेरा गिरना विचार विना हुआ है कि, विचार विना मैं उठ गया था। यह कुटी मेरे अन्तवाहक संकल्प में थी सो मैं अपने स्थान को चला इस कारण यह कुटी गिरपड़ी और तुम भी गिर पड़े। जो बीत गई सो भली हुई उसकी क्या चिन्तना कीजिये ? ज्ञानवान् बीती की चिन्तना नहीं करते जो होनी थी सो भली हुई। हे साधो ! अब जहां तुम्हें जाना है वहां जावो और हम भी जाते हैं। हे रामजी ! इस प्रकार चर्चा करके हम दोनों आकाशमार्ग को उड़े—जैसे पक्षी उड़ते हैं—और परस्पर नमस्कार करके हम दोनों भिन्न २ होगये। वह अपने स्थान को गया और मैं अपने स्थान को चला और बहुतेरे स्थान देखता गया परन्तु मुझको कोई न जानता था। हे रामजी ! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त जो मैंने तुमसे कहा है उसे तुम विचारो। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! आपने जो सिद्धके साथ समागम किया था तो आकाशमार्ग में कैसे शरीर से किया था और पाञ्चभौतिक शरीर तो पृथ्वी पर पड़ा था और पृथ्वी में अणुरूप होगया था फिर आप किस शरीर से बिचरे ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अन्तवाहक शरीर से मैं बिचरता फिरा था और उससे ही मैं सिद्ध और देवताओं के स्थानों और इन्द्र, वरुण और कुबेर के स्थानों में फिराहूं परन्तु मुझे कोई न देखता था और मैं सबको देखता था। संकल्प पुरुष से मेरा व्यवहार हुआ था और किससे कहूं ? रामजीने पूछा, हे मुनी-श्वर ! अन्तवाहक शरीर तो इन्द्रियों का विषय नहीं है फिर सिद्ध से आपने चर्चा कैसे की और उसने तुमको कैसे देखा ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी !

इस प्रकार जो तुम कहते हो तो सुनो। सिद्ध को मैं इस निमित्त दृष्ट आया कि, मेरा सत्य संकल्प था। मुझे यह फुरना हुआ कि, सिद्ध मुझको देखे और मुझसे चर्चा करे इससे उसने मुझको देखा और उसका संकल्प भी मेरे में आया तब जाना। जो दोनों सिद्ध हों और उनका संकल्प भिन्न २ हो तो एक दूसरे के संकल्प को नहीं जानते परन्तु किसीका विशेष संकल्प हो तो वह दूसरे के संकल्प को जानता है। इससे यद्यपि उसका संकल्प मेरे देखने को न था पर मेरा जो दृढ़ था इससे मैं उसके संकल्प को खैंचकर अपनी ओर ले आया। जो बली होता है उसी की जय होती—इससे उसने मुझको देखा। हे रामजी! जो अन्तवाहक में स्थित होता है उसको तीनों काल का ज्ञान होता है परन्तु व्यवहार में लगे तो उसे भूल जाता है और जो वर्तमान पदार्थ होता है उसीका ज्ञान होता है। इसी कारण उसने मेरा शरीर डाल दिया था क्योंकि; वह समाधि के व्यवहार में लगा था और मेरे संकल्पसे वह कुटी भी तब गिरी थी कि, जब मैं अपने स्थानके व्यवहार को ऐसी चिन्तना करके चला था। जो मैं चिन्तना में न होता, अन्तवाहक शरीर में होता और उस कुटी का भविष्यत् विचार उस संकल्प को रहने देता तो वह सिद्ध न गिरता पर मैं तो और ही व्यवहार में लगा था इससे अन्तवाहक विस्मरण होगया जिससे वह कुटी गिर पड़ी और सिद्ध भी गिरपड़ा। हे रामजी! इस प्रकार सिद्ध गिरा और उससे चर्चा हुई तब मैं वहां से चला और अन्तवाहक शरीरसे आकाशमार्ग में फिरने लगा। सिद्धों के समूह और देवता, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, ऋषि, मुनि, वरुण, कुबेर, इन्द्र, यम आदि सबके स्थान देखे परन्तु मुझको कोई न देखे। मैं बड़े बड़े शब्द करूं कि, किसी प्रकार कोई शब्द सुने और मुझको देखे परन्तु मेरा शब्द कोई न सुने और न कोई देखे। जैसे स्वप्नमें कोई शब्द करे तो उसका शब्द जाग्रत्वाला कोई नहीं सुनता और जैसे असंकल्पवाला दूसरे की सृष्टि व्यवहारका शब्द नहीं जानता था, तैसेही मुझको कोई न जानता था। हे रामजी! इस प्रकार मैं प्रथम आकाश पिशाच होकर बिचरा और फिर दैत्यों के स्थानों में बिचरा और मैं सबको देखूं पर मुझको कोई

न देखे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पिशाच का शरीर, जाति और क्रिया कैसी होती है और उनके रहने का कौन स्थान है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पिशाच की कथासे कुछ प्रयोजन न था तथापि तुमने प्रसंग पाकर पूछा है इससे मैं कहता हूं। पिशाच का आकार नहीं होता और जो जो रूप वे धारते हैं सो सुनो। कई तो आकाश की नाईं शून्य होते हैं और परछाहीं की नाईं भय देते हैं; कई मेघ और कई काकरूप धारकर स्थित होते हैं। ऐसे रूपधारके वे बिचरते हैं और सबको देखते और जानते हैं पर उनको कोई नहीं जानता। शीत-उष्ण से वे भी दुःख पाते हैं और इच्छा, दोष, लोभ, मान, मोह, क्रोध आदिक विकार उनमें भी रहते हैं। शीतल जल और भले भोजन की वे भी इच्छा करते हैं और नगरों वृक्षों और दुर्गन्ध स्थानोंमें भी रहते हैं। कहीं सियार होकर दिखाई देते हैं और कहीं श्वान हो दृष्ट आते हैं। मन में भी प्रवेश करते हैं और मन्त्र, पाठ, दान आदिक से जो वश होते हैं सो भी अपनी २ वासना के अनुसार होते हैं। इनमें भी उत्तम, मध्यम और नीच होते हैं; जो उत्तम हैं वे देवताओं के स्थानों; मध्यम मनुष्यों के स्थानों और नीच नरकों के स्थानों में रहते हैं और इनकी उत्पत्ति अचैत्त्य चिन्मात्र जो दृश्य से रहित शुद्ध चैतन्य है उससे हुई है। हे रामजी! सबका अपना आप वही चैतन्यसत्ता कल्पवृक्ष की नाईं है, उसमें जैसी २ वासना होतीहै तैसाही तैसा पदार्थ हो भासता है। हे रामजी! न कहीं पिशाच है और न जगत् है; ब्रह्मसत्ताही ज्योंकी त्यों अपने आपमें स्थित है। शुद्ध आत्मत्वमात्र में किञ्चन 'अहं' होकर फुरा है उसीको जीव कहते हैं। उस अहं की दृढ़ता से मन फुरा है सो मन ब्रह्मारूप होकर स्थित हुआ है। उस ब्रह्मा ने मनोराज से आगे जगत् उत्पन्न किया है और ब्रह्माही जगत्रूप होकर स्थित हुआ है सो ब्रह्ममें ब्रह्म स्थितहै हे रामजी! ब्रह्माका शरीर अन्तवाहक और केवल आकाशरूपहै और उसके दृढ़संकल्प से आधिभौतिक जगत् दृढ़ हुआ है-उसी मन से और मन हुआहै। हे रामजी! जैसे ब्रह्माका शरीर अन्तवाहक है तैसेही सबका शरीर अन्तवाहक है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक

भासता है और सब मनरूप है परन्तु दीर्घकाल का स्वप्न है वह जाग्रत् होकर स्थित हुआ है इससे दृढ़ भासता है। जिनको संकल्प ब्रह्मशरीर में अहंकार है उनको जगत् आधिभौतिक भासताहै और जो प्रबोधरूप हैं उनको सब जगत् संकल्परूप है—वास्तव में कहो तो कुछ उपजा नहीं, न तुम हो, न मैं हूं, न ब्रह्मा है और न जगत् है—सर्वही ब्रह्मरूप है। जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं; अग्नि और उष्णता में कुछ भेद नहीं और वायु और स्पन्द में कुछ भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। ब्रह्मा और जगत् दोनों अज हैं; न ब्रह्माही उपजा है और न जगत्ही उपजा है—दोनों ब्रह्मरूप हैं। जो ब्रह्मसे भिन्न भासता है वह भ्रान्तिमात्र है। हे रामजी! पञ्चभूत और छठा मन इनका नाम जगत् है। जबतक ये भूत उसमें दृष्ट आते हैं तबतक भ्रान्ति है और जब इनसे रहित केवल चैतन्य भासे तब उसीका नाम परमपद है। हे रामजी! जब आत्मपद में जागोगे तब पञ्चभूत भी आत्मा से भिन्न भासेंगे। सबका अधिष्ठान चैतन्यसत्ता है जबतक आत्मा का प्रमाद है तबतक संसारभ्रम न मिटेगा। सब जगत् निराकर संकल्पमात्र है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से आकाश में स्थूलभूत दृष्ट आते हैं। ज्ञानकाल और अज्ञानकाल में जगत् उपजा नहीं परन्तु अज्ञानी को दृढ़ भासता है। जैसे मनोराज से किसी ने नगर रचा हो तो वह उसी के हृदय में है और कहीं नहीं भासता; तैसेही जबतक जीव अज्ञान निद्रा में सोया है तबतक जगत् भासता है पर जब जागेगा तब आकाशरूप देखेगा। हे रामजी! अपना संकल्प आपको नहीं बांधता। जबतक स्वरूप का प्रमाद नहीं होता तबतक ब्रह्मा का संकल्प ब्रह्मा को नहीं बन्धन करता। स्वरूप भी अहं प्रत्यय से तो संकल्परूप है और दूसरी कुछ वस्तु सत्य नहीं—आत्माही है वास्तव में न जगत् का आदि है, न मध्य है और न अंत है, न जगत् का होना है और न अनहोना है—आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! जो सर्वात्माही है तो राग-द्वेष किसका हो? सब अपना आपही है और अपना आप जो आत्मतत्त्व है उसका किञ्चन संवेदन फुरने से जगत्रूप

होकर स्थित हुआ है। जैसे किसी पुरुष ने मनोराज से एक स्थान रचा और उसमें दृढ़भावना हुई तो आधिभौतिक भासने लग जाता है; तैसेही यह जगत भी ब्रह्माका संकल्प है और चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, रुद्र, वरुण और कुबेर आदिक सब संकल्परूप हैं पर संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक भासते हैं। हे रामजी! आत्मारूपी एक ताल है जिसमें चैतन्यरूपी जल है; फुरनरूपी कीचड़ है और उसमें चौदह प्रकार के भूतजातरूप दर्दुर रहते हैं सो सब संकल्पमात्र हैं। हे रामजी! आकाश में एक आकाश-क्षेत्र है जिसमें शिला उत्पन्न होती हैं। स्वर्गलोक और देवता बड़ी शिला हैं; एक उनमें उज्ज्वलशिला है सो ज्ञानवान् है; मध्यम शिला मनुष्यलोक है; नीचशिला तिर्यक् आदिक योनि है सो सबही निर्बीज हैं अर्थात् कारण से रहित हैं और अद्वैत आत्मा सदा अपने आपमें स्थितहै—कुछ उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु भ्रान्ति से भिन्न २ भासता है। जैसे फेन बुद्बुदे और तरङ्ग सब जलरूप हैं; तैसेही यह जगत् सब आत्मरूप है और जैसे स्वप्ने और संकल्प की सृष्टि कारण विना होती है, तैसेही यह जगत् कारण विना संकल्प से उत्पन्न हुआ है। जैसे ब्रह्मादिक जगत् उदय हैं तैसेही पिशाच भी उदय हुये हैं। हे रामजी! जैसा किञ्चन आत्मा में होता है तैसाही होकर भासता है; वास्तवमें पृथ्वी आदिक तत्त्व कहीं नहीं और न कहीं ब्रह्मा उपजा है, न कोई जगत् उपजा है सब भ्रममात्र हैं। जितने वपु भासते हैं वे सब निर्वपु हैं; चैतन्यता से फुरे हैं और सब जीवों का आदि अन्तवाहक शरीर है। जैसे ब्रह्मा का अन्तवाहक शरीर था, तैसे ही सर्वजीवों का अन्तवाहक शरीर होता है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक हो भासता है। सब जीवों का अपना अपना भिन्न २ संकल्प है उसी के अनुसार अपनी २ सृष्टि होती है। जो तुम कहो कि, भिन्न २ हैं तो जीव इकट्ठे क्यों दृष्ट आते हैं; चाहिये कि, अपनी २ सृष्टि में हों? तो उसका उत्तर यह है कि, जैसे एक नगरवासी और नगर में जावे और एक नगरवासी और में आवे और दोनों जाय इकट्ठे बैठें, तैसेही सब जीव इकट्ठे भासते हैं पर उनके इकट्ठे हुये भी इसकी सृष्टि

को वह नहीं देखता और उसकी सृष्टि को यह नहीं देखता। जैसे स्वप्ने में भिन्न २ भूतजात होते हैं और अनुभव में इकट्ठे दृष्ट आते हैं और एक अनुभव में भिन्न २ होते हैं; एक दूसरे की सृष्टि को नहीं जानते। जीव अन्तवाहक भूलगया है इससे आधिभौतिक दृढ़ होरहा है जैसा अनुभव में अभ्यास होताहै तैसाही भासता है। जहां पिशाच होता है वहां अन्धकार भी होताहै। जो मध्याह्न का सूर्य उदय हो और पिशाच आगे आवे तो अन्धकार होजाता है ऐसा तमरूप वह होता है। जैसे उलूकादिक को प्रकाश में अन्धकार होताहै तैसेही अनेक सूर्य का प्रकाश हो तौभी पिशाच को अन्धकार ही रहता है। हे रामजी! जैसा उनमें निश्चय होता है तैसाही भान होता है क्योंकि; उनका ओज तमरूप है। जैसा किसी को निश्चय होता है तैसाही भासता है। हमको तो सदा आत्माका निश्चय है इससे हमें सदा आत्मतत्त्वका भान होताहै। जैसे पिशाच पञ्चभौतिक शरीरसे रहित चेष्टा करते हैं तैसेही मैं पञ्चभौतिक शरीर से रहित आकाश में चेष्टा करता रहा हूं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानवर्णनन्नाम द्विशताधिकपञ्चमस्सर्गः॥ २०५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हूं इसलिये पञ्चभौतिक शरीर से रहित अन्तवाहक शरीर से मैं बिचरतारहा परन्तु मुझको कोई न देखे। चन्द्रमा, सूर्य और इन्द्र जो सहस्र नेत्रवाले हैं और सिद्ध, गन्धर्व, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी इस चर्मदृष्टि से मुझे न देखसकें और मैं सबको देखता फिरूं। इन्द्र के निकट जाकर मैंने उसके अङ्ग हिलाये परन्तु उसने मुझको न जाना। जैसे संकल्पनर किसीको हिलावे और वह देखे पर आधिभौतिक शरीर न हिले तैसेही उनके शरीर मेरे हिलाने से नहीं हिले। इससे मैं अतिमोह को प्राप्त हुआ कि, इतने काल मैं रहा और मुझको कोई देख नहीं सक्ा। तब मैंने यह इच्छा की कि, मुझको सब देखें। मैं तो सत्य संकल्परूप था इससे सब मुझे देखने लगे। जैसे कोई इन्द्रजाल को देखे तैसेही वे मुझको देखने लगे। जिसने

पृथ्वी पर देखा उसने पृथ्वी से उपजा वशिष्ठ जाना और मनुष्यलोक में कई जलसे उपजा जानें कि, बारम्बार वशिष्ठ है। जिन ऋषीश्वरों और मुनीश्वरों ने जल से उपजा देखा उन्होंने जाना कि, यह वारिवशिष्ठ है; कई ने वायु से उपजा जाना और कई जानें कि, सप्तऋषियों के मध्य जो तेज वशिष्ठ है वही है। इस प्रकार जगत् में मुझको सब देखनेलगे और मैं सबके साथ व्यवहार करनेलगा। जब बहुतकाल इसी प्रकार व्यतीत हुआ तब सबने भावना की दृढ़ता से पञ्चभौतिक शरीर मुझको देखा और प्रथम वृत्तान्त सबको विस्मरण हो आधिभौतिकता दृढ़ होगई जैसे अज्ञान से जीव स्वप्न के नर को आधिभौतिक देखता है, तैसेही मेरे साथ उन्होंने आकार देखा पर मुझको सदा अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय से भिन्न द्वैत कुछ न भासता था क्योंकि; मैं ब्रह्मरूप था। मेरा नाम वशिष्ठ ऐसा है जैसे रस्सी में सर्प होता है, मैं तो चिदाकाशरूप हूं पर औरों को वशिष्ठ प्रतीति उपजी है। हे रामजी! तुम सरीखों को मेरा आकार दृष्ट आता है पर मुझको आधिभौतिक और अन्तवाहक दोनों शरीर चिदाकाश का किञ्चन भासते हैं। मैं सदा निराकार अद्वैतरूप हूं। चेष्टा तुम्हारी और हमारी समान है परन्तु मुझको सदा आत्मपद का निश्चय है इस कारण मैं जीवनमुक्त होकर बिचरता हूं अज्ञानी को क्रिया में द्वैत भासता है और हमको क्रिया में भी अद्वैत भासता है; ब्रह्मा भी ब्रह्मरूप भासता है और उसका संकल्प जो जगत् है वह भी ब्रह्मरूप है। जैसे समुद्र में तरङ्ग जलरूप है—भिन्न कुछ नहीं, तैसेही ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है—भिन्न कुछ नहीं। इससे मैं चिदाकाशरूप हूं—द्वैत कुछ नहीं फुरता। जब अहं फुरती है तब जगत् द्वैतरूप होकर भासता है जैसे अहं के फुरने से स्वप्न की सृष्टि होती है, तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी होती है सो संकल्पमात्र है। ब्रह्मा और ब्रह्मा का जगत् संकल्प की दृढ़तासे आधिभौतिक की नाईं हो भासता है पर वास्तव में न ब्रह्मा उपजा है और न जगत् उपजा है चिदानन्द ब्रह्म अपने आपमें स्थित है और सदा एकरस है। हे रामजी! सृष्टि की आदि से प्रलयपर्यन्त जो कुछ क्षोभहैं उनमें आत्मा सदा एकरस

है और उसमें कदाचित् क्षोभ नहीं क्योंकि, वास्तव कुछ उपजा नहीं; जो कुछ भासताहै सो अज्ञानसे सिद्धहै और ज्ञानसे जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है। जैसे स्वप्नसृष्टि में किसीको कहीं निधि भासे तो वह उसकी प्राप्ति के निमित्त यत्न करताहै पर जब जागताहै तो उसको स्वप्न जान फिर उसके पानेका यत्न नहीं करता, तैसेही जब आत्मबोध होताहै तब फिर इस जगत् में जगत् बुद्धि नहीं रहती। अज्ञान ही जगत् भ्रम का कारण है और उस अज्ञान के निवृत्त का उपाय यही है कि, इस महारामायण का विचार करना—उसी से संसार भ्रम निवृत्त होगा। यह संसार अविद्या से वासना-मात्र है, जो इसको सत्य जान कर इसकी ओर धावते हैं वे परमार्थ से शून्य हैं, मूढ़ हैं, कीट हैं और वानर की नाईं चञ्चल हैं। जिनको भोगों में सदा इच्छा रहती है वे नीच पशु हैं और उनको संसार से निवृत्त होना कठिन है क्योंकि उनके हृदय में सदा तृष्णा रहती है और वैराग्य को नहीं प्राप्त होते। हे रामजी! भोग तो ज्ञानवान् भी भोगते हैं परन्तु वे भोगबुद्धि से नहीं भोगते पर प्रवाहपतित जो कुछ प्रारब्धवेग से प्राप्त होता है उसको भोगते हैं और जानते हैं कि; गुणों में गुण बर्तते हैं और इन्द्रियों सहित भोग को भ्रान्तिमात्र जानते हैं। जो अज्ञानी हैं वे आसक्त होकर भोगते और तृष्णा करते हैं और भोग की तृष्णा से उनका हृदय जलता है—इसीका नाम बन्धन है। भोग दुःखरूप हैं; जो इनको सेवते हैं वे हृदय में सदा तृष्णा से जलते हैं और उनका द्वैतरूप जगत्भ्रम कदाचित् नहीं मिटता और ज्ञानवान् सदा आत्मा से तृप्त रहते हैं इससे शान्तरूप हैं। जैसे हिमालय पर्वतमें सब पदार्थ शीतल होजाते हैं तैसेही आत्मज्ञान से हृदय शीतल हो जाता है; आत्मानन्दकी प्राप्ति होती है और कोई दुःख नहीं रहता। जिनका चित्त सदा स्त्री, पुत्र और धनमें आसक्त है और इच्छा करते हैं वे महामूर्ख और नीच हैं; उनको धिक्कार है। जिसको आत्मपद की इच्छा हो उसको सदा सन्तों का संग करना चाहिये और शास्त्रों को श्रवण करके विचार करना चाहिये। इस अभ्यास से आत्मपद की प्राप्ति होती है। हे रामचन्द्र! इस

शास्त्र का विचार परमपद को प्राप्त करनेवाला है। जो पुरुष इस शास्त्रको त्यागकर और की ओर लगते हैं वे मूर्ख हैं। वाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब सायंकाल का समय हुआ और सर्व श्रोता परस्पर नमस्कार करके गये और सूर्यकी किरणों के उदय होने से फिर आन स्थित हुये।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानवर्णनसमाप्तिर्नाम द्विशताधिकषष्ठस्सर्गः ॥ २०६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमको यह अन्तरोपाख्यान सुनाया है इसके विचार से जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा। ऐसे जब तुम विचारकर देखोगे तब अनन्त ब्रह्माण्ड आत्मा में भासते दृष्टि आवेंगे। हे रामजी! आत्मा में जगत् कुछ वास्तव नहीं हुआ इससे मिटता भी नहीं; चित्त के फुरने से भासता है; जब चित्त का फुरना अधिष्ठान में लीन होजावेगा तब अद्वैत-तत्त्व आत्माही भासेगा। हे रामजी! अद्वैततत्त्व में जगत्भ्रम से भासता है। ज्ञानवान् की दृष्टि में सदा अद्वैतही भासता है। जगत्, मैं और तुम सब चिदाकाश हैं। आत्मा से भिन्न कुछ नहीं—आत्मसत्ताही जगत् होकर भासती है। जैसे अपना अनुभव स्वप्न में स्वप्न की सृष्टि हो भासताहै सो अनुभवरूपही है, तैसेही यह जगत् भी चिदाकाशरूप है। यदि नाना प्रकार के विकार भी दृष्टिआते हैं तो भी आत्मसत्ता अनुस्यूत और अखण्डरूप है—आत्मसत्ता और जगत् में भेद कुछ नहीं। जैसे सुवर्ण और भूषणों में भेद कुछ नहीं होता, तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं ब्रह्मही चेतनता से जगत्रूप हो भासता है। जैसे स्वप्न में अपनेही अनुभव से बहुत कुछ वृथाहो भासताहै सो अनुभव से इतर कुछ नहीं हुये और जैसे समुद्र और तरङ्ग में कुछ भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म; जगत् और अनुभव तीनों में कुछ भेद नहीं—असम्यक्दृष्टिसे भेद भासता, सम्यक्-दृष्टिसे कोई भेद नहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता में प्रथम आभास फुरा है सो ब्रह्मारूप होकर स्थित हुआ है वह ब्रह्मा चिदाकाशरूप है और वही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। उसी ब्रह्मसत्ता ने अपने भाव की नाईं

त्यागा और ब्रह्मारूप होकर स्थित हुई है। फिर उसने जगत् रचा इसलिये वह जगत् भी आकाशरूप है वास्तव में न जगत् उपजा है न ब्रह्मा उपजा है और न स्वप्न हुआ है और परमार्थसत्ता सदा अपने आप में स्थित है जो शुद्ध, अनन्त, अविनाशी, अचेत चिन्मात्र है और जगत् भी वही स्वरूप है हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हूं; न मेरे साथ कोई आकार है, न मैं कदाचित् उपजा हूं और न मैं कदाचित् मृतक होता हूं। मैं नित्य, शुद्ध, अजर-अमर सदा अपने स्वभाव में स्थित हूं और अनेक विकारों में भी एकरस हूं। जैसे स्वप्न में बड़े क्षोभ होते हैं तौ भी जाग्रत् वपु को स्पर्श नहीं करते क्योंकि; उसमें कुछ हुये नहीं आभासमात्र हैं; तैसेही जगत् की उत्पत्ति-प्रलयादिक क्षोभ में आत्मसत्ता को स्पर्श नहीं होता अर्थात् वह क्षोभ से रहित सदा अनुभवरूप है। जिस पुरुष ने ऐसे अनुभव को नहीं पहिंचाना जिससे सब कुछ सिद्ध होता है और उसे छिपाया है वह महामूर्ख है और आत्महत्यारा है–वह महाआपदा के समुद्र में डूबेगा–और जिसको अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय हुई है उसको मानसी दुःख कदाचित् नहीं स्पर्श करता। जैसे पर्वत को चूहा नहीं चूर्ण कर सक्ता, तैसेही उसको दुःख नहीं स्पर्श करता। जिसको आत्मा में अहं प्रत्यय नहीं उसको शान्ति नहीं प्राप्त होती। जैसे वायुगोले में उड़ा हुआ तृण स्थिर नहीं होता, तैसेही देहअभिमानी को कदाचित् शान्ति नहीं प्राप्त होती। जो अपने शुद्ध स्वरूप को त्याग कर देह से आपको मिला हुआ जानता है सो क्या करता है? वह मानों चिन्तामणि को त्याग कर राख को अङ्गीकार करता है और शुद्ध चिन्मात्र अपने स्वरूप को त्याग कर देह में आत्मअभिमान करता है। हे रामजी! जब जीव अनात्म में आत्मअभिमान करता है तब आपको विकारवान् और जन्मता मरता मानता है और जब देह अभिमान को त्याग कर आत्मा को आत्मा मानता है तब न जन्मता है, न मरता है, न शस्त्र से कटता है, न अग्नि से दग्ध होता है, न जल से डूबता है और न पवन से सूखता है–निराकार अविनाशी और चिदाकाशरूप है। हे रामजी! यदि चेतन

की मृत्यु होती हो तो पिता के मरे से पुत्र भी मर जावे और एक के मरे से सब जगत् मर जावे क्योंकि; आत्मसत्ता चेतन एक अनुस्यूत है पर एक के मरे तो सब नहीं मरते; इससे चेतन आत्मा को मृत्यु कदाचित् नहीं। शरीर के काटे से आत्मा नहीं कटता शरीर के दग्ध हुये आत्मा नहीं दग्ध होता और सम्पूर्ण विश्व भस्म होजावे तौभी आत्मा भस्म नहीं होता। आत्मा नित्य, शुद्ध, अनन्त, अच्युतरूप है—कदाचित् स्वरूप से अन्यथा भावको नहीं प्राप्त हुआ। हे रामजी! मैं अहंब्रह्मरूप हूं अर्थात् सबमें अहंरूप निराकार अखण्ड मैं हूं; न मुझको जन्महै और न मृत्यु है; सुख की इच्छा नहीं; न कुछ हर्ष है, न शोक है, न जीनेकी इच्छा है और न मरनेकी इच्छाहै। जैसे रस्सी में सर्प और सुवर्णमें भूषण कल्पित हैं तैसेही आत्मामें वशिष्ठ नामरूपहै और देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित अनन्त आत्मा; नित्य, शुद्ध और बोधरूप हूं। सबका स्वरूप आत्मतत्त्व है परन्तु वास्तवस्वरूप के प्रमाद से और अवस्तु को प्राप्त हुये की नाईं भासता है। जो पुरुष स्वरूप में स्थित नहीं हुये वे संसार-मार्ग की ओर दृढ़ हुये हैं, उनका जीना वृथाहै और वे कहनेमात्र चैतन्य हैं, नहीं तो पाषाण की शिलावत् हैं। जैसे लुहार की धौंकनी से पवन निकलता है, तैसेही उनका जीना वृथा है। वे घड़ीयन्त्र की नाईं वासना में भटकते हैं, आत्मानन्द को नहीं प्राप्त होते और सदा तपते रहते हैं। जिनको आत्मपद में स्थिति हुई है उनको दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करता। यदि प्रलयकालका पवन चले और पुष्करमेघ की वर्षा हो; वा वड़-वाग्नि लगे और द्वादशसूर्य तपें पर वे ऐसे क्षोभों में भी चलायमान नहीं होते क्योंकि; वे सर्वब्रह्मस्वरूप जानतेहैं। जैसे तृण से पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसेही वे बड़े दुःखों से भी चलायमान नहीं होते। दुःख तब होता है जब आत्मा से भिन्न कुछ भासता है पर उनको तो आत्मा से भिन्न कुछ भासता ही नहीं। हे रामजी! यह सब जगत् आत्मअनुभवरूप है क्योंकि; परमात्मा का स्वरूप है। जैसे स्वप्न में अनुभव से भिन्न कुछ वस्तु नहीं होती तैसेही सब जगत् अनुभवरूप है और जो भिन्न भासता है सो

भ्रान्तिमात्रहै। यह जगत् जो नाना प्रकार का भासताहै सो आत्मा में अव्यक्तरूप है और भ्रम से प्रकट भासता है। जैसे आकाश में नीलता भ्रम से सिद्ध है, तैसेही आत्मा में जगत् भ्रम से सिद्ध है। वास्तव में ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं; आत्मसत्ता ही जगत्रूप होकर भासती है और उसमें जैसा २ निश्चय होता है तैसाही अधिष्ठानरूप भासता है। जिनको कारण से सृष्टि का अधिष्ठान दृढ़ होरहाहै उनको वैसाही भासता है; जिनको परिमाण से सृष्टि उत्पन्न होनेका निश्चय है उनको वैसेही सत्य भासती है और माध्यमिक सत् असत् के मध्य वस्तु को मानते हैं। एक चार्वाकी म्लेच्छ हैं जो चारों तत्त्वों से सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं; बौध कहते हैं कि, जो कुछ वस्तु है वह बोध है इसके अभाव हुये से शून्यही रहती है एक, अनेक, ब्राह्मण, हाथी, गौ, श्वान, घोड़ा, सूर्यादिक में भिन्न २ प्रतीत होरही है पर जो ज्ञानवान् ब्राह्मण हैं वे सबमें एक ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत देखते हैं। हे रामजी! वस्तु तो एकहै पर उसमें जैसा निश्चय जिसको हुआहै तैसाही भासताहै। जैसे चिन्तामणि और कल्पतरु में जैसी भावना करते हैं तैसीही सिद्ध होती है; तैसेही आत्मसत्ता में जैसी भावना करते हैं, तैसाही रूप हो भासताहै। हे रामजी! बुद्धिमानों से निर्णय कियाहै कि, सारभूत आत्मसत्ताही है; जब उसमें दृढ़ अभ्यास करोगे तब आत्मसत्ता ही भासेगी और फिर उस निश्चय से चलायमान न होगे। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जगत्, पाताल, भूतल और स्वर्ग में बुद्धिमान् कौन हैं जिनको पूर्वापर के विचार से पारावार का साक्षात्कार हुआ है और आत्मस्वरूप का वे कैसे निश्चय करते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जितना जगत् है सब इन्द्रियों के विषयों की तृष्णा से जलता है और इष्ट की प्राप्ति में हर्ष और अनिष्ट की प्राप्ति में शोक करता है। ऐसा कोई बिरलाही है जो जगत् में सूर्यकी नाईं प्रकाशताहै; नहीं तो सब तृणवत् भोगरूपी वायु में भटकते हैं और जो सबमें श्रेष्ठ कहाता है वह भी विषयरूपी अग्निमें जलता है। जैसे कृमि अशुभस्थानोंमें रहते हैं और उनसे आपको प्रसन्न मानते हैं, तैसेही देवता भी सदा भोगरूपी

अपवित्र स्थानों में आपको प्रसन्न मानते हैं सो मेरे मत में दुर्गन्ध के कृमि हैं। गन्धर्व तो मूढ़ हैं उनको तो कुछ सुधि नहीं अर्थात् आत्मपद की गन्धभी नहीं—वे तो मेरे मतमें मृग हैं। जैसे मृगको रागमें आनन्द होताहै, तैसेही गन्धर्व राग से उन्मत्त रहते हैं और आत्मपद से विमुख हैं। विद्याधर भी मूर्ख हैं क्योंकि; वे वेद के अर्थरूपी चतुराई को अग्नि में जलाते हैं और वेद के सारभूत अमृत को नहीं जानते इसलिये आत्मपद से विमुख हैं। सिद्ध मेरे मत में पक्षी हैं जो पक्षी की नाईं उड़ते फिरते हैं और अभिमानरूपी पवन के चलने से अनात्मरूपी गढ़े में आन पड़ते हैं अपने वास्तवस्वरूप में स्थित नहीं होते यक्ष धन के अभिमान से मूर्ख की प्रीति कर जलते हैं और आत्मपद में स्थिति नहीं पाते। योगिनी भी मद से सदा उन्मत्त रहती हैं इससे आत्मपद में स्थिति नहीं पाती और दैत्यों को भी सदा देवताओं के मारने की इच्छा रहती है इससे सदा शोक में रहते हैं और आत्मपद से विमुख हैं। तुमतो आगे सेभी जानतेहो और आगे भी मारा था और अब भी मारोगे। मनुष्य भी आत्मपद से गिरे हुये हैं क्योंकि—सदा यही इच्छा रहती है कि गृह बनाइये और वे खाने और धन इकट्ठे करने के निमित्त जगत् करते हैं और इन्द्रियों के विषयों में डूबे हुये हैं। पाताल में नाग रहते हैं जिनका जल में भी निवास है वे सुन्दर नागिनियोंमें आसक्त रहते हैं इसलिये वे भी आत्मानन्द से गिरे हुये हैं। निदान जितने भूतप्राणी हैं वे सब विषयों के सुख में लगे हुये हैं और आत्मपद से विमुख हैं। सब जातों में बिरले जीवन्मुक्त भी हैं और ज्ञानवान्भी हैं—उन्हें सुनो। देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सदा आत्मानन्द में मग्न हैं और चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, इन्द्र, धर्मराज, वरुण, कुबेर, बृहस्पति, शुक्र, नारद, कच आदि जीवन्मुक्त पुरुष हैं। सप्तऋषि और दक्षप्रजापति, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन जीवन्मुक्त हैं और २ भी बहुत मुक्त हैं। सिद्धों में कपिलमुनि; यक्षों में विद्याधर और योगिनी और दैत्यों में हिरण्यकशिपु; प्रह्लाद, बलि, विभीषण; इन्द्रजीत, स्वरमेय, चित्रासुर और नमुचिआदिक जीवन्मुक्त हैं।

मनुष्यों में राजर्षि और ब्रह्मर्षि और नागों में शेषनाग; वासुकि नाग आदिक जीवन्मुक्त हैं। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोक में कोई कोई बिरले जीवन्मुक्त हैं। हे रामजी! जात जात में जो जीवन्मुक्त हुये हैं सो तुमसे संक्षेप से कहे हैं और जहां जहां देखता हूं वहां वहां अज्ञानी ही बहुत हैं ज्ञानवान् कोई बिरला दृष्टि आता है। जैसे सब जगह और वृक्ष बहुत हैं परन्तु कल्पवृक्ष कोई बिरला होता है, तैसेही संसार में अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं; ज्ञानी कोई बिरला है। हे रामजी! शूरमा और कोई नहीं, जिनकी आत्मपद में स्थिति हुई है वही शूरमा हैं और संसार समुद्र तरना उनहीं को सुगम है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मुक्तसंज्ञावर्णनन्नाम
द्विशताधिकसप्तमस्सर्गः ॥ २०७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो विवेकी पुरुष विरक्तचित्त हैं और जिनकी स्वरूप में स्थिति हुई है उनके राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, अभिमान, दम्भ आदिक विकार स्वाभाविक नष्ट होजाते हैं। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार स्वाभाविक निवृत्त होजाता है और जैसे बाण को देख कर कौवा भाग जाता है तैसेही विवेकरूपी बाण को देखकर विकार-रूपी कौवे भाग जाते हैं। विवेकी पुरुषों के हृदय में इतने गुण स्वाभाविक आन स्थित होते हैं कि; वे किसी पर क्रोध नहीं करते और जो करते भी दृष्टि आते हैं—सो किसी निमित्तमात्र जानना, उनके हृदय में सदा शीतलता और दया रहती है और जो कोई उनके निकट आता है वह भी शीतल होजाता है क्योंकि; वे निरावरण स्थित हैं। जैसे चन्द्रमा के निकट गये से शीतल होता है तैसेही ज्ञानवान् के निकट आये से हृदय शीतल होता है और कोई पुरुष उनसे उद्वेगवान् नहीं होता। जो कोई निकट आता है उसको वे विश्राम के निमित्त स्थान देते हैं और उसका अर्थ भी पूर्ण करते हैं। जैसे कमल के निकट भँवरा जाता है तो वे उसको विश्राम का स्थान देते हैं और सुगन्ध से उसका अर्थ पूर्ण करते हैं; तैसेही सन्तजन अर्थ पूर्ण करते हैं। व यथाशास्त्र चेष्टा करते हैं और

हेयोपादेय की विधि को भी जानते हैं। जो कुछ उन्हें स्वाभाविक प्राप्त हो उसको वे शास्त्र की विधि सहित अङ्गीकार भी करते हैं और हृदय में सर्व की भावना से रहित हैं। उनमें दान स्नान आदिक शुभ क्रिया स्वाभाविक होती हैं और उदारता, वैराग्य, धैर्य, शम, दम आदिक गुण स्वाभाविक होते हैं। वे इसलोक में भी सुख देनेवाले हैं और परलोक में भी सुख देनेवाले हैं। हे रामजी! जिन पुरुषों में ऐसे गुण पाइये वेही सन्त हैं। जैसे जहाज़ के आश्रय समुद्र से पार होते हैं, तैसेही संसारसमुद्र के पार करनेवाले सन्तजन हैं। जिनको सन्तजनों का आश्रय हुआ है वेही तरे हैं। सन्तजन संसारसमुद्र के पार के पर्वत हैं। जैसे समुद्र में बहुत जल होता है तो बड़े तरङ्ग उछलतेहैं और उसमें बड़े मच्छर रहतेहैं पर जब उसका प्रवाह उछलताहै तब पर्वत उस प्रवाहको रोकता है और उछलने नहीं देता तैसेही चित्तरूपी समुद्र में इच्छारूपी तरङ्ग है और राग-द्वेषरूपी मच्छर रहते हैं; जब इच्छारूपी तरङ्गका प्रवाह उछलता है तब सन्तरूपी पर्वत उसको रोकते हैं। सन्तजन अपने चित्तको भी रोकते हैं और जो उनके निकट कोई जाताहै तो उसकी भी रक्षा करते हैं। यदि शरीर नष्ट होने लगे अथवा नगर नष्ट होने लगे वा निकट अग्नि लगे तौभी ज्ञानवानों का हृदय स्वरूप से चलायमान नहीं होता; वे सदा अपने स्वरूप में स्थिर रहते हैं। जैसे भूकम्प से सुमेरु चलायमान नहीं होता; तैसेही वे भी चलायमान नहीं होते। यह जो मैंने तुमसे शुभगुण स्नान, दान आदि कहे हैं सो जीवों को सुख देनेवाले हैं और दुःख को निवृत्त करनेवाले हैं। इनसे सुख की प्राप्ति होतीहै और दुःख नष्ट होजाता है। जब स्नान दान की ओर मनुष्य आता है तब सन्तों की संगति में भी उसका चित्त लगता है और जब सन्तोंकी संगति में चित्त लगा तब क्रम से परमपद की प्राप्ति होती है इससे मनुष्य को यही कर्तव्यहै कि, शास्त्र के अनुसार शुभगुणोंकी चेष्टा करे और सन्तों के निश्चय का अभ्यास करे। हे रामजी! जिसको सन्तोंकी संगति प्राप्त होती है वह भी सन्त होजाता है। सन्तों का संग वृथा नहीं जाता। जैसे अग्नि से मिला पदार्थ अग्नि-

रूप होजाता है; तैसेही सन्तों के संगसे असन्त भी सन्त होजाता है और मूर्खों की संगति से साधु भी मूर्ख होजाता है। जैसे उज्ज्वल वस्त्र मल के संग से मलीन होजाता है तैसेही मूढ़ के संग करनेसे साधु भी मूढ़ होजाता है क्योंकि; पाप के वश से उपद्रव भी होते हैं इसीसे पाप के वश साधु को भी दुर्जनों की संगति से दुर्जनता आनि उदय होती है। इससे, हे रामजी! दुर्जन की संगति सर्वथा त्यागनी चाहिये और सन्तों की संगति कर्तव्य है। जो परमहंस सन्त मिले और जो साधु हो और जिसमें एक गुण भी शुभ हो उसका भी अङ्गीकार कीजिये परन्तु साधु के दोष न विचारिये-उसका शुभगुण ही अङ्गीकार कीजिये। जैसे भँवरा केतकी के कण्टकों की ओर नहीं देखता, उसकी सुगन्ध को ग्रहण करता है। इससे हे रामजी! संसारमार्ग को त्यागकर सन्तोंकी संगति करो तब संसारभ्रम निवृत्त होजावेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तव्यवहारोनाम द्विशताधिकाष्टमस्सर्गः॥ २०८॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! हमारे दोष तो सत्शास्त्र, सतसंग और उनकी युक्ति से और समानदुःख तीर्थ, स्नान, दान, जप और पूजासे निवृत्त होते हैं पर और जीव जो कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी आदिकहैं उनके दुःख कैसे निवृत्त होंगे? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो वास्तवसत्ताहै उसीका नाम ब्रह्महै और वह अखण्ड अद्वैत है, उसमें कुछ द्वैत का विभाग नहीं है परन्तु उसमें जो चित्त किञ्चन आभास फुरा है सो फुरनाही नानात्व हुये की नाईं स्थित हुआ है वास्तव में कुछ हुआ नहीं। जैसे स्वप्नमें स्वप्नेकी सृष्टि भासती है परन्तु वास्तव कुछ हुई नहीं निद्रादोषसे भासती है, तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी कुछ वास्तव नहीं हुई अज्ञान से जीवों को भासती है। वास्तव में सब ब्रह्मरूप है पर अपने स्वरूप के प्रमाद से जीवत्वभाव को अङ्गीकार किया है। उस अङ्गीकार करने और अनात्म देहादिकमें आत्मअभिमान करके जैसा निश्चय करता है तैसीही गति पाताहै। देश, काल, क्रिया और द्रव्य का जैसा संकल्प अनुभवसत्ता में दृढ़ होता है तैसाही भासता

है। उसमें चार अवस्था कल्पित होती हैं और जैसी जैसी भावना होती है उसके अनुसार अवस्था का अनुभव होता है। वे चार अवस्था ये हैं—एक घनसुषुप्ति; दूसरी क्षीणसुषुप्ति; तीसरी स्वप्नअवस्था और चौथी जाग्रत्। पर्वत और पाषाण घनसुषुप्ति में हैं। जैसे सुषुप्ति अवस्था में कुछ नहीं फुरता, जड़ीभूत होजाता है; तैसेही इसको कुछ फुरना नहीं फुरता—घनसुषुप्ति में स्थित है। वृक्ष क्षीणसुषुप्ति में स्थित है। जैसे क्षीणसुषुप्ति में कुछ फुरना फुरता है, तैसेही वृक्षों में भी फुरना होता है इससे वे क्षीण-सुषुप्ति में हैं। तिर्यक् जो पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि जीव हैं वे स्वप्नअवस्था में स्थित हैं। जैसे स्वप्न में पदार्थ भासता है परन्तु दृढ़समष्टि नहीं भासता तैसेही इनको थोड़ा सूक्ष्मज्ञान है इससे वे स्वप्न अवस्था में स्थित हैं। मनुष्य और देवता जाग्रत्रूप जगत् का अनुभव करते हैं। हे रामजी! यह चारों अवस्था आत्मा में स्थित हैं और आत्मासत्ताही में स्थित हैं। सबका अहंप्रत्ययरूप आत्मा है—बड़ेका क्या और छोटे का क्या। उसमें जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही हो भासता है हे रामजी! हमको एक दिन व्यतीत होता है और चींटीको उसीमें युगका अनुभव होता है; हमको जो सूक्ष्म अणु होता है उनको वही पर्वतकेसमान भासताहै। हे रामजी! स्वरूप सबका एक आत्मसत्ता है परन्तु भावना से भिन्न २ भासता है। एक कीट है जो बहुत सूक्ष्म है, जब वह चलता है तब जानता है कि, मेरा गरुड़कासा वेग है और उसको वही सत् होरहा है बालखिल्य का अंगुष्ठ-प्रमाण शरीरहै उनको वही बड़ा भासताहै और विराट्को वही अपना बड़ा शरीर भासताहै। निदान जैसी जिसको भावना होतीहै तैसाही उसको भासता है। मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी सबका अपना २ भिन्न २ संकल्प है; जैसा संकल्प किसी को दृढ़ होरहाहै उसको तैसाही स्वरूप भासताहै। जैसे मनुष्य राग, द्वेष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक आदि विकारोंमें आसक्त होता है, तैसेही कीट, पतङ्ग, पक्षी आदि को भी होता है परन्तु इतना भेद है कि; जैसे हमको यह जगत् स्पष्टरूप भासता है, तैसे उनको नहीं भासता। संसारी सब है परन्तु वासना के

अनुसार न्यून अधिक भासता है और दुःख का अनुभव स्थावर-जङ्गम को भी होता है। जब किसी स्थान में अग्नि लगती है और उसमें वृक्ष और पाषाण जलते हैं तब उनको भी दुःख होता है परन्तु सूक्ष्म स्थूल का भेद है। जैसे और जीव के शस्त्रप्रहार किये से शरीर नष्ट होने का दुःख होता है, तैसेही वृक्षादिक को भी होता है परन्तु घनसुषुप्ति; क्षीणसुषुप्ति और स्वप्न जाग्रत् का भेद है। पर्वत पाषाण को सूक्ष्म दुःख होता है; वृक्ष को पाषाण से विशेष होता है परन्तु स्पष्ट मान और अपमान का दुःख नहीं होता, स्वप्न की नाईं होता है। मनुष्य और देवताओं को स्पष्ट राग-द्वेष जाग्रत की नाईं होता है क्योंकि; वे जाग्रत् अवस्था में स्थित हैं और वृक्ष, पाषाण आदिक को स्पष्ट दुःख का विकल्प नहीं उठता क्योंकि, वे जड़ता स्वभाव में स्थित हैं पर दुःख तो सबको होता है। और आश्चर्य देखो कि, कीट महादुःखी रहते हैं; जब वे मृतक होते हैं तब सुखी होते हैं। अज्ञान से जो इस शरीर में आस्था हुई है उसको भी मरना बुरा भासता है तो और जीव को भला कैसे न लगे। हे रामजी! अपने स्वरूप के प्रमाद से भय, क्रोध, लोभ, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष, हर्ष, शोक, इच्छादिक विकारों की अग्नि से जीव जलते हैं। आत्मानन्द को नहीं प्राप्त होते और घड़ीयन्त्र की नाईं वासना के अनुसार भटकते हैं। जब वासना दृढ़ पाप की होती है तब जीव पाषाण और वृक्षयोनि पाते हैं और जब क्षीण वासना तामसी होती है तब तिर्यक् पक्षी, सर्प और कीटयोनि पाते हैं। हे रामजी! राजसी वासना से जीव मनुष्य होते हैं और सात्त्विकी वासना से देवता होते हैं पर जब मनुष्य शरीर धारकर निर्वासनिक होते हैं तब मुक्ति पाते हैं। जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब जीवों के दुःख नष्ट होजाते हैं; दुःख के नाश करने का और कोई उपाय नहीं। यह जगत् के दुःख तब तक भासते हैं जब तक आत्मज्ञान नहीं उपजा; जब आत्मज्ञान उपजता है तब जगत्भ्रम सब मिटजाता है। मुझसे पूछो तो वास्तव में न कोई देवता है; न मनुष्य है; न पशु है; न पक्षी है; न पाषाण है; न वृक्ष है और न कीट है;

सब चिदाकाशरूप हैं दूसरा कुछ नहीं बना भ्रान्ति से नानास्वरूप हो भासता है और सदा सर्वदाकाल सर्वप्रकार आत्मसत्ता आप में स्थित है। हे रामजी ! न कुछ जगत् का होना है; न अनहोना है, न आत्मता है, न परमात्मता है, न मौन है; न अमौन है; न शून्य है; न अशून्य है केवल अचेत चिन्मात्र अपने आपमें स्थित है और उसमें जन्म और जन्मान्तर भ्रम से भासते हैं। जैसे स्वप्न से स्वप्नान्तर भ्रम से भासता है और जैसे स्वप्न में एक अपना आप होताहै और निद्रादोष से द्वैत भासता है; तैसेही अब भी आत्मा अद्वैतरूप है पर अविचार से नानात्व भासताहै। दुःख भी अज्ञानसे भासता है विचार किये से दुःख कुछ नहीं। जो मृतक होकर उत्पन्न होता है तो शान्ति हुई दुःख कोई नहीं और जो मृतक होकर शान्त होजाताहै उपजता नहीं तौभी दुःख कोई नहीं मुक्त हुआ; जो मरता नहीं तौभी ज्यों का त्यों हुआ दुःख कोई नहीं हुआ और जो सर्व चिदाकाशहै तौभी दुःख कोई न हुआ। हे रामजी ! अज्ञानी के निश्चय में दुःख है पर विचार कियेसे दुःख कोई नहीं। यह जगत् आत्मरूपी आदर्श में प्रतिबिम्बितहै परन्तु यह जगत्रूपी कैसा प्रतिबिम्ब है जो अकारणरूपहै इसका कारणरूप बिम्ब कोई नहीं कारण से रहित है। जैसे नदी में नीलता का प्रतिबिम्ब पड़ता है सो अकारणरूप है, तैसेही यह जगत् अकारणरूप है। अज्ञानी को प्रमाददोष से उसमें सत्यता है और ज्ञानी को द्वैत नहीं भासता–अज्ञानी को द्वैत भासता है। हे रामजी ! हमको तो सदा चिदाकाश हो भासताहै–हम जागे हुये हैं इससे द्वैत कुछ नहीं भासता। जैसे सूर्य को अन्धकार नहीं भासता तैसेही हमको द्वैत नहीं भासता। जो ज्ञानी है उसको ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता उसे सर्वब्रह्म ही भासता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थरूपवर्णनन्नाम द्विशताधिकनवमस्सर्गः॥ २०९॥

श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन्! जो कुछ तुमने कहाहै सो तो मैंने जाना परन्तु नास्तिकवादी का कल्याण किस प्रकार होता है क्योंकि; वे कहते हैं

कि, जबतक जीव है तबतक सुख करे और जब मरजावेगा तब भस्मीभूत होवेगा; न कहीं आना है, न कुछ जानाहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मसत्ता आकाश की नाईं अखण्डित सर्वत्र पूर्ण है; जबतक उसका भान नहीं होता तबतक मनकी तप्तता नहीं नष्ट होती। जब आत्मसत्ता का भान होताहै तब शान्ति प्राप्त होती है और आपको अमर जानता है। जिस पुरुष ने अखण्ड निश्चय अङ्गीकार किया है उसको दुःख स्पर्श नहीं करता वह ब्रह्मदर्शी होताहै और जिसको ब्रह्मसत्ता का निश्चय नहीं हुआ उसको मनके ताप नहीं छोड़ते और स्वरूप के प्रमाद से आपको मरता जानता है पर महाप्रलयरूप आत्मा में सर्वशब्द का अभाव है। जैसे महाप्रलयमें सर्वशब्दों का अभाव होता है; तैसेही आत्मामें सर्वशब्दों का अभावहै। जिसको आत्मा में निश्चय हुआ है उसको सर्वशब्दों का अभाव होजाता है और वह महाज्ञानवान् है उसको आत्मसत्ताही भासती है। जो वास्तव है उसको हमारे उपदेश की आवश्यकता नहीं—वह ज्ञानी है। हे रामजी! आत्मसत्ता में द्वैत जगत् कुछ नहीं बना; परमार्थ-सत्ता सदा अपने आप में स्थित है और उसमें जो सृष्टि भासती है सो स्वप्नवत् अकारण है इसलिये ज्ञानवान् पुरुष सर्वशब्द अर्थों को नहीं जानता है। ऐसा पुरुष हमारे उपदेश के योग्य नहीं क्योंकि, सर्वशास्त्रों का सिद्धान्त आत्मपद है जो उसको जानता है उसको फिर कर्तव्य कुछ नहीं रहता। जिसको ऐसी दशा नहीं प्राप्त हुई वह उपदेश का अधिकारी है। यह जगत् आत्मा का किञ्चन है अज्ञानी को सत्य भासता है और ज्ञानी के निश्चय में कुछ नहीं। जैसे किसी ने संकल्प से एक वृक्ष रचा हो तो उसके पत्र, टास, फूल, फल उसको भासते हैं पर और के मनमें शून्य होते हैं, तैसेही अज्ञानी के निश्चय में जगत् होता है और ज्ञानी के निश्चय में विलास और आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता सर्वत्र और सर्वव्यापी है; उसमें जैसा निश्चय फुरना होता है तो अहंप्रत्यय भावना की दृढ़ता से तैसेही भासता है। जिस पदार्थ का निरन्तर दृढ़ अभ्यास होता है तो शरीर के त्यागे से भी वही अभ्यासरूप

धारण करलेता है पर आत्मसत्ता ज्ञानमात्रहै और केवल अद्वैतसंवित् सब का अपना आपहै। जिसको स्वरूपका ज्ञान होता है सो शास्त्रों के दण्ड से रहित होताहै। वेद और शास्त्र जिस पदार्थ का भला, बुरा, सच वा झूठ वर्णन करते हैं उसमें जिस पुरुष को निश्चय होता है उसको वासना के अनुसार वे फल देते हैं और जिसके निश्चय में आत्मा से भिन्न सर्वशब्द का अभाव होता है उसको आत्म अनात्म विभाग कलना भी नहीं रहती देह रहे अथवा न रहे। हे रामजी! जिसकी संवित् जगत्के शब्द; अर्थमें बँधी हुई है उसको पदार्थों में राग द्वेष उपजता है। जैसे सुषुप्ति में भी आत्मसत्ताहै पर अभावकी नाईं स्थित है; तैसेही नास्तिकवादी भी अपने जड़स्वरूपको देखते हैं क्योंकि; उनको जड़ शून्यताकाही अभ्यासहै और उसीसे उनकी सम्पत्ति दृश्य सुखसे बंधीहुई है इससे उनका जगत्भ्रम नहीं मिटता। उस मलीन वासना से जो संवित् मिलीहै इससे उनको जड़ पत्थररूप प्राप्त होते हैं। उस जड़ता को भोगकर वे वासना के अनुसार फिर सुख भोगेंगे। उस भावना से कुछ जगत्भान शून्य होजाता है पर कुछकाल पीछे चैतन्य होकर फिर उन्हीं कर्मोंको भोगते हैं। जैसे सूर्यके आगे बादल आवे और फिर निवृत्त हो, तैसेही जगत् होता है। फुरनरूप जो जीव है उसमें जैसा निश्चय होता है तैसाही भासताहै। जिसको एक आत्मा में निश्चय होता है सो जन्म मरण आदिक विकार से रहित होताहै और जिसको नानास्वरूप जगत् में निश्चय होता है सो जन्म मरण से नहीं छूटता। हे रामजी! जिसकी बुद्धि में पदार्थों का रङ्ग चढ़ता है वह राग-द्वेषरूपी नरक से मुक्त नहीं होता और जिसको एक आत्मा का अभ्यास होताहै उसको अभ्यास के बल से सब जगत् आत्मत्वसेही भासता है और वह राग द्वेषसे मुक्त होताहै। जैसे स्वप्न में किसी को अपना जाग्रत्स्वरूप स्मरण आता है तब वह स्वप्न के सर्वजगत् को अपना आप देखता है, तैसेही जिसको आत्मज्ञान होता है उसको सर्वजगत् अपना आपही भासताहै। सर्वदा काल आत्मसत्ता अनुभवरूप जाग्रत् ज्योति है; जिसको ऐसी आत्मसत्ता में नास्तिभावना होती है वह ऐसी अवस्था को प्राप्त

होता है कि, गढ़े में कीट होता है; पाषाण, वृक्ष, पर्वत आदिक स्थावर-योनि को प्राप्त होता है और उन में चिरकाल पर्यन्त रहता है। जब तक उसकी बुद्धि को द्वैत का संयोग होता है तब तक वह जगत्भ्रम देखता है—और भ्रम नहीं मिटता पर जब उसकी संवित् को द्वैत का संयोग मिट जावे तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है। हे रामजी! सम्यक्ज्ञान से जगत के भ्रम का अभाव होजावेगा। अभाव का निश्चय फुरे तब फिर जगत् नहीं भासता और जब संसार के पदार्थों से संवित् बेधी हुई है तब जैसा निश्चय होगा तैसाही प्राप्त होगा और उसी निश्चय के अनुसार गति पावेगा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! नास्तिकवादी का वृत्तान्त तो तुमने कहा सो मैंने जाना पर जिस पुरुष के हृदय में जगत् की सत्यता स्थित है और जो आत्मबोध के मार्ग से शून्य है और शुद्धस्वरूप को नहीं जानता उसके मोक्ष की क्या युक्ति है और उसकी क्या अवस्था होती है—मेरे बोध के दृढ़ के निमित्त कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसका उत्तर मैंने प्रथमही तुमसे कहा है पर अब फिर तुमने जो पूछा है इससे फिर कहता हूं। प्रथम तो पुरुष का अर्थ सुनो। हे रामजी! यह जगत् नेत्रों में स्थित नहीं है, न श्रवण में है और न नासिका आदि इन्द्रियों में स्थित है—चैतन्य संवित् में स्थित है। चैतन्य संवित् ही पुरुषरूप है; जिस पुरुष को उसमें निश्चय है सो ज्ञानवान् है और उसको द्वैतकलना नहीं फुरती और जो प्रत्यक्षदृष्टि भी आती है परन्तु उसके निश्चय में नहीं होती है। जैसे आकाश में धूलि भी दृष्टि आती है परन्तु स्पर्श नहीं करती; तैसेही ज्ञानवान् को द्वैतकलना स्पर्श नहीं करती। जिस चेतन संवित् से फुरने का सम्बन्ध है उसको जगत् का आकार भासता है और जिस पुरुष की संवित् में देश, काल, क्रिया और द्रव्य का सम्बन्ध है वह कलङ्कमें दृढ़ होरहा है और जो अपने वास्तव अद्वैत स्वरूप के अभ्यास से मार्जन नहीं करता वह वास्तव चैतन्य आकाशरूप भी है तो भी कलङ्कसे वासना के अनुसार जगत् उसको आपसे भिन्न भासता है—द्वैतभ्रम नहीं मिटता। हे रामजी! जो पुरुष ऐसा भी है कि, देह के इष्ट-अनिष्ट की

प्राप्ति में सम रहता है पर उसे आत्मसत्ता ज्यों की त्यों नहीं भासती तो वह अज्ञानी है; आत्मसत्ता जाने विना उसका संसार निवृत्त नहीं होता। जब आत्मसत्ता का साक्षात्कार होगा तभी सब भ्रम निवृत्त होगा। हे रामजी! यह पुरुष न जीव है, न फुरन है और न शरीर के नाश होने से नाश होता है; यह केवल चिन्मात्रस्वरूप है पर वासना से भ्रमको देखताहै और शून्यवादी वृक्ष, पर्वत, जड़ादिक योनि पाते हैं। जो सदा अनुभव है उसको त्यागकर जो और कुछ इष्ट जानतेहैं वे मूर्ख हैं और उनको आत्मसुख नहीं प्राप्त होता। आत्माके प्रमाद से अहं, त्वं, भीतर, बाहर आदिक शब्द भासते हैं और जब आत्मज्ञान हुआ तब सर्वशब्द आत्मरूप होजाता है। जिन पुरुषों ने आत्म अनात्म को निर्णय करके नहीं देखा वे पुरुषोंमें नीच हैं और जिस पुरुषने निर्णय करके आत्मा में अहंप्रतीति की है और अनात्म का त्याग किया है वह महापुरुष है और उसको मेरा नमस्कार है। जिसने अनात्मा में अहंप्रतीति की है और आत्मा को त्याग किया है वह बालक है। जैसे आकाश में बादल के चक्र हाथी और घोड़े के आकार हो भासते हैं और समुद्र में तरङ्ग भासते हैं; तैसेही आत्मा में जगत् भासता है सो द्वैत कुछ नहीं। जैसे स्वप्नके नगर अपने २ अनुभव में स्थित होते हैं और बाहर द्वैतकी नाईं भासते हैं सो आभासमात्र हैं; तैसेही आत्मामें जगत् भासता है सो आभासमात्र है—वास्तवमें कुछ नहीं। जिसको आत्मसत्ताका अनुभव हुआ है उसको जगत्के शब्द—अर्थ और राग-द्वेष किसीकी कल्पना नहीं रहती और पुण्यपाप का फल उसको स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! ज्ञान संवित का नाश कदाचित् नहीं होता इससे विश्व भी अनुभवरूपहै। इस जगत्का निमित्तकारण और समवायकारण कोई नहीं क्योंकि; अद्वैत है और जो तुम कहो कि; प्रत्यक्ष घटादिक समवाय और निमित्तकारण उपजते दीखते हैं; तो जैसे स्वप्ने में कारण कार्य अनहोते भासते हैं, तैसेही यह भी जानो। प्रथम तो स्वप्ने में ये बने हुये दृष्टि आते हैं और पीछे कारण से होते दृष्टि आते हैं, तैसेही यह भी जानो—केवल भ्रममात्र है। जैसे स्वप्नदृष्टि का जागे हुये से अभाव

होता है, तैसेही ज्ञान से इसका अभाव होजाता है। यह दीर्घकाल का स्वप्ना है इससे जाग्रत् कहाता है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपने आप होती है—और निद्रादोष से भिन्न भासती है, तैसेही यह जगत् अपना आप है परन्तु अज्ञान से भिन्न भासता है। जाग्रत् में ज्ञान से सब अपना आप भासता है इससे राग द्वेष का अभाव होजाता है। जैसे चन्द्रमा और चन्द्रमा की चांदनी में भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं—आत्माही जगत्‌रूप हो भासता है। हे रामजी! तुम अपने अनुभव में स्थित होकर देखो कि, सर्व ब्रह्मरूप है जगत् कुछ नहीं भासता—सर्वात्मकरूप है और साध्य है। जैसे शरत्काल का आकाश शुद्ध होता है तैसेही आत्मसत्ता फुरनेरूपी बादल से परमशुद्ध और शान्तरूप है और उसमें स्थित हुये से मान और मोह का अभाव होजाता है; किसी पदार्थ तृष्णा में नहीं रहती और प्रारब्धवेग से जो कुछ आन प्राप्त होता है उसको भोगता है। वह आत्मदृष्टि से दुःख से रहित हुआ प्रत्यक्ष आचार करता है; उसको शास्त्र का दण्ड नहीं रहता और परमशान्तरूप विराजता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे नास्तिकवादीनिराकरणं नाम द्विशताधिकदशमस्सर्गः ॥ २१० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हूं और द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासतीहै सो भी चिदाकाशरूपहै। आत्मसत्ताही त्रिपुटीरूप हो भासती है—दूसरी वस्तु कुछ नहीं। नास्तिकवादी जो कहते हैं कि, परलोक कोई नहीं अर्थात् जो कहते हैं कि, आत्मसत्ता कोई नहीं सो मूर्ख हैं। हे रामजी! जो अनुभव आत्मसत्ता न हो तो नास्तिक किससे सिद्ध हो? जिससे नास्तिकवाद भी सिद्ध होताहै सोही आत्मसत्ताहै। जो इष्ट-अनिष्ट पदार्थ में राग द्वेष करते हैं और आत्मा को नाश कहते हैं सो महामूर्ख हैं जैसे जाग्रत् के प्रमाद से स्वप्ने में इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष होता है और इष्ट को ग्रहण करता और अनिष्ट को त्यागता है और जागे से सर्व अपनाही स्वरूप भासता है और ग्रहण-त्याग और राग द्वेष किसी पदार्थ में नहीं रहता, तैसेही आत्मा के अज्ञान से किसी पदार्थ में राग होता है और

किसी में द्वेष होता है पर जब आत्मज्ञान होता है तब सब अपनाही स्वरूप भासता है और राग द्वेष किसी में नहीं रहता। चित्त के फुरने से जगत् उत्पन्न होता है और चित्त के शान्त हुये लय होजाता है, इससे जगत् मन में स्थित है; और वह मन आत्मा के अज्ञान से हुआ है; जब आत्मज्ञान होताहै तब मनुष्य, देवता, हाथी, नाग आदिक स्थावर-जङ्गम जगत् सब आत्मरूप भासता है और राग द्वेष किसी में नहीं रहता। नास्तिकवादी जो नास्ति कहते हैं सोही नास्ति का साक्षी सिद्ध होता है। जिससे नास्ति भी सिद्ध होता है सो अस्ति आत्मपद है; उस अस्ति अनुभव के इतने नाम शास्त्रकार कहते हैं—सत्, आत्मा, विष्णु, शिव, चिदाकाश, ब्रह्म, अहंब्रह्म और अस्मि। एक कहते हैं कि, शून्य ही रहता है और एक कहते हैं कि, अस्ति पद रहता है। हे रामजी! ये सर्वसंज्ञा आत्मसत्ता ही की है, सो आत्मसत्ता अपनाही आप स्वरूप है। वही आत्मा मैं हूं और ये अङ्ग जो मेरे साथ दृष्टि आते हैं इनको दृष्टि पदार्थों से लेपन कीजिये अथवा चूर्ण करिये तो मुझको हर्ष और शोक कुछ नहीं। इनके बढ़ने से मैं बढ़ता नहीं और इनके नष्ट हुये मैं नष्ट नहीं होता। हे रामजी! तीन शब्द होते हैं कि, 'मैं जन्मा हूं'; मैं जीता हूं और मैं मरूंगा। जो प्रथम न हो और उपजे उसको जन्म कहते हैं; मध्य में जीता कहते हैं और फिर नाश हो उसको मृतक कहते हैं पर आत्मा में तीनों विकार नहीं हैं। आत्मा उपजा भी नहीं क्योंकि, आदिही सिद्ध है; मृतक भी नहीं होता क्योंकि, अविनाशी है। चैतन्य आकाश सबका अधिष्ठान है और काल का भी अधिष्ठान है फिर उसका कैसे नाश हो? वह तो उदय अस्त से रहित है। जिसमें देश, काल, वस्तु और जगत् का किञ्चन होता है उससे आत्मा का नाश कैसे हो—इससे आत्मा अविनाशी है। हे रामजी! जिस वस्तु को देश, काल का परिच्छेद होता है उसका नाश भी होता है सो देश, काल और वस्तु तीनों आत्मा में कल्पित हैं। जैसे सूर्य की किरणों में जल कल्पित होता है, तैसेही आत्मा में तीनों कल्पित हैं। कल्पित वस्तु के साथ सत्य का अभाव कैसे हो? इससे आत्मा अविनाशी और अद्वैत है

उसमें दूसरी वस्तु कुछ नहीं । जैसे शून्यस्थान में वैताल कल्पित होता है, तैसेही आत्मा में जगत् कल्पित है उस अभावरूप जगत् में प्रमाद से एक को अभाव जानता है और एक को सद्भाव जानता है । जब इस निश्चय को त्यागकर भीतर मोक्ष हो तब शान्ति प्राप्त होगी । विचार करके देखिये तो इस संसार में दुःख कहीं नहीं । जो मरके फिर जन्म लेता है तौभी दुःख कहीं न हुआ क्योंकि; शरीर जब वृद्धिभाव को प्राप्त होकर क्षीण हुआ तब उसको त्याग कर नवतनु को ग्रहण किया तो उत्साह हुआ; जो मृतक होकर फिर नहीं उपजता तौ भी आनन्द हुआ क्योंकि; जब तक जीता था तब तक ताप था एक का भाव जानता था, एक को ग्रहण करता था और एक को त्याग करता था तिनसे तपता था । उनसे यदि छूटा तो बड़ा आनन्द हुआ और जो सर्वचिदाकाशरूप है तौ भी अपना आप आनन्दरूप है दुःख कुछ न हुआ । हे रामजी ! एक प्रमाद से ही दुःख होता है और किसी प्रकार दुःख नहीं होता । यह सब जगत् आत्मरूप है और जो आत्मरूप है तो दुःख कैसे हो ? जो तुम कहो कि, मैं अपने कर्म से डरता हूं जो परलोक में मुझको भय का कारण होगा तो ऐसे जानो कि, बुरे कर्म का दुःख यहां भी होता है और परलोक में भी होगा—इससे बुरे कर्म मत करो । मैं तुमसे ऐसा उपाय कहता हूं जिससे तुम्हारे सर्व दुःख नष्ट हो जावें । वह उपाय यह है कि, तुम जानो 'मैं नहीं'; अथवा ऐसे जानो कि, 'सर्व मैंही हूं' और सर्व वासना त्यागकर आपको अविनाशी जानो और आत्मसत्ता में स्थित होरहो । यह जगत् भी सब तुम्हारा स्वरूप है; जब कि, ऐसे आत्मा को जानोगे तब शरीर के त्याग किये से भी कोई दुःख न रहेगा और शरीर के होते भी दुःख कहीं नहीं । यदि पूर्व शरीर को त्याग कर नूतन जन्म लिया तौ भी आनन्द हुआ और परमशान्ति हुई और जो चिदाकाशरूप है तौ भी परमआनन्द हुआ । हे रामजी ! सर्व प्रकार आनन्द है परन्तु भ्रान्ति से दुःख भासता है । जब स्वरूप का साक्षात्कार होगा तब सर्वजगत् ब्रह्मानन्दस्वरूप भासेगा । हे रामजी ! जिसको आत्मसत्ता का प्रकाश है सो

पुरुष सदा आनन्द में मग्न रहता है और प्रकृत आचार को भी करता है परन्तु इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में स्वरूप से चलायमान कदाचित् नहीं होता। जैसे सुमेरु पर्वत वायु से चलायमान नहीं होता, तैसेही ज्ञानी इष्ट-अनिष्ट में चलायमान नहीं होता और परम गम्भीरता में रहता है। इससे जो कुछ आत्मा से भिन्न उत्थान होता है उसको त्याग कर अपने स्वभाव में स्थित होरहो कि, चिन्मात्रसत्ता शरत्काल के आकाशवत् निर्मल है। जब ऐसे स्वच्छ केवल और चिन्मात्र का अनुभव होगा तब जगत् द्वैतरूप होकर न भासेगा और व्यवहार में भी द्वैत न फुरेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमउपदेशवर्णनन्नाम
द्विशताधिकैकादशस्सर्गः ॥ २११ ॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जिन पुरुषों को आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार हुआ है वह कैसे होजाते हैं और उनका कैसा आचार होता है सो मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे उनकी चेष्टा और जैसे उनका निश्चय है सो सुनो। सबके साथ उनका मित्रभाव होता है; बल्कि; पाषाण से भी मित्रभाव होता है; बन्धुओं को वे ऐसे जानते हैं जैसे वन के वृक्ष और पत्र होते हैं और स्त्री पुत्रादिक के साथ वे ऐसे होते हैं जैसे वन के मृग के पुत्र से होते हैं। जैसे उनमें स्नेह नहीं होता, तैसेही पुत्रादिक में भी वे स्नेह नहीं करते और जैसे माता की पुत्र में दया होती है, तैसेही वे सब पर दया करते हैं और निश्चय में उदासीन रहते हैं। जैसे आकाश किसीसे स्पर्श नहीं करता, तैसेही वे किसीसे स्पर्श नहीं करते और जो कुछ आपदा है वह उनको परमसुख है। जितने कुछ जगत् में रस हैं सो उनको विरस होजाते हैं; न किसी में वे राग करते हैं और न किसीमें द्वेष करते हैं। वे तृष्णा करते दृष्टिभी आते हैं परन्तु हृदय से जड़ और पत्थर की नाईं होते हैं, व्यवहार करते भी हैं परन्तु निश्चय में परमशून्य और मौन होते हैं अर्थात् सदा समाधि में स्थित होते हैं। वे सब क्रिया करते दृष्टि आते हैं सो इस प्रकार करते हैं कि, सबको स्तुति करनेयोग्य हैं। वे यत्न से रहित सब क्रिया का आरम्भ

करते भी हैं परन्तु और निश्चय से सदा आपको अकर्ता मानते हैं। जो कुछ उन्हें प्रारब्धवेग से प्राप्त होता है; उसको भोगते हैं और देश काल क्रिया सबको अङ्गीकार करते हैं। जो परस्त्रीआदिक अनिष्ट आ प्राप्त हों उनको त्यागभी करतेहैं परन्तु निश्चयमें सदा अकर्ता ज्यों के त्यों रहते हैं और सुख दुःख की प्राप्ति में समबुद्धि रहते हैं। प्रकृति आचार में यथा शास्त्र बिचरते हैं परन्तु स्वरूपसे कदाचित् चलायमान नहीं होते। जैसे फूल के मारने से सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसेही दुःख सुखकी-प्राप्ति में वे चलायमान नहीं होते। वे सदा स्वभावमें स्थित रहते हैं और सुख दुःख को भोगते भी दृष्टि आते हैं, पर उनके निश्चय में कुछ नहीं होता। जैसे स्फटिक मणि के सन्मुख कोई रङ्ग रखिये तो उसमें भासता है परन्तु उसका रूप कुछ और नहीं होजाता वह ज्यों की त्यों ही रहती है; तैसेही सुख दुःख के भोग ज्ञानवान् में भी दृष्टि आते हैं परन्तु वह स्वरूप से कदाचित् चलायमान नहीं होता—चेष्टा वे अज्ञानी की नाईं करते हैं परन्तु निश्चय से परमसमाधी हैं। जैसे अज्ञानी को भविष्यत् का राग, द्वेष; सुख, दुःख कुछ नहीं होता; तैसेही ज्ञानी को वर्तमान का राग द्वेष नहीं होता और स्वाभाविक चेष्टा उसकी ऐसेही होती है। वह सबसे मित्र-भाव रखता है; न उससे कोई खेदवान् होताहै और न वह किसी से खेद-वान् होता है। जब उसको सुख प्राप्त होताहै तब रागवान् दृष्टि आता है और दुःख की प्राप्तिमें द्वेषवान् दृष्टि आताहै परन्तु निश्चय से उसको हर्ष शोक कुछ नहीं। जैसे नट स्वांग लाता है और जैसा स्वांग होता है तैसीही चेष्टा करता है—राजा का स्वांग हो अथवा दरिद्री का—परन्तु निश्चय उसे अपने रूप में ही होता है; तैसेही ज्ञानवान् में सुख दुःख दृष्टि आते हैं परन्तु निश्चय उसका आत्मस्वरूप में ही होता है और पुत्र, धन, बान्धव आदिक को बुद्बुदे की नाईं जानता है। जैसे जल में तरङ्ग और बुद्बुदे होते हैं और फिर लीनभी होजाते हैं परन्तु जलको कुछ राग द्वेष नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान् को राग द्वेष कुछ नहीं होता। वह सबपर दयास्वभाव रखता है और पतित प्रवाह में जो सुख दुःख आन प्राप्त होता

है उसको भोगता है । जैसे वायु दुर्गन्ध सुगन्ध को साथ लेजाती है परन्तु उसको राग द्वेष कुछ नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को राग द्वेष कुछ नहीं होता । बाहर अज्ञानी की नाईं वह व्यवहार करता है परन्तु निश्चय में जगत् को भ्रान्तिमात्र जानता है अथवा सर्वब्रह्म जानता है । वह सदा स्वभाव में स्थित होता है और अनिच्छित प्रारब्ध को भोगता है परन्तु जाग्रत् में सुषुप्ति की नाईं स्थित है; पूर्व और भविष्यत् की चिन्तना नहीं करता और वर्तमान में बिचरता है वह हृदय से शीतल रहता है और बाहर इष्ट-अनिष्ट दृष्टि आते हैं पर हृदय से अद्वैतरूप है । ज्ञानवान् कर्म करता है परन्तु कर्म में अकर्म को जानताहै और जीता ही मृतक की नाईं है । हे रामजी ! जैसे मृतक होताहै और उसको फिर जगत् की कल्पना नहीं फुरती, तैसेही जिसको आत्मपद की अहंप्रत्यय हुई है उसको द्वैत नहीं भासता और प्रत्यक्ष व्यवहार उस में दृष्टि भी आता है परन्तु निश्चय में अर्थ शान्त होगया है । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! यह ज्ञानी के लक्षण जो आपने कहे सो उनको वही जानें और कोई नहीं जानता क्योंकि; बाहरकी चेष्टा तो अज्ञानी के तुल्यही है और हृदयसे शान्तरूप हैं ? ब्रह्मचर्य से भी हृदय में धैर्य होता है और तपस्या से भी राग द्वेष कुछ नहीं फुरता । एक मिथ्या तपसी हैं कि, उसी प्रकार बन बैठते हैं; उनका निश्चय सत्य है अथवा असत्य है उनको कैसे जानिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह निश्चय सत्य हो अथवा असत्य हो यह लक्षण सन्त के ही हैं और आत्मा के साक्षात्कार का निश्चय अपने आप से जानता है और किसी से नहीं जाना जाता इस कारण उसका लक्षण ज्ञानी ही जानता है और कोई नहीं जानता। जैसे सर्प के खुद को सर्प ही जानता है और कोई नहीं जानता; तैसेही ज्ञानी का लक्षण सुसंवेद है । हे रामजी ! यह जो गुण कहे हैं सो ज्ञानवान् में स्वाभाविक ही रहते हैं और दूसरे को यत्नसिद्ध हैं । ज्ञानवान् को सर्व जगत् भ्रान्तिमात्र है अथवा अनुभव दृष्टि से अपना आपही भासता है इसी कारण से वह परमशान्त है और राग द्वेष उसके निश्चय में नहीं फुरता और

न वह अपने निश्चय को बाहर प्रकट करता है पर जो अधिकारी है वह उसको जानता है और जो अनधिकारी अज्ञानी है वह उसको नहीं जानसक्ता। जैसे वनमें चन्दनकी बड़ी सुगन्ध होती है परन्तु दूरसे नहीं भासती, तैसेही अज्ञानी उसके निश्चयसे दूरहै इस कारण वह नहीं जान सक्ता । चर्मदृष्टि से उसको देखे तो नहीं देखसक्ता और वह अधिकारी विना जनावता भी नहीं। जैसे अमूल्य चिंतामणि नीच को दीजिये तौभी उसके माहात्म्य को वह नहीं जानता, इससे उसको निरादर करता है; तैसेही आत्मरूपी चिन्तामणि और अनधिकारी अज्ञानी उसका माहात्म्य नहीं जानता इससे उसका निरादर करता है—इसी कारण ज्ञानवान् प्रकट नहीं करते। हे रामजी ! यह जो प्रकट है कि, हमको अर्थ की प्राप्ति होगी; हमारा मान होगा; हमारे चेले बनेंगे और हमारी पूजा होगी उसे ज्ञानवान् गन्धर्वनगर और इन्द्रजाल की नाईं जानते हैं, फिर वे किसकी वाञ्छा करें ? इसकारण वे अनधिकारी को अपना इष्ट नहीं प्रकट करते और जो कोई निकट बैठता है तो भी अपने निश्चयरूपी अङ्गको सकुचालेते हैं। जैसे कुज अपने अङ्गको सकुचा लेता है तैसेही वह अपने निश्चयरूपी अङ्ग को सकुचा लेता है पर जिसको अधिकारी देखता है उससे प्रकट करता है। हे रामजी ! पात्रमें रक्खा पदार्थ शोभता है अपात्र में रक्खा अनिष्ट होजाता है। जैसे गौको घास दिये से क्षीर होजाता है और सर्पको क्षीर दिये से विष हो जाता है; तैसेही अधिकारी को दिया उपदेश शुभ होता है और अनधिकारी को अनिष्ट होजाता है। हे रामजी ! अणिमा आदि ले जो सिद्धियां हैं वे जप, द्रव्य, काल अथवा देश से सबको प्राप्त होती हैं और अभ्यास के बल से अज्ञानी को भी प्राप्त होती हैं और ज्ञानीको भी होती हैं परन्तु ये ज्ञान का फल नहीं, जप आदिक का फल है। जिसकी सिद्धि के निमित्त जो पुरुष दृढ़ होकर लगता है वही सिद्ध होता है; जो इन सिद्धियों का दृढ़ अभ्यास करता है तो उनसे आकाशमार्ग में उड़ने और आने जाने लगता है पर यह पदार्थ तबतक रस देते हैं जबतक आत्ममार्गसे शून्य हैं। हे रामजी !

परम सिद्धता इनसे नहीं प्राप्त होती। परम सिद्धि आत्मपद है। जिसको आत्मपद की प्राप्ति हुई है वह इनकी अभिलाषा नहीं करता। ऐसा पदार्थ पृथ्वी में कोई नहीं और न आकाश में देवताओं के स्थानों में ही है जिसमें ज्ञानी का चित्त मोहित हो, ज्ञानवान् को सब पदार्थ मृगतृष्णा के जलवत् भासते हैं। मेरे सिद्धान्त में तो यही है कि, सदा विषयों से उपराम रहना और आत्माको परम इष्ट जानना इसीका नाम ज्ञान है। ज्ञानीको जो प्रारब्ध से प्राप्त हो उसको करता है परन्तु करने से उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता और न करने में कुछ प्रत्यवाय भी नहीं होती। न किसी अर्थ का वह आश्रय करता है; न उसके निमित्त किसी भूतका आश्रय करता है और सर्वदा अपने आप स्वभाव में स्थित होता है। ऐसे निश्चय को पाकर वह आश्चर्यवान् होता है और कहता है कि; बड़ा आश्चर्य है कि जो सदा अपना आप स्वरूप है उसको विस्मरण करके मैं इतने काल भ्रमता रहा पर अब मुझको शान्ति प्राप्ति हुई है। जगत्को देखके वह हँसताहै क्योंकि; यह जगत् अनायासरूप है और अपनी ही संवित् में स्थित है। जैसे आरसी में प्रतिबिम्ब स्थित होता है, तैसेही अपनी संवित् में जगत् स्थित है उसको जो द्वैत जानता है और राग द्वेषसे जलता है ऐसे अज्ञानी को देखकर वह हँसता है और व्यवहार करता भी हँसता है। जैसे किसी ने स्वप्न में हाथमें सुवर्ण दिया और फिर लेलिया और इसने उसको स्वप्ना जाना तो चेष्टा करताहै परन्तु हँसता है और कहताहै कि; यह मेराही स्वरूप है; तैसे ज्ञानी व्यवहार करता भी अपने निश्चय में हँसता है। जैसे किसी ग्राम में अग्नि लगे और एक पुरुष उस गांव से निकलकर पर्वत पर जा बैठे तब वह जलतों को देखकर हँसता है; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष भी संसाररूपी जलते नगर से निकल-कर आत्मरूपी पर्वतपर जा बैठा है और अज्ञानियों को दग्ध होता देख-कर हँसता है अर्थात् आप अशोच होकर उनको सशोच देखता है। हे रामजी! जब ज्ञानवान् बोधदृष्टि से देखता है तब अद्वैतसत्ता भासती है और जब अन्तवाहक में स्थित होकर देखता है तब जैसे पदार्थ होते हैं

तैसेही उनको देखता है और आपको सदा शान्तरूप देखता है-अर्थ यह कि, जो आत्मतत्त्व परमानन्दस्वरूप है उससे भिन्न जितने कुछ पदार्थ हैं सो सब दोषरूप हैं और सिद्धि से आदि लेकर जितनी क्रिया हैं वे संसार का कारण हैं। जैसे समुद्र में कई तरङ्ग बड़े और कई छोटे होते हैं परन्तु समुद्र ही में हैं जिस तरङ्ग का आश्रय करेगा वह सिद्धता को प्राप्त होवेगा और हलने, डोलने, कहने से मुक्त होवेगा; तैसेही सिद्धता आदिक जो क्रिया हैं वे कहीं बड़े ऐश्वर्य हैं और कहीं छोटे ऐश्वर्य हैं परन्तु संसार ही में हैं जो पुरुष इस क्रिया को त्याग कर अन्तर्मुख होगा वह संसाररूपी समुद्र को त्यागकर आत्मरूपी पार को प्राप्त होगा। हे रामजी! जिस पुरुष को जिस पदार्थ का अभ्यास होता है उसको वही प्राप्त होता है। जैसे पाषाण को अभ्यास करता है सो प्राप्त होता है। जिसको अभ्यास से आत्मपद प्राप्त होता है वह नित्यप्रति घिसते रहिये तो वह भी चूर्ण हो जाता है; तैसेही जिस पदार्थ का सर्वदा परम श्रेष्ठ होजाता है; सब जगत् से ऊंचे विराजता है और परमदया की खान होता है। जैसे मेघ समुद्र से जल लेकर वर्षा करते हैं सो जल का स्थान समुद्र ही होता है; तैसेही जितने कुछ दया करते दृष्टि आते हैं सो ज्ञान के प्रसाद से ही करते हैं। सर्व दया का स्थान ज्ञानवान् ही है और ज्ञानवान् सबका हृदय है। जो कुछ प्रवाहपतित कार्य आन प्राप्त होता है उसको वह करता है और जो शरीर को दुःख आन प्राप्त होताहै उसको ऐसे देखताहै जैसे अन्य शरीर को होता है और अपने में सुख दुःख दोनों का अभाव देखता है। जिनको यह अभ्यास नहीं हुआ वे शरीर के राग द्वेष से जलते हैं और ज्ञानी को शान्तिमान् देखकर औरोंको भी प्रसन्नता उपज आती है। जैसे पुण्य करके जो स्वर्ग को गया है उसको वहां इष्ट पदार्थ दृष्ट आते हैं और कल्प वृक्ष की सुन्दर मञ्जरियां और सुन्दर अप्सरा आदिक भासती हैं जिन पदार्थों को देखकर प्रसन्नता उपजती है; तैसेही ज्ञानवान् की संगतिमें जो पुरुष जाताहै उसको प्रसन्नता उपज आती है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शीतलता उपजाता है; तैसेही ज्ञानवान् की संगति शीतलता उपजाती

है। ज्ञानवान् आत्मपद को पाकर आनन्दवान् होता है और वह कभी आनन्द दूर नहीं होता क्योंकि; उसको उस आनन्दके आगे अष्टसिद्धियां तृण समान भासती हैं। हे रामजी! ऐसे पुरुषों का आचार और जिन स्थानो में वे रहते हैं वह भी सुनो। कई तो एकान्त जा बैठते हैं, कई शुभस्थानों में रहते हैं, कई गृहस्थीही में रहते हैं; कई अवधूत हुये सबको दुर्वचन कहते हैं कई तपस्या करते हैं; कई परम ध्यान लगाके बैठते हैं; कई नङ्गे फिरते हैं; कई बैठे राज्य करते हैं; कई परिडत होकर उपदेश करते हैं; कई परम मौन धारे हैं; कई पहाड़ की कन्दराओं में जा बैठते हैं; कई ब्राह्मण हैं; कई संन्यासी हैं; कई अज्ञानी की नाईं बिचरते हैं; कई नीच पामर होते हैं और कई आकाश में उड़ते हैं और नाना प्रकार की क्रिया करते दृष्ट आते हैं परन्तु सदा अपने स्वरूप में स्थित हैं। हे रामजी! जिसको पुरुष कहते हैं सो देह और इन्द्रियां पुरुष नहीं और अन्तःकरण चतुष्टय भी पुरुष नहीं; पुरुष केवल चिदाकाशरूप है; वह न कुछ करता है और न किसी से उसका नाश होता है। जैसे नट स्वांग ले आता है और सब चेष्टा करता है परन्तु नटभाव से आपको असंग देखताहै; तैसेही ज्ञानवान् व्यवहार भी करते हैं परन्तु आपको अकर्ता और असंग देखते हैं; और ऐसा निश्चय रखते हैं कि, हम अछेद, अदाह, अक्लेद, अशोष, नित्य, सर्वगत, स्थिर, अचल और सनातन हैं। हे रामजी! इस प्रकार आत्मा में जिसको अहंप्रतीति हुईहै उसका नाश कैसे हो और वह बन्धायमान कैसे हो? वह पुरुष चाहे जैसे आरम्भ करे और चाहे जैसे स्थान में रहे उसको बन्धन कुछ नहीं होता। चाहे वह पाताल में चला जावे, आकाश में उड़ता फिरे अथवा देशान्तरों में भ्रमता फिरे उसको न कुछ अधिकता है और न कुछ ऊनता है। पहाड़ में चूर्ण हो जावे तौ भी वह चूर्ण नहीं होता। यह तो चैतन्य पुरुष है शरीर के नाश हुये इसका नाश कैसे हो? ऐसे अपने स्वरूप में वह सदा स्थित है और आकाशवत् परम निर्मल, अजर, अमर और शिवपद है। इससे हे रामजी! ऐसे जान कर तुमभी अपने स्वरूप में स्थित होरहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिकद्वादशस्सर्गः॥ २१२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक भावमात्र है; दूसरा भासमात्र है और तीसरा भासितमात्र है। भावमात्र केवल चैतन्यमात्र को कहते हैं; उसमें जो चैत्योन्मुखत्व अहंकार का उत्थान हुआ उसका नाम भास है और उसमें जो जगत् हुआ उसका नाम भासित है। भासित कल्पित का नाम है। कल्पित के नाश हुये अधिष्ठान का नाश नहीं होता; जो अधिष्ठान कुछ और भाव हो तो उसका नाश भी होवे सो तो और कुछ बना नहीं। उसके फुरने से तीन संज्ञा हुई हैं सो फुरना भी उसी का किञ्चन है। आत्मा फुरने न फुरने में ज्यों का त्यों है। जैसे स्पन्द और निस्पन्दवायु एक ही है; तैसेही बोध अबोध में आत्मा एकही है। बोध, अबोध, फुरना, अफुरना एकही अर्थ है। हे रामजी! वह आत्मा किससे और कैसे नाश हो? चैतन्य भी मरता हो तो इसका किञ्चन जगत् कैसे रहे? किञ्चन आभास को कहते हैं, सो आभास अधिष्ठान विना नहीं होता—इससे आत्मा का नाश नहीं होता और तुम जो चैतन्य को भी मरता मानो कि, मरके फिर नहीं उपजता तौ भी आनन्द हुआ। मेरा भी यही उपदेश है कि, चैतन्यता मिटे। जब चैतन्यता उपजती है तब जगत् भासता है और उसके मिटे से आत्माही शेष रहेगा। ब्रह्म चैतन्य का तो नाश नहीं होता। जो तुम कहो कि, वह चैतन्य नाश होजाता है—यह और चैतन्य है जिससे जगत् होता है तो; हे रामजी! अनुभव तौ एकही है उसका नाश कैसे मानिये? जैसे बरफ़ शीतल है चाहे किसी ठौर पान कीजिये वह सबको शीतल ही है और अग्नि उष्णही है चाहे जिस ठौर से स्पर्श कीजिये उष्णही अनुभव होता है तैसेही आत्मा का स्वरूप चैतन्य है। वह एक अखण्डरूप है और जहां कोई पदार्थ भासता है उसी चैतन्यता से प्रकाशता है। वह चैतन्यसत्ता स्वच्छ निर्मल और अद्वैत सदा अपने आप में स्थित है; उसका नाश कैसे हो? जो तुम शरीर के नाश हुये आत्मा को नाश होता मानो तो नहीं बनता क्योंकि, शरीर यहां अखण्ड पड़ा है और वह परलोक में चेष्टा करता है और पिशाच आदिक का शरीर भी नहीं दृष्ट आता। जो शरीर विना उसका अभाव होता हो तो

उनका भी अभाव होजाता; इससे शरीर के अभाव हुये आत्मा का अभाव नहीं होता क्योंकि; शरीर के मृतक हुये कुछ चेष्टा शरीर से नहीं होती क्योंकि; पुर्यष्टका जीवकला में नहीं। शरीर तो अखण्ड पड़ा है उससे कुछ नहीं होता और जीव परलोक में सुख दुःख भोगता है तो शरीर के नाश हुये नाश न हुआ। जो तुम कहो कि, सब स्वभाव उसमें रहता है तो सर्वदा काल उसको क्यों नहीं देखते उसी समय आपको क्यों मृतक देखते हैं और बान्धव, भाई, जन सब उसी समय क्यों मृतक जानते हैं और जो तुम कहो कि, जीवित धर्म से वेष्टित है इसी से सब अवस्था का अनुभव नहीं करता मृत्यु समय जब जीवत्वभाव नष्ट होजाता है तब मृतक होता है जो ऐसे हो तो परलोक का अनुभव न करे तो ऐसा नहीं है क्योंकि, जब शरीरपात होता है तब सब अवस्था को भी जानता है और परलोक में शब्द होता है उसका अनुभव करता है; अपने कर्म के अनुसार सुख दुःख भोगता है और देश स्थान को प्राप्त होता है। यह वार्त्ता शास्त्रसे भी प्रसिद्ध है और अनुभव करके भी प्रसिद्ध है कि; मृतकको किसी ने नहीं जाना और अभावको किसीने नहीं जाना और जिसने जाना वह आत्मा एक अखण्ड है—इससे हे रामजी! शरीर के नाश में आत्मा का नाश नहीं होता; वह तो नित्य शुद्धहै और जैसा निश्चय उसमें होताहै तैसाही हो भासता,है और जैसा मिलताहै;तैसा प्रकाशता है। ऐसा जो सत्य आत्मा है वह किसी में बन्धायमान नहीं होता जैसे रस्सी में सर्प आकार भासता है पर वह रस्सी सर्प तो नहीं होजाती जब कल्पित सर्प का अभाव होजाता है तब रस्सी ज्यों की त्यों रहती है; तैसेही आत्मसत्ता आकार हो भासती है परन्तु आकार तो नहीं होती जब आकार का अभाव हो जाता है तब आत्मसत्ता ज्यों की त्यों रहती है इसी कारण बन्धायमान नहीं होती। ऐसी आत्मसत्ता में जो विकार भासते हैं सो भ्रममात्र हैं और भ्रान्ति से ही लोग दुःख पाते हैं। हे रामजी! यह जगत् आभासमात्र है और उस आभासमात्र में जो राग द्वेष आदिक फुरते हैं उनकी निवृत्ति का उपाय मैं तुमसे कहता हूं। जो कुछ उपदेश मैंने किया है उसके विचारने

से भ्रान्ति निवृत्त होजावेगी और आत्मपद की प्राप्ति होगी। अभ्यास विना आत्मपद की प्राप्ति चाहे तो कदाचित् न होगी; जब बारम्बार अभ्यास करेगा तब द्वैतभ्रम मिटजावेगा और आत्मपद प्राप्त होगा। जिसका कोई नित्य अभ्यास करताहै और उसका यत्नभी करताहै सो प्राप्त होताहै। वह कौन पदार्थ है जो अभ्याससे प्राप्त न हो। जो थककर फिरे नहीं और दृढ़ अभ्यास करे तो प्राप्त होताही है। राज्य की लक्ष्मी तब प्राप्त होती है जब रण में दृढ़ होकर युद्ध करते हैं और जय होती है और केवल मुख से कहे कि, मेरी जय हो तो नहीं होती; तैसेही आत्मपद भी तब प्राप्त होगा जब दृढ़ अभ्यास करोगे—अभ्यास विना कहनेमात्र से प्राप्त नहीं होता। हे रामजी! इस मन के दो प्रवाह हैं एक जगत् का कारण है और दूसरा स्वरूपकी प्राप्तिका कारणहै। जो असत्यशास्त्र हैं और जिनमें आत्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहा उनको त्यागो। यह जो महारामायण मोक्ष उपाय है उसमें चार वेद षट्शास्त्र और सर्व इतिहास और पुराणों का सिद्धान्त मैंने कहा है और इसके समान और न किसी ने कहा है न कोई कहेगा। ऐसा जो शास्त्र है इसके विचार में मन को लगावो तो शीघ्रही आत्मपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! आत्मज्ञान वर और शापकी नाईं नहीं कि; कहनेमात्र से सिद्ध हो; इसकी प्राप्ति तब होगी जब बारम्बार विचार करके दृढ़ अभ्यास करोगे और जब इसकी भावना होगी तब मुक्तिपद को प्राप्त होगे। ऐसा कल्याण पिता, माता और मित्रभी न करेंगे और तीर्थ आदिक सुकृतसे भी न होगा जैसा कल्याण बारम्बार विचारने से मेरा उपदेश करेगा। इससे और सब उपायों को त्यागकर इसीका विचार करो तो सब भ्रान्ति मिटजावेगी और शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी। हे रामजी! अज्ञानरूपी विसूचिकारोग है और उसमें पड़े जीव जलते हैं। जो हमारे शास्त्र को विचारेगा उसका रोग नष्ट होजावेगा। ईश्वर की यह महामाया है कि, मिथ्याभ्रम से जीव दुःखी होते हैं। जो अपना दुःख नाश करना चाहे वह मेरा शास्त्र विचारे। जितने सुन्दर पदार्थ दृष्ट आते हैं वे सब मिथ्या हैं और उनके निमित्त यत्न करना परम

आपदा है। यह सब पदार्थ आपातरमणीय हैं जो देखनेमात्र सुन्दर हैं पर भीतर से शून्य हैं। इनकी प्राप्ति में मूर्ख आनन्द मानते हैं। हे रामजी! यह पदार्थ तबतक सुन्दर भासते हैं जबतक मृत्यु नहीं आई, जब मृत्यु आवेगी तब सब क्रिया रहजावेंगी इसलिये इनके निमित्त जो यत्न करते हैं वे मूर्ख हैं। जिसकाल में मृत्यु आती है उसकाल कष्ट प्राप्त होताहै और यदि चन्दन का लेप कीजिये तौभी शीतल नहीं होता। जिस द्रव्य के निमित्त जीव बड़े यत्न करता है; युद्ध करता है और प्राण त्यागता है सो धन स्थिर नहीं रहता एकदिन धन और प्राणों का वियोग होजाता है और जब वियोग होता है तब कष्ट पाता है। मैं ऐसा उपाय कहता हूं जिसमें यत्न भी थोड़ा हो और सुगमता से आत्मपद प्राप्त हो। जब शास्त्र के अर्थ में दृढ़ अभ्यास होता है तब वह अजर, अमरपद प्राप्त होता है; इससे तुम बोधवान् हो और बोध करके अभ्यास का यत्न करो। जो यत्न न करोगे तो अज्ञानरूपी शत्रु लातें मारेगा; यदि उस शत्रु को मारना हो तो निर्मान और निर्मोह होकर आत्मपद का अभ्यास करो। हे रामजी! जो पुरुष अब तक अज्ञानरूपी शत्रु के मारने और आत्मपद पाने का यत्न नहीं करते वे परम कष्ट पावेंगे और संसाररूपी दुःख से कदाचित् मुक्त न होंगे। इस कष्ट से निकलने का यही उपाय है कि, महारामायण ब्रह्मविद्या का जो उपदेश है उसको विचार करके अपने हृदय में धारण करें। इस उपाय से भ्रान्ति मिट जावेगी! यह महारामायण उपदेश सर्वसिद्धान्तों का सार है; और २ शास्त्रों से आत्मपद को प्राप्त हो अथवा न भी हो परन्तु इसके विचार से अवश्य आत्मा को प्राप्त होगा। जैसे तिलकी खली से तेल निकलना कठिन है और तिलों से तेल निकालिये तो निकलता है; तैसेही मेरा उपदेश तिल की नाईं है और इतर खली की नाईं है। हे रामजी! सम्पूर्ण शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्तों का सार जो सिद्धान्त है सो मैंने तुमसे कहा है। जो आत्मा सदा विद्यमान है उसको लोग भ्रान्ति से अविद्यमान जानते हैं इसलिये उसी के विद्यमान करने को सर्वशास्त्र प्रवर्त्तते हैं पर जो उनके विचार से आत्मपद को विद्यमान नहीं जानता वह मेरे उपदेश

के विचारने से अवश्य आत्मपद को विद्यमान जानेगा यह निश्चय है। हे रामजी! और शास्त्रों के दृढ़ विचार और यत्न से जो सिद्धि होती है सो इस शास्त्र के विचार से सुखसेही प्राप्त होगी। शास्त्रकर्ता का और लक्षण न विचारना पर शास्त्र की युक्ति विचार देखनी है। जो कुछ सर्व शास्त्र का सार सिद्धान्त है सो मैंने तुमसे सुगममार्ग से कहा है। इसके विचार से इसकी युक्ति देखो अज्ञानी जो कुछ मुझको कहते हैं और हँसते हैं सो मैं सबही जानता हूं परन्तु मेरा जो दया का स्वभाव है इससे मैं चाहता हूं कि, किसी प्रकार वे नरकरूप संसार से निकलें और इसीकारण मैं उपदेश करताहूं। हे रामजी! मैं जो तुमको उपदेश करता हूं सो किसी अपने अर्थ के निमित्त नहीं करता कि, मेरा कुछ अर्थ सिद्ध हो। जो कोई तुमको उपदेश करता है सो सुनो; तुम्हारा जो कोई बड़ा पुण्य है वही शुद्ध संवित् होकर मलीनसंवित को उपदेश करता है। वह संवित न देवता है; न मनुष्य है; न यक्ष है; न राक्षस है और पिशाच आदिक भी नहीं है; केवल जो ज्ञानमात्र है सो तुमहीं हो; मैं भी वही हूं और जगत् भी वही है और जो सर्व वही है तो वासना किसकी करनी है। हे रामजी! जीव को दुःख का कारण वासना ही है। जो पुरुष इस संसार बन्धन के दुःख की चिकित्सा अब न करेगा वह आत्महत्यारा है और बड़े दुःख में जापड़ेगा जहां से निकलने की सामर्थ्य न होगी इससे अबहीं उपाय करो। जबतक सर्वभाव की वासना निवृत्त नहीं होती तबतक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता—इसीका नाम बन्धन है। जब वासना क्षय होगी तब आत्मपद की प्राप्ति होगी। जितने पदार्थ भासते हैं वे सब अविचार सिद्ध हैं, विचार किये से कुछ नहीं रहते; और जो विचार किये से न रहें उनकी अभिलाषा करनी व्यर्थ है। जो वस्तु होती हो उसके पाने का यत्न भी कीजिये तो बनता है और जो वस्तु होवेही नहीं उसके निमित्त यत्न करना मूर्खता है। यह जगत के पदार्थ असत्य-रूप हैं। जैसे शशे के सींग असत् हैं और मरुस्थल की नदी असत् होती है; तैसेही यह जगत् असत् है। जो सम्यक्दर्शी ज्ञानवान् पुरुष है वह

जानता है कि, यह जगत् शशे के सींगवत् असत् और भ्रान्तिमात्र है इसलिये इसके निमित्त यत्न करना मूर्खताहै। जो पदार्थ कारण बिना दृष्टि आवे उसको भ्रान्तिमात्र जानिये। आत्मा जगत् का कारण नहीं इससे जगत् मिथ्या है। आत्मपद सब इन्द्रियों और मन से अतीत है और जगत् पाञ्चभौतिक है। जगत् मन और इन्द्रियों का विषय है और आत्मपद मन और इन्द्रियों का विषय नहीं तो उसे जगत् का कारण कैसे कहिये? जो अशब्दपद है सो नाना प्रकार शब्दका कारण कैसे हो और जो निराकार आत्मपद है सो पृथ्वी आदिक नाना प्रकार के भूत आकारों का कारण कैसे हो? हे रामजी! जैसा कारण होता है उस से तैसाही कार्य उपजता है; आत्मा निराकारहै और जगत् साकार है इसलिये निराकार साकारका कारण कैसे हो? जैसे वट का बीज साकार होता है इसलिये उसका कार्य वट भी साकार होता है और साकार से निराकार कार्य तो नहीं होता; तैसेही निराकार से साकार कार्य भी नहीं होता। इससे इस जगत् का कारण आत्मा नहीं और न समवायकारण है, न निमित्तकारण है। निमित्तकारण तब होता है जब कुछ द्वितीय वस्तु होतीहै। जैसे मृत्तिका से कुलाल घट बनाता है। पर आत्मा तो अद्वैत है वह निमित्तकारण कैसे हो? और समवायकारण भी तब होता है जब साकार वस्तु होतीहै-जैसे मृत्तिका परिणामसे घट होता है-पर आत्मा निराकार अपरिणामी है जगत् का कारण कैसे हो? दोनों कारणों से जो रहित भासे उसे जानिये कि, भ्रान्तिमात्र है जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के आकार भासते हैं सो कारण बिना भासते हैं इसलिये वह भ्रान्तिमात्र है; तैसेही यह जगत् भी कारण बिना भ्रान्तिमात्र भासता है। आत्मा में जगत् कदाचित् नहीं हुआ। जैसे प्रकाश में तम नहीं होता, तैसेही आत्मा में जगत् नहीं। यदि तुम कहो कि, तो फिर भासता क्या है तो उसीका किञ्चन भासता है जो वही रूप है जैसे चलती है तौ भी वायु है और ठहरती है तौ भी वायु है, चलने और ठहरने में कुछ भेद नहीं होता और जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ

भेद नहीं है-वही आत्मसत्ता फुरने से जगत्रूप हो भासती है। जैसे जल और तरङ्ग में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत में कुछ भेद नहीं और कुछ द्वैत वस्तु है नहीं। जो लोग कहते हैं कि, जगत् कर्मों से होता है सो असत्य है क्योंकि, कर्म भी बुद्धि से होते हैं सो आत्मा में बुद्धिही नहीं तो कर्म कैसे हो और जो कर्मही नहीं तो जगत् कैसे हो? जैसे शशे के सींग के धनुष से बाण चलाना असत्य है, तैसेही कर्म से जगत् का होना असत्य है। एक कहते हैं कि, सूक्ष्म परमाणु से जगत् होजाता है पर यह भी असत्य है क्योंकि, जो सूक्ष्म परमाणु प्रमाण से जगत् रूप हुये होते तो बुद्धिरूप जगत् न भासता पर यह तो बुद्धिरूप क्रिया होती दृष्ट आती है। जो परमाणु से जगत् होता तो इनहीं से बढ़ताजाता क्योंकि; जो परमाणु जड़ है वही बढ़ते हैं पर ऐसे तो नहीं होता; बुद्धिपूर्वक चेष्टा होती दृष्ट आती है, इसीसे कहा है कि, वे असत्य कहते हैं क्योंकि; सूक्ष्म भी किसीसे उत्पन्न हुआ चाहिये और कोई उसके रहने का स्थान भी चाहिये पर आत्मा में देश, काल और वस्तु तीनों कल्पित हैं। जो आत्मा में ये न हुये तो परमाणु कैसे हो और जगत् कैसे हो? आत्मा अद्वैत है इससे जगत् न उपजाहै और न नष्ट होता है। जो जगत् उपजा होता तो नष्ट भी होता, जो उपजाही नहीं तो वह नष्ट कैसे हो? आत्मसत्ता ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है। इससे हे रामजी! मैं, तुम और सब जगत् आकाशरूप है किसी के साथ आकार नहीं-सब निराकाररूप है। जो तुम कहो कि फिर बोलते चालते क्यों हैं? तो जैसे स्वप्ने में सब आकाशरूप होते हैं पर नानाप्रकार की चेष्टा करते दृष्ट आते हैं और बोलते चालते हैं; तैसेही यह भी बोलते चालते हैं परन्तु आकाशरूप हैं। तुम्हारा जो स्वरूपहै सो भी सुनो। देशको त्यागकर देशान्तरको जो संवित् जाता है और उसके मध्य जो ज्ञानसंवित् है वही तुम्हारा स्वरूप है। वह अनामय और सर्व दुःख से रहित है। जैसे जब जाग्रत् दशा को त्यागकर जीव स्वप्ने में जाता है तो जाग्रत् त्याग दिया हो और स्वप्ना न आया हो मध्य में जो अचेत चिन्मात्र सत्ता है वही तुम्हारा स्वरूप है; उसमें परिडत और

ज्ञानवानों का निश्चय है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक उसी में स्थित रहते हैं उनको कदाचित् उत्थान नहीं होता। जैसे बरफ़ से अग्नि कदाचित् नहीं उपजती, तैसेही उनको स्वरूप से उत्थान कदाचित् नहीं होता। वह आत्मसत्ता न उपजती है; न विनशती है और न और की और होती है—सर्वदा अपने स्वभाव में स्थित है। हे रामजी! जितना कुछ जगत् तुम देखते हो सो वास्तव में कुछ उपजा नहीं—भ्रम से भासता है। जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के आरम्भ होते दृष्ट आते हैं और जागे से उनका अत्यन्त अभाव भासता है, तैसेही यह जगत् भी है। आदि जो अद्वैत तत्त्व में स्वप्न हुआ है उसमें ब्रह्मा उपजे और उन्होंने आगे जगत् रचा सो ब्रह्मा भी आकाशरूप है स्वरूपसे भिन्न कुछ नहीं हुआ—सब असत्यरूप है। जैसे स्वप्न में नदी और पर्वत दृष्ट आते हैं परन्तु कुछ उपजे नहीं; अनुभवसत्ताही ज्योंकी त्यों स्थित है; तैसेही ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त जगत् सब असत्यरूप है जिसको तुम ब्रह्मा कहते हो वह वास्तव में कुछ उपजे नहीं तो जगत् की उत्पत्ति मैं तुमसे कैसे कहूं? जैसे मरुस्थल की नदीही उपजी नहीं तो उसमें मछलियां कैसे कहिये? तैसेही आदि ब्रह्मा नहीं उपजा तो उसमें जगत् कैसे उपजा कहिये? केवल आत्मचैतन्यसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और यह जगत् भी वही रूप है परन्तु अज्ञानसे विपर्ययरूप भासता है। जैसे स्वप्न में पुरुष अनुभवरूप होता है और अपने प्रमाद से नाना प्रकार के पदार्थ और पर्वत, जल, पृथ्वी, जन्म, मरणादिक विकार देखता है परन्तु हुआ कुछ नहीं आत्मसत्ताही ज्यों की त्यों स्थित है और अज्ञान से विषयरूप भासतेहैं; तैसेही इस जगत् को भी जानो—आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं सब चिदाकाशरूप है और अज्ञान से आत्मसत्ताही जगत्‌रूप हो भासती है। इससे हे रामजी! जिसके अज्ञान से यह जगत् भासता है और जिसके ज्ञान से निवृत्त होजाता है ऐसे आत्मतत्त्व के पानेका यत्न करो। वह नित्य, शुद्ध और परमानन्दस्वरूप है और सदा अपने स्वभाव में स्थित है और वही तुम्हारा अनुभवरूप है जो सदा अनुभव करके प्रकाशता है और उसमें

स्थित होने में क्या कायरता करनी है ? हे रामजी ! जितना प्रपञ्च है सो सब भ्रान्तिमात्र है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रान्तिमात्र है तैसेही आत्मा में जगत् भ्रममात्र है इससे उसको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वपदार्थभाववर्णनंनामत्रयोदशाधिकद्विशततमस्सर्गः ॥ २१३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिस प्रकार यह जगत् आभास फुरा है और भासता है सो भी सुनो। आदि जो शुद्धअचेत चिन्मात्र है उसमें जब चैतन्यता फुरती है तब वह वेदन होती है और उसमें शब्दतन्मात्र होता है फिर उसमें आकाश उत्पन्न होता है और फिर स्पर्श की इच्छा होती है तब वायु उपजती है। जब आकाश में उत्थान होता है तब उस वायु और आकाश के संघर्षणभाव से अग्नि उपजती है और जब अग्नि में उष्णस्वभाव होता है तब जल उत्पन्न होता है अर्थात् जब तेज की अधिकता होती है तब जल उत्पन्न हो आता है। जब स्वेदवत् जल बहुत इकट्ठा होता है तब उसमें पृथ्वी उत्पन्न होती है। इस प्रकार आकाश और वायु से जल और पृथ्वी ये उत्पन्न होते हैं तब तत्त्वों से शरीर उपजते हैं और स्थावर जङ्गमभूत और नाना प्रकार का जगत् दृष्ट आता है सो सब पाञ्चभौतिक हैं और वास्तव में न पञ्चभूत हैं; न कोई उपजता है और न नष्ट होता है केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जैसे स्वप्न में नाना प्रकार का जगत् आरम्भ प्रमाणसहित भासता है परन्तु वास्तव में कुछ उपजा नहीं आत्मसत्ता ही जगत आरम्भ प्रमाणसहित भासता है परन्तु वास्तव में कुछ उपजा नहीं आत्मसत्ताही चित्त के फुरने से जगतरूप हो भासती है; तैसेही यह जाग्रत् जगत भी जानो। हे रामजी ! यह जगत् सब अपना अनुभवरूप है पर भ्रम करके आकारसहित भासता है और जब भली प्रकार विचारके देखिये तब जगत्भ्रम मिटजाता है केवल चैतन्य आत्मतत्त्वमात्र शेष रहता है। जैसे निद्रादोष से स्वप्न में नाना प्रकारके क्षोभ भासतेहैं और जब जागता है तब एक अपना आपही भासता है; तैसेही आत्मसत्ता में जागे से अद्वैत ही अद्वैत भान होता है। हे रामजी ! जो

बोधसमय में द्वैत कुछ न भासे तो अबोध समय भी जानिये कि, द्वैत कुछ नहीं हुआ और जो बोध के समय सत्य भासे तो जानिये कि, सर्वदा-काल यही सत्ता है। हे रामजी! यह निश्चय धारो कि जगत् कुछ वस्तु नहीं—जैसे आकाश में नीलता; किरणों में जल और रस्सी में सर्प भासता है, तैसेही आत्मा में जगत् भासताहै और विचार किये से कुछ नहीं पाया जाता। हे रामजी! अपनी कल्पनाही जीव को जगत्रूप हो भासती है और कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपनी कल्पनारूप है परन्तु निद्रादोष से भिन्न हो भासती है और उसमें राग द्वेष उपजता है पर जागे से सब क्षोभ मिटजाते हैं; तैसेही ज्ञान से जगत् सत्य भासता है और उसमें राग द्वेष भासते हैं—ज्ञान से सब शान्त होजाते हैं। हे रामजी! यह जगत् भ्रममात्र है; ज्ञानवान् के निश्चय में सब चिदाकाश है और अज्ञानी के निश्चय में जगत् है। यदि बड़े क्षोभ प्राप्त हों तौ भी ज्ञानवान् को चला नहीं सके क्योंकि, उसके निश्चय में कुछ द्वैत नहीं फुरता, वह सदा एकरस रहता है। यदि प्रलयकाल के मेघ गर्जें; समुद्र उछले और पहाड़ के ऊपर पहाड़ पड़े; ऐसे भयानक शब्द हों तौ भी ज्ञानवान् के निश्चय में कुछ द्वैत नहीं फुरता। जैसे कोई पुरुष सोया पड़ा हो तो उसके स्वप्ने में बड़े क्षोभ होते हैं और जाग्रत् के निकट बैठे भी नहीं भासते; तैसेही ज्ञानवान् को निश्चय में द्वैत कुछ नहीं भासता क्योंकि; है नहीं और अज्ञानी को होते भासते हैं। जैसे बन्ध्या स्त्री स्वप्ने में अपने पुत्र को देखती है सो अनहोता भ्रम से उसको भासता है तैसेही अज्ञानी को अनहोता जगत् सत्य होकर भासता है। हे रामजी! भ्रम से अनहोता जगत् भासता है और होते का अभाव भासता है। जैसे बन्ध्या अनहोते पुत्र को देखती है और पुत्रवाली स्वप्ने में पुत्र का अभाव देखती है; तैसेही अज्ञान से अनहोता जगत् सत् भासता है और सदा अनुभवरूप आत्माका अभाव भासताहै सो भ्रम से ही और का और भासता है। जैसे दिन में सोया हुआ स्वप्ने में रात्रि देखता है और रात्रि को सोया हुआ स्वप्ने में दिन देखता है; शून्यस्थान में नाना प्रकार के व्यवहार और अन्धकार में प्रकाश देखता है सो भ्रमसे ही देखता

है और पृथ्वी पर सोयाहै और स्वप्ने में आकाश पर दौड़ता फिरता है और आपको गढ़े में गिरता देखताहै सो भी भ्रम से ही भासता है; तैसेही यह जाग्रत् जगत् का विपर्ययरूप भी भ्रम से ही देखता है । जाग्रत् और स्वप्ने में कुछ भेद नहीं; जैसे स्वप्ने में हुये भी बोलते चालते दृष्ट आते हैं । हे रामजी ! जैसे स्वप्ने में तुमको नाना प्रकार का जगत् भासता है और जागकर कहते हो सब भ्रममात्र था; तैसेही हमको यह जाग्रत् जगत् भ्रममात्र भासता है । जैसे जल और तरङ्ग में कुछ भेद नहीं, तैसेही जाग्रत् और स्वप्ने में कुछ भेद नहीं । जैसे दो मनुष्य एकही से होते हैं और दो सूर्य हों तो उनमें कुछ भेद नहीं होता, तैसेही जाग्रत् और स्वप्ने में कुछ भेद न जानना । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! स्वप्ने की प्रतिभा अल्पमात्र भासती है और शीघ्रही जागकर कहता है कि, भ्रममात्र थी और जाग्रत् दृढ़ होकर भासती है पर तुम दोनों को समान कैसे कहते हो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिस प्रतिभा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है सो जाग्रत् कहाती है और जिसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता और चित्त में स्मृति होती है वह स्वप्ना है । वह जाग्रत् और स्वप्ना दो प्रकार का है—जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है वह जाग्रत् है और उसमें जब सो गया तब स्वप्ना हुआ उस स्वप्ने में जगत् भासि आया तो जहां जगत् भासि आया वही उसकी जाग्रत् होगई और जहां से सोया था वह स्वप्ना होगया । वहां जो स्वप्ना भासित हुआ उसको जाग्रत् जानो और लोगों से चेष्टा करने लगा जब वहां से मृतक होगया फिर उसमें आया तो पिछले को स्वप्ना जानने लगा तो चित्त के भ्रम से स्वप्ने को जाग्रत् देखा और जाग्रत् को स्वप्ना देखा । हे रामजी ! सो यह क्या हुआ ? जैसे किसी को स्वप्ना आया और उसमें अपनी चेष्टा और व्यवहार करने लगा और फिर उसमें स्वप्ना हुआ उस स्वप्नान्तर से जागा फिर उस स्वप्ने में आया तो उसको स्वप्ना जानने लगा और उस स्वप्ने को जाग्रत् जानने लगा । हे रामजी ! जैसे वह स्वप्नान्तर से जागकर उसको स्वप्ना कहता है और स्वप्ने को जाग्रत् कहता है, तैसेही यहां जाग्रत् स्वप्नारूप है और आगे जो होता है वह

स्वप्नान्तर है। एक और प्रकार है कि, जो इस जाग्रत् में मृतक हुआ शरीर छूटगया तब परलोक देखताहै सो परलोक जाग्रत् होगया और इस जाग्रत् को स्वप्न जानने लगा। जैसे स्वप्न से जागा स्वप्न को भ्रम कहताहै, तैसेही इस जाग्रत् को परलोकमें भ्रम जानताहै। फिर परलोक में स्वप्न आया तब परलोक की जाग्रत् स्वप्नवत् होगई और जो स्वप्न में सृष्टि भासी उसको जाग्रत् जानता है। फिर वहां से मृतक होकर यहां आया तब यह जाग्रत् होगई और परलोक स्वप्न होगया। इससे हे रामजी ! स्वप्न और जाग्रत् दोनों मिथ्या हैं। जब मूर्ख स्वप्न से जागते हैं तब वे जानते हैं कि, इसका नाम जागना है और इसको जाग्रत् मानते हैं और उसको स्वप्न जानते हैं। पर वास्तव में वह स्वप्नान्तर है और यह स्वप्न है। इसमें जो तीव्रसंवेग होरहा है इससे उसको जाग्रत् जानते हैं और उसको स्वप्न जानते हैं पर दोनों तुल्य हैं कुछ भेद नहीं। आत्मा में दोनों असत्यरूप हैं और इनकी प्रतिभा भ्रम-मात्र भासती है। आत्मा न कदाचित् उपजता है; न मरता है और उप-जता भी है और मरता भी है। उपजता इस कारण से नहीं कि; पूर्व सिद्ध है और मरता इस कारण नहीं कि, भविष्यत्काल में भी सिद्ध है। परलोक में सुख दुःख भोगता है और २ भ्रमकाल में जन्मता भी है और मरता भी है सो प्रत्यक्ष भासता है पर वास्तव में ज्यों का त्यों है। हे रामजी ! यह जगत् उसका आभासहै और चैतन्य का चमत्कार चैत होकर भासताहै। जैसे घट मृत्तिकारूप है—मृत्तिका से भिन्न नहीं; तैसेही चेतन भी चैतन्यरूप है। चैतन्य से भिन्न जगत् नहीं—स्थावर-जङ्गम जगत् सब चिन्मात्र है। हे रामजी ! जैसे तुमको स्वप्न आता है और उसमें पत्थर और पहाड़ भासते हैं सो तुम्हारा ही अनुभवरूप हैं भिन्न तो नहीं; तैसेही यह दृश्य सब चिन्मात्र-रूप है। जैसे घट मृत्तिका से भिन्न नहीं; तैसेही जगत् चिदाकाश से भिन्न नहीं। जैसे काष्ठ के पात्र काष्ठ से भिन्न नहीं—सब काष्ठही रूप हैं; तैसेही जगत् चैतन्यरूप है—चैतन्य से भिन्न नहीं। जैसे पाषाण की मूर्ति पाषाणरूप है; तैसेही जगत् भी चैतन्यरूप है जैसे समुद्र ही तरङ्गरूप हो भासता है; तैसेही चैतन्य जगत्रूप हो भासता है जैसे अग्नि उष्णरूप

है, तैसेही चैत चैतन्यरूप है जैसे वायु स्पन्दरूप है तैसे चैतन्य चैतरूप है जैसे वायु निस्स्पन्दरूप है तैसे चैतन्य चैतरूप है; जैसे पृथ्वी घनरूप होती है और आकाश शून्यरूप होता है-जहां शून्यताहै वहां आकाशहै-तैसेही जहां चैत है तहां चैतन्य है। जैसे स्वप्ने में शुद्ध संवित् पहाड़ और नदियां रूप हो भासती हैं; तैसेही चिन्मात्रसत्ता जगत्रूप हो भासती है। हे रामजी! जो कुछ पदार्थ तुमको भासते हैं उनको त्यागकर आत्मा की ओर देखो। यह सब विश्व आत्मरूप है। शुद्ध चिदाकाशरूप निर्दुःख आकाश में निर्मल है; ऐसे जानकर उसमें स्थित हो। हे रामजी! जब तुमको स्वभावसत्ता का अनुभव साक्षात्कार होगा तब सर्वद्वैतकलना जो भासती है सो शान्त होजावेगी और केवल आत्मतत्त्वमात्र शेष रहेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नैकताप्रतिपादन-न्नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमस्सर्गः ॥ २१४ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! चिदाकाश कैसा है जिसको तुम परब्रह्म कहते हो और उसका क्या रूप है? तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को पान करता मैं तृप्त नहीं होता इससे कृपा करके कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसे एक माता के गर्भ से दो पुत्र जोड़े उत्पन्न होते हैं और उनका एकसा आकार होताहै पर जगत् के व्यवहार के निमित्त उनका नाम भिन्न २ होता है और भेद कुछ नहीं और जैसे दो पात्रों में जल रखिये तो जल एकही है और पात्रों के नाम भिन्न २ होते हैं तैसेही स्वप्न और जाग्रत् दो नाम हैं परन्तु एकही से हैं पर आत्मा में दोनों कल्पित हैं और जिसमें दोनों कल्पित हैं सो चिदाकाश है। वृत्ति जो फुरती है और देश-देशान्तर को जाती है उसके मध्य में जो संवित् ज्ञानरूप है कि; जिसके आश्रय वृत्ति फुरती है सो चिदाकाश संवित् है और वृक्ष जो रस को खैंच-कर ऊर्ध्व को जाते हैं सो उसी के आश्रय जाते हैं-ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाशरूप है। हे रामजी! जैसे सर्ववृक्ष फूल, फल, टास आदि सहित रस के आश्रय फुरते हैं, तैसेही यह सब जगत् चिदाकाश के आश्रय फुरता है और उसी के आश्रय वृत्ति फुरती है-ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाश

है। जिसकी इच्छा सब निवृत्त होगई है और रागद्वेषरूपी मल शरत्काल के आकाशवत् निवृत्त होगया है और शुद्ध संवित् है उसको चिदाकाश जानो। हे रामजी! जगत् का जब अन्त हुआ पर जड़ता नहीं आई उसके मध्य जो अद्वैत सत्ता है सो चिदाकाश है; बेल, फूल, फल, गुच्छे और वृक्ष जिसके आश्रय बढ़ते हैं सो चिदाकाश है और रूप, अवलोक, मनस्कार इन तीनों का जहां अभाव है-ऐसी जो शुद्धसंवित् है-वह चिदाकाश है। पृथ्वी, पर्वत और नदियां सर्वका जो आश्रय है सो चिदाकाश है और द्रष्टा, दृश्य, दर्शन; ये तीनों जिससे उपजे हैं और फिर जिसमें लीन होते हैं ऐसी जो अधिष्ठान सत्ता है सो चिदाकाश है। जिससे सर्व उपजते हैं; जो यह सर्व है और जिसमें सर्व है; ऐसा सर्वात्मा चिदाकाश है और अर्द्धरात्रि को जो उठता है और इन्द्रियों की चपलता का विषय से अभाव होता है और उस काल में अफुरसत्ता होती है सो चिदाकाश है। हे रामजी! जिस संवित् में स्वप्न की सृष्टि फुरती है और फिर जाग्रत् भासती है और दोनों के करनेवाले में शोभता है सो चिदाकाश है। जैसा फुरना होता है, तैसाही जगत् में भासता है और वही द्रष्टा, दर्शन, दृश्य होकर भासता है दूसरा कुछ नहीं। आत्मरूपी सूत्र में असत्य-सत्य जगत्रूपी मणि पिरोये हुये हैं। जिसके आश्रय इनका फुरना होता है वह चिदाकाश है। हे रामजी! जिसके आश्रय एक निमेष में जगत् उपजता है और उन्मेष में लीन हो जाता है, ऐसी जो अधिष्ठान सत्ता है उसको चिदाकाश जानो। यह सब जगत् मिथ्या है और भ्रान्ति से भासता है जैसे मरुस्थल की नदी भासती है। इससे जो रहित है और जिसमें संकल्प विकल्प का क्षोभ नहीं और सदा अपने आपमें स्थित और दुःख से रहित निर्विकल्प सत्ता है वही चिदाकाश है। हे रामजी! नेति नेति से जो पीछे अनाद्यपद शेष रहता है उसको तुम चिदाकाश जानो। शुद्ध चैतन आत्मसत्ता सबका अपना आप और सबका अनुभवरूप होकर प्रकाशता है। उसमें जैसा फुरना होता है कि, ये ऐसे हैं तैसाही हो भासता है सो चिदाकाश-

रूप है । इससे शुद्ध आत्मसत्ता ही फुरने से जगत्‌रूप हो भासती है। जैसे जाग्रत् के अन्त में अद्वैतसत्ता होती है और फिर उससे स्वप्न की सृष्टि भासि आती है पर स्वप्न की सृष्टि वास्तव कुछ नहीं उपजी वही अनुभव स्वप्न की सृष्टि हो भासती है; तैसेही यह जगत् जो कार्यरूप दृष्टि आता है सो अविद्या से भासता है वास्तव में कुछ उपजा नहीं। जैसे स्वप्न की सृष्टि अकारण भासती है, तैसेही यह सृष्टि अकारण है। ब्रह्मा से आदि चींटीपर्यन्त सर्व स्थावर जङ्गमरूप जगत् चिदाकाशरूप है कुछ उत्पन्न नहीं हुआ और जो दूसरा कुछ न हुआ तो कारण कार्य भी कुछ न हुआ। हे रामजी! न कोई द्रष्टा है, न कोई दृश्य है, न भोक्ता है और न भोग है सब कल्पनामात्र है। आत्म अज्ञान से कल्पना उठती हैं और आत्मज्ञान से लीन होजाती हैं—जैसे समुद्र के जाने से तरङ्ग कल्पना मिटजाती है, क्योंकि, अनुभव आत्मा में कारण-कार्य कुछ नहीं हुआ। जो तुम कहो कि, कारण-कार्य क्यों भासते हैं तो जैसे इन्द्रजाल की बाजी में नाना प्रकार के पदार्थ दृष्टि आते हैं परन्तु वास्तव कुछ नहीं बने, तैसेही यह जगत् कारण-कार्य कुछ बना नहीं। जैसे स्वप्न में अपना अनुभवही नगररूप हो भासता है; तैसेही यह जगत् भासता है। हे रामजी! आत्मसत्ता ही फुरने से जगत् की नाईं भासती है। जिस जगत् को इन्द्ररूप कहते हैं वह अहंरूप है; जिसको समुद्र कहते हैं वहभी अहंकाररूप है; जिसको रुद्र कहते हैं वह अपनाही अनुभवरूप है इत्यादिक जो सब जगत् भासता है सो भावनामात्र है। जैसी जिसकी भावना दृढ़ होती है तैसाही रूप होकर भासता है। जैसे चिन्तामणि और कल्पान्तर में जैसी भावना होती है, तैसाही सिद्ध होताहै; तैसेही आत्मसत्ता में जैसी भावना होती है तैसाही हो भासती है। इससे जब चिदाकाश का निश्चय दृढ़ होता है तब अज्ञान से जो विरुद्ध भावना हुई थी सो निवृत्त होजाती है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगन्निर्वाणवर्णनंनाम पञ्चदशाधिकद्विशततमस्सर्गः ॥ २१५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मन थोड़ा भी फुरता है तब यह जगत् उत्पन्न हो आता है और जब फुरने से रहित होता है तब जगत् भावना मिट जाती है इस प्रकार जो जानता है सो ज्ञानवान् है; वह पुरुष इन्द्रियों से देखता है, सुनता, ग्रहण करता भी निर्वासनिक होजाता है और जगत् की ओर से घनसुषुप्त होता है। हे रामजी! जिसका मन निर्वासनिक और शान्त हुआहै वह बोलता, चालता, खाता, पीता भी पाषाणवत् मौन होजाता है-इससे यह जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ। जैसे मृगतृष्णा की नदी अनहोती भासती है और भ्रम से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही मन के भ्रम से आत्मा में जगत् भासता है; आदि कारण से कुछ नहीं उत्पन्न हुआ। जिसका आदि कारण न पाइये वह कारण भी असत्य जानिये इससे सब जगत् कारण विनाही भासता है उपजा कुछ नहीं। हे रामजी! जो पदार्थ कारण विना भासता है और जिसमें भासता है वह अधिष्ठानसत्ता है क्योंकि; जो अधिष्ठान में भासित होता है उसको भी वही रूप जानिये और जो अधिष्ठान से व्यतिरेक भासे उसे भ्रममात्र जानिये। जैसे स्वप्न में इन्द्रियादिक पदार्थ भासते हैं और उसमें दृश्य दर्शन सब मिथ्या हैं हुआ कुछ नहीं, तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी मिथ्या है, न कुछ उपजा है; न स्थित हुआ है; न आगे होना है और न नाश होता है। जो उपजाही नहीं तो नाश कैसेहो? न कोई द्रष्टा है; न दर्शन है और न दृश्य है; केवल चिन्मात्रसत्ता अपने आप में स्थित है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह द्रष्टा, दर्शन और दृश्य क्या है और कैसे भासता है? यह आगे भी कहा है और अब फिर भी कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह दृश्य सब अदृश्यरूप है; कारणही दृश्य हो भासती है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो कुछ जगत् विस्तार सहित भासता है सो आदिस्वरूप है। जैसे स्वप्न में आकाश का वन भासे और और पदार्थ भासें सो सब चिदाकाशरूप हैं; तैसेही यह जगत् भी चिन्मात्र रूप है-कारण-कार्यभाव कहीं नहीं। जैसे वायु स्पन्दरूप होती है तब भासती है और निस्पन्द हुये नहीं भासती; तैसेही आत्मा में जब चित्त

फुरता है तब आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है सो वही आत्मसत्तारूप भाव में भाव है। जैसे आकाश में शून्यता है; तैसेही आत्मा में जगत् आत्मरूप है इससे जो कुछ भासता है सो चैतन का आभास प्रकाश है और परमार्थसत्ता केवल अपने आपमें स्थित है। इससे इतर कहिये तो न द्रष्टा है और न दृश्य है आत्मसत्ताही ज्यों की त्यों है। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण, ब्रह्म के वेत्ता! जो इसी प्रकार है तो कारण-कार्य का भेद कैसे होता दीखता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसा जैसा फुरना उसमें होताहै तैसाही तैसा रूप हो भासता है चैतन आकाश ही जगत्‌रूप हो भासता है और कहीं न कारण है; न कार्य है। जैसे स्वप्न सृष्टि कारण-कार्य सहित भासती है सो किसी कारण से नहीं उपजी—अकारणरूप है; तैसेही यह सृष्टि किसी कारण से नहीं उपजी अकारणरूप है। न कहीं कर्ता है और न भोक्ता है केवल भ्रम से कर्ता भोक्ता भासता है और स्वप्ने की नाईं विकल्प उठते हैं—वास्तव में ब्रह्मसत्ता ही है। हे रामजी! जैसे स्वप्ने में नगर और जगत् भासता है सो चिदाकाश अनुभवसत्ता ही ऐसे हो भासती है—अनुभव से भिन्न कुछ नहीं तैसेही यह जगत् सम्पूर्ण चिदाकाश है। जब ऐसे जानोगे तब जगत् भी भ्रमतत्त्व भासेगा। हे रामजी! यह जगत् चित्त के फुरने से उपजा है। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है तैसेही चित्तभ्रम से जगत् को कल्पता है पर इसका कारण ब्रह्मही है और कारण कहीं नहीं क्योंकि; महाप्रलय में चिदाकाश ही रहता है सो कारण किसका हो? वही सत्ता इन्द्र, रुद्र, नदियां, पर्वत आदि जगत् हो भासता है और उससे भिन्न द्वैतरूप कुछ नहीं। इसमें जैसा जैसा फुरना होता है तैसाही रूप भासता है। जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष में जैसी भावना होती है तैसाही रूप भासता है; तैसेही आत्मसत्ता में जैसी भावना होती है तैसाही पदार्थरूप हो भासता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कारणकार्याभाववर्णनन्नामषोडशाधिकद्विशततमस्सर्गः ॥ २१६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अचैत चिन्मात्र जो आकाशरूप आत्मसत्ता

है सोही जगत्‌रूपहो भासती है। शुद्धचिन्मात्र में जब अहंफुरना होता है तब जगत् हो भासता है। वही अहंरूप जीव है जगत् में जीवता दृष्टि आता है परन्तु मृतक की नाईं स्थित है और तुम, मैं आदिक सब जगत् जीवता, बोलता, चलता और व्यवहार करता भी दृष्टि आता है परन्तु काष्ठ मौनवत् स्थित है। आत्मरूपी रत्न का जगत्‌रूपी चमत्कार है और वह प्रकाश आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे आकाश में तरुवरे; मरुस्थल में जल और धुयें के पर्वत मेघ भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र है तैसेही यह जगत्‌लक्षण भी भासता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं अवस्तु भूत है—उपजा कुछ नहीं। हे रामजी! चित्तरूपी बालक ने जगत् जालरूपी सेना रची है सो असत्य है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक भूत भ्रान्तिमात्र हैं और उनमें सत्य प्रतीति करनी मूर्खता है। बालक की कल्पना में सत्य प्रतीति बालक ही करते हैं और जो इस जगत् का आश्रय करके सुख की इच्छा करते हैं वे मानो आकाश के धोने का यत्न करते हैं और उनका सर्वयत्न व्यर्थ है। यह सब जगत् भ्रान्तिरूपहै; इसमें जो आस्था करके इसके पदार्थ पाने का यत्न करते हैं सो जैसे कहीं पुत्र पाने का यत्न करें सो व्यर्थ है, तैसेही जगत् में जो सुख के पाने का यत्न करते हैं सो व्यर्थ यत्नहै। हे रामजी! यह पृथ्वी आदिक जो सम्पूर्ण भूत पदार्थ भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र है और जो भ्रान्तिमात्र है तो इनकी उत्पत्ति किससे और कैसे कहिये? जो मूर्ख बालक हैं उनको पृथ्वी आदिक जगत् के पदार्थ सत्य भासते हैं ज्ञानवान् को ये सत्य नहीं भासते और अज्ञानी को सत्य भासते हैं पर उनसे हमको क्या प्रयोजन है? जैसे सोये को स्वप्न में आत्म अनुभवसत्ता ही पृथ्वी, पहाड़ और नदियां जगत् हो भासता है पर वे सब आकार भासते भी निराकाररूप हैं तैसेही यह जगत् आकारसहित भासता है परन्तु आकार कुछ बना नहीं—निराकार सत्ताही जगत्‌रूप हो भासती है और यह जगत् निराकार ही है पर और कुछ नहीं आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणेऽभावप्रतिपादनन्नाम सप्तदशाधिकद्विशततमस्सर्गः ॥ २१७ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि; जगत् अविद्यमान है पर अज्ञान से स्वप्ने की नाईं सत्य भासता है इससे विद्यमान भी है और जैसे स्वप्ने का नगर शून्यरूप है तैसेही यह जगत् अज्ञानरूप है सो अज्ञान क्या है और कितने काल की अविद्या हुई है; किसको है और इसका प्रमाण क्या है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ तुमको जगत् दृष्टि आता है सो सब अविद्या है। वह अविद्या अनन्त है और देश और काल से इसका अन्त कदाचित् नहीं होता। जिसका अपने वास्तव स्वरूप का अज्ञान है उसको सत् दिखाई देता है। इस पर एक इतिहासहै सो सुनिये। हे रामजी! आत्मरूप चिदाकाश के अणु में अनन्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं। उनमें से एक ब्रह्माण्ड इसी का सा है और उस ब्रह्माण्ड के जगत में तुरमत नाम एक देश है जिसका राजा विपश्चित् था। वह एक समय अपनी सभा में बैठा था और उसके चारों दिशा में उसकी बड़ी तेजवान् सेना उपस्थित थी। वह अग्नि देवता के सिवा और किसी देवता को न पूजता था और बड़ी लक्ष्मी से शोभित और बहुत गुणों और ऐश्वर्य से सम्पन्न था। एक काल में वह सभा में बैठा था कि, पूर्व दिशा की ओर से हरकारा आया और उसने कहा, हे भगवन्! तुम्हारा जो पूर्वदिशा का मण्डलेश्वर था वह जरासे मृतक होके मानो यम को जीतने गया है इससे पूर्वदिशा की रक्षा करो क्योंकि, वहां और मण्डलेश्वर आता है। हे रामजी! इस प्रकार वह कहता ही था कि, दूसरा हरकारा पश्चिम से आया और कहने लगा कि हे भगवन्! तुमने जो पश्चिम दिशा का मण्डलेश्वर किया था सो तप से मृतक होगया है और वहां एक और मण्डलेश्वर आता है इसलिये वहां की रक्षा करो। हे रामजी! इस प्रकार दूसरा हरकारा कह रहा था कि, एक और हरकारा आया और उसने कहा कि, हे भगवन्! दक्षिण दिशा का मण्डलेश्वर पूर्व पश्चिम की रक्षा के निमित्त गया था सो मार्ग ही में मृतक हुआ इस से दोनों की रक्षा के निमित्त सेना भेजो क्योंकि एक दृढ़शत्रु आया है और विलम्ब का समय नहीं है शीघ्रही सेना भेजिये। हे रामजी! इस

प्रकार सुनकर राजा बाहर निकला और कहने लगा कि सब सेना मेरे पास होकर दिशाओं की रक्षा के निमित्त जावे और बड़े बड़े शस्त्र, हाथी, घोड़े, रथ आदिक सेना लेजावो । हे रामजी ! इस प्रकार राजा कहता ही था कि, एक और पुरुष आया और बोला कि, हे भगवन् ! उत्तरदिशा की ओर जो तुम्हारा मण्डलेश्वर था उसके ऊपर और शत्रु आपड़ा है और बड़ा युद्ध होता है इससे उसकी रक्षा के निमित्त शीघ्रही सेना भेजो अब विलम्ब का समय नहीं है और आगे कई दुष्ट चले आते हैं । मैं फिरा जाता हूं क्योंकि, मेरा स्वामी युद्ध करता है । हे रामजी ! इस प्रकार कह कर वह चला गया तब द्वारपाल ने आकर कहा कि, हे भगवन् ! उत्तर दिशा का मण्डलेश्वर आया है आज्ञा हो तो ले आऊं । राजा ने कहा, लेआवो । वह उसे लेआया और उस मण्डलेश्वर ने राजा के सन्मुख आकर प्रणाम किया । राजा ने देखा कि, उसके अङ्ग टूट गये हैं और मुख से रुधिर चला जाता है पर ऐसी अवस्था में भी उस धैर्यसंयुक्त मण्डलेश्वर ने कहा कि, हे भगवन् ! मेरे अङ्गों की यह दशा हुई है । मैं तुम्हारा देश रखने को चला था पर मेरे ऊपर शत्रु आन पड़ा और मेरी सेना थोड़ी थी इस कारण दौड़कर तुम्हारे पास आया हूं कि; प्रजा की रक्षा करो । हे रामजी ! जब इस प्रकार उसने कहा तब राजा ने सब मन्त्रियों को बुलाया । मन्त्री राजा के पास आये और बोले, हे भगवन् ! अब तीन उपाय छोड़ो और एक उपाय करो अर्थात् एक नम्रता, दूसरा धन देना और तीसरा बुद्धिभेद ये तीनों अब नहीं चाहिये । ये दुष्ट नम्रता माननेवाले नहीं हैं क्योंकि, नीच और पापी हैं और धन इस कारण न देना चाहिये कि, ये आधीन हैं और बुद्धि करि भेद भी नहीं जानते क्योंकि; सब मिलके इकट्ठे हुये हैं इससे ये तीनों उपाय छोड़ो और एक उपाय करो कि, युद्ध हो अब विलम्ब का समय नहीं है क्योंकि उनकी सेना निकट आई है—अब उत्साहसहित कर्म करना है प्राणों की रक्षा नहीं चाहिये । हे रामजी ! जब इस प्रकार मन्त्रियों ने कहा तब राजा ने आज्ञा की कि, सब सेना मेरी आज्ञा से उनके सन्मुख जावे और निशान, नगारे, हस्ती,

घोड़ा, रथ, पियादे सेना के साथ जावें। इस प्रकार जब राजा ने कहा तब सब विद्यमान सेना आन स्थित हुई और नौबत नगारे बजाने लगे। जब नाना प्रकार के शस्त्रों सहित चारों प्रकार की सेना इकट्ठी हुई तब राजा ने कहा, हे साधो! तुम आगे जावो। सेना आगे हो उसके पीछे सेनापति जावें और शत्रुओं के साथ युद्ध करो मैं भी स्नान करके आता हूं। हे रामजी! इस प्रकार कहकर राजा ने मन्त्री को भेजा और आप गङ्गाजल से स्नानकर एक स्थान में अग्नि का कुण्ड था उसके निकट जाकर हवन करने लगा। जब अग्नि प्रज्वलित हुई तब राजाने कहा; हे भगवन्! इतना काल मुझको व्यतीत हुआहै कि, यथाशास्त्र मैं बिचरता रहा; अपनी प्रजा सुखी रक्खी; अभय राज्य किया; शत्रु को नाश करके सिंहासन के नीचे दबाया और आप सिंहासन पर बैठाहूं। पातालवासी दैत्य भी मैंने जीत रक्खे हैं; दशों दिशा अपने आधीन की हैं; सातों समुद्र पर्यन्त सब मेरे भयसे काँपते हैं और सब ठौर में मेरी कीर्ति होरही है। रत्नोंके स्थान मेरे भरेहुये हैं और वस्त्र, सेना, घोड़े और हाथी भी बहुत हैं। मैंने बड़े भोग भी भोगकर बड़े बड़े दानभी किये हैं और सिद्ध और देवताओं में भी मेरा यश हुआ है। निदान सब ओर मेरा यश हुआ है; शरीर भी बूढ़ा हुआ है और क्षोभभी बड़ा प्राप्त हुआ है इससे अब मेरा जीने से मरना भला है। हे भगवन्! मैं तुमको शीश निवेदन करता हूं; कृपा करके लो। यदि मुझपर प्रसन्न होना तब एककी चार मूर्ति देना कि, चारों ओर जाऊं और जहां मुझको कुछ कष्ट हो वहां दर्शन देना। हे रामजी! इस प्रकार कहकर उसने खड्ग निकाला और अपना शीश काट-कर अग्नि में डाल दिया तब धड़भी आपही अग्नि में जापड़ा और शीश धड़ दोनों भस्म होगये अथवा अग्नि ने भक्षण करलिये। तब उसी की सी चार मूर्ति निकल आईं और उनके उसी के से आकार वस्त्र, भूषण, मुकुट और कवच पहिरे और नानाप्रकार के शस्त्र धारे हुये उदय हुये। हे रामजी! इस प्रकार बड़े तेजसंयुक्त चारों राजा विपश्चित् प्रकट भये और रथ, हस्ती, घोड़े, प्यादे और चारोंप्रकार की सेना भी प्रकट हुई। निदान

चारों ओर से शत्रु युद्ध करनेलगे और बड़ा युद्ध होने लगा। नगर जलने लगे, बड़ा हाहाकार शब्द होनेलगा और शूरवीर युद्ध में प्राण को त्यागते और उछल २ कर लड़ते थे। बड़े रुधिर के प्रवाह चलते थे, खड्ग और बरछी की वर्षा होती थी और अग्नि का अट्ट अट्ट शब्द होता था—मानो समय विनाही प्रलय होने लगा है। निदान बड़ा युद्ध हुआ जो सूरमा थे वे युद्ध में मरने को जीना मानते थे और जीने को मरना जानते थे; ऐसा निश्चय धरके वे युद्ध करते थे और जो कायर थे वे भाग भाग जाते थे—जैसे गरुड़ के भय से सर्प भागजाते हैं और सूरमे सन्मुख होकर लड़ते थे। इस प्रकार बड़ा युद्ध होने लगा और रुधिर की नदियां चलीं जिनमें हाथी, घोड़े, रथ और सूरमे बहते जाते थे और बड़े बड़े वृक्ष और नगर गिरते और बहते जाते थे। मांस भक्षण के निमित्त योगिनी भी आ उपस्थित हुईं। जो जो युद्ध में मृतक हो उसको अप्सरा और विद्याधरी विमान पर चढ़ाकर स्वर्ग को लेजाती थीं। हे रामजी! इस प्रकार जब युद्ध हुआ तब राजा विपश्चित् की सेना सब शून्य होगई अर्थात् थोड़ी होगई। राजा ने सुना कि, सेना बहुत मारीगई है इसलिये उसने सवार होकर देखा कि, सेना थोड़ी रहगई है इससे एक एक राजा एक एक ओर को गया अर्थात् चारों राजा चारों ओर गये और विचार करने लगे कि, यह महागम्भीर सेनारूपी समुद्र है, इसमें शस्त्ररूपी जल है, धाररूपी तरङ्ग है और सूरमेरूपी मच्छ हैं। ऐसा जो समुद्र है उसको अगस्त्य होकर मैं पानकरूं—ऐसे विचारकर उसने उद्यम किया क्योंकि; शत्रु की विशेष सेना देखी—एक तो आगे ही को चली आवें, दूसरे बहुत सूरमे तेज से सेना को जलावें और तीसरे बहुत सेना आवे। ऐसी तीन प्रकार की सेना के राजा ने तीन उपाय किये। प्रथम उसने वायव्यास्त्र हाथ में लिया और परमात्मा ईश्वर को नमस्कार कर और मन्त्र पढ़के पवन का अस्त्र चलाया। इससे—अँधेरी आगई और जितनी सेना आगे चली आती थी वह सब उलटी उड़ने लगी। फिर उसने मेघरूपी अस्त्र चलाया तब वर्षा होने लगी और उससे जो तेज उनकी सेना को जलाता था वह शीतल होगया। उसके अनन्तर उसने

शिवअस्त्र चलाया उसमें से प्रथम शस्त्रों की नदी चली, फिर त्रिशूलों की नदी चली, फिर चक्रों की नदी चली, फिर वज्र की नदी चली, बरछी की नदी चली; बिजली की नदी चली और अग्नि इत्यादिक की नदी चली और दूसरे शस्त्रों और अस्त्रों की वर्षा हुई। जब इस प्रकार नदियां चलीं तब जो कुछ सेना सन्मुख आती थी सो मृतक होगई। जैसे कमलिनी काटीजाती है तैसेही शूरवीर काटेगये। कोई पहाड़ों की कन्दराओं में गिरें और वहां से उड़कर समुद्र में जापड़ें और कोई सुमेरु की कन्दराओं में जाकर छिपें और समुद्र में जाकर डूबें–जैसे अज्ञानी विषयों में डूबते हैं। इस प्रकार दोनों ओर से सेना शून्य हुई और चारों दिशाओं की सेना नष्ट होगई। नीच से नीच देशों के और पहाड़ की कन्दराओं के रहनेवाले सब बहते जावें। हे रामजी! कई शस्त्रों से और कई आंधी से उड़े सो सब क्षेत्रों में जापड़े और कई वन में और कई नीचे देशों में गिरे। जो पुण्य-वान् थे वे उत्तम क्षेत्र में जापड़े और मृतक होकर वे स्वर्ग में गये और पापी नीच देशों में जापड़े उससे दुर्गति को प्राप्त हुये। कई पिशाच हुये, कितनों को विद्याधरियां लेगईं और कई ऋषीश्वरों के स्थानों में जीतकर जापड़े उनकी उन्होंने रक्षा की। इसी प्रकार कितने बाणों से छेदे हुये नाश हुये और कई रुधिर की नदियों में बहते समुद्र की ओर चले गये। हे रामजी! जब सब सेना शून्य होगई तब आकाश शुद्ध हुआ। जैसे ज्ञानी का मन निर्मल होताहै तैसे ही आकाश अधिक क्षोभसे रहित भया। जब सब सेना शून्य होगई तब चारों राजा आगे चले। हे रामजी! निदान चारों विपश्चित् चारों दिशाओं के समुद्रों पर जापहुँचे, तब उन्होंने क्या देखा कि, बड़े गम्भीर समुद्र हैं; कहीं रत्न और कहीं हीरा, मोती इत्यादिक चमकते हैं और बड़े गम्भीर समुद्र में बड़े मच्छ और तरङ्ग उछलते हैं और रेती में नाना प्रकार के लौंग, इलायची, चन्दन इत्यादिक के वृक्ष समुद्र पर जाकर देखे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चितसमुद्रप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकाष्टादशस्सर्गः॥ २१८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार राजा विपश्चित् समुद्र के पार जा पहुँचा तब उसके साथ जो मन्त्री पहुँचे थे उन्होंने राजा को सब स्थान दिखाये जो बड़े गम्भीर थे। बड़े गम्भीर समुद्र जो पृथ्वी के चहुँफेर वेष्टित थे वहभी दिखाये और बड़े २ तमालवृक्ष; बावलियां; पर्वतों की कन्दरा; तालाब और नाना प्रकार के स्थान दिखाये। ऐसे स्थान राजाको मन्त्री ने दिखाकर कहा, हे राजन्! तीन पदार्थ बड़े अनर्थ और परमसार के कारणहैं—एक तो लक्ष्मी, दूसरा देह आरोग्य और तीसरा यौवनावस्था। जो पापी जीव हैं वे लक्ष्मी को पाप में लगाते हैं, देह आरोग्यता से विषय सेवते हैं और यौवन अवस्था में भी सुकृत नहीं करते, पापही करते हैं और जो पुण्यवान् हैं वे मोक्ष में लगाते हैं अर्थात् लक्ष्मी से यज्ञादिक शुभकर्म और आरोग्य से परमार्थ साधते हैं और यौवन अवस्था में भी शुभकर्म करते हैं—पाप नहीं करते। हे रामजी! जैसे समुद्र और पर्वत के किसी ठौर में रत्न होते हैं और किसी ठौर में दर्दुर होते हैं; तैसेही संसाररूपी समुद्र में कहीं रत्नोंकी नाईं ज्ञानवान् होते हैं और कहीं अज्ञानरूपी दर्दुर होतेहैं। हे राजन्! यह समुद्र मानो जीवन्मुक्तहै क्योंकि; जलसे भी मर्यादा नहीं छोड़ता और रागद्वेष से रहित है। किसी स्थान में दैत्य रहते हैं; कहीं पंखोंसंयुक्त पर्वत; कहीं वड़वाग्नि और कहीं रत्न हैं परन्तु समुद्र को न किसी स्थान में राग है; न द्वेष है। जैसे ज्ञानवान् को किसीमें रागद्वेष नहीं होता परन्तु सबमें ज्ञानवान् कोई बिरला होता है। जैसे जिस सीपी और बांस से मोती निकलते हैं सो बिरलेही होतेहैं, तैसेही तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् कोई बिरला होताहै। हे रामजी! सम्पूर्ण रचना यहां की देखो कि, कैसे पर्वत हैं जिनके किसी स्थान में पक्षी रहते हैं; किसी स्थान में विद्याधर रहतेहैं; कहीं देवियां विलास करती हैं; कहीं योगी रहते हैं और कहीं ऋषीश्वर; मुनीश्वर; कहीं ब्रह्मचारी, वैरागी आदिक पुरुष रहतेहैं। यह द्वीप है और सात समुद्र हैं जिनके बड़े तरङ्ग उछलते हैं और पर्वत का कौतुक और आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, तारे, ऋषि, मुनि को देखो और देखो कि, सबको आकाश ठौर देरहा है पर महापुरुष की नाईं आप सदा असंग

रहता है और शुभ अशुभ दोनों में तुल्य है। स्वर्गादिक शुभस्थान है और चाण्डाल पापी नरकस्थान और अपवित्र है परन्तु आकाश दोनों में तुल्य है—असंगत से निर्विकार है। जैसे ज्ञानी का मन सर्वस्थानों से निर्लेप होता है, तैसेही आकाश सर्वपदार्थों से असंग और न्यारा है और महात्मा पुरुष की नाईं सर्वव्यापी है। हे आकाश! तू कैसाहै कि, सर्वप्रकाश तुझ-में अन्धकार दृष्टि आता है—यह आश्चर्य है। हे आकाश! तू सबका आधारभूत है और जो तुझको शून्य कहते हैं वे मूर्ख हैं; दिनको तुझमें श्वेत भासता है; रात्रि को अन्धकार भासता है और संध्याकाल में तेरे में लाली भासती है पर तू तीनों से न्यारा है। ये तीनों राजसी, तामसी और सात्त्विकी गुण हैं पर तू इनके होते भी असंग है। हे आकाश! तू निर्मल है और तम तेरे में दृष्टि आता है परन्तु तू सदा ज्यों का त्यों है। यह अनित्यरूप है। चन्द्रमा तेरे में शीतल करता है, सूर्य दाहक होते हैं; तीर्थ आदिक पवित्र स्थान हैं और पापी आदिक अपवित्र स्थान हैं परन्तु तू सब में एक समान ज्यों का त्यों रहता है और वृक्ष को बढ़ने और ऊंचे होने तू ही देताहै। अपनी महिमा को तू आपही जाने और कोई तेरी महिमा पा नहीं सक्ता। तू निष्किञ्चन अद्वैत है; सबको धाररहा है और सबका अर्थ तुझसेही सिद्ध होता है। तृण और जल नीचे को जाता है और तू सबसे ऊंचा है और विभु है। अनेक पदार्थ तेरेमें उत्पन्न होते और नष्ट होजाते हैं पर तू सदा ज्यों का त्यों रहताहै। जैसे अग्नि से चिनगारे उपजते और अग्निही में लीन होजाते हैं; तैसेही तेरे में अनन्त जगत् उपजते और लीन होते हैं और तू सदा ज्यों का त्यों रहताहै। जो तुझको शून्य कहतेहैं वे मूढ़ हैं। हे राजन्! ऐसा आकाश कौन है सो भी सुनो। ऐसा आकाश आत्मा है जो चैतन आकाश है और जिसमें अनन्त जगत् उत्पन्न और लीन होजाते हैं। उसको जो शून्य कहते हैं वे महामूर्ख हैं—जो सर्वका अधिष्ठान है; सर्वको धार रहा है और सदा निःसंग है ऐसे चिदाकाश को नमस्कार है। हे राजन्! यह आश्चर्य है कि, वह सदा एकरस है पर उसमें नाना तरङ्ग भासते हैं—यही माया है। हे राजन्!

एक विद्याधरी और विद्याधर थे उनके मन्दिर में एक ऋषि आ निकला पर उस विद्याधर ने उनका आदरभाव न किया इससे ऋषीश्वर ने शाप दिया कि; तू द्वादशवर्ष पर्यन्त वृक्ष होगा। निदान वह विद्याधर वृक्ष होगया पर अब जो हम आये हैं हमारे देखतेही वह शाप से मुक्त हो वृक्ष-भाव को त्यागकर फिर विद्याधर हुआ है। यह ईश्वर की माया है कि, कभी कुछ होजाता है और कभी कुछ होजाता है। हे मेघ ! तू धन्य है ! तेरी चेष्टा भी सुन्दर है; तीर्थ में सदा तेरा स्नान होता है; तू सबसे ऊंचे विराजता है और सब आचार तेरा भला दृष्टि आता है परन्तु एक तुझमें नीचता है कि, ओले की वर्षा करता है जिससे खेतियां नष्ट हो जाती हैं और फिर नहीं उगतीं। तैसेही अज्ञानी की चेष्टा देखनेमात्र सुन्दर है और हृदय से मूर्ख हैं उनकी संगति बुरी है और ज्ञानवान् की चेष्टा देखने में भली नहीं तौभी उनकी संगति कल्याण करतीहै। हे राजन् ! सब में नीच श्वान है क्योंकि; जो कोई उसके निकट आता है उसको काट लेता है, घर घर में भटकता फिरता और मलीनस्थानों में जाता है; तैसेही अज्ञानी जीव श्रेष्ठपुरुषों की निन्दा करता है पर मन में तृष्णा रखता है और विषयरूपी मलीन स्थानों में गिरता है। वह मूर्ख मनुष्य मानो श्वान है और श्वान से भी नीचहै। ब्रह्माने सम्पूर्ण जगत् को रचाहै परन्तु उसमें श्वान सबसे नीच है पर श्वान क्या समझताहै सो सुनो। एक पुरुष ने श्वान से प्रश्न किया कि, हे श्वान ! तुझसे कोई नीच है अथवा नहीं ? तब श्वान ने कहा कि, मुझसे भी नीच मूर्ख मनुष्य है और उससे मैं श्रेष्ठ हूं क्योंकि; प्रथम तो मैं सूरमा हूं; दूसरे जिसका भोजन खाता हूं उसकी रक्षा करता हूं और उसके द्वारे बैठा रहता हूं पर मूर्ख से ये तीनों कार्य नहीं होते। इससे मैं उससे श्रेष्ठ हूं क्योंकि; मूर्ख को देहाभिमान है इससे वह श्वान से भी नीच है। हे राजन् ! परमअनर्थ का कारण देहाभिमान है। देहाभिमान से जीव परम आपदा को प्राप्त होता है। वह मूर्ख नहीं मानो कौवा है जो सबसे ऊंची टहनी पर बैठकर कां कां करता है। हे राजन् ! कमल की खानों के ताल के निकट एक कौवा जा निकला तो क्या देखे

कि, भँवर बैठे कमल की सुगन्ध लेते हैं; उनको देखकर वह हँसने लगा और कां कां शब्द किया। तब उसको देख भँवरे हँसे कि, यह कमल की सुगन्ध क्या जाने; तैसे ही जिज्ञासी भँवरे के समान हैं जो परमार्थ रूपी सुगन्ध लेते हैं। जो अज्ञानरूपी कौवे हैं वे परमार्थरूपी सुगन्ध नहीं जानते इस कारण मूर्ख को देखकर जिज्ञासी हँसते हैं जो आत्मरूपी सुगन्ध को नहीं जानते। अरे कौवे! तू क्यों हंस की रीस करता है हंस तो हीरे और मोती चुगनेवाले हैं और तू नीचस्थानों को सेवनेवाला है। मन्त्री ने कहा, हे कोयल! तुम कमल को देखकर क्या प्रसन्न होते हो? प्रसन्न तो तब हो जब वसन्त ऋतु हो पर यह तो वर्षाकाल का समय है– यह फूल ओलों से नष्ट हो जावेंगे। हे राजन्! कोयलरूपी जो जिज्ञासी हैं उनको यह उपदेश है। हे जिज्ञासी! जो सुन्दर पदार्थ तुमको दृष्टि आते हैं इनको देखकर तुम क्यों प्रसन्न होते हो? प्रसन्न तो तब हो जो यह सत्य हों पर यह तो मिथ्या हैं और अविद्या के रचे हैं। तुम क्यों प्रसन्न होते हो? अपने कुल में जा बैठो और अज्ञानी का मार्ग छोड़ दो। जैसे कौवा हंसों में जा बैठता है तौ भी उसका चित्त गन्दगी के भोजन में होता है और हंस का आहार जो मोती है उन मोतियों की ओर देखता भी नहीं; तैसेही अज्ञानी जीव कदाचित् सन्तों की संगति में जाभी बैठता है तौ भी उसका चित्त विषयों की ओर ही भ्रमता फिरता है और स्थिर नहीं होता। जैसे कोयल का बच्चा कौवे को माता पिता जानकर उनमें जा बैठता है तब उनकी संगति से यह भी गन्दगी के भोजन करनेवाला हो जाता है इससे कोयल उसको बर्जन करते हैं कि, रे बेटा! तू कौवे की संगति मत बैठ, अपने कुल में बैठ क्योंकि; तेरा भी नीच आहार हो जावेगा; तैसेही जिज्ञासी जो अज्ञानी का संग करता है तो उसके अनुसार उसको भी विषयों की तृष्णा उत्पन्न होती है तब उसको बर्जन करते हैं कि, रे जिज्ञासी! तू मूर्ख अज्ञानियों में मत बैठ; अपना कुल जो सन्तजन हैं उनमें बैठ। जैसे कोयल के बच्चे को कौवे सुख देनेवाले नहीं होते; तैसेही मूर्ख तुझको सुख देनेवाले नहीं होंगे। मन्त्री फिर कहने लगा; अरी ईल!

तू क्यों हंस की रीस करती है ? तू भी बहुत ऊंचे उड़ती है परन्तु हंस का गुण तेरे में कोई नहीं। जब तू मांस को पृथ्वी पर देखती है तब वहां गिरपड़ती है और हंस नहीं गिरते; तैसेही जो मूर्ख हैं वे सन्तों की नाईं ऊंचे कर्म भी करते हैं परंतु विषयों को देखकर गिरतेहैं पर सन्त नहीं गिरते तो मूर्ख सन्तों की रीस कैसे करें। फिर मन्त्री ने कहा; हे बगला! तू हंस की रीस क्या करता है ? अपने पाखण्ड को छुपाकर तू आपको हंस की नाईं उज्ज्वल दिखाता है पर जब मछली निकलती है तब तू खालेता है; यही तेरे में अवगुण है। हंस मानसरोवर के मोती चुगनेवाले हैं और तू गढ़ेमें से तृष्णा करके मछली खानेवाला है; तू क्यों आपको हंस मानता है ? तैसेही अज्ञानी जीव विषयों की तृष्णा करते हैं और ज्ञानवान् विवेक से तृप्त हैं; उनकी रीस अज्ञानी क्यों करता है ? हे राजन्! जो हंस हैं वे सदा अपनी महिमा में रहते हैं और अपना जो मोती का आहार है उसको भोजन करते हैं; दूसरे किसी पदार्थ का स्पर्श नहीं करते। जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा को देखकर शोभा पाते हैं—चन्द्रमा विना शोभा नहीं पाते तैसेही बुद्धि भी तब शोभा पाती है जब ज्ञान उदय होता है—आत्मज्ञान विना बुद्धि शोभा नहीं पाती। बड़े बड़े सुगन्धवाले वृक्ष का माहात्म्य भवँरेही जानते हैं और जीव नहीं जानते। इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! समुद्र के किनारे पर राजा विपश्चित् को मन्त्रियों ने ऐसे कहकर फिर कहा; हे राजन्! अब पृथ्वीनगर के मण्डलेश्वर स्थापन करो। हे रामजी! जब ऐसे मन्त्री ने कहा तब सर्वदिशाओं के मण्डलेश्वर स्थापन किये गये और चारों राजा जो अपनी २ दिशा के समुद्रपर बैठे थे उन्होंने अपने अपने मन्त्री से कहा, हे साधो! अब हमने समुद्र पर्यन्त दिग्विजय की है और अब हमारी जय हुई है; अब चेत जो दृश्य है सो दृश्य विभूति को देखो। समुद्र के पार द्वीप है, फिर उस समुद्र के पार और द्वीप है; फिर समुद्र है और फिर द्वीप है और इसी प्रकार सप्त द्वीप और सात समुद्र हैं पर उनके पार क्या है ? इस प्रकार सर्वदृश्य देखने की इच्छा करके उन्होंने अग्निदेवता का आवाहन किया तब उनकी

दृढ़भावना से अग्निदेवता सन्मुख आन स्थित हुये और बोले, हे राजन्! जो कुछ तुमको वाञ्छा है सो मांगो तब राजा ने कहा, हे भगवन्! ईश्वर की माया से पाञ्चभौतिक दृश्य में जो भूत हैं उनके देखने की हमारी इच्छा है सो पूर्ण करो। हे देव! हम इसी शरीर से दृश्य देखने जावें और जब यह शरीर चलने से रहित हो तब मन्त्रसत्ता से जावें पर जहां मन्त्र की भी गम नहीं वहां सिद्धि से जावें और जहां सिद्धि की भी गम नहीं वहां मन के वेग से जावें और मृतक कभी न हों। यह वर हमको दो। हे रामजी! जब इस प्रकार राजा ने कहा तब अग्नि ने कहा कि, ऐसेही हो। इस प्रकार कहकर अग्नि अन्तर्धान होगये। जैसे समुद्रसे तरङ्ग उठकर फिर लय होजावें तैसेही अग्नि अन्तर्धान होगये। जब राजा विपश्चित् वर पाकर चलने को समर्थ हुआ तब जितने मन्त्री और मित्र थे वे रुदन करने लगे और बोले, हे राजन्! तुमने यह क्या निश्चय किया है? ईश्वर की माया का अन्त किसीने नहीं पाया इससे तुम अपने स्थानको चलो; यह क्या निश्चय तुमने धारा है? हे रामजी! इस प्रकार मन्त्री कहते रहे परन्तु राजा ने उनको आज्ञा देकर एक एक दिशाके समुद्रमें प्रवेश किया और चारों दिशाओं में चारों राजाओं ने गमन किया पर जो बड़े बड़े शक्तिमान् मन्त्रीगण थे वे साथही चले तब राजा मन्त्रशक्ति से समुद्रको लांघगया। कहीं पृथ्वी पर चले और कहीं ऊंचे चले इसी प्रकार और द्वीप में जा निकला, तब बड़ा समुद्र आया उसमें प्रवेश करगया जिसमें बड़े तरङ्ग उछलतेथे और जिसका सौ योजन पर्यन्त विस्तार था। कभी अध को और कभी ऊर्ध्व को जाते थे। हे रामजी! ऐसे तरङ्ग उछलें मानो पर्वत उछलते हैं जब वे ऊर्ध्व को उछलें तब स्वर्ग पर्यन्त उछलते भासें और जब अध को जावें तब पाताल पर्यन्त चलते भासें। जैसे पानी में तृण फिरता है, तैसेही राजा फिरे। इस प्रकार कष्ट से रहित समुद्र और दिशा को लांघगया परन्तु मध्य में जो वृत्तान्त हुआ है सो सुनो। क्षीरसमुद्र में एक मच्छ रहता था जिसको सर्वदेवता प्रणाम करते थे और जो विष्णु भगवान् के मच्छ अवतार के परिवार में

था। जब राजा ने क्षीरसमुद्र में प्रवेश किया तब राजा को उसने मुखमें डाल लिया पर राजा मन्त्र के बल से उसके मुख से निकल गया। आगे फिर एक मच्छ मिला उसने भी उसे मुख में डाललिया पर उससे भी वह निकल गया। फिर आगे पिशाचिनी का देश था वहां राजा को पिशाच ने काम से मोहित किया। फिर उसने दक्षप्रजापति की कुछ अवज्ञा की जिससे उसने शाप दिया और राजा वृक्ष होगया। निदान कुछ काल वृक्ष रह कर फिर छूटा तो एक देश में दर्दुर हुआ और सौ वर्ष पर्यन्त खाईं में पड़ा रहा। फिर उससे छूटकर मनुष्य हुआ तब किसी सिद्धके शापसे शिला होगया और सौ वर्ष पर्यन्त शिलाही रहा। उसके उपरान्त अग्नि देवता ने शिला से छुड़ाया तो फिर मनुष्य हुआ। तब वह सिद्ध आश्चर्यवान् हुआ। कि, मेरे शाप को दूर करके यह मनुष्य क्योंकर हुआ है—यह तो मुझ से भी बड़ा सिद्ध है। ऐसे जानकर उसने उसके साथ मैत्री की। इसी प्रकार दूसरे समुद्रों को भी यह लांघता गया और क्षीरसमुद्र खारी समुद्र और इक्षु के रसके समुद्र को लांघकर द्वीपों को लांघता गया। फिर एक अप्सरा से मोहित हुआ और बहुत काल में वहां से छूटा—तो एक देश में पक्षी हुआ और बहुत काल पर्यन्त पक्षी रहकर छूटा तो एक गोपी पिशाचिनी थी उसने बैल बना के उसे रक्खा और दूसरे विपश्चित् ने बैल विपश्चित् को उपदेश करके जगाया। निदान हे रामजी! चारों दिशाओं में चारों विपश्चित् भ्रमते फिरे। दक्षिण दिशा को तो पिशाचिनी से मोहित हुआ इससे उसने बहुत जन्म पाये और पूर्वका बहता हुआ मच्छ के मुखमें चलागया और उसने निकालडाला, इससे लेकर वह अवस्था देखी। उत्तर दिशा का जो हुआ उसने वह अवस्था देखी और पश्चिम दिशाका हेमचू पक्षी की पीठ पर प्राप्त हुआ और उसने उसे कुश द्वीपमें डाल दिया इससे उसने भी अनेक अवस्था पाई। हे रामजी! एक एक विपश्चित्ने भिन्न भिन्न योनि और अवस्था का अनुभव किया। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि, विपश्चित् एकही था और उनकी संवित् भी एकही थी और आकार भी एकही था तो भिन्न भिन्न रुचि कैसे हुई जो एक पक्षी हुआ;

दूसरा वृक्ष हुआ और इससे लेकर वासना के अनुसार अनेक शरीर पाते फिरे। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है? उनकी संवित् एकही थी परन्तु भ्रम से भिन्नता होजाती है। जैसे किसी पुरुष को स्वप्न आता है तो उसमें पशु पक्षी होजाते हैं और भिन्न २ रुचि भी होजाती है, तैसेही उसकी भी भिन्न २ रुचि होगई। जैसे देखो कि, शरीर तो एकही होता है पर उसमें नेत्र, श्रवण, नासिका, जिह्वा और त्वचा की रुचि भिन्न २ होती है और अपने २ विषयों को ग्रहण करती हैं सो एकही शरीर में अनेकता भासती है; तैसेही उनकी एकही संवित् थी परन्तु संकल्प भिन्न २ होगया था इससे मन के फुरने से एक में अनेक भासीं। जैसे एक ही योगेश्वर इच्छा करके और और शरीर धरलेताहै और एक में अनेक होजाता है। एक सहस्राबाहु अर्जुन था सो एक भुजा से युद्ध करता था; दूसरी भुजा से दान करता था और एक से लेता देता था; इसी प्रकार सब भुजाओं से चेष्टा करता था—वे भी भिन्न २ हुये। एकही शरीर में भिन्न २ चेष्टा होती है। जैसे विष्णु भगवान् कहीं दैत्यों के साथ युद्ध करते; कहीं कर्म करते हैं; कहीं लीला करते हैं और कहीं शयन करते हैं सो संवित् तो एकही है परन्तु चेष्टा भिन्न २ होती है; तैसेही उनकी संवित् में अनेकरुचि हुई तो इसमें क्या आश्चर्य है? हे रामजी! इस प्रकार उन्होंने जन्म से जन्मान्तर को अविद्यक संसार में देखा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वे तो बोधवान् विपश्चित् थे और बोधवान् जन्म नहीं पाता फिर उनको किस प्रकार जन्म हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वे विपश्चित् बोधवान् न थे परन्तु बोधके निकट धारणा अभ्यासवाले थे। जो वे ज्ञानवान् होते तो दृश्यभ्रम देखने की इच्छा क्यों करते? इससे वे ज्ञानवान् न थे—धारणा अभ्यासी थे और समुद्र को लांघगये और मच्छ के उदर से बल करके निकले सो यह योगशक्ति प्रसिद्ध है। ज्ञान का लक्षण सुसंवेद है असंवेद नहीं। राजा विपश्चित् ज्ञानवान् न थे इस कारण देश देशान्तर में भ्रमते रहे और ज्ञान विना अविद्यक संसार में जन्म मरण में फटकते रहे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ज्ञानवान् योगेश्वरों को भूत, भविष्य, वर्तमान;

तीनों कालों का ज्ञान कैसे होताहै और एकदेश में स्थित हुआ सर्वत्र कर्मों को कैसे करता है सो सब मुझसे कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अज्ञानी की वार्त्ता यह मैंने तुमसे कही है और जितना जगत् है सो सब चिदाकाश स्वरूप है। जिनको ऐसी सत्ता का ज्ञान हुआ है वे महापुरुष हैं। जैसे स्वप्ने से कोई पुरुष जागे तो स्वप्ने की सब दृष्टि उसको अपनाही स्वरूप भासती है और उसमें बन्धायमान नहीं होता। हे रामजी ! यह सब नानात्व भासती है सो नाना नहीं और अनाना भी नहीं केवल आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थित है। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, तैसेही आत्मा अपने आपमें स्थित है। ये तीनों काल भी ज्ञानवान् को ब्रह्मरूप होजाते हैं और सब जगत् भी ब्रह्मरूप हो जाते हैं और द्वैतभाव उसका मिट जाता है। ऐसे ज्ञानवान् को ज्ञानी ही जानता है और कोई नहीं जान सक्ता जैसे अमृत को जो पान करता है सोही उसके स्वाद को जानता है और कोई जान नहीं सक्ता। हे रामजी ! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तो तुल्य भासती है परन्तु ज्ञानी के निश्चय में कुछ और है और अज्ञानी के निश्चय में और है। जिसका हृदय शीतल हुआ है वह ज्ञानवान्है और जिसका हृदय जलता है वह अज्ञानी है। वह बांधा हुआ है और ज्ञानवान् का शरीर चूर्ण हो अथवा उसे राज्य प्राप्त हो तौ भी उसको रागद्वेष नहीं उपजता; वह सदा ज्यों का त्यों एक रस रहता है। वह जीवन्मुक्त है परन्तु यह लक्षण उसका कोई जान नहीं सक्ता वह आपही जानता है। शरीर को दुःख और सुख भी प्राप्त होता है; मरता और रुदन भी करता है और हँसता, लेता और देता भी है और इससे लेकर सब चेष्टा करता दृष्टि आता है पर वह अपने निश्चय में न दुःखी होता है; न सुखी होता है; न देता है और न लेता है—सदा ज्यों का त्यों रहता है। हे रामजी ! व्यवहार तो उसका भी अज्ञानी की नाईं ही दृष्टि आता है परन्तु हृदय से उसका यह निश्चय होता है और अद्भुत पद में स्थित रहता है कदाचित् नहीं गिरता। उसका परम उदित-रूप होता है और रागसहित भी दृष्टि आता है परन्तु हृदय से राग किसी

में नहीं करता; क्रोध करता भी दृष्टि आता है परन्तु उसको क्रोध कदाचित् नहीं होता। जैसे आकाश शुभपदार्थ को धारता है और धूम और बादल से ढापा भी दृष्टि आता है परन्तु किसी से स्पर्श नहीं करता; तैसेही ज्ञानवानों में सब क्रिया दृष्टि आती हैं परन्तु अपने निश्चय में वह किसी से स्पर्श नहीं करता। जैसे नटवा स्वांग ले आताहै और चेष्टा करता दीखता है पर हृदय से अपने नटत्व भाव में निश्चय होता है; तैसेही ज्ञानवान् को भी सर्व क्रिया में अपना आत्मभाव निश्चय होता है। जैसे जिसको स्वप्न आता है वह यदि स्वप्ने में भी अपना पूर्वरूप स्मरण रखता है तो स्वप्ने के पदार्थ में बर्तता है तौ भी उनके सुख में आपको सुखी नहीं मानता और दुःख में आपको दुःखी नहीं मानता–सब सृष्टि उसको अपना ही स्वरूप भासती है; तैसेही ज्ञानवान् को अपने स्वरूप के निश्चय से सुख दुःख का क्षोभ नहीं होता। जो ऐसे पुरुष हैं उनको दुःख से क्या होता है? जैसे उनकी इच्छा होती है, तैसेही सिद्ध होकर भासती है। हे रामजी! यह जितनी सृष्टि है सो सब चित्सत्ता में है और योगीश्वर पुरुष उसी में स्थित होकर जहां प्राप्त हुआ चाहते हैं वहां अन्तवाहक से जा प्राप्त होते हैं और तीनों काल उनको विद्यमान होते हैं साधन कुछ नहीं परन्तु ज्ञानी अवश्य करके किसी निमित्त यत्न नहीं करते–जैसा प्राप्त होता है उसीमें प्रसन्न रहते हैं। हे रामजी! एक काल में ब्रह्माजी ऊर्ध्वमुख से सामवेद को गायन करते थे और सदाशिव का मान न किया तब सदाशिव ने अपने नख से ब्रह्मा का पांचवां शीश काटडाला परन्तु ब्रह्माजी के मनमें कुछ क्रोध न फुरा। उन्होंने विचारा कि; मैं चिदाकाश हूं सो अबभी चिदाकाश हूं मेरा तो कुछ गया नहीं; शिर से मेरा क्या प्रयोजन है? न कुछ हानि है और न कुछ लाभ है। हे रामजी! इस प्रकार सर्व विश्व रचनेवाले ब्रह्माजी का शिर कटा; जो वे फिर भी शिर लगा लेते तो समर्थ थे परन्तु उनको लगाने का कुछ प्रयोजन न था और न लगाने में कुछ हानि भी न थी। उनका भी निश्चय सदा आत्मपद में है इस कारण उन्हें कुछ क्षोभ न हुआ। हे रामजी! काम के सदृश और कोई विकार नहीं है। जो सदाशिव

पार्वती को बायें अङ्ग में धारते हैं और कामदेव के पांच बाण चलने से सर्वविश्व मोहित होता है उस काम को सदाशिव ने भस्म कर डाला तो क्या स्त्री के त्यागने को वे समर्थ नहीं हैं परन्तु उनको रागद्वेष कुछ नहीं इस कारण त्याग नहीं करते। त्यागने से उन्हें कुछ अर्थ की सिद्धि नहीं होती और रखने से कुछ अनर्थ नहीं होता—जो कुछ प्रवाहपतित कार्य होता है उसको करते हैं कुछ खेद नहीं मानते इससे वे जीवन्मुक्त हैं। विष्णुजी सदा विक्षेप में रहते हैं; आपभी कर्म करते हैं और लोगों से भी कराते हैं और शरीर धारते हैं और त्याग भी देते हैं इत्यादिक क्षोभ में रहते हैं सो त्यागने को समर्थ भी हैं परन्तु त्यागने में उनका कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता और करने में कुछ हानि नहीं होती। उनको लोग कई गुणों से गुणवान् जानते और मुझको तो शुद्ध चिदाकाशरूप भासता है। मूर्ख कहते हैं कि, विष्णु श्यामसुन्दर हैं परन्तु वे शुद्ध चिदाकाशरूप हैं और सदा शुद्धस्वरूप में उनको अहंप्रत्यय है। आकाशमार्ग में जो सूर्य स्थित हैं वे कभी ऊर्ध्व की ओर और कभी नीचे जाते हैं तो क्या उनको स्थित होने की सामर्थ्य नहीं है? है परन्तु चलना और ठहरना दोनों उनको सम है और खेद से रहित होकर प्रवाहपतित कार्य में रहते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं। जीवन्मुक्त चन्द्रमा भी है सो घटते घटते सूक्ष्म होते दृष्टि आते हैं और कभी बढ़ते जाते; शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष उनमें होते हैं और रात्रि को प्रकाशते हैं तो क्या वे अपनी क्रिया को त्याग नहीं सक्के? नहीं त्यागसक्के हैं; परन्तु क्षोभ से रहित होकर प्रवाहपतित कार्यमें बिचरते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं। अग्नि सदा दौड़ता रहता है और यज्ञ और होम के भोजन करने को सर्व ओर जाता है तो क्या उसको गृह में बैठने की सामर्थ्य नहीं है? है परन्तु जो कुछ अपना आचार है उसको वह नहीं त्यागता क्योंकि, ठहरने में उसका कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता और चलने में कुछ हानि नहीं होती—दोनों में वे तुल्य जीवन्मुक्त हैं। हे रामजी! बृहस्पति और शुक्र को बड़ा क्षोभ रहता है; बृहस्पति देवताओं के जय के निमित्त यत्न करते हैं और शुक्र दैत्योंकी जय के निमित्त यत्न

करते रहते हैं तो क्या इनको त्यागने की सामर्थ्य नहीं है परन्तु दोनों इनको तुल्य हैं इसकारण खेदसे रहित होकर अपने कार्य में बिचरते हैं इससे जीवन्मुक्त पुरुष हैं। हे रामजी! राज्य में बड़े क्षोभ होते हैं पर राजा जनक आनन्दसहित राज्य करताहै और जीवन्मुक्त है और प्रह्लाद, बलि वृत्रासुर और मुरआदि दैत्य जीवन्मुक्त हुये हैं और समताभावको लिये खेद से रहित नाना प्रकारकी चेष्टा करते रहे हैं और हृदय से शीतल और जीवन्मुक्त रहे हैं। राजा नल, दिलीप और मान्धाता आदि ने भी समताभावको ले राज्य कियाहै सो जीवन्मुक्त हैं। ऐसेही अनेक राजा हुये हैं और उनमें रागवान् भी दृष्टि आये हैं परन्तु हृदय में रागद्वेष से रहित शीतलचित्त रहे हैं। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य होती है परन्तु इतना भेद है कि; ज्ञानी का चित्त शान्त है और अज्ञानी का चित्त क्षोभ में है; इष्ट की प्राप्ति में वह हर्षवान् होताहै और अनिष्ट की प्राप्ति में द्वेष करता है और ग्रहणत्याग की इच्छा से जलता है क्योंकि, उसको संसार सत्य भासताहै और जिसका चित्त शान्त होगयाहै उसके भीतर न रागहै, न द्वेष है; स्वाभाविक शरीर की जो प्रारब्ध होतीहै उसमें कुछ अपना अभिमान नहीं होता। उसके निश्चय में सब आकाशरूपहै, जगत् कुछ बना नहीं—भ्रममात्रहै जैसे आकाश में नीलता भ्रममात्र है और दूर नहीं होती तैसेही यह जगत् भ्रम से भासताहै परन्तु है नहीं। जैसे आकाश में नानाप्रकार के तरुवरे भासते हैं, तैसेही आत्मा में जगत् भासताहै और जैसे काष्ठ की पुतली काष्ठरूप होती है, तैसेही जगत् भ्रमरूपहै। जो कुछ भ्रम से भिन्न भासता है वह सब भविष्यन्नगर में असत्य है और जो कुछ तुम्हें दृष्टि आता है सो कुछ नहीं केवल सर्व कलना से रहित, शुद्धसंवित् जड़ता विना मुक्तस्वभाव एक अद्वैत आत्मसत्ता स्थित है और केवल आकाशरूप है, उसमें जगत् भी वही रूप है और पाषाण की शिलावत् घन मौन है। तुमभी उसी रूप में स्थित होरहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनन्नाम द्विशताधिकैकोनविंशतितमस्सर्गः ॥ २१६ ॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! उस राजा विपश्चित् ने फिर क्या किया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो उनकी दशा हुईहै सो तुम सुनो। पश्चिम दिशाका विपश्चित् वन में बिचरता फिरता था कि, एक मत्त हाथी के वश पड़ा और उसने उसे पहाड़ की कन्दरा में मारडाला; दूसरे विपश्चित् को राक्षस लेगया और वड़वाग्नि में डाल दिया वहां अग्नि ने उसे भक्षण करलिया; तीसरे विपश्चित् को एक विद्याधर स्वर्ग में लेगया और उसने वहां इन्द्रको मान न किया इसलिये उसको इन्द्रने शाप दिया और यह भस्म होगया; इसी प्रकार चौथा भी हुआ, उसके एक मच्छ ने आठ टुकड़े करडाले। जैसे प्रलयकाल में लोक भस्म होजातेहैं तैसेही चारों विपश्चित् मरगये। तब उनकी संवित् आकाशरूप हुई परन्तु उनको जगत् देखने का संस्कार था इससे उनकी आकाशरूप संवित् फिर आन फुरी उससे जाग्रत् भासने लगा और पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, स्थावर, जङ्गमरूप जगत् को देखा और अन्तवाहक शरीर से चेष्टा करनेलगे। उनमेंसे एक पश्चिम दिशा का विपश्चित् विष्णु भगवान् के स्थान में मुआ निर्वाण होगया इससे उसकी संवित् में सर्व अर्थ शून्य होगये और वह वहां मुक्त हुआ। एक मच्छ के उदरमें सहस्र वर्ष पर्यन्त रहा उससे फिर एक देश का राजा हुआ और वहां राज्य करनेलगा। एक चन्द्रमा के निकट जा वहां मरके चन्द्रमा के लोक को प्राप्त हुआ और एक बहता हुआ समुद्र के पार हुआ और आगे चौरासी हजार योजन पृथ्वी को लांघता गया। इसी प्रकार चारों फिर जिये और समुद्र, वन और पर्वतों को लांघते गये। सबके आगे दशसहस्र योजन सुवर्ण की पृथ्वी आई जहां देवताओंके बिचरने के स्थान हैं उनको भी वे लांघते गये। आगे लोकालोक पर्वत आया जिसने सर्व पृथ्वी को आवरण किया है–जैसे वृक्षों से वनका आवरण होताहै, तैसेही उस पर्वतने पञ्चाशत्कोटि योजन पृथ्वी को आवरण किया है और पचास हजार योजन ऊंचा है–वे उस लोकालोक पर्वत में पहुँचे जहां तारों का नक्षत्र चक्र फिरता है उसको भी वे लांघ गये। उसमें आगे एक शून्यनक्षत्र था सो महाशून्य था जहां पृथ्वी, जल आदिक तत्त्व कोई न था, एक शून्य

आकाश है जहां न कोई स्थावरपदार्थ है, न कोई जङ्गम पदार्थ है, न कोई उपजै है, न कभी मिटै है उसको भी उन्होंने देखा। इसी प्रकार सम्पूर्ण भूगोल को उन्होंने देखा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! भूगोल क्याहै; किसके आश्रय है और उसके ऊपर क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे गेंद होताहै, तैसे भूगोल है और संकल्प के आश्रय है। सर्व ओर उसके आकाश है और सूर्य, चन्द्रमा; नक्षत्र सहित चक्र फिरताहै। हे रामजी! यह कोई वस्तु से बुद्धि नहीं बनी संकल्प से बनी है; जो वस्तु बुद्धि से बनी होती है सो क्रम से स्थित होती है और यह तो विपर्ययरूप से स्थित है। पृथ्वी के चहुँफेर दशगुण जल है उससे परे दश गुणी अग्नि है; उसके उपरान्त दशगुणा वायु है और फिर ब्रह्माण्ड खप्पर है। वह खप्पर एक अध को और एक ऊर्ध्व को गया है और उसके मध्य में जो पोल है वह आकाश है जो वज्रसार की नाईं है और अनन्तकोटि योजन का उसका विस्तार है। उस ब्रह्माण्ड का उसमें भूगोल है; उसके उत्तरदिशा में सुमेरु पर्वत है, पश्चिमदिशा में लोकालोक पर्वत है और ऊपर नक्षत्रचक्र फिरता है। जहां वह जाता है वहां प्रकाश होता है और जहां वह नहीं होता वहां तमरूप भासता है सो सब संकल्परचना है। जैसे बालक संकल्प से पत्थर का बट्टा रचे, तैसेही चैतन्यरूपी बालक ने यह संकल्परूपी भूगोल रचा है। हे रामजी! जैसे जैसे उस समय उसमें निश्चय हुआ है तैसेही स्थित हुआ है। जहां पृथ्वी स्थित रची है वहांहीं स्थित है और जहां खात रची है वहां खातही है परन्तु जैसे स्वप्ने में अविद्यमान प्रतिभा होती है, तैसेही भूगोल है। हे रामजी! जिनको ऐसा ज्ञान है कि, सुमेरु में देवता और पूर्वादि दिशाओं में मनुष्य आदि जीव रहते हैं वे पण्डितहैं तौ भी मूर्ख हैं क्योंकि, ये तो भ्रममात्र हैं कुछ बने नहीं। जो हमसे आदि लेकर तत्त्ववेत्ता हैं उनको ज्ञाननेत्रसे आत्मसत्ता ज्यों की त्यों भासती है और जो मन सहित षट्इन्द्रियों से अज्ञानी देखते हैं उनको जगत् भासता है। ज्ञानवानों को परब्रह्म सूक्ष्म ज्यों का त्यों भासता है और जगत् को वे असत् जानते हैं। जैसे आकाश में अनहोती नीलता भासती है;

तैसेही आत्मा में अनहोता जगत् भासता है। जैसे नेत्रदूषण से आकाश में तरुवरे भासते हैं, तैसेही अज्ञान से आत्मा में जगत् भासता है सो केवल आभासमात्र है। हे रामजी! जगत् उपजा भी दृष्ट आता है और नष्ट होता भी दृष्ट आता है परन्तु बना कुछ नहीं। जैसे संकल्प का रचा फुरना अपने मन में भासता है, तैसेही यह जगत् मनमें फुरता है। यह सम्पूर्ण भूगोल संकल्प में स्थित है। जैसे बालक संकल्प करके पत्थर का बट्टा रचे, तैसेही भूगोल है। यह ब्रह्माण्ड सौकोटि योजन पर्यन्त है। उसका एक भाग अध को गया है और एक ऊर्ध्व को गया है, उसमें चैतन्यरूपी बालक ने यह भूगोल रचा है सो संकल्प के आश्रय खड़ा है। जैसे आदि नीति हुई है, तैसेही भासता है। इस पृथ्वी के उत्तर दिशा में सुमेरु पर्वत है; पश्चिम दिशा की ओर लोकालोक पर्वत है और ऊपर तारों और नक्षत्रों का चक्र फिरता है; लोकालोक के जिस ओर वह आता है उस ओर प्रकाश होता है। भूगोल ऐसे है, जैसे गेंद होता है और उसके एक ओर पाताल है, एक ओर स्वर्ग है, एक ओर मध्यमण्डल है और आकाश सर्व ओर है। पातालवासी जानते हैं कि, हम ऊर्ध्व हैं, आकाशवासी जानते हैं कि, हम ऊर्ध्व हैं और मध्यवासी जानते हैं कि, हम ऊर्ध्व हैं। इस प्रकार भूगोल है और उसके ऊपर महातमरूप एक शून्य खातहै। जहां न पृथ्वी है, न कोई पहाड़ है, न स्थावर है, न जङ्गम है और न कुछ उपजा है। उसके ऊपर एक सुवर्ण की दीवार है जिसका दश सहस्र योजन विस्तार है और उसके ऊपर दशगुणा जलहै सो पृथ्वी को चहुँफेर से घेरे है; उससे परे दशगुण अग्निहै; फिर दशगुण वायुहै और उसके आगे आकाशहै। फिर ब्रह्माकाश महाकाशहै जिसमें अनन्त ब्रह्माण्ड स्थितहैं परन्तु ये तत्त्व जैसे तृण के आश्रय कपूर ठहरता है तैसेही पृथ्वी भाग के आश्रय ठहरे हैं वास्तव में शुद्ध चैतन्य ब्रह्म का चमत्कार है जो आकाशवत् निर्मल है और उसमें कोई क्षोभ नहीं है, परमशान्त, अनन्त और सर्व का अपना आप है। हे रामजी! अब फिर विपश्चित् की वार्ता सुनो। जब वे लोकालोक पर्वत पर जा स्थित हुये तब एक शून्य खात उनको दृष्ट आया और पर्वत से

उतर कर खात में वे जापड़े। वह खात भी पर्वत के शिखर पर था और वहां शिखर की नाईं बड़े २ पक्षी भी रहते थे इस कारण उन पक्षियों ने चोंचों से इनके शरीर चूर्ण किये, तब उन्होंने अपने स्थूल शरीर को त्यागकर अपना सूक्ष्म अन्तवाहक शरीर जाना। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आधिभौतिकता कैसे होती है और अन्तवाहक क्या है? फिर उन्होंने क्या किया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे कोई संकल्प से दूर से दूर चला जावे तो जिस शरीर से जावे वह अन्तवाहक है और जो पाञ्चभौतिक शरीर प्रत्यक्ष भासता है सो आधिभौतिक है। जब मार्ग से कहीं जाने को चित्त का संकल्प उठता है तब स्थूल शरीर गये विना नहीं पहुँच सक्ता और जब मार्ग में चले तब पहुँचता है सोही आधिभौतिक है और यह प्रमाद से होता है। जैसे रस्सी के भूलने से सर्प भासता है, तैसेही आत्मा के अज्ञान से आधिभौतिक शरीर भासता है और जैसे कोई मनोराज का पुर बनाके उसमें आपभी एक शरीर बनकर चेष्टा करता फिरे तो उसे जबतक पूर्व का शरीर विस्मरण नहीं हुआ तब तक वह संकल्प शरीर से चेष्टा करता है सो अन्तवाहक है। उस शरीर को संकल्पमात्र जानना–विशेष बुद्धि कहाती है। आत्मबोध हुये विना जो उस संकल्प शरीर में दृढ़ भावना होती है तो उसका नाम आधिभौतिक होता है–सो घट बढ़ कहाता है। इससे जब तक शरीर का स्मरण है तब तक आधिभौतिकता नहीं होती और जब शरीर का विस्मरण होता है तब आधिभौतिकता होजाती है। विपश्चित् जो आधिभौतिक थे सो आत्मबोध से रहित थे और जहां चाहते थे तहां चले जाते थे पर स्वरूप से न कुछ अन्तवाहक है और न कुछ आधिभौतिक है; प्रमाद से ये सब आकार भासते हैं। वास्तव में सब चिदाकाशरूप है, दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी सब वही है और उसी के प्रमाद से विपश्चित् अविद्यक जगत् को देखने चले थे वह अविद्या भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं–ब्रह्मही है तो ब्रह्म का अन्त कहां आवे। वहां से वे चले परन्तु जानें कि, हमारा अन्तवाहक शरीर है। निदान वे सब पृथ्वी को लांघ गये फिर जल को भी लांघ गये और उसके परे जो सूर्यवद्दाहक

अग्नि का आवरण प्रकाशवान् है तिसको भी लांघ कर मेघ और वायु के आवरण को भी लांघे । फिर आकाशको भी लांघगये तो उसके परे ब्रह्माकाश था जहां उनको संकल्प के अनुसार फिर जगत् भासनेलगा पर उसको भी लांघे । फिर आगे ब्रह्माकाश मिला और फिर उनको पञ्चभूत भासि आये उसके आवरण को भी लांघ गये । फिर उस ब्रह्माण्ड कपाट के परे तत्त्वों को लांघकर ब्रह्माकाश आया उसमें एक और पाञ्चभौतिक ब्रह्माण्ड था उसको भी लांघ गये पर अन्त न पाया । स्वरूप के प्रमादसे दृश्यके अन्तलेनेको वे भटकते फिरे पर अविद्यारूप संसारका अन्त कैसे आवे ? यह जीव तबतक अन्त लेनेको भटकता फिरता है जबतक अविद्या नष्ट नहीं होती; जब अविद्या नष्ट होगी तभी अविद्यारूप संसार का अन्त होगा । हे रामजी ! जगत् कुछ बना नहीं वही ब्रह्माकाश ज्योंका त्यों स्थित है और उसका न जानना ही संसार है । जबतक उसका प्रमाद है तबतक जगत् का अन्त न आवेगा और जब स्वरूप का ज्ञान होगा तब अन्त आवेगा । सो वह जानना क्या है ? चित्त को निर्वाण करनाही जानना है । जब चित्त निर्वाण होगा तब जगत् का अन्त आवेगा । जबतक चित्त भटकता फिरता है तबतक संसार का अन्त नहीं आता । इससे चित्त का नामही संसार है । जब चित्त आत्मपद में स्थित होगा तब जगत् का अन्त होगा । इस उपाय विना शान्ति नहीं प्राप्त होती ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चिदुपाख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकविंशतिस्सर्गः ॥ २२० ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! वे जो दो विपश्चित् थे उनकी क्या दशा हुई, यह भी कहो ? वे तो दोनों एकही थे । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक तो निर्वाण हुआ था और दूसरा ब्रह्माण्डों को लांघता २ और एक ब्रह्माण्ड में गया तब वहां उसको सन्तों का संग प्राप्त हुआ और उनकी संगति से उसको ज्ञान प्राप्त हुआ । ज्ञानको पाकर वह भी निर्वाण होगया । एक अबतक दूर फिरता है और एक यहां पहाड़की कन्दरा में मृग होकर बिचरता है । हे रामजी ! यह जगत् आत्मा का आभास है । जैसे सूर्य

की किरणों में जल भासता है और जबतक किरणें हैं तबतक जलाभास निवृत्त नहीं होता; तैसेही जबतक आत्मसत्ता है तबतक जगत् का चमत्कार निवृत्त नहीं होता और आत्मा के जाने से जगत्सत्ता नहीं रहती। जैसे किरणों के जाने से जलाभास नहीं रहता और जो जल भासता है तौभी किरणोंही की सत्ता भासती है; तैसेही आत्मा के जाने से आत्मा की सत्ताही भासती है—भिन्न जगत् की सत्ता नहीं भासती। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! विपश्चित् एकही था तो एकही संवित् में भिन्न २ वासना कैसे हुई? एक मुक्त होगया, एक मृग होकर फिरता रहा और एक आगे निर्वाण होगया—यह भिन्नता कैसे हुई है? संवित् तो एकही थी उसमें कम और अधिक फल कैसे प्राप्त हुये सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वासना जो होती है सो देश, काल और पदार्थों से होती है। उसमें जिसकी दृढ़ भावना होती है उसकी जय होती है। जैसे एक पुरुष ने मनोराज से अपनी चार मूर्त्तियां कल्पीं और उनमें भिन्न २ वासना स्थापन की पर संवित् तो एक है, यदि पूर्व का शरीर भूलकर उसमें दृढ़ होगये तो जैसी २ भावना उनके शरीर में दृढ़ होती है वही प्राप्त होती है; तैसेही संवित् में नाना प्रकार की वासना फुरती हैं। जैसे एकही संवित् स्वप्न में नाना प्रकार धारती है और भिन्न २ वासना होती है; तैसे ही आकाशरूप संवित् में भिन्न २ वासना होती है। हे रामजी! संवित् उनकी एक थी परंतु देश, काल और क्रिया से वासना भिन्न २ होगई और पूर्व की संवित् स्मृति भूल गई उससे उन्होंने न्यून और अधिक फल पाये। वह संवित् क्या रूप है? हे रामजी! देश से देशांतर को जो संवेदन जाती है उसके मध्य जो संवित्सत्ता है सो ब्रह्मसत्ता है। जैसे जाग्रत् के आकार को छोड़ा और स्वप्न नहीं आया उसके मध्य जो ब्रह्मसत्ता है वह किञ्चनरूप जगत् होकर भासती है परन्तु किञ्चन भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं। वह एक है, न दो है; एक कहना भी नहीं होता तो दो कहां हो और जगत् कहां हो? यही अविद्या है कि, है नहीं और भासती है। जिस २ आकार में जैसी २ वासना फुरती है और जो दृढ़ होजाती

है उसकी जय होती है। इस कारण एक विपश्चित जनार्दन विष्णु के स्थान में निर्वाण होगया और दूसरा दूर से दूर ब्रह्माण्ड को लांघता गया और उसको सन्तों का संग प्राप्त हुआ जिससे ज्ञान उदय होकर वासना मिटगई और उसका अज्ञान नष्ट होगया। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है, तैसेही जब उसका अज्ञान नष्ट होगया तब वह उस पदको प्राप्त भया जिसके अज्ञान से दूर से दूर भटकता है, तीसरा दूर से दूर भटकता फिरता है और चौथा पहाड़ की कन्दरा में मृग होकर विचरता है। हे रामजी! जगत् कुछ वस्तु नहीं, अज्ञानके वश से भटकता है इसलिये अज्ञानही जगत् है। जबतक अज्ञानहै तबतक जगत्है। जब ज्ञान उदय होता है तब वह अज्ञान को नाश करता है और तभी जगत् का भी अभाव होजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो मृग हुआ है सो कहां २ फिरा है और कहां २ स्थित हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दो ब्रह्माण्ड को लांघते दूर से दूर चले गये थे, उनमें से एक अबतक चलाजाता है और पृथ्वी, समुद्र, वायु, आकाश उसकी संवित् में फुरते हैं। यह तो दूर से दूर चलागया है और हमारी आधिभौतिक दृष्टि का विषय नहीं और एक ब्रह्माण्ड को लांघता गया था पर अब इस जगत् में पहाड़ की कन्दरा का मृग हुआहै सो हमारी इस दृष्टि का विषय है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ये तो दूर गये थे और उनमें से एक इस जगत् में अब मृग हुआ है; तुमने कैसे जाना कि, आगे वह ब्रह्माण्ड में था और अब इस जगत् में है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं ब्रह्म हूं और सर्व ब्रह्माण्ड मेरे अङ्ग हैं। मुझको सबका ज्ञान है। जैसे अवयवी पुरुष अपने अङ्गों को जानता है कि, यह अङ्ग फुरता है और यह नहीं फुरता; तैसे ही मैं सबको जानता हूं। जहां जहां यह लांघता गया है उसे बुद्धि के नेत्रों से मैं जानता हूं परन्तु तुम नहीं जान सके। जैसे समुद्र में अनेक तरङ्ग फुरते हैं और समुद्र सबको जानता है, तैसे ही मैं समुद्ररूप हूं और मेरे में ब्रह्माण्डरूपी तरङ्गें हैं इससे मैं सबको जानता हूं। हे रामजी! वह जो मृग है सो दूर ब्रह्माण्ड में फिरता है। वह विपश्चित् यह सामान्य मृग नहीं है परन्तु जैसा है सो सुनो। हे

रामजी! एक ब्रह्माण्ड इस हमारे ब्रह्माण्ड सा है जिसका ऐसा ही आकार है, ऐसी ही चेष्टा है, एक ही सा जगत् है और स्थावर जङ्गम सब एक ही से हैं। वहां जो देश, काल और क्रिया का बिचरना होता है सो इसके ही समान होता है। जैसे नाम रूप आकार यहां होते हैं; जैसे बिम्ब का प्रतिबिम्ब तुल्य ही होताहै और जैसे एकही आकार का एक प्रतिबिम्ब जल में होता है और द्वितीय दर्पण में होता है सो दोनों तुल्य हैं; तैसे ही दोनों ब्रह्माण्ड एक समान हैं और ब्रह्मरूपी आदर्श में प्रतिबिम्बित होते हैं। इस कारण यह मृग विपश्चित् है इसी निश्चय को धारे हुये है यह और वह दोनों तुल्य हैं सो पहाड़ की कन्दरा में है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह विपश्चित् अब कहां है और उसका क्या आचार है? अब मैं जानता हूं कि, उसका कार्य हुआ है। अब चलकर मुझको दिखाओ और उसको दर्शन देकर अज्ञान फांस से मुक्त करो। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले, हे अङ्ग! जब रामजी ने इस प्रकार कहा तब मुनिशार्दूल वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जहां तुम्हारा लीला का स्थान है और तुम क्रीड़ा करते हो उस ठौर में वह मृग बांधा हुआ है। यह तुमको तिरगदेश के राजा ने दिया है सो बहुत सुन्दर है इस कारण तुमने उसे रक्खा है। उसको मँगावो। तब रामजी ने अपने सखाओं से जो निकटवर्ती थे कहा कि, उस मृग को सभा में ले आओ। हे राजन्! जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब वे सभा में उस मृग को ले आये और जितने श्रोता सभा में बैठे थे वे बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुये। वह मृग बड़ी ग्रीवा किये महासुन्दर और कमल की नाईं नेत्रवाला था; कभी वह घास खाने लगे कभी सभा में खेले और कभी ठहर जावे। तब रामजी ने कहा, हे भगवन्! आप इसको कृपा करके मनुष्य योनि को प्राप्त कीजिये और उपदेश करके जगाइये कि, हमारे साथ प्रश्न उत्तर करे; अभी तो यह प्रश्न उत्तर नहीं करता? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार इसको उपदेश न लगेगा क्योंकि; जिसको कोई इष्ट होता है उसीसे उसको सिद्धि होती है; इससे मैं इसके इष्ट को ध्यान करके बुलाता हूं-उससे इसका कार्य सिद्ध होगा। बाल्मीकिजी

बोले, हे राजन्! इस प्रकार कहकर वशिष्ठजी ने कमण्डलु हाथ में लेकर तीन आचमन कीं और पद्मासन बांध, नेत्र मूंद और ध्यान में स्थित होकर अग्नि का आवाहन किया। हे वह्ने! यह तेरा भक्त है इसकी सहायता करो और इस पर दया करो। तुम सन्तों का दयालु स्वभाव है। जब ऐसे वशिष्ठजी ने कहा तब सभा में बड़े प्रकाश को धारे अग्नि की ज्वाला काष्ठ अङ्गार से रहित प्रकट हुई और जलने लगी। जब ऐसे अग्नि जागी तब वह मृग उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके चित्त में बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई। तब वशिष्ठजी ने नेत्र खोलकर अनुग्रह सहित मृग की ओर देखा उससे उसके सम्पूर्ण पाप दग्ध होगये। वशिष्ठजी ने अग्नि से कहा, हे भगवन्, वह्ने! यह तेरा भक्त है। अपनी पूर्व की भक्ति स्मरण करके इस पर दया करो और इसके मृग शरीर को दूर करके इसको विपश्चित् शरीर दो कि, यह अविद्या भ्रम से मुक्त हो। हे राजन्! इस प्रकार वशिष्ठजी अग्नि से कहकर रामजी से बोले, हे रामजी! अब यही मृग अग्नि में प्रवेश करेगा तब इसका मनुष्य शरीर हो जावेगा। ऐसे वशिष्ठजी कहते ही थे कि, अग्नि को वह मृग देखकर एक चरण पीछे को हटा और उछलकर अग्नि में प्रवेश कर गया। जैसे बाण निशान में आ प्रवेश करते हैं, तैसे ही उसने प्रवेश किया। हे राजन्! उस मृग को कुछ खेद न हुआ बल्कि उसको अग्नि आनन्दवान् दृष्ट आया तब उसका मृग शरीर अन्तर्धान हो गया और महाप्रकाश रूप मनुष्य शरीर को धारे अग्नि से निकला। जैसे कपड़े के ओढ़े से स्वांगी स्वांग धारण कर निकल आता है, तैसे ही वह निकल आया और अति सुन्दर वस्त्र पहिरे हुये, शीश पर मुकुट कण्ठ में रुद्राक्ष की माला और यज्ञोपवीत धारण किये था। अग्निवत् वह तेजवान् था किन्तु सभा में जो बैठे थे उनसे भी अधिक उसका तेज था—मानो अग्नि को भी लज्जित किया है। जैसे सूर्य के उदय हुये चन्द्रमा का प्रकाश लज्जित हो जाता है, तैसेही वह सर्व से प्रकाशवान् हो गया। फिर जैसे समुद्र से तरङ्ग निकलकर लीन हो जाता है, तैसे ही वह अग्नि अन्तर्धान हो गये। उसको देखकर रामजी आश्चर्य को प्राप्त

हुये और सर्वसभा विस्मय को प्राप्त हुई। तब बड़े प्रकाश को धारनेवाला विपश्चित् निकलकर ध्यान में लग गया और विपश्चित् से आदि लेकर इस शरीरपर्यन्त सर्व शरीर स्मरण करके नेत्र खोल वशिष्ठजी के निकट आ साष्टाङ्ग प्रणाम कर बोला, हे ब्राह्मण! ज्ञान के सूर्य और प्राण के दाता! तुमको मेरा नमस्कार है। हे राजन्! जब इस प्रकार उसने कहा तब वशिष्ठजी ने उसके शिर पर हाथ रक्खा और कहा, हे राजन्! तू उठ खड़ा हो। अब मैं तेरी अविद्या दूर करूंगा और तू अपने स्वरूप को प्राप्त होगा। तब राजा विपश्चित् ने उठकर राजा दशरथ को प्रणाम किया और बोला, हे राजन्! तेरी जय हो। तब राजा दशरथ ने आसन से उठकर कहा, हे राजन्! तुम बहुत दूर फिरते रहे हो अब यहां मेरे पास बैठो। तब राजा विपश्चित् विश्वामित्र आदिक जो ऋषि बैठे थे उनको यथायोग्य प्रणाम करके बैठ गया और राजा दशरथ ने विपश्चित् को जो बड़े प्रकाश को धारे हुये था भास कहके बुलाया और कहा, हे भास! तुम संसार भ्रम के लिये चिरकाल फिरते रहे हो; थके होगे अब विश्राम करो और जो जो देश काल क्रिया की हैं और देखा है सो कहो। यह आश्चर्य है कि, अपने मन्दिर में सोये हो और निद्रादोष से गढ़े में गिरते फिरे और देश देशान्तरों को भटकते फिरे। यही अविद्या है। हे भास! जैसे वन का बिचरनेवाला हाथी ज़ंजीर से बन्धायमान हुआ दुःख पाता है, तैसेही तुम विपश्चित् भी थे और अविद्या से जगत् के देखने के निमित्त भटकते रहे। हे राजन्! जगत् कुछ वस्तु नहीं है पर भासता है यही माया है। जैसे भ्रम से आकाश में नाना प्रकार के रङ्ग भासते हैं तैसेही अविद्या से यह जगत् भासते हैं और सत्य प्रतीत होते हैं पर सब आकाशरूप ही आकाश में स्थित हैं। उस आकाश में जो कुछ तुमने आत्मरूपी चिन्तामणि के चमत्कार से देखा है सो कहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चिच्छरीरप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकैकविंशतितमस्सर्गः॥ २२१॥

दशरथजी बोले, हे भास! बड़ा आश्चर्य है कि, तुम विपश्चित्

बुद्धिमान् थे और चेष्टा से तुमने अविपश्चित् होकर बुद्धि की है जो अविद्या के देखने को समर्थ हुये थे। यह जगत् प्रतिभा तो मिथ्या उठी है; असत्य के ग्रहण की इच्छा तुमने क्यों की? वाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार राजा दशरथ ने कहा तब प्रसंग पाकर विश्वामित्र बोले, हे राजन्; दशरथ! यह चेष्टा वही करता है जिसको परम बोध नहीं होता और केवल मूर्ख और अज्ञानी भी नहीं होता क्योंकि; जिसको परम बोध और आत्मा का अनुभव होता है वह जगत् को अविद्यक जानता है और उस अविद्यक जगत् के अन्त लेने को इतना यत्न नहीं करता क्योंकि, वह तो असत्य जानता है और जो देहअभिमानी मूर्ख अज्ञ है वह भी यह यत्न नहीं करता क्योंकि; उसको देखने की सामर्थ्य भी नहीं होती। इससे मध्य भावी है। जो आत्मबोध से रहित है और जिसने आधिभौतिक शरीर त्याग किया है वह भी संसार देखने का यत्न करता है और जिनको उत्तम बोध नहीं हुआ वे इस प्रकार बहुत भटकते फिरते हैं। हे राजन्! इसी प्रकार बटधाना भी इसी ब्रह्माण्ड में फिरते हैं। सत्तर लक्ष वर्ष उनके व्यतीत हुये हैं कि, इसी ब्रह्माण्ड में फिरते हैं। उनने भी यही निश्चय धारा है कि, पृथ्वी कहां तक चली जाती है। इस निश्चय से वह निवृत्त नहीं होते और इसी ब्रह्माण्ड में भ्रमते हैं और उनको अपनी वासना के अनुसार विपरीत और ही और स्थान भासते हैं। हे राजन्! जैसे किसी बालक का रचा संकल्प का वृक्ष आकाश में हो, तैसेही यह भूगोल ब्रह्मा के संकल्प में स्थित है और संकल्प से गेंद के समान आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पांचों तत्त्वों का ब्रह्माण्ड रचा है और उसके चौफेर चींटियां फिरती हैं; जिस ओर से वे जाती हैं सो ऊर्ध्व भासता है सो औरही और निश्चय होता है, तैसेही यह संकल्प के रचे भूगोल के किसी कोण में बटधाना जीव हुआ है। हे राजन्! उसके तीन पुत्र थे, उनको यह संकल्प उदय हुआ कि, हम जगत् का अन्त देखें। इसी संकल्प से फिरते २ पृथ्वी लांघते हैं, फिर पृथ्वी और जल आता है जल लांघते हैं; फिर आकाश आता है फिर पृथ्वी, जल, वायु फिर उसी भूगोल के चहुँफेर फिरते रहे।

जैसे आकाश में गेंद हो तैसेही यह पृथ्वी आकाश में है और इसका अध-ऊर्ध्व कोई नहीं। चरण अध शिर का पासा ऊर्ध्व उसी के चौफेर घूमते रहे परन्तु अपने निश्चय से और का और जानते रहे। जब तक स्वरूप का प्रमाद है तब तक जगत् का अभाव नहीं होता और जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब जगत् ब्रह्मरूप होजाता है। जगत् कुछ बना नहीं, फुरने से भासता है जैसे स्वप्ने में अज्ञान से अनन्त जगत् दिखता है कि, यह हुआ है सो फुरना परब्रह्म में हुआ है और जो फुरने में हुआ है सो भी परब्रह्म है और कुछ बना नहीं—आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है। जैसे पत्थर की शिला घनरूप होती है, तैसे है आत्मतत्त्व चैतन्यघन है । जैसे आकाश और शून्यतामें कुछ भेद नहीं, तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछ भेद नहीं। कल्पना परब्रह्मरूप है और ब्रह्मही कल्पनारूप है। इस जड़ और चैतन्य में कुछ भेद नहीं। हे राजन्! जिसको जगत् शब्द से कहते हो वह ब्रह्मसत्ताही है। न कुछ उत्पन्न हुआ है और न प्रलय होता है—सर्व ब्रह्मही है। जैसे पहाड़ में पत्थर से इतर कुछ नहीं होता तैसेही यह जगत् ब्रह्मसत्ता से इतर कुछ नहीं। जैसे पाषाण की पुतली पाषाणरूप ही है, तैसेही जगत् ब्रह्मरूपही है। एक सूक्ष्म अनुभव अणु से अनेक अणु होते हैं। जैसे एक पहाड़ से अनेक शिला होती हैं। हे राजन्! जो ज्ञानवान् पुरुषहैं उनको जगत् ब्रह्मरूप भासताहै और जो अज्ञानी हैं उनको नाना प्रकार का भासता है। जगत् कुछ वस्तु नहीं है परन्तु जब तक संकल्प है तब तक जगत् फुरता है। जैसे रत्नों का चमत्कार होता है, तैसेही जगत् आत्मा का चमत्कार है और चैतन्य आत्मा के आश्रय अनन्त सृष्टियां फुरती हैं सो सृष्टि सब आत्मरूपहैं आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जो जाग्रत् पुरुष ज्ञानवान् हैं उनको ब्रह्मरूपही भासता है और जो अज्ञानी हैं उनको नानाप्रकार का जगत् भासता है। हे राजन्! कई एक इसको शून्य कहते हैं कि, शून्यही है और कुछ नहीं; कई इसको जगत् कहते हैं और कई ब्रह्म कहते हैं। जैसा किसीको निश्चय होताहै उसको वहीरूप भासताहै। आत्मरूपी चिन्तामणि है, जैसा २ संकल्प उसमें फुरता है तैसा तैसाही भासता है। सबका अधि-

ष्ठान ब्रह्मसत्ताहै; जैसा २ उसमें निश्चय होताहै तैसाही तैसा होकर भासता है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य–त्रिपुटी जो भासती है सो भी ब्रह्म होकर भासती है द्वितीय कुछ वस्तु नहीं और और जो कुछ भासता है वही अज्ञान है। हे राजन्! जबतक वासना नष्ट नहीं होती तबतक दुःख भी नहीं मिटते और जब वासना मिट जावे तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप अपना आपही भासे और रागद्वेष किसी में न रहे। जैसे स्वप्न में नाना प्रकार की सृष्टि भासती हैं पर पूर्वस्वरूप स्मरण आता है तो सर्वरूप आप होजाता है और रागद्वेष मिटजाता है; तैसेही ज्ञानवान् को यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आप भासता है और समानरूप विचार से रहित होता है। पूर्व, अपूर्व और अपर को विचारना कि, यह शुभ है और यह अशुभ है; अशुभ का त्याग करना यह गुण विचार है। जबतक पूर्वापर विचार मन में रहता है तबतक जगत् में भटकता है और बांधा रहता है क्योंकि, शुभ अशुभ दोनों जगत् में हैं। जब इनका विस्मरण होजावे और सम्पूर्ण जगत् को भ्रममात्र जानकर आत्मपद में सावधान हो तब मुक्त होताहै। इस जीव को अपनी वासनाही बन्धन का कारणहै। जबतक जगत् में दुःख की वासना होती है तबतक राग द्वेष उपजता है और उससे बांधा रहता है। जिनको जगत् के सुख दुःखमें राग द्वेष की भावना नहीं उपजती और जिनकी वासना भी नष्ट होती है उनको यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आपही भासता है और जगत् में दुःखदायक कुछ नहीं भासता। उनको सब ब्रह्मही भासता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बटधानोपाख्यानवर्णनन्नाम द्विशताधिकद्वाविंशातितमः सर्गः॥ २२२॥

दशरथजी ने विपश्चित् से पूछा, हे भास! तुम चिरकाल पर्यन्त जगत् में फिरते रहे हो जिस प्रकार तुमने चेष्टा की है और जो देश, काल, पदार्थ देखे हैं सो सबही कहो। भास बोले, हे राजन्! मैं जगत् को देखता फिरा हूं और फिरता २ थक गयाहूं परन्तु देखने की जो इच्छा थी इस कारण मुझको दुःख नहीं हुआ है। जो कुछ मैंने चेष्टा की है और जो देखा है सो कहता हूं। हे राजन्! मैंने बहुत जन्म धारे हैं; और बहुत बार

मृतक हुआ हूं; बहुत बेर शाप पाया है; ऊंच नीच जन्म धारे हैं और मर मर गया हूं और बहुत ब्रह्माण्ड देखे हैं परन्तु यह सब अग्नि देवता के वर से देखे हैं। एक बार मैं वृक्ष हुआ और सहस्र वर्ष पर्यन्त फूल, फल, टास संयुक्त रहा। जब कोई काटे तब मैं दुःखी होऊँ और मेरा मन हृदय से पीड़ा पावे। फिर वहां से शरीर छूटा तब मैं सुमेरु पर्वत पर सुवर्ण का कमल हुआ और वहां का जलपान किया। फिर एक देश में पक्षी हुआ और सौ वर्ष पक्षी रह कर फिर सियार हुआ और मुझे हस्ती ने चूर्ण किया इससे मृतक होकर फिर सुमेरु पर्वत पर सुन्दर मृग हुआ और देवता और विद्याधर मेरे साथ प्रीति करने लगे। कुछ काल में मरकर फिर देवताओं के वन में मञ्जरी हुआ और वहां देवियां और विद्याधरियां मुझको स्पर्श करें और सुगन्ध लें। तब मैं देवताओं की स्त्री हुआ, फिर सिद्ध हुआ और मेरा वचन फुरने लगा; फिर मैंने और शरीर धारा और एक ब्रह्माण्ड लांघ गया। इसी प्रकार कई ब्रह्माण्ड मैं लांघ गया तब एक ब्रह्माण्ड में जो आश्चर्य देखा है सो सुनो। वहां मैंने एक स्त्री देखी जिसके शरीर में कई ब्रह्माण्ड थे इससे मैं आश्चर्यवान् हुआ और देश काल क्रिया से पूर्ण कई त्रिलोकी देखीं। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब दृष्टि आताहै; तैसे ही मुझको उसमें जगत् भासे। तब मैंने उससे कहा; हे देवि! तुम कौन हो और यह तेरे शरीर में क्या है? देवी बोली, हे साधो! मैं शुद्ध चित्शक्ति हूं और यह सब मेरे अङ्ग मेरे में स्थित हैं। मेरी क्या बात पूछनी है–यह सब जगत् जो तू देखता है चिद्रूप हैं; चैतन्य से भिन्न और कुछ नहीं और सबमें ब्रह्माण्ड त्रिलोकी स्थित है जो अपना आपही है। जो पूर्व के अपने स्वभाव में स्थित हैं उनको अपने ही में ये भासते हैं और अपना ही स्वरूप भासता है और जो स्वभाव में स्थित नहीं हैं उनको जगत् बाहर और आपसे भिन्न भासते हैं। हे राजन्! यह जगत् कुछ बना नहीं। जैसे स्वप्न में गन्धर्वनगर भासता है, तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और जैसे जल में तरङ्ग भासता है सो जलरूप है–तरङ्ग कुछ भिन्न वस्तु नहीं होते; तैसेही सब जगत् चिद्रूप में भासता है सो चैतन्य से भिन्न कुछ नहीं परन्तु

जब स्वभाव में स्थित होकर देखोगे तब ऐसेही भासेगा और जो अज्ञान दृष्टि से देखोगे तो नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आवेगा। हे राजन्, दशरथ! जब इस प्रकार उस देवी ने मुझसे कहा तब मैं वहां से चला और आगे दूसरी सृष्टि में गया तो देखा कि, वहां सब पुरुष ही रहते हैं, स्त्री कोई नहीं और पुरुष से पुरुष उत्पन्न होते हैं। उससे भी आगे और सृष्टि में गया तो वहां न सूर्य था, न चन्द्रमा था, न तारे थे, न अग्नि थी, न दिन था, और न रात्रि थी। जैसे चन्द्रमा, सूर्य और तारों का प्रकाश होता है, तैसेही सब अपने प्रकाश से प्रकाशते थे उनको देखकर मैं आगे और सृष्टि में गया तो वहां क्या देखा कि, आकाश ही से जीव उत्पन्न होकर आकाश ही में लीन होते हैं और इकट्ठे ही सब उपजते और इकट्ठे ही सब लीन होजाते हैं; न वहां मनुष्य हैं, न देवता हैं, न वेद हैं, न शास्त्र हैं, न जगत् है—इनसे विलक्षण ही प्रकार है। हे राजन्! इस प्रकार मैंने कई सृष्टियां देखी हैं जो मुझको स्मरण आती हैं। आगे और सृष्टि में गया तो वहां क्या देखा कि, सब जीव एकही समान हैं; न किसी को रोग है और न किसी को दुःख है—सब एक से गङ्गा के तीर पर बैठे हैं। हे राजन्! एक और आश्चर्य मैंने देखा है सो भी सुनो। एक सृष्टि में मैं गया तो वहां क्षीर समुद्र मन्दराचल में मथा जाता था एक ओर विष्णु भगवान् और देवता थे और मन्दराचल पर्वत रत्नों से जड़ा हुआ शेषनाग से रस्सी की नाईं लपिटा हुआ था मथने के निमित्त दूसरी ओर दैत्य लगे थे और बड़ा सुन्दर शब्द होता था। वहां वह कौतुक देखकर मैं आगे गया तो एक और सृष्टि देखी जहां मनुष्य आकाश में उड़ते फिरते थे और देवताओं की पृथ्वी पर मनुष्य बिचरते और वेदशास्त्र जानते थे। हे राजन्! एक और आश्चर्य मैंने देखा सो भी सुनो। एक सृष्टि में मैं जा निकला तो वहां मन्दराचल पर्वत पर कल्पतरु का वन था और उसमें मन्दरका नाम एक अप्सरा रहती थी। वहां जाकर मैं सो रहा तो ज्योंही रात्रि का समय आया कि, वह अप्सरा मेरे कण्ठ में आ लगी। तब मैंने जागकर उसको देखा और कहा कि, हे सुन्दरि! तूने मुझको किस निमित्त

जगाया ? मैं तो सुख से सो रहा था। तब उस अप्सरा ने कहा कि, हे राजन्! मैंने इस निमित्त तुझको जगाया है कि; चन्द्रमा उदय हुआ है और चन्द्रकान्तमणि चन्द्रमा को देखकर स्रवेगी और नदी की नाईं प्रवाह चलेगा ऐसा न हो कि, उसमें तू बह जावे। हे राजन्, दशरथ! इस प्रकार उसने कहा ही था कि, नदी का प्रवाह चलने लगा। तब वह अप्सरा उस प्रवाह को देखकर मुझे आकाश को ले उड़ी और पर्वत के ऊपर जहां गङ्गा का प्रवाह चलता था उसके तट पर मुझको स्थित किया। सात वर्ष पर्यन्त मैं वहां रहकर फिर एक और ब्रह्माण्ड में गया तो देखा कि, वहां तारा, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य कुछ भी न थे। उसको देखकर मैं और आगे गया इसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्ड मैंने देखे। हे राजन्! ऐसा देश व ऐसी पृथ्वी, नदी और पहाड़ कोई न होगा जिसको मैंने न देखा हो और ऐसी चेष्टा कोई न होगी जो मैंने न की हो। कई शरीरों के मैंने सुख भोगे हैं; कितनों के दुःख भोगे हैं और वन, कन्दरा और गुप्त स्थानों में फिरकर सब देखा परन्तु अग्नि देवता के वर को पाकर फिरता २ मैं थक गया तौ भी आगे ही चला गया और अनेक अविद्यक ब्रह्माण्ड भी देखे परन्तु अब उनका अन्त आया है कि, यह जगत् भ्रममात्र है। मैंने शास्त्रों में सुना है कि, यह जगत् है नहीं तौ भी दुःख देता है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैताल भासता है; तैसेही यह जगत् अविचार से भासता है और विचार किये से निवृत्त होजाता है। एक आश्चर्य और सुनो कि, एक ब्रह्माण्ड में मैं गया तो वहां महाआकाश था। उस महाआकाश से गिरकर मैं पृथ्वी पर आन पड़ा और वहां सो गया तब मैं महागाढ़ सुषुप्तिरूप होगया और सब जगत् का मुझे विस्मरण होगया। जब वह गाढ़ सुषुप्ति क्षीण हुई तब एक स्वप्न आया और उसमें तुम्हारा यह जगत् मुझको भासि आया। उसमें मुझको पहाड़, कन्दरा, देश और बहुत से गुप्त, प्रकट स्थान भासि आये जहां केवल सिद्धों की गम थी वहां भी मैं गया और जहां सिद्धों की भी गम न थी वहां भी मैं गया। इस प्रकार अनेक जगत् मैंने देखे परन्तु आश्चर्य है कि, स्वप्न की सृष्टि प्रत्यक्ष जाग्रत् की तरह दृष्टि आती

थी और स्वप्ने के शरीर जाग्रत् में पड़े भासते थे । इससे सब जगत् भ्रम-मात्र है और असत्य ही सत्य होकर दिखाई देता है । इस प्रकार देखकर मैं बड़े आश्चर्य में पड़ा हूं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चित्कथावर्णनन्नाम द्विशताधिकत्रयोविंशातितमस्सर्गः ॥ २२३ ॥

विपश्चित् बोले; हे राजन् ! एक सृष्टि और भी मैंने देखी है जो इसी महाआकाश में है—अर्थात् इस महाआकाश से भिन्न नहीं और जहां तुम्हारी भी गम नहीं । जैसे स्वप्ने की सृष्टि कोई जाग्रत् में देखा चाहे तो दृष्टि नहीं आती तैसेही वह सृष्टि है । हे राजन् ! पृथ्वी का एक स्थान मेरे देखते ही देखते परछाहीं की नाईं फुरने लगा और फिर उस आकाश में वही पहाड़ की नाईं भासने लगा, यहां तक कि, मनुष्यों के शरीर और दशो दिशाओं को रोक लिया और आकाश से भी बड़ा भासने लगा इससे आकाश में भी न समाता था । उसने सूर्य और चन्द्रमा को भी मेरे देखते ही देखते ढांप लिया और फिर भूकम्प सा आया मानो प्रलयकाल ही आगया । तब मैंने अपने इष्ट अग्नि देवता की ओर देखकर प्रार्थना की कि, हे भगवन् ! तुम मेरी जन्म जन्म रक्षा करते आये हो इससे अब भी रक्षा करो; मैं नष्ट होता हूं । तब अग्नि ने कहा तू भय मत कर । फिर मैंने अग्नि में जीव प्रवेश किया, तब अग्नि ने कहा कि, मेरे वाहन पर सवार होकर मेरे स्थान को चल । फिर अग्निदेव मुझको अपने वाहन तोते पर चढ़ाकर आकाश मार्ग से ले उड़ा । जब हम उड़े तब पीछे से वह शव ओतक पृथ्वी पर गिरा और उसके गिरने से सुमेरु ऐसे पर्वत भी पाताल को चले गये । वह महाशरीर सैकड़ों सुमेरु के समान गिरा और मन्दराचल, मलयाचल, अस्ताचल से लेकर जो बड़े २ पर्वत थे सो भी नीचे को चले गये । पृथ्वी में जर्जरीभाव से फटकर गढ़े पड़ गये और उसके शरीर के नीचे जो वृक्ष, मनुष्य, दैत्य, स्थावर, जङ्गम आये वे सब नष्ट होगये और बड़ा उपद्रव उदय हुआ; निदान उसके शरीर से सर्वदिशा पूर्ण होगईं और उसके अङ्ग ब्रह्माण्ड से भी पार निकलगये । हे राजन्, दशरथ! इस प्रकार मैं भयानक दशा देखकर अपने इष्टदेव अग्नि से

बोला कि, हे देव! यह उपद्रव क्योंकर हुआ; यह सब क्या है और ऐसा शरीर क्यों पड़ा है? आगे तो कोई भी ऐसा शरीर नहीं देखा सुना? अग्नि ने कहा, तू अभी तूष्णी होरह। यह सब वृत्तान्त मैं तुझसे कहूंगा पर प्रथम इसको शान्त होने दे। इस प्रकार अग्नि कहता ही था कि देवता, विद्याधर, गन्धर्व और सिद्ध जितने स्वर्गवासी थे वे सब आकर स्थित हुये और विचार करने लगे कि यह उपद्रव प्रलयकाल विना हुआ है इसके नाश करने को देवीजी की आराधना करना चाहिये। हे राजन्! ऐसे विचार करके वे देवी की स्तुति करने लगे कि; हे देवि, शववाहिनि, काकदेशीयचण्डिके! हम तेरी शरण आये हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो। ऐसे कहकर वे स्तुति करने लगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महाशववृत्तान्तवर्णनन्नाम द्विशताधिकचतुर्विंशतितमस्सर्गः॥ २२४॥

विपश्चित् बोले; हे राजन्, दशरथ! उन देवताओं ने स्तुति करके शव की ओर जो देखा तो क्या देखते हैं कि, सातों द्वीप उसके उदर में समा गये हैं; भुजाओं से सुमेरु आदिक पर्वत ढपगये हैं और उसके दूसरे अङ्ग ब्रह्माण्डको भी लांघगये हैं और साथही पातालको भी गये हैं। निदान उन की मर्यादा कहीं पाई नहीं जाती थी एक ही अङ्ग से पृथ्वी छिपगई। ऐसे देखकर विद्याधर, गन्धर्व और सिद्धों से लेकर सम्पूर्ण नभचर स्तुति करने लगे। हे अम्ब, चण्डिके! अपने गण को साथ लेकर इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो—हम तेरी शरण आये हैं। हे राजन्! जब इसप्रकार स्तुति करके देवता आराधन करने लगे तब चण्डिका आकाशमार्ग से यक्ष, वैताल, भैरव आदिक गण अपने साथ लेकर आई और जैसे मेघ सर्व दिशाओं को ढांप लेता है तैसेही सर्व ओर से उसके गणों ने आकर आकाश को ढांप लिया और चण्डिका ऐसे तेजरूप को धारेहुये चली आती थी मानों अग्नि की नदी चली आती थी। उसके रक्त नेत्र, शिर पर पक्के केश और श्वेत दांत थे और वह बड़े शस्त्र धारेहुये कई कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार था। वह सब दिशा और आकाश अपने

शरीर से आच्छादित किये; कण्ठ में मुण्डों की माला पहिने, मुरदे वाहन पर आरूढ़ और परमात्मपद में उसकी स्थिति थी। वह ऐसी महा-प्रकाशवान् थी मानो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदिक के प्रकाश को भी लज्जित कर रही है और हाथों में खड्ग, मूसल, ध्वजा, ऊखल आदिक नाना प्रकार के शस्त्र धारे आकाश में तारागण की नाईं गर्जती हुई गणों सहित इस प्रकार चली आती थी मानो समुद्र से निकली साक्षात् वड़-वाग्नि चली आती है। जब वह निकट आई तब देवता फिर प्रार्थना करने लगे कि हे अम्ब ! इसका नाश करो व अपने गणों को आज्ञा दीजिये कि; इसका भोजन करें; हम इसको देख कर बड़े शोक को प्राप्त हुये हैं और तेरी शरण हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो। हे राजन्, दशरथ ! जब इस प्रकार देवताओं ने कहा तब चण्डिका ने प्राणवायु को खींचा और जितना शव में रक्त था वह सब पान कर गई, जैसे समुद्र को अग-स्त्यजी ने पान किया था तैसेही उसने रक्त पान किया। जब उससे देवी का उदर और अङ्ग सब पूर्ण होगये और नेत्र लाल होआये तब देवी नृत्य करने लगी और उसके गण सब उस शव का भोजन करने लगे। कई मुख को खाने लगे; कई भुजा को; कई उदर को; कई वक्षस्स्थल को; कई टांगों को और कई चरणों को, इसी प्रकार उसके सब अङ्ग गण भोजन करने लगे। कई गण आंतें लेकर आकाश में सूर्य के मण्डल को गये; कई गण उस अङ्ग के अन्त पाने को उड़े सो मार्ग ही में मर गये परन्तु कहीं अन्त न पाया और देवी जो उस शव की ओर देखती थी इससे उसके नेत्रों से अग्नि निकलती थी—और उससे मांस परिपक्क होता था और गण भोजन करते थे। मांस पकने के समय जो शरीर से कहीं रक्त की बूंद निकलती थी उससे मन्दराचल और हिमाचल पर्वत लाल होगये—मानो पर्वतों ने भी लाल वस्त्र पहिरे हैं रक्त की नदियां बहने लगीं और जो बड़े सुन्दर स्थान और दिशा थीं वे सब भयानक होगईं और पृथ्वी के जीव सब नष्ट होगये पर जो पहाड़ की कन्दरा में जाकर दब रहे थे सो बच गये शेष सब नष्ट होगये। रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! तुम कहते

हो कि; उसके नीचे प्राणी आकर सब नष्ट होगये और अङ्ग उसके ऐसे कहते हो कि; ब्रह्माण्ड को भी लांघ गये एवम् फिर कहते हो कि; देवता बच रहे सो क्या कारणहै? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जो उसके शरीर और अङ्ग के नीचे आये वे तो नष्ट होगये पर मुख और ग्रीवा में कुछ भेद है तिसमें जो पोल है और गोदी और टांग के नीचे के पोल में और सुमेरु, मन्दराचल, उदयाचल और अस्ताचल पर्वतों में कुछ पोल है उनकी कन्दरा में बैठे हुये देवता बच गये और जो अङ्ग के छिद्रों में रहे वे भी बच रहे और कहने लगे कि बड़ा कष्ट है जो हमारे बैठने के कई स्थान नष्टहो गये। हाय! वे वृक्ष कहां गये, बरफ़ का पर्वत हमारा कहां गया, उनकी सुन्दरता कहां गई, वन और बगीचे कहां गये, चन्दन के वृक्ष कहां गये और वे जनों के समूह कहां गये जो हमको यज्ञ करके पूजते थे? वे ऊँचे वृक्ष कहां गये जिनके ब्रह्मलोक पर्यन्त फूल और टहनी जाती थीं और वह क्षीरसमुद्र कहां गया जिसके मथने से बड़ा शब्द हुआ था? उसके पुत्र जो रत्न, कल्पतरु और चन्द्रमा थे वे कहां गये और जम्बूद्वीप कहां गया जिसमें जम्बू के फल की नदी चलाई थी और सुवर्णवत् जल के चक्र उठते थे? ईख के रस का समुद्र कहां गया? हा कष्ट! हा कष्ट! शक्कर के और मिश्री के पर्वत और अप्सराओं के बिचरने के स्थान कहां गये और पृथ्वी कहां गई? वे नन्दनवन के स्थान कहां गये जहां हम अप्सराओं के साथ विलास करते थे? उन विषयों का अभाव नहीं हुआ मानो हम को शूल चुभते हैं। जैसे फलको कण्टक चुभते हैं, तैसेही विषयके आभास-रूपी हमको कण्टक चुभते हैं। इसी प्रकार वे अति शोकवान् हुये और कहने लगे हा कष्ट! हा कष्ट! इधर विषयों का स्मरण करके देवता शोक करते थे और उधर उस शव के जितने अङ्ग थे उनको गणों ने भोजन कर लिया और उससे अघा गये। कुछ मेदा का पिण्ड शेष रह गया था उससे बहुत दुर्गन्ध हुई और उस पिण्ड की पृथ्वी होगई इससे उसका नाम मेदिनी होगया और मोटे हाड़ों के सुमेरु आदिक पर्वत हुये। तब ब्रह्माजी ने देखा कि, सब विश्व शून्यसा होगया है इससे उन्होंने संकल्प

किया कि, अब फिर मैं सृष्टि रचूं। निदान पूर्व की नाईं उनने सृष्टि रची और जगत् का सब व्यवहार उसी प्रकार चलने लगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वयंमाहात्म्यवृत्तान्त वर्णन-नाम द्विशताधिकपञ्चविंशतितमस्सर्गः॥ २२५॥

विपश्चित् बोले; हे राजन्, दशरथ! जब यह कर्म होरहा था तब मैंने अपने इष्टदेवता से जो तोतेवाहन पर आरूढ़ था, प्रश्न किया कि, हे महादेव! सर्वजगत् के ईश्वर और सर्वजगत् के भोक्ता! यह शव कौन था; कहां स्थित था और किस प्रकार गिरा? अग्नि बोले, हे राजन्! जिसका अनन्त त्रिलोकी आभास है उससे इस शव का वृत्तान्त वर्णन होसक्ता है; एक त्रिलोकी से इसका वृत्तान्त नहीं होसक्ता। इससे सुनो; हे राजन्! एक परम आकाशहै जो चिन्मात्र पुरुष सर्वज्ञ, अनामय और अनन्तहै। वह आत्मतत्त्व केवल अपने आप में स्थित है पर उसका जो आभास संवेदन फुरना है, वही किञ्चन होता है। वह जब किसी स्थान में फुरता है तब ऐसी भावना होती है कि; मैं तेज अणु हूं। उस भावना के वशसे अणुसी होजाती है। जैसे कोई पुरुष सोयाहै और स्वप्नमें आपको मार्ग में चलता देखता है, अथवा जैसे तुम स्वप्न में आपको पौढ़े देखो तैसेही चित्संवेदन ने आपको अणु जाना है जैसे फुरना ब्रह्मा को हुआ है तैसेही धूरके कणके का भी अधिष्ठान में फुरना तुल्य हुआ है। जब उस अणु को शरीर की भावना होती है तब अपने साथ शरीर देखता है और शरीर के होने से नेत्र आदिक इन्द्रियां घन होती हैं तब शरीर और इन्द्रियों से आपको मिला हुआ जानता है। जब अपना आप जानकर और उनको ग्रहण करके इन्द्रियोंसे विषय को ग्रहण करता है तब वही चिद्रूप जीव प्रमाद से आधाराधेयभावको मानता है पर अधिष्ठानसत्तामें कुछ हुआ नहीं; वह अद्वैतसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्न में प्रमाद से अपने आपको किसी गृह में बैठे देखता है; तैसेही यहां प्रमाद से आधाराधेयभाव को देखता है और प्राण और मन अहंकार को धारता है और जानता है कि मेरे माता, पिता हैं और मैं अनादि जीव हूं। अपना

शरीर जानकर आगे पाञ्चभौतिक जगत् शरीर को देखताहै और अपने फुरने के अनुसार अङ्ग होते हैं। इसी प्रकार जो आदि शुद्ध चिन्मात्र तत्त्व में फुरना हुआ तो चित्तकला फुरी और उसने आपको तेज अणु जाना। तब उसमें अहंवृत्ति तो अहंकार हुआ; निश्चयात्मक बुद्धि हुई, चैततारूप चित्त और संकल्प विकल्परूप मन हुआ। यह उत्पन्न होकर फिर तन्मात्रा उपजी, फिर उसके इच्छाद्वारा शरीर और इन्द्रियां उत्पन्न हुईं और उनसे देखने की इच्छा हुई। उस संवित्काल में जब आगे दृश्य भासि आई तब संवित् शक्तिने आपको प्रमाद द्वेषसे द्वैत जाना और साथही उसके अपने माता, पिता और कुल फुर आये कि; यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है और यह मेरा कुल है सो चिरकाल से चला आता है। इसी प्रकार एक दैत्य अहंकार सहित बिचरने लगा और एक कुटी में एक ऋषि बैठा था, उस कुटी की ओर गया और उसकी कुटी चूर्ण करके जब ऋषि के निकट आया तब ऋषिने कहा, हे दुष्ट! तूने यह क्या चेष्टा ग्रहण की है। अब तू मरकर मच्छर होगा। हे विपश्चित्! उस ऋषि के शापरूपी अग्नि से उसका शरीर भस्म होगया और उसकी निराकार चैतनसंवित् भूताकाश रूप होगई। फिर आकाश में उसका वायु से संयोग हुआ और उस ऋषि मौनी के शाप की वासना आन उदय हुई। जैसे पृथ्वी में समय पाकर बीज से अंकुर उत्पन्न होता है; तैसेही पञ्च-तन्मात्रा उदय हुईं और अपना मच्छर का शरीर जिसकी आयुर्बल दो अथवा तीन दिन की होती है अज्ञान से भासि आया। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जीव जो जन्म पाते हैं सो जन्म से जन्मान्तर को चले आते हैं अथवा ब्रह्म से उपजे होते हैं—यह कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कई जन्म से जन्मान्तर चले आते हैं और कई ब्रह्म से उपजे होते हैं। जिनको पूर्ववासना का संसरना होता है वे वासना के अनुसार शरीर धारते हैं और जन्मते जन्मान्तरको चले आते हैं और जिनको संस्कार विना भूत भासि आते हैं वे ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं। हे रामजी! आदि में सब जीव संस्काररूपी कारण विना उत्पन्न हुये हैं और पीछे से

जन्मान्तर होता है। जो संस्कार विना भूत भासे, उसे जानिये कि; ब्रह्मा से उपजा है और जिसको संस्कार से सृष्टि भासे उसे जानिये कि; इसका जन्मान्तर है। यह दो प्रकार से भूतों की उत्पत्ति मैंने तुमसे कही है अब फिर उस मच्छरका क्रम सुनो। हे रामजी! जब उसने मच्छर का जन्म पाया तब कमलनियों और हरीघास, तृण और पत्तों में मच्छरों को साथ लिये रहने लगा। निदान वहां एक मृग आया और उसका चरण उस मच्छर पर इस प्रकार आपड़ा जैसे किसी पर सुमेरु पर्वत आपड़े। तब वह मच्छर चूर्ण होकर मृतक होगया और मृतक होने के समय मृग की ओर देखने लगा इससे मरके तत्काल ही मृग हुआ और वन में बिचरने लगा फिर एक काल में उसको बधिक ने देखकर बाण चलाया और उस बाण से वह मृग बेधा गया। बेधे हुये मृग ने बधिक की ओर देखा इसलिये वह मरके बधिक हुआ और धनुष बाण लेकर मृग और पक्षियों को मारने लगा। एक समय में वह वनको गया और वहां एक मुनीश्वर को देख उसके निकट जाबैठा, तब मुनीश्वर ने कहा, हे भाई! तूने यह क्या पापचेष्टा का आरम्भ किया है? इस चेष्टा से तो तू नरक को प्राप्त होवेगा इससे किसी जीव को दुःख न दे। जिन भोगों के निमित्त तू यह चेष्टा करता है सो बिजली के चमत्कारवत् हैं। जैसे मेघ में बिजली का चमत्कार होता है और फिर मिटजाता है, तैसेही ये भोग भी होकर मिटजाते हैं और जैसे कमल के पत्र पर जल की बुन्द ठहरती है पर उसकी आयुर्बल कुछ नहीं होती क्षणपल में गिर पड़ती है; तैसे ही इस शरीर की आयुर्बल कुछ नहीं है। जैसे अञ्जली में जल डाला नहीं ठहरता तैसे ही यौवन अवस्था चली जाती है। क्षणभंगुररूप वृक्ष है और यौवन असार है उसमें भोगना क्या है? इनसे कदाचित् शान्ति नहीं होती। जो तुझको शान्ति की इच्छा हो तो निर्वाण का प्रश्न कर, तब तू दुःख से मुक्त होगा। अपने हिंसाकर्म को त्याग दे इसके करने से नरक में जावेगा और कदाचित् शान्ति तुझको न प्राप्त होगी। तू अपने हाथ से अपने चरण पै क्यों कुल्हाड़ा मारता है और अपने नाश के निमित्त तू क्यों विष का बीज

बोताहै?इस कर्म से तू संसार दुःखमें भटकता फिरेगा और शान्तिमान् कदाचित् न होगा। इससे अब तू वही उपाय कर जिससे संसारसमुद्रसे पार हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मच्छरव्याधवर्णनन्नाम द्विशताधिकषड्विंशतितमस्सर्गः॥ २२६॥

अग्नि बोले; हे राजन्! जब इस प्रकार ऋषीश्वर ने उस बधिक से कहा तब उसने धनुषबाण को डाल दिया और बोला हे भगवन्! जिस प्रकार मैं संसारसमुद्र से पार होजाऊं वह उपाय कृपा करके मुझसे कहिये परन्तु वह कैसा उपाय हो जो न दुःसाध्य हो और न मृदु हो अर्थात् जो अल्प भी न हो और कठिन भी न हो। ऋषीश्वर बोले, हे बधिक! मन को एकाग्र करने का नाम शम है और इन्द्रियों के रोकने को दम कहते हैं—वही मौन है। मन को एकाग्र करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरण की शुद्धता से आत्मज्ञान उपजता है इससे संसारभ्रम निवृत्त होकर परमानन्द की प्राप्ति होती है। अग्नि बोले, हे राजन्! इस प्रकार जब ऋषीश्वर ने कहा तब वह बधिक उठ खड़ा हुआ और प्रणाम करके तप करनेलगा। इन्द्रियों को उसने संयम में रक्खा और जो अनिच्छित यथाशास्त्र प्राप्त हो उसका भोजन करने लगा और हृदय से सब क्रियाओं की मौनवृत्ति धारण की। जब उसको कुछकाल तप करते व्यतीत हुआ तब उसका अन्तःकरण शुद्ध हुआ और ऋषीश्वर के निकट आ प्रणाम करके बैठगया और बोला; हे भगवन्! बाहर जो दृश्य है सो हृदय में किस प्रकार प्रवेश करती है और स्वप्ने की सृष्टि अन्तर की बाह्यरूप हो कैसे भासती है? यह कृपा करके कहो। ऋषीश्वर बोले, हे बधिक! यह बड़ा गूढ़ प्रश्न तूने किया है। यही प्रश्न मैंने भी गणपति से किया था और उनके कहने से मैंने जो ग्रहण किया है सो सुन। एक समय यही सन्देह दूर करने का उपाय मैंने भी किया था और पद्मासन बांध, बाहर की इन्द्रियों को रोक मन में लगा मन, बुद्धि आदिक को पुर्यष्टका में स्थित किया। फिर पुर्यष्टका को भी शरीर से विरक्त किया और उसको आकाश में निराधार ठहराया। निदान जब विलक्षण हुआ चाहूं तब विलक्षण होजाऊं और

जब शरीर में व्यापा चाहूं तब व्याप जाऊं। हे बधिक! इस प्रकार जब मैं योगधारणा से पूर्ण हुआ, तो एक काल में एक पुरुष हमारी कुटी के पास सोरहा था और उसके श्वास भीतर बाहर आते जाते थे। उसको देखकर मैंने यह इच्छा की कि; इसके भीतर जाकर कौतुक देखूं कि, क्या अवस्था होती है। ऐसे विचारकरके मैंने पद्मासन बांधा और योगकी धारणा करके उसके श्वासमार्ग से भीतर प्रवेश किया। जैसे उष्ट्र ऊंघता हो और उसके श्वासमार्ग से सर्प प्रवेश करे। तैसेही मैंने प्रवेश किया तो उसके भीतर अपने २ रस को ग्रहण करनेवाली नाड़ियां मुझे दृष्टि आईं। कई वीर्य को ग्रहण करनेवाली हैं, कई रक्त और कफ को ग्रहण करती हैं, कई मल-मूत्रवाली हैं और अनेक विकार जो उसके भीतर थे सो सब देखे। इससे मैं अप्रसन्न भया कि; महासंकल्परूप स्थान है और रक्तमज्जासंयुक्त महा-नरक के तुल्य अन्धकार है। फिर और आगे गया तो वहां एक कमल देखा कि, उसमें उसका संवेदन फुरता है और संवित्शक्ति जो महातेजवान् हृदयाकाश है सो भी वहां स्थित है। वही त्रिलोकी का आदर्श है और त्रिलोकी में जो पदार्थ हैं उनका दीपक है और सर्व पदार्थों की सत्तारूप है। ऐसी संवित्रूपी जीवसत्ता वहां स्थित थी उससे मैं तद्रूपता को प्राप्त हुआ। फिर मैंने सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, समुद्र, देवता, गन्धर्व आदि नाना प्रकार के स्थावर-जङ्गम विश्व को देखा। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित सम्पूर्ण सृष्टि को उसके भीतर देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि; उसके भीतर सृष्टि क्योंकर भासी। हे बधिक! उसने जाग्रत् में उस सृष्टि का अनुभव इन्द्रियों से किया था और भीतर चित्तत्व में उसका संस्कार हुआ था वही भीतर भासने लगा और भीतर जो भूतसत्ता थी सो उसके स्वप्न में सृष्टिरूप बाहर बनी और मुझको प्रत्यक्ष भासने लगी। जैसे जाग्रत् प्रत्यक्ष अर्थाकार भासती है, तैसेही मुझको यह सृष्टि भासने लगी। हे बधिक! इस जाग्रत् सृष्टि और उस सृष्टि में मैंने कुछ भेद न देखा—दोनों तुल्य हैं। चिरपर्यन्त प्रतीति का नाम जाग्रत् है और अल्पकाल की प्रतीति का नाम स्वप्न है पर स्वरूप से दोनों तुल्य

हैं। जो उसके स्वप्न के अनुभव में था सो मुझको जाग्रत् भासा और जो मुझको जाग्रत् भासा सो उसको स्वप्ना भासा। निद्रादोष से उसको स्वप्ना हुआ सो उसको भी उस काल में जाग्रत्रूप भासने लगा क्योंकि; स्वप्ना जो स्वप्नरूप है सो जाग्रत् में स्वप्ना है और स्वप्न में तो जाग्रत् है; तैसे जाग्रत् भी अपने काल में जाग्रत् है, नहीं तो स्वप्नरूप है सो जाग्रत् में भी जो सत्य प्रतीत है वही प्रमाद है। इन दोनों में कुछ भेद नहीं क्योंकि; जाग्रत् और स्वप्न दोनों का अधिष्ठान चैतन्यसत्ता परब्रह्महीहै और उसी के प्रमाद से प्राण के साथ सम्बन्ध हुआ है। जब प्राण से चित्तसंवेदन मिलती है तब उस फुरनरूप के इतने नाम होते हैं—जीव, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार आदिक। वही संवेदन जो बाह्यरूप हो फुरती है तब जाग्रत्रूप जगत् हो भासताहै और पांच ज्ञानइन्द्रियां पाँच कर्मइन्द्रियाँ और चतुष्टय अन्तःकरण ये चौदह अपने २ विषय को ग्रहण करते हैं—इसका नाम जाग्रत है जब चित्तस्पन्द निद्रादोष से अन्तर्मुख फुरता है तब नाना प्रकार की स्वप्ने की सृष्टि देखता है और उस काल में वही जाग्रत्रूप हो भासता है। अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है जब संवेदन उसकी ओर फुरती है और बाह्यविषय के फुरने से रहित अफुरन होती है तब न जाग्रत् भासती है और न स्वप्ना भासती है केवल निर्विकल्प आत्मसत्ता शेष रहती है। हे बधिक! मैंने विचार देखा है कि, जगत् और कुछ वस्तु नहीं फुरनेही का नाम जगत् है। जब चित्तसंवेदन फुरनरूप होती है तब जगत् भासता है और जब चित्तसंवेदन फुरने से रहित होती है तब जगत् कल्पना मिटजाती है; इसलिये मैंने निश्चय किया है कि; वास्तव में केवल चिन्मात्र है। जगत् कुछ वस्तु नहीं मिथ्या कल्पनामात्र है। हे बधिक! जगत् भावना त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो रहो। अब वही वृत्तान्त फिर सुनो। जब उसके भीतर मैंने स्वप्न और जाग्रत् अवस्था देखीं तब मैंने यह इच्छा की कि, सुषुप्ति अवस्था भी देखूं और विचार किया कि; सुषुप्ति प्रलय का नाम है जहां द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनों का अभाव हो जाता है परन्तु जहां मैं देखनेवाला हुआ वहां महाप्रलय कैसे होगी और जो मैं जाननेवाला

न होऊं तब सुषुप्ति को कौन जानेगा। हे बधिक! तब मैंने विचार के देखा कि, और सुषुप्ति कोई नहीं जहां चित्त की वृत्ति नहीं फिरती उसीका नाम सुषुप्ति है। ऐसे विचार करके मैंने चित्त को फुरने से रहित किया तब उसकी सुषुप्ति देखी तो क्या देखा कि; न कोई वहां अहं और त्वं शब्द हैं; न शुभ है; न अशुभ है; न जाग्रत् है; न स्वप्न है और न सुषुप्ति की कल्पना है; सर्व कल्पना से रहित केवल चित्तसत्ता मैंने देखी। जो तुम कहो कि, सुषुप्ति निर्विकल्प तुमने कैसे देखी तो उसका उत्तर यह है कि; अनुभव ज्ञानरूप आत्मसत्ता सर्वदा काल में ज्योंकी त्यों है और उसमें जैसा आभास फुरता है तैसाही ज्ञान होता है। यह जो तुम भी दिन प्रतिदिन देखते हो और सुषुप्ति से उठकर जानते हो कि, मैं सुख से सोया था सो अनुभव से ही देखते हो; तैसेही मैंने भी वह देखा जहां चित्तसंकल्प कोई नहीं फुरता केवल निर्विकल्प है परन्तु सम्यग्बोध से रहित है उस अभाव वृत्ति का नाम सुषुप्ति है। फिर मुझको तुरीया देखने की इच्छा हुई पर तुरीया देखनी महाकठिन है। तुरीया साक्षीभूत वृत्ति का नाम है, वह सम्यग्ज्ञान से उत्पन्न होती है और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था की साक्षीभूत है और सुषुप्ति की नाईं है। जैसे सुषुप्ति में अहं, त्वं आदिक कल्पना कोई नहीं होती तैसे ही तुरीया में भी नहीं। उसमें ब्रह्म का सम्यग्बोध होता है और सुषुप्ति जड़ीभूत तमरूप अविद्या होती है। तुरीया में जड़ता नहीं होती; सुषुप्ति और तुरीया में इतना ही भेद होता है। सच्चिदानन्दसाक्षी वृत्ति होती है। सम्यग्बोध का नाम तुरीयापद है और तुरीया इससे भिन्न नहीं। ऐसे निश्चय से मैंने उसको देखा। हे बधिक! चारों अवस्था मैंने माया अर्थात् फुरने सहित भिन्न २ देखीं पर आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है उसमें न कोई जाग्रत् है न स्वप्न है, न सुषुप्ति है और न तुरीया है—इनका भेद वहां कहीं नहीं। आत्मसत्ता सदा अद्वैत है और ये चार चित्त संवेदन में होती हैं। हे बधिक! ऐसा अनुभव करके मैं बाहर आया और बाहर भी मुझको वैसेही भासने लगा; तब मैंने कहा कि, यही जगत् तो मुझको उसके भीतर भासा था यह बाहर कैसे आया?

तब मैंने फिर उसके भीतर प्रवेश किया। प्रथम जो उसके भीतर मैंने प्रवेश किया था और उसके भीतर सृष्टि देखी थी तब उसकी और मेरी संवेदन मिल गई थी पर जब मैंने अपनी संवेदन उससे भिन्न की तब दो ब्रह्माण्ड होगये और एक उसकी संवेदन फुरने में और एक मेरी संवेदन में भासने लगा क्योंकि; मैंने प्रथम उसकी सृष्टि को देख और अर्थरूप जानकर ग्रहण किया था पर उसका संस्कार हो गया। आत्मसत्ता के आश्रय जैसे संवेदन फुरती गई तैसे होकर भासने लगा। उसका स्वप्न मुझको जाग्रत् होकर भासने लगा—जैसे एक दर्पण में दो प्रतिबिम्ब भासें, तैसेही एक अनुभव में मुझे दो सृष्टि भासने लगीं। तब मैंने विचार किया कि, सृष्टि संकल्परूप है; संकल्प जीव २ का अपना अपना है और अपने २ संकल्प की भिन्न २ सृष्टि है इससे अनुभव के आश्रय जैसा २ संकल्प फुरता है तैसी २ सृष्टि भासती है; सृष्टि का कारण और कोई नहीं। हे वधिक! अष्टनिमेष पर्यन्त मुझको दो सृष्टि भासती रहीं, फिर मैंने उसके और अपने चित्त की वृत्ति इकट्ठी करके मिलाई तो दोनों तद्रूप होगये—जैसे जल और दूध मिल कर एकरूप हो जाते हैं और दूसरी सृष्टि का अभाव हो गया। जैसे भ्रम दृष्टि से आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं और भ्रम के गयेसे दूसरे चन्द्रमा का भाव अभाव हो जाता है; तैसेही द्वितीय वृत्ति के अभाव हुये से दूसरी सृष्टि का अभाव हो गया। निदान एकही सृष्टि भासने लगी और नाना प्रकार के व्यवहार होते दृष्ट आवें और चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र स्पष्ट भासने लगे। कुछ काल के उपरान्त चित्त की वृत्ति सुषुप्ति की ओर आई और स्वप्न की सृष्टि का विस्तार लीन होने लगा—जैसे सन्ध्या के समय सूर्य की किरणें सूर्य में लय हो जाती हैं। जब वह सृष्टि चित्त में लय होने लगी तब स्वप्न की सृष्टि मिट गई; सुषुप्ति अवस्था हुई और सर्व इन्द्रियां स्थिर होगईं। हे वधिक! सुषुप्ति तब होती है जब जीव अन्न भोजन करता है और वह समवाही नाड़ी पर आन स्थित होता है; तब जाग्रत्वाली नाड़ी ठहर जाती है, उससे प्राण भी ठहर जाते हैं और तब मन भी ठहर जाता है—उसका नाम सुषुप्ति

है। जब मन फिर फुरता है तब जाग्रत् होती है। इतना सुन रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जब मन प्राणों ही से चलता है तब मन का अपना रूप तो कहीं न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमार्थ से कहिये तो देह ही नहीं है तो मन क्या हो। जैसे स्वप्ने में पहाड़ भासते हैं, तैसेही यह शरीर भासता है क्योंकि; जो सबका आदि कारण कोई नहीं इससे जगत् मिथ्याभ्रम है—केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जो तत्त्ववेत्ता हैं उनको तो ऐसेही भासता है और अज्ञानी के निश्चय को हम नहीं जानते जैसे सूर्य उलूक के अनुभव को नहीं जानता और उलूक सूर्य के निश्चय को नहीं जानता, तैसेही ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय भिन्न २ होता है। शुद्ध चिन्मात्र आकाश में जगत् भ्रम कोई नहीं पर फुरनभाव से अपने चेतन वपु को भूल ज्ञान विनाही मनभाव को प्राप्त होता है और तब मन आत्मसत्ता के आश्रय होकर प्राणवायु को अपना आश्रयभूत कल्पता है कि; मेरा प्राण है। हे रामजी! फिर जैसे २ मन कल्पना करता है, तैसे २ देह; इन्द्रियां और जगत् भासते हैं। परब्रह्म सर्वशक्तिसंपन्न है उसमें जैसी २ भावना से मन फुरता है तैसाही तैसा रूप हो भासता है—वास्तव में और कुछ नहीं केवल ब्रह्म-सत्ताही अपने आपमें स्थित है। मन का फुरना जैसे २ दृढ़ हुआ है तैसेही तैसे देह; इन्द्रियां और जगत् भासने लगा है। जैसे स्वप्नेमें कल्पनामात्र जगत् भासता है तैसेही इसे जानो। हे रामजी! जितने विकल्प उठते हैं वे सब मन के रचे हुये हैं। जब मन उदय होता है तब यह फुरना होता है कि, यह पदार्थ सत्य है और यह असत्य है जब चित्तशक्ति का मन से सम्बन्ध होता है तब प्रथम प्राण उदय होते हैं और प्राण को ग्रहण करके मन कहता है कि, मैं जीव हूं; प्राण ही मेरी गति है और प्राण विना मैं कहां था। फिर कहता है कि, जब प्राण का वियोग होगा तब मैं मर जाऊँगा—फिर न रहूंगा। फिर ऐसे कहता है कि, मुआहुआ भी मैं जाऊंगा। हे रामजी! जबतक चाहिये तबतक ये तीन विकल्प उठते हैं और संशय-वाले को न इस लोक में सुख है और न परलोकमें सुख है जबतक आत्म-

बोध का साक्षात्कार नहीं होता तब तक चित्त भी निर्वाण नहीं होता और तीनों विकल्प भी नहीं मिटते। हे रामजी! मन के विस्मरण का उपाय आत्मज्ञान से इतर कोई नहीं और मनके शान्ति हुये विना कल्याण भी नहीं होता। दो उपायों से मन शान्त होता है मन की वृत्ति स्थित करनी और प्राणस्पन्द के रोंकने से मन स्थित होता है तब प्राण रुकजाते हैं और प्राण के स्पन्द को रोंकने से मन स्थित होता है। जब प्राण क्षोभते हैं तब चित्त भी क्षोभता है और तभी आध्यात्मिक और आधिभौतिक तापोंकी अग्नि से जलता है। मनके स्थित करने से परमसुख प्राप्त होता है सो मनकी स्थिति दो प्रकार की है-एक ज्ञान की स्थिति है और दूसरी अज्ञान की स्थिति है। जब प्राणी बहुत अन्न भोजन करता है तब वह नाड़ीपर जा स्थित होता है और प्राण ठहर जाता है और जब प्राण ठहरे तब मन भी जड़ीभूत होजाता है-उसीका नाम सुषुप्ति है। वे नाड़ी कौन हैं जिन पर अन्न जाय स्थित होता है? वे नाड़ी वेही हैं जिनके मार्ग से जाग्रत् में प्राण निकलते हैं। जब वासना सहित वेही नाड़ी रोंकीजाती हैं तब मन सुषुप्त होजाता है। यह अज्ञानी के मन की स्थिति है क्योंकि; जड़ता है सो संसार को लिये शीघ्रही फिर उठ आता है। जैसे पृथ्वी में बीज समय पाकर अंकुर ले आता है, तैसेही वह संस्कार से फिर सुषुप्ति से उठता है। जो ज्ञानवान् सम्यक्दर्शी है उसका चित्त चैतन्यता के लिये स्थित होता है। वह चैतन्यता दो प्रकार की है-एक तो योगी को होती है जिससे वह समाधि में मनको स्थित करताहै। वह समाधिनिष्ठ चित्त है; जड़ता नहीं। जैसे सुषुप्ति में जड़ता होती है तैसी जड़ता वह नहीं है। दूसरे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त के चित्त की वृत्ति सम्यक्ज्ञान से स्थित होती है क्योंकि, उसका चित्त वासना से रहित है। यही स्थिति है। जिसका चित्त इस प्रकार स्थित है उसी पुरुष को शान्ति है और जिसका चित्त वासना सहित है उसको कदाचित् शान्ति नहीं प्राप्त होती और उसके दुःख भी नहीं मिटते। उसे निर्वासनिक चित्त करने को सम्यक्ज्ञान का कारण यह मेरा शास्त्र ही है। इसके समान और कोई उपाय नहीं। हे रामजी!

यह जो मोक्ष उपाय शास्त्र मैंने कहा है उसके विचार से शीघ्रही स्वरूप की प्राप्ति होवेगी; इससे सर्वदा इसी का विचार कर्तव्य है। जब इसको भली प्रकार विचारोगे तब चित्त निर्वासी होजावेगा। अब वही बधिक का प्रसंग सुनो। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जब मैंने उस शव पुरुषके चित्त में प्राण के मार्ग से प्रवेशकिया तब क्या देखा कि, उसके प्राण रोंकेगये हैं और अन्नकरके जाग्रत् नाड़ी जो फुरती थी सो रोंकी गई है क्योंकि; अन्न पचा न था इस कारण वह सुषुप्ति में था। उसकी सुषुप्ति में मुझको भी अपना आप विस्मरण होगया। जब कुछ अन्नपचा तब उसके प्राण फुरने लगे और जब प्राण फुरे तब चित्तकी वृत्ति भी कुछ जड़ता को त्यागती भई पर सम्पूर्ण जड़ता को त्याग नहीं किया। प्राण के फुरने से चन्द्रमा, सूर्य आदिक जो कुछ विश्व है सो भी फुरा तब मैंने नाना प्रकार के जगत् को देखा और मुझे अपना पूर्वसंस्कार भूल गया। निदान वहां मैं भी अपने कुटुम्ब में रहनेलगा; साथही उसके मुझे अपनी कुटी भासी और स्त्री, पुत्र, भाई, जन, बान्धव सब भासि आये। फिर मेरे में देखते देखते प्रलयकाल के पुष्कर मेघ गर्जने लगे; मूशलधार जल बरसने लगा और सातों समुद्र उछलने लगे। निदान जो कुछ प्रलयकाल के उपद्रव होते हैं सो भी उदय हुये। प्रथम अग्नि लगी; जब अग्नि लग चुकी और सब स्थान जल गये तब जल का उपद्रव उदय हुआ तब मैंने क्या देखा कि, नगर, ग्राम, पुर, मनुष्य, पशु, पक्षी सब बहते जाते हैं और हाहाकार शब्द करते निदान बड़ा क्षोभ हुआ और मैंने एक आश्चर्य देखा कि, मेरी कुटी भी बही जाती है और स्त्री, पुत्र, भाई, जन इत्यादिक सब जल के प्रवाह में बहे जाते हैं। जिस स्थान में हम थे वह स्थान भी बहा जाता था और मैं भी लुढ़कता जाता था। निदान बहते २ मुझको ऐसा कष्ट प्राप्त हुआ कि, कहने में नहीं आता। एक तरङ्ग से तो मैं ऊर्ध्व को चलाजाऊं और एक तरङ्ग के साथ नीचे चला जाऊं। तब मुझे अपना पूर्व शरीर स्मरण आगया और जितना कुछ जगत् है वह मुझको सब भासनेलगा; मिथ्या रागद्वेष सब मिट गया और शरीर की सब चेष्टा उसी प्रकार होनेलगी कि, तरङ्ग के साथ कभी ऊर्ध्व

और कभी नीचे आपड़ा परन्तु हृदय मेरा शान्त होगया। उस काल में नगर, देश और मण्डल बहते जाते थे और त्रिनेत्र सदाशिव और विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, सिद्ध आदि सब बहते जाते थे। अष्ट-दल कमल की पंखड़ी पर बैठे ब्रह्माजी और इन्द्र, कुबेर और विष्णुजी अपनी २ पुरियों सहित बहते जाते थे और पहाड़, द्वीप, लोकपाल भी बहते जाते थे। पातालवासी सब प्रलय के जल में बहते जाते थे और यम भी अपने वाहन सहित बहते जाते थे; ऐसी सामर्थ्य किसी को न थी कि, किसी को कोई निकाले क्योंकि; आपही सब बहते जाते थे और डूबते और ग़ोते खाते थे। बड़े ऐश्वर्य सहित देव भी बहे जाते थे। जो संसार सुख के निमित्त यत्न करते हैं वे महामूर्ख हैं और जिनके निमित्त यत्न करते हैं वे सुख और सुख के देनेवाले सब बहते जाते थे तैसेही सब ऋषीश्वर भी बहते जाते थे। हे बधिक! मैंने इस प्रकार उसके स्वप्ने में महा प्रलय होती देखी।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हृदयान्तरस्वप्नमहाप्रलयवर्णन-
न्नामद्विशताधिकसप्तविंशतितमस्सर्गः ॥ २२७ ॥

बधिकने पूछा, हे मुनीश्वर! यह जो महाप्रलय तुमने कही कि, जिसमें ब्रह्मादिक भी बहते जाते थे सो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक तो स्वतन्त्र ईश्वर हैं परन्तु परतन्त्र हुये बहतेजाते तुमने कैसे देखे? वे अन्तर्धान क्यों न हुये? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह जो प्रलय हुई सो क्रम से नहीं हुई। जब क्रमसे प्रलय होती है तब यह ईश्वर समाधि से शरीरको अन्तर्धान करलेते हैं परन्तु अन्तर्धान होने का जल चढ़ जाता है। इनका कुछ नियम नहीं क्योंकि, यह जगत् भ्रमरूप है; इसमें क्या आस्था करनी है स्वप्नेमें क्या नहीं बनता और स्वप्नभ्रान्ति करके विपर्यय भी होते हैं इसलिये उनको बहते देखाहै। व्याधने पूछा, हे मुनीश्वर! जब वह स्वप्न भ्रम था तो उसका वर्णन क्या करना? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! तुझसे इसकी समानता का अर्थ कहता हूं इससे कि, स्थावर-जङ्गम जगत् बहता देखा और साथही मैं भी बहता जाता था और जल की लहरें उछलती थीं और उन तरङ्गों में मैं

भी उछलता था परन्तु मुझको कुछ कष्ट न होता था। निदान मैं बहता बहता एक किनारे पर जा लगा और उसके पास एक पर्वत था उसकी कन्दरा में जा स्थित हुआ। वहां मैंने देखा कि, जीव बहते हैं और जल भी सूखता जाता है। जल के सूखने से कीचड़ होगई; किसी ठौर में जल रहा उसमें कई डूबते दृष्ट आते थे; कहीं ब्रह्मा के हंस; कहीं यम के वाहन और कहीं विष्णु के वाहन कीचड़ में पहाड़ की नाईं डूबते दृष्ट आते थे। कहीं इन्द्र के हाथी और विद्याधर आदि वाहन कीचड़ में दृष्ट आये और देवता, सिद्ध, गन्धर्व, लोकपाल दृष्ट आये इससे मैं आश्चर्यवान् हुआ। हे वधिक! इस प्रकार देखता हुआ जब मैं पहाड़ की कन्दरा में सोगया तब मुझको अपनी संवित् में स्वप्न आया और चन्द्रमा, सूर्य आदिक नाना प्रकार के भूत जलते देखे; नगर और पर्वत जलते देखे और जगत् बड़े खेद को प्राप्त हुआ देखा। जब रात्रि हुई तो मैं वहां सोया हुआ स्वप्ने को देखा किया और दूसरे दिन उसमें मैंने फिर जगत् देखा और सूर्य, चन्द्रमा, देश, नदियां, समुद्र, मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी नाना प्रकार की क्रिया-संयुक्त दृष्ट आने लगे। मैंने अपना षोड़शवर्ष का शरीर देखा और मुझे अपने पिता और माता दृष्ट आये। उनको देख मैं पिता और माता जानूं और वे मुझको अपना पुत्र जानें। निदान स्त्री, कुटुम्ब, बान्धव समस्त मुझको दृष्ट आये और मैं बोधसे रहित और तृष्णा सहित था इससे मुझे अहं मम का अभिमान आन फुरा और मैंने एक ग्राममें जहां मेरा गृह था ईंट और काष्ठ संग्रह करके एक कुटी बनाई और उसके चौफेर बूटे लगाकर एक आसन बनाया जहां कमण्डलु और माला पड़ीरहे। मैं ब्राह्मण था, मुझको धन उपजाने की इच्छा हुई और जो कुछ ब्राह्मण की आचार चेष्टा थी सो भी मैं करता था। बाहर जाके ईंट और काष्ठ ले आऊं और आन-कर कुटी बनाऊं। यह चेष्टा हमारी होनेलगी और शिष्य और सेवक हमारी पूजा करनेलगे और मैं यथायोग्य उनको आशीर्वाद दूं। इस प्रकार गृह-स्थाश्रम में मैं चेष्टाकरूं और मुझको यह विचार उपजे कि, यह कर्तव्य है इसके करनेसे भला होता है। नदियां और तालों में मैं स्नान करूं; गो की

टहल करूं और अतिथि की पूजा करूं। हे बधिक! इस प्रकार चेष्टाकर्ता मैं सौ वर्ष पर्यन्त वहां रहा तब एक काल मेरे ग्रह में एक मुनीश्वर आया तो प्रथम मैंने उसको स्नान कराया; फिर भोजन से तृप्त किया और रात्रि के समय उसको शय्या पर शयन कराया। इस प्रकार उसकी टहलकर रात्रि को हम वार्ता चर्चा करने लगे उसमें उसने मुझको बड़े पर्वत, कन्दरा और चित्त के मोहनेवाले सुन्दर देश स्थान और नाना प्रकार के स्वाद सुनाये और कहने लगा कि, हे ब्राह्मण! जितने सुन्दर स्थान और संवाद तुझको सुनाये हैं उन सबों में सार एक चिन्मात्ररूप है इससे सब चिन्मात्रस्वरूप है। सब जगत् उसका चमत्कार और आभास किञ्चन है उससे कोई वस्तु भिन्न नहीं। इससे हे ब्राह्मण! उसी सत्ता को ग्रहण करो जो सबका अनुभव और परमानन्द स्वरूप है। उसी में स्थित होरहो। हे बधिक! जब इस प्रकार उस मुनीश्वर ने मुझसे कहा तब आगे जो मेरा मन योग से निर्मल था इससे उसके वचन मेरे चित्त में चुभ गये और अपने स्वभाव सत्ता में मैं जाग उठा। तब मैंने क्या देखा कि, सब मेरा ही संकल्प है, मुझ से भिन्न कोई नहीं; मैं तो मुनीश्वर हूं और यह स्वप्ना आया था। मैंने जागकर देखा कि, उसी पुरुष का स्वप्ना था; तब मेरे चित्त में आया कि, किसी प्रकार इसके चित्त से बाहर निकलूं और अपने शरीर में प्रवेश करूं। तब मैंने फिर विचारा कि यह जगत् तो उस पुरुष का वपु है, वही पुरुष विराट् है जिसके स्वप्ने में यह जगत् है परन्तु उस पुरुष को अपने विराट्स्वरूप का प्रमाद है इससे जैसा वपु हमारा बना है उसके स्वप्ने में वह भी तैसा एक विराट् इतर बन पड़ा है तो फिर उस विराट् को कैसे जानिये कि, उसके चित्त से निकल जावे। हे बधिक! इस प्रकार विचार करके मैंने पद्मासन बांधा और योग की धारणा कर उस विराट्स्वरूप के शरीर को देखा। फिर जहां चित्त की वृत्ति फुरती थी उसके साथ मिलकर और प्राण के मार्ग से निकलकर अपनी कुटी को देखा और उसमें अपने शरीर को पद्मासन बांधे देखा। तब उसमें मैंने प्रवेश करके नेत्रखोले तो अपने सन्मुख शिष्य बैठे देखे

और वह पुरुष सोया था उसको देखा। एक मुहूर्त बीता तब मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, भ्रममें क्या २ चेष्टा देखपड़ती है कि, यहां एक मुहूर्त बीता है और वहां मैंने सौ वर्ष का अनुभव किया। बड़ा आश्चर्य है कि, भ्रम से क्या नहीं होता। फिर मेरे मन में उपजी कि, उसके चित्त में प्रवेश करके कुछ और कौतुक भी देखूं। तब फिर प्राण के मार्ग से उसके चित्त में मैंने प्रवेश किया तो क्या देखा कि, अगली कल्पना व्यतीत होगई है; बान्धव, पुत्र, स्त्री, माता, पिता आदिक सब नष्ट होगये हैं और दूसरा कल्प हुआ है उसकी भी प्रलय होती है। बारह सूर्य उदय होकर विश्व जलाने लगे हैं; बड़वाग्नि जलाने लगी है; मन्दराचल और अस्ताचल पर्वत जलकर टूक टूक होगये हैं; पृथ्वी जर्जरीभाव को प्राप्त हुई है; स्थावर-जङ्गम जीव हाहाकार शब्द करते हैं; बिजली चमत्कार करती है; और बड़ा क्षोभ उदय हुआ। हे बधिक! मैं अग्नि में जापड़ा और मेरा शरीर भी जलनेलगा परन्तु मुझको कष्ट कुछ न हुआ। जैसे किसी पुरुष को अपने स्वप्ने में कष्ट प्राप्त हो और जाग उठे तो कुछ कष्ट नहीं होता तैसेही अग्नि का कष्ट मुझको कुछ न हुआ। मैं आपको वहीरूप जाग्रत्वाला जानता था और जगत् प्रलय को भ्रममात्र जानता था इस कारण मुझको कष्ट न होता था। और चेष्टा तो मैं भी उसी प्रकार देखता और करता था परन्तु हृदय से ज्योंका त्यों शीतल चित्त था और और लोग जो थे सो अग्नि के क्षोभ से कष्ट पाते थे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हृदयान्तरप्रलयाग्निकदाहवर्णनन्नाम द्विशताधिकाष्टविंशतितमस्सर्गः ॥ २२८ ॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! प्रलय के क्षोभ में मैं भी भटकता था और जल में बहता था परन्तु पूर्व का शरीर मुझको विस्मरण न हुआ इस कारण शरीर का दुःख मुझको स्पर्श न करता था। मैंने विचारा कि, यह जगत् तो मिथ्या है इसमें विचरने से मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? यह तो स्वप्नमात्र है इसमें मैं किस निमित्त खेद पाऊं—इससे जगत् से बाहर निकलूं। बधिक ने पूछा, हे मुनीश्वर! तुमने जो उस स्वप्ने में

जगत् को देखा वह जगत् क्या वस्तु था और स्वप्न क्या था ? उसकी संवित् में जगत् था और उस जगत् का उसको ज्ञान था वा वह प्रमादी था ? तुमने तो जाग्रत् होकर के उसका स्वप्न देखा था, उसके हृदय में पहाड़ कहां से आया और नदियां, वृक्ष आदि नाना प्रकार के भूतजात और पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि आदिक विश्व की रचना कहां से आई ? वह सब क्या था यह संशय मेरा दूर करो। जो तुम कहो कि, अपने स्वप्ने में तुम भी अपनी सृष्टि देखते हो तो हे भगवन् ! हमको जो स्वप्न आता है उसको हम अपने स्वरूप के प्रमाद से देखते हैं और तुमने जाग्रत् होकर देखा तो कैसे देखा ? मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! प्रथम जो मैंने देखा था सो आपको विस्मरण करके उसके हृदय में जगत् देखा था और दूसरीबार जो देखा था सो आपको जानकर जगत् देखा था सो क्या वस्तु है सुनो। हे बधिक ! जो वस्तु कारण से होती है सो सत्य होती है और जो कारण विना भासती है सो मिथ्या होती है। मुझको जो सृष्टि उसके स्वप्ने में भासी थी सो कारण विना थी क्योंकि; कारण दो प्रकार का होता है– एक निमित्त कारण; जैसे घट का कारण कुलाल होता है और दूसरा समवाय कारण; जैसे घट मृत्तिका का होता है। जो दोनों कारणों में उत्पन्न हो वह कारण पदार्थ कहाता है पर आत्मा तो दोनों प्रकारों में जगत् का कारण नहीं; वह अद्वैत है इससे निमित्त कारण नहीं और समवायकारण भी इससे नहीं कि, अपने स्वरूप से अन्यथाभाव नहीं हुआ। जैसे मृत्तिका के परिणाम से घट होता है, तैसेही आत्मा का परिणाम जगत् नहीं। आत्मा अच्युत है। वह जगत् कारण विना भासि आया था इससे भ्रम-मात्र ही था। हे बधिक ! वस्तु वही होती है और जगत्की भ्रान्ति आत्मा में भासी तो जगत् आत्मरूप हुआ। जब सृष्टि फुरी न थी तब अद्वैत आत्म-सत्ता थी उसमें संवेदन फुरने से जगत् हुये की नाईं उदय हुआ सो क्या हुआ–जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है सो किरणही जलरूप भासती है, तैसेही यह जगत् आत्मा का आभास है सो आत्मा ही जगद्-रूप हो भासता है। वहां न कोई शरीर था, न कोई हृदय था, न पृथ्वी,

जल, वायु, अग्नि, आकाश था और न उत्पत्ति और प्रलय थी न और कोई था; केवल चिन्मात्ररूप ही था। हे बधिक! ज्ञानदृष्टि से हमको तो सच्चिदानन्द ही भासता है जो शुद्ध और सर्वदुःखों से रहित परमानन्द है और जगत् भी वही रूप है। तुम सारिखे को जो जगत् शब्द अर्थ-रूप भासता है सो आत्मा में कुछ हुआ नहीं केवल चिन्मात्र सत्ता है। सर्वदा हमको आत्मरूपही भासता है। जो तू चाहे कि, मुझको भी चिन्मात्र ही भासे तो सर्वकल्पना मन से त्यागकर उसके पीछे जो शेष रहेगा वह आत्मसत्ता है और सबका अनुभवरूप वही है और प्रत्यक्ष, शुद्ध, सर्वदा स्वभावसत्तामें स्थित है और अमर है। तुमभी उस स्वभाव में स्थित होरहो। हे बधिक! आत्मसत्ता परमसूक्ष्म है जिसमें आकाश भी स्थूल है। जैसे सूक्ष्म अणु से पर्वत स्थूल होता है, तैसेही आत्मा से आकाश भी स्थूल है। आत्मा में यही सूक्ष्मता है कि, आत्मत्वमात्र है जिसमें कोई उत्थान नहीं केवल निर्मल स्वभावसत्ता और निराभास है उसीमें यह जगत् भासता है इससे वही रूप है। जैसे कालमें क्षण, पल, घड़ी, पहर, दिन, मास, वर्ष और युगसंज्ञा होती है सो कालही है; तैसेही एकही आत्मा में अनेक नामरूप जगत् होता है। जैसे एक बीज में पत्र, टहनी, फूल, फल नाम होते हैं तैसेही एक आत्मा में अनेक नामरूप जगत् होता है सो आत्मासे कुछ भिन्न वस्तु नहीं सब आत्मस्वरूप है और जो आत्मा से भिन्न भासे उसे भ्रममात्र जानो। जैसे संकल्पपुर होता है तैसेही यह जगत् है। हे बधिक! आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं। वही आत्मा तेरा अपना आप अनुभवरूप है और परमशुद्ध है। उसमें न जन्म है, न मृत्यु है और चिदाकाश अपना आप है जो तेरा आप अनुभवरूप शुद्ध-सत्ता है—उसको नमस्कार है। हे बधिक! तू उसमें स्थित होरह तब तेरे दुःख नष्ट होजावेंगे। यह जगत् अज्ञानी को सत्य भासता है और ज्ञान-वान् को सदा आकाशरूप भासता है। जैसे एक पुरुष सोया है और एक जागता है तो जो सोया है उसको स्वप्न में महल आदिक जगत् भासता है और जो जाग्रत् है उसको आकाशरूप है; तैसेही अज्ञानी को जगत्

भासता है और ज्ञानवान् को आत्मरूप है। बधिक बोला, हे मुनीश्वर! कितने कहते हैं कि, यह जीव कर्म से होता है और कितने कहते हैं कि, कर्म विना उत्पन्न होता है तो इन दोनों में सत्य क्या है? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! आदि जो परमात्मा से ब्रह्मादिक फुरे हैं सो कर्म से नहीं हुये, वे कर्म विना ही उत्पन्न हुये हैं और उन्हें न कहीं जन्म है और न कर्म है। वे ब्रह्मस्वरूपही हैं और उनका शरीर भी ज्ञानरूप है। वे और अवस्था को नहीं प्राप्त होते सर्वदा उनको अधिष्ठान आत्मा में अहंप्रतीत है। हे बधिक! सृष्टि के आदि जो ब्रह्मादिक फुरे हैं वे ब्रह्म से भिन्न नहीं और और जो अनन्त जीव फुरे हैं और जिनका आदि ही आत्मपद से प्रकट होना हुआ है वे भी ब्रह्मरूप हैं ब्रह्म से कुछ भिन्न नहीं। आदि सबका ब्रह्मचेतन स्वयंभू हैं परन्तु ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक को अविद्या ने स्पर्श नहीं किया वे विद्यारूपहैं और दूसरे जीव अविद्या के वश से प्रमाद करके परतन्त्र हुये हैं और कर्म करके कर्म के वश हुयेहैं और संसार में शरीर धारते हैं। जब उनको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है तब वे कर्म के बन्धन से मुक्त होकर आत्मपद को पाते हैं। हे बधिक! आदि जो सृष्टि हुई है सो कर्म विना उपजी है और पीछे अज्ञान के वश से कर्म के अनुसार जन्म मरण देखते हैं। जैसे स्वप्न की सृष्टि आदि कर्म विना उत्पन्न होती है और पीछे कर्म से उत्पन्न होती भासती है; तैसेही यह जगत् है। आदि जीव कर्म विना उपजे हैं और पीछे कर्म के अनुसार जन्म पाते हैं। ब्रह्मादिक के शरीर शुद्ध ज्ञानरूप हैं। ईश्वर में जीवभाव दृष्टि आता है पर उस काल में भी ब्रह्म ही स्वरूप है क्योंकि, उनके कर्म कोई नहीं केवल आत्मा ही उनको भासता है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्न में द्रष्टाही दृश्य-रूप होता है और नाना प्रकार के कर्म दृष्टि आते हैं परन्तु और कुछ हुआ नहीं तैसेही जो कुछ जगत् भासता है सो सब चिन्मात्रस्वरूप है और कुछ नहीं। सुख दुःख भी वही भासता है परन्तु अज्ञानी को जबतक जगत् प्रतीति होती है तब तक कर्मरूपी फाँसी से बाँधा हुआ दुःख पाता है और जब स्वरूप में स्थित होगा तब कर्म के बन्धन से मुक्त होगा वास्तव में न कोई

कर्म है और न किसी को बन्धन है। यह मिथ्या भ्रम है केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है दूसरा कुछ हो तो मैं कहूं कि, इस कर्म ने इसको बन्धन किया है। यह जगत् आत्मा में ऐसा है जैसे जल में तरङ्ग होता है सो भिन्न कुछ नहीं। जल से तरङ्ग उत्पन्न होता है सो किस कर्म से होता है और क्या उसका रूप है? जैसे वह जलही रूप है, तैसेही यह जगत् भी आत्मस्वरूप है—आत्मा से इतर कुछ नहीं जो कुछ कल्पना कीजिये सो अविद्यामात्र है। हे बधिक! जब तक यह संवित् बहिर्मुख फुरती है तब तक जगत् भासता है और कर्म होते दृष्टि आते हैं और जब संवित् अन्तर्मुख होगी तब न कोई जगत् रहेगा और न कोई कर्म दृष्टि आवेगा; तब सब आत्मसत्ताही भासेगी। जैसे हमको सदा आत्मसत्ता भासती है, तैसेही तुमको भी भासेगी। हे बधिक! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् आत्मत्व दिखाई देता है और जो अज्ञानी हैं उनको प्रमाद से द्वैतरूप भासता है इससे वह पदार्थों को सुखरूप जानकर पाने का यत्न करता है और सुख से सुखी और दुःख से द्वेष करता है पर परमानन्द जो आत्मपद है उसके पाने का यत्न नहीं करता। ज्ञानवान् सदा परमानन्द में स्थित है और सब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूप भासता है। हे बधिक! सर्वजगत् जो तुझको दृष्टि आता है वह चिन्मात्रस्वरूप ब्रह्म है; न कोई स्वप्न है, न कोई जाग्रत् है, न कोई कर्म है और न कोई अविद्या है सर्व ब्रह्मस्वरूप सदा अपने आपमें स्थित है—उसमें और कुछ नहीं जैसे जल में आवर्त स्थित होता है परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं होता; तैसेही ब्रह्म में जगत् हुये की नाईं भासता है परन्तु ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है तू विचार करके देख तब तेरे दुःख मिट जावेंगे। जब तक विचार करके स्वरूप को न पावेगा तब तक दुःख न मिटेगा। जब स्वरूप को पावेगा तब सब कर्म नष्ट होजावेंगे। जितना विचार होता है उतनाही उतना सुख है। जहां विचार उत्पन्न होता है वहां से अविद्या नष्ट होजाती है। जैसे जहां प्रकाश होता है वहां अन्धकार नहीं रहता; तैसेही जहां सत्य असत्य का विचार उत्पन्न होता है वहां अविद्या का अभाव होजाता

है और फिर वह संसारचक्र में नहीं गिरता बल्कि परमपद को प्राप्त होता है। जिस ज्ञानवान् को यह पद प्राप्त हुआ है वह दुःखी नहीं होता।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मनिर्णयो नाम
द्विशताधिकैकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ २२६ ॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! जो ज्ञानवान् पुरुष है वह अवश्य उस परमानन्द को प्राप्त होता है जिसके पाये से इन्द्रियों का आनन्द सूखे तृणवत् तुच्छ प्रतीत होता है और वैसा सुख पृथ्वी आकाश और पाताल में भी कहीं नहीं मिलता जैसा सुख ज्ञानवान् को प्राप्त होता है। जिसको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ है वह किसकी इच्छा करे ? आत्मानन्द तब प्राप्त होता है जब आत्मअभ्यास होता है। आत्मा शुद्ध और सर्वदा अपने आपमें स्थित है और जो कुछ आगे दृष्टि आता है सो अविद्या का विलास है। जब तू अपने स्वरूप में स्थित होगा तब तुझको सब ब्रह्मही भासेगा। हे बधिक ! पृथ्वी आदिक तत्त्व जो दृष्टि आते हैं सो हैं नहीं; ये जो कुछ होते तो इनका कारण भी कोई होता पर जो येही नहीं हैं तो इनका कारण किसको कहिये और जो इनका कारण नहीं तो कार्य किसका कहिये इसलिये ये भ्रममात्र हैं। विचार किये से जगत् का अभाव होजाता है और आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों भासती है। जैसे किसी को रस्सी में सर्प भासता है पर जब वह भली प्रकार देखता है तब सर्पभ्रम मिटजाता है और ज्यों की त्यों रस्सीही भासती है; तैसेही विचार कियेसे आत्मसत्ता ही भासती है। जैसे आकाश में संकल्प का कल्पवृक्ष अथवा देवता की प्रतिमा रच कर उससे प्रार्थना की तो अनुभव से कार्य सिद्ध होता है तैसेही जितना जगत् तू देखता है सो सब संकल्पमात्र और अनुभवरूप है। जैसे स्वप्न में नाना प्रकार की सृष्टि स्वप्नमात्र है; तैसेही यह सर्वविश्व ब्रह्मा के संकल्प में स्थित है। आदि परमात्मा से कर्म विना जो सृष्टि उपजी है वह किञ्चन आभासरूप है; फिर आगे जो ब्रह्मा ने रचा है सो संकल्परूप है और फिर आगे अज्ञान से कर्म करने लगे तब उन कर्मों से उत्पत्ति होती दृष्टि आई है। जैसे स्वप्न में स्वप्ने की सृष्टि भ्रममात्रही दृढ़ हो

भासती है; जबतक स्वप्न की अवस्था है तबतक जैसा वहां कर्म करेगा तैसाही भासेगा और जो जाग उठे तो न कहीं कर्म है न जगत् है; तैसेही यह सब संकल्पमात्र है ज्ञान से इसका अभाव होजाता है। हे बधिक! ये जो मुझको मनुष्य भासते हैं सो मनुष्य नहीं तो उनके कर्म मैं तुझसे कैसे कहूं? जैसे स्वप्न के निवृत्त हुये स्वप्न की सृष्टि का अभाव होता है तैसेही अविद्या के निवृत्त हुये अविद्या की सृष्टि का भी अभाव होजाता है। आत्मसत्ता अद्वैत है उसमें जगत् कुछ बना नहीं—वही रूप है। जैसे आकाश और शून्यता; अथवा वायु और स्पन्द में भेद नहीं होता; तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। जब चित्तसंवित् फुरती है तब जगत् होकर भासती है और जब नहीं फुरती तब अद्वैत होकर स्थित होती है पर आत्मसत्ता फुरने और न फुरने में ज्यों की त्यों है। जन्म, मरण और बढ़ना, घटना मिथ्या है क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे किसी ने जल और किसी ने पानी कहा तो दोनों एक ही वस्तु के नाम होते हैं; तैसेही आत्मा और जगत् एकही के नाम हैं परन्तु अज्ञान से भिन्न २ भासते हैं। जैसे स्वप्न में कार्य भासते हैं परन्तु हैं नहीं; तैसेही जाग्रत् में कारण कार्य भासते हैं परन्तु हैं नहीं—वास्तव में आत्मतत्त्व है। उस आत्मा में जो अहं मम चित्त फुरता है और उस उत्थान से आगे जो कुछ फुरना होता है वही जगत् है; उस जगत् में जैसा जैसा निश्चय होता है वैसाही वैसा भासने लगता है—इसका नाम नेति है। उसमें देश, काल और पदार्थ की संज्ञा होने लगती है और कारण कार्य दृष्टि आते हैं सो क्या हैं; केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और कुछ हुआ नहीं परन्तु हुये की नाईं भासता है; तैसेही स्वप्न में नाना प्रकार का जगत् भासता है और कारण कार्य भी दृष्टि आता है परन्तु जागने पर कुछ दृष्टि नहीं आता क्योंकि; है ही नहीं; तैसेही यह जगत् कारण कार्यरूप दृष्टि आता है परन्तु है नहीं आत्मा से दृष्टि आता है इससे आत्माही है। जैसे संकल्पनगर दृष्टि आता है, तैसेही आत्मा में घन चैतन्यता से जगत् भासता है सो वही रूप है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। जैसा आत्मा में निश्चय होताहै तैसाही प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यह सब

जगत् संकल्पमात्र है; संकल्प हो जहां तहां उड़ते फिरते हैं और अनुभवसत्ता ज्यों की त्यों है-संकल्प ही मर के परलोक देखता है। बधिक बोला, हे भगवन्! परलोक में जो यह मर के जाता है तो उस शरीर का कारण कौन होता है और वह हन्त्री और हन्ता कौन है? यह शरीर तो यहांहीं रहता है वहां भोगता शरीर कौन होता है जिससे सुख दुःख भोगता है? जो तुम कहो कि, उस शरीर का कारण धर्म अधर्म होता है तो धर्म अधर्म तो अमूर्ति है उससे समूर्ति और साकाररूप क्यों कर उत्पन्न हुआ? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! शुद्ध अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है उसके फुरने की इतनी संज्ञा होती हैं-कर्म, आत्मा, जीव, फुरना, धर्म, अधर्म आदि नाना प्रकार के नाम होते हैं। जब शुद्ध चिन्मात्र में अहं का उत्थान होता है तब देह की भावना होती है और देह ही भासने लगती है; आगे जगत् भासता है और स्वरूप के प्रमाद से संकल्परूप जगत् दृढ़ होजाता है; फिर उसमें जैसा जैसा फुरता है तैसा तैसा हो भासता है। हे बधिक! यह जगत् संकल्पमात्र है परन्तु स्वरूप के प्रमाद से सत्य हो भासता है। प्रमाद से शरीर में अभिमान होगया है उससे कर्तव्य भोक्तव्य अपने में मानता है और वासना दृढ़ होजाती है उसके अनुसार परलोक देखता है। हे बधिक! वहां न कोई परलोक है और न यह लोक है; जैसे मनुष्य एक स्वप्न को छोड़कर और स्वप्न को प्राप्त हो; तैसेही अविदित वासना से इस लोक को त्यागकर जीव परलोक को देखता है। जैसे स्वप्न में निराकार ही साकार शरीर उत्पन्न होता है; तैसेही परलोक में है पर वास्तव में संकल्पही पिण्डाकार होकर भासता है और जैसी २ वासना होती है तैसा ही उसके अनुसार होकर भासता है वास्तव में शरीर और परमार्थ सबही आकाशरूप हैं। हे बधिक! असत्य ही सत्य होकर जन्म मरण भासता है और जैसा जैसा फुरना होता है तैसाही तैसा भासता है-जगत् आभासमात्र है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको आत्मभावही सत्य है और उसमें जैसा निश्चय होता है तैसा होकर भासता है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञातारूप जगत् जो भासता है वह अनुभव से भिन्न नहीं। जैसे स्वप्न में अनेक

पदार्थ भासते हैं सो अनुभवही अनेकरूप हो भासता है और प्रलय में एक होजाते हैं; तैसेही ज्ञानरूपी प्रलय में सब एकरूप होजाते हैं। जब संवित् फुरती है तब नानाप्रकारका जगत् भासताहै और जब संवित् अफुर होती है तब प्रलय होजाती है और एकरूप होजाता है। एक चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित है और पृथ्वी आदिक पदार्थ उसका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कुछ नहीं, आत्मसत्ता निर्विकार है और उसमें निराकार और साकार भी कल्पित है। जो पुरुष दृश्य से मिले चैतन्य हैं वे जड़धर्मी हैं और उसको नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं; ज्ञानवान् को सत्यरूप चिन्मात्रही भासता है। हे बधिक! यह जगत् सब चिन्मात्र है; जब चित्त संवित् फुरतीहै तब स्वप्नरूप जगत् भासता है और जब चित्त संवित् फुरने से रहित होती है तब सुषुप्ति होती है। ऐसेही चित्त संवित् के फुरने से सृष्टि होती है और चित्त के स्थित होने से प्रलय हो जाती है। जैसे स्वप्न और सुषुप्ति आत्मामें कल्पित है, तैसेही आत्मा में कल्पित सृष्टि और प्रलय आभासमात्र है और जगत् कुछ बना नहीं; फुरने से जगत् भासता है इससे जगत् भी आत्मरूपहै और पञ्चतत्त्व भी आत्माका नामहै और सदा अद्वैतरूप जगत् आभासमात्रहै। जैसे आत्मा में साकार कल्पित है तैसेही निराकार भी कल्पित है और जैसे स्वप्नमें किसी को साकार जानता है और किसी को निराकार जानता है पर दोनों फुरनामात्र है। जो फुरने से रहित है सो आत्मसत्ता है और साकार और निराकार भी वही है। आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है और निराकारही साकार हो भासता है। हे बधिक! सर्व जगत् जो तुझको दृष्टि आताहै सो चिन्मात्रस्वरूप है, भिन्न कुछ नहीं; परन्तु अज्ञान से नाना प्रकार के कार्य कारण और जन्म मरण आदि विकार भासते हैं; वास्तव में न कोई जन्म है और न मरण है; न कोई कार्य है और न कारण है। यदि जीव मरता होता तो परलोक भी न देखता और अपने मरने को भी न जानता जो मर के परलोक देखता है सो मरता नहीं। यदि मनुष्य मृतक हो तो पूर्वसंस्कार को न पावे और पूर्वस्मृति इसको न हो पर तू तो पूर्वसंस्कार से क्रिया में प्रवर्तता है और प्रतियोग

से तुझे पदार्थों की स्मृति भी हो आती है फिर कर्म भोगता है। पूर्वलोक में तो पुरुष मृतक नहीं होता केवल भ्रम से मरण भासता है और कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं और जब मरके परलोक देखता है और सुख दुःख भोगता है तो वह शरीर किसी कारण से नहीं बना। जैसे वह शरीर अकारण है तैसेही और जो आकार दृष्टि आते हैं वे भी अकारण हैं-इसीसे आभासमात्र हैं। जैसे स्वप्ने के शरीर से नाना प्रकार की क्रिया होती है और देश देशान्तर देखता है सो सब मिथ्या है, तैसेही यह जगत् मिथ्या है और मरण भी मिथ्या है। जो तू कहे कि, इसके साकार का अभाव देखता है सो मृतक है तो हे बधिक! जो यह पुरुष परदेश जाता है तो भी इसका आकार दृष्टि नहीं आता। जैसे दृष्टि के अभाव में असत्य होता है, तैसेही देह के त्याग में भी इसका असत्यभाव होताहै पर इस पुरुष का अभाव कदाचित नहीं होता। जो तू कहे कि, परदेश गया फिर आ मिलता है शरीर के त्याग से फिर नहीं मिलता तो परदेश गया फिर मिलकर वार्त्ता चर्चा करता है और मुआ तो कदाचित् चर्चा नहीं करता पर जिसके पितर प्रीति से बँधे हुये मरते हैं और जिनकी यथाशास्त्र क्रिया नहीं होती तो वे स्वप्ने में आ मिलते हैं और यथार्थ कहते हैं कि; हमारी क्रिया तुमने नहीं की; हम अमुक स्थान में पड़े हैं और अमुक द्रव्य अमुक स्थान में पड़ा है तुम निकाल लो; तो जैसे परदेशी गण मिलते हैं और वार्त्ता चर्चा करते हैं तैसेही मुये भी करते हैं। हे बधिक! वास्तव में न कोई जगत् है और न कोई मरता है केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और जैसा २ उस में फुरना फुरता है तैसाही तैसा हो भासता है। हे बधिक! अनुभवरूप कल्पवृक्ष है; जैसा २ उस में फुरना फुरताहै तैसाही तैसा हो भासता है। एक संकल्पसिद्ध और एक दृष्टिसिद्ध वस्तु है; जब इनकी दृढ़ भावना होती है तब ये दोनों सिद्ध होती हैं। जो इन्द्रियों में द्रव पदार्थ है सो दृष्टिसिद्ध वस्तु कहाती है; जो इसी की भावना होती है तो यही प्राप्त होती है और जो अपने मन में आपही मान लीजिये कि; मैं ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र वर्ण हूं अथवा गृहस्थ, वानप्रस्थ,

ब्रह्मचारी वा संन्यासी आश्रम हूं तो यह संकल्प सिद्ध है। जबतक इन में अभ्यास होताहै तबतक आत्मसत्ता की प्राप्ति नहीं होती और जब आत्मसत्ता का अभ्यास होताहै तब इन दोनों का अभाव होजाताहै और आत्माही प्रत्यक्ष अनुभव से भासताहै। हे बधिक! जिस वस्तु का अभ्यास होताहै उसकी यदि भावना करे और थककर फिरे नहीं तो वह अवश्य प्राप्त होती है पर अभ्यास विना कुछ सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई पुरुष कहे कि, मैं अमुकदेश जाताहूं तो जब तक उसकी ओर वह चले नहीं तबतक अनेक उपाय करे भी नहीं प्राप्त होता और जब उसकी ओर चलेगा तब पहुँच रहेगा; तैसेही जब आत्मा का अभ्यास बहुत एकाग्र होकर करेगा तब उसको प्राप्त होगा अन्यथा आत्मपद को न प्राप्त होगा। हे बधिक! जिस पुरुष को जगत् के पदार्थों की इच्छा है उसको आत्मपद नहीं प्राप्त होता और जिसको आत्मपदकी इच्छाहै उसको वही प्राप्त होवेगा; जगत्के पदार्थ न भासेंगे। यदि ऐसी भावना हो कि; मेरी देवताकीसी मूर्ति हो और उससे मैं स्वर्ग में बिचरूं और एक स्वरूपसे भूलोकमें मृग होके भ्रमण करूं तो दृढ़ अभ्यास से वही होजाता है क्योंकि; जगत संकल्पमात्र है जैसा जैसा निश्चय होता है तैसाही भासि आता है। हे बधिक! दो स्वरूप की क्या वार्त्ता है जो सहस्रमूर्ति की भावना करे तो वही तद्रूप होजावेगा। यह मनुष्य जैसी भावना करताहै तैसाही रूप होजाता है। यह अविद्या का भ्रममात्र जगत है इसकी भावना त्यागकर आत्मपदका अभ्यास कर तब तेरे दुःख मिट जावेंगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महाशवोपाख्याने निर्णयोपदेशो नाम द्विशताधिकत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २३०॥

मुनीश्वर बोले,हे बधिक! जैसे अगाध समुद्र में अनेक तरङ्ग फुरते हैं, तैसेही आत्मा में अनेक सृष्टि फुरती है और जीव २ प्रति अपनी २ सृष्टि है परन्तु परस्पर अज्ञात है और एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता और दूसरे की सृष्टिको वह नहीं जानता। जैसे एकही स्थान में दो पुरुष सोये हों तो उनको अपने २ फुरने की सृष्टि भासि आती है पर एककी सृष्टि

को दूसरा नहीं जानता परस्पर दोनों अज्ञात होते हैं; तैसेही सब सृष्टि आत्मा में फुरती है परन्तु एककी सृष्टि को दूसरा नहीं जानता। जो धारणाभ्यासी योगी है उसको अन्तवाहक शरीर प्रत्यक्ष होता है और वह दूसरे की सृष्टि को भी जानता है। जैसे एक तालाब का दर्दुर होता है; एक कूप का दर्दुर होता है और एक समुद्र का दर्दुर होता है सो स्थान तो भिन्न भिन्न होते हैं परन्तु जल एकही है इससे चाहे जैसा दर्दुर हो पर उसको जल जानता है कि, मेरे में हैं; तैसे जगत् भिन्न २ अन्तःकरणों में है परन्तु आत्मसत्ता के आश्रय है और आदि जो संवेदन उसमें फुरी है सो अन्तवाहक है। जब अन्तवाहक में योगी स्थित होता है तब और के अन्तवाहक को भी जानता है। इस प्रकार अनन्तसृष्टि आत्मा के आश्रय अन्तवाहक में फुरती हैं सो आत्मा का किञ्चन है, फुरती भी है और मिट जाती है। संवेदन के फुरने से सृष्टि उत्पन्न होती है और संवेदन के ठहरने से मिट जाती है क्योंकि, आकाशरूप होती है। जैसे वायु के ठहरने से जल एक रूप होजाता है और जल से इतर कुछ नहीं भासता; तैसेही संवेदन के फुरने से आत्मा में अनन्त सृष्टि भासती है और संवेदन के ठहरने से सब आत्मरूप होजाती है तब आत्मा से इतर कुछ नहीं भासता क्योंकि इससे इतर प्रमाद से भासता है और फिर कारण-कार्य भ्रम भासता है। प्रथम जो सृष्टि फुरी है सो कारण-कार्य के क्रम और संस्कार से रहित है; पीछे कारण कार्य क्रम भासित हुआ और फिर उसका संस्कार हृदय में हुआ तब संस्कार के वश से भासने लगीं। जिनको स्वरूप का प्रमाद नहीं हुआ उनको सदा परब्रह्म का निश्चय रहता है और जगत् अपना संकल्पमात्र भासताहै और जिनको स्वरूप का प्रमाद होता है उनको संस्कारपूर्वक जगत् भासता है—संस्कार भी कुछ वस्तु नहीं। हे बधिक! जो जगत् ही मिथ्या है तो उसका संस्कार कैसे सत्य हो? परन्तु ज्ञानवान् को इस प्रकार भासता है और जो अज्ञानी हैं उनको स्पष्ट भासता है। हे बधिक! जैसे तुम संकल्प के रचे पदार्थ; स्मृति और स्वप्नसृष्टि को असत् जानते हो; तैसेही हम इस जाग्रत्सृष्टि को असत् जानते हैं और जैसे मृगतृष्णा का जल असत्

भासता है, तैसेही हमको यह जगत् असत्य है तो फिर कारण, कार्य, कर्म संस्कार हमको कैसे भासे? अज्ञानी को तीनों भासते हैं। हे बधिक! जब चित्तसंवित् बहिर्मुख होतीहै तब जगत् भासता है और जब अन्तर्मुख होती है तब अपने स्वरूप को देखती है। जब आत्मतत्त्व का किञ्चन संवेदन फुरती है तब स्वप्न जगत् हो भासता है और जब ठहर जाती है तब सुषुप्ति प्रलय होजाती है। फुरने का नाम सृष्टि की उत्पत्ति है और ठहरने का नाम प्रलय है। जिसके आश्रय फुरना फुरता है सो शुद्धसत्ता अव्यक्त और निराकार है—यही आकाररूप भासता है और जो अकारण निराकार है उसमें अकारण आकार भासता है इससे जानता है कि; वही रूप है और कुछ नहीं। आकार भी निराकार है; सृष्टि ही दृश्यरूप हो भासती है और जगत् आभासमात्र है। जैसे समुद्र का आभास तरङ्ग होते हैं तैसेही आत्मा का आभास जगत् है सो आत्मानन्द चिदाकाश है और सर्व जगत् का अपना आप है। बधिक बोला, हे मुनीश्वर! तुम जगत् को अकारण कहते हो तो कारण विना कैसे उत्पन्न होता है क्योंकि; प्रत्यक्ष भासता है और जो कारण से उत्पत्ति कहो तो स्वप्नवत् क्यों कहते हो? स्वप्न सृष्टि तो कारण विना होती है इससे यह कहो कि, यह सृष्टि कारण सहित है अथवा कारण से रहित अकारण है? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह जगत् आदि अकारण है और आत्मा का आभासमात्र है; इसका आत्मात्यन्ताभाव है और कुछ पदार्थ बने नहीं आत्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है सो चिदाकाश चिन्मात्र है और उसको किञ्चन चैतन्यता है। जैसे सूर्य की किरणों का आभास जल भासता है परन्तु जड़ है; तैसेही आत्मा का किञ्चन भी चैतन्य है। वह किञ्चन संवेदन अहंभाव को लेकर फुरती गई है और जैसे २ फुरती है तैसाही तैसा जगत् हो भासता है। जो जो उसमें निश्चय किया है कि, यह कर्तव्य है, इसके करने से पाप है; यह करना है यह नहीं करना है और देश, काल, क्रिया क्रम है, यह इसी प्रकार है। यह ऋषि है, यह देवता है, यह मनुष्य है, यह द्वैत है, यह धर्म है, यह कर्म है, इससे इनका बन्धन है; इससे इनका मोक्ष है। हे बधिक! जो

आदि नेति रची है तैसेही अबतक स्थित है अन्यथा नहीं होती—उसीमें कारण-कार्य क्रम है। प्रथम जो सृष्टि फुरी है सो बुद्धिपूर्वक नहीं बनी—आकाशमात्र फुरी है और जैसे फुरी है तैसेही स्थित है। फिर पदार्थ जो एकभाव को त्यागकर और भाव को अङ्गीकार करते हैं सो कारण से करते हैं; कारण विना नहीं होते क्योंकि; प्रथम सृष्टि अकारण हुई है और पीछे से उसी सृष्टिभाव में कारण कार्य हुये हैं; परन्तु हे बधिक! जिन पुरुषों को आत्मा का साक्षात्कार हुआ है उनको यह जगत् कारण विना ब्रह्मस्वरूप भासता है और जिनको आत्मसत्ता का प्रमाद है उनको जगत् कारण असत्य भासता है परन्तु आत्मा ब्रह्म निराकार अकारण है उसमें संवेदन के फुरने से अब्रह्मता भासती है; निराकार में आकार भासता है और अकारण में कारण भासता है। जब संवेदन जो मन का फुरना है सो स्थिर होजाता है तब सर्व जगत् कारण कार्य सहित भासता है पर प्रथम अकारण फुरा है पीछे से देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पदार्थों की मर्यादा भई है और बन्धमोक्ष की नेति हुई है सो ज्योंकी त्यों है कि; जल शीतल ही है और अग्नि उष्णही है। जब जीव आत्मसत्ता में जागता है तब कारण—कार्य सहित जगत् नहीं भासता। जैसे स्वप्नसृष्टि प्रथम अकारण भासि आती है और जब दृढ़ होजाती है तब कारण से कार्य होता है सो दृढ़ होआता है; जैसे मृत्तिका बिन घट नहीं बनता पर जाग उठे से सर्व जगत् आत्मरूप होजाता है। हे बधिक! यह जगत् संवेदन में स्थित है, जबतक अहंभाव का फुरना है तबतक जगत् है और जब अहंभाव मिटता है तब सर्व जगत् शून्य आकाशवत् होता है। जबतक अहं फुरती है तबतक नाना प्रकार का जगत् भासता है और जैसी भावना होती है तैसा भासता है। सर्वपदार्थ सर्वदा काल अपनी २ शक्ति में और जैसे आदि नेति हुई है तैसेही स्थित है। जो जीव जैसी क्रिया का अभ्यास करेगा उसका फल पावेगा; जो बन्धन के निमित्त अभ्यास करेगा सो बन्धन पावेगा और मोक्ष के निमित्त करेगा सो मोक्ष पावेगा—ऐसे ही आदि नेति हुई है। हे बधिक! इस प्रकार

किञ्चन होकर मिट जाती है और आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है । जगत् की उत्पत्ति और प्रलय ऐसे हैं जैसे हाथी अपनी सूंड़को पसारे और खैंचे और ऐसेही चित्तसंवेदन के पसरने से जगतउत्पत्ति होती है और निस्पन्द में प्रलय होजाती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कार्यकारणाकारणनिर्णयो नाम द्विशताधिकैकत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ २३१ ॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! यह सम्पूर्ण जगत् चिद्अणु के ओज में है और उस सम्बन्ध के अभ्यास से आत्मा चिद्अणु की संज्ञा पाता है । ओज, अन्तःकरण और हृदय तीनों अभेद हैं और चैतन्यसत्ता उसमें स्थित है जो बाहर से मृतकरूपवत् होती है और उसमें जीवितरूप है और वहां बड़े प्रकाश से प्रकाशती है । उस सत्ता का आगे चित्त से संयोग हुआ है और फिर चित्त और प्राणकला का संयोग हुआहै । हे बधिक ! जब प्राण क्षोभते हैं तब चित्त खेद को प्राप्त होताहै और जब चित्त खेदको पाताहै तब प्राण भी खेद पाते हैं । जब प्राण स्थित होते हैं तब जीव शान्ति पाता है और जो प्राण स्थित नहीं होते तो जीव जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में भटकता है । जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था भिन्न आती है सो सुनो, हे बधिक ! जब यह पुरुष अन्न भोजन करता है तब वह अन्न जाग्रत्वाली नाड़ी पर स्थित होताहै और वह नाड़ी रुकजाती है उससे सुषुप्ति आती है । जिन नाड़ियों में गई हुई चित्त की वृत्ति जाग्रत् जगत् को देखती है सो जाग्रत् नाड़ी कहाती है । उन पर अन्न जाय स्थित होता है और चित्तसत्ता जो चित्त में प्रतिबिम्बित है वह चित्तनाड़ी उसके तले आजाती है तब प्राणवायु भी उस नाड़ी में ठहर जाता है और चित्त-स्पन्द भी ठहर जाता है तब सुषुप्ति होती है । जो पित्त बहुत होता है तो सूर्य, अग्नि आदिक उष्ण पदार्थ स्वप्ने में दिखते हैं और जब वह अन्न पचता है और उन नाड़ियों में प्राण जाते हैं तब स्वप्न अवस्था आती है । जब जल के शोषने को वायु बहता है तब जीव स्वप्ने में उड़ता है और जो कफ बहुत होता है तब जल को देखताहै और नदियां, ताल आदि देखता

है और जाकर डूबता है। जब उष्ण नाड़ी में अन्न जल पहुँचता है तब जाग्रत् अवस्था होती है। इसी प्रकार जीव तीनों अवस्थाओं में भटकता है। जगत् न कुछ भीतर है और न बाहर है केवल अद्वैतसत्ता ज्यों की त्यों है। उसके प्रमाद से चित्त की वृत्ति जब बहिर्मुख फुरती है तब जगत् को जाग्रत् देखता है; जब बाहर की इन्द्रियों को त्याग के भीतर आती है तब अन्त स्वप्न जगत् देखता है और जब अपने स्वभाव में स्थित होती है तब और कल्पना मिट जाती है सर्वब्रह्म ही भासता है। इससे सर्व कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो रहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिविचारो नाम द्विशताधिकद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २३२॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह तीनों अवस्था आती और जाती हैं इनके अनुभव करनेवाली जो सत्ता है सो आत्मसत्ता है और वह सदा एकरस है। जिस पुरुष को अपने स्वरूप का अनुभव हुआ है उसको अपना किञ्चन भासता है और जिसको प्रमाद है उसको जगत् भासता है। यह जगत् चित्त का कल्पा हुआ है और इन्द्रियों का जिसको प्रमाद है उसको जगत् भासता है। जब इन्द्रियाँ विषयों के सन्मुख होती हैं तब जगत् देखती हैं और उस संकल्प जगत् को देखकर राग द्वेषवान् होती हैं। फिर इन्द्रियों के अर्थ पाकर जीव हर्ष शोकवान् होता है। हे बधिक! जिस चिद्अणु का इन्द्रियों से सम्बन्ध है उसको संसार का अभाव नहीं होता। नेत्र, त्वचा, जिह्वा, नासिका और श्रोत्र से देखता, स्पर्श करता, रस लेता, सूंघता, सुनता और मानता है तब संसारी होकर दुःख पाता है और जब इनके अर्थ को त्याग के अपने स्वभाव की ओर आता है तब सर्व जगत् को आत्मरूप जानकर सुखी होता है। हे बधिक! चित्त के फुरने का नाम जगत् है और चित्त के स्थित होने का नाम ब्रह्म है—जगत् और कुछ वस्तु नहीं इसीका आभास है। चित्तके आश्रय सब नाड़ी हैं उनमें स्थित होकर जीव तीनों अवस्था देखता है पर वास्तव में जीव चिदाकाश आत्मा है—अज्ञान से जीवसंज्ञा पाई है। हे बधिक! ओज धातु जो हृदय है उसमें चिद्अणु स्थित होकर

दीपक की ज्योतिवत् प्रकाशता है और उसी के ओज के आश्रय सब नाड़ी हैं सो अपने २ रस को ग्रहण करती हैं। जब प्राणी भोजन करता है और अन्न जाग्रत् नाड़ी में पूर्ण होता है तब जाग्रत् का अभाव होजाता है और चित्त की वृत्ति और प्राण आनेजाने से रहित होजाते हैं—वह नाड़ी मूंद जाती है। फिर जब कफनाड़ी में प्राण फुरते हैं तब स्वप्ना भासता है। हे बधिक! जब इन्द्रियों को ग्रहण करके चित्तकी वृत्ति बाहर निकलती है तब जाग्रत् जगत् हो भासता है। जब तन्मात्रा को लेकर चित्त की वृत्ति ओज धातु में फुरती है तब स्वप्ना भासता है और जब ओज धातुपर अन्न आदिक द्रव्य का बोझ पड़ता है तब सुषुप्ति होती है। जब निद्रा और जाग्रत् का बल होता है तब दोनों भासते हैं और जब दोनोंमें से एक का बल अधिक होता है तब वही जाग्रत् अथवा सुषुप्ति भासती है। जब निद्रा से रहित मन्द संकल्प होता है तब उसको मनोराज कहते हैं और जब बाह्य विषयों को त्यागकर चित्त की वृत्ति अन्तर्मुख होती है तब स्वप्ना होता है। वहां जिस सिद्धान्त में जाता है उसके अनुसार भीतर जगत् भासता है। कफ के बल से चन्द्रमा, क्षीरसमुद्र, नदियां, जल से पूर्ण ताल और वृक्ष, फूल, फल, बागीचे, सुन्दर वन, हिमालय, कल्पवृक्ष, तमाल, सुन्दर स्त्रियां, बेलें, बावलियां इत्यादि सुन्दर और शीतल स्थान देखता है। जब पित्त का बल अधिक होता है तब सूर्य, अग्नि और सूखे वृक्ष, फल और टास देखता है; सन्ध्याकाल के मेघ की लाली देखता है; वन और दूसरे स्थानों में अग्नि लगी देखता है और पृथ्वी और रेत तपी हुई और मरुस्थल की नदी दृष्ट आती हैं; जल उष्ण लगता है; हिमालय का शिखर भी उष्ण लगता है और नाना उष्णपदार्थ दृष्ट आते हैं। जब वायु का बल अधिक होता है तब स्वप्ने में अधिक वायु देखता है और पाषाण की वर्षा होती दृष्ट आती है; अन्धे कूप में गिरता देखता है और हाथी घोड़े उड़ते दृष्ट आते हैं; आपको उड़ता फिरता देखता है; अप्सरा के पीछे दौड़ता है; पहाड़ों की वर्षा होती; वायु तीक्ष्णवेग से चलती और अन्न से आदि लेकर पदार्थ चलते दृष्ट आते हैं और विपरीत होकर भासते

हैं। इस प्रकार वात, पित्त और कफ से स्वप्न में जगत् देखता है और जिसका बल विशेष होता है वह उस धर्म में दृष्टि आता है। वासना के अनुसार जीव न्यूनाधिक राजसी, तामसी और सात्त्विकी पदार्थ देखता है और जब तीनों इकट्ठे होकर कुपित होते हैं तब प्रलयकाल दृष्ट आता है। हे बधिक! जबतक वात, पित्त और कफ के अंश के साथ मिला हुआ पुर्यष्टक कफ के स्थान में प्रवेश करता है तबतक समान जल के क्षोभ भासते हैं। इसी प्रकार वात, पित्त और कफ जिसके स्थान में जाता है और और के स्वभाव को लेता है तबतक समान क्षोभ भासता है। जब केवल वात का क्षोभ होता है तब महाप्रलय कालके पवन चलते और पहाड़पर पहाड़ गिरते और भूकम्प आदि क्षोभ होते हैं; जब कफका क्षोभ होता है तब समुद्र उछलते हैं और पित्त से अग्नि लगती है और महाप्रलय की नाईं तत्त्व क्षोभवान् होते। जब प्राण जाग्रत् नाड़ी में जाते हैं और वह अन्न से पूर्ण होती है तब जीव उसके नीचे आजाते हैं। जैसे कन्ध के नीचे दर्दुर आवे; पाषाण की शिला में कीट आजावे और काष्ठ की पुतली काष्ठमें हो। जैसे इनमें अवकाश नहीं रहता तैसेही और नाड़ी में फुरने का अवकाश नहीं रहता रुकजाती है तब इसको सुषुप्ति होती है। जब कुछ अन्न पचता है तब चित्तसंवित् अपने भीतर स्वप्न देखती है जिसको जिसका विकार विशेष होता है उसी का कार्य देखता है। जब अन्न और जल पचता है तब फिर जाग्रत् जगत् देखता है और जब जाग्रत् और स्वप्न दोनों का बल सम होता है तब दोनों को देखता और अनुभव करता है। हे बधिक! इसी प्रकार तीनों अवस्था होतीं और मिट जाती हैं सो तीनों गुणों से होती हैं। इनका द्रष्टा इनको अनुभव करनेवाला है सो गुण से अतीत है और सर्व का आत्मा है। यह जगत् और स्वप्न जगत् संकल्पमात्र है, कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ताही किञ्चन करके जगत्रूप हो भासती है परन्तु अज्ञानी उसको जगत् जानते हैं और जगत् को सत्य जानकर इष्ट अनिष्ट में राग द्वेष करते हैं जब बाहर की इन्द्रियां सुषुप्ति होजाती हैं तब भीतर स्वप्न में भटकता है और उसमें सूर्य, चन्द्रमा, वन,

फूल, फल, वृक्ष आदिक जगत् देखता है और जब स्वरूप का अनुभव होता है तब सर्व भटकना मिट जाता है और शान्तिपद को प्राप्त होता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ २३३ ॥

बधिक बोला, हे मुनीश्वर! उस पुरुष के हृदय में जो तुमने जगत् और प्रलय देखी थी उसके अनन्तर क्या किया और क्या अवस्था देखी? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! उसके चित्तस्पन्द में मैंने देखा कि, बड़े बड़े पहाड़ प्रलय की वायु से सूखे तृण की नाईं उड़ते हैं और पाषाण की वर्षा होतीहै। इस प्रकार मैंने प्रलय के क्षोभ को देखा और मेरे देखते २ जाग्रत्वाली नाड़ी में अन्न स्थित हुआ तो वहां जो अन्न के दाने गिरे सो पर्वतवत् भासे और चित्तस्पन्द जो संवित् थी सो रोकी गई एवम् उसमें मैं था सो तामस नरक में जापड़ा—मानो वहां मैं भी जड़ होगया और मुझको कुछ ज्ञान न रहा। जब कुछ अन्न पचा और कुछ अवकाश हुआ तब प्राण का स्पन्द फुरा और जैसे वायु निस्स्पन्द हुई स्पन्द होकर चले तैसेही वहां संवित् फुरी तब सुषुप्ति दृश्य होकर भासने लगी—मानों आत्मा द्रष्टाही दृश्यरूप होकर भासने लगा परन्तु और कुछ नहीं बना। जैसे अग्नि और उष्णता; जल और द्रवता और मिरच और तीक्ष्णता में भेद नहीं तैसेही आत्मा और दृश्य में कुछ भेद नहीं। हे बधिक! इस प्रकार मैंने जगत् को देखा और सुषुप्ति जाग्रत् दृश्य से दृश्य उपजी और मुझको दृष्टि आई—जैसे कुमारी कन्या से सन्तान उपजे। बधिक बोला, हे मुनीश्वर! जो सुषुप्ति आत्मा में दृश्य उपजी सो सुषुप्ति क्या है जिसमें तुम दब गये थे वही सुषुप्ति है जिससे जगत् उपजता है? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जहां सर्वसम्बन्ध का अभाव है केवल आत्मसत्ता से भिन्न कुछ कहना नहीं बनता उसका नाम सुषुप्ति है और उसमें जो फुरना हुआ उसके तीन पर्याय हैं सो सब सन्मात्र के हैं। जो वस्तु देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है वह सन्मात्र है; उस सन्मात्र में और कुछ बना नहीं उसके जो सब पर्याय हैं वेही रूप हैं। वही सत्य वस्तु अपने

आपमें विराजता है और कदाचित् अन्यथाभाव को नहीं प्राप्त होता; किञ्चन में भी वही रूप है और अकिञ्चन में भी वही रूप है। आत्माही का नाम सुषुप्ति है और उसीसे सब जगत् होता है। जिस सत्ता का नाम सुषुप्ति है वही स्वप्नदृश्य होकर भासता है—उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे वायु निस्स्पन्द स्पन्द में वही रूप है, तैसेही आत्मा दोनों अवस्थाओं में एकही है। हे बधिक! हम सरीखों की बुद्धि में और कुछ नहीं बना आत्मा ही सदा ज्यों का त्यों स्थित है और शरीर के आदि भी और अन्त भी वही रूप है। उसमें जो किञ्चन द्वारा भासित हुआ है वह भी वही रूप है। जैसे सुषुप्ति अवस्था में मुझको अद्वैत का अनुभव होता है और कहीं फुरना नहीं होता और उसमें जो स्वप्न और जाग्रत् भासि आती है सो भी वही रूप है और जिसमें फुरती और जिसमें भासती है उसमें भिन्न कुछ नहीं; इससे यह जगत् आत्मा का किञ्चन आत्मरूप है। जब तू जागकर देखेगा तब तुझको आत्मरूपही भासेगा। जैसे स्वप्नपुर और संकल्पनगर का अनुभव होता है और आकाशरूप है तैसेही यह जगत् आकाशरूप है और शक्ति भी वही है। सर्वशक्ति आत्मा निष्किञ्चन भी और किञ्चन भी और शून्य भी वही है जो वाणी से कहा नहीं जाता। उस अवस्थामें ज्ञानी स्थित है। हे बधिक! ज्ञानवान् को प्रत्यक्ष करके अनुभवरूप ही भासताहै जैसे स्वप्न में जीव और ईश्वर भिन्न २ भासते हैं और उपाधि करके अनुभवभेद भासता है—वास्तव में कुछ भेद नहीं; तैसेही जाग्रत्में अज्ञान उपाधि से भेद भासताहै पर स्वरूप से आत्मा एकरूप है और जब अज्ञान निवृत्त होता है तब सर्व आत्मरूप ही भासता है। हे बधिक! सर्व जगत् अपना स्वरूप है परन्तु अज्ञान से भेद होता है; जब आपको जाने तब द्वैतभेद भी मिट जावे। जैसे किसी पुरुष ने अपनी भुजा पर सिंह की मूर्त्ति लिखी हो और उसके भय से दौड़ता फिरे और कष्ट पावे तो वह प्रमाद से भयवान् होता है क्योंकि, वह तो अपनाही अङ्ग है और अपने अङ्ग के जाने से भय मिट जाता है; तैसेही स्वरूपके ज्ञान से जगत् भय मिटजाता है। जैसे स्वप्न में अज्ञान से नानात्व भासता है पर बना कुछ नहीं; तैसेही

जाग्रत् में नानात्व भासता है परन्तु बना कुछ नहीं। जब मनुष्य अन्तर्मुख होता है तब बोध की दृढ़ता हो आती है। जैसे प्रातःकाल को ज्यों ज्यों सूर्य की किरणें प्रकट होती हैं त्यों त्यों सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसेही ज्यों ज्यों मनुष्य अन्तर्मुख होता है त्यों त्यों बोध खिलता है। विषयों से वैराग्य और आत्मा के अभ्यास से बुद्धि अन्तर्मुख होकर आत्मपद की प्राप्ति होती है तब आत्मा सर्व एकरस भासता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुषुप्तिवर्णनन्नाम द्विशताधिकचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ २३४ ॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! तब मैंने उसकी सुषुप्ति से जागकर जगत को देखा—जैसे कोई पुरुष समुद्र से निकल आवे; जैसे संकल्प सृष्टि फुर आवे; जैसे आकाश में बादल फुरते हैं और वृक्ष से फल निकल आते हैं; तैसेही उसकी सुषुप्ति से सृष्टि निकल आई—मानो आकाश से उड़ आई वा मानो कल्पवृक्ष से चिन्तामणि निकल आई है। जैसे शरीर के रोम खड़े हो आते हैं; जैसे गन्धर्वनगर फुरि आता है; अथवा जैसे पृथ्वी से अंकुर निकल आता है; तैसेही सृष्टि फुरि आई। जैसे कन्ध पर पुतलियां लिखी हों और जैसे थम्भ में पुतलियां हों; तैसेही मैंने सृष्टि को देखा। जैसे थम्भे में पुतलियां निकली नहीं परन्तु शिल्पी कल्पता है कि; इतनी पुतलियां निकलेंगी; तैसेही अनहोती सृष्टि आत्मरूपी थम्भ से निकल आती है। आत्मरूपी माटी से पदार्थरूपी बासन निकलते हैं परन्तु यह आश्चर्य है कि, आकाश में चित्र होते हैं और निराकार चैतन्य आकाश में पुतलियां मनुष्य कल्पता है। हे बधिक! जैसे आकाश में मकड़ी के समूह निकल आते हैं, तैसेही शून्याकाश से सृष्टि निकल कर उस पुरुष के हृदय में मुझको स्पष्ट भासने लगी। देश, काल, क्रिया और द्रव्य से अकस्मात् सत्यासत्य पदार्थ भासने लगते हैं और असत्य पदार्थ सत्य हो भासते हैं। जैसे मणि मन्त्र औषधद्रव्य के बल से असत्य पदार्थ सत्य हो भासने लगते हैं और सत्य पदार्थ असत्य भासते हैं, तैसेही अभ्यास के बल से मुझको उस पुरुष के हृदय में सृष्टि भासने लगी। हे बाधिक! जैसा

निश्चय संवित् में दृढ़ होता है तैसाही रूप होकर भासता है, वास्तव में न कोई पदार्थ है, न भीतर है, न बाहर है, न जाग्रत् है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति है; यह सब सृष्टि इसके भीतर ही स्थित है और प्रमाददोष से बाहर से फल उत्पन्न होते देखता है। जैसे स्वप्न में सब पदार्थ अपने भीतर बाहर होते भासते हैं तैसेही ये पदार्थ अपने भीतर से बाहर फुरते भासते हैं। हे बधिक! यह जगत् जो आकार संयुक्त दृष्टि आता है सो सब निराकार है और कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ताही अज्ञान से जगत्रूप हो भासती है; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् सत्य असत्य कुछ नहीं भासता केवल ब्रह्म-सत्ता ही अपने आपमें स्थित भासती है और जो अज्ञानी हैं उनको भिन्न२ नाम रूप भासता है। जब चित्त की वृत्ति बाहर फुरती है उसको जाग्रत् कहते हैं; जब अन्तर्मुख फुरती है तब उसको स्वप्न कहते हैं और जब स्थित होती है तब उसको सुषुप्ति कहते हैं; तो एकही चित्तवृत्ति के तीन पर्याय हुये और कुछ वास्तव तो नहीं। इसी जगत् के आदि शुद्ध केवल आत्म-सत्ता थी और उसमें जब चित्तसंवित् फुरी तब जगत् रूप भासने लगी और किसी कारण जगत् उपजा नहीं। जिसका कारण कोई नहीं उसको असत्य जानिये—वास्तवमें कुछ बना नहीं सर्वजगत् शान्तरूप ब्रह्मही है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुषुप्तिवर्णनन्नाम द्विशताधिकपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २३५॥

बधिक बोला, हे मुनीश्वर! प्रलय के अन्तर तुमको क्या अनुभव हुआ था? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! तब मुझको उसके भीतर सृष्टि फुर आई और अपने पुत्र, कलत्र, स्त्री आदि सम्पूर्ण कुटुम्ब भासि आये। उनको देखकर मुझको ममत्व फुर आया और पूर्व की स्मृति भूल गई। अपनी षोड़शवर्षकी आयुर्बल भासी और गृहस्थाश्रम में स्थित हुआ तब राग द्वेष सहित मुझको जीव के धर्म फुर आये क्योंकि; दृढ़ बोध मुझको न हुआ था। हे बधिक! जब दृढ़बोध होता है तब राग द्वेषादिक जीव धर्म चला नहीं सक्के और संसार को सत्य जानकर कोई वासना नहीं होती इसीकारण चलायमान नहीं होता। जिसको बोध की दृढ़ता नहीं

हुई उसको जगत् की वासना खैंच ले जाती है। हे बधिक! अब मुझको दृढ़बोध हुआ है। इस वासना को तरना महाकठिन है; यह पिशाचिनी महाबली है क्योंकि; चिरकाल से दृश्य का अभ्यास हुआ इसकारण चला ले जाती है। जब सत्शास्त्र का विचार और सन्तों का संग जीव को प्राप्त होता है और अभ्यास दृढ़ होता है तब दृश्य का सद्भाव निवृत्त होजाता है। जबतक यह मोक्ष का उपाय नहीं प्राप्त होता तबतक यह भ्रम दृढ़ रहता है और जब सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के विचार से यह विचार उपजता है कि, 'मैं कौनहूं' और 'यह जगत् क्या है' और इसको विचार-कर आत्मपद का दृढ़ अभ्यास होताहै तब दृश्यभ्रम मिटजाता है क्योंकि, असम्यक्ज्ञान से जगत् सत् भासित हुआ है, जब सम्यक्ज्ञान हुआ तब जगत् का सद्भाव कैसे रहे। जैसे आकाश में नीलता; बाजीगर की बाजी और रस्सी में सर्प भ्रम से भासते हैं, तैसेही आत्मामें जगत्भ्रम से भासताहै। जब प्राणी अपने स्वरूप में जागता है। तब जगत् भ्रम मिट जाताहै पर जबतक स्वरूप में नहीं जागता तबतक जगत्भ्रम नहीं मिटता। बधिक बोला, हे मुनीश्वर! यह तुम सत्य कहते हो कि, जगत्भ्रम मिटना कठिन है। मैं तुम्हारे मुख से बारम्बार सुनता हूं और विचारता हूं और पदपदार्थ का ज्ञान भी मुझको दृढ़ होगया है परन्तु संसारभ्रम नष्ट नहीं होता। यह मैं जानता और सुनता हूं कि; सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के विचार बिन शान्ति नहीं होती पर यह संशय मुझको होता है कि; तुम जाग्रत् जगत् को स्वप्नवत् कैसे कहते हो? कई पदार्थ सत्य भासते हैं और कई असत्य भासते हैं। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह सर्वजगत् पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य भासते हैं और शशे के सींग आदिक असत्य भासते हैं सो सब मिथ्यारूप हैं। जैसे स्वप्ने में सत्य असत्य पदार्थ भासते हैं सो सर्व असत्यरूप हैं, तैसेही यह जगत् असत्यरूप है पर उसमें अल्प और चिरकाल की प्रतीति का भेद है। जाग्रत् चिरकाल की प्रतीति है उसमें पदार्थ सत्य भासते हैं और स्वप्न अल्पकाल की प्रतीति है इससे स्वप्ने के पदार्थ असत्य भासते हैं परन्तु दोनों भ्रमरूप और असत्य हैं इस

कारण मैं तुल्य कहता हूं। असत्यही पदार्थ भ्रम से सत्य की नाईं भासते हैं और यह सर्व जगत् स्वप्नमात्र है उसमें सत्य और असत्य क्या कहूं। जैसे स्वप्ने में कई पदार्थ सत्य और कई असत्य भासते हैं पर सबही असत्य हैं, तैसेही जाग्रत् में कई पदार्थ सत्य भासते और कई असत्य भासते हैं परन्तु दोनों भ्रममात्र हैं इसी से असत्य हैं। हे बधिक! प्रतीति का भेद है, पदार्थ में भेद कुछ नहीं। जिसमें प्रतीति दृढ़ हो रही है उसको सत्य कहते हैं और जिसमें प्रतीति दृढ़ नहीं उसको असत्य कहते हैं। एक ऐसे पदार्थ हैं कि, स्वप्ने में उनकी भावना दृढ़ होगई है सो जाग्रत् में भी प्रत्यक्ष भासते हैं और मनोराज की दृढ़ता जाग्रत्‌रूप होजाती है सो भावनाही की दृढ़ता है और भेद नहीं। जिसमें भावना दृढ़ होगई है वह सत्य भासने लगा है जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् संकल्पमात्रही भासता है संकल्प से भिन्न जगत् का कुछ रूप नहीं तो उसमें मैं सत्य और असत्य क्या कहूं? सब जगत् भ्रममात्र है, जो ज्ञानवान् हैं उनको सत्य असत्य कुछ नहीं सब ज्ञानरूपही भासता है। जैसे जिसको स्वप्ने में जाग्रत् की स्मृति आई है उसको फिर स्वप्न नहीं भासता है, तैसेही जिसको जाग्रत्‌रूप स्वप्ने में बोधस्मृति हुई है वह फिर मोक्ष को नहीं प्राप्त होता। इससे न कोई जाग्रत् है, न कोई स्वप्न है और न कोई नेति है क्योंकि; नेति भी कुछ और वस्तु नहीं। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं और उनकी मर्यादा नेति भी भासती है तो वह नेति किससे है? सब ज्ञानरूप होती है; तैसेही जाग्रत् में भी सब ज्ञानरूप है और संवित् के फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं और उसमें नेति भी भासती है; इससे न कोई जगत् और न कोई नेति है। इसका कारण कोई नहीं; कारण विनाही जगत् अकस्मात् फुरआता है और मिट भी जाता है। संवेदन के फुरने से जगत् फुर आता है और संवेदन के मिटेसे मिटजाता है—इससे जगत् संवेदनरूपहै। जैसे वायु स्पन्दरूप होती है; तैसे ही संवेदनही जगत्‌रूप हो भासताहै। जैसे वायु स्पन्दरूप होतीहै तब फुरनरूप हो भासती है और निस्स्पन्द को कोई नहीं जानता परन्तु वायु

को दोनों तुल्य हैं; तैसेही चित्त संवेदनके फुरने में जगत् भासता है और ठहरने में जगत् किञ्चन मिट जाता है-फुरना और ठहरना दोनों उसके किञ्चन हैं और आप दोनों में तुल्य है। हे बधिक! नेति भी अज्ञानी के समुझाने के निमित्त कही है। स्वप्ना भी असत्य है सब कोई जानता है पर स्वप्ने का वृत्तान्त जाग्रत् में सिद्ध होता दृष्टि आता है; कोई कहता है कि, रात्रि में मुझको स्वप्ना आया है कि; अमुक कार्य इस प्रकार होगा और जाग्रत् में वैसाही होता दृष्टि आता है; पिता पुत्र से कह जाता है कि; मेरी गति करना और अमुक स्थान में द्रव्य पड़ा है तुम निकाल लो सो उसी प्रकार होता दृष्टि आया है। जो नेति होती तो कोई कार्य सिद्ध न होता पर सो तो होताहै इससे नेति भी कुछ वस्तु नहीं। आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जाग्रत् उसका नाम है जिसको आत्मशब्द कहते हैं और जिसको तुम जाग्रत् कहते हो सो कुछ वस्तु नहीं। जाग्रत् मनसहित षट्इन्द्रियों की संवेदन होती है सो स्वप्ने में भी मनसहित षट्इन्द्रियों की संवेदन होती हैं और उनमें ग्रहण होता है इससे जाग्रत् कुछ वस्तु नहीं। जो जाग्रत् में अर्थ सिद्ध होता है और स्वप्ने में भी होवे तो जाग्रत् कुछ वस्तु न हुई और जो तू कहे कि, स्वप्ना कुछ वस्तु है तो स्वप्ना भी कुछ वस्तु नहीं क्योंकि, स्वप्ना तहां होता है जहां निद्रा भ्रम होता है। केवल शुद्ध चिन्मात्रसत्ता का जगत् किञ्चन है। जैसे रत्नों का चमत्कार स्थित होता है सो रत्नों से भिन्न कुछ वस्तु नहीं रत्न ही व्यापा है, तैसे ही जाग्रत् स्वप्न जगत् आत्मा का चमत्कार है। बोधसत्ता केवल अपने आप में स्थित है सो अनन्त है उसमें जगत् कुछ बना नहीं। जो आत्मा से भिन्न जगत् भासता है सो नाशरूप है और आत्मा सदा अविनाशी है। हे बधिक! जब यह पुरुष शरीर को छोड़ता है तब परलोक में सुख दुःख ऐसे भोगता है जैसे कि, जल में तरङ्ग उठकर मिटजाता है और दूसरी ठौर और प्रकार से उठता है सो जलही जल है; आगे भी जल था, पीछे भी जल है, तरङ्ग भी जलहै और जलही का विलास इस प्रकार फुरताहै; तैसे ही यह शरीर भी अनुभवरूपहै-अनुभव से भिन्न कुछ नहीं। जैसे मनुष्य

एक स्वप्न को छोड़कर दूसरा स्वप्न देखता है तो क्या है; अपनाही आप है; तैसेही यह जगत् भी आत्मरूप है। हे बधिक! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया ये ही चारों वपु हैं। जाग्रत् जो सृष्टि की समष्टिता है उसका नाम विराट् है; स्वप्न जो लिङ्ग शरीर की समष्टिता है उसका नाम हिरण्य-गर्भ है; सुषुप्ति शरीर की समष्टिता अव्याकृत माया है और तुरीया सर्व-शरीरों की समष्टिता है सो चेतनरूप आत्मा है। तुरीया साक्षीभूत के जानने को कहते हैं; उसकी समष्टितारूप चेतनवपु है; चारों शरीर उसके हैं और वह सदा निराकार अचेत चिन्मात्र है। हे बधिक! ये चारों परमात्मा के शरीर हैं वह परमात्मा निराकार है और आकार जो उसमें दृष्टि आता है सो भी वही रूप है। आकार कल्पनामात्र है और आत्मा सर्वकल्पना से रहित है—इससे सब जगत् चिदाकाशरूप है। जैसे पत्थर की शिला में कमल के फूल नहीं लगते—उनका होना असंभव है; तैसेही आत्मा में जगत् का होना असंभव है। हे बधिक! आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है; तू जागकर देख कि सर्वपदार्थ संकल्पमात्र हैं और जिसमें कल्पित हैं वह नामरूप से रहित है। जब तू उसको देखेगा तब सब जगत् आत्मरूप भासेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वप्ननिर्णयो नाम द्विशताधिक-षट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ २३६ ॥

बधिक बोला, हे मुनीश्वर! उस पुरुष के हृदय में जो तुमने सृष्टि देखी थी उसमें तुम किस प्रकार बिचरते थे और क्या देखा था सो कहो? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जो कुछ वृत्तान्त है सो तू सुन। जब मैंने उसके हृदय में नाना प्रकार का जगत् देखा तब मैं अपने कुटुम्ब में रहनेलगा और पूर्व की स्मृति विस्मरणकर षोड़शवर्ष पर्यन्त उसीको सत्य जानकर चेष्टा करता रहा। तब मेरे गृह में मान करने योग्य उग्रतपा नाम एक ऋषीश्वर आया और उसका मैंने बहुत आदर किया। उसके चरण धोकर उसे मैंने सिंहासन पर बैठाया और नाना प्रकार के भोजन से उसको तृप्त किया। जब उस ऋषि ने भोजन करके विश्राम किया तब मैंने कहा, हे ऋषीश्वर!

अदृष्ट क्रोध को मैं जानता हूं। तुम परम बोधवान् हो क्योंकि, आपको आपही जानते हो। जब तुम आये थे तब थके हुये थे परन्तु तुममें क्रोध न दृष्टि आया और जब तुमने नाना प्रकार के भोजन किये तब तुम हर्षवान् भी न हुये; इस कारण मैंने जाना कि, तुम परम बोधवान् हो और तुम्हारे में राग द्वेष कुछ नहीं है। इससे मैं संशययुक्त होकर एक प्रश्न करता हूं कृपा करके उसका उत्तर देकर मेरे संशय को दूर कीजिये। हे भगवन्! इस जगत् में जो दुर्भिक्ष पड़ता है और सब इकट्ठे मरजाते हैं और कष्ट पाते हैं इसका क्या कारण है? यह तो मैं जानताहूं कि, जैसे शुभ अथवा अशुभकर्म जीव करताहै उसका फल पाता है। जैसे धान को बोता है तो समय पाकर फलभी अवश्य आता है, तैसेही कर्म का फलभी अवश्य प्राप्त होता है और जिसने किया है वही भोगता है पर दुर्भिक्ष में इकट्ठा कष्ट क्योंकर प्राप्त होता है? उग्रतपा बोले, हे साधो! प्रथम यह सुनो कि, जगत् क्या वस्तुहै। यह जगत् कारण विना उत्पन्न हुआ है और जो कारण विना दृष्टि आवे उसे भ्रममात्र जानिये इससे तू विचारकर देख कि, 'यह जगत् क्या हैं'; 'तू कौन है'; 'इसमें क्या है' और इसका अन्त प्रमाण कहांतक है? हे बधिक! यह जगत् स्वप्नमात्र है और यह शरीर भी स्वप्नमात्र है। तू मेरा स्वप्ननर है; मैं तेरा स्वप्ननर हूं और सब जगत् स्वप्ननर है। कारण कार्य कोई नहीं, सब आभासमात्र है; आभास में कुछ और वस्तु नहीं होती इससे सब जगत् आत्मस्वरूप है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रममात्र होता है; सर्प कुछ नहीं रस्सी ही है; तैसेही सब जगत् चिन्मात्ररूपहै। उसमें जगत् कुछ बना नहीं केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें अहं होकर इस प्रकार चैतन्यता संवेदन फुरती है तब जगत् आकार का स्मरण होताहै और जैसे २ संकल्प फुरता है तैसाही तैसा जगत् भासता है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि और संकल्पनगर नाना प्रकार के भासते हैं पर अनुभव से भिन्न नहीं, तैसेही यह जगत् भासताहै। जिस संवित् में अपना स्वरूप स्मरण होताहै उसको जगत् कारण कार्यरूप भासता है—वही जीव है और जिस संवित् को कर्म की कल्पना स्पर्श करती है उसको

उन कर्मों का फल नहीं लगता और कर्तव्य दृष्टिभी आताहै परन्तु उसके हृदय में कर्तव्य का अभिमान नहीं स्पर्श करता। जिसके हृदय में कर्तव्य का अभिमान होताहै उसको फल भी होता है। हे साधो! यह जो सृष्टि है उसका एक विराट्पुरुष है उसी का यह शरीर है और यह विराट् भी और विराट् के संकल्प में है। यह विराट् उस विराट् का रोमाञ्च है। जब विराट्पुरुष के अङ्ग में क्षोभ होता है और जीव की पापवासना उदय होती है तब वासना और अङ्ग का क्षोभ इकट्ठा होकर उस स्थान में उपद्रव और कष्ट होता है। जैसे वनमें बहुत वृक्ष होते हैं और उन पर वज्र आन पड़ता है तो उससे सब चूर्ण होजाते हैं तैसेही इकट्ठे पाप से इकट्ठे ही मर जाते हैं और इकट्ठे दुर्भिक्ष से कष्ट पाते हैं। जैसे किसी पुरुष के अङ्ग पर मक्खी काटे तो उससे वह अङ्ग कांपता है और उस अङ्ग के कांपने से रोम भी कांपने लग जातेहैं और जो सर्पादिक जीव कहीं डसताहै तो सारा शरीर कष्ट पाता है और सब रोम कष्ट पाते हैं; तैसेही यह जगत् विराट्पुरुष का शरीर है जब किसी नगर में पाप उदय होता है तब एक रोमरूपी नगर जीव कष्ट पाते हैं और जो सारे अङ्गरूपी देशमें पाप उदय होता है तब सर्प के काटनेके समान विराट्का सारा शरीर क्षोभवान् होता है और उसके शरीर पर रोमरूपी सबजीव कष्ट पाते हैं। आत्मसत्ता केवल अनुभवरूप है उसके प्रमाद से यह आपदा दृष्टि आती है। यह जगत् कारणसे उपजा होता तो सत्य होता सो तो कारण से उपजा नहीं सत्य कैसे हो? इस जगत्में सत्य प्रतीति करनीही अज्ञानता है। हे साधो! इस आकाशका कारण कोई नहीं; पृथ्वी का कारण कोई नहीं और अविद्या का कारण भी कोई नहीं। स्वयंभू अकारण है। स्वयंभू उसका नाम है कि, जो अपने आपसे प्रकट है तो उसका कारण कौन हो? अग्नि, जल, वायु का कारण भी कहीं नहीं। जो तुम कहो कि, सबका कारण आत्मा है तो आत्माको निमित्तकारण कहोगे अथवा समवायकारण कहोगे? यदि प्रथम पक्ष निमित्तकारण कहिये तो नहीं बनता क्योंकि आत्मा अद्वैत है और दूसरी वस्तु कोई नहीं तो निमित्तकारण किसका हो? यदि समवायकारण कहिये

तो भी नहीं बनता क्योंकि; समवायकारण आप परिणाम से कार्य होताहै पर आत्मा अच्युत है और अपने स्वरूप को नहीं त्यागता सो समवाय कारण कैसे हो ? इससे यदि आत्मा में कारण-कार्यभाव नहीं तो फिर जगत् किसका कार्य हो ? हे अङ्ग ! जो कारण से रहित दृष्टि आवे उसको जानिये कि, भ्रममात्र भासता है और जो तू कहे कि, कारण विना पिण्डाकार नहीं होते कहीं कारण भी होगा; तो हे अङ्ग ! जैसे मनुष्य देह को त्यागता है और परलोक जा देखता है तो कर्म के अनुसार सुख दुःख भोगता है पर उस शरीर का कारण किसे कहिये ? वह तो कारण से नहीं उपजा भ्रममात्र है; तैसे यह भी भ्रममात्र जानो । जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के आकार भासि आते हैं सो किसी कारण से नहीं उपजते और आकाश में तरुवरे और रङ्ग भासते हैं सो भ्रममात्र है; तैसेही यह जगत् भी भ्रममात्र है । जैसे बालक को अनहोता वैताल भासता है और उससे वह भयवान् होता है, तैसेही यह जगत् भी अनहोता स्वरूप के प्रमाद से भासता है; वास्तव में परमात्मसत्ता ज्यों की त्यों है वही संवेदन से जगत्रूप हो भासती है—उसमें वही रूप है । जैसे वायु चलने और ठहरने में एकही रूप है परन्तु चलने से भासती है और ठहरने से नहीं भासती; तैसेही चित्तसंवित् फुरने से जगत् आकार हो भासती है और उसमें नाना प्रकार के शब्द-अर्थ दृष्टि आते हैं और जब फुरने से रहित होती है तब अपने स्वभावको देखती है जब संकल्पकी दृढ़ता होतीहै तब कारणकार्य भासने लगते हैं । जिसको कारणकार्य भासता है उसको जगत् सत्यभासताहै और जिसको कार्य से रहित भासता है उसको जगत् आत्मरूपहै । जिसको कारणकार्य बुद्धि है उसको वही सत्य है । वह पुण्य करेगा तो स्वर्ग में सुख पावेगा और पाप करेगा तो नरकदुःख भोगेगा— इससे उसको पुण्य ही करना भला है । जब जीव के पाप इकट्ठे होते हैं तब दुर्भिक्ष पड़ती और मृत्यु आती है । जैसे पत्थर की वर्षा हो तैसेही वे कष्ट पाते हैं और जो मेरा निश्चय पूछो तो न पाप है, न पुण्य है, न दुःख है, न सुख और न जगत् है । जब स्वरूप के प्रमाद से अहन्ता उदय होती है तब

नाना प्रकार के विकार भासते हैं और जब प्रमाद निवृत्त होता है तब सब आत्मरूप भासता है–इससे तुम सर्व कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होरहो तब सर्व संशय मिटजावेंगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वप्नविचारो नाम द्विशताधिकसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ २३७ ॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर ने उपदेश किया उससे मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ और अकृत्रिमपद को प्राप्त हुआ। उग्रतपा के साथ मानो विष्णु भगवान् उपदेश करने आन बैठे थे, उन्हीं के उपदेश से मैं जागा। जैसे कोई रजसे वेष्टित स्नान से उज्ज्वल हो तैसेही मैं हुआ अपनी पूर्वस्मृति और अवस्था को स्मरणकर और समाधिवाले शरीर और आत्मवपु को भी जान, यह उग्रतपा तेरे पास बैठा है। अग्नि बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब बधिक विस्मय को प्राप्त हुआ और बोला, हे मुनीश्वर! बड़ा आश्चर्य है जो तुम कहतेहो कि, स्वप्नमें मुझको उग्रतपाने उपदेश किया था और फिर जाग्रत्में कहते हो कि, यह बैठा है। यह वार्ता तुम्हारी कैसे मानिये? जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पे और कहे यह प्रत्यक्ष बैठा है तो जैसे वह स्पष्ट नहीं भासता, तैसेही यह तुम्हारा वचन स्पष्ट नहीं भासता। यह अपूर्व वार्त्ता सुनकर मुझको संशय उपजा है सो तुम दूर करो। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह बात आश्चर्य के उपजानेवाली है परन्तु जैसे यह वृत्तान्त हुआ है सो संक्षेप से तुम से कहता हूं सुनो। जब उग्रतपा ने मुझको उपदेश किया तब मैंने कहा, हे भगवन्! तुम यहां विश्राम करो और जिस प्रकार मैं रहता हूं तैसेही तुम भी रहो। तब मैं वहां रहने लगा और उसका उपदेश पाकर विचारा कि, यह जगत् मिथ्या है, मेरा शरीर भी मिथ्या है और इसके सुख के निमित्त मैं क्या यत्न करता हूं? इन्द्रियां तो ऐसी हैं जैसे सर्प होते हैं; इनके सेवनेवाला संसाररूप बन्धन से कदाचित् मुक्त नहीं होता। मेरे जीने को धिक्कार है। जो इनके सुख की वाञ्छा करते हैं वे मूर्ख हैं और मृग की नाईं मरुस्थल के जलपान

करने के निमित्त दौड़ते हैं और थक पड़ते हैं पर तृप्त कदाचित् न होंगे। मैं अविद्या से सुख के निमित्त यत्न करता था पर इनसे तृप्ति कदाचित् नहीं होती। हे बधिक! ममता के रूप जो बान्धव हैं सोही चरणों में जंजीर हैं और अन्धकूप में गिरने का कारण है इनसे बांधा हुआ मैं इन्द्रियों के विषयरूपी कूप में गिरा था। अब मैंने विचार किया है कि, बन्धन का कारण कुटुम्ब है उसको मैं त्यागदूं। फिर विचार किया कि, इनके त्याग में भी सुख नहीं प्राप्त होता जब तक अविद्या को नष्ट न करूं। हे बधिक! ऐसे विचार कर मैं गुरु के पास गया और मनमें विचार किया कि, जगत् भ्रममात्र है और गुरु भी स्वप्नमात्र है इनसे क्या प्राप्त होगा? फिर विचार किया कि, नहीं ये ज्ञानवान् पुरुष हैं और इनको 'अहंब्रह्म' का निश्चय है इससे ये ब्रह्मस्वरूप हैं और कल्याणमूर्त्ति हैं इनसे जाके प्रश्न करूं। तब मैंने जाकर उनको प्रणाम किया और कहा, हे भगवन्! उस अपने शरीर को देख आऊं और इसके शरीर को भी देखूं कि, कहां है। इस जगत् का विराट्पुरुष है। हे बधिक! जब इस प्रकार मैंने कहा तब ऋषि ने हँस कर मुझसे कहा, हे ब्राह्मण! वह तेरा शरीर कहां है? वह शरीर तो दूर गया है अब उसे कहां देखेगा? तू आपही जानेगा। तब मैंने हाथ जोड़कर ऋषि से कहा, हे ऋषे! अब मैं जाता हूं, मेरे आने तक तुम यहां बैठे रहना। हे बधिक! ऐसे कह कर मैं आधिभौतिक देह के अभिमान को त्यागकर अन्तवाहक शरीर से उड़ा और आकाशमार्ग में उड़ता उड़ता थक गया परन्तु शरीर कहीं न पाया। तब मैं फिर ऋषि के पास आया और कहा हे पूर्व अपर के वेत्ता और भूत भविष्यत् के जाननेवाले! वे दोनों शरीर कहां गये? न इस सृष्टि के विराट् का शरीर भासताहै जिसके मार्ग से हम आये थे और न अपना शरीर भासताहै? हे संशयरूपी अन्धकार के नाशकर्ता सूर्य! आप इसका कारण बताइये। उग्रतपा बोले, हे कमलनयन और तपरूपी कमल की खानि के सूर्य और ज्ञानरूपी कमल के धारण करनेहारे विष्णु की नाभि और आनन्दरूपी कमल की खानि! तू सब कुछ जानता है और आत्मपद में जागा हुआ। तू तो योगीश्वर

है, ध्यान करके देख कि, सब वृत्तान्त तुझको दृष्टि आवे। हे मुनीश्वर! यह जगत् असत्यरूप है इसमें स्थिर कोई वस्तु नहीं। विचार कर देखो कि, शरीर की अवस्था तुमको दृष्टि आवे और जो मुझसे पूछते हो तो मैं कहता हूं। हे मुनीश्वर! जिस वन में तुम रहते थे और जहां तुम्हारे शरीर थे उस वन में एक काल में अग्नि लगी और सब प्रकार के वृक्ष और बेलि जल गईं जल भी अग्नि से क्षोभने लगा और वनचारी पशु पक्षी सब जल गये और महाकष्ट को प्राप्त हुये उसी के साथ तुम्हारा शरीर भी जल गया और कुटी भी जल गई। मुनीश्वर बोले, हे भगवन्! उस अग्नि से जो सम्पूर्ण वन जल गया तो उसका कारण कौन था? उग्रतपा बोले, हे मुनीश्वर! यह जगत् जिसमें हम और तुम बैठे हैं इसी का विराट् है और जिसके शरीर में तुमने प्रवेश किया था और जिसमें उसका और तेरा समाधिवाला शरीर है उसका विराट् और है—वह सृष्टि उस विराट् का शरीर है। हे मुनीश्वर! उस विराट् के शरीर में जो क्षोभ हुआ इस कारण अग्नि उत्पन्नहुई और शरीर, वृक्ष इत्यादिक सब जलगये। इस सृष्टिके विराट् का नाम ब्रह्मा है; उस ब्रह्मा का विराट् और है और उसका विराट् आत्मा है जो सदा अपने आप में स्थित है। और उसमें कुछ और नहीं बना। जिस पुरुष को उसका प्रमाद है उसको उपद्रव और कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं उससे वह कर्मोंके अनुसार दुःख सुख भोगता है और जिसको स्वरूपका साक्षात्कार है उसको जगत् आत्मसहित भासताहै और सर्व ओर से ब्रह्म भासताहै। हे मुनीश्वर! जब इस प्रकार वन के पशुपक्षी सब जले तब तुम्हारी कुटी में भी आग लगी इससे वह कुटी और तुम्हारा शरीर अग्नि से जलगया और जिसके शरीर में तुमने प्रवेश किया था वह भी जलगया। तुम्हारे शिष्य और उसका ओज भी जलगया। और तुम दोनों की संवित् आकाशरूप होगई। वह अग्नि भी वनको जलाकर अन्तर्धान होगई। जैसे अगस्त्य मुनि समुद्र का आचमन करके अन्तर्धान होगये थे, तैसेही वह अग्नि भी वनको जलाकर अन्तर्धान होगई और अब तुम्हारे शरीर की राखभी नहीं रही। जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत् में नहीं दिखाई देती,

तैसेही तुम्हारे शरीर अदृष्ट होगये। हे मुनीश्वर! यह सर्वजगत् स्वप्नमात्र है। मैं तेरे स्वप्न में हूं और सब जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है सो सबका अपना आप है, जगत् उसीका आभास है। जैसे संकल्पसृष्टि, स्वप्ननगर और गन्धर्वनगर होता है, तैसेही यह जगत् भी है। हे मुनीश्वर! यह जगत् तेरे स्वप्न में स्थित है और तुझको चिरकालकी प्रतीति से जाग्रत् रूप कारण कार्य नाना प्रकार का सत्य होकर भासता है। मुनीश्वर बोले, हे भगवन्! जो यह स्वप्ननगर सत्य होगया है तो सबही स्वप्ननगर सत्य होंगे? उग्रतपा बोले, हे मुनीश्वर! प्रथम तू सत्य को जान कि, सत्य क्या वस्तु है; पर जगत् जो तुझको भासताहै सो सबही स्वप्ननगर है इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं। इस जगत् को तू समाधिवाले शरीर की अपेक्षा से असत्य कहता है और जिसको तू जाग्रतवपु कहता है सो किसकी अपेक्षा से कहेगा? यह तो अदृष्टिरूप है इससे इसको स्वप्ना जान। जिस सत्ता में यह समाधिवाला शरीर भी स्वप्ना है उस सत्ता को जान तब तुझको सत्यपद की प्राप्ति होगी। जैसे यह जगत् आत्मसत्ता में आभास फुरा है, तैसेही वह भी है। तू जागकर देख तो इसमें और उसमें कुछ भेद नहीं और सर्व जगत् जो भासता है सो सब आत्मरूप रत्न का चमत्कार है। जैसे सूर्य की किरणों में अनहोताही जल भासता है, तैसेही सब जगत् आत्मा में अनहोता भासता है और आत्मा के प्रमाद से सत्य भासता है। तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख। मुनीश्वर बोले; हे बधिक! उग्रतपा ऋषीश्वर रात्रि के समय इस प्रकार कहते हुये शय्या पर सो गया और जब कुछ काल में जागा तब मैंने कहा कि, हे भगवन्! और वृत्तान्त मैं फिर पूछूंगा परन्तु यह संशय प्रथम दूर करो कि, उस व्याधका गुरु तुमने मुझको किस निमित्त कहा; मैं तो व्याध को जानता भी नहीं? उग्रतपा बोले हे दीर्घतपस्विन्! ध्यान करके देख तू तो सब कुछ जानता है जिस प्रकार वृत्तान्त है उसको जानेगा। जो मुझ से पूछता है तो मैं भी कहता हूं और यह वृत्तान्त तो बड़ा है पर मैं तुझको संक्षेप से कहता हूं; हे मुनीश्वर! तुम्हारे देश में राजा के बान्धव और

सबलोग अपना धर्म छोड़देंगे तब दुर्भिक्ष पड़ेगा और वर्षा न होगी इससे लोग दुःख पावेंगे और मर मर जावेंगे। तेरे कुटुम्बभी मरेंगे और कुटीभी नष्ट होजावेगी और वृक्ष, फल, फूलसे रहित होवेंगे। केवल तू और मैं दोनों वन में रह जावेंगे क्योंकि; हमको सुख दुःखकी वासना नहीं हम विदितवेद हैं—विदितवेद को दुःख कैसे हो ? हे मुनीश्वर ! कुछ काल तो इस प्रकार चेष्टा होगी, फिर कुटी के चौफेर फूल, फल, तमालवृक्ष, कल्पतरु, कमलताल आदि नाना प्रकार की सामग्री होगी; बड़ी सुगन्ध फैलेगी; मोर और कोकिला विराजेंगे और भँवरे कमलपर गुञ्जार करेंगे निदान ऐसा विलास प्रकट होगा मानो इन्द्र का नन्दनवन आनलगा है और ऐसी दशा फिर होगी।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रात्रिसंवादो नाम द्विशताधिकाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २३८ ॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! उग्रतपा ऋषीश्वरने मुझसे फिर कहा कि; हे मुनीश्वर ! इस प्रकार वह वन होगा तब तू और मैं एक समय तप करने उठे होंगे और वहां एक व्याध मृग के पीछे दौड़ता तेरी कुटी के निकट आवेगा, उसको तू सुन्दर और पवित्र कथा उपदेश करेगा और उसमें स्वप्ने का प्रसंग चलेगा। उस प्रसंग को पाकर स्वप्न और जाग्रत् का वृत्तान्त वह पूछेगा, उससे तू स्वप्ने का प्रसंग कहेगा और उस स्वप्ने के प्रसंग में उसको तू परमार्थ उपदेश करेगा क्योंकि; सत्य का स्वभाव यह है और मेरे समागम का वृत्तान्त उपदेश करेगा। तेरे वचनों को पाकर वह पुरुष विरक्तचित्त होकर तप करेगा; उससे उसका अन्तःकरण निर्मल होगा और सत्यपद को प्राप्त होगा। हे मुनीश्वर ! इस प्रकार होगा सो मैंने तुझे संक्षेप से कहा है, तूभी ध्यान करके देख इस कारण मैंने तुझको व्याध का गुरु कहाहै। हे व्याध ! इस प्रकार जब उग्रतपा ने मुझसे कहा तब मैं सुनकर विस्मित हुआ कि; इसने क्या कहा ? बड़ा आश्चर्य है; ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती कि, क्या होना है। हे बधिक ! इस प्रकार मेरी और उसकी चर्चा हुई तब रात्रि व्यतीत होगई और मैंने स्नान

करके प्रीति बढ़ाने के निमित्त भली प्रकार उसकी टहल की तब वह वहां रहने लगा। फिर मैं विचार करने लगा कि, यह जगत् क्या है; इसका कारण कौन है और मैं क्या हूं। तब मैंने विचार किया कि यह जगत् अकारण है, किसी का बनाया नहीं और स्वप्नमात्र है। आत्मरूपी चन्द्रमा की जगत्रूपी चांदनी है; उसी का चमत्कार है और वही आत्मसत्ता घट, पट आदिक आकार हो भासती है वास्तव में न कोई कर्म है, न क्रिया है; न कर्ता है; न मैं हूं और न जगत् है। जो तू कहे कि, क्यों नहीं सर्व अर्थ और ग्रहण त्याग तो सिद्ध होते हैं तो ग्रहण त्याग पिण्ड से होता है और पिण्डतत्त्व का होता है, सो तो यह पिण्ड न किसी तत्त्व से बना है और न किसी माता पिता से है; यह तो स्वप्ने में फुर आया है तो इसका कारण किसे कहिये ? और जो कहिये कि; भ्रममात्र है तो भ्रम का कारण कौन है और भ्रान्ति का द्रष्टा कौन है ? जिस शरीर से दृष्टि आता था उसका द्रष्टारूप मैं तो भस्म होगया इससे जगत् और कुछ वस्तु नहीं; केवल आदि अन्त से रहित आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है सोही मेरा स्वरूप है। वहां यह जगत्रूप होकर भासता है; पर केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदिक पदार्थसब आत्मरूप हैं। जैसे समुद्र तरङ्गरूप हो भासता है परन्तु कुछ और नहीं होता, तैसेही आत्मा नाना प्रकार हो भासता है पर कुछ और नहीं होता ब्रह्मसत्ता ही निराभास है और आभासभी कुछ हुआ नहीं केवल चेतनसत्ता ऐसे रूप होकर भासती है। हे बधिक ! इस प्रकार विचार करके मैं विगतज्वर हुआ और मुनीश्वर के वचनों से पर्वत की नाईं अपने स्वभाव में अचल स्थित हुआ। जो कुछ इष्ट अनिष्ट पदार्थ प्राप्त हो उसमें सम रहूं अभिलाषासे रहित सब अपनी चेष्टा को करूं परन्तु अपने स्वभाव में स्थित रहूं। हे बधिक ! सुख भोगने के निमित्त न मुझको जीने की इच्छा है और न मरने की इच्छा है; न जीने में हर्ष है और न मरने में शोकहै; मैं सदा आत्मपद में स्थित हूं कुछ संशय मुझको नहीं। सम्पूर्ण संशय फुरनेमें है सो फुरना मेरे में नहीं रहा इसलिये संसार भी नहीं है।

इति श्रीयोग० नि० द्विशताधिकैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २३९ ॥

मुनीश्वर बोले, हे व्याध ! इस प्रकार जब मैंने निर्णय किया तब तीनों ताप मेरे नष्ट होगये और वीतराग होकर निःशङ्क हुआ । तब किसी पदार्थ की मुझको तृष्णा न रही और निरहंकार हुआ और अनात्मा में जो आत्मअभिमान था सो निवृत्त होकर निर्वाण और निराधार और निराधेय हुआ और अपने स्वभाव आत्मत्व में मैं स्थित होकर सर्वात्मा हुआ । हे बधिक ! जो कुछ शरीर का प्रारब्ध प्राप्त हो उसमें मैं यथाशास्त्र बिचरूं परन्तु कर्तृत्व का अभिमान निश्चय न हो जगत् मुझको आत्म-रूप भासे और तृष्णा करनेवाली मिथ्याबुद्धि आभासमात्र हुई सो आभास कुछ वस्तु नहीं–चिदाकाश आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । हे बधिक ! मुनीश्वर का कहा वृत्तान्त होगया । तुम मेरे पास आये हो इस लिये जो कुछ उपदेश मैंने कियाहै वह परमपावन और सबका सार है । जिस प्रकार जगत् के पदार्थ, तुम और मैं और जाग्रत् वृत्तान्तहै सो मैंने तुझसे कहा। व्याध ने पूछा, हे मुनीश्वर ! यदि इस प्रकार है तो तुम, मैं और ब्रह्मादिक भी सब स्वप्ने के हुये और असत्य ही सत्य की नाईं भासते हैं ? मुनीश्वर बोले, हे व्याध ! तुम, मैं और ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सब स्वप्ने के पदार्थ हैं; न यह जगत् सत्य है, न असत्य है और न सत्यासत्य के मध्य है; न अनिर्वचनीय है क्योंकि; अनुभवरूप है । हे व्याध ! जो अनुभव से देखिये तो वही रूप है और जो अनुभव से भिन्न कहिये तो है ही नहीं । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभव में फुरती है, जो अधिष्ठान की ओर देखिये तो वही रूप है और उससे भिन्न कहने में नहीं आता । हे बधिक ! जैसे कोई नगर देखा है और वह दूर है तो यदि स्मृति करके देखिये तो भासता है परन्तु कुछ बना नहीं स्मृतिमात्र है; तैसेही सब पदार्थ संकल्पमात्र हैं कुछ बने नहीं । अपने स्वभाव में स्थित होकर देख; तू तो बोधवान् है मिथ्याभ्रम में क्यों पड़ा है ? हे व्याध ! तू मेरे उपदेश से विश्रामवान् हुआ कि, नहीं हुआ ? मैं जानता हूं कि, ऐसी परमपद सत्ता में तुमने क्षणभी विश्राम नहीं पाया क्योंकि; दृढ़ भावना नहीं हुई । हे बधिक ! परमपद पाने का मार्ग यही है कि, सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों का विचार करे और उनके अभ्यास

में दृढ़ अभ्यास करे। इस मार्ग विना शान्ति नहीं होती। जब दृढ़ अभ्यास हो तब शान्ति हो और चित्त निर्वाण हो तब द्वैत अद्वैत कल्पना मिटे। इसी का नाम निर्वाण कहते हैं; जब तक चित्त निर्वाण नहीं होता तब तक राग द्वेष नहीं मिटता और जब अभ्यास के बल से चित्त निर्वाण होजाता है तब अविद्या नष्ट होजाती है और आत्मपद और शान्त शिवपद प्राप्त होता है जो मान और मोह से रहित है। जिसने संग का द्वेष जीता है और किसी के संग से बन्धायमान नहीं होता; जो अध्यात्मविचार नित्य करता है और जिसकी सर्वकामना निवृत्त हुई है; जो इष्ट के रागद्वेष धुन्ध से मुक्त है और जो सुख दुःख में सम है ऐसा ज्ञानवान् पुरुष अविनाशी आत्मपद को पाता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे यथार्थोपदेशो नाम द्विशताधिकचत्वारिंशतितमस्सर्गः ॥ २४० ॥

अग्नि बोले, हे राजन्, विपश्चित्! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब बधिक बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुआ और मुनीश्वर के वचन सुनकर मूर्त्तिवत् होगया। जैसे काग़ज़ पर मूर्त्ति लिखी होती है तैसेही वह आश्चर्यवान् हुआ और संशय के समुद्र में डूब गया जैसे चक्र पर चढ़ा बासन भ्रमता है, तैसेही वह संशय में भ्रमने लगा; मुनीश्वर का उपदेश उसने सुना परन्तु अभ्यास विना आत्मपद में विश्रान्ति न पाई। हे राजन्! परम वचनों को उसने अङ्गीकार न किया। जैसे राख में डाली आहुति निरर्थक होती है, तैसेही मूर्ख को उपदेश करना निरर्थक होता है मूर्खता से ही वह संशय में रहा और विचारने लगा कि यह संसार अविद्यक है तो मैं इसका अन्त लेऊं और जो मुझको आत्मपद भासे इससे तप करूं। हे राजन्, विपश्चित्! इस प्रकार विचारकर वह उठा और उनके पास फिरने लगा। पवित्र चेष्टा अङ्गीकार करके उसने व्याध का धर्म त्याग किया और जिस प्रकार वह चेष्टा करे तैसेही वह भी अधिक चेष्टा करे। निदान सहस्र वर्ष पर्यन्त बड़ा तप किया परन्तु मन में कामना यही रक्खी कि, मेरा शरीर बड़ा हो और दिन दिन बहुत भोजन बढ़े; मैं अवि-

द्यक संसार का अन्त लेऊं कि, कहांतक चलाजाता है क्योंकि; जब अविद्या का अन्त आवेगा तब आगे आत्मा का दर्शन होगा। सहस्र वर्ष के उपरान्त जब समाधि से उतरा तो गुरु के निकट जाकर प्रणाम किया और बोला, हे भगवन्! मैंने इतने काल तप किया है परन्तु शान्ति मुझको न हुई। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! तुझको जो मैंने उपदेश किया था उसका तूने भली प्रकार अभ्यास न किया इस कारण तुझको शान्ति न हुई। हे बधिक! मैंने तेरे हृदय में ज्ञानरूपी अग्नि की चिनगारी डाली थी परन्तु तूने अभ्यासरूपी पवन से उसे प्रज्वलित न किया इससे यह दँप गई—जैसे बड़े काष्ठ के नीचे रञ्चक चिनगारी दँप जाती है। हे बधिक! तू न मूर्ख है और न पण्डित है क्योंकि; जो तू पण्डित होता तो आत्मपद में स्थिति पाता। यदि यह नष्ट न होगी तो अभ्यास की दृढ़ता होगी तब वह ज्ञान और शान्ति उदय होगी। अब जो मेरी भविष्यत् होगी वह मैं तुझ से कहता हूँ। हे व्याध! यही तूने भलीप्रकार विचारा है कि, संसार अविद्यक है और इसका अन्त लेऊं कि, कहांतक चला जाता है। अब तेरे चित्त में यही निश्चय है और आगे तू यही करेगा कि, सौ युग पर्यन्त उग्रतप करेगा तब तुझपर परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न होंगे और देवताओं सहित तेरे गृह में आकर तुझ से कहेंगे कि, कुछ वर मांग। तब तू कहेगा, हे देव! ऐसा अविद्यक जगत् है; अविद्या किसी और अणु में है। जैसे दर्पण में किसी ठौर मलीनता होती है और उसके नाश हुये दर्पण शुद्ध होता है; तैसेही आत्मा के किसी कोण में अविद्यारूपी मलीनता है; उसके नाश हुये चिदात्मा का साक्षात्कार होगा इसलिये जब अविद्यारूपी जगत् का अन्त देखूंगा तब मुझको आत्मा भासेगा। मेरा शरीर घड़ी घड़ी में योजनपर्यन्त बढ़ता जावे। जैसे गरुड़ का वेग होता है तैसेही मेरा शरीर बढ़ता जावे और मृत्यु भी मेरे वश हो, शरीर भी आरोग्य रहे और ब्रह्माण्ड खप्पर को भी मैं लांघ जाऊं। जहां मेरी इच्छा हो वहां चला जाऊं और मुझको कोई न रोके; जब मैं संसार का अन्त देखूंगा तब आत्मा को प्राप्त होऊंगा। हे देव! इतने वर दो कि, मेरा मनोरथ पूर्ण हो;

और कुछ नहीं चाहिये। हे बधिक! जब इस प्रकार तू वर मांगेगा तब ब्रह्माजी कहेंगे कि, ऐसेही हो। तब तेरा तप से दुर्बल हुआ शरीर फिर चन्द्रमा और सूर्य की नाईं प्रकाशवान् होगा और घड़ी घड़ी में योजन पर्यन्त बढ़ता जावेगा। और जैसे गरुड़ का तीक्ष्ण वेग से चलना है; तैसेही तेरा शरीर वेग से बढ़ता जावेगा। जैसे प्रातःकाल का सूर्य उदय होता है और प्रकाश बढ़ता जाता है, तैसेही तेरा शरीर बढ़ता जावेगा और चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि की नाईं प्रकाशवान् होगा। ब्रह्माजी वर देकर अन्तर्धान हो जावेंगे और अपनी ब्रह्मपुरी में प्राप्त होंगे और तेरा शरीर प्रलयकाल के समुद्र की नाईं बढ़ता जावेगा। जैसे वायु से सूखे तृण उड़ते हैं, तैसेही तुझको ब्रह्माण्ड उड़ते भासेंगे तब तेरा शरीर बढ़ता २ ब्रह्माण्ड खप्पर को भी लांघ जावेगा और उसके परे आकाश भासेगा, फिर ब्रह्माण्ड भासेगा और आगे फिर ब्रह्माण्ड भासेगा; इसी प्रकार तू कई ब्रह्माण्ड लांघता जावेगा परन्तु तुझको खेद कुछ न होगा। निदान महाआकाश को भी तू ढांप लेगा और जहां किसी तत्त्व का आवरण आवेगा उसको तू वरप्राप्त देह से सूक्ष्मता सहित लांघता जावेगा। हे बधिक! इसी प्रकार तू कई सृष्टि लांघ जावेगा, जो इन्द्रजालवत् हैं। जो दीर्घदर्शी हैं वे इनको असत्य जानते हैं और जो प्राकृतजन हैं उनको जगत् सत्य भासता है। ज्ञानवान् को मिथ्या भासता है; उस मिथ्या जगत् को तू लांघता जावेगा और तहां जा स्थित होगा जहां अनन्तसृष्टि फुरती भासेगी। जैसे समुद्र में अनेक तरङ्ग उठते हैं; तैसेही तुमको सृष्टि फुरती भासेगी परन्तु जिसमें सृष्टि फुरती है उस अधिष्ठान का तुझको ज्ञान न होगा। वहां तू देखेगा कि, मैं बड़ा उत्कृष्ट हुआ हूं और जब तुझको ऐसा अभिमान उदय होगा तब साथ ही तप का फल वैराग्य भी उदय होगा और उसी के साथ यह संस्कार तेरे हृदय में फुरेगा कि, इससे तू उस शरीर का निरादर करेगा और कहेगा कि, हा कष्ट! हा कष्ट! हे देव! क्या शरीर तू ने मुझको दिया है। जगत् के अन्त लेने को जो मैंने शरीर बढ़ाया था सो तो अन्त कहीं न आया क्योंकि; अविद्या नष्ट न हुई। अविद्या तब नष्ट होती है

जब ज्ञान होता है और आत्मज्ञान तब होता है जब सत्शास्त्रों का विचार और सन्तों का सङ्ग होता है। जब सङ्ग और सत्शास्त्र मुझको प्राप्त होवें तब ज्ञान उपजेगा। यह तो मुझको ऐसा शरीर प्राप्त हुआ है कि, बड़ा भार उठाये फिरता हूं और अनेक सुमेरु पर्वत भी इसके पास तृणवत् हैं। ऐसा उत्कृष्ट मेरा शरीर है; इस शरीर से मैं किसकी संगति करूं और किस प्रकार शास्त्र का श्रवण करूं? यह शरीर मुझको दुःखदायी है इससे इस शरीर का त्याग करूं। हे बधिक! ऐसे विचारकर तू प्राणायाम करेगा और उसकी धारणा से शरीर त्याग देगा। जैसे पक्षी फल को खाकर गुठली को त्याग देता है और जैसे इन्द्र के वज्र से खण्डित हुये पर्वत गिरते हैं तैसेही एक सृष्टि भ्रम में तेरा शरीर गिरेगा और उसके नीचे कई पर्वत, नदियां और जीव चूर्ण होंगे और वहां बड़ा खेद होगा; तब सब देवता चण्डिका का आराधन करेंगे और वह चण्डिका भगवती तेरे शरीर को भोजन कर जावेगी तब सृष्टि में फिर कल्याण होवेगा। इस वन में जो तमाल वृक्ष हैं उनके नीचे तू तप करेगा। यह मैंने तेरी भविष्य कही; अब जैसी तेरी इच्छा हो तैसे कर। व्याध बोला, हे भगवन्! बड़ा कष्ट है कि, मैं इतने खेद को प्राप्त होऊंगा; इससे कोई ऐसा उपाय करो जिससे यह भावना निवृत्त होजावे। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जो कुछ वस्तु होनी है सो अन्यथा कदाचित् नहीं होती–जो कुछ शरीर की प्रारब्ध है सो अवश्य होती है। जैसे चिल्ले से छूटा बाण तबतक चला जाताहै जबतक उसमें वेग होता है और जब वेग पूर्ण होजाता है तब पृथ्वी पर गिर पड़ता है अन्यथा नहीं गिरता; तैसेही जैसा प्रारब्ध का वेग उछलता है तैसेही होगा। जो भावी फिरनेकी शक्ति होती है उसमें जीव उपासी बायां चरण दाहने और दाहना बायें नहीं करसक्ता–जो होना है वही होगा। ज्योतिश्शास्त्रवाले जो भविष्यत्दशा आगे कहते हैं तैसेही होता है क्योंकि; होनी होती है–जो न हो तो क्या कहूं इससे भावी मिटती नहीं। हे बधिक! मैंने तुझको दो मार्ग कहे हैं। जबतक कर्म की कल्पना स्पर्श करती है तबतक कर्म के बन्धन से नहीं

छूटता और जो कर्म की कल्पना आत्मा को स्पर्श न करे तो कोई कर्म नहीं बन्धन करता क्योंकि; उसको अद्वैत आत्मा का अनुभव होता है और द्वैतरूप कर्म नहीं दिखाई देते सर्व सुख दुःख आत्मरूप होजाते हैं। कर्म तबतक बन्धन करते हैं जबतक आत्मबोध नहीं हुआ; जब आत्मबोध होता है तब सर्वकर्म दग्ध होजाते हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भविष्यत्कथावर्णनन्नाम द्विशताधिकैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २४१ ॥

व्याध बोला, हे भगवन्! यह जो तुमने मुझको कहा सो मैं सुनके आश्चर्य को प्राप्त हुआ। शरीर गिरनेके उपरान्त मेरी क्या अवस्था होगी जब विस्ताररूप वासना शरीर आकाशरूप होगा। मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जब तेरा शरीर गिरेगा तब तेरी संवित् प्राणवासना सहित आकाशरूप महासूक्ष्म अणुवत् होजावेगी और उस संवित्में तुझको फिर नाना प्रकार का जगत् भासेगा और पृथ्वी, देश, काल, पदार्थ सब भासि आवेंगे। जैसे सूक्ष्म संवित् में स्वप्न का जगत् भासि आता है तैसेही तुझ को जगत् भासि आवेगा। वहां तेरी संवित् में यह फुरेगा कि, मैं अष्टवर्ष का राजाहूं और मेरे पिता का नाम इन्द्र है और माता का नाम प्रद्युम्न की पुत्री बधलेखा है; मेरे पिता मुझको राज्य देकर वनको गये हैं और तप करनेलगे हैं और चारों ओर समुद्र पर्यन्त हमारा राज्य है। हे बधिक! वहां तेरा नाम सिद्ध होगा और कई सौ वर्ष पर्यन्त तू राज्य करेगा और नाना प्रकार के विषयों को भोगेगा। हे बधिक! विदूरथ नाम एक राजा पृथ्वी में होगा जो तेरे साथ शत्रुभाव करेगा और तेरी पृथ्वी और सीमा लेने का यत्न करेगा तब तू मन में विचार करेगा कि; मैं बड़ा सिद्ध हूं और कई सौ वर्ष मैंने निर्विघ्न भोग भोगे हैं परन्तु एक विदूरथनाम शत्रुको नाश करूं हे बधिक! उसके मारने के निमित्त तू सेना लेके चढ़ेगा और वह चारों प्रकार की सेना नाशको प्राप्त होगी अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ और प्यादा दोनों ओर की सेना नष्ट होगी और तुम रथसे उतरकर परस्पर युद्ध करोगे। तुम्हारे भी बहुत शस्त्र लगेंगे और शरीर काटा जावेगा

तौ भी तुम उसके सन्मुख जा युद्ध करोगे और उसकी टांग काटकर कुल्हाड़े से उसको मारके फिर अपने गृह में आवोगे। सब दिक्पाल तुमसे भय पावेंगे और तुम बड़े तेजवान् होगे। बड़ा आश्चर्य है कि, विदूरथ को जीतकर तुम यमपुरी पठावोगे तब तुम कहोगे कि, हे मन्त्रियो! इसमें क्या आश्चर्य है? मेरे भय से तो दिक्पाल भी कांपते हैं और प्रलयकाल के समुद्र और मेघवत् मेरी सेना है जिसका किसी ओर से आदि और अन्त नहीं आता। विदूरथ के जीतने में मुझको क्या आश्चर्य है? तब मन्त्री कहेगा; हे राजन्! इतनी सेना तेरे साथ है तो क्या हुआ उस विदूरथ की स्त्री लीला को तुम नहीं जानते; उसने तप करके एक देवी को वश किया है जिसके क्रोध करने से सम्पूर्ण विश्व नाश होजाता है। वह माता सरस्वती ज्ञानशक्ति और सर्वभूतों के हृदय में स्थित है जैसा उसमें कोई अभ्यास करता है वही सरस्वती सिद्ध करती है। हे राजन्! वह राजा और उसकी स्त्री लीला सरस्वती से मोक्ष मांगतेथे कि; किसी प्रकार हम संसार-बन्धन से मुक्त हों; इस कारण वे मोक्ष हुये और तुम्हारी जय हुई। राजा ने पूछा; हे अङ्ग! जो सरस्वती मेरे हृदय में स्थित है तो मुझको मुक्त क्यों नहीं करती? मैं भी तो सदा सरस्वती की उपासना करता हूं? मन्त्री बोला; हे राजन्! सरस्वती जो चित्तसंवित् है उसमें जैसा निश्चय होता है उसीकी सिद्धता होती है। हे राजन्! तुम सदा अपनी जयही मांगते थे इससे तुम्हारी जय हुई और वह मुक्ति मांगता था इससे उसकी मुक्ति हुई उसका पिछला संस्कार उज्ज्वल था इससे मुक्त हुआ और तुम्हारा पिछले जन्म का संस्कार तामसी था इस कारण तुमको इच्छा न हुई और शान्ति भी प्राप्त न हुई। आदि परमात्मसत्ता से सब पदार्थ प्रकट हुये हैं। केवल आत्मसत्ता जो निष्किञ्चन पद है सो सदा अपने स्वभाव में स्थित है उसी में चैतन्यता संवेदन फुरती है। 'अहं अस्मि' अर्थात् 'मैं हूं' इस भावना का नाम चित्त है; इसी चैतन्यता ने देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि आदिक दृश्य जगत् कल्पा है। उस कल्पना से विश्व चित्तमें स्थित है और चित्तने आत्मा से फुरकर प्रमादसे देहादिक को कल्पा है। राजा

ने पूछा, हे साधो ! आत्मा तो निष्किञ्चन और केवल निर्विकारपद है उसमें तामसीदेह कहां से उपजी ? मन्त्री बोले, हे राजन् ! जैसे स्वप्ने में प्रमाद से तामसी वपु दृष्ट आता है परन्तु है नहीं; तैसेही यह आकार भी दृष्ट आते हैं परन्तु हैं नहीं अज्ञान से भासते हैं । इससे तुझको प्रमाद हुआ है तब वासना के अनुसार जन्म पाता फिरा है; इस प्रकार तेरे बहुत जन्म बीते हैं परन्तु पिछला शरीर जो तू ने भोगा है वह तामस-तामसी था इस कारण तुझको मोक्ष की इच्छा न हुई । हे राजन् ! तुम्हारे जो जन्म बीते हैं उनको मैं जानता हूं पर तुम नहीं जानते । राजा ने पूछा, हे निर्मल आत्मन् ! तामस-तामसी किसको कहते हैं ? मन्त्री बोले, हे राजन् ! एक सात्त्विक-सात्त्विकी है; दूसरा केवल सात्त्विकी है; तीसरा राजस-राजसी है; एक तामस-तामसी है और केवल तामसी है सो भिन्न २ सुनो । हे राजन् ! निर्विकल्प अचैत चिन्मात्र सत्ता से जो संवित् फुरी है और जिसकी अहंप्रतीति अधिष्ठान में रही है निश्चयको नहीं प्राप्त हुये और अनात्मभाव को भी स्पर्श नहीं किया ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं वे सात्त्विक-सात्त्विकी हैं । जिनको विभूति सात्त्विकी पदार्थ भासने लगे हैं और स्वरूप का प्रमाद है बुद्धि से स्पर्श हुआ अथवा न हुआ वे केवल सात्त्विकी हैं । जिनकी संवित् का बुद्धि से सम्बन्ध हुआ है और नाना प्रकार के राजसीपदार्थों में सत्य-प्रतीति हुई है; जिन्हें राजसकर्मों में दृढ़ अभ्यास है और उसके अनुसार शरीर को धारते चलेगये पर स्वरूप की ओर नहीं आये और चिर पर्यन्त ऐसेही रहे वे राजस-राजसी हैं । जिनको बोध में अहंप्रतीति हुई है पर स्वरूप का प्रमाद है और जगत् सत्य भासता है एवम् राजसीपदार्थों में अधिक प्रतीति है और राजसीकर्मों का अभ्यास है उसके अनुसार वे जन्म पाते हैं और फिर शीघ्रही स्वरूपकी ओर आते हैं उनका नाम केवल राजसी है; वे राजस-राजसी से श्रेष्ठ हैं । जिनको स्वरूप का प्रमाद है और जगत् में सत्य प्रतीति हुई है एवम् उस जगत् के तामस कर्मों में दृढ़ अभ्यास हुआ है वे महामूढ़ उसमें चिरपर्यन्त जन्म पाते चले जाते हैं

और यदि दैवसंयोग से कभी मोक्ष की संगति प्राप्त भी होती है तो उसे त्याग जाते हैं वे तामस-तामसी हैं। जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ है और तामसी कर्मों की रुचि है वे उन कर्मों के अनुसार जन्म पाते जाते हैं और जो हटपड़ा और तामसीकर्मों को त्यागकर मोक्षपरायण होते हैं सो केवल तामसी हैं पर वे तामस तामसी से श्रेष्ठ हैं। हे राजन्! तुम तामस-तामसी थे इस कारण सरस्वती से तुम अपनी जय ही मांगते रहे और मोक्ष का अभ्यास तुमने नहीं किया। राजा बोला, हे निर्मलचित्त मन्त्रिन्! मैं तामस-तामसी था इस कारण मोक्ष इच्छा न की परन्तु अब मुझसे तुम वही उपाय कहो जिससे मेरा अहंभाव निवृत्त हो और आत्मपद की प्राप्ति हो। मन्त्री बोला, हे राजन्! निश्चय करके जानो जो कोई कैसेही पदार्थ की इच्छा करे अभ्यास ते वह पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है और जिसकी भावना करके वह अभ्यास करता है वह पदार्थ निस्सन्देह प्राप्त होता है; जिसको जो दृढ़ अभ्यास करता है वह वही रूप हो जाता है। ऐसा पदार्थ त्रिलोकी में कोई नहीं जो अभ्यास के वश से न पाइये। जो प्रथम दिन में कोई विकर्म किसी से हुआ हो और अगले दिन शुभकर्म करे तो वह विकर्म लोप होजाता है और शुभकर्महीं मुख्य होजाता है। जब तुम आत्मपद का अभ्यास करोगे तब तुमको आत्मपद प्राप्त होगा और तुम्हारा जो तामस-तामसी भाव है सो निवृत्त होजावेगा। हे राजन्! जो पुरुष किसी पदार्थ के पाने की इच्छा करता है और हटकर नहीं फिरता तो वह अवश्य उसको पाता है देह इन्द्रियों का अभ्यास मनुष्य को दृढ़ होरहा है उससे फिर फिर देह इन्द्रियांही पाता है, जब उनसे उलटकर आत्मा का अभ्यास करे तब आत्मपद की प्राप्ति होगी और देहइन्द्रियों का वियोग होजावेगा। इसलिये आपभी सदा आत्मपद का अभ्यास करें तो उससे आत्मपद प्राप्त होगा। इतना कह फिर मुनीश्वर बोले कि, हे बधिक! इस प्रकार तू सिद्ध राजा होगा और मन्त्री तुझको उपदेश करेगा तब तू राज्य को त्यागकर वनमें जावेगा और उपदेश करनेवाला मन्त्री दूसरे मन्त्रियों और सेनासंयुक्त तुझसे कहेंगे कि, तू राज्यकर परन्तु तेरा चित्त विरक्त

होगा और तू राज्य अङ्गीकार न करेगा । उस वन में किसी सन्त के स्थान में जाकर तू स्थित होगा और परम वैराग्यसंपन्न होगा तब उनकी कथा और प्रसंग तुझको स्पर्श करेगी । यदि सन्तों से कुछ न मांगिये तौ भी वे अमृतरूपी वचनों की वर्षा करते हैं—जैसे पुष्पों से बे मांगे सुगन्ध प्राप्त होती है तैसेही सन्तजनों से मांगे विना ही अमृत प्राप्त होता है । जब मनुष्य सन्तों के अमृत वचन सुनताहै तब उसको विचार उत्पन्न होता है कि, मैं कौन हूं; 'यह जगत् क्या है' और 'जगत किससे उपजा है'। निदान तू उनका उपदेश पाकर इस प्रकार जानेगा कि मैं अचेत चिन्मात्र स्वरूप हूं और जगत् मेरा आभास है । चित्त का फुरनाही जगत् का कारण है सो चित्तही मेरे में नहीं है तो जगत् कैसेहो ? जगत् तो मेरे में नहीं है मैं अपनेही आप में स्थित हूं । हे बधिक ! इस प्रकार जब तू सर्व अर्थों से मन को शून्य करके अपने स्वरूप में स्थित होगा तब परमानन्द निर्वाण पद को प्राप्त होगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सिद्धनिर्वाणवर्णनन्नाम द्विशताधिकद्वाचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २४२ ॥

मुनीश्वर बोले, हे बधिक ! इस प्रकार तेरी भावी है सो सब मैंने तुझसे कही आगे जो भला जानताहो सो कर । अग्नि बोले, हे राजन्, विपश्चित् ! इस प्रकार जब मुनीश्वर ने बधिक से कहा तब वह आश्चर्यमान हुआ और वहांसे उठकर मुनीश्वर सहित स्नान को गया । निदान दोनों तप करने और शास्त्र को विचारने लगे तब कुछ काल के उपरान्त मुनीश्वर निर्वाण होगया और केवल बधिकही तप करने को समर्थ हुआ कि, किसी प्रकार मेरी अविद्या नष्ट हो । हे राजन्, विपश्चित् ! सौ युग पर्यन्त जब बधिक ने तप किया तब ब्रह्माजी देवताओं को साथ लेकर आये और बोले कि, कुछ वर मांग; तब उस बधिक ने कहा कि, मेरा शरीर बड़ा हो और मैं अविद्या को देखूं । हे राजन् ! यद्यपि बधिक ने जाना कि, इस वर के मांगे से मेरा भला नहीं है परन्तु दृढ़ भावना के बल से जानकर भी यही वर मांगा कि, घड़ी घड़ी में मेरा

शरीर योजन पर्यन्त बढ़े। ब्रह्माजी ने कहा कि, ऐसेही होगा। इस प्रकार कहकर जब ब्रह्माजी अन्तर्धान होगये तब उसका शरीर बढ़ने लगा और एक घड़ी में एक योजन बढ़ते २ कल्पपर्यन्त बढ़तागया और कई ब्रह्माण्डों पर्यन्त चलागया पर जिस ओर को वह देखे उस ओर अविद्या-रूपी अनन्तसृष्टियां उसे दीखें। निदान जब वह चलते २ थका तब उसने विचारा कि, अविद्या का तो अन्त नहीं आता इस शरीर को मैं कहांतक उठाये फिरूं अब इसका त्याग करूं तब आत्मपद को प्राप्त होऊंगा। हे राजन्; विपश्चित्! तब उसने प्राण को ऊर्ध्व खैंचकर शरीर को त्याग दिया वही शरीर यहां आन पड़ा है। जिस ब्रह्माण्ड से यह गिरा है वह हमारे स्वप्न की सृष्टि है अर्थात् यह अन्य सृष्टि का था इसकी इस सृष्टि में स्वप्नवत् प्रतिभा आन पड़ी थी और यहां जाग्रत् सृष्टि में आनपड़ा है और पृथ्वी, पहाड़ आदि सब नाश करडाले हैं जहां से यह गिरा है वहां आकाश में तरुवरेकी नाईं भासताथा और यहां इस प्रकार गिरा है जैसे इन्द्र का वज्र हो। हे विपश्चितों में श्रेष्ठ! वही बधिक का महाशव था। जब उसका शरीर गिरा तब भगवती ने उसका रक्तपान किया इसलिये उसका नाम रक्ता भगवती हुआ और और जो शरीर की सामग्री रही सो पृथ्वी हुई। जब चिरकाल व्यतीत हुआ तब मृत्तिका पृथ्वी होगई और उस पृथ्वी का नाम मेदिनी पड़ा। ब्रह्माजी ने जो नवीन सृष्टि रची है उस पृथ्वी पर अब कल्याण हुआ है इससे अब जहां तेरी इच्छा हो वहां जा और मैं भी अब जाता हूं। इन्द्र को शव यज्ञ करना है और उसने मेरा आवाहन किया है वहां मैं जाता हूं। भास बोले, हे राजन्, दशरथ! इस प्रकार मुझसे कहकर अग्नि देवता अन्तर्धान हो गये। जैसे महा-श्याम मेघ से दामिनी चमत्कार करके अन्तर्धान होजाती है तैसेही अग्नि जब अन्तर्धान हो गया तब मैं वहां से चला और एक सृष्टि में गया तो वहां और प्रकार के शास्त्र और और ही प्रकार के प्राणी थे। फिर आगे और सृष्टि में गया वहां ऐसे प्राणी देखे कि, जिनकी टांगें काष्ठ की और आचार मनुष्य का था। आगे और सृष्टि में गया तो उसमें लोगों के

शरीर तो पाषाण के थे पर दौड़ते और व्यवहार करते थे। उसके उपरान्त और सृष्टि में गया तो वहां शास्त्ररूपी उनकी मूर्ति थी। उसके आगे गया तो वहां क्या देखा कि, प्राणी बैठेही रहते हैं और बल से वार्ता करते हैं परन्तु न कुछ खाते हैं और न पीते हैं। हे राजन्, दशरथ! इस प्रकार जब मैं चिरकाल पर्यन्त फिरता रहा परन्तु अविद्या का अन्त कहीं न आया तब मैंने विचार किया कि, आत्मज्ञानी होरहूं तब अन्त आवेगा और किसी प्रकार अन्त न आवेगा। इस प्रकार विचार करके मैं एक वन में गया और ज्ञान की सिद्धि के लिये तप करने लगा। जब कुछ काल तप किया तब चित्त में यह उपजी कि, किसी प्रकार सन्तों के निकट जाऊं तो उनकी संगति से मुझको शान्तिपद प्राप्त होगा। हे राजन्। ऐसे विचार कर मैं वहां से चला और कल्पवृक्ष के वन में आया तो वहां एक पुरुष मुझको मिला और उसने कहा, हे साधो! तू कहां चला है; मेरे निकट तो आ? तब मैंने उससे पूछा कि, तू कौन है? तब उसने कहा कि, मैं तेरा तप हूं जो तूने किया है। अब तू कुछ वर मांग सो मैं तुझको दे दूं। तब मैंने कहा कि, हे साधो! मेरी इच्छा यही है कि, मैं आत्मपद को प्राप्त होऊं। उसने कहा हे साधो! अब तुझे एक जन्म और मृग का पाना है। जब वह तेरा शरीर अग्नि में जलेगा तब तू मनुष्य शरीर पावेगा और ज्ञानवानों की सभा में जावेगा। उस सभा में जब तू मनुष्य शरीर धरेगा तब तुझे सब जन्मों और क्रियाओं की स्मृति हो आवेगी और स्वरूप की प्राप्ति होगी इसलिये तू अब मृगशरीर धारण कर। हे राजन्, दशरथ! इस प्रकार जब उसने कहा तब मैंने चिन्तना की कि, मृग होऊं और मुझे स्वप्नरूप प्रतिभा फुरी कि, मैं मृग होगया। तुम्हारी सृष्टि में एक पहाड़ की कन्दरा में मैं बिचरता था कि, उसका राजा शिकार खेलने चला और उसने मुझको देख मेरे पीछे घोड़ा उड़ाया। आगे २ मैं दौड़ता जाता था और पीछे घोड़ा था पर उसका वेग ऐसा तीक्ष्ण था कि, उसने मुझको पकड़ लिया और अपने गृह में लेआया। तीन दिन उसने मुझे गृह में रक्खा परन्तु मेरी बहुत सुन्दर चेष्टा देखी इस कारण प्रसन्नता से यहां ले आया।

हे राजन्, दशरथ! अब मैंने मृग के शरीर को त्यागकर मनुष्य का शरीर पाया है और जो कुछ तुमने पूछा था सो सब तुमसे कहा। बाल्मीकिजी बोले, हे अङ्ग! जब इस प्रकार विपश्चित् कहचुका तब रामजी ने विपश्चित् से प्रश्न किया कि, हे विपश्चित्! वह मृग तो और सृष्टि का था यहां क्योंकर आया? भास बोले, हे रामजी! जहां वह मिलाथा वहभी और सृष्टिका था। एक कालमें दुर्वासा ऋषीश्वर आकाशमार्ग में ध्यान लगाये बैठाथा कि, उसी मार्ग से इन्द्र पृथ्वी में यज्ञ के निमित्त चला और दुर्वासा को शव जानकर चरण लगाया। तब दुर्वासा ने समाधि से उतर कर इन्द्रकी ओर देखा और शाप दिया कि, हे शक्र! तूने मुझे जानकर भी गर्व करके चरण लगाया इसलिये तेरे यज्ञ का एक शवमृतक नाश करेगा और जिस स्थान पर वह पड़ेगा सो पृथ्वी भी नाश होगी। जब ऐसे उस ऋषि ने शापदिया और इन्द्र यज्ञ करनेलगा तब और सृष्टि से वह शव आनपड़ा और पृथ्वी चूर्ण होगई। वह तो उस प्रकार गिरा और मैं तपरूपी मुनीश्वर के वर से मृग होकर तुम्हारी सभा में आया। हे रामजी! जो असत्य होता तो प्रकट न होता और जो सत्य होता तो स्वप्नरूप न होता— जो स्वप्ने की सृष्टि का था। हे रामजी! तुम हमारी स्वप्ने की सृष्टि में हो और हम तुम्हारी सृष्टि के स्वप्ने में हैं। जैसे स्वप्न पदार्थों का होना हुआ है तैसेही शव का होना भी हुआहै और मृग का भी हुआहै। जैसे यह सृष्टि है तैसेही वह सृष्टि भी है; जो यह सृष्टि सत्य है तो वह भी सत्य है परन्तु वास्तव में न यह सत्य है और न वह सत्य है; यह भी भ्रममात्र है और वह भी भ्रममात्र है। सत्य वस्तु वहीहै जो मनसहित षट्इन्द्रियों से अगमहै और वह आत्मसत्ताहै जिससे यह सर्व है और जिसमें सर्व है। ऐसी जो परमात्मसत्ता है सो परमसत्ता है और उसमें सब कुछ बनता है। हे रामजी! जगत् संकल्पमात्र है, संकल्पका मिलना क्या आश्चर्य है? जैसे छाया और धूप एक नहीं होते और सत्य और झूठ; और ज्ञान-अज्ञान इकट्ठे नहीं होते परन्तु आत्मा में इकट्ठे होते दीखते हैं। हे रामजी! जब मनुष्य शयन करता है तब अनुभवरूप होता है; फिर स्वप्ने में स्वप्ने का नगर भासि आताहै; छाया

धूप भी भासि आता है और ज्ञान-अज्ञान, सच-झूठ भी भासते हैं। जैसे आकाश में विरुद्धपदार्थ भासि आते हैं, तैसेही संकल्प से संकल्प मिल जाता है इसमें क्या आश्चर्य है ? सब जगत् आकाशवत् शून्य निराकार निर्विकार है; निराकार में आकार और निर्विकार में विकार भासते हैं यही आश्चर्य है। सर्व आकार दृष्ट आते हैं सो वही निराकार रूप हैं; ब्रह्मसत्ताही इस प्रकार होकर भासती है। जगत् को असत्य कहना भी नहीं बनता; जो असत्य होता तो प्रलय होकर पृथ्वी, अप, तेज और वायु से आकाश फिर प्रकट न होता पर प्रलय होकर जो फिर उत्पन्न होते हैं इससे असत्य नहीं। चैतनरूप आत्मा काही स्वभाव है; आत्मसत्ताही इस प्रकार होकर भासती है। हे रामजी ! जब प्रलय होती है तब सब भूतपदार्थ नष्ट होजाते हैं और फिर उत्पन्न होते हैं इसीसे यह सृष्टि आत्मा का आभासमात्र है। ब्रह्मसत्ता में अनन्त जगत् फुरते हैं पर अपनी २ सृष्टिही को जीव जानते हैं। सब जीव ब्रह्मरूपी समुद्र के कण के हैं सो एक सृष्टि को दूसरा नहीं जानता। जैसे सिद्धों की सृष्टि अपने अपने अनुभव में फुरती है और जैसे स्वप्न की सृष्टि भिन्न २ होती है, तैसेही यह अपनी २ सृष्टि पृथक् है और मिल भी जाती है। आत्मा में सब कुछ बनता है जो कि; अनादि और आदि; विधि और निषेध और विकार और निर्विकार इकट्ठे नहीं होते सो आकाश में आत्मसत्ता और स्वप्न में इकट्ठे दृष्ट आते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं; आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है। हे रामजी ! चार सत्ता इस जगत् में फुरी हैं—सारधी, गोपती, समान ब्रह्मसत्ता और अविद्या—उनमें से सारधी और गोपतीसत्ता तो जिज्ञासु की भावना में भासती है; समानसत्ता ज्ञानी को भासती है और अविद्या अज्ञानी को भासती है। ये चारों भी ब्रह्म से भिन्न नहीं, ब्रह्मही के नाम हैं। ब्रह्मसत्ता स्वभाव चैतनता से ऐसे ही भासती है। जैसे वायु फुरने से चलती भासती है और ठहरने से अचल भासती है तैसेही चैतनता फुरने से नाना प्रकार के कौतुक उठते हैं और फुरने से रहित निर्विकल्प होजाता है। ऐसा पदार्थ

कोई नहीं कि, उसमें सत्य नहीं और ऐसा भी पदार्थ कोई नहीं कि, असत्य नहीं–सब समान हैं। जैसे आकाश के फूल हैं, तैसेही घट, पटादिक हैं और जैसे इनके उत्थान का अनुभव होता है, तैसेही उनका अनुभव होता है। सब पदार्थ सत्ताही से सत्य भासते हैं। सर्व शब्द अर्थ जो फुरे हैं सो सब मिटजाते हैं इससे असत्य है और आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है कदाचित् अन्यथा नहीं होता। जो मरके न जन्मे तो आनन्द है क्योंकि, मुक्त हुआ और जो मरके जन्म लेता है वह भी अविनाशी हुआ इसलिये शोक करना व्यर्थ है। हे रामजी! जगत् के आदि में भी ब्रह्मसत्ता थी और अन्त में भी वही रहेगी; जो आदि और अन्त में वही है तो मध्य में भी उसेही जानिये। इससे सब जगत् आत्मरूप है और सर्वशब्द अर्थसंयुक्त है और सर्वशब्द और अर्थाकार का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ताही है। जिसको यथार्थ अनुभव होता है उसको ऐसे भासता है और जिसको यथार्थ का अनुभव नहीं होता उसको नाना प्रकार का जगत् भासता है पर आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं सब आकाशरूप है और ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। ब्रह्म से भिन्न जो कुछ भासता है सो भ्रममात्र और नाशरूप है। सब दृश्य पदार्थ नाशरूपहैं जिसने उन्हें सत्य जाना है उनसे हमको कुछ प्रयोजन नहीं। जो दूसरा कुछ बना नहीं तो मैं क्या कहूं? जिसमें यह सब पदार्थ आभास फुरते हैं उस अधिष्ठान को देखे तो सब वही रूप भासेंगे। जो पुरुष स्वभाव में स्थित है उसको यह वचन शोभावान् होते हैं। मैंने अनन्त सृष्टियां देखी हैं और उनके भिन्न २ आचार भी देखे हैं। दशो दिशाओं में मैं फिरा हूं और बहुत भोग भोगे हैं; बड़ी बड़ी विभूति पाई और देखी और अनेक प्रकार की चेष्टा की है परन्तु मुझको स्वप्न प्राप्त हुआ क्योंकि; सब भोग पदार्थ और कर्म अविद्या के रचे हुये हैं। उसी अविद्या के अन्त लेने को मैं अनेक युगपर्यन्त फिरा पर अन्त कहीं न पाया। वशिष्ठजी की कृपा से अब मुझको स्वरूप का साक्षात्कार हुआ; अविद्या नष्ट हुई और मैं परमानन्द को प्राप्त हुआ हूं।

इति श्रीयोग० नि० द्विशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २४३ ॥

वाल्मीकिजी बोले, हे साधो! जब इस प्रकार विपश्चित् ने कहा तब सायंकाल हुआ और सूर्य अन्तर्धान होगये—मानों विपश्चित् के वृत्तान्त देखने को अन्यसृष्टि में गये—और नौबत नगारे बाजने लगे मानो राजा दशरथ की जय जय करते हैं। उस समय राजा दशरथ ने धन, जवाहिर और वस्त्राभूषण से राजा विपश्चित् का यथायोग्य पूजन किया; दशरथ से आदि लेकर सब राजाओं ने वशिष्ठजी को प्रणाम किया और परस्पर प्रणाम करके सर्वसभा ने अपने २ स्थानों को जा स्नान करके यथाक्रम भोजन किया और नियम करके विचारसहित रात्रि व्यतीत की और जब सूर्य की किरणें उदय हुईं तो फिर अपने २ स्थानोंपर परस्पर नमस्कार करके आ बैठे तब वशिष्ठजी पूर्व के प्रसंग को लेकर बोले; हे रामजी! यह अविद्या अविद्यमान है और है नहीं पर भासती है यही आश्चर्य है। जो वस्तु सदा विद्यमान है सो नहीं भासती और जो अविद्या है ही नहीं सो सदा भासती है इसीसे इसका नाम अविद्या है। हे रामजी! आत्मसत्ता अनुभवरूपहै; उसका अनुभव होना निश्चय होरहाहै और अविद्यक जगत् जो कभी कुछ हुआ नहीं सो स्पष्ट होकर भासता है—यही अविद्या है। हे रामजी! सिद्ध राजा के मन्त्री का उपदेश भी तुमने सुना और विपश्चितका वृत्तान्त भी विपश्चित् के मुखसेही सुना; अब इस विपश्चित् की अविद्या हमारे आशीर्वाद और यथार्थवचनों से नष्ट होती है और अब यह जीवन्मुक्त होकर विचरेगा। मेरे उपदेश से इसकी अविद्या अब नष्ट होती है और जब जीवन्मुक्त होकर जहां जहां इसकी इच्छा हो विचरे। जब जीव आत्माकी ओर आता है तब अविद्या नष्ट होजाती है। आत्मतत्त्वको यथार्थ न जाननेही का नाम अविद्या है जो आत्मज्ञान से नष्ट होजाती है। जैसे अन्धकार तब तक रहता है; जबतक सूर्य उदय नहीं हुआ पर जब सूर्य उदय होता है तब अन्धकार नष्ट होजाता है; तैसेही अविद्या तबतक अनन्त है जबतक आत्माकी ओर नहीं आया पर जब आत्माका साक्षात्कार होता है तब अविद्या का अत्यन्त अभाव होजाता है। अविद्या अविद्यमान है पर असम्यक्‌दर्शी को सत्य भासती है। जैसे

मृगतृष्णा का जल अविद्यमान है और विचार किये से उसका अभाव होजाता है, तैसेही भलीप्रकार विचार किये से अविद्याका अभाव होजाता है। हे रामजी! अविद्यारूपी विषकी बेलि देखनेमात्र फूलसहित सुन्दर भासती है परन्तु स्पर्श किये से कांटे चुभते हैं और फल भक्षण किये से कष्ट होता है। यह सब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन्द्रियों के विषय देखनेमात्र सुन्दर भासते हैं यही फूलफल हैं पर जब इनका स्पर्श होता है तब तृष्णारूपी कण्टक चुभते हैं और इन्द्रियों के भोगने से राग, द्वेष और कष्ट प्राप्त होता है। हे रामजी! अविद्या भीतर से शून्य है और बाहर से बड़े अर्थसंयुक्त भासती है। जैसे आकाश में इन्द्रधनुष नानाप्रकार के रङ्गसहित दृष्टि आता है परन्तु अन्तर से शून्य है—अनहोता ही भासता है; तैसे ही अविद्या अनहोती ही भासती है; और जैसे इन्द्रधनुष जलरूप मेघ के आश्रय रहता है, तैसे ही यह अविद्या जड़ मूर्खों के आश्रय रहती है। अविद्यारूपी धूलि जिसको स्पर्श करती है उसको आवरण कर लेती है; जबतक अर्थ नहीं जाना तबतक भासती है और विचार किये से कुछ नहीं निकलता। जैसे सीपी में रूपा भासता है पर विचार किये से उसका अभाव होजाता है, तैसेही विचार किये से अविद्या का भी अभाव होजाता है। विचार किये से ही अविद्या नष्ट होजाती है और वह चञ्चल है और भासती है। हे रामजी! अविद्यारूपी नदी में तृष्णारूपी जल है; इन्द्रियों के अर्थरूपी भँवर हैं और रागरूपी तेंदुये हैं; जो पुरुष इस नदी के प्रवाह में पड़ता है उसको बड़े कष्ट प्राप्त होते हैं। जो तृष्णारूपी प्रवाह में बहते हैं उनको अविद्यारूपी नदीका अन्त नहीं आता और जो किनारे के सन्मुख होकर वैराग्य और अभ्यासरूपी नावपर चढ़के पार हुये हैं उनको कोई कष्ट नहीं होता। जो पदार्थ अविद्यारूप हैं उनमें जो भावना करते हैं वे मूर्ख हैं। यह सब अविद्याका विलास है। एक ऐसी सृष्टि है जिसमें सैकड़ों चन्द्रमा और सहस्रों सूर्य उदय होते हैं; कई ऐसी सृष्टियां हैं जिनमें जीव सदा समताभाव को लिये बिचरते हैं और सदा आनन्दी रहते हैं; कई ऐसी सृष्टि हैं कि; जिनमें अन्धकार कभी नहीं होता; कई

ऐसी सृष्टि हैं जहां प्रकाश और तम जीवों के आधीन है कि; जितना प्रकाश चाहें उतनाही करें और कई ऐसी सृष्टि हैं जहां जीव न मरते हैं, और न बूढ़े होते हैं सदा एकरस रहते हैं और प्रलयकाल में सब इकट्ठे ही मरते हैं। कहीं ऐसी सृष्टि है जहां स्त्री कोई नहीं कहीं और पहाड़ की नाईं जीवों के शरीर हैं। हे रामजी! इनसे लेकर अनन्त ब्रह्माण्ड फुरते हैं सो सब अविद्या का विलास है। जैसे समुद्र में वायु से तरङ्ग फुरते हैं, वायु विना नहीं फुरते; तैसेही परमात्मरूपी समुद्र में जगत्‌रूपी तरङ्ग अविद्यारूपी वायु के संयोग से उठते हैं और मिट भी जाते हैं। हे रामजी! बड़े बड़े मणि, मोती, सुवर्ण और धातुमय स्थान; भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य चारों प्रकार के तृप्तिकर्ता पदार्थ; घृतरूप स्थान; ऊखके रसके समुद्र; माखन, दही और दूधके समुद्र; अमृत के तालाब; बड़े बड़े कल्प और तमाल वृक्ष से आदि लेकर सुन्दर स्थान और सुन्दर अप्सरा और बड़े दिव्य वस्त्रों से आदि लेकर जो पदार्थ हैं वे सब संकल्परूप और अविद्या के रचे हुये हैं; जो इनकी तृष्णा करते हैं वे मूर्ख हैं और उनके जीने को धिक्कार है। हे रामजी! यह अविद्या का विलास है विचार किये से कुछ नहीं निकलता। जैसे मरुस्थल में अनहोती नदी भासती है और विचार किये से उसका अभाव होजाता है, तैसेही आत्मविचार किये से अविद्या के विलास जगत् का अभाव होजाता है। जिसको आत्मा का प्रमाद है उसको देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक इष्ट-अनिष्ट अनेक प्रकार के पदार्थ भासते हैं और कारण कार्य भाव से जगत् भी स्पष्ट भासता है पर जिसको आत्मा का अनुभव हुआ है उसको सर्व आत्माही भासता है। हे रामजी! एक सदृष्ट सृष्टि है और दूसरी अदृष्ट सृष्टि है। यह जो प्रत्यक्ष भासती है सो सदृष्ट सृष्टि है और जो दृष्टि नहीं आती वह अदृष्ट सृष्टि है पर दोनों तुल्य हैं। जैसे सिद्धलोग आकाश में जो सृष्टि रचलेते हैं सो संकल्पमात्र होती है। उनकी सृष्टि परस्पर अदृष्ट है और अनेक प्रकार की रचना है। उनकी सुवर्ण की पृथ्वी है और रत्न और मणियों से जड़ी हुई है; अनेक प्रकार के विषय हैं और अमृत कुण्डभरे हुये हैं, उनके आधीन तम और

प्रकाश हैं और अनेक प्रकारकी रचना बनी हुई है सो सब संकल्पमात्र है। इसी प्रकार यह जगत् संकल्पमात्र है जैसा जैसा संकल्प होता है तैसीही तैसी सृष्टि आत्मा में हो भासती है। हे रामजी! आत्मारूपी डब्बे में सृष्टिरूपी अनेक रत्न हैं; जिस पुरुषको आत्मदृष्टि हुई है उसको सर्वसृष्टि आत्मरूप है और जिसको आत्मदृष्टि नहीं हुई उसको सर्वजगत् भिन्न २ भासता है। जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही पदार्थ हो भासता है। जो कुछ जगत् भासता है सो सब संकल्पमात्र है; जो तुमको ऐसा तीव्र संवेग हो कि, आकाश में नगर स्थित हो तो वही भासने लगे। हे रामजी! जिस ओर मनुष्य दृढ़ निश्चय करता है वही सिद्ध होता है। जो आत्मा की ओर एकत्र होता है तो वही सिद्ध होता है और जो दोनों ओर होता है तो भटकता है। जो जगत् की सत्यताको छोड़कर आत्मपरायण होरहे तो तीव्र भावना से मोक्षप्राप्त होती है और जो संसार की ओर भावना होती है तो संसार की प्राप्ति होती है निदान जैसा अभ्यास करता है वही सिद्ध होता है। आदि सृष्टि के कारण में दूसरी वस्तु कुछ नहीं वही रूप है फिर जैसी जैसी भावना होती है उसके अनुसार जगत् भासता है। जिसकी भावना धर्म की ओर होती है और सकाम होता है उसको स्वर्गादिक सुख भासते हैं और जिसकी भावना अधर्म में होती है उसको नरकादिक दुःखपदार्थ भासते हैं। शुभकर्मों से शान्ति की इच्छा नहीं भासती। शुभ भी दो प्रकार के हैं—एकको स्वर्गसुख भासते हैं और दूसरे को सिद्ध की भावना से सिद्धलोक भासते हैं। जिसको अशुभ भावना होती है उसको नाना प्रकार के नरक भासते हैं। हे रामजी! जब यह संवित् अनात्म में आत्म अभिमान करती है और उनके कर्मों में आपको जानती है वह पाप करके ऐसे अनेक दुःखों को प्राप्त होती है जो कहे नहीं जाते—जैसे पहाड़ों में पीसने से बड़ा कष्ट होता है अथवा अङ्गारों की वर्षा और अन्धे कूप में गिरने से कष्ट होता है। स्त्री के भोगने से अङ्गारों के साथ स्पर्श करना होता है और अग्नितप्त लोहे को कण्ठ लगना पड़ता है। जिस स्त्री ने परपुरुष को भोगा है वह अन्धे कूपरूप उखली में खड्ग-

रूपी मूसल से कुटती है और जो देहाभिमानी देवतों, पितरों और अतिथि के दिये विना भोजन करताहै उसको भी यमके दूत बड़ा कष्ट देते हैं और खड्ग और बरछी से उसके मांसको काटते और प्रहार करते हैं और वे परलोक में क्षुधा और तृष्णासे कष्टवान् होते हैं। जिन नेत्रों से व्यभिचारियों ने परस्त्री देखी है उनपर छुरी का प्रहार होता है। एक वृक्ष है जिसके पत्र खड्ग के प्रहार की नाईं लगते हैं और शूली के ऊपर चढ़ने से आदि लेकर उनको कष्ट होते हैं। जो शुभकर्म करते हैं वे स्वर्ग भोगते हैं। इससे जैसे जैसे कर्म करते हैं उनके अनुसार जगत् देखते हैं और जिस जिस भाव की चिन्तना करते शरीर त्यागते हैं वह उनको प्राप्त होते हैं। केवल वासनामात्र संसार है जैसा निश्चय होताहै तैसाही भासता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वर्गनरकप्रारब्धवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २४४ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो तुमने मुनीश्वर और बधिकका वृत्तान्त कहा है सो बड़ा आश्चर्यरूप है। यह वृत्तान्त स्वाभाविक हुआ है अथवा किसी कारण कार्य से हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे समुद्र से तरङ्ग उठते हैं, तैसेही ब्रह्म में यह प्रतिमा स्वाभाविक उठती है और जैसे पवन में फुरना स्वाभाविक होताहै, तैसेही आत्मा का चमत्कार जगत् रचना स्वाभाविक होतीहै सो वहीरूप है, उससे भिन्न नहीं। चिन्मात्र में जो चेतना फुरी है वह जैसी फुरी है तैसेही स्थित है; जबतक इससे भिन्न और फुरना नहीं होता तबतक वही रहता है। जिस प्रतिमा से कार्यकारण भासता है—जैसे शुद्धचिदाकाश में स्वप्ने की सृष्टि भासती है—उसमें साररूप वही है। वही चित्त चमत्कारसे फुरताहै—जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं सो समुद्ररूप हैं उससे भिन्न कुछ वस्तु नहीं तैसेही सर्व शब्द अर्थ जगत् जो भासता है वही चिन्मात्र है भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जिनको ऐसा यथार्थ अनुभव हुआ है उनको जगत् स्वप्नपुर और संकल्पनगरवत् भासता है और पृथ्वी आदिक पदार्थ पिण्डाकार नहीं भासते सब ब्रह्मरूप हो भासता है। हे रामजी! जो वस्तु व्यभिचारी और नाशवन्त है वह अविद्यारूप है और जो अव्यभिचारी

और अविनाशी है वह ब्रह्मसत्ता है। वह ब्रह्मसत्ता ज्ञानसंवितरूप है और अपने भावको कदाचित् नहीं त्यागती। वह अनुभव से सर्वदा काल प्रकाशती है उसमें अविद्या कैसे हो? जैसे समुद्र में धूलिका अभाव है, तैसेही आत्मा में अविद्या का अभाव है जो सर्व आकार दृष्टि आते हैं सो सब चिदाकाशरूप हैं—जैसे तुम अपने मन में संकल्प धारकर इन्द्र हो बैठो और चेष्टा भी इन्द्र कीसी करनेलगो अथवा ध्यानमें इन्द्र रचौ और ध्यानसे प्रतिमा सिद्ध हो आवै तो जब तक वह संकल्प रहे तब तक वही भासता है और जब इन्द्र का संकल्प क्षीण होजाता है तब इन्द्रभाव की चेष्टा भी निवृत्त होजाती है सो संकल्प से वही चिन्मात्र इन्द्ररूप हो भासता है; तैसेही यह सर्वजगत् जो भासता है सो सब चिन्मात्ररूप है पर संवेदन द्वारा पिण्डाकार हो भासता है और जब संवेदन फुरना निवृत्त होता है तब सब जगत् आत्मरूप भासता है। ब्रह्मसत्ता तो सदा अपने आप में स्थित है पर जैसा फुरना होता है, तैसा हो भासता है—सब जगत् उसी का चमत्कार है। जैसे समुद्र में तरङ्ग समुद्ररूप होते हैं। तैसेही निराकार परमात्मा में जगत् भी आकाशरूप है, भिन्न कुछ नहीं सर्व ब्रह्मस्वरूप है। इसका नाम परमबोध है। जब इस बोध की दृढ़ता होती है तब मोक्ष होता है। जिसको सम्यक्‌बोध होताहै उसको सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप और अपना आप भासता है और जिसको सम्यक्‌बोध नहीं हुआ उसको नानाप्रकार का द्वैतरूप जगत् भासता है। हे रामजी! जिसकी बुद्धि शास्त्रों से तीक्ष्ण हुई है और वैराग्य अभ्यास से संपन्न और निर्मल है उसको आत्मपद प्राप्त होता है और जिसकी बुद्धि शास्त्र के अर्थ से निर्मल नहीं भई उसको अज्ञानसहित जगत् भासता है। जैसे किसी पुरुष के नेत्र में दूषण होता है तो उसको आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं और भ्रम से तारे भासते हैं, तैसेही अज्ञान से जगत् भासता है यह सर्व जाग्रत् जगत् स्वप्नमात्र है। जब जीव स्वप्न में होता है तब स्वप्ना भी जाग्रत् भासता है और जाग्रत् स्वप्ना होजाता है और जाग्रत् में स्वप्ना स्वप्न होजाता है और जाग्रत् सत्य भासती है। अल्पकाल का नाम स्वप्ना है और दीर्घकाल का नाम जाग्रत् है पर

आत्मा में दोनों के तुल्यभाव होते हैं। जैसे दो भाई जोड़े जन्मते हैं सो नाममात्र दो हैं वास्तव में एकरूप हैं; तैसेही जाग्रत् स्वप्न तुल्यही हैं। जब पुरुष शरीर को त्यागता है तब परलोक जाग्रत होजाता है और यह जगत् स्वप्नवत् होजाता है। जैसे स्वप्न से जाग स्वप्न के पदार्थों को भ्रममात्र जानता है और जाग्रत् को सत् जानता है, तैसेही जब जीव परलोक को जाता है तब इस जगत् को स्वप्न भ्रममात्र जानता है और कहता है कि; स्वप्नासा मैंने देखा था और वह परलोक सत्य हो भासता है। फिर वहां से गिरकर इसलोक में आपड़ता है तब इसलोक को सत्य जानता है और जाग्रत् मानता है और उस परलोक को स्वप्नभ्रम मानता है। हे रामजी! जब तक शरीर से सम्बन्ध है तबतक अनेकबार जाग्रत् देखता है और अनन्तही स्वप्न देखता है। हे रामजी! जैसे मृत्युपर्यन्त अनेक स्वप्न आते हैं, तैसेही मोक्षपर्यन्त अनेक जाग्रत्रूप जगत् भासते हैं और भ्रमान्तर में इनकी सत्यता और जाग्रत् में स्वप्न के पदार्थ स्मरण करता है। जैसे सिद्ध प्रबुद्ध होकर अपने जन्म को स्मरण करता है और कहता है कि, सब भ्रममात्र थे, तैसेही यह जब जागेगा तब कहेगा कि, सब भ्रममात्र प्रतिमा मुझको भासी थी, न कोई बन्ध है और न कोई मुक्त है क्योंकि, दृश्य अविद्यक बन्ध मोक्ष ऐसा है कि, जब चित्त की वृत्ति निर्विकल्प होती है तब मोक्ष भासता है और जब तक वासना विकल्प सत्य है तबतक बन्ध भासता है। हे रामजी! आत्मा में बन्ध मोक्ष दोनों नहीं क्योंकि, बन्ध हो तो मोक्ष भी हो पर बन्धही नहीं तो मोक्ष कैसे हो? बन्ध और मोक्ष दोनों चित्तसंवेदन में भासते हैं इससे चित्त को निर्वाण करो तब सब कल्पना मिट जावेगी। जितने पदार्थों के प्रतिपादन करनेवाले शब्द हैं उनको त्यागकर निर्मल ज्ञानमात्र जो आत्मसत्ता है उसमें स्थित हो रहो और खाना, पीना, बोलना, चलना आदि सब क्रिया करो परन्तु हृदय से परमपद के पाने का यत्न करो। हे रामजी! प्रथम नेति नेति करके सर्वशब्दों का अभाव करो; फिर अभाव का भी अभाव करो तब उसके पीछे जो शेष रहेगा वह आत्मसत्ता परमनिर्वाणरूप है उसी में स्थित होरहो। जो कुछ

अपना आचार कर्म है उसे यथाशास्त्र करके हृदय से सर्वकल्पना का त्याग करो–इस प्रकार आत्मसत्ता में स्थित होरहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणोपदेशो नाम
द्विशताधिकपञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २४५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! सर्वपदार्थ जो भासते हैं वे सब चिदाकाश आत्मरूप हैं । ज्ञानवान् को सदा वे ही भासते हैं–आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता । रूप, दृश्य, अवलोक, इन्द्रियां और मनस्कार फुरने का नाम संसार है सो यह भी आत्मरूप है–आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है । जैसे अपनीही संवित् स्वप्ने में रूप, अवलोक और मनस्कार हो भासती है । आत्मा से भिन्न कुछ नहीं परन्तु अज्ञान से भिन्न २ भासते हैं । जो जागा है उसको अपना आप भासता है । जैसे अपनी चैतन्यता ही स्वप्नपुर होकर भासती है; तैसेही जगत् के पूर्व जो चैतन्यसत्ता थी वही जगत्रूप होकर भासती है । जगत् आत्मा से कुछ भिन्न वस्तु नहीं वही स्वरूप है । जैसे जल का स्वभाव द्रवीभूत होता है इससे तरङ्गरूप हो भासता है, तैसेही आत्मा का स्वभाव चैतन्य है । वही आत्मसत्ता चैतन्यता से जगत् आकार हो भासती है इस प्रकार जानकर जो परमशान्ति निर्वाणपद है उसमें स्थित हो रहो । हे रामजी ! जगत् कुछ है नहीं और प्रत्यक्ष भासता है; असत्य ही सत्य होकर भासता है । यही आश्चर्य है कि, निष्किञ्चन और किञ्चन की नाईं होकर भासता है । आत्मसत्ता सदा अद्वैत और निर्विकार है परन्तु अज्ञान दृष्टि से नाना प्रकार के विकार भासते हैं । जब सर्व विकारों को निषेध करके असत् रूप जानिये तब सर्व के अभाव हुये आत्मसत्ता शेष रहती है । जैसे शून्य स्थान में अनहोता वैताल भासि आता है, तैसेही अज्ञानी को अनहोता जगत् आत्मा में भासि आता है । जो पुरुष स्वभाव में स्थित हुये हैं उनको जगत् भी अद्वैतरूप आत्मा भासताहै । जब सत्शास्त्रों और सन्तोंकी संगति होती है और उनके तात्पर्य अर्थमें दृढ़ अभ्यास होताहै तब स्वभाव सत्तामें स्थिति होती है । जिन पदार्थों के पाने के निमित्त मनुष्य यत्न करता है वे मायिक पदार्थ बिजली

के चमत्कारवत् उदय भी होते हैं और नष्ट भी होते हैं। ये पदार्थ विचार विना सुन्दर भासते हैं और इनकी इच्छा मूर्ख करते हैं क्योंकि; उनको जगत् सत्य भासता है। ज्ञानवान् को जगत् के पदार्थों की तृष्णा नहीं होती क्योंकि; वह जगत् को मृगतृष्णा की नाईं असत्य जानता है और ब्रह्मभावना में दृढ़ है। अज्ञानी को जगत् की भावना है इससे ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता पर अज्ञानी के निश्चय को ज्ञानी जानता है। जैसे सोये हुये पुरुष को निद्रा दोष से स्वप्ना आता है और उसमें जगत् भासता है पर जाग्रत् पुरुष जो उसके निकट बैठा है उसको वह स्वप्ने का जगत् नहीं भासता। वह असत् है इसलिये उसके निश्चय को स्वप्नवाला नहीं जानता और स्वप्नेवाले के निश्चय को वह जाग्रत्वाला नहीं जानता; तैसेही ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता। मृत्तिका की सेना को बालक सेना करि मानताहै पर जो जाननेवाले बड़े पुरुष हैं उनको वह सब सेना मृत्तिकारूप भासती है और जब वह बालक भी भली प्रकार जानता है तब उसको भी सेना और वैताल का अभाव होजाता है मृत्तिकाही भासतीहै; तैसेही ज्ञानवान् को सब जगत् ब्रह्मरूपही भासता है। हे रामजी! जब पुरुष को आत्मा का अनुभव होता है तब जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं रहती। जैसे स्वप्ने में किसी को मणि प्राप्त होती है तो वह प्रीति करके उसको रखता है पर जब जागता है तब उसे भ्रम जानकर उसकी इच्छा नहीं करता; तैसेही जब जीव आत्मपद में जागेगा तब जगत् के पदार्थों की इच्छा न करेगा। जैसे जो कोई मरुस्थल की नदी को असत्य जानता है वह उसमें जलपान के निमित्त यत्न नहीं करता तैसेही जो जगत् को असत् जानता है वह उसके पदार्थों की इच्छा नहीं करता। जिस शरीर के निमित्त मनुष्य यत्न करता है वह शरीर भी क्षणभंगुर है। जैसे पत्र पर जल की बूंद स्थित होती है सो क्षणभंगुर और असार है और पवन लगने से क्षण में गिर जाती है; तैसेही यह शरीर भी नाशवन्त है। जैसे धूप से तपा हुआ मृग मरुस्थल की नदी को सत्य जानकर जलपान करने के निमित्त दौड़ता है और मूर्खताके कारण कष्ट

पाता है परन्तु तृप्त नहीं होता; तैसेही मूर्ख मनुष्य विषय पदार्थों को सत्य जानकर उनके निमित्त यत्न करके कष्ट पाता है और कदाचित् तृप्त नहीं होता। हे रामजी! पुरुष अपना आपही मित्र है और अपना आपही शत्रु है। जब सत्यमार्ग में बिचरता है और अपना उद्धार करता है तब पुरुष प्रयत्न से अपना आपही मित्र होता है और जो सत्यमार्ग में नहीं बिचरता और पुरुष प्रयत्न करके अपना उद्धार नहीं करता तो वह जन्म-मरण संसार में आपको डालता है और वह अपना आपही शत्रु है। जो अपने आपको यत्न करके उद्धार करता है वह अपने ऊपर दया करता है। हे रामजी! जो इन्द्रियों के विषयरूपी कीचड़ में गिराहुआ है और अपने ऊपर अपने निकालने की दया नहीं करता वह महा अज्ञान तम को प्राप्त होता है और जो पुरुष इन्द्रियों को जीत के आत्मपद में स्थित नहीं होता उसको शान्ति भी नहीं होती। जब बालक अवस्था होती है तब शून्यबुद्धि होती है; वृद्धअवस्था में अङ्ग क्षीण होजाते हैं और यौवन अवस्था में इन्द्रियों को नहीं जीतसक्ता तो कब होगा? जो तिर्यक् आदिक योनि हैं वे मृतकवत् हैं। यत्न का समय यौवनअवस्था है क्योंकि; बाल-अवस्था तो जड़ गुङ्गरूप है और वृद्धअवस्था महानिर्बल सी है उसमें अपने अङ्ग ही उठाने कठिन होजाते हैं तो विचार को क्या सामर्थ्य होगा—वह तो बालकवत् है। इससे कुछ यत्न यौवन अवस्थामें ही होता है जो इस अवस्था में लम्पट रहा वह महाअनिष्ट नरक को प्राप्त होगा। हे रामजी! विषयों में प्रसन्न न होना। यह शरीर नाशरूपहै तो विषय कौन भोगे। श्रुति करके भी जानता है और अनुभव करके भी जानता है कि, यह शरीर नाशरूप है पर उसी शरीर में सत्य भावना करके जो विषयों के सेवने का यत्न करता है उसके सिवा दूसरा मूर्ख कहीं नहीं; वही मूर्ख है। इससे जो इन्द्रियों को जीतेगा वह जन्म जन्मान्तर को न प्राप्त होगा। हे रामजी! तुम जागो और आपको अविनाशी और अच्युत परमानन्दरूप जानो। यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप उदय हुआ है—इसको त्याग दो।

इति श्रीयो० नि० द्विशताधिकषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २४६ ॥

श्रीरामजी बोले, हे भगवन्! तुम सत्य कहते हो कि, इन्द्रियों के जीते विना शान्ति नहीं होती; इससे इन्द्रियों के जीतने का उपाय कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष को बड़े भोग प्राप्त हुये हैं और उसने इन्द्रियों को जीता नहीं तो वह शोभा नहीं पाता जो त्रिलोकी का राज्य प्राप्त हो और इन्द्रियां न जीतीं तो उसकी उपमा भी कुछ नहीं। जो बड़ा शूरवीर है पर उसने इन्द्रियों को नहीं जीता उसकी शोभा भी कुछ नहीं और जिसकी बड़ी आयुर्बल है पर उसने इन्द्रियां नहीं जीतीं तो उसका जीना भी व्यर्थ है। जिस प्रकार इन्द्रियां जीती जाती हैं और आत्मपद प्राप्त होता है सो प्रकार सुनो। हे रामजी! इस पुरुष का स्वरूप अचिन्त्य चिन्मात्र है; उसमें जो संवित् फुरी है उस ज्ञानसंवित् को अन्तःकरण और दृश्य जगत् से सम्बन्ध हुआ है—उसीका नाम जीव है। जहां से चित्त फुरता है वहांही चित्तको स्थित करो तब इन्द्रियों का अभाव होजावेगा। इन्द्रियों का नायक मन है; जब मनरूपी मतवाले हाथी को वैराग्य और अभ्यासरूपी ज़ंजीर से वश करो तब तुम्हारी जय होगी और इन्द्रियां रोकी जावेंगी। जैसे राजा के वश कियेसे सब सेनाभी वश होजाती है; तैसेही मनको स्थित कियेसे सब इन्द्रियां वश होजावेंगी। हे रामजी! जब इन्द्रियों को वश करोगे तब शुद्ध आत्मसत्ता तुमको भासि आवेगी। जैसे वर्षाकाल के अभाव से शरत्काल में शुद्ध निर्मल आकाश भासता है और कुहिरे और बादल का अभाव होजाता है, तैसेही जब मनरूपी वर्षाकाल और वासनारूपी कुहिरे का अभाव होजावेगा तब पीछे शुद्ध निर्मल आत्मसत्ता ही भासेगी। हे रामजी! ये सर्व पदार्थ जो जगत् में दृष्टि आते हैं वे सब असत्यरूप हैं—जैसे मरुस्थल की नदी असत्यरूप होती है—इनमें तृष्णा करना अज्ञानताहै। जो पदार्थ प्रत्यक्ष प्राप्त हों उनको त्यागकर आत्मा की ओर वृत्ति आवे तब जानिये कि, मुझको इन्द्र का पद प्राप्त हुआ है। विषयों में आसक्त होना ही बड़ी कृपणता है। इनसे उपराम होनाही बड़ी उदारता है; इससे मन को वश करो कि; तुम्हारी जय हो। जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ में पृथ्वी तप्त होती है और

जो चरणों में जूता चढ़ाते हैं तब तप्त नहीं होती तैसेही अपना मन वश किये से जगत् आत्मरूप होजाता है। हे रामजी। जिस प्रकार जनेन्द्र ने मन को वश किया था तैसेही तुमभी मनको वश करो। जिस २ ओर मन जावे उस उस ओरसे रोको; जब दृश्य जगत्की ओर से मन को रोकोगे तब वृत्तिसंवित् ज्ञान की ओर आवेगी और जब संवित् ज्ञान की ओर आई तब तुमको परम उदारता प्राप्त होगी और शुद्ध आत्मसत्ता का अनुभव होगा। तीर्थ, दान और तप करके संवित् का अनुभव होना कठिन है परन्तु मनके स्थित करने से सुगमही अनुभव की प्राप्ति होती है। मन स्थित करने का उपाय यही है कि; सन्तों की संगति करना और रातिदिन सत्शास्त्रों का विचारना। सर्वदा काल यही उपाय करने से शीघ्रही मन स्थित होता है और जब मन स्थित होता है तब आत्मपद का अनुभव होता है। जिसको आत्मपद प्राप्त हुआ है वह संसारसमुद्र में नहीं डूबता। चित्तरूपी समुद्र में तृष्णारूपी जल है और कामनारूपी लहरें हैं। जिस पुरुष ने शम और संतोष से इन्द्रियां जीती हैं वह चित्तरूप समुद्र में ग़ोते न खावेगा और जिसने इन्द्रियों को जीतकर आत्मपद पाया है उसको नानात्व जगत् फिर नहीं भासता। जैसे मरुस्थल की निराकार नदी में लहरें भासती हैं पर जब निकट जाकर भलीप्रकार देखिये तो वह लहरों संयुक्त बहती दृष्टि नहीं आती; तैसेही यह जगत् आत्मा का आभास है और जब भली प्रकार विचारके देखिये तब नानात्व दृष्टि नहीं आता आत्मसत्ता ही किञ्चन करके जगत्रूप हो भासती है। जैसे जल अपने द्रव स्वभाव से तरङ्गरूप हो भासता है, तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यता से जगत्रूप हो भासती है। हे रामजी! जब आत्मबोध होता है तब फिर दृश्य भ्रम नहीं भासता। जैसे साकाररूप नदी का भाव निवृत्त होता है तो फिर बहती है और जो निराकार नदी का सद्भाव निवृत्त होता है तब फिर नदी का सद्भाव होता है। निराकार मृगतृष्णा की नदी जब ज्यों की त्यों जानो तब फिर सत्ता होती है। हे रामजी! वास्तव में न कर्म हैं; न इन्द्रियां हैं; न कर्ता और न कुछ उपजा है। जैसे स्वप्न में नाना प्रकार की क्रिया

कर्म दृष्टि आते हैं परन्तु आकाशरूप हैं कुछ बने नहीं, तैसेही यह भी जानो। आकाशरूप आत्मा में आकाशरूप जगत् स्थित है। जैसे अवयवी और अवयव में भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं और जैसे अवयव अवयवी का रूप है, तैसेही जगत् आत्मा का रूप है। जब आत्मा में स्थिति होगी तब अहं-त्वं आदिक शब्दों का अभाव हो जावेगा और द्वैत अद्वैत शब्द भी न रहेंगे। द्वैत अद्वैत शब्द भी अज्ञानी बालक के समझाने के निमित्त कहे हैं, जो वृद्ध ज्ञानवान् हैं वे इन शब्दों पर हँसी करते हैं कि, अद्वैतमात्र में इन शब्दों का प्रवेश कहां है। जिनको यह दशा प्राप्त हुई है उनको न बन्ध है और न मोक्ष है। हे रामजी! सुषुप्ति और तुरीया में कुछ थोड़ा ही भेद है कि; सुषुप्ति में अज्ञान और जड़ता रहती है और तुरीया में अज्ञान और जड़ता नहीं रहती वह चैतन्य अनुभव सत्तारूप है और स्वप्न और जाग्रत् में भी भेद नहीं परन्तु इतना भेद है कि, अल्पकाल की अवस्था को स्वप्न कहते हैं और चिरकाल की अवस्था को जाग्रत् कहते हैं। हे रामजी! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों स्वप्न और सुषुप्तिरूप हैं। जाग्रत् और स्वप्न ये उभय स्वप्नरूप हैं; सुषुप्ति अज्ञानरूप है; जाग्रत् तुरीयारूप है और जाग्रत् कोई नहीं। जिस जागने से फिर भ्रम प्राप्त हो उसको जाग्रत् कैसे कहिये? उसको तो भ्रममात्र जानिये और जिस जागने से फिर भ्रम को न प्राप्त हो उसका नाम जाग्रत् है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया चारों अवस्थाओं में चिन्मात्र घनीभूत होरहा है वह चारों को नहीं देखता। ज्ञानवान् जब प्राण का स्पन्द रोककर आत्मा की ओर चित्त को लगाते हैं; परस्पर ज्ञानमात्र का निर्णय और चर्चा करते हैं और ज्ञानमात्र की ही कथा कीर्तन करते और उससे प्रसन्न होते हैं ऐसे नित्य जाग्रत् पुरुष जो निरन्तर प्रीतिपूर्वक आत्मा को भजते हैं उनको आत्मविषयिणी बुद्धि उदय होती है और उससे वे शान्ति को प्राप्त होते हैं। जिनको सदा अध्यात्म अभ्यास है और उस अभ्यास में वे उत्तम हुये हैं उनको आत्मपद प्राप्त होता है और वे ही हँसा करते हैं क्योंकि; उनको शान्ति पद प्राप्त हुआ है। जो अज्ञानी हैं वे राग

द्वेष से जलते हैं और जिनको आत्मा का दृढ़ अभ्यास हुआ है उनको अवेदनसत्ता शान्ति प्राप्त होती है और आत्मस्थिति प्राप्त होती है जिस के आगे-इन्द्र का राज्य भी सूखे तृणवत् भासता है और सर्व जगत् उसको आत्मरूप भासता है। जो अज्ञानी हैं उनको नानाप्रकार के जगत् भासते हैं। जैसे सोये हुये पुरुष को स्वप्ने की सृष्टि सत्य होकर भासती है और जाग्रत् के स्मरणवाले को स्वप्ने की सृष्टि भी अपना आपरूप और सत्यरूप भासती है। ज्ञानवान् को सर्व आत्मरूप भासता है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता। जब आत्म अभ्यास का बल हो और अनात्मा के अभावको अभ्यास दृढ़ हो तब जगत् का अभाव हो जावे और अद्वैत सत्ता का भान हो। हे रामजी! मैंने तुमको बहुत उपदेश किया है; जब इसका अभ्यास होगा तब इसका फल जो ब्रह्मबोध है सो प्राप्त होगा अभ्यास विना नहीं प्राप्त होता। जो एक तृण लोप करना होता है तौ भी कुछ यत्न करना होता है यह तो त्रिलोकी लोप करनी है। हे रामजी! जैसे बड़ा भार जिस पर पड़ता है वह बड़े ही बल से उठाता है, विना बड़े बल नहीं उठता; तैसे ही जीव पर दृश्यरूपी बड़ा भार पड़ा है, जब आत्मरूपी अभ्यास का बड़ा बल हो तब वह इसको निवृत्त करे नहीं तो निवृत्त नहीं होता। यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है इसको बारम्बार विचारो। मैंने तो तुमको बहुत प्रकार और बहुत बार कहा है। हे रामजी! अज्ञानी को ऐसे बहुत कहने से भी कुछ नहीं होता। तुमको जो मैंने उपदेश किया है वह सर्वशास्त्रों और वेदों का सिद्धान्त है। जिस प्रकार वेद को पाठ करते हैं उसी प्रकार इसको पाठ कीजिये और विचारिये और इसके रहस्य को हृदय में धारिये तब आत्मपद की प्राप्ति होगी और और शास्त्र भी इसके अवलोकन से सुगम होजावेंगे। यदि नित्य इस शास्त्र को श्रद्धासहित सुने और कहे तो अज्ञानी जीव को भी अवश्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। जिसने एकबार सुना है और कहने लगा है कि, एकबार तो सुना है फिर क्या सुनना है उसकी भ्रान्ति निवृत्त न होगी और जो बारम्बार सुने, विचारे और कहे तो उसकी भ्रान्ति निवृत्त हो

जावेगी। सब शास्त्रों से उत्तम युक्ति की संहिता मैंने कही है जो शीघ्रही मन में आती है। जो पुरुष मेरे शास्त्र के सुनने और कहनेवाले हैं उनको बोध उदय होता है और दूसरे शास्त्रों का अर्थ भी सुन्दरता से खुल आता है। जैसे लवण का अधिकारी व्यञ्जन पदार्थ है उसमें डाला लवण स्वादी होता है और प्रीति सहित ग्रहण किया जाता है; तैसेही जो इस शास्त्र के सुनने और कहनेवाले हैं वे और शास्त्रों का भी सुन्दर अर्थ करेंगे। हे रामजी! किसी और पक्ष को मानकर इसका सुनना त्यागना न चाहिये। जैसे किसी के पिता का खारा कुवां था और उसके निकट एक मिष्ट जल का कुवां भी था पर वह अपने पिता का कूप मानकर खारी ही जल पीता था और निकट के मिष्ट जल के कुयें का त्याग करता था, तैसेही अपने पक्ष को मानकर मेरे शास्त्र का त्याग न करना। जो ऐसे जानकर मेरे शास्त्र को न सुनेगा उसको ज्ञान प्राप्त न होगा। जो पुरुष इस शास्त्र में दूषण आरोपण करेगा कि; यह सिद्धान्त यथार्थ नहीं कहा उसको कदाचित् ज्ञान न प्राप्त होगा—वह आत्महन्ता है उसके वाक्य न सुनना। जो प्रीतिपूर्वक पूजा भाव करके सुने और विचारकर पाठ करे उसको निर्मल ज्ञान होगा और उसकी क्रिया भी निर्मल होगी इससे यह नित्यप्रति विचारने योग्य है। हे रामजी! तुमको मैंने अपने किसी अर्थ के निमित्त उपदेश नहीं किया केवल दया करके किया है और तुम जो किसी को कहना तो अर्थ विना दया करकेही कहना।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इन्द्रिययज्ञवर्णनं नाम द्विशताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ २४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा में जगत् कुछ हुआ नहीं। जब शुद्ध चिन्मात्र में अहं फुरता है तब वही संवेदन फुरना जगत्रूप हो भासता है और जब वह अधिष्ठान की ओर देखता है तब वही संवेदन अधिष्ठानरूप होजाता है और अपने रूप को त्यागकर अचेत चिन्मात्र होता है। हे रामजी! फुरने और अफुरने दोनों में वही है परन्तु फुरने से जगत् भासता है सो जगत् भी कुछ और वस्तु नहीं वही रूप है। जब

संवित् संवेदन फुरने से रहित होती है तब अपना चिन्मात्ररूप होजाती है इस कारण ज्ञानवान् को जगत् आत्मरूप भासता है ब्रह्म से भिन्न नहीं भासता। जैसे किसी पुरुष का मन और ठौर गया होता है तो उसके आगे शब्द होता है तौ भी नहीं सुनाई देता और वह कहता है कि, मैंने देखा सुना कुछ नहीं क्योंकि, जिस ओर चित्त होता है उसीका अनुभव होता है; तैसे ही जिनका मन आत्मा की ओर लगता है उनको सब आत्मा ही भासता है—आत्मा से भिन्न जगत् कुछ नहीं भासता। जिसको आत्मसत्ता का प्रमाद है और जगत् की ओर चित्त है उसको जगत् ही भासता है। हे रामजी! ज्ञानवान् के निश्चय में ब्रह्मही भासता है और अज्ञानी के निश्चयमें जगत् भासता है तो ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय एक कैसे हो? जो मनुष्य स्वप्ने में है उसको स्वप्ने का जगत् भासता है और जाग्रत् को वह जगत् नहीं भासता तो उनको एक ही निश्चय कैसे हो? जगत् के आदि और अन्त दोनों में ब्रह्मसत्ता है और मध्य में भी उसे ही जानो—आत्मसत्ता ही चैतन्यता से जगत् रूप हो भासती है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि के आदि भी ब्रह्मसत्ता होती है, अन्त भी ब्रह्मसत्ता होती है और मध्य जो भासता है सो भी वही है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही यह जगत् आदि, अन्त और मध्य में भी आत्मा से भिन्न नहीं। ज्ञानवान् को सदा यही निश्चय है कि, जगत् कुछ उपजा नहीं और न उपजेगा केवल आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और सर्व ब्रह्म ही है अहं त्वं आदिक अज्ञान से भासता है जैसे स्वप्ने में अहं त्वं आदि अनुभव होता है तो अहं त्वं आदिक भी कुछ नहीं सब अनुभवरूप है, तैसेही यह जगत् सर्व अनुभवरूप है। हे रामजी! जैसे एकही रस फूल, फल, टहनी और वृक्ष होकर भासता है, रस से भिन्न कुछ नहीं होता, तैसेही नानात्वरूप जगत् भासता है परन्तु आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर अपने २ अनुभव से भिन्न नहीं परन्तु स्वरूप के विस्मरण से आकाररूप भासते हैं, तैसेही यह जगत् आकार भासता है सो ज्ञानरूप से भिन्न नहीं। सब जगत्

आत्मरूप है परन्तु अज्ञान से भिन्न २ भासता है । यह जगत् सब अपना आपरूप है और जो आत्मरूप है तो ग्राह्य ग्रहणभास कैसेहो ? यह मिथ्या भ्रम है । पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, घट, पट आदिक सब जगत् ब्रह्मरूप है; ज्ञानवान् को सदा यही निश्चय रहता है कि, अचेत् चिन्मात्र अपने आपमें स्थित है । ब्रह्मादिक भी कुछ फुरकर उदय नहीं हुये ज्यों के त्यों हैं । उत्थान कुछ नहीं हुआ पर अज्ञानी के निश्चय में नाना प्रकार का जगत् है और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, ब्रह्मादिक सम्पूर्ण हैं । हे रामजी ! यह कुछ उपजा नहीं कारणत्व के अभाव से सदा एकरस आत्मसत्ताही है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ २४८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अब जाग्रत् और स्वप्न का निर्णय सुनो । जब इस जगत् में मनुष्य सो जाता है तब स्वप्ने की सृष्टि देखता है; उसमें जाग्रत् होती है और जाग्रत् होकर भासती है और जब वहां सो जाता है तब फिर यह सृष्टि देखता है तो यही जाग्रत् हो भासती है । यहां सोकर स्वप्ने में जाग्रत् होती है और वहां सोकर यहां जाग्रत् होती है तो स्वप्न जाग्रत् हुआ जाग्रत् का जाग्रत् नहीं होता । जाग्रत् जो वस्तु है सो आत्मसत्ता है, उसमें जागना वही जाग्रत् की जाग्रत् है और सब स्वप्न जाग्रत् है । जब मनुष्य यहां शयन करता है तब स्वप्ने का जाग्रत् सत्य होकर भासता है और यह असत्य होजाता है और स्वप्ने में वहां शयन करता है अर्थात् जब स्वप्ने से निवृत्त होता है और जाग्रत् में जागता है तब वहां असत्य होजाता है और वह स्वप्ना जाग्रत् में स्मृति को प्राप्त होता है । जब जाग्रत् में सोया और स्वप्ने में जागा तब जाग्रत् स्वप्नभाव को प्राप्त हुई और जब स्वप्ने से उठकर जाग्रत् में आया तब स्वप्नरूप जाग्रत् स्मृति भाव को प्राप्त हुई जाग्रत् जाग्रत्रूप हुई तो हे रामजी ! स्वप्ना तो कोई न हुआ । इसको सर्व ठौर जाग्रत् हुई और जाग्रत् तो कोई न हुई क्योंकि; जब जाग्रत् से स्वप्ने में गया तब स्वप्ना जाग्रत्रूप होगया और

जाग्रत् स्वप्न होगई और जब स्वप्न से जाग्रत् में आया तब जाग्रत् जाग्रत्-रूप होगई और स्वप्न जाग्रत् स्वप्नरूप होगई तो क्या हुआ कि; जाग्रत् कोई नहीं सब स्वप्न और असत्यरूप है। अपने काल में यह जाग्रत् है और स्वप्नरूप है और जब यहां से मृतक होता है तब यह जगत् स्वप्नरूप होता है और स्वप्न-रूप परलोक जाग्रत् होता है और जाग्रत् स्मृति प्रत्यक्ष होजाता है तो उसमें वह नहीं रहता और उसमें वह नहीं रहता और जाग्रत् स्वप्न दोनों में पर-लोक नहीं रहता। इस जाग्रत् में देखिये तो स्वप्न और परलोक दोनों नहीं भासते और स्वप्न में इस जाग्रत् और परलोक दोनों का अभाव हो जाता है तो यह सिद्ध हुआ कि, सब स्वप्नमात्र है। हे रामजी! चिरकाल की प्रतीति को जाग्रत् कहते हैं और अल्पकाल की प्रतीति को स्वप्न कहते हैं। जो आदि स्वप्न हुआ और उसमें दृढ़ अभ्यास होगया उससे जाग्रत् हो भासती है; इसलिये जो आकार तुमको सत्य भासते हैं वे सब निराकार आकाशरूप हैं कुछ बने नहीं। जैसे स्वप्न में त्रिलोकी जगत् भ्रम उदय होता है परन्तु सब आकाशरूप होता है; तैसेही ये जगत् के पदार्थ अविद्या से साकार भासते हैं सो सब निराकार और आकाशरूप हैं। जब अधिष्ठान आत्मतत्त्व में जागोगे तब सबही आकाशरूप भासेंगे। अद्वैत आत्मतत्त्व में जो ग्राह्य-ग्राहकभाव भासते हैं सो मिथ्या कल्पना है, वास्तव में कुछ नहीं। सब जगत् मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या है उसमें ग्रहण और त्याग क्या कीजिये? इन दोनों की कल्पना को दूर करो। यह हो और यह न हो इस कल्पना को त्याग कर अपने स्वरूप में स्थित होरहो तब सर्व शान्ति प्राप्त होगी।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे राजन्! इन अर्थों का जो आश्रयभूत है सो मैं तुमसे कहता हूं। इस जगत् के आदि अचेत चिन्मात्र था और उसमें किसी शब्द की प्रवृत्ति न थी-अशब्द पद था। फिर उसमें जागना फुरा और उसका आभास जगत् हुआ। उस आभास में जिसको अधिष्ठान की

अहंप्रतीतिहै उसको जगत् आकाशरूप भासता है और वह संसार में नहीं डूबता क्योंकि, उसको अज्ञान का अभाव है। जो डूबता नहीं वह निकलता भी नहीं; उसे अज्ञाननिवृत्ति और ज्ञानका भी अभाव है क्योंकि, वह स्वतः ज्ञानस्वरूप है। जिनको अधिष्ठान का प्रमाद हुआ है उनको दोनों अवस्था होती हैं। जो ज्ञानवान् है उसको जगत् आत्मरूप भासता है और जो ज्ञान से रहित है उसको भिन्न २ नामरूप जगत् भासता है। हे रामजी! आत्मा निराख्यात है; वह चारों आख्यातों से रहित निराभाससत्ता है और चारों आख्यात उसमें आभास हैं एक आख्यात, दूसरा विपर्ययाख्यात; तीसरा असत्याख्यात और चौथा आत्माख्यात है। आख्यात ज्ञान को कहते हैं। जिसको यह ज्ञान है कि; 'मैं आपको नहीं जानता;' इसका नाम आख्यात है। आपको देह इन्द्रियरूप जानने का नाम विपर्ययाख्यात है। जगत् असत्य जानने का नाम असत्याख्यात है और आत्मा को आत्मा जानने का नाम आत्माख्यात है। ये चारों आख्यात चिन्मात्र आत्मतत्त्व के आभास हैं। आत्मसत्ता निर्विकल्प अचैत चिन्मात्र है उसमें वाणी की गम नहीं है। हे रामजी! जगत् भी वही स्वरूप है और कुछ बना नहीं और घनशिला की नाईं अचिन्त्यस्वरूप है। इस पर एक आख्यान है जो श्रवणों का भूषण है इसलिये तुझसे कहता हूं। वह द्वैतदृष्टि को नाश करता है और ज्ञानरूपी कमल का विकास करनेवाला सूर्य है और परमपावन है सो सुनो। हे रामजी! एक बड़ी शिला है जिसका कोटि योजन पर्यन्त विस्तार है; अनन्त है किसी ओर उसका अन्त नहीं आता और शुद्ध, निर्मल और निरासाध है अर्थात् यह कि, अणु अणु से पुष्ट नहीं हुई अपनी सत्ता से पूर्ण है और बहुत सुन्दर है। जैसे शालग्राम की प्रतिमा सुन्दर होती है, तैसे ही वह सुन्दर है और जैसे शालग्राम पर शंख, चक्र, गदा और पद्म की रेखा होती हैं तैसे ही उस पर रेखा हैं और वही रूप है। वह वज्र से भी क्रूर, शिला की नाईं निर्विकाश और निराकार अचेतन परमार्थ है। यह जो कुछ चैतन्यता भासती है सो उस पर रेखा है और अनन्त

कल्प बीत गये हैं परन्तु उसका नाश नहीं होता। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश; ये सबभी उस पर रेखा हैं और आप पृथ्वी आदिक भूतों से रहित और शिलावत् है और इन रेखाओं की जीवित की नाईं चेतती है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो वह अचेतन है और शिलाकी नाईं निर्विकाश है तो उसमें चैतन्यता कहां से आई जिससे जीवितधर्मा हुई–वह तो अचैतन्य थी? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह तो न चैतन्य है और न जड़ है शिलारूप है और पत्थर से भी उज्ज्वल है। यह चैतन्यता जो तुम कहते हो सो चैतन्यता स्वभाव से दृष्ट आती है–जैसे जल का स्वभाव द्रवीभूत है, तैसेही चैतन्यता भी उसका स्वभाव है और जैसे जल में तरङ्ग स्वाभाविक भासते हैं, तैसेही इससे चैतन्यता स्वाभाविक भासती है परन्तु भिन्न कुछ नहीं। वह सदा अपने आपमें स्थित है और किसीसे जानी नहीं जाती–अबतक किसीने नहीं जाना। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! किसी ने उसको देखाभी है अथवा नहीं देखा और किसीसे वह भङ्ग भी हुई है कि नहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैंने उस शिला को देखा है और तुमभी जो उस शिला के देखनेका अभ्यास करोगे तो देखोगे। वह परमशुद्ध है–उसको मैल कदाचित् नहीं लगता। वह चिह्नों, पोलों और आदि, मध्य, अन्त से रहित है। न उसे कोई तोड़ सक्ता है और न वह तोड़ने योग्य है, उससे कोई अन्य हो तो उसको भेदे। ये जितने पदार्थ पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, अप, तेज, वायु, आकाश, देवता, दानव, सूर्य और चन्द्रमा हैं वे सब उसीकी रेखा हैं और उसके भीतर स्थित हैं। वह शिला महासूक्ष्म निराकार आकाशरूप है। रामजी ने पूछा हे भगवन्! जो वह आदि, मध्य और अन्त से रहित है तो तुमने कैसे देखी सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह और किसीसे जानी नहीं जाती अपने आप अनुभव से जानी जाती है। मैंने उसे अपने स्वभाव में स्थित होकर देखा है। जैसे थम्भेको अनथम्भे में स्थित होकर देखे, तैसेही मैंने उसमें स्थित होकर देखा। हमभी उस शिलाकी रेखा हैं; इससे मैंने उस में स्थित होकर देखा है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्!

वह कौन शिला है और उसपर रेखा कौन है सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह परमात्मरूपी शिला है। मैंने शिलारूप इसलिये कहा कि, वह घन चैतन्यरूप है उससे इतर कुछ नहीं और अचित्‌रूप है उसपर पञ्चतत्त्व रेखा हैं सो वे रेखाभी वही रूप हैं। एक रेखा बड़ी है जिसमें और रेखा रहती हैं। वह बड़ी रेखा आकाश है जिसमें और तत्त्व रहते हैं। सब पदार्थ आकाश में हैं सो सब वहीरूप है; तुमभी वहीरूप हो और मैंभी वहीरूप हूं और कुछ हुआ नहीं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सर्व पदार्थ और कर्म जो भासते हैं सो सब ब्रह्मरूपी शिला की रेखा हैं और कुछ हुआ नहीं, सर्वकाल में ब्रह्मसत्ताही स्थित है। नाना प्रकार के व्यवहार भी दृष्ट आते हैं परन्तु वहीरूप हैं और कुछ है नहीं तैसेही वह भी जानो। घट, पट, पहाड़, कन्दरा, स्थावर, जङ्गम, जगत् सब आत्मरूप है। आत्माही फुरनेसे ऐसे भासता है। जैसे जलही तरङ्ग और लहरें होकर भासता है, तैसेही ब्रह्मसत्ताही जगत्‌रूप होकर भासती है और सर्व पदार्थ पवित्र, अपवित्र; सत्य, असत्य; विद्या, अविद्या; सब आत्मसत्ताही के नाम हैं इतर वस्तु कुछ नहीं। ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! सर्वही घन ब्रह्मरूप है और चिन्मात्र घनही सबमें व्यापरही है वह परमार्थसत्ता घन शान्तरूप है और यह भी सर्वपरमार्थ घनरूप है इसलिये संकल्परूपी कलना को त्यागकर उसमें स्थित होरहो।

इति श्रीयोग॰नि॰ द्विशताधिकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ २५० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष स्वभावसत्ता में स्थित हुये हैं उनको ये चारों आख्यात कहे हैं और इनसे लेकर जितने शब्दार्थ हैं वे शशे के सींगवत् असत्य भासते हैं। जगत् का निश्चय उनमें नहीं रहता और सर्वब्रह्माण्ड उनका आकाशवत् भासता। आख्यात की कल्पना भी उन्हें कुछ नहीं फुरती और सर्व जगत् जो दीखता है वह निराकार परम चिदाकाशरूप है और परमनिर्वाणसत्ता से युक्त भासता है और उसीसे निर्वाण होजाता है इसलिये वही स्वरूप है। हे रामजी! जब इस प्रकार

जानकर तुम उस पद में स्थित होगे तब बड़े शब्द को करते भी तुम निश्चय से पाषाण शिलावत् मौन रहोगे और देखोगे, खावोगे, पिवोगे, सूंघोगे परन्तु अपने निश्चय में कुछ न फुरेगा। जैसे पाषाण की शिलामें फुरना नहीं फुरता, तैसेही तुम रहोगे-जो चरणों से दौड़ते जावोगे तौभी निश्चय से चलायमान न होगे। जैसे आकाश, सुमेरु, पर्वत अचल है; तैसे ही तुम भी स्थित रहोगे और क्रिया तो सब करोगे परन्तु हृदय में क्रिया का अभिमान तुमको कुछ न होगा केवल स्वभावसत्तामें स्थित होगे। जैसे मूढ़ बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है सो अविचारसिद्ध है और विचार कियेसे कुछ नहीं रहता, तैसेही मूर्ख अज्ञानी आत्मा में मिथ्या आकार कल्पते हैं विचार कियेसे सब आकाशरूप है कुछ बना नहीं। जैसे मरुस्थल में नदी तबतक भासती है जबतक विचार करके नहीं देखता और विचार कियेसे नदी नहीं रहती; तैसेही यह जगत् विचार किये से नहीं रहता। जगत् चैतन्यरूपी रत्न का चमत्कार है; चैतन्य आत्मा का किञ्चन फुरने से ही जगत्रूप हो भासता है। रामजी बोले, हे भगवन्! इस जगत् का कारण मैं स्मृति मानता हूं; वह स्मृति अनुभव से होती है और स्मृति से अनुभव होता है। स्मृति और अनुभव परस्पर कारण हैं, जब अनुभव होता है तब उसको स्मृति भी होती है और वह स्मृतिसंस्कार फिर स्वप्ने में जगत्रूप हो क्यों भासती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जगत् किसी संस्कार से नहीं उपजा और किसी स्मृति का संस्कार नहीं काकतालीयवत् अकस्मात् फुर आया है। हे रामजी! यह जगत् आभास-मात्र है; आभास का अभाव कदाचित् नहीं होता क्योंकि; उसका चमत्कार है। इतर कुछ बना हो तो उसका नाश भी हो पर भिन्न तो कुछ हुआ ही नहीं नाश कैसे हो? यह जगत् सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं; आत्मसत्ता अपने स्वभाव में स्थित है और जगत् उसका आभास है। हे रामजी! तुम जो स्मृति कारण कहते हो तो कारण कार्यभाव आभास वहां भासते हैं जहां द्वैत है स्वरूप में तो कुछ कारण कार्य भाव नहीं? जैसे स्वप्ने के मरुस्थल में जल भासित हुआ तो उसमें जल माना गया; इसलिये

तुम आगे जाकर उसको देखो तो उस जल की स्मृति हुई अथवा स्वप्ने के व्यवहारकर्ता को स्वप्नान्तर हुआ और उस स्वप्नान्तर में फिर व्यवहार किया? हे रामजी! तुम देखो कि, उसकी स्मृति भी असत्य हुई और जो उसने अनुभव किया सो भी असत्य है; तैसेही यह संसार भी है कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी! इसलिये न जाग्रत् है, न स्वप्ना है; न कोई सुषुप्ति है और न तुरीया है केवल अद्वैतसत्ता सर्वउत्थान से रहित चिन्मात्र स्थित है; इसलिये जगत् भी वहीरूप है और जो क्रिया भी दृष्ट आती है तो भी कुछ हुआ नहीं। जैसे स्वप्ने में अङ्गना कण्ठ से आमिलती है तो उसकी क्रिया कुछ सच नहीं होती; तैसेही यह क्रिया भी सच नहीं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया शब्दों का अर्थ स्वभाव निश्चय ज्ञानवान् पुरुष को है और शशे के सींग और आकाश के फलवत् असत्य भासते हैं। जैसे बन्ध्या का पुत्र और श्याम चन्द्रमा शब्द कहनेमात्र हैं और इनका अर्थ असत्य है; तैसेही ज्ञानी के निश्चय में पांचों अवस्थाओं का होना असंभव है। वह सर्वदाकाल में जाग्रत् है; जाग्रत् उसका नाम है जहां कुछ अनुभव हो। वह अनुभवसत्ता सदा जाग्रत्रूप है और जैसा पदार्थ आगे आता है उसी का अनुभव करता है—इससे सर्वदा सर्वकाल जाग्रत् है। अथवा सर्वदाकाल स्वप्ना है; स्वप्ना उसका नाम है जहां पदार्थ विपर्यय भासते हैं सो सर्वपदार्थ विपर्यय ही भासते हैं। विपर्यय से रहित आत्मा है उसमें जो पदार्थ भासते हैं सो विपर्यय हैं इसलिये सर्वकाल में स्वप्नाही है; अथवा सर्वदाकाल सुषुप्तिही है; सुषुप्ति उसका नाम है जहां अज्ञानवृत्ति हो। मैं आप को भी नहीं जानता इसलिये न जानने से सर्वदाकाल सुषुप्ति है, अथवा सर्वदाकाल तुरीया है; तुरीया उसका नाम जो साक्षीभूत सत्ता हो और जिसमें जाग्रत, स्वप्ना और सुषुप्ति अवस्था का अनुभव होता है। वह सर्वदाकाल सब का अनुभव करता है सो प्रत्यक् चैतन्य है इससे सर्वदाकाल में तुरीयापद है। अथवा सर्वदाकाल तुरीयातीतपद है। तुरीयातीत उसको कहते हैं कि, जो अद्वैतसत्ता है, जिसके पास द्वैत कुछ नहीं सो सर्वदाकाल अद्वैतसत्ता है और उसमें जगत् का अत्यन्त अभाव है जैसे

मरुस्थल में जल का अभाव है-इसलिये सर्वदाकाल में तुरीयातीतपद है और जो मुझ से पूछो तो मुझको तरङ्ग, बुद्बुदे, झाग और आवर्त कुछ नहीं भासते-सर्वदाकाल चित्समुद्रही भासता है। उदय अस्त से रहित आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं सो भी कुछ उपजे नहीं आत्मसत्ता का किञ्चन इस प्रकार भासता है। जैसे नख और केश उपजते भी हैं और नाश भी होजाते हैं; तैसेही आत्मा में जगत् उपजता भी है और लीन भी होजाता है। जैसे नख और केश के उपजने और काटने से शरीर ज्योंका त्यों रहताहै; तैसेही जगत् के उपजने और लीन होने में आत्मा ज्योंका त्यों रहता है। हे रामजी! यह जगत् उपजा नहीं तो उसमें सत्य और असत्य कल्पना और स्मृति क्या कहिये और भीतर और बाहर क्या कहिये? अद्वैतसत्ता में कुछ कल्पना नहीं बनती। जो तुम कहो कि, स्मृति भीतर होती है परन्तु भीतर से बाहर दृष्ट आती है तो भीतर अनुभव की अपेक्षा से हुई है सो भी उत्पन्न नहीं हुई तो मैं भीतर और बाहर क्या कहूं? जैसे स्वप्ने की सृष्टि भासि आती है सो अपनाही अनुभव होता है और वही सृष्टिरूप हो भासता है वहां तो भीतर बाहर कुछ नहीं है; तैसेही यह जगत् भी भीतर बाहर कुछ नहीं है सब भ्रमरूप है। जिसको इच्छा कहते हैं उसे ही स्मृति कहते हैं और विद्या, अविद्या; इष्ट, अनिष्ट आदि शब्द सब आत्मा के नाम हैं-आत्मासे भिन्न और पदार्थ कुछ नहीं। हे रामजी! जागकर देखो कि, सब तुम्हाराही स्वरूप है। मिथ्याभ्रम को अङ्गीकार करके भिन्न क्यों देखते? सर्वशब्द अर्थ विना कहीं नहीं है और शब्द अर्थ का विचार संकल्प से होता है। संकल्प तब फुरता है जब चित्तमें अहंअभिमान होता है। उस चित्त को आत्मासार में लीन करो; जब चित्त को निर्वाण करोगे तब सब जगत् शान्त हो जावेगा। जैसे दर्पण में जगत्रूपी प्रतिबिम्ब होता है। जगत् कुछ वस्तु नहीं; जब चित्त निर्वाण होजावेगा तब द्वैतकल्पना सबमिट जावेगी। यह जो मोक्षशास्त्र मैंने तुमसे कहा है इसके अर्थ विचार कर और संकल्प को त्यागकर अपने परमानन्दस्वरूप में स्थित होरहो।

इति श्रीयोग० नि० द्विशताधिकैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २५१॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह जगत् किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुआ। जैसे समुद्र में तरङ्ग स्वाभाविक फुरते हैं तैसेही संवित्सत्ता से आदि सृष्टि फुरी है और जैसे जल स्वाभाविक द्रवता से तरङ्गरूप अपनी सत्ता से बढ़ता जाता है; तैसे ही आत्मसत्ता से जगत् विस्तार होताहै सो आत्मा से कुछ भिन्न नहीं; आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है। जब चिन्मात्र आत्मसत्ता का अभ्यास बहिर्मुख फुरता है तब अन्तःकरण चतुष्टयाङ्ग होते हैं और उसमें जो निश्चय होता है उस का नाम नेति है। वह प्रथम अकस्मात् से कारण विना स्वाभाविकही फुरि आया है और आभासमात्र है जब वह दृढ़ होगया तब नेति स्थित हुई और वास्तव में द्वैत कुछ बना नहीं। जो सम्यक्‌दर्शी पुरुष हैं उनको सब आत्माही दृष्ट आता है—जैसे पत्र, फूल, फल, टहनी सब वृक्ष पर होते हैं भिन्न नहीं होते। हे रामजी ! वृक्ष से जो फूल, फल और टहनी होती हैं सो किसकारण बुद्धिपूर्वक नहीं होतीं ? तैसेही इस जगत् को भी जानो। जो सम्यक्‌दर्शी हैं उनको भिन्न भिन्नरूप भी पत्र, टास आदिक विस्तार एक वृक्षरूपही भासता है; तैसेही यथार्थ ज्ञानी को सब आत्माही भासता है और मिथ्यादृष्टि को भिन्न २ पदार्थ भासते हैं। हे रामजी ! वृक्ष का देखनेवाला भी और होता है और दृष्टान्त में दूसरा कोई नहीं। चैतन्य आत्मा का आभासही चैत है, वही चैतन्यरूप हो भासता है। उस चैतन्य आभास को असम्यक् दृष्टि से भिन्न २ पदार्थ देखते हैं और सम्यक्‌दर्शी सबको आत्मरूप देखता है। जैसे पत्र, फूल, फल और वृक्ष आपको भिन्न जाने। ज्ञानी और अज्ञानी सब आत्मरूप है—जैसे दीवारपर पुतलियां लिखी होती हैं सो दीवार से भिन्न नहीं होतीं तैसेही सर्वगत आत्मरूपी दीवार के चित्र हैं सो आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे आकाश में शून्यता; फूलों में सुगन्ध; जल में द्रवता; वायु में स्पन्द और अग्नि में उष्णता है तैसेही ब्रह्ममें जगत् है। हे रामजी ! जगत् आत्मा का आभास है इसलिये वही रूप है। यह जगत् भी अचैत चिन्मात्र है। जो तू कहे कि, अचैत चिन्मात्र है तो पृथ्वी, पहाड़ आदिक आकार क्यों भासते हैं ? तो

हे रामजी! जैसे नित्यप्रति जो तुमको स्वप्न आता है और उस अनुभव आकाश में पृथ्वी आदिक तत्त्व भासि आते हैं तो वही चिन्मात्र ही आकार होकर भासता है और कुछ नहीं; तैसेही इसे भी जानो। यह सब जगत् जो तुमको भासता है सो अनुभवरूप है। जैसे चिन्मात्र आत्मा में सृष्टि आभासमात्र है; तैसेही कारण कार्यभाव भी आभासमात्र है परन्तु वहीरूप है-आत्मसत्ताही इस प्रकार होकर भासती है। ये पदार्थ कार्य-कारण अभ्यास की दृढ़ता से उपजे भासते हैं पर आदि सृष्टि किसी कारण से नहीं उपजी-पीछे कारण से कार्य उत्पन्न दृष्ट आते हैं। यद्यपि कार्य-कारण दृष्ट आते हैं तौभी कुछ उपजे नहीं सदा अद्वैतरूप हैं। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के कार्य कारण भासिआते हैं परन्तु कुछ हुये तो नहीं सदा अद्वैतरूप हैं; तैसेही जाग्रत् में भी जानो। पदार्थों की स्मृति भी स्वप्ने में होती है और अनुभव भी स्वप्ने में होता है; जो स्वप्नाही नहीं फुरा तौ मृत्यु कहां है और अनुभव कहां है ? न जगत् का अनुभव है और न जगत् है; अनुभवसत्ताही जगत्रूप हो भासती है जो जाग्रत्रूप है; जब उसका अनुभव होगा तब न स्मृति रहेगी और न जगत् रहेगा। इसलिये, हे रामजी! जो अनुभवरूप है उसका अनुभव करो। यह जगत् भ्रमरूप है। जो उपजा नहीं सो स्वतः सिद्ध है और जो उपजा है और जिसमें भासता है उसको उसी का रूप जानो भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में पदार्थ भासते हैं सो उपजे नहीं परन्तु उपजे दृष्ट आते हैं सो अनुभव में उपजे हैं। अनुभव स्वतः सिद्ध है उसमें जो पदार्थ भासते हैं सो अनुभवरूप हैं और अनुभवरूपही इस प्रकार हो भासता है; तैसेही ये सब अनुभवरूप हैं-भिन्न कुछ नहीं। यह सर्व जगत् आत्मरूप है; इसलिये हे रामजी! सर्व जगत् अकारण है और आत्मा का आभास है-कारणसे कुछ नहीं बना। अनन्त ब्रह्माण्ड ब्रह्मसत्ता में आभास फुरते हैं और अज्ञानी को कार्य-कारण सहित भासते हैं। उसमें नेति हुई है पर जब जागकर देखोगे तब सर्व अद्वैतरूप भासेगा। न कोई नेति है और न जगत् है। जबतक अज्ञाननिद्रा में सोया हुआ है तबतक जो पदार्थ उस सृष्टि में है वही भासेगा और जैसा कर्म है

सो भासेगा। यह जगतरूपी स्वप्न है जिसमें स्वर्गादिक इष्ट पदार्थ हैं और नरकादिक अनिष्टपदार्थ हैं और उनके प्राप्त होने का साधन धर्म अधर्म है। धर्म स्वर्गसुख का साधन है और अधर्म नरकदुःख का साधन है। जब-तक अविद्यारूपी निद्रा में सोया हुआ है तबतक इनको यथार्थ जानता है पर जब जागेगा तब सब आत्मरूप होगा और इष्ट अनिष्ट कोई न रहेगा। यह सब जगत् अनुभवरूप है और अनुभव सदा जाग्रत् ज्योति है उसीको जानो। जिन पुरुषों ने इस अनुभवको नहीं जाना वे उन्मत्त पशु हैं क्योंकि; वे आत्मबोध से शून्य हैं और सदा समीप आत्मा को नहीं जानते इससे उन्मत्त हैं क्योंकि; उन्मत्त को भी अपना आप भूल जाता है। जैसे किसी को पिशाच लगता है तब उसको अपना स्वरूप विस्मरण होजाता है और पिशाचही देह में बोलता है; तैसेही जिसको अज्ञानरूपी भूत लगता है वह उन्मत्त होजाता है; अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानता और विपर्यय बुद्धि से देहादिक को आत्मा जानता है और विपर्यय शब्द करता है। जिनको स्वरूप में अहंप्रतीति है उनको सर्व जगत् आत्मरूप भासता है। हे रामजी! आदिसृष्टि किसी कारण से बनी होती तो उसके पीछे प्रलयादिक में कुछ शेष रहता पर वह अत्यन्त अभाव होती है, इसलिये सब जगत् अकारण है। जैसे चिन्तामणि से अकारण पदार्थ दृष्टि आताहै, तैसेही यह अकारण है। न कहीं संस्कार है और न स्मृति है सब आत्मा के पर्याय हैं आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। इससे सर्व जगत् को आत्मरूप जानो। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो संस्कार से अनुभव नहीं होता और अनुभव से स्मृति नहीं होती तो इस प्रकार प्रसिद्ध क्यों दृष्ट आते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह संशयभी तुम्हारा दूर करता हूं। जैसे हाथी के बालक के मारने में सिंह को कुछ यत्न नहीं होता, तैसेही इस संशय के नाश करने में मुझे कुछ यत्न नहीं है। जैसे सूर्य के उदय हुये तिमिर का अभाव हो जाता है; तैसेही मेरे वचनों से तुम्हारा संशय दूर होजावेगा। हे रामजी! यह सर्वजगत् चिन्मात्रस्वरूप है—उससे भिन्न नहीं। जैसे थम्भे में शिल्पी पुतलियां कल्पता है परन्तु पुतलियां कुछ बनी नहीं उसके चित्त में पुत-

लियों का आकार है; तैसेही आत्मरूपी थम्भे में चित्तरूपी शिल्पी पुतलियां कल्पता है। हे रामजी! थम्भे में पुतलियां निकालते हैं तभी निकलती हैं परन्तु आत्मा तो अद्वैत और निराकार है उसमें और कुछ नहीं निकलता और उसमें वाणी की भी गम नहीं चैतन्यमात्र है अहं के फुरनेसे वह आपको चैतन्य जानता है और फिर आगे शब्दों के अर्थ कल्पता है शुद्धअधिष्ठान चैतन्य आपको जानना यही स्वर्ग है। ईश्वर, जीव, ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, देश, काल इत्यादिक शब्द और अर्थ फुरनेही में हुये हैं—जैसे एकही समुद्र में द्रवता से आवर्त, तरङ्ग, फेन और बुद्बुदे नाम होते हैं, तैसेही सब ब्रह्महीके नाम हैं ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं; ब्रह्महीं अपने आपमें स्थित है और वही फुरनेमें जगत् आकार हो भासता है और फुरनेसे रहित होनेसे जगत् आकार मिटजाता है परन्तु फुरने अफुरने में ब्रह्म ज्यों का त्यों है। जैसे स्पन्दमें निस्स्पन्द में वायु ज्यों की त्यों है और सब पदार्थ जो भासते हैं सो ब्रह्मस्वरूप हैं। जैसे स्वप्न में अपनाही अनुभव पहाड़, वृक्ष आदिक नाना प्रकार का जगत् हो भासता है, तैसेही ब्रह्मसत्ता ही जाग्रत् जगत्रूप हो भासती है और वही कहीं अन्तवाहक; कहीं आधिभौतिक; कहीं ईश्वर और कहीं जीव आदि हो भासता है इससे आदि लेकर शब्द अर्थसंयुक्त जो जीव फुरता गया है सो ब्रह्मसत्ताही इस प्रकार स्थित हुई है। जैसे थम्भेमें पुतलियां थम्भरूप होती हैं, तैसेही आत्माकाश में जगत् आत्मरूप है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। जैसे उसमें जगत् आभास है, तैसेही स्मृति अनुभव भी आभास है। स्मृति जो संस्कार है उससे जगत् की उत्पत्ति तब कहिये जब स्मृति आभास न हो सो तो स्मृति संस्कार भी आभास है यह जगत् का कारण कैसे हो? स्मृति भी तब होती है जब प्रथम जगत् होता है सो जगत् नहीं तो स्मृति कैसे हो? इससे जगत् आभासमात्र है और इसका कारण कोई नहीं। हे रामजी! स्मृति संस्कार जगत् का कारण तब हो जब कुछ जगत् आगे हुआ हो सो तो कुछ हुआ नहीं और अनुभव उसका होता है जो पदार्थ भासता है सो तो इस

जगत् के आदि कुछ जगत् का अंश न था फिर अनुभव कैसे कहूं? जो अनुभवही न हुआ तो स्मृति किसको हो और जब स्मृतिही न हुई तो फिर उससे जगत् कैसे कहूं? इसलिये, हे रामजी! आदि जगत् अकारण अकस्मात् फुरा है। जैसे रत्न की लाट होती तैसेही जगत् है और पीछेसे कारण कार्यरूप भासता है। इससे हे रामजी! जिसका कारण कोई न हो उसे जानिये कि, उपजा नहीं जिसमें भासता है वही रूप है अधिष्ठान से भिन्न कुछ नहीं। सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है; स्मृति भी भ्रम में आभास फुरा है और अनुभव भी आभास है सो ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं और आभास भी कुछ फुरा नहीं आभासकी नाईं जगत् भासता है—आत्मसत्ता अद्वैत है जिसमें आभास, स्मृति, अनुभव, जाग्रत् और स्वप्न कल्पना कुछ नहीं तो क्या है? ब्रह्मही है फुरना जो कुछ कहते हैं सो कुछ वस्तु नहीं। जैसे थम्भे में शिल्पी पुतलियां कल्पता है, तैसेही स्पन्द चैतन्य आत्मा में जगत् कल्पती है। शिल्पी तो आप भिन्न होकर कल्पता है और यह चित्तसत्ता ऐसी है कि, अपनेही स्वरूप में कल्पती है और जगत्‌रूपी पुतलियां देखती है। आत्मा आकाशरूपी थम्भ है उसमें जगत् भी आकाशरूपी पुतलियां हैं। जैसे आकाश अपने आकाशभावमें स्थित है, तैसेही ब्रह्म अपने ब्रह्मत्वभाव में स्थित है। जगत् भिन्न भी दृष्ट आता है परन्तु अद्वैत चिन्मात्रस्वरूप है भेदभाव को नहीं प्राप्त हुआ और विकार-वान् भी दृष्ट आता है परन्तु विकार नहीं हुआ। जैसे स्वप्ने में आपही सब स्पष्ट भासते हैं, तैसेही यह जगत् अपने आप में भासता है परन्तु कुछ नहीं है। हे रामजी! यही आश्चर्य है कि, मैंने अपने अनुभव को प्रकट करके उपदेश किया है; जीव आपभी जानते हैं स्वप्नेमें नित्य देखते हैं और सुनते भी हैं परन्तु निश्चय करके जान नहीं सक्के और स्वप्ने के पदार्थों को मूर्खता से त्याग नहीं सक्के।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शालभजनकोपदेशो नाम द्विशताधिकद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ २५२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियों के इष्ट विषयों को पाकर

सुख नहीं मानता और अनिष्ट विषयों को पाकर दुःख नहीं मानता; इनके भ्रम से मुक्त है और बड़े भोग प्राप्त हों तौभी अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता उसको जीवन्मुक्त जानो। हे रामजी! सर्वशब्द अर्थ जिसको द्वैतरूप नहीं भासते उसे तुम जीवन्मुक्त जानो। जिस अविद्यारूपी जाग्रत् में अज्ञानी जागते हैं उसमें ज्ञानवान् सोरहे हैं और परमार्थरूपी जाग्रत् में अज्ञानी सोरहे हैं, वे नहीं जानते कि, यह अर्थ है पर उसमें जीवन्मुक्त स्थित है इस कारण ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट विषयों को पाकर सुखी और दुःखी नहीं होते उनका चित्त सदा आत्मपद में स्थित है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो पुरुष सुख पाकर सुखी नहीं होता और दुःख से दुःखी नहीं होता सोतो जड़ हुआ, चैतन्य तो न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सुख दुःख तबतक होता है जबतक चित्त को जगत् का सम्बन्ध होता है। जब चित्त जगत् के सम्बन्ध से रहित चिन्मात्र होता है तब उपाधिक सुख दुःख नहीं रहते और जो अपने स्वभाव में स्थित पुरुष हैं वे परमविश्राम को प्राप्त होते हैं और सब कुछ करते हैं परन्तु स्वरूप से उनको कर्तव्य का उत्थान कुछ नहीं होता और सदा अद्वैत में निश्चय रहता है। नेत्रों से वे देखते हैं परन्तु द्वैत की भावना उनको कुछ नहीं फुरती। जैसे अत्यन्त उन्मत्त को सर्वपदार्थ दृष्ट भी आते हैं परन्तु पदार्थों का ज्ञान नहीं होता, तैसेही जिसकी बुद्धि अद्वैत में घनीभूत हुई है उसको द्वैतरूप पदार्थ नहीं भासते। जिनको द्वैत नहीं भासता उनको सुख दुःख कैसे भासे? उन पुरुषों ने वहां विश्राम किया है जहां न जाग्रत् है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति है। वे सर्वद्वेष से रहित अद्वैतरूपी शय्या में विश्राम कर रहे हैं और संसारमार्ग से उल्लंघ गये हैं। आत्मा के प्रमाद से जीव को कष्ट होता है। जो अपनी विभूति विद्या को त्याग कर प्रसन्न होता है और फिर संसार के क्रूरमार्ग में कष्ट पाता है वह मनुष्य नहीं मानों मृग है। वह संसाररूपी जङ्गल में कष्ट पाता है और जब तृषा से कायर होता है तब जल की ओर दौड़ता है पर जहां जाता है वहां मरुस्थल की नदी भासती है और जल प्राप्त नहीं होता; तब आगे दौड़ता है और तृषा

अधिक बढ़ती जाती है। इस प्रकार दौड़ता दौड़ता जड़ होजाता है और दुःखी होकर मरजाता है परन्तु जल प्राप्त नहीं होता। यह जल, दौड़ना, जड़ता और मरना चारों भिन्न २ सुनो। हे रामजी! मनरूपी तो मृग है जो संसाररूपी जङ्गल में आनपड़ा है और इन्द्रियों के विषयरूपी जलाभास को सत्य जानकर शान्ति के निमित्त तृष्णारूपी मार्ग में दौड़ता है पर वे विषय आभासमात्र हैं और उनमें शान्तिरूपी जल नहीं है इसलिये वह दौड़ता दौड़ता जब वृद्ध अवस्था में जापड़ताहै तब जड़ होजाता है और बड़े कष्ट को प्राप्त होता है पर शान्तिरूपी जल नहीं पाता इससे तृप्त भी नहीं होता। हे रामजी! मनुष्य मानों मज़दूर है जिसके शिरपर बड़ा भार है और क्रूरमार्ग में चला जाता है जहां उसको चोर ने लूट लिया है इससे जलता है। हे रामजी! मनुष्यरूपी मज़दूर के शीश पर जन्म का बड़ा भार है और संशयरूपी क्रूर मार्ग में खड़ा है। कर्मइन्द्रिय और ज्ञानइन्द्रिय के इष्ट अनिष्ट विषय हैं इससे राग द्वेषरूपी तस्कर ने विचाररूपी धन हरलिया है इससे वह राग, द्वेष और तृष्णारूपी अग्नि से जलता है। बड़ा आश्चर्य है कि, ऐसे क्रूरमार्ग को त्यागकर उन्होंने परमपदमें विश्राम पायाहै और अन्य आनन्द को त्यागकर परमपद आनन्द को प्राप्त हुये हैं। उन मुक्तपुरुषों को संसार का दुःख सुख व्याप नहीं सक्ता क्योंकि, वे परम अद्वैत शुद्धसत्ताको प्राप्त हुयेहैं। वे सर्वको देखते हैं और ग्रहण और त्यागरूपी अग्नि को त्यागकर उन्होंने परमपद में विश्राम पाया है और सदा सोये रहते हैं। प्रकट में सुख से जो सोतेहैं तो वही सोतेहैं और उनके भीतर सदा शान्ति रहतीहै परन्तु जड़ता से रहित हैं और आकाश से भी अधिक सूक्ष्मसत्ता को प्राप्त हुये हैं। जैसे समुद्र में धूलि नहीं होती और सूर्य में तम नहीं होता तैसेही उनमें इन्द्रियों के इष्ट विषयों की तृष्णा नहीं होती। उनसे रहित होकर उन्होंने विश्राम पाया है। यह आश्चर्य है कि, अणु से अणु होकर और महत् से महत् हो कर भी वे केवल विश्रामवान् हुये हैं। हे रामजी! जो आत्मसत्ता की ओर से सोये पड़े हैं उनको दुःख होता है और ज्ञानवान् द्वैत जगत् की ओर जड़ हुये हैं और अपने स्वरूप में स्थित हैं इससे चैतन्य को दुःख कुछ

नहीं। वे जाग्रत् की ओर से सोये हैं और उनको अविद्यक जगत् और दृश्य का सम्बन्ध दूर होगया है जब वे इस ओर से सोये हैं तो उनको फिर दुःख कैसे हो ? वे पुरुष सदा अद्वैतरूप हैं। जो अनन्त जगत् को कर्त्ता है और आपको सदा अकर्ता जानता है ऐसे आश्चर्यपद में उन्होंने विश्राम पाया है। जगत् के समूहसत्ता समान में स्थिति करके उन्होंने विश्राम पाया है यह आश्चर्य है। वे सम्पूर्ण क्रिया को करते हैं परन्तु सदा अक्रियपद में स्थित हैं और सम्पूर्ण पदार्थों को स्वप्नवत् जान कर सुषुप्त हुये हैं। वे आकाश से भी अधिक सूक्ष्म हैं क्योंकि, आत्मसत्ता में विश्राम पाया है। वह आत्मसत्ता आकाश को भी व्याप रही है; उसीको आत्मवत् जान करके वे स्थित हुये हैं। जो परमस्वच्छपद है उसमें सर्वशब्द अर्थ आकाशरूप होजाते हैं और आकाश भी आकाश होजाता है; उस पद में उन्होंने विश्राम किया है सोही आश्चर्य है। नेत्र उसके खुले हुये हैं पर सुषुप्ति में स्थित हैं। क्या सुषुप्ति है कि, दृग और दृश्यभाव उनका दूर हो गया है और जगत् के प्रकाश से रहित और परम प्रकाशरूप हैं। हे रामजी ! बाहर के भोग पदार्थों से वे रहित हैं और आत्मा में स्थित हैं। प्रकट वे सोते हैं पर सुषुप्ति में जागते हैं और जाग्रत् से उनको सुषुप्ति है। उस सुषुप्ति से वे सोये हैं और कर्म करते हैं परन्तु कर्ता कारणभाव से रहित हैं। क्रोध भी करते हैं परन्तु क्रोध के फुरने से रहित हैं और सर्व ओर से प्रकाशवान् निर्भय होकर विश्राम करते हैं। कामना करते भी दृष्ट आते हैं परन्तु तृष्णा से रहित हैं और निस्संकल्प पद में स्थित हुये हैं। यह आश्चर्य है कि, जिस क्रियाकी ओर वे देखते हैं उसी ओर उनको शान्ति भासती है क्योंकि, एक मित्र उनके साथ रहता है उससे कोई दुःख उनके निकट नहीं आता।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनन्नाम द्विशताधिकत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ २५३ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! वह मित्र कौन है ? ज्ञानी का कोई कर्ममित्र है अथवा आत्मा में विश्राम का नाम मित्र है; यह संक्षेपपूर्वक मुझसे कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक अकृत्रिम कर्म है

अपने सुकर्म उनका नाम है और अपना ही प्रयत्न उनका मित्र है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ये तीनों ताप सदा अज्ञानी को जलाते हैं पर ज्ञानी को नहीं भासते। जो बड़ा कष्ट प्राप्त हो जिसे लांघना कठिन है और बहुत कोप हो सोभी उसको स्पर्श नहीं करता। जैसे कमल को जल नहीं स्पर्श करता, तैसेही ज्ञानी को कष्ट नहीं स्पर्श करता क्योंकि; वह मित्र उसके साथ रहता है। जैसे बालक का मित्र बालक होता है सो बड़ेभये भी उसका हितू होता है, तैसेही चिरकाल जो ज्ञानवान् ने अभ्यास किया है सोही अभ्यास उसका मित्र हो रहता है और दुष्ट क्रिया की ओर उसे नहीं बिचरने देता शुभकी ओर बर्ताता है। जैसे पिता पुत्र को अशुभ की ओर से बर्जकर शुभ की ओर लगाता है, तैसेही विचाररूपी मित्र उसको तृष्णा से वर्जन करता है और आत्मा की ओर स्थित करता है। वह राग द्वेषरूपी अग्निसे निकालकर समतारूपी शीतलता को उसे प्राप्त करता है। ऐसा विचाररूपी उसका मित्र है जो सर्व दुःख क्लेशादि से उसे तार लेजाता है—जैसे मल्लाह नदी से तार लेजाता है। हे रामजी! विचाररूपी मित्र बहुत सुन्दर है; शान्तरूप है और सर्व मैल को जलानेवाली अग्नि है। जैसे सुवर्ण के मैल को अग्नि जलाकर निर्मल करती है, तैसेही विचाररूपी अग्नि राग द्वेषरूपी मल को जलाती है। जब विचाररूपी मित्र आता है तब स्वाभाविक चेष्टा निर्मल होजाती है और वेदोक्त बिचरता है। तब सब कोई उसको देखकर प्रसन्न होता है और दया, कोमलता, अमान और अक्रोध आदिक गुण आन प्राप्त होते हैं। जैसे तिलों में तेल, फूल में सुगन्ध और अग्नि में उष्णता रहती है, तैसेही विचार में शुभ आचार रहते हैं। विचाररूपी मित्र शूरमा है जो कोई शत्रु होता है प्रथम वह उसको मारता है और अज्ञानरूपी शत्रु को नाश करता है—जैसे सूर्य तमको नाश करता है—और दीपक के प्रकाशवत् साथ होता है एवं विषय भोगरूपी अन्धे कूप में जो मैल है उसमें गिरने नहीं देता और सर्व ओर से रक्षा करता है। जिस ओर से वह पुरुष जाताहै उस ओर सबको प्रसन्नता उपजतीहै। हे रामजी! उसका

वचन कोमल, मधुर और स्निग्ध होता है और वह उदारात्मा क्षोभ से रहित और लोगों पर उपकार और प्रसन्नता के लिये बोलता है और सौहार्दता; शान्तरूप और परमार्थ का कारण है। हे रामजी! वचन तो उसकी प्रसन्नता के लिये होते हैं और आप भी सदा प्रसन्न रहता है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने भर्तार को सदा प्रसन्न रखती है, तैसेही विचाररूपी मित्र उसको सदा प्रसन्न रखता है और शुभ आचार में चलाता है। दान, तप, यज्ञादिक शुभ क्रिया वह आप भी करता है और लोगों से भी कराता है। जिसके अन्तःकरण में विवेकरूपी मन्त्री आता है वहां वह अपने परिवार को भी साथ ले आता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उसका परिवार कौनहै; उसका स्वरूप क्याहै और क्या आचारहै संक्षेप से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्नान, दान, तपस्या और ध्यान ये चारों उसके बेटे हैं। स्नान तो यह है कि, वह सदा पवित्र रहता है और यथा-योग्य और यथाशक्ति दान करता है। बाहर की वृत्ति को भीतर स्थित करने का नाम तप है और आत्मा की वृत्ति में चित्त को लगाने का नाम ध्यान है। ये चारों उसके बेटेहैं जो आत्मदर्शीहैं परन्तु वृत्ति को सदा स्वाभाविक अन्तर्मुख करके व्यवहार करते हैं। मुदिता उसकी स्त्री है-सदा प्रसन्न रहने का नाम मुदिता है-जो नमस्कार के योग्य है। जैसे द्वितीया के चन्द्रमा की रेखा को देख कर सब कोई प्रसन्न होता है और नमस्कार करता है तैसेही उसको देख कर सब कोई प्रसन्न होता है और नमस्कार करता है। मुदितारूपी स्त्री के साथ करुणा और दयानामा एक सहेली रहती है और समतारूपी द्वारपालनी सन्मुख खड़ी रहती है। जब विवेक राजा अन्तःपुर में आता है तब वह सन्मुख होकर सब स्थान दिखाती है और सदा संगी रहती है। जिस ओर राजा देखता है उस ओर समताही दृष्ट आती है जो आनन्द के उपजावनेवाली है। वह दो पुत्र साथ लेकर पुरी में विचरती है और जिस ओर राजा भेजता है उस ओर धैर्य और धर्म लिये फिरती है। जब राजा सवार होकर चलता है तब वह भी समतारूपी वाहन पर आरूढ़ होकर राजा के साथ जातीहै और जब राजा विषयरूपी

पांचों शत्रुओं से लड़ाई करता है तब धैर्य और संतोष मन्त्री मन्त्र देता है और विचाररूपी बाण से उन को नष्ट करता है। हे रामजी! विचार सदा उसके संग रहता है और सब कार्य को करता है। यह चेष्टा उससे स्वाभाविक होतीहै; आप सदा अमान रहता है और कर्तृत्व-भोक्तृत्व का अभिमान उसको कोई नहीं फुरता जैसे काग़ज़ पर मूर्ति लिखी होतीहै जो अभिमान से रहित है, तैसेही वह भी अभिमान से रहित है और परमार्थ निरूपण से रहित निरर्थक वचन नहीं बोलता जैसे पाषाण नहीं सुनता-और जो क्रिया शास्त्रों और लोगों से निषेध की गई है वह नहीं करता जैसे शव से कुछ क्रिया नहीं होती, तैसेही उसको क्रियाका उत्थान नहीं होता। जहां ज्ञानवान् और जिज्ञासुओं की सभा होती है वहां वह परमार्थ के निरूपण को शेषनाग और बृहस्पति की नाईं होता है और सावधानता इत्यादिक जो शुद्ध क्रिया है सो उसमें स्वाभाविक होती है। जैसे सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि में प्रकाश स्वाभाविक होताहै, तैसेही उसमें शुभ क्रिया स्वाभाविक होती हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तिबाह्यलक्षणव्यवहार-
वर्णनं नाम द्विशताधिकचतुःपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ २५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जगत् वास्तव में ज्ञानस्वरूप है और आत्मसत्ता का चमत्कार है; और कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ता ही फुरने से इस प्रकार हो भासती है। इसका कारण भी कोई नहीं। जब महाप्रलय थी तब शब्द-अर्थ द्वैत कुछ न था उस अद्वैतसत्ता से जगत् फुर आया है। जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है सो बीज भी जगत् का कोई न था तो किस कारण से उत्पन्न हुआ और तो कोई कारण न था इससे अबभी जगत् को महाप्रलयरूप जानो। हे रामजी! न कोई पृथ्वी आदिक तत्त्व है; न जगत् है न आभास है और न फुरना है। जैसे आकाश के फूलों में सुगन्ध नहीं होती तैसेही इनका होना भी नहीं है केवल स्वच्छ ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। रूप, इन्द्रियां और मन भी ब्रह्मस्वरूप है। जैसे स्वप्न में अपना अनुभव है और मन ही नाना प्रकार का जगत् आकार और इन्द्रियां होकर भासता है और तो कुछ

नहीं; तैसेही यह जगत् भी वही रूप है। हे रामजी! सर्व जगत् आत्म-रूप है। जैसे कारण विना आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासिआता है सो कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मा का आभास है और जिसमें यह आभास फुरा है सो अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है। ये सर्वपदार्थ जो तुमको भासते हैं उन्हें ब्रह्मस्वरूप जानो। जैसे मनोराज की सृष्टि होती है सो अपने अनुभव में होती है और उसका स्वरूप अनुभव से भिन्न नहीं होता, तैसेही सृष्टि के आदि जो अनुभव होता है सो अनुभवरूप है और कुछ उपजा नहीं—वही अनुभवसत्ता इस प्रकार भासती है। हे रामजी! देश से देशान्तर को जो संवित् प्राप्त होती है उसके मध्य में जो अनुभव है सोही तुम्हारा स्वरूप है और सब आभासमात्र है। जाग्रत् देश को त्याग-कर जो स्वप्नशरीर के साथ नहीं मिली और जाग्रत् स्वप्नदेश के मध्य में ब्रह्मसत्ता है वही तुम्हारा स्वरूप है। वह प्रकाशरूप और अपने आपमें स्थित है और जाग्रत् जगत् जो भासता है सो भी उसी का स्वभाव है। जैसे रत्नों का स्वभाव चमत्कार है; अग्नि का स्वभाव उष्ण है, जल का स्वभाव द्रव है और पवन का स्वभाव फुरना है, तैसेही ब्रह्म का स्वभाव जगत् है। जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है, तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। हे रामजी! यह आश्चर्य है कि अज्ञानी सत्य को असत्य और असत्य को सत्य जानते हैं; जो अनुभवसत्ता है उसको छिपाते हैं और शशे के सींगवत् जगत् को प्रत्यक्ष जानते हैं। वे मूर्ख हैं, उनको क्या कहिये? सबका प्रकाशक आत्मसत्ता है। जिसको तुम सूर्य देखते हो सो वही परमदेव सूर्य होकर भासता है और चन्द्रमा और अग्नि उसी के प्रकाश से प्रकाशते हैं निदान सबका प्रकाश और तेज सत्ता वही है। जैसे सूर्य की किरणों में सूक्ष्म अणु होते हैं; तैसेही आत्मसत्ता में सूर्यादिक भासते हैं। जिसको साकार और निराकार कहते हो वह सब शशेके सींगवत् हैं। ज्ञानवान् को ऐसेही भासता है कि, जगत् कुछ उपजा नहीं तो मैं क्या कहूं? जहां सर्व शब्दों का अभाव होजाता है और उसके पीछे चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है वहां शून्य का भी अभाव होजाता है।

हे रामजी! जिनको तुम जीता कहते हो सो जीता भी कोई नहीं और जो जीता नहीं तो मुआ कैसे हो? जो कहिये जीता है तो जैसे जीता है तैसेही मृतक है; मृतक और जीते में कुछ भेद नहीं; इसलिये सर्व शब्दों से रहित और सबका अधिष्ठान वही सत्ता है। उसमें नानात्व भासता भी है परन्तु हुआ कुछ नहीं। पर्वत जो स्थूल दृष्ट आते हैं सो अणुमात्र भी नहीं—जैसे स्वप्न में पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं परन्तु कुछ हुये नहीं; केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और उसी में जगत् भासता है। हे रामजी! जो परमार्थसत्ता से जगत् भास आया सो तो और कुछ न हुआ; इससे वही सत्ता जगत्रूप हो भासती है। कोई कहते हैं कि, आत्मा में है और कोई कहते हैं कि, आत्मा में कुछ नहीं है पर आत्मा में दोनों शब्दों का अभाव है और अभाव का भी अभाव है। यह भी तुम्हारे जानने के निमित्त कहताहूं; वह तो स्वस्थ और परम शान्तरूप है और उसमें और तुम्हारे में कुछ भेद नहीं। वह परिपूर्ण अच्युत अनन्त और अद्वैत है और वही जगद्रूप होकर भासता है जैसे कोई पुरुष शयन करता है तो सुषुप्ति में अद्वैतरूप होजाता है; फिर सुषुप्ति से स्वप्न फुर आता है और फिर सुषुप्ति में लीन होजाता है तो उपजा क्या और लीन क्या हुआ? स्वप्न के आदि भी अद्वैतसत्ता थी; अन्त में भी वही रही और मध्य में जो कुछ भासा वह भी वही रूप हुआ, आत्मा से भिन्न तो कुछ न हुआ? इसलिये सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप है—ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! हमको तो सदा अनुभवरूप जगत् भासता है। हम नहीं जानते कि, अज्ञानी को क्या भासता है। जैसे स्वप्न की सृष्टि से जो जागा है उसको अद्वैत अपना आप भासता है, तैसेही तुरीया में भासता है। तुरीया और जाग्रत् में भेद कुछ नहीं, जाग्रत् ही तुरीया का नाम है और जाग्रत् तुरीयारूप है बल्कि, यह भी क्या कहना है सबही अवस्था तुरीयारूप है। तुरीया जाग्रत् सत्ता का नाम है। जो अनुभव साक्षी ज्योति है सो जाग्रत् में भी साक्षीरूप है; स्वप्न में भी साक्षीरूप है और सुषुप्ति में भी साक्षीरूप है। इसलिये सब तुरीयारूप है परन्तु जिसको स्वरूपका अनुभव हुआ है

उस ज्ञानवान् को ऐसे ही भासता है और अज्ञानी को भिन्न भिन्न अवस्था भासती हैं। हे रामजी! एक पदार्थ का वृत्ति ने त्याग किया पर दूसरे पदार्थ में नहीं लगी वह जो मध्य में अनुभव ज्योति है उसको तुम आत्मसत्ता जानो और उसमें जो फिर कुछ भासा उसे भी वही रूप जानो। जैसे जाग्रत् को त्यागकर स्वप्ने के आदि साक्षी अनुभवमात्र होता है और उस सत्ता में स्वप्ने का शरीर और पदार्थ भासते हैं वह भी आत्मरूप हैं; तैसेही जो कुछ जाग्रत् शरीर और पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं। जब तुम ऐसे जानोगे तब तुमको कोई दुःख स्पर्श न करेगा। जैसे स्वप्ने की सृष्टि में अपने स्वरूप की स्मृति आने से दुःख भी सुख होता है और बोलना, चालना, खाना, पीना, देना, लेना आदि शब्द और अर्थ और द्वैतरूप युद्ध कर्म सब अद्वैत अपना आप होजातेहैं और व्यवहार भी सब करताहै परन्तु अपने निश्चय में कुछ नहीं फुरता, तैसेही जो पुरुष अपने स्वरूप में जागे हैं उनको सब जगत् आत्मरूपही भासता है। जैसे अग्नि में उष्णता और बरफ़ में शीतलता स्वाभाविक है, तैसेही ज्ञानवान् को आत्मदृष्टि स्वाभाविक है। और लोगोंको यह दृष्टि यत्नसे प्राप्त होती है पर ज्ञानवान् को स्वाभाविक होती है। जिसको तुम इच्छा कहते हो सो ज्ञानवान् को सब भ्रमरूप है और अनिच्छा भी ब्रह्मरूप भासती है। ज्ञानवान् को आत्मानन्द प्राप्त हुआ है और वह अपना जो स्वभाव है उसमें सदा स्थित है इससे उसको कोई कल्पना नहीं उठती और वह विद्यमान निरावरण दृष्टि लेकर स्थित होता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्वैतैकताऽभाववर्णनं नाम द्विशताधिकपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ २५५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे स्वप्ने में पृथ्वी आदिक पदार्थ भासते हैं सो अविद्यमान हैं—कुछ हैं नहीं; तैसेही पिता माता जो आदिब्रह्माजी हैं उनको भी आकाशरूप जानो। वह भी कुछ हुये नहीं और आत्मसत्ता से भिन्न कुछ उनका होना नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे उठते हैं सो स्वाभाविक हैं और तरङ्ग शब्द कहना भी उनको नहीं बनता

वे तो जलरूप हैं, तैसे ही जिनको तुम ब्रह्माजी कहते हो सो और कोई नहीं आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है। ब्रह्माजी इस प्रकार का विराट् है कि, जैसे पत्र, फूल, फल और टास वृक्ष के अङ्ग हैं, तैसेही सब भूत उस विराट् के अङ्ग हैं। जो विराट् ब्रह्मा ही आकाशरूप है तो उस के अङ्ग जगत् की वार्त्ता क्या कहिये? हे रामजी! विराट् के न प्राण है, न आकार है, न इन्द्रियां हैं; न मन है, न बुद्धि है, और न इच्छा है केवल अद्वैत चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित है। जो विराट् ही नहीं तो जगत् कैसे हो? जो तुम कहो आकाशरूप के अङ्ग कैसे भासते हैं? तो हे रामजी! जैसे स्वप्न में बड़े पहाड़ और पर्वत प्रत्यक्ष दृष्ट आते हैं परन्तु कुछ बने नहीं आकाशरूप हैं; तैसे ही आदि विराट् भी कुछ बना नहीं आकाशरूप है तो उसके अङ्ग में आकाररूप कैसे कहूं? सब आकार संकल्पपुर की नाईं कल्पित हैं। एक आत्मसत्ता ही सर्वदाकाल ज्यों की त्यों स्थित है उसमें स्मृति और अनुभव क्या कहिये? अनुभव और स्मृति भी उसीका आभास है। जैसे समुद्र में तरङ्ग आभास होते हैं, तैसे ही आत्मा में अनुभव और स्मृति भी आभास है। स्मृति भी उसकी होती है जिसका प्रथम अनुभव होता है सो अनुभव भी जगत् में होता है पर जहां जगत् ही उपजा न हो तो अनुभव और स्मृति उसको कैसे हो? इसलिये न अनुभव है और न स्मृति है इस कल्पना को त्याग दो। जहां पृथ्वी होती है तहां धूलि भी होती है पर जहां पृथ्वी से रहित आकाश ही हो वहां धूलि कैसे उड़े? इसी प्रकार जहां पदार्थ होते हैं वहां स्मृति अनुभव भी होता है और जहां पदार्थ ही नहीं तो यह कैसे हो? इससे दोनों का अभावहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! स्मृतिमानों में इष्ट स्मृति का अनुभव तो प्रत्यक्ष होता है? प्रथम पदार्थ का अनुभव होता है पीछे उसकी स्मृति होती है और उस स्मृतिसंस्कार से फिर अनुभव होता है तो ऐसेही भ्रमादिक का क्यों नहीं होता ये तो प्रत्यक्ष भासते हैं? तुम कैसे इनका अभाव कहते हो और अभाव में विशेषता क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्मृति से अनुभव वहां होता है जहां कार्य कारण भाव होता है।

ब्रह्मा से आदि लेकर काष्ठ पर्यन्त सर्व जगत् जो तुमको भासता है सो सब आकाशरूप है कुछ बना नहीं और अविद्यमान ही भ्रम से विद्यमान भासता है। जैसे सूर्य की किरणों में जल आभास है सो अविद्यमान है पर भ्रम से जल भासता है; तैसे ही यह जगत् भ्रम से भासता है। स्मृति उसकी होती है जिस पदार्थ का प्रथम अनुभव होता है। जो कहिये कि, भ्रमादिक स्मृति संस्कार से उपजी है तो ऐसे नहीं बनता क्योंकि; प्रथम तो ज्ञानवान् स्मृति से नहीं होता तो उनका स्मृति कारण कैसे कहिये? और द्वितीय यह है कि, इस जगत् के आदि कोई जगत् न था जिसकी स्मृति मानिये। इस जगत् के आदि केवल अद्वितीय आत्मसत्ता थी उसमें स्मृति क्या और अनुभव क्या? इसलिये ब्रह्मादिक और जगत किसी कारण कार्यभाव से नहीं उपजे अकारण हैं। हे रामजी! प्रथम तो तुम यह देखो कि; ज्ञानी को जगत् नहीं भासता तो स्मृति किसको कहिये? उसको तो केवल ब्रह्मसत्ता ही भासती है। जैसे सूर्य को रात्रि की स्मृति नहीं होती; तैसे ही ज्ञानी को जगत् की स्मृति नहीं होती हमारे निश्चय में तो यह है कि; जगत् न हुआ है और न आगे होगा केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है सो अद्वैत है और उसीका सब आभास है जो आभासको सत्य जानते हो तो स्मृति को भी सत्य जानो और जो आभास को असत्य जानतेहो तो स्मृतिको भी असत्य जानो। जैसे स्वप्ने में सृष्टि का आभास होता है और उसमें अनुभव और स्मृति होती है पर जागे से सृष्टि अनुभव स्मृति का अभाव होजाता है; तैसे ही अद्वैत परमात्मसत्ता के जाग्रत् में अनुभव और स्मृति का अभावहै और उसमें जगत् कुछ बना नहीं। जैसे कोई पुरुष मरुस्थल में भ्रम से नदी देखता है और सत्य जानकर उसकी स्मृति करताहै पर वह नदी तो कुछ नहींहै जो नदी ही असत्य है तो उसकी स्मृति कैसे सत्य हो; तैसे ही अज्ञानी के निश्चय में जगत् भासित हुआ है सो जगत् ही असत्य है तो उसकी स्मृति अनुभव कैसे हो? ज्ञानवान् के निश्चय में ऐसेही भासता है। हे रामजी! स्मृति पदार्थ की होती है सो पदार्थ कोई नहीं सर्व ब्रह्म ही अपने आप में स्थित

है और जैसे जैसे उनमें फुरना होता है तैसाही होकर भासते हैं परन्तु और कुछ वस्तु नहीं। जैसे वायु चलता भी है और ठहरता भी है पर चलने और ठहरने में वायु को कुछ भेद नहीं; तैसे ही ज्ञानवान् को जगत् के फुरने अफुरने में ब्रह्मसत्ता अभेद भासती है और कारण कार्य नहीं भासता। जैसे पत्र, टहनी, फूल और फल सब वृक्ष के अवयव हैं; तैसेही जगत् आत्माके अवयव हैं; आत्मा में प्रकट होते हैं और फिर आत्मा में ही लीन भी होजाते हैं भिन्न कुछ नहीं। जब चित्त स्वभाव फुरता है तब जगत् होकर भासता है कुछ आरम्भ और परिणाम करके नहीं होता—आभास-मात्र है। जैसे घट पट आदिक आत्मा का आभास है, तैसेही स्मृति भी आभास है। स्मृति भी जगत् में उदय हुई है जो जगतही असत्य है तो स्मृति कैसे सत्यहो ? जो यथार्थदर्शी हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासता है। हमको न कुछ मोक्ष उपाय भासता है और न इसका कोई अधिकारी भासता है; हमारे निश्चय में अद्वैत ब्रह्मसत्ताही भासती है। जैसे नट स्वांग धारता है पर सब स्वांगों को आभासमात्र जानता है किसीको सत्य नहीं जानता पर उससे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही हमको ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता। अज्ञानी के निश्चय को हम नहीं जानते। जिस प्रकार उसको जगत् शब्द है सो उसके निश्चय को कोई नहीं जानता। हमारे निश्चय में सब चिन्मात्र है। अज्ञानी को जगत् द्वैतरूप भासता है और विपर्यय भावना होती है और ज्ञानवान् को चिन्मात्र से भिन्न कुछ नहीं भासता। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपने अनुभव में स्थित होती है और सर्व का अधिष्ठान अनुभवसत्ता है परन्तु निद्रादोष से भिन्न २ भासती है; तैसेही अज्ञानी को जगत् भिन्न २ भासता है और जो जागे हुये ज्ञानवान् हैं उनको भिन्न कुछ नहीं भासता और न उनको अविद्या, न मूर्खता और न मोह भासता है उन्हें सब अपना आपही ब्रह्मस्वरूप भासता है। जहां कुछ दूसरी वस्तु नहीं बनी वहां स्मृति और अनुभव किसका कहिये ? यह कलना सबही मिथ्या है। हे रामजी ! सब अर्थों का जो अर्थभूत है सो ब्रह्म है उसी में सब पदार्थ कल्पित हैं। स्मृति और अनुभव मन में होता है सो मन आत्मा

में ऐसे है जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है तो उसमें स्मृति और अनुभव क्या कहिये ? सब कल्पित है । पृथ्वी आदिक तत्त्व आत्मा में कुछ बने नहीं ब्रह्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है—ज्ञानवान् को सदा ऐसेही भासता है । आभास भी आत्मा में आभास है और कारण कार्य भाव कदाचित् नहीं भासता । जैसे सूर्य को अन्धकार कदाचित् नहीं भासता; तैसेही ज्ञानवान् को कारण कार्यभाव दिखाई नहीं देता । जैसे स्वप्ने के आदि अद्वैतसत्ता होती है और उस में अकारण स्वप्ने की सृष्टि फुर आती है; तैसेही अद्वैतसत्ता में अकारण आदि सृष्टि फुरआई है । न पृथ्वी है और न कोई दूसरा पदार्थ है सब चिदाकाशरूप है और कुछ बना नहीं तो आभासमात्र जगत् में स्मृति की कल्पना कैसेहो ? ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्मृत्यभावजगत्परमाकाशवर्णनन्नाम द्विशताधिकषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ २५६ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! जिसमें सर्व अनुभव होता है उसके देह में अहंप्रत्यय किस प्रकार होती है ? वह तो सर्वात्मा है उस सर्वात्मा को एक देह में अहंप्रत्यय क्योंकर होती है और काष्ठ पाषाण पर्वत और चैतन्यता का अनुभव किस प्रकार होगया है वह तो अद्भुत स्वरूप है उसमें जड़ चैतन्य ये दोनों भेद कैसे हुये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे शरीर में हाथ आदिक अपने अङ्ग हैं और उन सर्व अङ्गों में एक शरीर फुरना व्यापा हुआ है पर जो उन अङ्गों में एक अङ्ग को पकड़ कर कहे कि, नाम ले कौन है तब वह अपनी नाम संख्या कहता है; तो तुम देखो कि, उस एक अङ्ग में अपना आप कहा परन्तु सर्व अङ्गों में उसकी आत्मता तो नाश नहीं होजाती है; तैसेही आत्मा अनुभवरूप है तौ भी एक अङ्ग में उसकी आत्मता फुरती है इससे उसकी सर्वात्मता खण्डन तो नहीं हो जाती ? जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी आदिक सर्व अङ्ग में वृक्ष एकही व्यापा हुआ है परन्तु जो एक टहनी अथवा पत्र को पकड़ कर कहता है कि, यह वृक्ष है तो इसके एक अङ्ग में वृक्षभावना कहना वृक्ष का सर्वात्मभाव नष्ट नहीं होता; तैसेही सर्वात्मा एक देह में अहंभाव सिद्ध होता है और जड़ और

चैतन्य भी दोनों भाव एकही के धारे हैं और एकही के दोनों स्वरूप हैं। जैसे एकही शरीर में दोनों सिद्ध होते हैं और हाथ, पांव आदिक जड़ हैं और नेत्र इसके द्रष्टा चेतन हैं सो एकही शरीर दोनों धारे हैं और दोनों एकही शरीर के स्वरूप हैं तैसेही एक आत्मा ने दोनों धारे हैं और एक ही के स्वरूप हैं। जैसे वृक्ष अपने अङ्ग को धारता है और वृक्ष स्वभाव को भी धारता है, तैसेही सर्वात्मा सर्व को धारता है। जैसे स्वप्न की सृष्टि सर्व को अनुभव धारती है और सर्वक्रिया को भी धारती है; तैसेही आत्मसत्ता सर्वजगत और जगत् की सर्वक्रिया को धारती है क्योंकि; सर्वात्मा है और जो सर्वात्मा है सो क्यों न धारे? जैसे एकही समुद्र में अनेक तरङ्ग उठते हैं परन्तु सबही समुद्र के आश्रय हैं और वही रूप हैं; तैसेही सर्वजीव परमात्मा में फुरते हैं; परमात्मा के आश्रय हैं और वही रूप हैं। जैसे तरङ्ग आपको जाने कि, मैं जलही हूं तो तरङ्ग उसकी संज्ञा जाती रहती है जलरूप ही दिखता है; तैसेही जीव जब परमात्मा से आपको अभेद जाने कि, 'मैं आत्माही हूं' तब उसके जीवत्वभाव का अभाव होजाता है, परमात्मा ही दिखता है। हे रामजी! जैसे जल में द्रवता से तरङ्ग भासते हैं परन्तु तरङ्ग जल से भिन्न कुछ वस्तु नहीं, तैसेही शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन से आदि ब्रह्मा फुरा है और उसने यह जगत् मनोराज से कल्पा है सो आकाशरूप निराकार है और कुछ बना नहीं। जो विराट् ही आकाशरूप हुआ तो उसका शरीर कैसे साकार हो—वह भी निराकार है। जैसे अपना अनुभव स्वप्न में पर्वत, नदियां, जड़ और चैतन्य होकर भासता है; तैसेही सर्व जगत् जो भासता है सो आत्मरूप है। हे रामजी! जैसे एक निद्रा के दो स्वरूप हैं—स्वप्न और सुषुप्ति; तैसेही एकही आत्मा ने जड़ और चैतन्य दो स्वरूप धारे हैं। जगत् आत्मामें कुछ बना नहीं यह आभासरूप है और आत्मसत्ता ही अपने वचनद्वारा जगत्रूप हो भासती है। जैसे आकाश में घन शून्यता के कारण नीलता भासती है सो अविचारसिद्ध है—नीलता कुछ बनी नहीं; तैसेही आत्मा में घन चैतन्यता से जगत् भासता है परन्तु जगत् आकार कुछ बना नहीं सर्व-

दाकाल आत्मा अद्वैत निराकार है। अनन्तसृष्टि आत्मा में आभास उपज कर लीन होजाती है और आत्मा ज्यों का त्यों है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर लीन होजाते हैं परन्तु जलरूप हैं; तैसेही परब्रह्म में सृष्टि परब्रह्मरूप है। हे रामजी! यह जगत् विराट् का शरीर है; महाकाश उसका शीश है; दशों दिशा उसकी भुजा हैं; पृथ्वी उसके चरण हैं; पातालरूप तली हैं, अन्तरिक्ष मध्यलोक उदर है; सर्व जीव उसकी रोमावली हैं और इनसे लेकर सर्वपदार्थ विराट् के अङ्ग हैं सो विराट् आकाशरूप है। जैसे विराट्ब्रह्माजी आकाशरूप है, तैसेही उसका जगत् भी आकाशरूप है। इससे सर्व जगत् विराट्रूप है सो ब्रह्मही है और कुछ बना नहीं। चन्द्रमा और सूर्य उसके नेत्र हैं; मैं और तुमसे आदि लेकर सर्व शब्दों का अधिष्ठान ब्रह्मही है सो ब्रह्म मैं हूं। जिसमें दूसरा बना नहीं सदा मैं अपनेही आपमें स्थित हूं। हे रामजी! शून्यवादी, पाँच रात्रिक, शैवी, शाक्ति आदि जो शास्त्र हैं उन सबका अधिष्ठान ब्रह्मरूप है और सबका साररूप वही सर्वात्मरूप है। जैसा किसी को निश्चय होता है तैसाही उसको वह सर्वरूप होकर फल देता है और कुछ बना नहीं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकसप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ २५७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस जगत् के आदि शुद्ध ब्रह्मसत्ता थी और उसमें जो जगत् आभास फुरा है उसको भी तुम वही स्वरूप जानो जैसे स्वप्ने के आदि अनुभव आकाश होता है और उसमें स्वप्ने की सृष्टि फुर आती है सो अनुभवरूप है भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभवरूप है भिन्न नहीं। जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्गरूप हो भासता है, तैसेही चैतन्य ब्रह्म जगत्रूप हो भासता है सो जगत् भी वही रूप है। हे रामजी! वास्तव में कोई दुःख नहीं है; दुःख और सुख अज्ञान से भासते हैं। जैसे एक निद्रा में दो वृत्ति भासती हैं—एक स्वप्नवृत्ति और दूसरी सुषुप्ति वृत्ति; तैसेही अज्ञानी की दो वृत्ति होती हैं—सुख की और दुःख की और ज्ञानवान् की सर्व ब्रह्मरूप है। जैसे कोई पुरुष स्वप्ने से जाग उठता है तो उसको स्वप्ने

की सृष्टि असत्यरूप भासती है, तैसेही ज्ञानवान् को यह सृष्टि असत्य भासती है। जैसे जिसने मरुस्थल की नदी के जल का अत्यन्ताभाव जाना है वह जलपान की इच्छा नहीं करता, तैसेही सम्यक्दर्शी जगत् को असत्य जानता है, इसलिये वह जगत् के पदार्थों की इच्छा भी नहीं करता। जो असम्यक्दर्शी हैं उनको जगत् सत्य भासता है और वह किसी पदार्थ को ग्रहण करता है और किसीका त्याग करता है। हे रामजी! ईश्वर जो परमात्मा है उसमें जगत् इस प्रकार है जैसे समुद्र में तरङ्ग होते हैं। जैसे समुद्र और तरङ्ग में भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। जो तुम कहो कि, अविद्या ही जगत् का कारण है तो अविद्या जगत् का कारण तब कहाती जो वह जगत् से प्रथम सिद्ध होती पर अविद्या तो अविद्यमान है जैसे परमात्मा में जगत् आभासमात्र है, तैसेही अविद्या भी आभासमात्र है। जो आपही आभासमात्र हो तो उसे जगत् का कारण कैसे कहिये? जगत् आभास और अविद्या का आभास इकट्ठा हो फुरा है। जैसे स्वप्ने में सृष्टि भास आती है और उसमें घट, पटादि पदार्थ भासते हैं सो किसी कुलाल ने मृत्तिका लेकर तो नहीं बनाये। जैसे घट भासा है, तैसेही कुलाल और मृत्तिका भी भासि आये हैं। जैसे इन सब का भासना इकट्ठाही होता है, तैसेही जगत् और अविद्या इकट्ठे ही फुरे हैं। अविद्या पूर्व में तो सिद्ध नहीं होती तो उसको जगत् का कारण कैसे मानिये? हे रामजी! परमात्मा से जगत् और अविद्या इकट्ठे ही आभासमात्र फुरे हैं पर वह आभास कुछ वस्तु नहीं; ब्रह्मसत्ताही अपने आप में स्थित है, न कहीं अविद्या है; न जगत् है आत्मसत्ता सदा ज्यों की त्यों स्थित है। हे रामजी! निर्विकल्प में जगत् का अत्यन्ताभाव होता है सो निर्विकल्प कैसे हो? जो निर्विकल्प होता है तब जड़ता आती है और जब विकल्प उठता है तब संसार उदय होता। जब ध्यान लगाता है तब ध्याता, ध्यान और ध्येय त्रिपुटी होजाती है। इस प्रकार तो निर्विकल्पता सिद्ध नहीं होती क्योंकि; निर्विकल्प में भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। निर्विकल्प उसका नाम है जहां चित्तकी वृत्ति न फुरे पर तब भी स्वरूप की

प्राप्ति नहीं होती क्योंकि; वहां भी अभाववृत्ति सुषुप्तिवत् रहती है और जड़ात्मक सुषुप्तिरूप है। सविकल्प सुषुप्ति में भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती इससे सम्यक् बोध का नाम निर्विकल्प है। जिसको सम्यक्बोध निर्विकल्पता से जगत् का अत्यन्ताभाव हुआ है वह जीवन्मुक्त है, वही निर्विकल्प कहाता है और वही परम जड़ता है जहां जगत् का परम असम्भव है। हे रामजी! वह जो निर्विकल्प और सविकल्प है उससे स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि; ये दोनों मन की वृत्ति हैं। जैसे एक निद्रा की वृत्ति स्वप्न और सुषुप्तिरूप है, तैसेही यह निर्विकल्प और सविकल्प मन की वृत्ति है। निर्विकल्प सुषुप्तिरूप और पत्थरवत् है और सविकल्प स्वप्नवत् चञ्चलरूप है। निर्विकल्प में भी अभाववृत्ति रहती है इससे उसमें भी मुक्ति नहीं होती। मुक्ति तब होती है जब दृश्य का अत्यन्ताभाव होताहै। हे रामजी! जहां आत्म अनुभव आकाश से इतर उत्थान नहीं होता—उसका नाम अत्यन्त सुषुप्ति निर्विकल्पता है। हे रामजी! ऐसे होकर तुम चेष्टा भी करोगे तो भी कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अभिमान तुमको न होगा। आत्मा को अद्वैत और जगत् का अत्यन्ताभाव जानने ही का नाम बोध है। जब इस बोध की दृढ़ता और इसके ध्यान की दृढ़ता हो तब उसका नाम परमपद है; उसीका नाम निर्वाण है और उसीको मोक्ष भी कहते हैं। जो पद किञ्चन और अकिञ्चन है और सर्वदाकाल अपने आपमें स्थित है उसमें न नानात्व कहना है; न अनाना शब्द है; न सविकल्प है; न निर्विकल्प है; न सत्य है; न असत्य है; न एक है और न दो हैं उसमें सर्व शब्दों का अन्त है और किसी शब्द से वाणी नहीं प्रवर्त्तती। उसी सत्ता को प्राप्त होने का उपाय मैं कहता हूं। हे रामजी! यह मोक्ष का उपाय ग्रन्थ जो मैंने तुमसे कहा है इसको विचारना। जो पुरुष अर्धप्रबुद्ध है और पदपदार्थ जाननेवाला है उसको यदि मोक्ष की इच्छा है तो वह इस ग्रन्थ को विचारता है, शुभ आचार करके बुद्धि को निर्मल करता है और अशुभ क्रिया का त्याग करता है तो उसको शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी। हे रामजी! जो मोक्ष उपाय शास्त्र के विचार से प्राप्त होना है सो तीर्थ, स्नान, तप और

दान से नहीं प्राप्त होता । तप, दानादिक करके स्वर्ग प्राप्त होता है मोक्ष नहीं मिलता । मोक्षपद अध्यात्म शास्त्र के अर्थ अभ्यास से ही प्राप्त होता है । यह जगत् आभासमात्र है; वही ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है। जैसे जल ही तरङ्गरूप होकर भासता और वायु ही स्पन्दरूप है, तैसेही ब्रह्म जगत्‌रूप होकर भासता है। जैसे स्पन्द और निस्स्पन्द में वायु ज्यों की त्यों है परन्तु स्पन्द होती है तब भासती है और निस्स्पन्द होती है तो नहीं भासती, तैसे ही ब्रह्म में संवेदन फुरती है तब जगत् हो भासती है और जब निर्वेदन होती है और अन्तर्मुख अधिष्ठान की ओर आती है तब जगत् समेटाजाता है परन्तु संवेदन के फुरने में भी वही है और न फुरने में भी वही है। इसलिये, हे रामजी ! सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं बना और जो इतर भासता है सो भ्रममात्र ही जानना। जब आत्मपद का आभास हो तब भ्रान्ति शान्त होजाती है। जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है, तैसे ही आत्मपद के अभ्यास से भ्रान्ति निवृत्त होजाती । यद्यपि नाना प्रकार की सृष्टि भासती है परन्तु कुछ हुई नहीं । जैसे स्वप्ने में सृष्टि दृष्टि आती है परन्तु कुछ बनी नहीं; वही अनुभवरूप आत्मसत्ता सृष्टि आकार होकर भासती है, तैसेही यह जगत् सब अनुभवरूप है। जैसे रत्न और रत्नके चमत्कार में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। हे रामजी! तुम स्वभाव निश्चय होकर देखो कि, भ्रम मिट जावे । सृष्टि, स्थिति और प्रलय सब उसी की संज्ञा हैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतापरमनिर्वाणवर्णन न्नाम द्विशताधिकाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ २५८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ये सब आकार जो तुमको भासते हैं सो संवेदनरूप हैं और कुछ बने नहीं । सृष्टि के आदि भी अद्वैतसत्ता थी; अन्त में भी वही रहती है और मध्य में जो आकार भासते हैं उसे भी वही रूप जानो । जैसे स्वप्ने की सृष्टि के आदि शुद्ध संवित् होती है और उसमें आकार भासि आता है सो भी अनुभवरूप है और कुछ नहीं बना;

आत्मसत्ता ही पिण्डाकार हो भासती है और जितने कुछ पदार्थ भासते हैं सो आकाशरूप आभासमात्र हैं। आत्मसत्ता सदा शुद्ध है परन्तु अज्ञान से अशुद्ध की नाईं भासती है; विकार से रहित है परन्तु विकार सहित भासती है; अनाना है परन्तु नाना की नाईं भासती है और आकार से रहित है परन्तु आकारसहित भासती है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपना अनुभवरूप होती है परन्तु स्वरूप के प्रमाद से नाना प्रकार भिन्न २ हो भासती है और जागे से एक आत्मरूप हो जाती है; तैसेही यह सृष्टि भी अज्ञान से नाना प्रकार भासती है और ज्ञान से एक रूप भासती है। विद्यमान भासती है पर उसे असत्य ही जानो। आत्मसत्ता सदा शुद्ध रूप, शान्त और अनन्त है और उसमें देश, काल और पदार्थ आभासमात्र हैं। जो तुम कहो कि, आभासमात्र है तो अर्थाकार क्यों होते हैं? तो उसका उत्तर यह है कि; जैसे स्वप्न में अङ्गना कण्ठ से मिलती है और उसमें प्रत्यक्ष राग और विषयरस होता है सो आभासमात्र है; तैसेही जाग्रत् में अर्थाकार, क्षुधा को अन्न, तृषा को जल और और भी सब ऐसे ही होते हैं और सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं पर जो इनका कारण विचारिये तो कारण कोई नहीं मिलता। जिसका कोई कारण न मिले उसे जानिये कि, आभासमात्र है। हे रामजी! यह जगत् बुद्धिपूर्वक नहीं बना; आदि जो आभास फुरा है वह बुद्धिपूर्वक है और उसमें जगत् का संकल्प दृढ़ हुआ है तब कारण करके कार्य भासने लगा परन्तु जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ है उनको कारण से कार्य भासने लगे और जो आत्मस्वभाव में स्थित हुये हैं उनको सर्वजगत् आत्मस्वरूप है। हे रामजी! कारण से कार्य तब हो जब पदार्थ भी कुछ वस्तु हो। जैसे पिता की संज्ञा तब होती है जब पुत्र होता है और जो पुत्र ही न हो तो पिता कैसे कहिये? तैसेही कारण तब कहिये जब कार्य हो; जो कार्य जगत् ही कुछ नहीं तो कारण कैसे कहिये? हे रामजी! कारण और कार्य अज्ञानी के निश्चय में होते हैं जैसे चरखे पर बालक भ्रमता है तो उसको सब पृथ्वी भ्रमती दृष्टि आती है; तैसेही अज्ञानी को मोह दृष्टि से कारण कार्यभाव दृष्टि आता है

और ज्ञानी को कारण कार्य भाव नहीं भासता। स्मृति भी जगत् का कारण तब कहिये जो स्मृति जगत् से पूर्व हो पर स्मृति भाव अनुभव भी इस जगत् में ही फुरी है। यह भी आभासमात्र है परन्तु जिसको भासी है उसको तैसेही है हे रामजी! स्मृति, संस्कार और अनुभव ये तीनों आभासमात्र हैं। जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है तैसेही आत्मा में तीनों भासते हैं। इसलिये इस कलना को त्यागकर जगत् आभास-मात्र जानो। जैसे स्वप्ने में घट भासते हैं पर उनका कारण मृत्तिका कहिये तो नहीं बनता क्योंकि; घट और मृत्तिकाका आभास इकट्ठा फुरा है इस-लिये वे आभासमात्र हुये उसमें कारण किसको कहिये और कार्य किस को कहिये; तैसेही स्मृति, संस्कार, अनुभव और जगत् सब इकट्ठे फुरे हैं इनमें कारण किसको कहिये और कार्य किसको कहिये? इसलिये सब जगत् आभासमात्र है। हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुमको भासता है सो आत्मसत्ता का आभास है; आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है। जैसे नेत्र का खोलना और मूँदना होता है, तैसेही परमात्मा में जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होती है। जब चित्तसंवेदन फुरती है तब जगत्रूप हो भासती है और जब फुरने से रहित होती है तब जगत् आभास मिट जाता है। जगत् की उत्पत्ति और प्रलय में आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है। जैसे खुलना और मूँदना नेत्रों का स्वभाव है, तैसेही फुरना और न फुरना संवेदन के स्वभाव हैं। जैसे चलना और ठहर जाना उभय वायु के स्वभाव हैं; जब चलती है तब भासती है और जब नहीं चलती तब नहीं भासती। चलने में वायु की तीन संज्ञा होती हैं—एक मन्द मन्द चलती है अथवा बहुत चलती है; दूसरे शीतल अथवा उष्ण स्पर्श होता है और तीसरे सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध युक्त होती है। ये तीनों संज्ञा फुरने में होती हैं पर जब फुरने से रहित होती है तब तीनों संज्ञा मिट जाती हैं। जैसे एकही अनुभव में स्वप्ने और सुषुप्ति की कल्पना होती है; स्वप्ने में जगत्ही भासता है और सुषुप्ति में नहीं भासता परन्तु दोनों में अनुभव एकही है, तैसेही संवित् के फुरने से जगत् भासता है और ठहरने में अच्युतरूप होजाता है पर

आत्मसत्ता ज्यों की त्यों एकरूप है। इसलिये जो कुछ जगत् भासता है सो आत्मा से भिन्न नहीं वही रूप है और जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तीनों आत्मा के आभास हैं—उनमें आस्था न करना। हे रामजी! यह परमसिद्धान्त तुमको मैंने उपदेश किया है और जिन युक्तियों से कहा है वैसी कोई नहीं कहेगा। अज्ञानी को संसाररूपी बड़ी भ्रान्ति उदय हुई है परन्तु जो मेरे शास्त्र को बारम्बार विचारेगा उसकी भ्रान्ति निवृत्त होजावेगी। दिन के दो विभाग करे; आधे दिन पर्यन्त मेरा शास्त्र विचारे और आधादिन अपने आचार में व्यतीत करे पर जो आधे दिन इस शास्त्र का विचार न कर सके तो एक प्रहरही विचारे। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार निवृत्त होता है, तैसेही उसकी भ्रान्ति निवृत्त हो जावेगी। जो मेरे वचनों को वृथा जानकर निन्दा करेगा उसको आत्मपद की प्राप्ति न होगी क्योंकि, उसने शास्त्र के नेत्र को नहीं जाना। जीव को यह कर्तव्य है कि, प्रथम और शास्त्र को देखकर विचार ले फिर पीछे से इसको विचारे कि, उसको इस शास्त्र की महिमा भासे। हे रामजी! यह मोक्षोपाय शास्त्र आत्मबोध का परमकारण है यदि जीव पद पदार्थों का जाननेवाला हो और इस शास्त्र को बारम्बार विचारे तो उसकी भ्रान्ति निवृत्त होजावेगी। जो सम्पूर्ण ग्रन्थ के आशय को न जान सके तो थोड़ा थोड़ा बांचे और विचारे तो उसको सब समझ पड़ेगा। हे रामजी! यदि मनुष्य कुछ भी पदार्थ जाने तो इसके विचारने और पढ़ने से बुद्धिमान् होता है और यह प्रीतिमान् कर लेता है। इसके विचारनेवाले की बुद्धि और शास्त्र की ओर नहीं जाती इससे यह विचारने योग्य है। जो पुरुष आत्मविचार से रहित है उसका जीना वृथा है और जिनको यह विचार है उनको सब पदार्थ आत्मरूप होजाते हैं। जो एक श्वास भी आत्मविचार से रहित होता है सो वृथा जाता है। एक श्वास के समान सम्पूर्ण पृथ्वी का धन नहीं है। जो सम्पूर्ण पृथ्वी के रत्न न जावें और एक श्वास जाय तो फिर मांगे नहीं मिलता। ऐसे श्वास को जो वृथा गँवाते हैं उनको तुम पशु जानो। हे रामजी! आयुर्बल बिजली के

चमत्कारवत् है। जैसे बिजली का चमत्कार होकर मिटजाता है, तैसेही शरीर आयुर्बल होकर नष्ट होजाता है। ऐसे शरीर को धारकर जो सुख की तृष्णा करते हैं वे महामूर्ख हैं। हे रामजी! यह सम्पूर्ण जगत् आभासमात्र है और सत्य भासता है तौ भी इसको असत्य जानो। जैसे स्वप्न की सृष्टि में कोई मृतक होता है और उसके बान्धव रुदन करते हैं और इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है परन्तु हुआ कुछ नहीं सब भ्रान्तिमात्र है तैसेही यह जगत् भ्रममात्र जानो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थगीतावर्णनन्नाम द्विशताधिकैकोनषष्टितमस्सर्गः॥ २५६॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जगत् तो अनेक और असंख्यरूप हुये हैं और आगे होंगे पर उन जगतों की कथाओं से आपने मुझे उपदेश करके क्यों न जगाया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये जो जगज्जाल के समूह हैं उनमें जो पदार्थ हैं सो सब शब्द अर्थ से रहित हैं और जो शब्द अर्थ से रहित हुये तो कुछ न हुये; इसलिये व्यर्थ कहने का क्या प्रयोजन है? हे रामजी! जब तुम विदित वेद और निर्मल त्रिकालदर्शी होगे तब इन जगतों को जानोगे। मैंने आगे भी तुमसे बहुत बार कहा है और बारम्बार वही वर्णन करने में पुनरुक्ति दूषण होता है परन्तु समझाने के निमित्त कहा है। जैसे एक सृष्टि को जाना तैसेही सम्पूर्ण सृष्टियों को जानो। जैसे अन्न के समूह से एक मुट्ठी भरके देखने से जान लिया जाता है कि, सब ऐसेही हैं; तैसेही एकही सृष्टि को यथार्थ जाना तो सब सृष्टियों को भी जान लिया। हे रामजी! यह सर्व जगत् किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुआ। जिसमें कारण बिन पदार्थ भासे उसे जानिये कि, वही रूप है। सृष्टि के आदि भी वही सत्ता थी; अन्त भी वही होगी और मध्य में जो कुछ भासता है उसे भी वही रूप जानिये। जैसे स्वप्न के आदि भी अपना निर्मल अनुभव होता है; स्वप्न के निवृत्त हुये भी वही रहता है और स्वप्न के मध्य जो पदार्थ भासता है उसे भी वही जानिये और वस्तु कुछ नहीं अनुभवसत्ता ही इस

प्रकार हो भासती है। जब तुम विदितवेद होगे तब सर्वजगत् तुमको अपना आप भासेगा। हे रामजी! एक एक अणु में अनेक सृष्टि हैं सो सब आकाशरूप हैं कुछ हुई नहीं। इसपर एक आख्यान कहता हूं सो सुनो। एक काल मैंने ब्रह्माजी को एकान्त पाकर प्रश्न किया कि; हे भगवन्! यह सृष्टि कितनी है और किसमें है? तब पितामह ने कहा, हे मुनीश्वर! सर्वजगतों के शब्द अर्थ सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं; जो अज्ञानी हैं उनको नानाप्रकार का जगत् भासता है और जो ज्ञानवान् हैं तिनको सब जगत् आत्मरूप भासता है। जिस प्रकार जगत् हुआ है सो भी सुनो। हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश के सूक्ष्मअणु में फुरना हुआ कि, 'अहमस्मि'; तब उस अणु ने आपको जीव जाना। जैसे अपने स्वप्न में आपको जीव जाने और सर्वात्मा हो तैसेही चिद्अणु सर्वात्मा अहंकार को अङ्गीकार करके आपको जीव जानने लगा और उसमें जो निश्चय होगया वह बुद्धि हुई। जैसे वायु में फुरना हो तैसेही तिसमें संकल्प विकल्परूपी फुरना हुआ उसका नाम मन हुआ। तब मनके साथ मिलकर चिद्अणु ने देह को चेता और अपने में देह और इन्द्रियां भासने लगीं और अपने साथ शरीर देखा कि, यह शरीर मेरा है। जैसे स्वप्न में अपने साथ कोई शरीर को देखे और बड़ा स्थूल दृष्टि आवे, तैसेही उसने अपने साथ स्थूल शरीर देखा। जैसे स्वप्न में सूक्ष्म अनुभव से बड़े पर्वत दृष्टि आते हैं, तैसेही सूक्ष्म अणुसे स्थूल विराट् शरीर भासने लगा। फिर देशकाल की कल्पना की और नाना प्रकार के स्थावर जङ्गम प्राणी विराट् भासने लगे। जैसे स्वप्न में देश, काल और पदार्थ भासि आवें सो कुछ नहीं हैं, तैसेही देश काल पदार्थ भासि आये परन्तु हैं कुछ नहीं। जब चित्तसंवित् बहिर्मुख फुरती है तब नाना प्रकार का जगत् भासता है और जब अन्तर्मुख होती है तब अवाच्यरूप होजाती है। जैसे वायु चलने और ठहरने में एकरूप होती है, तैसेही फुरने अफुरने में संवित् एकही अभेद है। हे रामजी! जितना जगत है वह आकाश में आकाशरूप अपने आपमें स्थित है और अणु २ प्रति सर्वदाकाल सृष्टि है परन्तु

आभासमात्र है जो चैतसम्बन्धी होकर जीव सृष्टि का अन्त ले तो सृष्टि अनन्त है इसका अन्त कहीं नहीं आता। यह सृष्टि अविद्यारूप है सो अविद्याही चैत है। जब अविद्या सम्बन्धी होकर जगत् का अन्त देखेगा तब अन्त कहीं न आवेगा और संसरने का नाम संसार है; जब स्वरूप में स्थित होगे तब सब जगत् ब्रह्मरूप होजावेगा और जगत् की कल्पना कुछ न भासेगी। हे रामजी! इस जगत् के आदि भी अद्वैतसत्ता थी; अन्त में भी अद्वैतसत्ता रहेगी और मध्य में जो कुछ भासता है उसको भी वही रूप जानो और कुछ बना नहीं। यह जगत् अकारण है अधिष्ठानसत्ता के अज्ञान से भासता है। इसीका नाम जगत् है और इसी का नाम अविद्या है। अधिष्ठान को जाननेका नाम विद्या है। हे रामजी! न कोई अविद्या है और न जगत् है, ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है। चाहे जगत् कहो और चाहे ब्रह्म कहो दोनों एक ही वस्तु के नाम हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्माण्डोपाख्यानं नाम द्विशताधिकषष्टितमस्सर्गः ॥ २६० ॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! यह मैंने जाना कि, जगत् अकारण है। जैसे संकल्प नगर और स्वप्नपुर होता है, तैसेही यह जगत् है। पर जो अकारण ही है तो अब यहां पदार्थ अकारणरूप काहे को उपजते दृष्टि आते हैं? कारण विना तो नहीं उत्पन्न होते भासते हैं; यह क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सर्वात्म है, उसमें जैसा निश्चय होता है तैसाही होकर भासता है; पर क्या भासता है; अपना अनुभवही ऐसे होकर भासता है। जैसे स्वप्न में अपना अनुभव ही नाना प्रकार के पदार्थ होकर भासता है परन्तु उपजा कुछ नहीं सर्व पदार्थ आकाशरूप हैं; तैसेही यह जगत् कुछ उपजा नहीं कारण से रहित आकाशरूप है। हे रामजी! आदि सृष्टि अकारण हुई है; पीछे से सृष्टि में आभासरूप मन ने जैसा जैसा निश्चय किया है तैसे ही है क्योंकि; सर्व शक्तिरूप है। आदि सृष्टि जो उपजती है सो अकारणरूप है और पीछे से सृष्टिकाल में कारण कार्यरूप हुये हैं। जैसे स्वप्न सृष्टि आदि कारण विना होती है और पीछे

से कारण कार्य भासते हैं पर वास्तव में न कोई आकाश; न शून्य है, न अशून्य है; न सत्य है, न असत्य है; न असत्य सत्य के मध्य है, न नित्य है, न अनित्य है; न परम है, न अपरम है; न शुद्ध है, न अशुद्ध है; द्वैत कुछ नहीं सब भ्रम है। हे रामजी ! ज्ञानवान् को सर्व शब्द और अर्थ ब्रह्मरूप भासते हैं। हमको तो कारण-कार्यभाव की कल्पना कुछ नहीं। जैसे सूर्य में अन्धकार का अभाव है, तैसेही ज्ञानवान् को कारण कार्यका अभावहै। जो सर्वात्माही है तो कारण कार्य किसको कहिये ? रामजी ने कहा कि; हे भगवन् ! मैं ज्ञानी की बात पूछता हूं; उनको कारणकार्य-भाव किस निमित्त नहीं भासता ? जो कारण कार्य नहीं तो मृत्तिका और कुलाल आदि द्वारा घटादिक क्योंकर उत्पन्न होते दृष्टि आते हैं ? इससे तुम कहो कि, ज्ञानवान् को अकारण कैसे भासता है और अज्ञानी को सकारण क्योंकर भासता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! न कोई कारण है, न कार्य है और न कोई अज्ञानी है मैं तुझसे क्या कहूं ? जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनके निश्चय में जगत् की कल्पना कोई नहीं फुरती; उनके निश्चय में तो जगत् है ही नहीं तो ज्ञानी और अज्ञानी क्या हैं ? हे रामजी ! आकाश का वृक्ष नहीं तो उसका वर्णन क्या कीजिये ? जैसे हिमालय पर्वत में अग्नि का कणका नहीं पाया जाता, तैसे ही ज्ञानी के निश्चय में जगत् नहीं। ज्ञानी और अज्ञानी और कारण और कार्य ये शब्द जगत् में होते हैं पर जो जगत् ही नहीं फुरा तो कारण, कार्य, ज्ञानी और अज्ञानी तुमसे क्या कहूं ? जैसे स्वप्ने की सृष्टि सुषुप्ति में लीन होजाती है और वहां शब्द और अर्थ कोई नहीं फुरता, तैसेही ज्ञानवान् के निश्चय में जगत् ही नहीं फुरता। हे रामजी ! हमको तो सर्व ब्रह्म ही भासता है। मुझको कुछ कहना नहीं आता परन्तु तुमने पूछा है इस निमित्त कुछ कहताहूं और अज्ञानी के निश्चय को अङ्गीकार करके कहता हूं। हे रामजी ! यह जगत् अकारण और आभासमात्र है; किसी आरम्भ और परिणाम से नहीं हुआ। जब पदार्थों का कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान ब्रह्मही निकलता है जो

अद्वैत, अच्युत और सर्वइच्छा से रहित है तो उसको कारण कैसे कहिये ? इससे जाना जाता है कि, जगत् आभासमात्र है और कुछ वस्तु नहीं आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है। जैसे स्वप्न की सृष्टि अकारण होती है और उसमें अनेक पदार्थ भासते हैं पर उसका कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान अनुभव ही निकलता है और उसमें आरम्भ और परिणाम कुछ हुआ नहीं। सृष्टि अनुभवरूप हो भासती है जो पुरुष स्वप्न में है उसको स्वरूप के प्रमाद से कारण कार्य जगत् और पुण्य पाप सब यथार्थ भासते हैं; तैसेही जाग्रत् जगत् भासता है। हे रामजी ! सृष्टि आदि अकारण हुई है और पीछे सृष्टिकाल में कारण-कार्यरूप हो भासते हैं। जिसको अपना वास्तव स्वरूप स्मरण है उसको अकारण भासता है और जिस अज्ञानी को अपने वास्तव स्वरूप का प्रमाद है उसको कारण कार्यरूप सृष्टि स्वप्नवत् भासती है। हे रामजी ! वास्तव में एकही अनुभव आत्मसत्ता है परन्तु जैसा जैसा अनुभव में संकल्प दृढ़ होता है उसही की सिद्धि होती है और जिसका तीव्र संवेग होता है वही हो भासता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि, कल्पवृक्ष के पदार्थ संकल्प की तीव्रता से प्रत्यक्ष होते हैं तो उन्हें किसका कार्य कहिये ? यदि जगत् किसी कारण से उत्पन्न होता तो महाप्रलय में भी कुछ शेष रहता—जैसे अग्नि के पीछे राख रह जाती है पर जगत् के पीछे तो कुछ नहीं रहता और जैसे स्वप्न की सृष्टि जागे हुये पर कुछ नहीं रहती, तैसेही महाप्रलय में जगत् का शेष कुछ नहीं रहता; इससे जाना जाता है कि, यह आभासमात्र है। जैसे ध्यान में ध्याता पुरुष किसी आकार को रचता है तो उसका कारण कोई नहीं होता वह तो आकाशरूप है और अनुभवसत्ताही फुरने से इस प्रकार हो भासती है—आकार तो कोई नहीं और जैसे गन्धर्वनगर कारण से रहित भासता है, तैसेही यह जगत् कारण बिना भासि आया है। न कोई पृथ्वी है, न कोई जल है, न तेज, वायु और आकाश है सब आकाशरूप है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से पिण्डाकार भासते हैं। हे रामजी ! जब मनुष्य मर जाता है तब शरीर यहांहीं भस्म होजाता है, फिर परलोक में अपने साथ

शरीर देखता है और उस शरीरसे स्वर्ग नरक में सुखदुःख भोगता है तो उसका कारण कौन है ? उसका कारण कोई नहीं पाया जाता केवल अपनी चैतनता में संकल्प की वासना जो दृढ़ हुई है उसीके अनुसार शरीर भासता है और स्वर्ग नरक में दुःख सुख भासते हैं और तो कुछ वस्तु नहीं। सब पदार्थ संकल्प के रचे हुये हैं सो सब आत्मरूप हैं जैसे आकाश व्योम और शून्य एक ही वस्तु के नाम हैं, तैसे ही कोई जगत् कहो और कोई ब्रह्म कहो इनमें भेद नहीं। फुरने का नाम जगत् कहते हैं और अफुरने का नाम ब्रह्म है। जैसे वायु के चलने और ठहरने में भेद नहीं, तैसेही ब्रह्म को संवेदन के फुरने और न फुरने में भेद कुछ नहीं। जो सम्यक्दर्शी हैं उनको सब जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है इस कारण दोष किसी में नहीं रहता और जो बड़ा कष्ट प्राप्त होता है तो भी वे खेद-वान् नहीं होते। जैसे कोई पुरुष स्वप्ने में युद्ध करता है और उसको अपना जाग्रत् स्वरूप हृदय में आता है तो स्वप्ने को स्वप्न जानता हुआ और युद्ध करता है तो भी दुःख होता है, तैसेही जो पुरुष परमपद में जागा है उसको सब क्रिया होती हैं परन्तु आपको अक्रिय जानता है। हे रामजी ! ज्ञानवान् को सब चेष्टा होती हैं परन्तु उसके निश्चय में क्रिया का अभिमान नहीं होता। जैसे नटुवा सब स्वांग धारता है परन्तु आपको स्वांग से रहित जानता है और स्वांग की क्रिया को असत्य जानता है क्योंकि; उसको अपना स्वरूप स्मरण रहता है; तैसे ही ज्ञानवान् सब क्रिया को असत्य जानता है। हे रामजी ! ये सर्व पदार्थ अजातजात हैं-उपजे कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में पदार्थ भासते हैं परन्तु उपजे नहीं अपना अनुभवही इस प्रकार भासता है; तैसेही ये जगत् के पदार्थ भी अनुभवरूप जानो। हे रामजी ! बहुत शास्त्र और वेदमैं तुमको किस निमित्त सुनाऊं और किस निमित्त पढ़ूं; वेदान्तशास्त्रों का सिद्धान्त यही है कि, वासना से रहित हो। इसी का नाम मोक्ष है और वासना सहित का नाम बन्ध है। वासना किसकी कीजिये यह तो सब सृष्टि अकारणरूप भ्रममात्र है। इसमें क्या आस्था बढ़ाइये; ये तो स्वप्ने के पर्वत हैं।

इति श्रीयो० नि० ब्रह्मगीतावर्णनन्नाम द्विशताधिकैकषष्टितमस्सर्गः २६१॥

श्रीरामजी ने पूछा; हे भगवन्! सब जगत् में तीन प्रकार के पदार्थ हैं—एक अप्रत्यक्ष पदार्थ; दूसरे प्रत्यक्षपदार्थ और तीसरे मध्यभावी। जैसे वायु अप्रत्यक्ष है क्योंकि; रूप से रहित है परन्तु स्पर्श संयोग से भासती है इसलिये मध्यभावी प्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष जो किसी से मिले नहीं सो यह संवित् अप्रत्यक्ष है। हे मुनीश्वर! चन्द्रमा के मण्डल में भी यह संवेदन जाती है और फिर गिरती है और वृत्ति चित्त करके चन्द्रमा को देखती है और फिर आती है इससे जाना कि, निराकार है; जो साकार होती तो चन्द्रमा-रूप होजाती फिर संवेदन आती—जैसे जलमें जल डाला फिर नहीं निकलता इस कारण जानता हूं कि, यह अप्रत्यक्ष अर्थात् निराकार है। हे मुनीश्वर! अज्ञानी का आशय लेकर मैं कहताहूं कि; इस शरीर में जो प्राण आते जाते हैं सो कैसे आते जाते हैं? जो तुम कहो कि, संवित् जो ज्ञानशक्ति है सो इस शरीर और प्राण को लिये फिरती है—जैसे मज़दूर भार को लिये फिरता है—तो ऐसे कहना नहीं बनता क्योंकि; संवित् अप्रत्यक्ष निराकार है। अप्रत्यक्ष साकार से नहीं मिलती तो वह चेष्टा क्योंकर करे? जो कहो कि, निराकार संवित् ही चेष्टा कराती है तो पुरुष की संवित् चाहती है कि; पर्वत नृत्य करे पर वह तो इसका चलाया नहीं चलता और कहते हैं कि, ये पदार्थ उठ आवें परन्तु वे तो नहीं उठते क्योंकि; पदार्थ साकाररूप हैं और वृत्ति निराकार है; इसका उत्तर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस शरीर में एक नाड़ी है जब वह अवकाशरूपी होती है तब उसमें से प्राणवायु निकलता है और जब संकोचरूप होती है तब प्राणवायु भीतर आता है जैसे लुहार की धौंकनी होती है तैसेही इसके भीतर पुरुष बल है उससे चेष्टा होती है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! धौंकनी भी तब हलती है जब उसके साथ बल का स्पर्श होता है और स्पर्श तब होता है जब प्रत्यक्ष वस्तु होती है पर चैतन्यता तो निराकार है उसको स्पर्श क्योंकर कहिये? जो तुम कहो कि; उसकी इच्छा ही से स्पर्श होता है तो हे मुनीश्वर! मैं चाहताहूं कि, मेरे सम्मुख जो वृक्ष है सो गिर पड़े पर वह तो नहीं गिरता क्योंकि, इच्छा निराकार है जो साकार से स्पर्श हो तब उसकी शक्ति से

गिरपड़े। यदि इच्छासेही चेष्टा होती है तो कर्म इन्द्रियां किस निमित्त हैं इच्छाही से जगत् की चेष्टा हो? यह भी संशय है कि, एकके बहुत क्योंकर होजाते हैं और बहुतका एक क्योंकर होजाता है? एक चैतन है पर जब प्राण निकलजाते हैं तब पाषाण और वृक्ष की नाईं जड़ होजाता है; आत्मा तो सर्वव्यापी है जड़ कैसे होजाता है? कोई पाषाण और वृक्षरूप जड़ है और कोई चैतन है यह भेद एक आत्मा में कैसे हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे संशयरूपी वृक्षों को मैं वचनरूपी कुल्हाड़े से काटता हूं। जिनको तुम प्रत्यक्ष साकार कहते हो सो आकार कोई नहीं सब निराकार हैं; वह शुद्ध आत्मा अद्वैतसत्ताही इस प्रकार हो भासती है-ये आकार कुछ बने नहीं। जैसे स्वप्ननगर में आकार भासते हैं सो सब आकाशरूप निराकार हैं; तैसेही ये आकार भी जो तुमको दृष्टि आते हैं सो सब निराकार हैं। स्वप्न में जो पर्वत भासते हैं सो किसके आश्रय होते हैं और देहादिक भासते हैं सो किसके आश्रय हैं; इसलिये वे कुछ बने नहीं अनुभवसत्ता ही आकाररूप हो भासती है; तैसे इसे भी जानो कि; आकार कोई नहीं हे रामजी! जब इन पदार्थों का कारण विचारिये तो कारण कोई नहीं निकलता, इसीसे जानाजाता है कि; आभासमात्र हैं बने कुछ नहीं और आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है। आत्मसत्ता अद्वैत और परमशुद्ध है उसमें जगत् कुछ बना नहीं तो मैं आकार क्या कहूं और निराकार क्या कहूं? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश भी द्वैत कुछ नहीं शुद्ध आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है। जैसे संकल्प के रचे पदार्थ होते हैं सो अनुभव हैं; तैसेही ये सब पदार्थ अनुभवरूप हैं-अनुभव से भिन्न कुछ नहीं। इस पर एक आख्यान कहता हूं उसे मन लगा के सुनो। हे रामजी! आगे भी मैंने तुमसे कहा है और अब भी प्रसंग को पाकर कहता हूं। एक समय एक सृष्टि में एक इन्द्र ब्राह्मण था जो मानो ब्रह्माही था। उसके गृह में दश पुत्र हुये जो मानो दशों दिशा थे। कुछ काल में वह ब्राह्मण मृतक हुआ और उसकी स्त्री पतिव्रता थी इसलिये उसके प्राण भी छूटगये-जैसे दिन के पीछे

संध्या आजाती है। तब उन पुत्रों ने यथाशास्त्र क्रम से उनकी क्रिया की और फिर एक पहाड़ की कन्दरा में जा स्थित हुये और विचारनेलगे कि; किसी प्रकार हम ऊंचे पद को पावें। हे रामजी! आगे मैंने तुमको सुनाया है कि, प्रथम उन्होंने मण्डलेश्वर; चक्रवर्ती राजा और इन्द्रादिक के पद को विचारा और फिर बड़े भाई ने निर्णय करके यही कहा कि; सबसे ऊंचा ब्रह्माजी का पद है जिनकी यह सब सृष्टि रची हुई है इसलिये हम दशों ब्रह्मा होवें। ऐसे विचार करके वे दशों पद्मासन बांध के बैठे और यह निश्चय धारा कि, हम चतुर्मुख ब्रह्मा हैं और सब सृष्टि हमारी रची है। निदान वे ऐसे होगये मानो पुतलियां लिखी हुई हैं और खान पान से रहित मास, युग और वर्ष व्यतीत होगये पर वे ज्यों के त्यों रहे चलायमान न हुये। जैसे जल नीचे ठौर में जाता है ऊंचे को नहीं जाता, तैसेही उन्होंने अपना निश्चय न त्यागा और दृढ़ रहे। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उनके शरीर गिर पड़े और उनको पक्षी खागये पर उनकी जो ब्रह्मा की वासनासंयुक्त संवित् थी उस वासना से दशों ब्रह्मा होगये और उनकी दशही सृष्टि देश, काल, पदार्थ और नेति सहित होगईं। जैसे हमारी सृष्टि है, तैसेही वे सृष्टि हुईं। हे रामजी! वे सृष्टि क्या रूप हुईं आत्माही वस्तु हुई और तो कुछ नहीं; कुछ और होवे तो कहूं। इससे सृष्टि का और रूप कुछ नहीं अपना अनुभवही सृष्टिरूप भासता है और जो कुछ पदार्थ भासते हैं सो सब आत्मरूप हैं हे रामजी! जैसे हम ब्रह्मा के संकल्प में रचे हैं तैसेही उन्होंने भी रच लिये और वे भी इस प्रकार स्थित होगये; इससे सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप है। जो किसी कारण से जगत् बना होता तो जाना जाता कि, कुछ हुआ है पर इसका कारण कोई नहीं पाया जाता इससे संकल्पमात्र और आभासमात्र है। इससे कहता हूं कि, ब्रह्मही है और वस्तु कुछ नहीं। जो कुछ पदार्थ पाषाण, वृक्ष, जड़-चैतन्य भासते हैं सो सब भ्रमस्वरूप हैं उनसे भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! महाभूत जो वृक्ष, पृथ्वी, आकाश, पहाड़ हैं ये सब चिदाकाशरूप हैं-चिदाकाश से भिन्न कुछ नहीं। जैसे इन्दु के पुत्र एकसे अनेक होगये, तैसेही यह सृष्टि भी एक से अनेक

है और प्रलय में अनेक से एक हो जाती है। जैसे एक तुम स्वप्न में अनेक होजाते हो और सुषुप्ति में अनेक से एक होजाते हो तैसेही यह जगत् भी है और अकारणरूप है। यदि इसे सकारण भी मानिये तो आत्मरूपी कुलाल है; संकल्प चक्र है और अनुभव चैतन्यरूपी घट उससे उपजते हैं और आभास भी वही है कुछ दूसरी वस्तु नहीं। यह सब जगत् वही रूप है। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों को अपने अनुभव ही से सृष्टि फुर आई सो अनुभवरूप ही भासने लगा इससे और कुछ न भई, तैसे ही सृष्टि को भी जानो। हे रामजी! घट, वृक्ष, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सब चैतन्यरूप हैं—चैतन्य से भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्न में अपना अनुभव ही घट, पहाड़, नदियां और पदार्थ हो भासता है—अनुभव से भिन्न कुछ नहीं; तैसे ही यह जगत् अनुभव से भिन्न नहीं—ज्ञानी को सदा यही निश्चय रहता है। अब एक अनेक का उत्तर सुनो। हे रामजी! जैसे मनोराज में एकसे अनेक हो जाते हैं और अनेक से एक हो जाता है; एवम् चैतन्य से जड़ हो जाता है पर जड़ कोई पदार्थ नहीं भासता सर्व पदार्थ चैतन्यरूप है। जहां अन्तःकरण प्रकट होता है सो चैतन्य भासता है और जहां अन्तःकरण नहीं मिलता सो जड़ भासता है—चैतन्य का आभास अन्तःकरण में मिलता है पर जब पुर्यष्टका निकल जाती है तब जड़ भासता है। यह अज्ञानी की दृष्टि कही है पर मुझसे पूछो तो जिसको जड़ कहते हैं और जिसको चैतन कहते हैं और पहाड़, वृक्ष, पृथ्वी कहते हैं वे सब ब्रह्मरूप हैं—ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्न में कितने जड़ और कितने चैतन्य पदार्थ भासते हैं और नाना प्रकार के पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं पर सब आत्मरूप हैं; भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् सब आत्मरूप है और इच्छा अनिच्छा सब ब्रह्मरूप हैं। सब नामरूप आत्मा के हैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं। शून्य, अशून्य, सत्य, असत्य सब आत्मा के नाम हैं—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! जिसको मूर्ख जड़ कहते हैं सो जड़ नहीं सब चैतन्यरूप हैं और सृष्टिकाल में जड़ही हैं। वे संवेदन में जड़रूप होकर रचित हुये हैं; वे चैतन्यही रचे हैं जिसको अपने वास्तव स्वरूप का

प्रमाद होता है उसको ये जड़ चैतन्य भिन्न भिन्न भासते हैं पर जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको एक ब्रह्मसत्ता ही भासती है। हे रामजी! यह मैंने तुमको उपदेश किया है सो बारम्बार विचारने योग्य है। जो कोई इसको नित्य विचारता रहेगा उसके दोष घटते जावेंगे और हृदय शुद्ध होगा और जो ब्रह्म-विद्या को त्यागकर जगत् की ओर चित्त लगावेगा उसके दोष बढ़ते जावेंगे। हे रामजी! ज्यों ज्यों जीव को ब्रह्मविचार उदय होता जावेगा त्यों त्यों दुःख नाश होते जावेंगे जैसे ज्यों ज्यों दिन उदय होता है त्यों त्यों तम नष्ट हो जाता है—और विचार के त्यागे दुःख बढ़ते जाते हैं। जो महापापी हैं उनके पाप मेरे शास्त्र का संग न करने देंगे और उनको यह जगत् वज्र-सार की नाईं दृष्टि आता है और संसारभ्रम कदाचित् निवृत्त नहीं होता। यह सब जगत् मैं, तुम आदि आकाशरूप हैं और भाव-अभाव आदिक सब शब्द ब्रह्मसत्ता के नाम हैं जो परमशुद्ध, निरामय और अद्वैत है और सदा अपने ही आपमें स्थित है। जितने पदार्थ उसमें भासते हैं वे ऐसे हैं जैसे शिला में शिल्पी पुतलियां कल्पता है सो सब शिल्पी के चित्त में होती हैं, तैसे ही जगत् के पदार्थों की प्रतिभा जो सब मन में है सो उसी का किञ्चनरूप है कुछ भिन्न वस्तु नहीं। वह सदा अपने आपमें स्थित है और परम मौनरूप है उसमें विकल्प कोई नहीं प्रवेश कर सक्ता।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इन्द्राख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकद्विषष्टितमस्सर्गः॥ २६२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वलोक चिन्मात्र है इसीसे शान्त और अद्वैतरूप है। अज्ञानी को भिन्न भिन्न जगत् भासता है और ज्ञानी को सब निराकार और आकाशरूप है। आकार कुछ बने नहीं, आत्मसत्ता निरा-कार है और वही परमशुद्धसत्ता इस प्रकार भासती है सो शान्तरूप, अनन्त और चिन्मात्र है; इन्द्रियां भी ज्ञानरूप हैं और हाड़, मांस, रुधिर, हाथ, पैर, शिर आदिक सम्पूर्ण शरीर भी ज्ञानमात्र है—ज्ञान से भिन्न कुछ नहीं—चिन्मात्र ही इस प्रकार हो भासता है। जैसे स्वप्ने में शरीरादिक और पहाड़, नदियां और वृक्ष भासते हैं सो अपना ही अनुभवरूप है कुछ और नहीं

बना तैसे और यह जगत् सब अनुभवरूप है और कारण से रहित कार्य भासता है। तुम अपने अनुभव में जागकर देखो कि, सब अनुभवरूप है। आकाश में आकाश भी आकाशरूप है; सत्य में सत्य है; भाव में भाव है और अभाव में अभाव है सर्व आत्मरूप है भिन्न कुछ नहीं। जो तुम कहो कि, वस्तु कारण ही से उत्पन्न होती है सो सत्य होती है परन्तु जगत् का कारण कहीं नहीं मिलता इससे यह मिथ्या है तो कारण भी इसका तब कहिये जब यह कुछ वस्तु हो और कार्य भी तब कहिये जब इसका कारण सत्य हो। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता तो न किसी का समवाय कारण है और न किसी का निमित्त कारण है। वह तो केवल अच्युत है इसीसे समवाय कारण नहीं और अद्वैत है इससे निमित्त कारण भी नहीं। वह तो सर्व इच्छा से रहित है उसको किसका कारण कहिये और जो कारण नहीं तो कार्य किसका हो। इससे सर्व जगत् जो भासता है सो आभासमात्र है–उसी ब्रह्मसत्ता का नाम जगत् है। जैसे निद्रा एक है और उसके दो स्वरूप हैं–एक स्वप्न और दूसरा सुषुप्ति फुरनेरूप का नाम स्वप्न है और न फुरने रूप का नाम सुषुप्ति है; तैसे ही चैतन्य के भी दो स्वरूप हैं फुरनेरूप चैतन्य का नाम जगत् है और अफुररूप का नाम ब्रह्म है। जैसे एकही वायु के चलना और ठहरना दो पर्याय हैं–जब चलती है तब लखने में आती है और ठहरती है तब अलक्ष्य होजाती है और शब्द का विषय नहीं होती; तैसेही ब्रह्मसत्ता अफुरमें शब्द की प्रवृत्ति नहीं होती। जब फुरती है तब द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटीरूप हो भासती है और एकसे अनेकरूप हो भासती है, अनेक से एकरूप है। जैसे एकही जल नदी, नाला, तालाब आदि भिन्न २ संज्ञा पाता है और जब समुद्र में मिलता है तब एकरूप हो भासता है; एवम् जैसे एकही काल के दिन, मास, वर्ष, युग, कल्प, घटी, मुहूर्त आदिक बहुत नाम होते हैं परन्तु काल तो एकही है; एक मृत्तिका की सेना के हाथी, घोड़े आदिक बहुत नाम होते हैं परन्तु मृत्तिका तो एकही है; एक वृक्षके फूल, फल, डास, पत्र भिन्न २ नाम होते हैं परन्तु वृक्ष तो एकही रूप है और एक जल के तरङ्ग, बुद्बुदे,

आवर्त, फेन आदिक नाम होते हैं परन्तु जल तो एकही है; तैसे परमात्मा में जगत् अनेक नाम रूप को प्राप्त होता है परन्तु सदा एकही रसरूप है। जैसे स्वप्न में एकही अद्वैत अनुभवसत्ता होती है और भिन्न २ नामरूप हो भासती है पर जब जागता है तब अद्वैतरूप होता है; तैसेही यह जगत् भी भिन्न २ नामरूप भासता है परन्तु आत्मसत्ता एकही है। हे रामजी! जब तुम उसमें जागोगे तब तुमको सब अपना आप अनुभव हो भासेगा जो केवल आत्मत्वमात्र और अनन्य अनुभवरूप है। आत्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी जल के कणके हैं। जैसे आकाश में नक्षत्र फुरते हैं, तैसेही आत्मा में जगत् फुरते हैं। तारे तो आकाश से भिन्न हैं परन्तु जगत आत्मा से भिन्न नहीं—जैसे जल से बूंद अभिन्न है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकत्रिषष्टितमस्सर्गः॥ २६३॥

श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! अन्धकार में जो पदार्थ होता है सो ज्यों का त्यों क्यों नहीं भासता पर जब सूर्य का प्रकाश होता है तब ज्यों का त्यों भासता है। इस निमित्त कहताहूं कि; संशयरूपी तम के कारण जगत् ज्यों का त्यों नहीं भासता। पर तुम्हारे वचनरूपी सूर्य के प्रकाश से जो पदार्थ सत्य है उसको सम्यक्ज्ञान से जानूंगा। हे भगवन्! पूर्व में एक इतिहास हुआ है उसमें मुझको संशय है सो दूर कीजिये। एक काल में मैं अध्ययनशाला में विपश्चित् पण्डित से अध्ययन करता था और बहुत ब्राह्मण बैठे थे कि, एक ब्राह्मण विदितवेद; बहुत सुन्दर; वेदान्त; सांख्य आदि शास्त्रों के अर्थ से सम्पन्न; बड़ा तपस्वी और ब्रह्मलक्ष्मी से तेजवान्—मानो दुर्वासा ब्राह्मण है—सभा में आकर परस्पर नमस्कार करके आसन पर बैठा और हम सबने उसको प्रणाम किया। उस समय वेदान्त, सांख्य, पातञ्जलादिक शास्त्रों की चर्चा होती थी परन्तु सब तूष्णीं होगये और मैं उससे बोला कि, हे ब्राह्मण! तुम बड़ी दूर से आये हो; तुमने किस परमार्थ के निमित्त इतना कष्ट उठाया और तुम कहां से आते हो सो कहो? ब्राह्मण बोला, हे भगवन्! जिस प्रकार वृत्तान्त हुआ है सो मैं कहता हूं।

हे रामजी ! विदेहनगर का मैं ब्राह्मण हूं—वहां मैंने जन्म लिया था और कुन्दवृक्ष के श्वेतफूलों के समान मेरे दाँत हैं इस कारण मेरे पिता माता ने मेरा नाम कुन्ददन्त रक्खा है । विदेह राजा जनक का जो नगर है वहां से मैं आया हूं । वह नगर आकाश में जो स्वर्ग है मानो उसका प्रतिबिम्ब है और वहां के रहनेवाले शान्तिमान् और निर्मल हैं । वहां मैं विद्या पढ़ने लगा और मेरा मन उद्वेगवान् हुआ कि, यह संसार महाक्रूर बन्धन है इसलिये किसी प्रकार इस बन्धन से छूटूं । हे रामजी ! ऐसा वैराग्य मुझको उत्पन्न हुआ कि, किसी प्रकार शान्तिमान् न हुआ । तब मैं वहां से निकला और जो जो शुभ स्थान थे वहां बिचरने लगा । सन्तों और ऋषियों के स्थान, ठाकुरद्वारे और तीर्थ आदि जो २ पवित्र स्थान थे उनका दर्शन किया । वहां से आते एक पर्वत मिला उस पर मैं चढ़ गया और एक उत्तम स्थान पर चिरपर्यन्त तप किया । फिर वहां से एकान्त के निमित्त चला तो आगे एक आश्चर्य देखा सो कहता हूं । हे रामजी ! मैं वहां से चला जाता था कि, बड़ा श्याम वन दिखलाई दिया जो मानो आकाश की मूर्त्ति था और शून्य और तमरूप था । उस वन में एक वृक्ष मुझको दृष्टि आया जिसके कोमल पत्र और सुन्दर टहनियां थीं और उसमें एक पुरुष लटकता था जिसके पांव में मूंज का रस्सा बँधा था जो वृक्ष से बांधा हुआ था और उसका शीश नीचे, चरण ऊपर और दोनों हाथ छातीपर पड़ेहुये थे । तब मैंने विचार किया कि, यह मृतक होगा इसको देखूं । जब मैं निकट गया तब उसमें श्वास आते जाते देखे । उसका युवावस्था का शरीर था और वह हृदय से सबका ज्ञाता और शीत, उष्ण, अन्धेरी और मेघ को सह रहा था । हे रामजी ! तब मैंने जाना कि, यह तपस्वी है और इसकी शूरवीरता बड़ी है । निदान मैं उसके निकट बैठ गया और उसके चरण जो बांधे हुये थे उनको कुछ ढीला किया । फिर उससे मैंने कहा कि, हे साधो ! ऐसी क्रूर तपस्या तुम किस निमित्त करते हो; अपना वृत्तान्त मुझसे कहो ? उसने नेत्र खोलके कहा, हे साधो ! यह तप मैं अपनी किसी कामना के अर्थ करता हूं पर वह ऐसी कामना है

कि, जो तुम उसे सुनोगे तो हँसी करोगे। हे रामजी! जब इस प्रकार उसने कहा तब मैंने कहा, हे साधो! मैं हँसी न करूंगा, तू अपना वृत्तान्त कह और जो कुछ तेरा कार्य हो तो कह मैं कर दूंगा। जब मैंने इस प्रकार बारम्बार कहा तब उसने कहा कि, मन को उद्वेग से रहित करके सुन मैं कहता हूं। मैं ब्राह्मण हूं और मथुरा में मेरा जन्म हुआ है। वहां जब मेरी बाल अवस्था व्यतीत हुई और यौवन अवस्था का प्रारम्भ हुआ तब मैंने वेद और शास्त्रों को भली प्रकार जाना पर एक वासना मुझे उदय हुई कि; सबसे बड़ा सुख राजा भोगता है इसलिये मैं राजा होकर सुख भोगूं कि; क्या सुख है क्योंकि और सुख मैंने भोगे हैं। फिर विचार किया कि, राज्य का सुख तो तब भोगसक्ता हूं जब राजा होऊं पर राजा क्योंकर होजाऊं; राजा तब होता है जब तप करता है; इससे तप करूं। हे साधो! ऐसे विचारकर मैं तप करने लगा हूं। द्वादशवर्ष मुझे तप करते व्यतीत हुये हैं और आगे भी करूंगा। जबतक सप्तद्वीप का राज्य मुझको नहीं प्राप्त होता तबतक मैं तप करूंगा। मैंने यही निश्चय धारा है कि, या तो मेरा शरीर ही नष्ट होगा अथवा सप्तद्वीप का राज्य ही मुझको प्राप्त होगा। यही मेरा निश्चय है सो मैंने तुझसे कहा, अब जहां जानेकी तुझको इच्छा हो वहां जा। हे रामजी! इस प्रकार कहकर उस तपस्वी ने फिर नेत्र मूँदकर चित्त स्थित करने को समाधान किया और इन्द्रियों से विषयों को त्यागकर मन निश्चल किया। तब मैंने उससे कहा कि, हे मुनीश्वर! मैं भी तेरे पास बैठा हूं और जबतक तुझे वर की प्राप्ति नहीं होती तबतक मैं तेरी टहल करूंगा मुझे तेरे ऊपर दया आई है। हे रामजी! इस प्रकार उससे कहकर मैं उद्वेग से रहित षट्मास पर्यन्त उसके पास बैठा रहा; और उसकी रक्षा करता रहा; जब धूप आवे तब छाया करूं और आंधी और मेघ में अपने शरीर को कष्ट देके उसकी रक्षा करूं। निदान छः महीने बीते तब सूर्य के मण्डल से एक पुरुष निकला जो बड़ा प्रकाशवान्—मानो विष्णु भगवान् का तेज था और वह हमारे निकट आया। उसको देखकर मैंने मन, वाणी और

शरीर तीनों से उसकी पूजा की; तब उस पुरुष ने कहा; हे तपस्विन्! अब इस तप को त्याग और जो कुछ इच्छा है सो मांग। तेरी इच्छा तो यही है कि, मैं सप्तद्वीप का राजा होऊं सो तू सप्तद्वीप पृथ्वी का राजा और जन्म में होगा और सप्त सहस्रवर्ष पर्यंत राज्य करेगा परन्तु और शरीर से होगा। हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह पुरुष सूर्य के मण्डल में अन्तर्धान होगया जैसे समुद्र से तरङ्ग निकल कर लय होजावे, तैसेही वह लीन हुआ तब मैंने उससे कहा, हे ब्राह्मण! अब तू क्यों संकट लेता है? जिस निमित्त तू तप करता था सो वर तो तुझको प्राप्त हुआ—अब क्यों संकट करता है? हे रामजी! जब इस प्रकार मैंने कहा कि, सूर्य के मण्डल से निकलकर एक बड़ा तेजवान् पुरुष तुझको वर देगया है तब उसने नेत्र खोल दिये और मैंने उसके चरणों से रस्सी खोल दी। उसका तेज उस समय बड़ा होगया और उसके शरीर की कान्ति प्रकाशवान् हुई। उस स्थान के निकट एक जल से रहित तालाब था सो उसके पुण्य से जल से पूर्ण होगया और उसमें हम दोनों ने स्नान किया और मन्त्र पाठ करके संध्या की। और फिर हम दोनों वृक्षों के नीचे आये और जो वृक्ष फल से रहित थे वे उसकी पुण्यवासना से फल से पूर्ण होगये निदान उन फलों को हमने भक्षण किया और तीन दिन पर्यन्त वहां रहकर फिर चले तब वह बोला; हे साधो! हम देश को चले हैं। जब तक शरीर है तब तक शरीर के स्वभाव भी हैं। फिर आगे एक वन आया जिसमें बहुत सुन्दर फूल, फल और बूटे लगे हुये थे और उन पर भँवरे विचरते थे; जल के प्रवाह चलते थे और कोयल, तोते, बगले आदि पक्षी संयुक्त वृक्ष हमने देखे। आगे फिर ताल वृक्ष बहुत देखे और कन्दरा के स्थान आये उन्हें हम लांघते गये। हे रामजी! इसी प्रकार हम राजसी, तामसी और सात्त्विकी तीनों गुणों के रचे स्थानों को लांघते २ मथुरानगर के मार्ग आये जो सूधा था पर उसको छोड़कर वह टेढ़े मार्ग को चला तब मैंने कहा; हे साधो! सूधे मार्ग को छोड़कर तू टेढ़े मार्ग से क्यों चलता है? उसने कहा, हे साधो! चला आ इस मार्ग में गौरी भगवती का स्थान है उनका

दर्शन करते चलें और मेरे सात भाई जो गौरी के स्थान पर उसी कामना को लेकर तप करते थे उनकी भी सुधि लें। हे रामजी! जब हम उस मार्ग के सन्मुख चले तब आगे एक महाशून्य वन आया जो मानो शून्य आकाश था और महातमरूप था कि वहां वृक्ष, पशु, पक्षी और मनुष्य कोई दृष्टि न आता था। उस वन में पहुँचकर उसने मुझसे कहा, हे ब्राह्मण! इस स्थान में मैं आगे षट्मास रहा हूं और मेरे सात भाई और थे उन्होंने भी यही कामना धार करके देवी का तप आरम्भ किया था चलो देखें। वह महापवित्र स्थान है जिसके दर्शन किये से सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं। तब मैंने कहा चलिये पवित्र स्थान को अवश्य देखना चाहिये। हे रामजी! ऐसे विचारकर हम चले और जाते २ मरुस्थल की तपी हुई पृथ्वी पर जा निकले तब वह ब्राह्मण देखकर गिर पड़ा और कहने लगा कि, हा कष्ट २ हम कहां आन पड़े! तब तो मुझको भी भ्रम उदय हुआ कि, यह क्या हुआ। निदान वह फिर उठा और दोनों आगे गये तो एक वृक्ष हमको दृष्ट पड़ा कि; उसके नीचे एक तपस्वी ध्यान में स्थित बैठा था। हम उसके निकट गये और कहा; हे मुनीश्वर! जाग जाग। जब हमने बहुत बार कहा तब उसने नेत्र खोलकर हमको देखा और कहा तुम कौन हो? ऐसे कहकर फिर कहा बहुत आश्चर्य है कि, यहां गौरी का स्थान था वह कहां गया और और वृक्ष, बावलियां, कमल और सुन्दर स्थान और बड़े ऋषीश्वर और मुनीश्वरों के स्थान थे वह कहां गये? हे साधो! यह क्या आश्चर्य हुआ सो तुम कहो? तब हमने कहा, हे मुनीश्वर! हम नहीं जानते हम तो अभी आये हैं; इसको तो तुम्हीं जानो। तब उनने कहा बड़ा आश्चर्य है। हे रामजी! ऐसे कहकर वह फिर ध्यान में स्थित हो गया और व्यतीत वृत्तान्त का ध्यान करके देखने लगा। एक मुहूर्त पर्यन्त देखकर उसने फिर नेत्र खोलकर कहा कि, बड़ा आश्चर्य हुआ है। तब हमने कहा, हे भगवन्! जो कुछ वृत्तान्त हुआ सो कृपा करके हमसे कहो। तब तपस्वी ने कहा, हे साधो! एक समय बागेश्वरी भवानी इस वन में आई और उसने रहने का एक स्थान बनाया जिसमें वह शिव की

अर्धशरीर गौरी रही। उस स्थान के निकट बहुत सुन्दर कल्पवृक्ष, तमालवृक्ष, कदम्ब वृक्ष इत्यादिक बहुत वृक्ष लगाये; कमलफूल आदि सर्व ऋतुओं के फूल लगाये और बावलियां और बगीचे अति रमणीय रचे जिन पर कोयल, भँवरे, तोते, मोर, बगले आदि पक्षी विश्राम करने और शब्द करने लगे। उसके निकट ऋषीश्वरों; मुनीश्वरों और तपस्वियों की कुटियां इन्द्र के नन्दनवन सदृश थीं और निकट व गांव की वस्ती बहुत हुई। हे साधो! यहां आठ ब्राह्मण तपके निमित्त आये थे और षट्मास यहांही रहे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतागौर्युद्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुःषष्टितमस्सर्गः॥ २६४॥

कदम्ब बोले, हे साधो! मुझसे पूछो तो अपना वृत्तान्त मैं कहता हूं। मैं मालव देश का राजा था और चिरपर्यन्त खेद से रहित मैंने विषय-भोग भोगे तब मुझको यह विचार उपजा कि, यह संसार स्वप्नमात्र है और इसको सत्य जानकर स्थित होना मूर्खता है। इतनी मेरी आयुर्बल बीती पर मैंने सुकृत कुछ न किया। यह विषयभोग आपातरमणीय और नाशवन्त हैं इनको मैं चिरपर्यन्त भोगता रहा हूं और मुझको शान्ति न प्राप्त हुई—तृष्णा बढ़ती गई—इससे वही उपाय करूं जिससे मुझको शान्ति हो और फिर कदाचित् दुःखी न होऊं। हे साधो! जब यह विचार मुझको उदय हुआ तब मैंने वैराग्य करके राज्य की लक्ष्मी त्याग की और ऋषि और मुनियों के स्थान देखता इस कदम्बवृक्ष के नीचे आया। यहां आठ भाई ब्राह्मण आये थे उनमें से एक यह तो इसी पर्वत पर तप करने लगा था; दूसरा स्वामिकार्त्तिक के पर्वत पर तप करने गया; तीसरा बनारस में तप करने लगा और चौथा हिमालय पर तप करने गया। चार भाई तो इस प्रकार चारों स्थानों को गये और चार भाई यहां तप करने लगे। उन सबकी यही कामना थी कि, हम पृथ्वी के सातों द्वीपों के राजा हों। हे साधो! इसको तो सूर्य ने वर दिया है और बाक़ी जो सात थे उन्होंने बागेश्वरी भवानी का इष्ट करके तप किया जब वह प्रसन्न हुई और बोली कि, वर मांगो तब उन्होंने कहा कि, हम सप्तद्वीप पृथ्वी के राजा हों।

निदान उन सातों ने एकही वर मांगा और उनको वर देकर परमेश्वरी अन्तर्धान होगई। उन्होंने यह भी वर मांगा था कि, यहां के वासियों का स्थान भी हमारे पास हो। हे साधो! इस वर को पाकर वे वहां से चले और अपने गृह गये और बागेश्वरी वहां बारह वर्ष पर्यन्त रहकर फिर उनकी मर्यादा थापने के निमित्त यहां से अन्तर्धान होगई और यहां के वासी भी सब जाते रहे। बागेश्वरी के जाने से यह स्थान शून्य होगया। एक यह कदम्ब का वृक्ष रहगया है और एक मैं ध्यान में स्थितरहा हूं। यह कदम्ब का वृक्ष बागेश्वरी ने अपने हाथ से लगाया इस कारण यह नष्ट नहीं हुआ और जर्जरीभाव भी नहीं हुआ। हे साधो! और सब जीव यहां आकर अदृष्ट होगये इस कारण सब शुभ आचार रहे। उन आठों भाइयों में सात आगे गये हैं और एक यह बैठा है इसको भी घर जाना है; वहां सब इकट्ठे होंगे। जैसे अष्टवसु ब्रह्मपुरी में एकत्र हों। हे साधो! जब वे गृह से तप करने के निमित्त निकले तब उनकी स्त्रियों ने विचार किया कि; हमारे भर्ता तो तप करने गये हैं हमभी जाकर तप करें इसलिये उन आठों ने तप आरम्भ किया और सौ सौ चान्द्रायणव्रत किये तब उनका शरीर जैसे वसन्तऋतु की मञ्जरी जेठ आषाढ़ में कृश होजाती है तैसेही होगया। एक तो भर्ता का वियोग; दूसरे तप से वे कृश होगईं तब पार्वती बागेश्वरी प्रसन्न हुई और बोलीं कि, कुछ वर मांगो। जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होकर बोलता है तैसेही वे प्रसन्न होके बोलीं; हे देवताओं की ईश्वरी! हम यह वर मांगती हैं कि, हमारे भर्ता अमर हों और जैसे तेरा और शिव का संयोग है तैसेही हमारा उनका हो। तब भवानी ने कहा, हे सुभद्रे! इस शरीर से तो कोई अमर नहीं रहता। आदि जो सृष्टि हुई है उसमें नेति हुई है कि, शरीर से कोई अमर न रहेगा और जितना कुछ जगत् देखती हो वह सब नाशरूप है; कोई पदार्थ स्थिर नहीं रहता इसलिये और कुछ वर मांगो। तब ब्राह्मणियों ने कहा, हे देवि! भला जो हमारे भर्ता मरें तो उनके जीव हमारे गृह में रहें और उनकी संवित् बाहर न जावे। तब बागेश्वरी ने कहा, ऐसेही होगा कि, उनके जीव तुम्हारे ही

घर में रहेंगे और उनको जो लोकान्तर भासेगा उसके साथ ही तुम भी उनकी स्त्री होकर स्थित होगी। ऐसे कहकर बागेश्वरी अन्तर्धान होगई। कुन्ददन्त बोले, हे रामजी! इस प्रकार सुनकर मैं आश्चर्यवान् हुआ तब मैंने कहा, हे मुनीश्वर! यह तो तुमने बड़ी आश्चर्य कथा सुनाई कि, आठों भाइयों ने एकही वर पाया। उनको एक पृथ्वी में सात २ द्वीपों का राज्य क्योंकर प्राप्त होगा? हे रामजी! जब इस प्रकार उससे मैंने पूछा; तब कदम्बतप ने कहा, हे साधो! यह क्या आश्चर्य है और आश्चर्य सुनो। हे ब्राह्मण! जब यह आठों भाई तप के लिये घर से निकले थे तब इनके पिता माता ने भी विचार किया कि, हमारे पुत्र तो तप करने गये हैं इसलिये हम भी उनके निमित्त जाकर तप करें और उनकी स्त्रियों को अपने साथ लेकर तीर्थ और ठाकुरद्वारे दिखाते फिरें। निदान उन्होंने भी बैठकर तप किया और कुछ चान्द्रायण व्रत करके देवी को प्रसन्न किया। देवी से वर लेकर जब वे अपने घर को आने लगे तब एक स्थान में दुर्वासा ऋषीश्वर बैठा था, जिसके दुर्बल अङ्ग और विभूति लगी थी और जटा खुली हुई थी। उसको देखकर वे पास से ही चले गये पर उसे नमस्कार न किया तब उसने कहा, हे ब्राह्मण! तुम क्यों दुष्ट स्वभाव से हमारे पास से चले गये और हमको नमस्कार भी न किया? अब तुम्हारा वर निवृत्त होगा। जो वर तुमको प्राप्त हुआ है सो न होगा उसके विपरीत होजावेगा। तब उन्होंने कहा, हे मुनीश्वर! यह वचन तुम कैसे कहते हो; हमारे ऊपर क्षमा करो। यह ऐसेही कहरहे थे कि, वह अन्तर्धान होगया और ब्राह्मण अपने गृह में आये और शोकवान् हुये हे ब्राह्मण! देख जबतक आत्मबोध से शून्य है तबतक अनेक दुःख उपजेंगे; कई प्रकार के आश्चर्य भासेंगे और सन्देह दूर न होवेगा। जब आत्मबोध होगा तब कोई संसार आश्चर्य न भासेगा। हे ब्राह्मण! यह सब चिदाकाश में मायामात्र ही रचना बनती है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्राह्मणकथावर्णनन्नाम द्विशताधिकपञ्चषष्टितमस्सर्गः॥ २६५॥

कुन्ददन्त ने कहा, हे भगवन्! मैं यह सुनकर आश्चर्यवान् हुआ हूं और मुझे एक संशय उत्पन्न हुआ है सो निवृत्त कीजिये? तुमने कहा कि, एकद्वीप में आठों इकट्ठे सप्तद्वीप के राजा होंगे पर सातों द्वीप तो एकही हैं और राज्य करनेवाले आठ हैं, यह कैसे राज्य करेंगे? और इन्होंने वर और शाप दोनों पाये हैं यह इकट्ठे क्योंकर होंगे? जैसे धूप और छाया; और दिन और रात्रि इकट्ठे होने कठिन हैं; तैसेही वर और शाप एक होने कठिन हैं। कदम्बतप बोले, हे साधो! जो कुछ इनकी भविष्यत् होगी सो मैं कहता हूं जब कुछ काल गृहस्थी में व्यतीत होगा तब इनके शरीर छूट जावेंगे और इनको कुटुम्बी जलावेंगे। इनकी पुर्यष्टका अनुभव से मिली हुई है इस कारण एक मुहूर्तपर्यन्त इनको जड़ीभूत सुषुप्ति होगी और उसके अनन्तर चैतन्यता फुर आवेगी। तब शंख, चक्र, गदा, पद्मसहित चतुर्भुज विष्णु का रूप धार के वर आवेंगे और त्रिनेत्र हाथ में त्रिशूल लिये और भृकुटी चढ़ाये क्रोधवान् सदाशिव का रूप धारणकर शाप आवेंगे; तब वर कहेंगे कि, हे शाप! तुम क्यों आये हो अब तो हमारा समय है? जैसे एकऋतु के समय दूसरी नहीं आती, तैसेही तुम न आवो। तब शाप कहेंगे, हे वरो! तुम क्यों आये हो अब तो हमारा समय है? जैसे एकऋतु के होते दूसरी का आना नहीं बनता, तैसेही तुम्हारा आना नहीं बनता। तब वर कहेंगे हे शाप! तुम्हारा कर्ता ऋषि मनुष्य है और हमारा कर्ता देवता है। मनुष्य से देवता पूजने योग्य हैं क्योंकि; बड़े हैं, इससे तुम जावो। जब इस प्रकार वर कहेंगे, तब शाप क्रोधवान् होंगे और मारने के निमित्त त्रिशूल हाथ में उठावेंगे, तब वर कहेंगे, हे शाप! यदि तुम और हम लड़ेंगे तो पीछे किसी बड़े न्यायकर्ता के पास जावेंगे जो हमारा न्याय चुका देगा इससे प्रथम ही क्यों न जावें? तब शाप कहेंगे, हे वर! जो कोई युक्तिसहित वचन कहता है उसको सब कोई मानते हैं; तुमने भला कहा है चलिये। ऐसे चर्चा करके दोनों ब्रह्मपुरी में जावेंगे और ब्रह्माजी को प्रणाम करेंगे और अगला वृत्तान्त कहकर कहेंगे, हे देव! यह हमारा न्याय करो कि, उनको वर

स्पर्श करे अथवा शाप स्पर्श करे ? तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे साधो ! जिसका अभ्यास उनके भीतर दृढ़ हो वह प्रवेश करे । तब वर के स्थान शाप जाकर ढूंढ़ेंगे और शाप के स्थान वर जाय ढूंढ़ेंगे और ढूंढ़कर शाप आयके कहेंगे; हे स्वामिन् ! हमारी हानि हुई और वर की जय हुई है क्योंकि; उनके भीतर वर ही स्थित है । जिसका अभ्यास हृदयमें स्थित है उसी की जय होती है सो तो इनके भीतर वज्रसार की नाईं वर स्थित है । हे स्वामिन् ! हमारा आधिभौतिक शरीर कोई नहीं; हम तो संकल्परूप हैं । जिस संकल्प की दृढ़ता होती है वही उदय होता है वर का कर्ता भी ज्ञान-मात्र होता है; वरको लेता भी वही ज्ञानरूप है और वरको ग्रहण करता जानता है कि; यह हमारा स्वामी है । उस संकल्प से वर का कर्ता देवता जानता है कि; मैंने वर दिया है और ग्रहण करनेवाला जानता है कि मैंने वर लिया है । हे ईश्वर ! उसका जो वररूप संकल्प है सो उसके निश्चय में दृढ़ होजाता है । जिस संकल्प की संवित् से एकता होती है वही प्रकट होता है । इसी प्रकार शाप भी है परन्तु न कोई वर है, न शाप है दोनों संकल्परूप हैं । जैसा संकल्प अनुभव आकाश में दृढ़ होता है वही भासता है । वर देनेवाला भी अनुभवसत्ता है और लेनेवाला भी आत्मसत्ता है । वही सत्ता वररूप होकर स्थित होती है और वही सत्ता शापरूप होकर स्थित होती है । जिस संकल्प की दृढ़ता होती है उसी का अनुभव होता है । हे स्वामिन् ! यह तुमसे सुना हुआ हम कहते हैं कि; इसको कोई बाहर का कर्म फलदायक नहीं होता जो कुछ भीतर सार होता है वही फल होता है । इनके भीतर तो वर का संकल्प दृढ़ है और हमारा नहीं है तो हमारा तुमको नमस्कार है—अब हम जाते हैं । हे कुन्ददन्त ! इस प्रकार से शाप आधिभौतिक शरीर त्यागकर अन्तवाहक शरीर से अन्तर्धान होजावेंगे । जैसे आकाश में भ्रम से तरुवरे भासें और सम्यक्ज्ञान से अन्तर्धान होजावें; तैसेही शाप अन्तर्धान होजावेंगे । तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे वर ! तुम शीघ्रही उनके पास जावो और वह वर और दूसरा वर जो उनकी स्त्रियों ने लिया था कि, उनकी पुर्यष्टका अन्तःपुर

में रहे फिर पूछेंगे, हे भगवन्! हमको क्या आज्ञा है। हमको तो उनको उसी मन्दिर में रखना है और उनको सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्य भी भोगना है और दिग्विजय करना है यह कैसे होगा? तब ब्रह्माजी कहेंगे हे साधो! यह क्या है? जो उन्हें सप्तद्वीप की पृथ्वी का राज्य करना है तो उनका तुम्हारे साथ विरोध कुछ नहीं। तुमको उसी मन्दिर में उनकी पुर्यष्टका रखनी है और वहांही राज्य भुगावना है इसलिये जो कुछ तुम्हारा स्वभाव है सो करना। कुन्ददन्त ने पूछा, हे भगवन्! इससे तो हमको बड़ा संशय उत्पन्न हुआ है कि, उसी मन्दिर में आठो भाई सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्य कैसे करेंगे? इतनी पृथ्वी उस मन्दिर में क्योंकर समावेगी यही आश्चर्य है? जैसे कमल के फूल की कली में कोई कहे कि, हाथी शयन करे वा हाथी की पंक्ति है सो आश्चर्य है; तैसेही यह आश्चर्य है। ब्राह्मण बोले, हे साधो! ब्रह्मरूपी आकाश है उसके अणु का जो सूक्ष्म अणु है उसमें जो स्वप्न फुरा है सो हमारा जगत् है। यदि स्वप्ने में यह सृष्टि समा रही है तो मन्दिर में समाना क्या आश्चर्य है? हे साधो! यह सब जगत् स्वप्नमात्र है और अहंत्वमादिक सब जगत् स्वप्ननिद्रा में फुरता है। आत्मसत्ता सदा अद्वैत, परमशान्त और अनन्त है और उसमें जगत् आभासमात्र है। जैसे स्वप्ने में अपना अनुभव ही सूक्ष्म से सूक्ष्म होता है और उसमें त्रिलोकी भासि आती है। यदि सूक्ष्म संवित् में त्रिलोकी भासि आती है तो मन्दिर में भासना क्या आश्चर्य है? हे साधो! जब यह पुरुष मर जाता है तब इसकी सूक्ष्म पुर्यष्टका जड़ होजाती है और उसमें फिर त्रिलोकी फुर आती है। तुम देखो कि यदि सूक्ष्मही में भासि आई और जो परमसूक्ष्म में सृष्टि बन जाती है तो मन्दिर में होनेका क्या आश्चर्य है? हे साधो! यह सर्व जगत् जो भासता है सो आत्मा में स्थित है और उसका किञ्चन इस प्रकार हो भासता है। अब तुम जावो उनको राज्य भुगावो। हे कुन्ददन्त! जब इस प्रकार ब्रह्माजी कहेंगे तब वर नमस्कार करके आधिभौतिक शरीर त्याग देंगे और अन्तवाहक शरीर से उनके हृदय में स्थित होंगे। जैसे एक शत्रु को

दूर करके दूसरा स्थित हो तैसेही शाप को दूर करके उनके हृदय में वर आन स्थित हुये और उनको त्रिलोकी भासने लगी और पुर्यष्टका को अन्तःपुर में वर ने रोक छोड़ा। जैसे जल वन को रोकता है तैसेही उनकी पुर्यष्टका को वर ने रोका। हे कुन्ददन्त! इस प्रकार उनको अपने अन्तःपुर में सृष्टि भासी और उन्होंने जाना कि, हम सातों द्वीप के राजा हुये हैं। इस प्रकार वे आठों उस अन्तःपुर में सातों द्वीप पृथ्वी के राजा हुये परन्तु परस्पर अज्ञात रहे। एक सप्तद्वीप का राजा हुआ और जम्बूद्वीप में जो उज्जैननगर है उसमें उसकी राजधानी हुई। दूसरा कुशद्वीप में रहने लगा; तीसरा क्रौंचद्वीप में रहने लगा, चौथा शाकद्वीप का राजा हुआ और उससे हरकारे कहने लगे कि, पाताल के नाग बड़े दुष्ट हैं उनको किसी प्रकार जीतो। तब वह समुद्र के मार्ग से पाताल में नागों को जीतने जावेगा और एक द्वीप में अपनी स्त्री से शान्त होजावेगा। पांचवां शाल्मलिद्वीप में स्थित होगा जहां बड़ी प्रकाशसंयुक्त स्वर्ण की पृथ्वी है। वहां एक पर्वत होगा और उसके ऊपर एक ताल होगा जिसमें वह विद्याधरों से लीला करता फिरेगा। और दिग्विजय करके आवेगा। उसकी प्रजा बड़ी धर्मात्मा और मानसी पीड़ा से रहित होगी। छठा गोमेदक नाम द्वीप में होगा और उसका युद्ध पुष्करद्वीपवाले से होवेगा। सातवां पुष्करद्वीप का राजा होगा जो गोमेदकवाले राजा से युद्ध करेगा और आठवां लोकालोक पर्वत का राजा होगा। हे कुन्ददन्त! इस प्रकार वे अपने अन्तःपुर में सृष्टि देखेंगे और राज्य भोगेंगे परन्तु परस्पर उनकी सृष्टि अदृश्य होगी। सबकी राजधानी भी मैंने तुझसे कही कि, एक की जम्बूद्वीप के उज्जैननगर में; दूसरे की कुशद्वीप में; तीसरे की क्रौंचद्वीप में, चौथे की शाकद्वीप में, पांचवें की शाल्मलिद्वीप में; छठे की गोमेदकद्वीप में; सातवें की पुष्करद्वीप में और आठवें की लोकालोक पर्वत स्वर्ण पृथ्वी में होगी। हे साधो! इस प्रकार उनकी भविष्यत् होगी सो मैंने सब तुमसे कही। जैसा हृदय में निश्चय होता है तैसाही फल होता है। बाहर कैसीही क्रिया करो और भीतर सत्ता नहीं तो वह फलदायक

नहीं होती। जैसे नट स्वांग बनाकर चेष्टा करता है परन्तु उसके भीतर उसका सद्भाव नहीं होता इससे वह फलदायक नहीं होती। हे साधो! जैसा हृदय में निश्चय होता है वही वरदायक होता है, इसलिये परमार्थ का निश्चय करना योग्य है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्राह्मणभविष्यद्राज्यप्राप्तिवर्णनन्नाम द्विशताधिकषट्षष्टितमस्सर्गः ॥ २६६ ॥

कुन्ददन्त बोले, हे मुनीश्वर! मुझको बड़ा संशय हुआ है कि; उसी अन्तःपुर में अपने २ द्वीपों का राज्य वे क्योंकर करेंगे? कदम्बतप बोले, हे साधो! यह सर्व जगत् जो तुझको दृष्टि आता है सो कुछ बना नहीं; शुद्ध चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित है। उनको जो अन्तःपुर में अपनी २ सृष्टि भासेगी सो क्या रूप होगी? उनका जो अपना अनुभव है वही सृष्टिरूप हो भासेगा; आपही सृष्टिरूप और आपही राजा होंगे। यह जो कुछ जगत् तुझको भासता है सो भी परब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग स्वाभाविक फुरते हैं सो जलहीरूप हैं और लीन होते हैं तो भी जलहीरूप हैं, जल से भिन्न नहीं और न कुछ उपजता है, न मिटता है; तैसेही ब्रह्म में जगत् न उपजता है और न लीन होता है परब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं इससे वे ब्राह्मण भी अजरूप अपने आपको फुरने से जगत्रूप देखेंगे। हे साधो! जब सुषुप्ति होती है तब अद्वैत अपनाही अनुभव होता है और फिर उसमें स्वप्ने की सृष्टि फुर आती है पर वही सुषुप्तिरूप है; तैसेही परम सुषुप्तिरूप आत्मा है जहां सुषुप्ति भी लीन हो जाती है और उसमें यह जगत् फुरता है सो वही रूप है। आधारआधेय से रहित ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। हे साधो! जैसे एकही मन्दिर में बहुत पुरुष शयन करें तो उनको अपने २ स्वप्ने की सृष्टि भासती है इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, तैसेही उनको अपनी २ सृष्टि भासेगी तो इसमें क्या आश्चर्य है? जो कुछ जगत् भासता है सो ब्रह्म में है और ब्रह्मरूप ही अपने आपमें स्थित है। कुन्ददन्त बोले, हे भगवन्! आत्मसत्ता तो एक और केवल है बल्कि उसको एक भी नहीं कहसक्के और परम शान्त-

रूप, शिवपद और अद्वैतरूप है तो नाना प्रकार क्यों भासती है? यह तो स्वभावसिद्ध है सो नानात्व होकर वास्तव क्यों भासती है? कदम्बतप बोले, हे साधो! सर्वशान्तरूप और चैतन्य आकाश है और नाना प्रकार की जो भासती है सो और कोई नहीं आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि भासती है सो कुछ नहीं बनी अपना अनुभवही सृष्टिरूप हो भासता है; तैसेही यह जगत् अनुभवरूप है। हे साधो! सृष्टि के आदि अद्वैत आत्मसत्ता थी उसमें जो जगत् भासि आया सो भी तुम वही रूप जानो। जैसे समुद्रही तरङ्गरूप हो भासता है, तैसेही आत्मसत्ता सृष्टिरूप हो भासती है। जैसे कोई थम्भ से रहित स्थान में सोया हो उसको बहुत थम्भोंसंयुक्त मन्दिर भासि आवे तो वहां बना तो कुछ नहीं अनुभव आकाश ही थम्भरूप हो भासता है; तैसेही जो कुछ जगत् तुमको भासता है सो अपना अनुभवरूप जानो। जैसे आकाश में शून्यता; अग्नि में उष्णता और बरफ में शीतलता है; तैसेही आत्मा में जगत् है। चाहे कोई जगत् कहो अथवा ब्रह्म कहो पर ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। जैसे वृक्ष और तरु एकही वस्तु है; तैसेही ब्रह्म और जगत् एकही वस्तु के दो नाम हैं। इस जगत्; इन्द्रियों और मन से अतीत आत्मा को जानो और जो इन तीनों का विषय है सोभी आत्मा को जानो दूसरी वस्तु कुछ नहीं। नानारूप जो दृष्टि आता है सो नानात्व नहीं हुआ—दूसरा नहीं भासता है। जैसे स्वप्ने में बड़े आरम्भ दृष्टि आते हैं और सेना और नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं परन्तु कुछ हुये नहीं, तैसेही यह जगत् नाना प्रकार भासता है परन्तु कुछ हुआ नहीं सर्वचिदाकाशरूप है। जैसे एक निद्रा की दो वृत्ति है—एक स्वप्न और दूसरी सुषुप्तिरूप—स्वप्ने में नानात्व भासती है और सुषुप्ति में एक सत्ता होती है; तैसे ही चित् संवित् के फुरने में नानात्व भासता है और न फुरने में एक है। हे साधो! वह तो सर्वदाकाल में एकरूप है परन्तु प्रमाद से भेद भासता है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपनाही अनुभवरूप है परन्तु प्रमादसे भिन्न २ भासती है; तैसेही यह जगत् है। हमको तो सर्वदाकाल वही भासता है। जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी

एकही वृक्ष के नाम हैं; जो वृक्ष का ज्ञाता है उसको सब वृक्षरूपही भासता है; तैसेही सर्वनामरूप से हमको आत्माही भासता है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता। आदि फुरने में जैसे निश्चय हुआ है सो और निश्चय पर्यन्त तैसे ही रहता है यह सब विश्व संकल्परूप है और संकल्प का अधिष्ठान ब्रह्म है—ब्रह्मही संकल्परूप होकर भासता है। इससे सब संकल्परूप जगत् भासता है सो ब्रह्मरूप है; ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं—एकही वस्तु के दो नाम हैं। जैसे वृक्ष और तरु दोनों एक वस्तु के नाम हैं; तैसे ही ब्रह्म और जगत् दोनों एक चैतन्य के नाम हैं। हे साधो! जो वाणी से अकथ है उसको ब्रह्म जानो और जो शब्द वाणी में आता है उसको भी तुम ब्रह्म जानो—ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जो ज्ञानवान् है उसको सब ब्रह्मही भासता है पर अज्ञानी को नानात्व भासता है। जब अध्यात्म्य अभ्यास करोगे तब सब जगत् ब्रह्मरूपही भासेगा—इसका नाम घोष है। हे साधो! नाना प्रकार होकर जगत् दिखाई देता है तौ भी नानात्व कुछ नहीं। जैसे समुद्र में द्रवता से नाना प्रकार के तरङ्ग, बुद्बुदे और चक्र दृष्टि आते हैं परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही सर्व पदार्थ जो दृष्टि आते हैं सो सब आत्मरूप हैं और जितने जीव बोलते दृष्टि आते हैं सो भी महा मौनरूप हैं कुछ बने नहीं। चित्तके फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं परन्तु आत्मा से भिन्न कुछ नहीं—वही चिदाकाश ज्यों का त्यों स्थित है और जो कुछ आत्मा से भिन्न विद्यमान भासता है उसको अविद्यमान जानो। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसे आदि जितना जगत् भासता है सो सब स्वप्ने का विलास है जैसे नेत्रदूषण से आकाश में तरुवरे भासते हैं, तैसे ही भ्रमदृष्टि से आत्मा में जगत् भासता है—कुछ बना नहीं। जैसे सुषुप्ति में पुरुष सोया होता है उसको फुरना नहीं फुरता और फिर उसी सुषुप्ति से स्वप्ने की सृष्टि फुर आती है सो बनी कुछ नहीं वही सुषुप्तिरूप है पर स्वप्ने में स्थित पुरुष को सत्य भासता है और जो अनुभव में जागा है उसको सुषुप्तिरूप है; तैसेही इस जगत् को जानो। आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, जब जागकर देखोगे तब सब चिन्मात्र ही भासेगा जो शान्त-

रूप, अनन्त और सदा अपने आपमें स्थित है। उसमें जो जगत् भासता है सो सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं; सत्य इस कारण से नहीं कि, आभासमात्र और नाशवन्त है और असत्य इस कारण नहीं कि, प्रकट भासता है और वास्तव में आत्मसत्ता से भिन्न नहीं। भाव, अभाव, सुख, दुःख, उदय, अस्त वही आत्मसत्ता इस प्रकार हो भासती है जैसे एक ही निद्रा के स्वप्न और सुषुप्ति दो पर्याय हैं, तैसेही जगत् और आत्मा दोनों एकही सत्ता के पर्याय हैं। जैसे एकही वायु स्पन्द और निस्स्पन्द दो रूप होती है; तैसेही आत्मसत्ता के दोनों रूप हैं। जब संवेदन नहीं फुरता तब अग्निवाचीरूप होतीहै और जब अहंभाव को लेकर फुरती है तब संकल्प-रूपी सृष्टि बनजाती है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, तत्त्व, नक्षत्र, चक्र, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी जल का नीचे चलना; अग्नि का ऊर्ध्व चलना; तारागण प्रकाशवान् होना; पृथ्वी स्थित भूत आदि जो स्थावर-जङ्गमरूप सृष्टि है सो अपने स्वभाव सहित भासती आती है और शुभ-अशुभ कर्म होते हैं उनमें सुख दुःख फल की नेति होती है परन्तु आत्मसत्ताही इस प्रकार भासती है। जैसे तू मनोराज से स्वप्ननगर कल्प ले और उसमें अनेक प्रकार की चेष्टा करे सो जब तक संकल्प होता है तब तक वही सृष्टि स्थित होती है और जब संकल्प मिट गया तब सृष्टि लय होजाती है तो और वस्तु कुछ न हुई तेरा अनुभवही सृष्टिरूप होकर स्थित हुआ; तैसेही यह जगत् अनुभवरूप है और कुछ नहीं। कुन्ददन्त ने पूछा, हे तपस्विन् ! संकल्प तो पूर्वस्मृति को लेकर फुरता है; ब्रह्मा में मनो-राज संकल्प की सृष्टि किस संस्कार को लेकर फुरती है यह संशय मेरा निवृत्त करो ? कदम्बतप बोले, हे साधो ! यह सम्पूर्ण सृष्टि किसी संस्कार से नहीं उत्पन्न हुई, भ्रम से भासती है। जैसे स्वप्न में मनुष्य आपको मृतक हुआ जानता है सो उसको पूर्व के संस्कार की स्मृति तो नहीं होती अपूर्वही भासि आती है; तैसेही ये पदार्थ जो तुझको भासते हैं सो अपूर्व हैं किसी स्मृति से नहीं हुये। स्मृति और अनुभव तो जगत ही में उत्पन्न हुये हैं पर जब जगत् का फुरना न था तब स्मृति

और अनुभवभी न थे। जब जगत् फुरा तब ये भी फुरे हैं इससे सम्पूर्ण जगत् अपूर्व है और भ्रम से भासता है। जैसे स्वप्ने में मुआ किसी कुल में अपना जन्म देखे और उसको ऐसे भासे कि, कुल चिरकाल की चल आती है पर जब जाग उठे तब पूर्व किसको कहे। और स्मृति किसकी करे; न कहीं जन्म रहता है और न कुल रहता है; तैसेही ज्ञानवान् को यह जगत् आकाशरूप भासता है तो मैं तुझको पूर्व की स्मृति क्या कहूं? हे ब्राह्मण! और कुछ बना नहीं आत्मसत्ताही ज्यों की त्यों स्थितहै। जिससे यह सर्व जगत् हुआ है; जिसमें यह सर्व है और जो सर्व है सो सर्वात्मा है। जो वही है तो दूसरा किसको कहूं? इससे ऐसे जानकर तुम विचारो तब सर्व दुःख तुम्हारे नष्ट होंगे। हे साधो! कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक ब्रह्मरूप हैं। कर्ता कर्म के करनेवाले को कहते हैं; कर्म जो है सो करनेकी संज्ञा है; करण क्रिया का साधक है; सम्प्रदान जिस निमित्त हो; अपादान जिससे लय कीजिये और अधिकरण जिसमें कीजिये। हे साधो! ये छः कारक ब्रह्मरूप हैं। विश्व का कर्ता भी ब्रह्म है; विश्वकर्मा भी ब्रह्म है; विश्व का साधक भी ब्रह्म है; जिसमें निमित्त यह विश्व है सो भी ब्रह्म है और जिसमें यह विश्व होता है सो भी ब्रह्म है। हे साधो! ऐसा जो सर्वात्मा है उसको नमस्कार है। हे साधो! उस सर्वात्मा को ऐसे जाननाही उसकी परम पूजा है। ऐसेही तुम भी पूजन करो। हे साधो! अब तुम जावो और अपने वाञ्छित में बिचरो। तुम्हारे बान्धव तुमको चितवते होंगे उनके पास जावो—जैसे कमल के पास भँवरे जाते हैं—और हम भी समाधि में स्थित होते हैं। जो कुछ गुह्य बात है सो भी मैं कहता हूं। जिससे कोई सुख पाता है। वही करता है। मुझको तो जगत् दुःखदायक दृष्टि आया है इस कारण मैं समाधि में लगता हूं। हे साधो! यद्यपि मुझे सब अवस्था तुल्य हैं तो भी चित्त की वृत्ति जो संसार के कष्ट से दुःखित होकर आत्मपद में स्थित हुई है उस स्थिति के सुख के संस्कार से फिर उसी ओर धावती है। अब तुम जावो मैं समाधि में स्थित होता हूं।

इति श्रीयोग० नि० द्विशताधिकसप्तषष्टितमस्सर्गः ॥ २६७ ॥

कुन्ददन्त बोले, हे रामजी ! इस प्रकार कहकर वह फिर समाधि में लगा और इन्द्रियों और मन की क्रिया से रहित हुआ—मानो काग़ज़ पर मूर्ति लिखी हो । तब फिर हम उसे बहुत जगाते रहे और बड़े शब्द किये परन्तु वह न जागा । निदान हम वहां से चले और उस ब्राह्मण के घर आये तो उनके घर में बड़ा उत्साह हुआ और समय पाकर क्रम से वे सातो भाई मरगये पर अष्टम मेरा मित्र जीता रहा था वह भी कुछ दिन में मृतक होगया तब मैं बहुत शोकवान् हुआ कि, मेरा प्रियतम भी मर गया अब मैं क्या करूं । हे रामजी ! तब मैंने विचार किया कि, फिर मैं कदम्बतपा के पास जाऊं तो मेरा दुःख नष्ट होगा । निदान मैं वहां गया और तीन मास पर्यन्त उसके पास रहा । उसको मैं जगाता रहा परन्तु वह न जागा पर जब तीन मास होचुके तब वह जागा और मैंने उसको प्रणाम करके कहा; हे मुनीश्वर ! वे तो अपने २ राज्य को भोगने लगे और मैं अकेला कष्टवान् हूं इससे मेरा दुःख तुम नष्ट करो—मैं तुम्हारी शरण आया हूं । कदम्बतपा बोले, हे साधो ! मेरे उपदेश से तुझको स्वरूप का साक्षात्कार न होगा क्योंकि; तुझको अभ्यास नहीं है । अभ्यास विना स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता इससे मेरा कहना भी व्यर्थ होगा । मैं दुःख नष्ट होने का एक उपाय तुझसे कहता हूं उससे तू मेरे समान और दुःख से रहित होकर अनन्त आत्मा होगा । हे साधो । अयोध्यानगरी के राजा दशरथ के गृह में रामजी पुत्र हुये हैं जिनको वशिष्ठजी मोक्षोपाय उपदेश करेंगे और बड़ी सभा में कहेंगे वहां तू जा तो तुझको भी स्वरूप की प्राप्ति होगी—संशय मत कर । हे रामजी ! जब इस प्रकार उस तपस्वी ने मुझसे कहा, तब मैं वहां से चलकर तुम्हारे पास आया हूं । जो कुछ तुमने पूछा था सो सब वृत्तान्त मैंने कहा और जो कुछ देखा सुना था वह भी कहा । रामजी बोले, हे वशिष्ठजी ! जो वृत्तान्त मैंने उससे सुना था सो प्रभु के आगे कहा और कुन्ददन्त भी तुम्हारे पास बैठा है अब इससे पूछिये कि; स्वरूप की प्राप्ति हुई अथवा नहीं हुई ? वाल्मीकिजी बोले, हे भरद्वाज ! जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब मुनियों में शार्दूल वशिष्ठजी उसकी

ओर कृपादृष्टि करके बोले, हे ब्राह्मण! यह मोक्षोपाय जो मैंने सम्पूर्ण कहा है उसको सुनकर तूने क्या जाना? कुन्ददन्त बोले, हे सर्वसंशयों के निवृत्त करनेवाले! तुम्हारे वचनरूपी प्रकाश से मेरे अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश हुआ है; जो कुछ जानने योग्य पद है सो मैंने जाना है और जो कुछ पाने योग्य था सो मैंने पाया। अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ हूं और मुझको कोई कल्पना नहीं रही। मैं अनन्त आत्मा हूं और नित्य, शुद्ध, अच्युत, परमानन्द स्वरूप हूं-सर्व जगत मेरा ही स्वरूप है। हे भगवन्! अन्तःपुर में इतनी सृष्टि के सामने का जो संशय था सो तुम्हारे वचनों से दूर हुआ और अब एक एक राई में मुझको ब्रह्माण्ड भासते हैं और आत्मस्वभाव से दिखाई देते हैं। जैसे अनेक दर्पणों में अपना मुख ही भासता है; तैसेही मुझको सर्व ओर अपना आपही भासता है। हे भगवन्! तुम्हारे वचन मैंने आदि से लेकर अन्त पर्यन्त सम्पूर्ण सुने हैं जो परम पावन; सार के परमसार और आत्मबोध के कारण हैं। उनके विचारे से मेरी भ्रान्ति निवृत्त होगई है और अब मैं अपने आपमें स्थित हुआ हूं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कुन्ददन्तविश्रामप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकाष्टषष्टितमस्सर्गः॥ २६८॥

बाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार कुन्ददन्त ने कहा तब वशिष्ठजी सुनकर परम उचित वचन परमपदपावन का कारण। फिर कहने लगे। कि; हे रामजी! अब कुन्ददन्त ने आत्मअनुभव में विश्राम पाया है। इसको अब हस्तामलकवत् अपना आप अनुभवरूप जगत् भासता है। आत्माही निद्रास्वरूप होकर भासता है और आत्मा ही द्रष्टारूप है दूसरी वस्तु कुछ नहीं। अपना अनुभव ही जगत्रूप हो भासता है सो अनुभव आकाश सम शान्तरूप, अनन्त और अखण्ड सदा ज्यों का त्यों है। हे साधो! वह नानारूप भासता है परन्तु अनाना है और सदा ज्यों का त्यों अचेत चिन्मात्र परमशून्य है जिसमें शून्य भी शून्य होजाता है और चेत दृश्य-रूप फुरने से रहित है इसी कारण परमशून्य है; बोलता दृष्टि आता है परन्तु परममौन है। हे रामजी! उसमें जगत् कुछ बना नहीं; जैसे स्वप्ने

में पहाड़ दृष्टि आते हैं सो न सत्य हैं और न असत्य हैं; तैसेही यह जगत् सत्य असत्य से विलक्षण है क्योंकि; कुछ बना नहीं—जो कुछ भासता है सो आत्मा है। जैसे रत्नों का प्रकाश चमत्कार होता है, तैसेही आत्मा का प्रकाश जगत् है और जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्गरूप हो भासता है, तैसे ही ब्रह्म संवेदन से जगत्रूप हो भासता है। आदि स्पन्द फुर आई है सो जगत्रूप होकर स्थित है और वह जैसे हुआ है तैसे हुआ है पर आत्मा कार्य कारणभाव से रहित है। जिसको प्रमाद है उसको यह कारणभाव भासता है और उसको तैसाही है पर जो सत्य जानकर पाप करते हैं उनके बड़े पाप उदय होते हैं और स्थावररूप होकर फिर जङ्गम मनुष्य होते हैं। हे रामजी! इस प्रकार यह ज्ञानसंवित् चैतसम्बन्धी होकर नाना प्रकार के रूप धारती है और प्रमाद से भिन्न २ भासती है परन्तु स्वरूप से कुछ और नहीं होती सदा अखण्डरूप है। जबतक प्रमाद होता है तबतक जगत का आदि और अन्त नहीं भासता और जब प्रमाद से जागता है तब सर्वकल्पना मिट जाती हैं। हे रामजी! यह सर्व जगत् जो भासता है सो कुछ बना नहीं वही ब्रह्मसत्ता अपने आपने में स्थित है। जब जाग्रत अवस्था का अभाव होता है और सुषुप्ति आती है तो उसमें न शुभ की कल्पना रहती है और न अशुभ की कल्पना रहती है; उदय-अस्त की कल्पना से रहित केवल अद्वैतसत्ता रहती है और जब फिर उसमें चैतन्यता फुरती है तब फिर स्वप्न की सृष्टि भासती है। कहीं स्थावर जङ्गम सृष्टि भासती है जिसमें संवेदन फुरती भासती है सो जङ्गम कहाता है और जिसमें संवेदन फुरना नहीं भासता सो स्थावर कहाता है परन्तु और कुछ नहीं वही अद्वैत अनुभवसत्ता स्थावर जङ्गमरूप हो भासती है; तैसेही आत्मा अनुभव यह जगत् हो भासता है। हे रामजी! सृष्टि के आदि परम सुषुप्तिसत्ता थी उसमें संवेदन फुरने से जगत् भासि आया सो वही संवेदनरूप जगत् है और जिस आत्मसत्ता में फुरी है वही रूप है भिन्न कुछ नहीं। जैसे शरीर के अङ्ग हाथ, पांव, नख, केशादिक सब शरीररूप हैं तैसेही परमात्मा के अङ्ग हस्त पादादिक हैं रोम सृष्टि और नखकेशादिक

स्थावर सृष्टि सब आत्मरूप है और दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभवरूप होतीहै और संकल्पपुर की रची सृष्टि संकल्परूप होती है; तैसेही यह सृष्टि अनुभवरूप है और किसी कारण से नहीं उपजी—इससे ब्रह्मही रूप है। ब्रह्म के सूक्ष्म अणु में सृष्टि फुरी है सो क्या रूप है? ब्रह्मही सृष्टि है और सृष्टि ही ब्रह्म है—ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं परन्तु अज्ञाननिद्रा से भिन्न २ भासता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! निद्रा का कितना प्रमाण है और कितने काल पर्यन्त रहती है? सूक्ष्म अणु में सृष्टि कैसे फुरी है और कैसे स्थित है? अणु उसकी क्यों संज्ञा है और अनन्त क्योंकर है? जो देवता असुरादिकरूप को चित्त प्राप्त हुआ है वह क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञान निद्रा अपने काल में तो अनादि है और नहीं जानी जाती कि कबकी हुई है और अन्त भी नहीं जाना जाता कि, कब तक रहेगी। अज्ञानकाल में तो इसका आदि अन्त प्रमाण कुछ नहीं भासता और बोध में इसका अत्यन्ताभाव दिखता है। चित्सत्ता की जो अनन्तता पूछो तो वह तो अद्वैत चिन्मात्र आत्मसमुद्र है और उसमें सूक्ष्मभाव अहमस्मि जो संवित् फुरती है उसका नाम चित्त है। उस चित्त में आगे जगत् होता है। शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन चित्त फुरता है उसमें जगत् है; वही चित्त देवता, असुर और जङ्गमरूप हो भासता है और नाग, पिशाच, कीटादिक स्थावर-जङ्गमरूप हो भासती है। वास्तव में चैतन्यसत्ताही है उससे भिन्न कुछ नहीं और सब चिदाकाश रूप है फुरने से नाना प्रकार है। हे रामजी! परम शुद्ध चिद् अणु से मिलकर चित्त अनेक ब्रह्माण्ड धारता है और उस सूक्ष्म अणु में अनन्त ब्रह्माण्ड फुरते हैं परन्तु उससे भिन्न नहीं। जैसे एक पुरुष शयन करता है तो उसको स्वप्ने में अनेक जीव भासि आते हैं और उन जीवों में अपने २ स्वप्ने की सृष्टि फुरती है सो अनेक सृष्टि होजाती हैं तैसेही सूक्ष्म चिद्-अणु में अनन्त सृष्टि फुरती है परन्तु आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं बना। जैसे सूर्य की किरणों में अनन्त सूक्ष्म त्रसरेणु होती हैं; तैसेही परमात्म-सूर्य के चिद्अणु सूक्ष्म है। इन त्रसरेणु से भी सूक्ष्म चिद्अणु में

अनन्त सृष्टि अपनी २ फुरती हैं। हे रामजी! जबतक चित्त फुरता रहता है तब तक सृष्टि का अन्त नहीं आता। असंख्य जगत् भ्रम आगे देखे हैं और असंख्य ही आगे देखेंगे। जब चित्त फुरने से रहित होता है तब जगत् कल्पना मिट जाती है। जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासती है और बड़े व्यवहार होते हैं पर जब जाग उठता है तब स्वप्ने की सृष्टि व्यवहार की कल्पना मिट जाती है और अद्वैत अपना आपही भासताहै; तैसेही चित्त के ठहरने से सब भ्रम मिट जाता है। हे रामजी! सूक्ष्मचिद् अणु की भी संज्ञा तब हुई है जब इसको चित् का सम्बन्ध हुआ है। जब चित् को अपने स्वभाव में स्थित करोगे तब द्वैतकल्पना और सूक्ष्म स्थूलभाव मिट जावेंगे। इसकी सूक्ष्म संज्ञा अविद्यकभाव से है जो इन्द्रियों का विषय नहीं इससे अणुता है; सूक्ष्म अणु में भी व्यापा हुआ है इससे सूक्ष्म अणु कहाता है और अनन्तता इस कारण है कि, सबको धार रहा है। हे रामजी! यह जगत् अभावमात्र है। जैसे मरुस्थल में जलाभास होता है, तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। यह जगत् ही नहीं है तो इसका कारण किसे कहिये? आदि सृष्टि अकारण फुरी है और फिर उसमें कारण-कार्य भासने लगे हैं सो आभास की दृढ़ता से हैं। जैसे स्वप्ने में आदि सृष्टि अकारण बीज, वृक्ष, कुलाल, मट्टी और घट इकट्ठे फुर आते हैं। जब उस स्वप्ने की दृढ़ता होजाती है तब कारण कार्य भासते हैं परन्तु जो सोया पड़ा है उसको दृढ़ भासते हैं; तैसेही अज्ञानी को जगत् कार्य कारण दृढ़ भासता है और ज्ञानवान् को सब अपना आपही भासता है। जैसे स्वप्ने से जागे स्वप्ने की सृष्टि अपने आपही भासती है कि, मैं ही था और कुछ न था; तैसेही ज्ञानवान् को सब जगत् आकाशरूप भासता है पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत, वृक्ष, नदी, स्थावर-जङ्गम सर्व जगत् सब आकाशरूप हैं और संवेदन के फुरने से दृष्टि आते हैं वास्तव में भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! यह जगत् चित्त में स्थित है। जैसे किसी पुरुष ने थम्भे में पुतलियां कल्पीं तो उन पुतलियों के दो रूप होते हैं एक शिल्पी के चित्त में फुरती है सो आकाशरूप है और एक थम्भे में

कल्पी है सो थम्भरूप है और थम्भे में स्थितरूप है पर शिल्पी के चित्त में नृत्य करती है। हे रामजी! और तो कुछ नहीं बना सब थम्भेरूप हैं और शिल्पी के चित्त में कल्पनामात्रहै; तैसेही चित्तरूपी शिल्पी की जगद्रूपी पुतलियां कल्पनामात्रहैं पर आत्मरूपी थम्भा ज्यों का त्यों है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। जैसे पटके ऊपर मूर्ति लिखी हो तो उस मूर्त्ति का रूप पटही है—पट से भिन्न कुछ नहीं—वह पटही मूर्तिरूप भासताहै; तैसेही यह जगत् आत्मा से भिन्न नहीं—आत्माही जगत्रूप हो भासता है। आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे ब्रह्म आकाशरूप है, तैसे ही जगत् आकाशरूप है। जगत्रूप आधार है और उसमें ब्रह्म बसनेवाला है। ब्रह्मरूप आधार है और उसमें जगत् बसनेवाला है। हे रामजी! जितने समूह जगत् में विद्या और अविद्यारूप हैं सो सब संकल्प से रचित हैं और वास्तव में सब आत्मस्वरूप हैं। समता, सत्ता और निर्विकारता आदि और इनसे विपरीत अविद्यारूप सब एकहीरूप हैं; एकही में फुरते हैं और एकहीरूप हैं। जैसे अनुभवरूप स्वप्न जगत् अनुभव में स्थित होता है सो सर्व आत्मरूप होता है; तैसेही यह जगत् सर्व ब्रह्मरूप है—ब्रह्म से भिन्न न कुछ वर की कल्पना है और न शाप की कल्पना है। ब्रह्मसत्ता निर्विकार अपने आपमें स्थित है उसमें न कारण है और न कार्य है। जैसे ताल, नदी और मेघ जलही होते हैं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मरूप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वर और शाप के कर्ता तो प्रच्छिन्न हैं और कारण विना तो कार्य नहीं बनता तुम कैसे कहते हो कि, कारण-कार्य कोई नहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता का किञ्चन जगत् होता है जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं, तैसेही आत्मसत्ता में जगत् फुरते हैं और जैसे तरङ्ग जलरूप होतेहैं, तैसेही जगत् आत्मरूप है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। जैसे आदि परमात्मा से सृष्टि का फुरना हुआ है तैसेही स्थित है अन्यथा नहीं होता। सब जगत् संकल्पहै। अनेक प्रकार की वासना संवेदन में फुरती है पर जिनको स्वरूप का विस्मरण हुआ है उनको यह जगत् सत्यरूप भासता है। जो उनको विचार उत्पन्न हो तो वही काल है जिस काल में विचार उत्पन्न होता है

और उसीकाल में अज्ञाननिद्रा का अभाव होता है। हे रामजी! जब विचार अभ्यास करके मन तद्रूप होता है तब यथाभूत दर्शन होता है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपना आपही भासता है क्योंकि; अपने आपमें स्थित है। सबका अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है उसमें अहंप्रतीति होती है इस कारण अपने आपमें सृष्टि भासती है। जैसे स्पन्द फुरते हैं, तैसेही उनकी सिद्धि होती है; निरावरण दृष्टि होता है निरावरण दृष्टि करके सर्वसंकल्प सिद्ध होता है क्योंकि; यह जगत् सब आत्मा में संकल्प का रचा हुआ है और उसमें इसको अहंप्रत्यय हुई है। हे रामजी! जो यह संकल्प उठता है कि, यह कार्य ऐसे हो तो वह तैसेही होता है। हे रामजी! शुद्ध संवेदन में जैसा संकल्प होता है वही हो भासता है संकल्परूपही है संकल्प से भिन्न नहीं। इस कारण वर और शाप का और कोई कारण नहीं; वर और शाप भी संकल्परूप हैं और उससे जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे किसी समवायकारण से तो नहीं उत्पन्न हुये संकल्प ही से हुये हैं इससे सब अकारण रूप है। ब्रह्मरूपी समुद्र के तरङ्ग उठते हैं तो कारण और कार्य मैं तुमसे क्या कहूं? सब जगत् ब्रह्मरूप है और द्वैत और एक की कल्पना कुछ नहीं। हे रामजी! हमको सदा ब्रह्मसत्ता ही भासती है और कार्य कारण कोई नहीं भासता। जैसे स्वप्ने में किसी के घर में पुत्र हुआ और वह बड़े उत्साह को प्राप्त हुआ पर जब जाग्रत् का संस्कार चित् आया तब उसका पिता ही उपजा नहीं तो पुत्र कैसे कहिये? तब तो सब अपना आपही हो जाता है, न कोई कारण भासता है और न कार्य भासता है। जो स्वप्ने में सोया है उसको जैसे भासता है तैसेही भासता है। जैसे वर और शाप का आसरा संकल्प है और संकल्प ही वर और शाप हो भासता है और अकारणही होता है। जिसको शुद्ध संवेदन से एकता हुई है वह निरावरण है और उसमें जैसे फुरना आभास फुरता है, तैसाही सिद्ध होता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! एक ऐसे हैं कि जिनको आवरण है और उनका संकल्प जैसे फुरता है-वर देवें अथवा शाप देवें-तैसेही होजाता है और स्वरूप का साक्षात्कार उनको नहीं हुआ पर शुभकर्म उनमें प्रत्यक्ष

मिलते हैं तो शुभकर्म ही वर और शाप के कारण हुये; तुम कैसे कहते हो कि, निरावरण पुरुष का संकल्प सिद्ध होता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र जो सत्ता है वही चित् धातु कहाती है। उस चित्धातु में जो आभास फुरना है वही संवेदन कहाता है। वह संवेदन जब फुरती है तब जीव जानता है कि, 'मैं ब्रह्मा हूं;' तो संवेदन ने ही आपको जगत् का पितामह जाना और उसीने आगे मनोराज कल्पा तब पञ्चभूत का ज्ञान हुआ कि; शून्यरूप आकाश; स्पन्दरूप वायु; उष्णरूप अग्नि; द्रवतारूप जल और कठोररूप पृथ्वी है, फिर उसीसे देश और काल की कल्पना हुई और स्थावर जङ्गम पदार्थ की कल्पना से वेद, शास्त्र, धर्म, अधर्म का फुरना हुआ जिससे यह निश्चय हुआ कि, यह तपस्वी है और इसने तप किया है इसके कहे से वर हो पर स्वरूप के साक्षात्कार से रहित है तौभी इसका कहा हो यह तप का फल है। आदि संकल्प ऐसे हुआ है तो वर और शाप का कर्ता तपस्वी नहीं इसका अधिष्ठान वही संवेदन है जिससे आदि संकल्प फुरा है। हे रामजी! वर और शाप संकल्परूप हैं, संकल्प संवेदन से फुरा है और संवेदन आत्मा का आभास है तो मैं कारण और कार्य क्या कहूं? और जगत् क्या कहूं? आत्मा का आभास संवेदन ब्रह्मा है जिसने आगे संकल्पपुर सृष्टि रची है और हम, तुम आदिक सब उसके संकल्प में हैं। वह ब्रह्माजी निराकार, निराधार और निरालम्ब स्थित है कुछ आकार को नहीं प्राप्त हुये, इससे उसका विश्व भी वही रूप जानो। हे रामजी! जैसे उसका स्पन्द हुआ है तैसेही स्थित है; अन्यथा नहीं होता जो वही विपर्यय करे तो हो और नहीं होता। अग्नि में उष्णता; वायु में स्पन्दता इत्यादिक जो पदार्थ हैं सो अपने २ स्वभाव में स्थित हैं और हमको सब ब्रह्मरूप हैं। जैसे शरीर में हाड़ मांस से भिन्न नहीं होता तैसेही हमको ब्रह्मसे भिन्न नहीं भासता। जैसे घट में मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं होता और काष्ठ की पुतली को काष्ठ से भिन्न चेष्टा नहीं होती तैसेही जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं होता। हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुमको

भासता है सो ब्रह्मही है। ब्रह्मही फुरने से नाना प्रकार जगत् हो भासता है। जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्ग बुद्बुदे, फेन हो भासता है; तैसेही ब्रह्मसंवेदन से जगत्‌रूप हो भासता है पर ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जैसे पर्वत से जल गिरता है सो कणके हो भासता है और जब गिरकर ठहर जाता है तब समुद्ररूप होता है परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं होता; तैसेही जब चित्त फुरता है तब नाना प्रकार का जगत् हो भासता है और जब ठहर जाता है तब सर्व जगत् एक अद्वैतरूप हो भासता है परब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं होता; ब्रह्मही स्थावर जङ्गमरूप हो भासता है। जहां पुर्यष्टका का सम्बन्ध नहीं भासता सो अजङ्गम कहाता है और जहां पुर्यष्टका का सम्बन्ध होता है वह जङ्गमरूप भासता है परन्तु आत्मा में उभयतुल्य हैं। जैसे एकही हाथकी अंगुली है जिसको उष्णता अथवा शीतलता का संयोग होता है सो फुरने लगती है और जिसको शीत उष्ण का संयोग नहीं होता सो नहीं फुरती; तैसेही जिस आकार को पुर्यष्टका का संयोग है सो फुरता है और चैतन्यता भासती है और जिसको पुर्यष्टका का संयोग नहीं होता उसमें जड़ता भासती है। जड़ भी दो प्रकार के हैं—एक को पुर्यष्टका का संयोग है और जड़ है और दूसरे को पुर्यष्टका का संयोग नहीं और जड़ है। वृक्ष और पर्वतों को पुर्यष्टका का संयोग है परन्तु घनसुषुप्ति जड़ता में स्थित हैं इस कारण जड़ भासते हैं और मृत्तिका पुर्यष्टका से रहित है इस कारण जड़ है परन्तु वास्तव में स्थावर, जङ्गम; इष्ट, अनिष्ट; वर, शाप; देश, काल, पदार्थ; सबही ब्रह्मरूप है और ब्रह्मसत्ताही ऐसे स्थित हुई है जैसे अपने अनुभव में संकल्पनगर नाना प्रकार का भासता है परन्तु संकल्परूप है—संकल्प से भिन्न कुछ नहीं और मृत्तिका की सेना अनेक प्रकार की होती है परन्तु मृत्तिकारूप है—मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही सर्व अर्थ के धारनेवाली चैतन्यधातु नाना प्रकार के आकार को प्राप्त होती है परन्तु चैतन्यता से भिन्न कुछ नहीं होती। हे रामजी! धातु उसको कहते हैं जो अर्थ को धारे। जितने पदार्थ तुमको भासते हैं सो सब अर्थरूप हैं और वस्तुरूप जो धातु है सो आत्मसत्ता है। उसने दो अर्थ धारे हैं—एक स्वप्न

अर्थ और दूसरा बोध अर्थ–स्वप्न अर्थ में तो नानात्व भासती है और बोध अर्थ में एक अद्वैत सत्ता भासती है। जैसे एकही धातु मिलने और बिछुड़ने से दो अर्थ धारती है सो परस्पर प्रतियोगी शब्द हैं परन्तु एकही ने धारे हैं; तैसेही स्वप्न और बोध अर्थ इन दोनों को आत्मसत्ता ने धारा है। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे जलरूप हैं; तैसेही जगत ब्रह्मरूप है। जो ज्ञानवान् हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासता है और अज्ञानी को नानात्व भासता है। इससे तुम स्वभाव निश्चय होकर देखो सब ब्रह्मरूप है–भिन्न कुछ नहीं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम
द्विशताधिकैकोनसप्ततितमस्सर्गः ॥ २६९ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो सर्व ब्रह्मही है तो नेति क्या है और नाना प्रकार के पदार्थ क्यों भासते हैं? तुम कहते हो कि, जगत् संकल्प से रचित है तो हे भगवन्! ये जो पदार्थ असंख्यरूप हैं कि, उनकी संज्ञा की नहीं जाती और इन पदार्थों का स्वभाव एक एक का अचलरूप होकर कैसे स्थित है? सर्व देवताओं में सूर्य का प्रकाश क्यों अधिक है और एकही सूर्य में दिन और रात्रि छोटे बड़े क्यों होते हैं; यह विचित्रता क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रसत्ता में अकस्मात् से जो आभास फुरा है उस आभास का नाम नेति है और सृष्टि भी आभासमात्र है किसी कारण करके नहीं उपजी। जिसके आश्रय आभास फुरता है वही वस्तु अधिष्ठान होती है, इससे जगत् सब ब्रह्मरूप है और चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित है, न उदय होती है और न अस्त होती है वह परिणाम से रहित सदा अद्वैतरूप स्थित है और उसमें न जाग्रत् है; न स्वप्न है और न सुषुप्ति है तीनों अवस्था आभासमात्र हैं पर चैतन्यसत्ता में इनसे द्वैत नहीं बना; यह तीनों इसी का स्वभाव प्रकाशरूप हैं–इससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे आकाश और शून्यता; वायु और निस्स्पन्द; अग्नि और उष्णता और कर्पूर और सुगन्ध में भेद नहीं; तैसेही जाग्रदादिक जगत् और ब्रह्म में भेद नहीं। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चित्तभाव हुआ है उसमें चैतन्य आभास फुरा है और उसमें

जैसा संकल्प फुरा है तैसेही स्थित हुआ है कि, यह इस प्रकार हो और इतने काल रहे; उसी संकल्प निश्चय का नाम नेति है। जैसे आदि संकल्प दृढ़ हुआ है, तैसेही अब तक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश अपने अपने भाव में स्थित हैं और अपने स्वभाव को नहीं त्यागते जब तक उनकी नेति है तब तक तैसेही जगत् सत्ता में स्थित हैं। हे रामजी! इसका नाम नेति है। जैसे आदि संकल्प धारा है तैसेही स्थित है और वास्तव में आभासरूप है। अकस्मात्से यह आभास फुरा है सो किसी सूक्ष्म अणु में फुरा है। जैसे समुद्र के किसी स्थान में तरङ्ग बुद्बुदे फुरते हैं, सम्पूर्ण समुद्र में नहीं फुरते; तैसेही जहां संवेदन में जैसा फुरना होता है तैसे ही स्थित होता है सो नेति है। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे समुद्र से भिन्न नहीं, तैसेही नेति आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे द्रवता से समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं, तैसेही आत्मा में संवेदन करके नेति और जगत् जो फुरते हैं सो वही रूप है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं जैसे किसी ने कहा कि, चन्द्रमा का प्रकाश है सो चन्द्रमा और प्रकाश में भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। यह विश्व आत्मा का स्वभाव है। जैसे एकही काल की दिन, पक्ष, बार, मास, वर्ष, युग, कल्प इत्यादिक बहुत संज्ञा हैं परन्तु काल एकही है, तैसेही भिन्न भिन्न जगत् के नाम हैं सो सब ब्रह्मही है। हे रामजी! जब संवेदन चित्त के सन्मुख होती है तब प्रथम शब्द तन्मात्रा फुरती है और उससे आकाश उपजता है जिसका स्वभाव शून्यता है; फिर जब वह स्पर्श-तन्मात्रा को चेता तब उससे इसमें वायु फुरा और वायु का स्पन्दस्वभाव है। फिर रूप तन्मात्रा को चेता तब उससे अग्नि प्रकट हुई जिसका उष्ण स्वभाव है। फिर रसतन्मात्रा को चेता तब उससे जल प्रकट हुआ जिसका द्रव स्वभाव है। फिर गन्ध तन्मात्रा को चेता तब उससे पृथ्वी प्रकट हुई जिसका स्थिर स्वभाव है। इस प्रकार पञ्चभूत फुर आये। हे रामजी! आदि जो शब्द तन्मात्रा फुरी है सो जितने कुछ शब्दसमूह हैं उनका बीज है सब उसी से उत्पन्न हुये हैं। पदार्थ, वाक्य, वेद, शास्त्र, पुराण सब उसी से फुरे हैं इसी प्रकार पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इनका

जो कार्य स्वभाव है सो सबका बीज आदिक इनकी तन्मात्रा है और उस तन्मात्रा का बीज वह संवित्सत्ता है। हे रामजी! अब इन तत्त्वों की खानि सुनो। पृथ्वी से अणु भी होती है और एकदला भी होती है सो पृथ्वी तो एक है और अणु भी वही है; तैसेही सर्व तत्त्वों को समझ देखना। पृथ्वी की खानि भू पीठ है जो सम्पूर्ण भूतजात को धारती है; जल की खानि समुद्र है जो सर्वपदार्थों में रसरूप होकर स्थित है; अग्नि का तेज जो प्रकाश है उसकी समष्टिता सूर्य है; सर्वस्पन्द समष्टिता पवन है और सम्पूर्ण शून्य पदार्थों की खानि आकाश है। इस प्रकार ये पांचों तत्त्व संकल्प से उपजे हैं। जैसे बीज से अंकुर उपजता है, तैसेही यह भूत संकल्प से उपजे हैं। संकल्प संवेदन से फुरा है और संवेदन आत्मा का आभास है जो अद्वैत, अच्युत, निर्विकल्प और सर्वदा अपने आपमें स्थित है। उसी के आश्रय संवेदन आभास फुरा है, फिर संवेदन से संकल्प फुरा है और संकल्प से जगत् बन गया है। जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं और लीन होते हैं; तैसेही संकल्प में जगत् उपजा है और फिर संकल्पही में लीन होता है। जैसे तरङ्ग जलरूप है, तैसेही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश सब चैतन्यरूप हैं। सर्वपदार्थ जो देखने सुनने में आते हैं और नहीं आते सो सब चैतन्यरूप हैं, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं; वही आत्मा इस प्रकार होता है। स्वप्न में अपना अनुभवही पदार्थ हो भासता है परन्तु कुछ बना नहीं। नाना प्रकार भासता है तो भी अनाना है तैसेही जगत नाना प्रकार भासता है तौभी कुछ बना नहीं। जैसे एक निद्रा के दो रूप हैं–एक स्वप्न और दूसरा सुषुप्ति–जब फुरना होता है तब स्वप्न की सृष्टि भासती है और जब फुरना निवृत्त होजाता है तब सुषुप्ति होती है और जैसे वायु के दो रूप हैं; जब स्पन्द होती है तब भासती है और जब निस्स्पन्द होती है तब नहीं भासती; तैसेही जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है और जब नहीं फुरती तब जगत् भी नहीं भासता–इसी का नाम महाप्रलय है–पर दोनों आत्मा के आभास हैं। हे रामजी! संकल्परूप ब्रह्मा बालक ने आत्मा में आकाश, पृथ्वी, नक्षत्र, चक्र

इत्यादि क्रम से रचे हैं जैसे बालक अपने में संकल्प रचे, तैसेही ब्रह्मा ने रचा है। उसने एक भूगोल रचा है जिस पर नक्षत्रचक्र रचा है और उस चक्र के दो भाग किये हैं जो अन्योन्य सम्मुख स्थित हैं। जब सूर्य उसके सन्मुख होता है तब सात घड़ी दिन और रात्रि का प्रमाण होता है। जब सूर्य उस नक्षत्रचक्र के ऊर्ध्व और उदय होता है तब दिन बड़े होते हैं और जब अध की ओर उदय होता है तब दिन छोटे होजाते हैं निदान ज्यों ज्यों सूर्य क्रम करके ऊर्ध्व से अध की ओर उदय होता है त्यों त्यों दिन छोटे होते जाते हैं और रात्रि बढ़तीजाती है और जब षट्मास के उपरान्त पौषत्रयोदशी से सूर्य क्रम करके ऊर्ध्व को उदय होता है तब दिन बढ़ता जाता है। आषाढ़ की द्वादशी से लेकर पौषत्रयोदशी पर्यन्त रात्रि बढ़ती है और दिन घटता है और फिर रात्रि घटतीजाती है और दिन बढ़ता जाता है। जब सूर्य उस चक्र के मध्य उदय होता है तब दिन और रात्रि समान हो जाता है परन्तु संवेदनरूप ब्रह्मा का सब संकल्प विलास है। जैसे शिल्पी शिला में पुतलियां कल्पता है और चेष्टा करता है पर बना कुछ नहीं शिलाही अपने घनस्वभाव में स्थित होती है; तैसेही चित्तरूपी शिल्पी आत्मारूपी शिला में जगत्रूपी पुतलियां कल्पता है परन्तु बना कुछ नहीं ब्रह्मसत्ता ही सदा अपने आपमें स्थित है। संवेदन फुरने से जब उसे रूप देखने की इच्छा होती है तब चक्षुइन्द्रिय बनजाती है जो रूप को ग्रहण करती है; जब स्पर्श की इच्छा होती है तब त्वचा इन्द्रिय बनजाती है जो स्पर्श को ग्रहण करती है; जब गन्ध की इच्छा होती है तब घ्राण इन्द्रिय बनकर गन्ध ग्रहण करती है; जब शब्द सुनने की इच्छा होती है तब श्रवण इन्द्रियां बनजाती हैं जो शब्दविषयों को ग्रहण करती हैं और जब रस की इच्छा होती है तब रसना इन्द्रिय प्रकट होकर स्वाद ग्रहण करती है। जब अपने और वायु देखने की ओर चेतती है तब अपने साथ वायु देखती है और उस वायु में प्राण फुरते देखती है। हे रामजी! देखना, सुनना, रसलेना, स्पर्श करना, बोलना और गन्धलेना जहां जहां इन्द्रियां विषयों

को ग्रहण करती गईं सो देश है; जिस विषय को ग्रहण करने लगती हैं सो पदार्थ हैं और जिस समय ग्रहण करने लगती हैं सो काल है इस प्रकार देश, काल और पदार्थ हुये हैं और फिर क्रम से शुभ अशुभ कर्म भासने लगे। हे रामजी ! इस प्रकार संवेदन ने फुरकर जगत् को रचा है और शरीर को रचकर इष्ट अनिष्ट को ग्रहण करती है। जो तुम कहो कि, इन्द्रियां तो भिन्न भिन्न हैं और अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं सर्व इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट इस जीवको कैसे होते हैं तो इसका दृष्टान्त सुनो। हे रामजी ! जैसे तुम एक हो और माला के दाने बहुत हैं पर सर्वका आश्रयसूत्र है; तैसेही अहंकाररूपी सूत्र में सर्व इन्द्रियरूपी दाने हैं, इस कारण अहंकार जीव आश्रयभूत इन्द्रियों के सुख से सुखी होता है और दुःख से दुःखी होता है। इन्द्रियां आपही से कार्य करने को समर्थ नहीं होतीं अहंकार जीव की सत्तासे चेष्टा करती हैं। जैसे शङ्ख को आपसे बजने की सामर्थ्य नहीं पर जब पुरुष बजाता है तो शब्द करता है; तैसेही इन्द्रियों की चेष्टा अहंकार और जीव से होती है। हे रामजी ! वास्तव में न कोई इन्द्रियां हैं, न इनके विषय हैं और न मन का फुरना है सर्व आभासमात्र है। जब संवेदन फुरती है तब इतनी संज्ञा धारती है और जब संवेदन निर्वाण होती है तब सर्वकल्पना मिट जाती हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवसंसारवर्णनं नाम द्विशताधिकसप्ततितमस्सर्गः ॥ २७० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह सम्पूर्ण कल्पना का क्रम मैंने तुमसे कहा है। जितना कुछ जगत् देखते हो सो संवेदनरूप है। शुद्ध चिन्मात्र सत्ता का आदि आभास और चैतन्यता का लक्षण चित्त अहं जो अस्मि है उसका नाम संवेदनहै और उसके इतने पर्याय हुये हैं कि, कोई तो ब्रह्मा कहते हैं; कोई विष्णु कहते हैं; कोई प्रजापति कहते हैं और कोई शिव आदि नाम लेते हैं। उस संवेदन ने आगे संकल्प फुरके विश्व रची जो अकारण है किसी कारण से नहीं बनी। काकतालीयवत् अकस्मात् आभास फुरा है और आकार सहित दृष्टि आती है परन्तु अन्तवाहक है

और व्यवहार सहित दृष्टि आती है परन्तु अव्यवहार है। हे रामजी! संवेदन जो अन्तवाहकरूप है उसने आगे विश्व रची है सो भी अन्तवाहकरूप है परन्तु अज्ञानी को संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिकरूप हो भासतीहै। जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर संकल्प से भिन्न नहीं और संकल्प की दृढ़ता से ही आकाररूप पहाड़, नदियां, घट, पट आदि पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं परन्तु बने तो कुछ नहीं शून्यरूप हैं; तैसेही यह जगत् निराकार शून्यरूप है। हे रामजी! आदि अन्तवाहकरूप संवेदनही बहिर्मुख फुरने से देश, काल, पदार्थरूप होकर स्थित हुई है। जब बहिर्मुख फुरना मिटजाता है तब जगत् आभास भी मिटजाता है। जैसे स्वप्ने का आभास जगत् तब तक भासता है जब तक निद्रा में सोया होता है पर जब जागता है तब स्वप्ने का जगत् मिट जाता है और एक अद्वैतरूप अपना आपही भासता है; तैसेही यह जगत अज्ञान के निवृत्त हुये लीन हो जाता है। सब जगत् निराकार है पर संकल्प की दृढ़ता से आकार भासते हैं। हे रामजी! संवेदन में जो संकल्प फुरता है वही अन्तःकरण चतुष्टय होके भासता है। पदार्थ के चितवने से इसका नाम चित्त होता है; संकल्प विकल्प के संसरने से इसका नाम मन होता है; ज्यों का त्यों निश्चय करने से इसका नाम बुद्धि होता है और वासना के समूह मिलने से पुर्यष्टका कहाती है पर सब संकल्पमात्र है और उनसे जगत् उपजा है वह भी संकल्परूप है। जैसे इन्द्रजाल की बाजी और स्वप्ने का नगर संकल्प की दृढ़ता से पिण्डाकार भासते हैं परन्तु सब आकाशरूप हैं; तैसे ही यह जगत् आकाशरूप है—आत्मा से भिन्न कुछ है नहीं। जो तुम कहो कि; भासता क्यों है? तो जिसमें भासता है उसे वही रूप जानो और देश, काल, नदी, पहाड़ पृथ्वी, देवता, मनुष्य, दैत्य, ब्रह्मा से आदि कीटपर्यन्त जो स्थावर-जङ्गमरूप जगत् भासता है सो सब ब्रह्मरूप है और वेद, शास्त्र, जगत, कर्म, स्वर्ग, तीर्थ इत्यादिक जो पदार्थ हैं वे भी सब ब्रह्मरूप हैं। वही निराकार अद्वैत ब्रह्मसत्ता संवेदन से जगत्‌रूप हो भासती है। जैसे स्वप्ने में अपना ही अनुभव सृष्टिरूप हो भासता है; तैसेही

अपनाही अनुभव यह जगत् हो भासता है और जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्ग हो भासता है पर जलही जल है; तैसेही शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन से जगत् आभास फुरता है सो ब्रह्म ही ब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! जो कुछ तुमको भासता है सो सब अच्युत और अनन्तरूप अपने आप में स्थित है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वब्रह्मरूपप्रतिपादनन्नाम द्विशताधिकैकसप्ततितमस्सर्गः॥ २७१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब द्रष्टा दृश्यरूप को चेतता है तब विश्व होती है सो विश्व सब अन्तवाहकरूप है। निराकार संकल्प को अन्तवाहक कहते हैं। जब दृश्य में अहंभाव से चैतन्यता रहती है तब अन्तवाहक से आधिभौतिक शरीर हो जाता है। आदि जो ब्रह्मा संवेदन फुरा है सो अन्तवाहक शरीर हुआ है और जब उसने बारम्बार अपने शरीर को देखा तब वह भी चतुष्टयमुख आधिभौतिक हो गया। उसने ओंकार का उच्चारण करके वेद और वेद के क्रम को रचा और संकल्प से विश्व रचा। जैसे कोई बालक मनोराज से बगीचा रचे और उसमें नाना प्रकार के वृक्ष, फल, फूल, टास और पत्र रचे; तैसेही ब्रह्माजी ने रचा और अन्तवाहक जीव उपजे और जब जीवों को शरीर में दृढ़ अभ्यास हुआ तब वे अन्तवाहक से आधिभौतिक हो गये। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ब्रह्मसत्ता तो निराकार थी उसको शरीर का संयोग कैसे हुआ है और उससे आधिभौतिकता कैसे होगई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई शरीर है। और न किसी को शरीर का संयोग हुआ है केवल अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें जो चैतन्य संवेदन फुरी है वही संवेदन दृश्य को चेतती रहती है। वही जगत्रूप होकर स्थित हुई है। जब संकल्प की दृढ़ता हुई तब अपने साथ शरीर और आकार भासने लगे परन्तु सब आकाशही रूप हैं—कुछ बने नहीं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि को उपजी कहिये तो उपजी नहीं और उसका कारण भी कोई नहीं केवल आकाशरूप है और कोई पदार्थ उपजा नहीं परन्तु स्वरूप के विस्मरण से

आकार भासते हैं; तैसेही यह शरीर और जगत् जो भासता है सो केवल आभासमात्र है और असंभावना की दृढ़ता से प्रत्यक्ष भासता है। जब स्वरूप का विचार करके देखोगे तब शान्त हो जावोगे। हे रामजी! अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं। जैसे स्वप्न के पदार्थ अविद्यमान होते हैं और विद्यमान भासते हैं पर जब जागता है तब अविद्यमान होजाते हैं; तैसेही यह जगत् अविचारसिद्ध है विचार किये से शान्त हो जाता है। जब विचार करके देखोगे तब सर्वात्मा ही भासेगा, हे रामजी! आत्मसत्ता अव्यभिचारी है अर्थात् सत्तामात्र है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता और अच्युत है अर्थात् सदा ज्यों का त्यों है अपने भाव को कदाचित् नहीं त्यागता इसलिये जो उससे भिन्न भासे उसे भ्रममात्र जानो। हे रामजी! विचार करके जब दृश्यभ्रम शान्त होता है तब मोक्ष प्राप्त होता है। आत्मसत्ता ज्ञानरूप और निराकार सदा अपने आपमें स्थित है। जब सम्यक्ज्ञान का बोध होता है तब जगद्भ्रम नष्ट होता है। रामजी ने पूछा हे मुनीश्वर! सम्यक् ज्ञान और बोध किसको कहते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! केवल जो बोधमात्र है सो बोध कहाता है और उसको ज्यों का त्यों जानना सम्यक् ज्ञान है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! केवल बोध और केवल ज्ञान किसको कहते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे राघव! दृश्य से रहित जो चिन्मात्र है उसको तुम केवल बोध जानो—उसमें वाणी की गम नहीं। इसी प्रकार अचेत चिन्मात्र सत्ता को ज्यों का त्यों जानना ही केवल ज्ञान है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! केवल बोध अचेत चिन्मात्र है तो उसमें जगत् भ्रम क्यों भासता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चिन्मात्र जो द्रष्टारूप है उसमें जब संवेदन चेतना फुरती है तब वही चेतना चैतरूप दृश्य हो भासती है। जैसे स्पन्द से रहित वायु निर्लक्षरूप होती है और जब स्पन्दरूप होती है तब स्पर्श से भासती है; तैसेही संवेदन से जो दृश्य भासती है सो वही संवेदन दृश्य हो भासती है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो द्रष्टा दृश्यरूप भासता है तो दृश्य बाहर क्यों भासता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसी कारण भ्रम कहा है कि; अपने भीतर है और बाहर भासती है। जैसे स्वप्न की

सृष्टि अपने ही अन्तर होती है पर वास्तव में न भीतर है और न बाहर है, आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है; तैसेही अब भी ज्यों की त्यों स्थित है, भीतर और बाहर भ्रम से भासती है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है और दृश्य भ्रम से भासती है तो शशे के सींग भी भ्रममात्र हैं वे क्यों नहीं भासते और अहं और त्वं क्यों भासते हैं? भूतों की चेष्टा तो प्रत्यक्ष भासती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अहं त्वमादिक जगत् भी कल्पनामात्र है। जैसे शशे के सींग कल्पनामात्र हैं और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है; तैसेही यह जगत् भी भ्रममात्र है। जैसे मृगतृष्णा का जल और संकल्पनगर भ्रममात्र है; तैसेही यह जगत् भ्रममात्रहै, किसी कारण से नहीं उपजा। जैसे स्वप्ने में शशे के सींग नहीं भासते हैं और जगत् भासताहै; तैसेही यह भ्रम है। रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में जगत् की स्मृति अनुभव से जानते हैं और कारण-कार्यभाव पाते हैं तो तुम भ्रममात्र कैसे कहते हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं यह कहता हूं कि; जो कारण से कार्य होता है सो सत्य होता है। तुम कहो कि, जगत् का कारण क्या है अर्थात् जैसे बीज से वट होता है; तैसेही इसका कारण कौन है? रामजी बोले; हे भगवन्! जगत् सूक्ष्म अणु से उपजता है और लीन भी सूक्ष्मतत्त्व के अणु में ही होता है। वशिष्ठजी ने पूछा, हे रामजी! सूक्ष्मअणु किसमें रहते हैं? रामजी बोले, हे मुनीश्वर! महाप्रलय में शुद्ध चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है और उसी में अणु रहते हैं। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! महाप्रलय किसको कहते हैं? जहां सर्व शब्द और अर्थ का अभाव है उसका नाम महाप्रलय है। वहां तो शुद्ध चिन्मात्र सत्ता रहती है जिसमें वाणी की गम नहीं तो उसमें सूक्ष्म अणु कैसे हों और कारण-कार्यभाव कैसे हो? रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जो शुद्ध चिन्मात्रसत्ता ही रहती है तो उसमें जगत् कैसे निकल आता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विश्व कुछ उपजा हो तो मैं तुमसे कहूं कि, इस प्रकार जगत् की उत्पत्ति होती है पर जो जगत् कुछ उपजाही नहीं तो इसकी उत्पत्ति कैसे कहूं? जब चिन्मात्र में चैतता फुरती है तब

जगत् अहं त्वमादिक भासता है सो फुरनाहीरूप है और कुछ उपजा नहीं–वही रूप है। हे रामजी! ज्ञान का जो दृश्य भ्रम से मिलाप है सो ही बन्धन का कारण है और उसका अभाव होना मोक्ष है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! ज्ञान के हुये जगत् का अभाव कैसे होता है? यह तो दृढ़ हो रहा है इसको शान्ति कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सम्यक्-ज्ञान से जो बोध होता है उस बोध से दृश्य का सम्बन्ध निवृत्त होता है। वह बोध निराकार और निज शीतलरूप है उसीसे मोक्ष में प्रवर्त्तता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! बोध तो केवलरूप है; सम्यक्ज्ञान किसको कहते हैं जिससे यह जीव बन्धन से मुक्त होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिस ज्ञान से ज्ञेय दृश्य का संयोग नहीं होता उसको केवल ज्ञानी अविनाशीरूप कहते हैं। जब ज्ञेय का अभाव होता है तब सम्यक्ज्ञान कहाता है। जगत् ज्ञेय अविचारसिद्ध है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! ज्ञान से ज्ञेय भिन्न है अथवा अभिन्न है और ज्ञान क्योंकर उत्पन्न होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! बोधमात्र का नाम ज्ञान है और उससे ज्ञान ज्ञेय भिन्न नहीं। जैसे वायु से वायुका फुरना भिन्न नहीं। रामजी ने पूछा कि, हे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के जाननेवाले! जो शशे के सींग की नाईं ज्ञेय असत्य है तो भिन्न होकर क्यों भासती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! बाह्य जगत् ज्ञेय भ्रान्ति से भासता है; उसका सद्भाव नहीं है और न भीतर जगत् है न बाहर जगत् है अर्थ से रहित भासता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अहं त्वमादिक तो प्रत्यक्ष भासते हैं और इनका अर्थ सहित अनुभव होता है तुम कैसे अभाव कहते हो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह सर्व जगत् विराट् पुरुष का वपु है सो आदि विराट्ही उपजा नहीं तो और की उत्पत्ति कैसे कहिये? रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! जगत् का सद्भाव तो तीनों कालों में पाया जाता है पर तुम कहते हो कि, उपजाही नहीं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसे स्वप्ने में सब जगत् अर्थ प्रत्यक्ष भासते हैं पर कुछ उपजे नहीं और जैसे मृगतृष्णा का जल; आकाश में द्वितीय चन्द्रमा और संकल्पनगर भ्रम से भासता है;

तैसेही अहं त्वमादिक जगत् भ्रम से भासता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अहं त्वमादिक जगत् दृढ़ भासता है तो कैसे जानिये कि, उपजा नहीं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पदार्थ कारण से उपजता है वह निश्चय सत्य जाना जाता है। जब महाप्रलय होती है तब कारण कार्य कुछ नहीं रहता सब शान्तरूप होता है और फिर उस महाप्रलय से जगत् फुरआता है। इसी से जाना जाता है कि; सब आभासमात्र है। रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! जब महाप्रलय होता है तब अज और अविनाशी सत्ता शेष रहती है, इससे जाना जाता है कि; वही जगत् का कारण है। वशिष्ठजी बोले हे रामजी। जैसा कारण होता है तैसाही उसका कार्य होता है उससे विपर्यय नहीं होता। जो आत्मसत्ता अद्वैत और आकाशरूप है तो जगत् भी वही रूप है। घट से पट की नाईं और तो कुछ नहीं उपजता? रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जब महाप्रलय होता है तब जगत् सूक्ष्मरूप होकर स्थित होता है और उसी से फिर प्रवृत्ति होती है। वशिष्ठजी बोले; हे निष्पाप, रामजी! महाप्रलय में जो तुमने सृष्टि का अनुभव किया सो क्या रूप होती है? रामजी बोले; हे भगवन्! ज्ञप्तिरूप सत्ता ही वहां स्थित होती है और तुम ऐसों ने अनुभव भी किया है कि; आकाशरूप है। सत्य और असत्य शब्द से नहीं कहा जाता। वशिष्ठजी बोले; हे महाबाहो! जो ऐसे हुआ तो भी जगत् तो ज्ञप्तिरूप हुआ—इससे जन्म मरण से रहित शुद्धज्ञानरूप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि, जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ भ्रममात्र है सो भ्रम कहां से आया है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् चित्त के फुरने से भासता है जैसे २ चित्त फुरता है तैसेही तैसे भासता है इसका और कोई कारण नहीं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो यह चित्त के फुरने से भासता है तो परस्पर विरुद्ध कैसे भासते हैं कि, अग्नि को जल नष्ट करता है और जल को अग्नि नष्ट करती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो द्रष्टा पुरुष है सो दृश्यभाव को नहीं प्राप्त होता और ऐसी कुछ वस्तु नहीं। भानरूप आत्माही चैतन्यघन सर्वरूप हो भासता है। रामजी ने पूछा;

हे भगवन्! चिन्मात्रतत्त्व आदि अन्त से रहित है और जब वह जगत् को चेतता है तब होता है पर तौ भी तो कुछ हुआ? जगत् को चेतका असंभव कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसका कारण कोई नहीं, इससे चेत का असंभव है। चेतन सदा मुक्ति और अवाच्यपद है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो इस प्रकार है तो जगत् और तत्त्व कैसे फुरते हैं और अहं त्वं आदिक द्वैत कहां से आये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! कारण के अभाव से यह जगत् कुछ आदि से उपजा नहीं सर्वशान्तरूप है और नाना भासता है सो भ्रममात्र है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! निर्मलतत्त्व जो सर्वदा प्रकाशरूप है सो निरुल्लेख और अचलरूप है उसमें भ्रान्ति कैसे है और किसको है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! कारण के अभाव से निश्चय करके जानो कि; भ्रान्ति कुछ वस्तु नहीं। अहं त्वं आदिक सर्व एक अनामय सत्ता स्थित है। रामजी ने पूछा; हे ब्राह्मण! मैं भ्रमको प्राप्त हुआ हूं इससे और अधिक पूछना नहीं जानता और अत्यन्त प्रबुद्ध भी नहीं तो अब क्या पूछूँ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह प्रश्न करो कि; कारण विना जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? जब विचार करके कारण का अभाव जानोगे तब परम स्वभाव अशब्दपद में विश्रान्ति पावोगे। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! मैं यह जानता हूं कि कारण के अभाव से जगत् कुछ उपजा नहीं परन्तु चैत का फुरना भ्रम कैसे हुआ वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! कारण के अभाव से सर्वत्र शान्तिरूप है। भ्रम भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं। जबतक आत्मपद में अभ्यास नहीं होता तबतक भ्रम भासता है और शान्ति नहीं होती पर जब अभ्यास करके केवल तत्त्व में विश्रान्ति पावोगे तब भ्रम मिट जावेगा। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अभ्यास और अनभ्यास कैसे होता है और एक अद्वैत में अभ्यास अनभ्यास भ्रान्ति कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अनन्ततत्त्व में शान्ति भी कुछ वस्तु नहीं और जो आभास शान्ति भासती है सो महाचिद्घन अविनाशरूप है। रामजी ने पूछा; हे ब्राह्मण! उपदेश और उपदेश के अधिकारी ये जो भिन्न २ शब्द हैं सो सर्व आत्मा

में कैसे भासते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! उपदेश और उपदेश के योग्य ये शब्द भी ब्रह्म ही में स्थित हैं। शुद्ध बोध में बन्ध और मोक्ष दोनों का अभाव है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो आदि में कुछ उत्पन्न नहीं हुआ तो देश, काल, क्रिया और द्रव्य के भेद कैसे भासते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देश, काल, क्रिया और द्रव्य के जो भेद हैं सो संवेदन दृश्य में हैं और अज्ञानमात्र भासते हैं—अज्ञानमात्र से कुछ भिन्न नहीं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! बोध को दृश्य की प्राप्ति कैसे हुई? जहां द्वैत और एकता कारण का अभाव है वहां दृश्यभ्रम कैसे है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! बोध की दृश्य प्राप्ति और द्वैत एक का भ्रम मूर्ख का विषय है; हम ऐसों का विषय नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अनन्त तत्त्व जो केवल बोधरूप है तो अहं त्वं हमारे में कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध बोध सत्ता में जो बोध का जानना है सो अहं त्वं करके कहाता है। जैसे पवन में फुरना है तैसेही उसमें चेतना फुरती है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जैसे निर्मल अचलसमुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे होते हैं सो कुछ जल से भिन्न नहीं; तैसेही बोध में बोधसत्ता से भिन्न कुछ नहीं जो अपने आपमें स्थित है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो ऐसे है तो किसका किसको दुःख हो। एक अनन्ततत्त्व अपने आपमें स्थित और पूर्ण है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो वह एक और निर्मल है तो अहं त्वं आदिक कलना कहां से आई और दृढ़ हुई कि, भोक्ता की नाईं भोगता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञेय जो दृश्यसत्ता है उसका जानना उसको बन्धन नहीं क्योंकि; ज्ञानही सर्व अर्थरूप होकर स्थित हुआ तो बन्ध और मोक्ष किसको हो? रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ज्ञप्ति जो बाह्यअर्थ को देखती है—जैसे आकाश में नीलता और स्वप्न में पदार्थ सो असत्यरूप सत्य हो भासते हैं; तैसेही यह बाह्य अर्थ भी असत्यही सत्य हो भासते हैं। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! कारण से रहित जो बाह्य अर्थ सत्य भी भासते हैं सो भ्रममात्र हैं—भिन्न कुछ नहीं? रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जैसे स्वप्नकाल में स्वप्ने के पदार्थों का दुःख होता है चाहे वे

सत्य हों अथवा असत्य हों तैसेही इस जगत में सत्य और असत्य का दुःख होता है परन्तु इसकी निवृत्ति का उपाय कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो इस प्रकार है कि; जगत् स्वप्न की नाईं है तो यह सब पिण्डाकार भ्रममात्र से भासताहै और सर्व अर्थ शान्तरूप है नानात्व कुछ नहीं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! स्वप्न और जाग्रत् में पिण्डाकार और पर अपररूप कैसे उत्पन्न होते हैं और कैसे शान्त होते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पूर्व अपर का विचार कीजिये कि; जगत् आदि में क्या रूप था और अन्त में क्या रूप होता है; जब ऐसा विचार होगा तब शान्ति हो जावेगी। जैसे स्वप्न में स्थूल पदार्थ पिण्डरूप भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं; तैसे ही जाग्रत्पदार्थ भी आकाशरूप हैं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जब भिन्नभाव की भावना प्राप्त होती है तब जगत् को कैसे देखता है और संस्कार भ्रम शान्त कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो निर्वासी पुरुष है उसके हृदय से जगत् का सद्भाव उठ जाता है जैसे संकल्पनगर और काग़ज़ की मूर्ति असत् भासती है, तैसेही उसको जगत् असत् भासता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जब वासना से रहित पिण्डभाव शान्त हुये जगत् को स्वप्नवत् जानता है तो उसके उपरान्त क्या अवस्था होती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी जगत् को जीव जब संकल्परूप जानता है तब वासना निर्वाण होजाती है और पञ्चतत्त्वों का क्रम उपजना और विनशना लीन हो जाता है। तब केवल परमतत्त्व भासता है और सब आकाशरूप होजाता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अनेक जन्म की जो वासना दृढ़ हो रही है और अनेक शाखा होकर फैली है इसलिये संसार का कारण घोरवासनाही है सो कैसे शान्त होती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब यथा भूतार्थज्ञान होता है तब आत्मा में भ्रान्तिरूप जगत् स्थित हुआ शान्त होता है। जब पिण्डाकार अर्थ पदार्थ सोजाता है तब कर्मरूप दृश्य चक्र भी शान्त होजाता है जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत् में नष्ट होजाते हैं; तैसेही आत्मतत्त्व के बोध से सब वासना नष्ट होजाती

हैं। रामजी ने पूछा हे मुनीश्वर! जब पिण्डग्रहण निवृत्त हुआ और कर्मरूप दृश्यचक्र निवृत्त हुआ तब फिर क्या प्राप्त होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब पिण्डग्रहण भ्रम शान्त होता है तब जीव निर्मल होकर क्षोभ से रहित होता है; जगत् आस्था दृश्य की शान्ति होजाती है और चित्त परमात्मतत्त्व को प्राप्त होता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! यह बालक के संकल्पवत् कैसे स्थित है? जो संकल्परूप है तो इसके जो जड़ में पदार्थ हैं उसके नष्ट हुये इसको दुःख क्यों प्राप्त होता है और इस जगत् की आस्था कैसे शान्त होती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पदार्थ संकल्प से उत्पन्न हुआ है उसके नष्ट करने में दुःख नहीं होता और जो पूर्व अपर विचार करके चित्त से रचा जानिये तो भ्रम शान्त होजाता है। रामजीने पूछा; हे भगवन्! चित्त कैसा है और उसेस कैसे रचा विचारिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चित्तसत्ता जो चैत्योन्मुखत्व फुरती है उसीको संकल्परूप चित्त कहते हैं। उससे रहित विचारने से वासना शान्त होजाती है। रामजी बोले; हे ब्रह्मन्! चैत्यसे रहित चित्त कैसे होता है और चित्त से उदय हुआ जगत् निर्वाण कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चित्त कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, अनहोता ही द्वैत भासता है—कुछ है नहीं। रामजी बोले; हे भगवन्! जगत् तो प्रत्यक्ष भासता है; जो उपजाही नहीं तो इसका अनुभव कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अज्ञानी को जो जगत् भासता है सो सत्य नहीं और ज्ञानवान् को जो भासता है सो अवाच्यसत्ता अद्वैतरूप है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अज्ञानी को तीनों जगत् जो सत्य नहीं कैसे भासते हैं और ज्ञानवान् को कैसे भासते हैं जो कहने में नहीं आता? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अज्ञानी को द्वैत सघन दृढ़ भासता है और ज्ञानवान् को सघन द्वैत नहीं भासता क्योंकि; आदि तो उपजा नहीं अद्वैत आत्मतत्त्व अवाच्यपद है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो आदि उपजा नहीं तो अनुभव भी न हो पर यह तो प्रत्यक्ष अनुभव होता है, इसे असत्य कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! असत्यही सत्य की नाईं हो भासता

है-इसी कारण रहित भासता है। जैसे स्वप्न में पदार्थका अनुभव होता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं, तैसेही यह असत्यही अनुभव होता है। रामजी बोले; हे भगवन्! स्वप्न में असंकल्प में जो दृश्यशङ्काका अनुभव होता है सो जाग्रत् के संस्कार से होता है और कुछ नहीं। वशिष्ठजी ने पूछा; हे रामजी! स्वप्ना और संकल्प उसके संस्कार से होता है सो जाग्रत् के संस्कार से कैसे होता है? वही रूप है अथवा जाग्रत् से अन्य है? रामजी बोले; हे भगवन्! स्वप्न के पदार्थ और मनोराज जाग्रत् के संस्कार से भ्रम से जाग्रत् की नाईं भासते हैं। वशिष्ठजी ने कहा; हे रामजी! जो स्वप्न में जाग्रत् संस्कार से जगत् जाग्रत् की नाईं भासता है कि; स्वप्न में किसीका घर लुट गया अथवा जल के प्रवाह में बह गया-तो जाग्रत् में तो कुछ हुआ नहीं क्योंकि; प्रातःकाल उठकर देखता है तब ज्यों का त्यों भासता है-तो संसार भी कुछ न हुआ सब कल्पनामात्र जानना। रामजी बोले; हे भगवन्! अब मैंने जाना कि; यह सब ब्रह्मही है, न कोई देह है, न जगत् है, न उदय है और न अस्त है; सर्वदाकाल सर्वप्रकार वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उससे भिन्न जो कुछ भासता है सो भ्रममात्र है और भ्रमभी कुछ वस्तु नहीं सर्व चिदाकाश ब्रह्मरूप है। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ भासता है सो सब ब्रह्मही का प्रकाश है। वही अपने आपमें प्रकाशता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! सर्ग के आदि में देह चित्तादिक कैसे फुर आये हैं और आत्माका प्रकाशरूप जगत् कैसे है? प्रकाश भी उसका होता है जो साकाररूप होता है परब्रह्म तो निराकार है उसका प्रकाश कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सर्वब्रह्मरूप है। प्रकाश और प्रकाशक का भेद भी कुछ नहीं और दूसरी वस्तु भी कुछ नहीं वही अपने आपमें स्थित है-इसी से स्वप्रकाश कहा है। सूर्य आदिक का प्रकाश त्रिपुटी से भासता है सो भी उसके आश्रय होकर प्रकाशता है और उसके प्रकाश का आधारभूत कहाता है जिसके आश्रय होकर सूर्य जगत् को प्रकाशता है। आत्मसत्ता अद्वैत और विज्ञानघन है उसमें जो

चित्तसंवेदन फुरी है वहीं जगत्रूप होकर स्थित हुई है। आत्मसत्ता और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं—वही इस प्रकार हुये की नाई स्थित हुआ है। हे रामजी! निराकार ही स्वप्नवत् साकाररूप हो भासता है। इस जगत् के आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता थी उसीसे जो नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आया सो वहीरूप हुआ और कारण तो कोई नहीं जैसे स्वप्न के आदि अद्वैतसत्ता निराकार है और उससे जो सूर्यादिक पदार्थ भासि आते हैं सोभी वहीरूप हुये पर प्रकट भासते भी हैं; तैसेही इस जगत् को भी अकारण और निराकार जानो। हे रामजी! न कोई जाग्रत् है; न स्वप्न है और न सुषुप्ति है सब आभासमात्र है—वही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। हमको तो वही सदा विज्ञानघन आत्मसत्ता भासती है जैसे दर्पण में अपना मुख भासता है; तैसे ही हमको अपना आप भासता है और अज्ञानी को भ्रान्तिरूप जगत् भासता है। जैसे वृक्ष के ठुन्ड में दूर से भ्रान्ति करके पुरुष भासता है; तैसेही अज्ञानी को जगत् भासता है। हे रामजी! न कोई द्रष्टा है और न दृश्य है। द्रष्टा तो तब कहिये जो दृश्य हो; और दृश्य तब कहिये जो द्रष्टा हो; जो दृश्य नहीं तो द्रष्टा किसका और जो द्रष्टाही नहीं तो दृश्य किसका? इससे निर्विकार ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है जो आकार भी भासते हैं तो भी निराकार है—आत्मसत्ताही संवेदन करके आकाररूप हो भासती है और जैसे थम्भे में चितेरा पुतलियां कल्पता है कि; इतनी पुतलियां थम्भे में निकलेंगी तो उसको खोदे विनाही प्रत्यक्ष भासती हैं; तैसेही खोदे विना ब्रह्मरूपी थम्भे में मनरूपी चितेरा ये पुतलियां देखता है सो हुआ कुछ नहीं। हे रामजी! इन मेरे वचनों को तुम स्वप्न और संकल्प दृष्टान्त से देखो कि; अनुभवरूपही आकार हो भासता है—अनुभव से भिन्न कुछ नहीं। इस मेरे वचनरूपी उपदेश को हृदय में धारो और अज्ञानियों के वचन को त्याग दो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्यावादबोधोपदेशो नाम द्विशताधिकद्विसप्ततितमस्सर्गः ॥ २७२ ॥

रामजी बोले; हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि; हम अज्ञान से जगत् को देखते थे। जगत् तो कुछ वस्तु नहीं सर्वब्रह्मही है और अपने आपमें स्थित है। यह जगत् भ्रम से भासता है। अब मैंने जाना कि; यह जगत् वास्तव में न पीछे था और न आगे होवेगा; सर्वशान्त निरालम्ब विज्ञानघनसत्ता है और भ्रान्ति भी कुछ वस्तु नहीं ब्रह्म ही अपने आपमें स्थित है जो निर्विकार और शान्तरूप है। जैसे स्वर्ग, परलोक, स्वप्न और संकल्पपुर के आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता होती है और उसका आभास संवेदन स्पन्द फुरती है तो अनेक पदार्थ सहित जगत् भासि आता है सो अनुभवरूप होता है भिन्न कुछ वस्तु नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभवरूप है। हे प्रभो! अब मैंने तुम्हारी कृपा से ऐसे निश्चय किया है कि; जगत् अविचारसिद्ध है और विचार किये से निवृत्त होजाता है। जैसे शशे के सींग और आकाश के फूल असत्य होते हैं; तैसेही जगत् असत्य है। बड़ा आश्चर्य है कि; असत्यरूप अविद्या ने जगत् को मोहित किया था। अब मैंने जाना कि; अविद्या कुछ वस्तु नहीं अपनी कल्पना ही आपको बन्धन करती है। जैसे अपनी परछाहीं में बालक भूत कल्पता है और आपही भय पाता है; तैसेही अपनी कल्पना ही अविद्यारूप भासती है पर जबतक विचार प्राप्त नहीं हुआ तभी तक भासती है विचार किये से उसका अत्यन्त अभाव होजाता। जैसे जेवरी में सर्प भासता है और जेवरी के जानेसे सर्पका अत्यन्त अभाव होजाता है। जैसे किसी स्थान में भ्रम से मनुष्य भासता है; तैसेही आत्मा में भ्रम से अविद्यारूप जगत् भासता है। जैसे आकाश के फूल और शशे के सींग कुछ वस्तु नहीं; तैसेही अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं। जैसे बन्ध्या का पुत्र भासे तो भी भ्रममात्र जाना जाता है और स्वप्ने में अपने मरने का अनुभव हो वह भी भ्रममात्र है; तैसेही अविद्यारूप जगत् भासता है तो भी असत्य है प्रमाणरूप नहीं। प्रमाण उसे कहते हैं जो यथार्थ ज्ञान का साधक हो पर यह जो प्रत्यक्ष प्रमाण है सो यथार्थकर्ता नहीं क्योंकि; वस्तुरूप आत्मा है सो ज्यों का त्यों नहीं भासता सीपी में रूपे के समान विपर्यय भासता है। यह प्रत्यक्ष

अनुभव भी होता है तो भी असत्यरूप है–प्रमाण क्योंकर जाने। हे भगवन्! यह जगत् और कुछ वस्तु नहीं केवल कल्पनामात्र है जैसे २ आत्मा में संकल्प दृढ़ होता है; तैसेही तैसे जगत् भासता है। जैसे जो पुरुष स्वर्ग में बैठा हो उसके हृदय में यदि कोई चिन्ता उपजे तो उसको स्वर्ग भी नरकरूप होजाता है क्योंकि; भावना नरक की होजाता है। हे भगवन्! यह जगत् केवल वासनामात्र है। आत्मा में जगत् कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना केवल यह जगत् चित्त में है। जैसे पत्थर की शिला में शिल्पी पुतलियां कल्पता है सो जैसी कल्पता है तैसेही भासती हैं–शिलासे भिन्न कुछ नहीं; तैसे ही आत्मा में चित्त ने जगत् पदार्थ रचे हैं और जैसे २ भावना करता है तैसेही तैसे यह भासता है। आत्मा में जगत् न कुछ हुआ है और न आगे होगा। ब्रह्मसत्ता केवल अपने आपमें स्थित है जो स्वच्छ, अद्वैत, परम मौनरूप और द्वैत और एक कल्पना से रहित है और परम मुनीश्वरों से सेवने योग्य है। ऐसा जो पद है सो मैंने पाया है और अपने आपमें स्थित और सर्वदुःखों से रहित हूं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रान्तिवर्णनन्नाम द्विशताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्गः ॥ २७३ ॥

रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! आदि, अन्त और मध्य से रहित जो पद है और जिसका मुनियों को भी जानना कठिन है वह पद मैंने पाया है और एक और द्वैत की कल्पना जो शास्त्र और वेदों में कही है वह मेरी मिट गई है। अब मैं परमशान्त होकर निश्शङ्क हुआ हूं और कोई दुःख मुझको नहीं रहा। सब जगत् मुझको आत्मरूप ही भासता है। हे भगवन्! अब मैंने जाना कि; न कोई अविद्या है; न विद्या है; न सुख है और न दुःख है मैं सर्वदा अपने आत्मपद में स्थित हूं और पाने योग्य पद पाया है जो आगे भी प्राप्त था। जो कहते हैं कि, हम उस पदको नहीं जानते उनको भी वह प्राप्तरूप है परन्तु वे अज्ञान से नहीं जानते। वह पद और किसी से नहीं जानाजाता अपने आपसे जाना जाता है और ऐसे भी नहीं है कि; किसी से जनाइये और जानने योग्य और हो; वह तो आपही बोधरूप है

और न कोई भ्रान्ति है; न जगत् है सर्व आत्माही है। हे मुनीश्वर! अज्ञान और ज्ञान भी ऐसे है जैसे स्वप्न की सृष्टि हो। जैसे उसमें अन्धकार भासता है सो तब नाश होता है जब सूर्य उदय हो। जब स्वप्न से जाग उठे तब न अन्धकार रहता है और न प्रकाश ही रहता है; तैसेही आत्मपद में जागेसे ज्ञान और अज्ञान दोनों का अभाव होजाता है और द्वितीय कल्पना मिट जाती है। जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है परन्तु जगत् आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं जैसे शिला का अन्तर जड़ीभूत होता है; तैसेही आत्मा का रूप जगत् है जैसे जल और तरङ्ग में भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् अभेदरूप है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष को ऐसे आत्मा में अहंप्रतीति हुई है वह कार्यकर्ता दृष्टि आता है तो भी हृदय के निश्चय से कुछ नहीं करता और अशान्तरूप दृष्टि आता है तो भी सदा शान्तरूप है। हे मुनीश्वर! अज्ञानरूपी मध्याह्न का सूर्य है और जगत् की सत्यतारूपी दिन है। जगत् का भाव अभाव पदार्थरूपी उसका प्रकाश है और तृष्णारूपी मरुस्थल है जिसमें अज्ञानी जीवरूपी मार्गपन्थी हैं उनको दिन और मार्ग निवृत्त नहीं होता। जो ज्ञानवान् स्वभाव में स्थित हैं उनको न संसार की सत्यतारूपी दिन भासता है और न तृष्णारूपी मरुस्थल भासता है। वे संसार की ओरसे सो रहे हैं। ऐसी अद्वैतसत्ता उनको प्राप्त हुई है जहां सत्य और असत्य दोनों नहीं इस कारण उन्हें जगत् का कलना नहीं भासती। हे मुनीश्वर! अब मैं जागा हूं और सब जगत् मुझको अपना आपही दृष्टि आता है। मैं निर्वाणरूप, निराकार, निरिच्छित और स्वभावसत्तारूप हूं। अब कोई दुःख मुझको नहीं। हे मुनीश्वर! उस पद को मैंने पाया है जिसके पानेसे तृष्णा कदाचित् नहीं उपजती। जैसे पाषाणकी शिला में प्राण नहीं फुरते, तैसेही मुझमें तृष्णा नहीं फुरती। सर्व आत्मरूप ही मुझको भासता है। यह जो जीव है उसमें जीवत्व कुछ नहीं; जीवत्व भ्रान्ति सिद्ध है सब आत्मस्वरूप है। मुझको तो निरालम्बसत्ता अपनी आपही भासती है।

इति श्रीयो० नि० रामविश्रांतिवर्णनन्नामद्विशताधिकचतुस्सप्ततितमस्सर्गः २७४

रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! आत्मा में अनन्तसृष्टि फुरती हैं। जैसे मेघ की बूंदों की गिनती नहीं होती, तैसेही परमात्मा में सृष्टि के अन्त की गिनती नहीं होती। जैसे एक रत्न की असंख्यात किरणें होती हैं; तैसेही परमात्मा में असंख्य सृष्टि हैं; कई परस्पर मिलतीं और कई नहीं मिलतीं परन्तु स्वरूप से एकरूप हैं। जैसे समुद्र में लहरें उठती हैं तो उनमें कई नूतन भिन्न २ और ही प्रकार की उठती हैं; कई परस्पर ज्ञात होती हैं और कई नहीं होतीं और एकही ज्वाला के बहुत दीपक होते हैं और कोई अन्योन्य और कोई परस्पर मिलते हैं और पर स्वरूप से एकरूप हैं तैसेही आत्मा में अनन्त जगत् फुरते हैं परन्तु परस्पर एकरूप हैं यदि नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आया तो उसमें वही रूप हुआ और कारण तो कोई नहीं? जैसे शून्य के आदि निराकार सत्ता होती है और उसी से सूर्यादिक पदार्थ भासि आते हैं सो भी वहीरूप हुये प्रकट भासते भी हैं परन्तु निराकार होते हैं; तैसेही यह जगत् भी अकारण निराकार है। हे मुनीश्वर! अब मैंने ज्यों का त्यों जाना है। जैसे स्वप्न में मुये हुये बोलते हैं, जीते हुये मृतक दृष्ट आते हैं और सब पदार्थ विपर्यय भासते हैं परन्तु जब जाग उठे तब सब ज्यों के त्यों भासते हैं; तैसेही मैं जाग उठा हूं अब मुझको विपर्यय नहीं भासता—यथाभूतार्थ मुझको अब सर्वात्माही भासता है। हे मुनीश्वर! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे परमसमाधि में स्थित हैं और उनको उत्थान कदाचित् नहीं होता अर्थात् स्वरूप से भिन्न नहीं भासता। वे व्यवहार करते दृष्टि आते हैं परन्तु व्यवहार से रहित हैं क्योंकि, उनको अभिलाषा कुछ नहीं रहती विना अभिलाषा चेष्टा करते हैं और उनको हृदय से कुछ कर्तृत्व का अभिमान नहीं फुरता। इसीका नाम परम समाधि है। जब बोध की प्राप्ति होती है तब तृष्णा कोई नहीं रहती और सब पदार्थ विरस होजाते हैं क्योंकि, आत्मपद परमानन्दरूप है और तृष्णा से रहित है। उसी का नाम मोक्ष है और उसी का नाम निर्वाण है, जिसमें उत्थान कोई नहीं। हे मुनीश्वर! आत्मानन्द ऐसा पद है जिसके आनन्द को ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक और ज्ञानवानों

की वृत्ति सदा दौड़ती है और संसार के पदार्थों की ओर नहीं धावती। जिस पुरुष को शीतल स्थान प्राप्त हुआ है वह फिर ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप को नहीं चाहता कि, मरुस्थल में दौड़े; तैसेही ज्ञानवान् की वृत्ति आनन्द की ओर नहीं धावती। हे मुनीश्वर! मैंने निश्चय किया है कि; तृष्णा का सा ताप कोई नहीं और अतृष्णा की सी शान्ति कोई नहीं। यदि कोई पुरुष परमैश्वर्य को प्राप्त हुआ हो पर उसको हृदय की तृष्णा जलाती हो तो वह कृपण और दरिद्री है और आपदा का स्थान है और जो निर्धन दृष्टि आता हो परन्तु उसके हृदय में कोई तृष्णा नहीं तो वह परमैश्वर्य से सम्पन्न है और परम सम्पदा की मूर्ति है। जो बड़ा पण्डित हो परन्तु तृष्णासहित हो तो उसे परम मूर्ख जानिये; उसको बोध की प्राप्ति कदाचित् न होगी। जैसे मूर्ति की अग्नि शीत को निर्वाण नहीं करती; तैसेही उसकी मूर्खता को पण्डित भी निर्वाण नहीं कर सक्ता। हे मुनीश्वर! सहस्रों में कोई बिरला पुरुष तृष्णा से रहित होता है। जैसे पिंजरे में पड़ा सिंह पिंजरे को तोड़कर निकले, तैसेही कोई बिरला तृष्णा के जाल को तोड़कर निकलता है। जो पण्डित स्वरूप को विचार के वितृष्णा नहीं होता और अतीत होकर वितृष्णा नहीं होता तो वे पण्डित और अतीत दोनों मूर्ख हैं। ज्यों ज्यों तृष्णा को घटावे त्यों त्यों जाग्रत् बोध उदय होगा। जैसे ज्यों ज्यों रात्रि की क्षीणता होती है, त्यों त्यों दिन का प्रकाश होता है और ज्यों ज्यों रात्रि की वृद्धि होती है त्यों त्यों दिन की क्षीणता होती है; तैसे ही ज्यों ज्यों तृष्णा बढ़ती जावेगी त्यों त्यों बोध की प्राप्ति कठिन होगी और ज्यों ज्यों तृष्णा घटती जावेगी त्यों त्यों बोध की प्राप्ति सुगम होगी। हे मुनीश्वर! अब मैं उस पद को प्राप्त हुआ हूं जो अच्युत, निराकार और द्वैत-एक कलना से रहित है। उस पद को मैंने आत्मा से जाना है और अब मैं निश्शङ्क हुआ हूं। जिस पद के पाये से कोई इच्छा नहीं रही सो परमानन्द आत्मपद है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रान्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकपञ्चसप्ततितमस्सर्गः॥ २७५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! बड़ा कल्याण हुआ है कि; तुम जागे

हो। ऐसे परम पावन वचन तुमने कहे हैं कि, जिनके सुनने से पाप का नाश होता है। ये वचन अज्ञानरूपी अन्धकार के नाशकर्ता सूर्य हैं और तन मनके तापको नाशकर्ता चन्द्रमा की किरणें हैं। हे रामजी ! जो पुरुष अपने स्वभाव में स्थित हैं उनको व्यवहार और समाधि में एकही दशा है और वे अनेक प्रकार की चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु उनके निश्चय में कर्तृत्व का अभिमान कुछ नहीं फुरता, वे सदा परमध्यान में स्थित हैं। जैसे पत्थर की शिला में स्पन्द कुछ नहीं फुरता; तैसेही उनको कुछ कर्तृत्व बुद्धि नहीं फुरती क्योंकि; उनके हृदय में देहाभिमान निवृत्त हुआ है और चिन्मात्र स्वस्वरूप में स्थित हुई है। वह आत्मपद परम शान्तरूप, द्वैत और कलना से रहित एक है। ऐसा जो पद है उसे ज्ञानवान् आत्मता से जानता है; उसको निर्वाण कहते हैं और उसी को मोक्ष कहते हैं। हे रामजी ! ऐसा जो पद है उसमें हम सदा स्थित हैं और ब्रह्मा, विष्णु से आदि लेकर जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे भी उसी पद में स्थित हैं। वे नाना प्रकार की चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु सदा शान्तरूप हैं और उनको क्रिया और समाधि में एकही आत्मपद का निश्चय रहता है। जैसे वायु स्पन्द और निस्स्पन्द में एकही है और जल और तरङ्ग ठहरने में एकही है; तैसेही ज्ञानी दोनों में सम है। जैसे आकाशरूप और शून्यता में भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! तुम्हारी कृपा से मुझको कोई कलना नहीं फुरती। ब्रह्मा विष्णु, रुद्र से आदि लेकर जो कुछ जगत् है सो सब आकाशरूप मुझको भासता है और सर्वदा काल सर्वप्रकार में अपने आपमें स्थित अच्युत और अद्वैतरूप हूं। मेरे में जगत् की कलना कोई नहीं; चित्संवेदनद्वारा मैं हीं जगत्‌रूप हो भासता हूं पर स्वरूप से कदाचित् चलायमान नहीं होता। मैं अचैत चिन्मात्रस्वरूप हूं और अपने आपसे भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! मैं जानता हूं कि, तुम जागे हो परन्तु अपने दृढ़बोध के निमित्त मुझसे फिर प्रश्न करो कि, "यह जगत् है नहीं" तो भासता क्या है? रामजी बोले; हे भगवन् ! मैं तुमसे तो

तब पूछूं जो मुझको जगत् का आकार भासता हो मुझको तो जगत् कुछ भासताही नहीं । जैसे संकल्प के अभाव हुये संकल्प की चेष्टा भी नहीं भासती; जैसे बाजीगर की माया के अभाव हुये बाजी नहीं रहती; स्वप्ने के अभाव हुये स्वप्ने की सृष्टि नहीं भासती और भविष्यत्कथा के पुरुष नहीं भासते; तैसेही मुझको जगत् नहीं भासता; तो फिर मैं किसका संशय उठाऊं ? आदि जो संवेदन फुरी है सो विराट् पुरुष होकर स्थित हुई है और उसी ने आगे देश, काल, पदार्थ, स्थावर-जंगम जगत् रचा है–उसी के समष्टि वपु का नाम विराट् है । जैसे स्वप्ने का पर्वत हो; तैसे ही यह विराट् पुरुष है जो आकाशरूप है । जो वह आप ही आकाशरूप है तो उसका रचा जगत् मैं क्यों पूछूं ? जैसे स्वप्ने की मृत्तिका आकाशरूप है अर्थात् जो उपजीही अनउपजी है तो उसके पात्रका मैं क्यों पूंछूं ? इसलिये न कोई विराट् है और न उसका जगत् है; मिथ्या ही विराट् है और मिथ्या ही उसकी चेष्टा है । केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है; न कोई जगत् है और न कोई उसका विराट् है । जैसे स्वप्ने का पर्वत आभासमात्र होता है तैसेही यह जगत् आकार भासता है । जैसे बीज से वृक्ष होता है; तैसेही ब्रह्म से जगत् प्रकट हुआ है । बल्कि, यह भी कैसे कहिये ? बीज तो साकार होता है और उसमें वृक्ष का सद्भाव रहता है जो परिणाम से वृक्ष होता है और आत्मा ऐसे कैसे हो; वह तो निराकार है और उसमें जगत् नहीं है क्योंकि; वह निर्विकार, अद्वैत और निर्वेद है उसको जगत् का कारण कैसे कहिये ? न कोई जाग्रत् है; न स्वप्ना है और न सुषुप्ति है; ये अवस्था भी आकाशमात्र हैं । आत्मा परिणाम भाव को नहीं प्राप्त होता वह तो सदा अपने आपमें स्थित है । हे मुनीश्वर ! मैं, तुम, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सब आकाशरूप है और अब मुझको सर्व आत्मा ही भासता है । हे मुनीश्वर ! एक सविकल्पज्ञान है और दूसरा निर्विकल्पज्ञान है सो आकाशवत् अचैत चिन्मात्र है । जो दृश्य के सम्बन्ध से रहित है उसे आकाशवत् निर्मल जानो; वही निर्विकल्पज्ञान है । जिनको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि, वे महापुरुष हैं उनको मेरा नमस्कार है और जिनको

दृश्य का संयोग है वे सविकल्प ज्ञानी हैं। वे संसारी हैं और उनको जगत् भिन्न भिन्न विषमता सहित भासता है परन्तु तौ भी भिन्न कुछ नहीं। जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरंग भासते हैं तो भी जल स्वरूप हैं; तैसेही भिन्न भिन्न जीव और उनका ज्ञान है तो भी मुझको अपना आपही भासता है। जैसे अवयवी को सब अङ्ग अपनेही भासते हैं; तैसेही सर्व जगत् मुझको अपना आपही केवल अद्वैतरूप भासता है और जगत् की कलना कोई नहीं फुरती। जैसे स्वप्न से जागे को स्वप्न की सृष्टि नहीं फुरती, कल्पना से रहित अपना आपही अद्वैत भासता है; तैसेही मुझको जगत् कल्पना से रहित अपना आपही भासता है। हे मुनीश्वर! आगम से लेकर जो शास्त्र हैं उनसे उल्लंघनकर मैंने वचन कहे हैं परन्तु जो मेरे हृदय में है वही कहा है। जो कुछ हृदयमें होताहै वही बाहरसे वाणी से कहा जाता है। जैसे जो बीज बोया है सोई अंकुर निकलता है, बीज विना अंकुर नहीं निकलता; तैसेही जो कुछ मेरे हृदय में है सोई वाणी से कहता हूं। यह विद्या सर्वप्रमाण से सिद्ध है। हे मुनीश्वर! जिसको यह दशा प्राप्त है वही जानता है और कोई नहीं जानसक्ता। जैसे जिसने मद्यपान किया है वही उन्मत्तता को जानता है और कोई नहीं जानसक्ता; तैसेही जो ज्ञानवान् है वही आत्मरस को जानता है और कोई नहीं जानता। उस आत्मरस के पाने से फिर कोई कल्पना नहीं रहती। हे मुनीश्वर! मैं आत्मा अजन्मा, अविनाशी और परमशान्तरूप हूं; उभय एक की कल्पना से रहित अचेत चिन्मात्र हूं और जगत्रूप हुये की नाईं भी मैं भासता हूं पर निराभास हूं; मेरे में आभास भी कोई वस्तु नहीं क्योंकि; निराकार हूं। इस प्रकार मैंने अपने आपको यथार्थ चिन्मात्र जाना है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रान्तिवर्णनन्नाम द्विशताधिकषट्सप्ततितमस्सर्गः॥ २७६॥

बाल्मीकिजी बोले, हे भरद्वाज! इस प्रकार कहकर रामजी एकमुहूर्त-पर्यन्त तूष्णी होगये अर्थात् उन्होंने परमात्मपद में विश्रान्ति पाई और इन्द्रियों और मन की वृत्ति आत्मपद में उपशम हुई। उसके उपरान्त

जानकर भी कमलनयन रामजी ने लीला के निमित्त प्रश्न किया हे संशयरूपी मेघ के नाशकर्ता शरत्काल ! मुझको एक कोमल सा संशय हुआ है उसको दूर करो ? हे मुनीश्वर ! आत्मपद अव्यक्त और अचिन्त्य है अर्थात् इन्द्रियों और मन का विषय नहीं और मन की चिन्तना में भी नहीं आता और जो बड़े महापुरुष हैं उनके कहने में भी नहीं आता तो ऐसा जो अचैत चिन्मात्र आत्मतत्त्व है वह शास्त्र से कैसे जाना जाता है ? शास्त्र तो अविच्छेद प्रतियोगी करके कहते हैं सो सविकल्प है पर सविकल्प से निर्विकल्प पद कैसे जाना जाता है कि; गुरु और शास्त्र से जानिये ? विकल्परूप शास्त्र हैं उनमें भी सार अर्थ मिलता है परन्तु विकल्प परिच्छेद प्रतियोगी जो उसके साथ हैं उनसे सर्वात्मा क्योंकर जानिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वह गुरु और शास्त्र से नहीं जाना जाता और गुरु और शास्त्र विना भी नहीं जाना जाता। हे रामजी ! नाना प्रकार के जो विकल्परूप शास्त्र हैं उनसे निर्विकल्परूप कैसे जानता है सो भी सुनो। हे रामजी ! व्यवधान देश के एक किटक थे जो गृहस्थी में रहते थे, निदान उनको आपदा प्राप्त हुई और चिन्ता से दुर्बल होने लगे और भोजन भी न मिले जैसे वसन्तऋतु की मञ्जरी ज्येष्ठ आषाढ़ के धूप से सूख जाती है और जैसे जल से निकला कमल सूख जाता है; तैसेही सम्पदारूपी जल से निकलकर आपदारूपी धूप से किटक सूख गये। तब उन्होंने विचार किया कि; किसी प्रकार हमारा उदर पूर्ण हो इसलिये हम वन में जाकर लकड़ी चुनें कि, हमारा कष्ट दूर हो। हे रामजी ! ऐसे विचार करके वे वनमें गये और लकड़ियां ले आये। इसी प्रकार वे लकड़ियां ले आवें और बाज़ार में बेंचकर उदर पूर्ण करें। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उनमें से किसी एक ने चन्दन की लकड़ी पहिंचानी और उनसे विशेष मोल पाया। इसी प्रकार एकको ढूँढ़ते ढूँढ़ते रत्न प्राप्त हुये और उनको विशेष ऐश्वर्य प्राप्त हुआ इसलिये उन्होंने लकड़ी उठानी छोड़ दी। वे फिर और स्थान ढूँढ़ने लगे कि; रत्न से भी विशेष कुछ पाइये और वन की पृथ्वी को खोदते २ उनको चिन्तामणि मिली, इसलिये

उनको बड़ाही ऐश्वर्य प्राप्त हुआ और जैसे ब्रह्मा; इन्द्रादिक हैं तैसे ही होगये। हे रामजी ! जिन्होंने उद्यम करके वन की सेवना की थी उनको बड़ा सुख प्राप्त हुआ कि; लकड़ियां उठाते २ उनका उदर पूर्ण हुआ और दुःख निवृत्त हुआ; जिनको चन्दन की लकड़ी प्राप्त हुई उनका उदर पूर्ण होने से और भी सन्ताप मिटे और जिनको चिन्तामणि प्राप्त हुई उनके सर्वसन्ताप मिट गये और वे परमैश्वर्यवान् हुये परन्तु सबको वन से प्राप्त हुआ और जो वन के निकट उद्यम करने न गये घरही बैठे रहे उन्होंने दुःखित होकर प्राणों को त्याग दिया परन्तु सुख न पाया।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिन्तामणिप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकसप्तसप्ततितमस्सर्गः ॥ २७७ ॥

रामजीने पूछा; हे भगवन् ! यह जो तुमने किटक का वृत्तान्त कहा उसका तात्पर्य मैंने कुछ न जाना। वे कीट कौन कौन थे; वह वन क्या था और आपदा क्या थी सो कृपा करके प्रकट कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! ये सर्वजीव जो तुम देखते हो सो सब कीट हैं और उनको अज्ञानरूपी आपदा लगी है और आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापों की चिन्ता से वे जलते हैं। आध्यात्मिक काम क्रोधादिक मानसी दुःख हैं; आधिभौतिक देह के वात, पित्त, कफ आदिक दुःख हैं और आधिदैविक वे दुःख हैं जो ग्रहों से अनिच्छित प्राप्त होते हैं। हे रामजी ! उनमें प्रयत्न करके जो शास्त्ररूपी वन में गये हैं सो सुखी भये और जो अर्थी सुखके निमित्त शास्त्ररूपी वन को सेवते हैं उनको सत्यकर्मरूपी लकड़ियां प्राप्त होती हैं जिनसे नरकरूपी उदर पूर्ण का जो दुःख था सो निवृत्त होता है और स्वर्गरूपी सुख पाते हैं। फिर शास्त्ररूपी वन को सेवते २ उपासनारूपी चन्दनवृक्ष प्राप्त होता है उससे और दुःख भी निवृत्त होते हैं और विशेष सुख को पाते हैं जब अपने इष्टदेव को सेवता है तब स्वर्गादिक विशेष सुख पाता है और अपने स्थान को प्राप्त होता है। फिर जब शास्त्ररूपी वन को ढूंढ़ता है तब विचाररूपी रत्नविशेष पाताहै। जब सत्य असत्य का विचार प्राप्त होता है तब सर्व दुःख नष्ट होजाते हैं। यह

जो सुख प्राप्त होता है सो शास्त्र से ही होता है। जैसे चन्दन और लकड़ियां आदि पदार्थ वन में प्रकट थे और चिन्तामणि गुप्त थी; तैसेही और शास्त्रों में धर्म, अर्थ और काम प्रकटहैं और ज्ञानरूपी चिन्तामणि गुप्त है। जब दूसरे शास्त्ररूपी वन को वैराग्य और अभ्यासरूपी यत्न से खोजे तब आत्मरूपी चिन्तामणि पाता है। हे रामजी! वन में ही उसने चिन्तामणि पाई थी क्योंकि; वहां चिन्तामणि का वन था परन्तु जब अभ्यास किया था तब पाई थी और उसी वन में पाई थी; तैसेही गुरु और शास्त्र का भी जब मट्टी के खोदने के समान अभ्यास करता है तब आपही चिन्तामणिवत् आत्मप्रकाश होता है। जैसे मट्टी के खोदने से चिन्तामणि का प्रकाश नहीं उपजता क्योंकि, चिन्तामणि तो आगेही प्रकाशरूप थी; खोदने से केवल आवरण दूर हुआ तब आपही भासि आई; तैसेही गुरु और शास्त्रों के वचन के अभ्यास से अन्तःकरण शुद्ध होता है तब आत्मसत्ता स्वतः प्रकाश आतीहै। गुरु और शास्त्र हृदय की मलीनता दूर करते हैं और जब मलीनता दूर होती है तब आत्मसत्ता स्वाभाविक प्रकाशती है। इससे गुरु और शास्त्रों से मलीनता दूर होती है परन्तु इनकी कल्पना भी द्वैत में होती है सो कल्पना द्वैत संसार को नाश करनेवाली है। परमार्थ की अपेक्षा से शास्त्र और गुरु भी द्वैत कल्पना है और अज्ञानी की अपेक्षा से गुरु और शास्त्र कृतार्थ करते हैं और इनके अभ्यास से आत्मपद पाता है। प्रथम अज्ञानी शास्त्र को भोग के निमित्त सेवतेहैं और शास्त्र में भोग का अर्थ जानते हैं। जैसे लकड़ियों के निमित्त वे कीट वन को सेवते थे। शास्त्र में सब कुछ है; जैसे जिसको रुचि से अभ्यास होता है तैसेही पदार्थ उसको प्राप्त होते हैं। शास्त्र एकही है परन्तु पदार्थों में भेदहै। जैसे पौंड़े के रससे गुड़, शक्कर और मिश्री होतीहै; तैसेही शास्त्र एकहै उसमें पदार्थ भिन्न २ हैं जिस २ अर्थ के पाने के निमित्त कोई यह यत्न करेगा उसी को पावेगा—शास्त्र में भोग भी हैं और मोक्ष भी हैं। अज्ञानी भोग के निमित्त यत्न करते हैं परन्तु वे भी धन्य हैं क्योंकि; शास्त्र तो सेवने लगे; उन्हें सेवते २ कभी किसी काल में आत्मपदरूपी चिन्ता-

मणि भी प्राप्त होवेगी परन्तु आत्मपद पाने के निमित्त शास्त्र श्रवण करना योग्य है। सुन सुनकर अभ्यासद्वारा आत्मपद प्राप्त होगा आत्मपद पाने से तब सर्व ओर से समभाव होगा। जैसे सूर्य के उदय हुये सर्व ओर से प्रकाश फैल जाता है; तैसेही सर्व ओर से समता प्रकाशेगी तब सुषुप्ति की नाईं स्थित होगी अर्थात् द्वैत और एक कलना भी शान्त होजावेगी और अनुभव अद्वैत में जाग्रत होगी परन्तु सन्तों के संग और शास्त्रों के विचार अभ्यासद्वारा होगी। जो जन परोपकारी संसारसमुद्र से पार करनेवाले हों सोही सन्तजन हैं; उनके संग से आत्मपद प्राप्त होगा। हे रामजी! गुरु और शास्त्र नेति नेति करके जानते हैं अर्थात् अनात्मधर्म को निषेध करके आत्मतत्त्व शेष रखते हैं। जब अनात्मधर्म को त्याग करोगे तब आत्मतत्त्व शेष रहेगा। उसको जान लोगे तो उसके जाने से और कुछ जानना नहीं रहता और उसके जानने में यत्न भी कुछ नहीं केवल आवरण दूर करने के निमित्त यत्न है। जैसे सूर्यके आगे बादल आता है तो सूर्य नहीं भासता इसलिये बादलों के दूर करने का यत्न चाहिये सूर्य के प्रकाश के निमित्त यत्न नहीं चाहिये। जब बादल दूर होते हैं तब स्वाभाविक ही सूर्य प्रकाशता है; तैसेही गुरु और शास्त्र के यत्न से जब अहंकाररूपी आवरण दूर होते हैं तब सुप्रकाश आत्मा भासि आता है सात्त्विकगुणी जो गुरु और शास्त्र हैं उनसे जब रज और तमगुणों का अभाव होता है तब परम अनुभव ज्योति आत्मा अकस्मात् प्रकाशि आता है और जब वह प्रकाश हुआ तब उसमें उन्मत्त होजाता है और द्वैतरूपी संसार की कल्पना नहीं रहती। जैसे सुन्दर स्त्री को देखकर कामी पुरुष उन्मत्त होजाता है और संसार की सुरति भूलजाती है; तैसेही ज्ञानी आत्मपद को पाकर उन्मत्त होता है और संसारकी सुरति उसे भूलजाती है और परमैश्वर्यवान् होता है उसका साधन केवल शास्त्र का विचार है। वनके सेवने से चिन्तामणि पाने का जो दृष्टान्त कहा है सो जानलेना।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे गुरुशास्त्रोपमावर्णनं नाम द्विशताधिकाष्टसप्ततितमस्सर्गः ॥ २७८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो कुछ सिद्धान्त सम्पूर्ण है सो मैंने तुमसे विस्तारपूर्वक कहा है उसके सुनने और बारम्बार विचारने से मूढ़भी निरावरण होंगे तो उत्तम पुरुष को निरावरण होने में क्या आश्चर्य है ? हे रामजी ! यह मैं भी जानता हूं कि; तुम विदितवेद हुये हो प्रथम मैंने उत्पत्तिप्रकरण तुमसे कहा है कि; जगत् की उत्पत्ति चित्तसंवेदन से हुई है, फिर स्थिति-प्रकरण कहा है कि; जगत् की स्थिति इस प्रकार हुई है । उत्पत्ति यह कि, चित्तसंवेदन के फुरने से जगत् उपजा है और संवेदन फुरने की दृढ़-तासेही उसकी स्थिति हुई है । उसके उपरान्त उपशमप्रकरण कहा है कि; मन इस प्रकार अफुर होता है । जब चित्त उपशम हुआ तब परम कल्याण हुआ । मन के फुरने का नाम संसार है । जब मन उपशम होजाता है तब संसार की कल्पना मिट जाती है । यह सम्पूर्ण विस्तारपूर्वक कहा है परन्तु अब जानता हूं कि; तुम बोधवान् हुये हो । हे रामजी ! मैंने तुमसे प्रथम भी आत्मज्ञान का उपाय कहा है और जिनको ज्ञान प्राप्त हुआ है उनके लक्षण भी कहे हैं और अब भी संक्षेप से कहता हूं । प्रथम बालअवस्था में सन्तजनों का संग करना चाहिये और सच्छास्त्रों को विचारना चाहिये । इस शुभ आचार से अभ्यासद्वारा जब आत्मपद की प्राप्ति होती है तब समता प्राप्त होती है और सबका सुहृद होजाता है । सुहृ-दता परमानन्दरूप जननी है जो सदा संग रहती है । जैसे सुन्दर पुरुष को देखकर उसकी स्त्री प्रसन्न होती है और प्राणका त्यागना भी अङ्गीकार करती है परन्तु उस पुरुष को नहीं त्यागती; तैसेही जिस ज्ञानवान् पुरुष की ब्रह्म लक्ष्मी से सुन्दर कान्तिहै उसको समता, मुदिता और सुहृदतारूपी स्त्री नहीं त्यागती; सदा उसके हृदयरूपी कण्ठ में लगी रहती है और वह पुरुष सदा प्रसन्न रहता है । हे रामजी ! जिसको देवताओं का राज्य प्राप्त होता है वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं होता और जिसको सुन्दर स्त्रियां प्राप्त होती हैं वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं होता जैसा ज्ञानवान् प्रसन्न होता है । हे रामजी ! समता तो द्विधारूपी अन्धकार का नाशकर्ता सूर्य है और तीनों तापरूपी उष्णता के नाश करने को पूर्णमासी का चन्द्रमा

है सुहृदता और समता सौभाग्यरूपी जल का नीचास्थान है। जैसे जल नीचे स्थान में स्वाभाविक ही चला जाता है; तैसेही सुहृदता में सौभाग्यता स्वाभाविक होती है। जैसे चन्द्रमा की किरणों के अमृत से चकोर तृप्तवान् होता है; तैसे ही आत्मरूपी चन्द्रमा की समता और सुहृदतारूपी किरणों को पाकर व्रतादिक चकोर तृप्त होकर आनन्दवान् होते हैं और जीते हैं। हे रामजी! वह ज्ञानवान् ऐसी कान्ति से पूर्ण है जो कदाचित् क्षीण नहीं होती। जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में भी उपाधि दृष्ट आती है परन्तु ज्ञानवान् के मुख में तैसी भी उपाधि नहीं। जैसे उत्तम चिन्तामणि की कान्ति होती है, तैसेही ज्ञानवान् की कान्ति होती है जो राग द्वेष से कदाचित् क्षीण नहीं होती। वह सदा प्रसन्न रहता है। हे रामजी! समताही मानों सौभाग्यरूपी कमलकी खानि है समदृष्टि पुरुष ऐसे आनन्दके लिये जगत् में विचरता है और प्राकृत आचार को करता है। वह भोजन करता है, ग्रहण करता है, वा कुछ लेता देता है सबलोग उसके कर्तृत्व की स्तुति करते हैं। हे रामजी! ऐसा पुरुष ब्रह्मादिकों से भी पूजने योग्य है; सबही उसका मान करते हैं और सब उसके दर्शन की इच्छा करते हैं और दर्शन करके प्रसन्न होते हैं। जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं और सर्वहुलास को प्राप्त होते हैं; तैसेही उसका दर्शन करके सब हुलास को प्राप्त होते हैं। वह जो करता है सो शुभ आचार ही करता है और जो कुछ और भी कर बैठता है तो भी उसकी निन्दा लोग नहीं करते क्योंकि; जानते हैं कि; यह समदर्शी है। समतासे वह सबका सुहृद होता है और शत्रु भी उसके मित्र होजाते हैं। जिनको समताभाव उदय हुआ है उनको अग्नि जला नहीं सक्ता; जल डुबा नहीं सक्ता और वायु सुखा नहीं सक्ता। वह जैसी इच्छा करे तैसेही सिद्धि होती है। हे रामजी! जिसको समता प्राप्त हुई है वह पुरुष अतोल होजाता है और संसार की उपमा उसको कोई दे नहीं सक्ता। जिसको समता नहीं प्राप्त हुई वह सबके संग सुहृदता का अभ्यासकरे तो जो उसका शत्रु हो वह भी मित्र होजाता है क्योंकि; अभ्यास की दृढ़ता से

शत्रु भी मित्र भासने लगते हैं। जो सर्वमें समता का अभ्यास करता है वही दृढ़ होता है और समताभाव से कदाचित् चलायमान नहीं होता। हे रामजी! एक राजा था उसने अपने शरीर का मांस काट क्षुधार्थी को दिया परन्तु समता से चलायमान न हुआ; ज्यों का त्यों रहा। एक पुरुष को उसकी पुत्री अति प्यारी थी और उसने उसे किसी को दिया जिसने शत्रु को दी परन्तु वह ज्यों का त्यों रहा। एक और राजा था जिसको स्त्री अति प्यारी थी पर उसने उसका कुछ व्यभिचार सुना और मारडाला परन्तु समतारूप धर्म को न त्यागा। हे रामजी! जब राजा के गृह में मङ्गल होता है तब वह अपने नगर को भूषणों और वस्त्रों से सुन्दर करता है और प्रसन्न होता है सो अवस्था राजा जनक की देखी थी। एक समय उसने सर्वस्थान अति प्रज्वलित अग्निसे जलते देखे पर अपने समताभावसे चलायमान न हुआ। एक और राजा था उसने राज्य भी और को दे दिया और आप राज्य विना बिचरता रहा परन्तु समताभाव से चलायमान न हुआ। हे रामजी! एक दैत्य था उसको देवताओं का राज्य मिला और फिर राज्य नष्ट होगया परन्तु दोनों भावों में वह सम ही रहा। एक बालक था उसने चन्द्रमाको लड्डू जानकर फूंक मारी परन्तु वह ज्यों का त्यों रहा। हे रामजी! इसी प्रकार मैंने अनेक देखे हैं जिनको सम्यक् आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है और वे सुख दुःख से चलायमान नहीं हुये। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी का प्रारब्धभोग तुल्य है परन्तु अज्ञानी राग द्वेष से तपायमान होता है और ज्ञानी दृढ़ समझके वश से तपायमान नहीं होता, सर्व अवस्थाओं में उसको समताभाव होता है। जो फल आत्मपदके साक्षात होने से प्राप्त होता है सो तप, तीर्थ, दान और यज्ञसे प्राप्त नहीं होता। जब अपना विचार उत्पन्न होता है तब सर्वभ्रान्ति निवृत्त होजाती हैं और सर्व जगत आत्मरूपही भासता है। इसी दृष्ट को लिये ज्ञानी प्राकृत आचार में बिचरते हैं परन्तु निश्चयमें सदा निर्गुण हैं। रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! ऐसी अद्वैतदृष्टि-निष्ठा जिनको प्राप्त हुई है उनको कर्मों के करने से क्या प्रयोजन है; वे

त्याग क्यों नहीं करते? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष अद्वैतनिष्ठ हैं उनसे त्याग ग्रहण की भ्रान्ति चली जाती है और उस भ्रम से रहित होकर वे प्रारब्ध के अनुसार चेष्टा करते हैं। हे रामजी! जो कुछ स्वाभाविक क्रिया उनको बनपड़ी है उसका वे त्याग नहीं करते। उसमें उनको ज्ञान प्राप्त हुआ है सो आचार करते हैं—और को ग्रहण नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते। हे रामजी! जिनको गृहस्थीही में ज्ञान प्राप्त हुआ है वे गृहस्थीही में बिचरते हैं और उसका त्याग नहीं करते—जैसे हम स्थित हैं और जिनको राज्य में ज्ञान प्राप्त हुआ है सो राज्यही में रहेहैं—जैसे तुम हो। जो ब्राह्मण को ज्ञान प्राप्त हुआ है वह ब्राह्मण ही के कर्मों में रहे हैं और इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जिस वर्णाश्रम में किसी को ज्ञान प्राप्त हुआ है वही कर्म करता है। हे रामजी! कई ज्ञानवान् गृहस्थी ही में रहे हैं; कई राज्यही करते हैं; कई संन्यासी हो रहे हैं; कई वन में बिचरते फिरते हैं; कई पर्वत कन्दरा में ध्यान स्थित हो रहे हैं; कई नगरों में रहते रहे हैं; कई मथुरा, केदारनाथ, प्रयाग, जगन्नाथ इत्यादिक में रहे हैं; कई देवता का पूजन; कई कर्म; कई तीर्थ और अग्निहोत्र करते हैं और कई हमारी नाईं जप करते हैं। कई अस्ताचल पर्वत में; कई उदयाचल पर्वत में और कई मन्दराचल, हिमाचल इत्यादिक पर्वत स्थानों में बिचरते रहे हैं। कई शास्त्र विहित कर्म करते रहेहैं; कई अवधूत होरहे हैं; कई भिक्षा मांग मांग भोजन करते रहे हैं; कई कठिन वचन बोलते रहे हैं; कई अज्ञानी हुये बिचरते रहे हैं और कई विद्याध्ययन इत्यादिक नानाप्रकार की चेष्टा करते रहे हैं क्योंकि; उनको चेष्टा स्वाभाविक प्राप्त हुई है; वे यत्न से कुछ नहीं करते। हे रामजी! वे शुभकर्म करें अथवा अशुभकर्म करें परन्तु कोई क्रिया उनको बन्धन नहीं करती और जो अज्ञानी हैं सो जैसे कर्म करेंगे तैसेही फल को भोगेंगे। जो पुण्यकर्म करेंगे तो स्वर्गसुख भोगेंगे और पाप से नरकदुःख भोगेंगे। जो कामना से रहित शुभकर्म करेगा उसका अन्तःकरण शुद्ध होगा और सन्तों के संग और सच्छास्त्रों से शुद्धता को प्राप्त होगा। हे रामजी! जो अर्धप्रबुद्ध हैं वे पाप करने लग जावें और आत्म-

अभ्यास त्याग दें तो वे दोनों मार्गों से भ्रष्ट हैं—न स्वर्ग को प्राप्त होते हैं और न आत्मपद को प्राप्त होते हैं। तप, दान, तीर्थादिक सेवने से भी आत्मपद नहीं प्राप्त होता; जब विचार उपजता है और आत्मपद का अभ्यास होता है तभी आत्मपद मिलता है और जब आत्मपद प्राप्त होता है तब निश्शङ्क होजाता है और चेष्टाव्यवहार करता भी दृष्ट आता है परन्तु उसका चित्त शान्त होजाता है। जैसे तांबे को जब पारस का स्पर्श कीजिये तब वह सुवर्ण होजाता है; आकार उसका नष्ट ही रहता है परन्तु तांबेभाव का अभाव होजाता है तैसेही जब चित्त को आत्मपद का स्पर्श होता है तब चित्त शान्त होजाता है परन्तु चेष्टा उसी प्रकार होती है और जगत् की सत्यता नष्ट होजाती है। हे रामजी! अब तुम जागे हो और निश्शङ्क हुये हो। राग द्वेष तुम्हारा नष्ट होगया है और तुम निर्विकार आत्मपद को प्राप्त हुये हो। जन्म, मृत्यु, बढ़ना, घटना, युवा और वृद्ध होना; इन सर्वविकारों से रहित आत्मपद को तुमने पाया है और सर्वका अधिष्ठान जो परम शुद्ध चैतन्य है सो तुमको प्राप्त हुआ है। हे रामजी! जो कुछ मुझको कहना था सो कहा। यह सार का सार आत्मपद है और जो कुछ जानने योग्य था सो तुमने जाना इसके उपरान्त न कुछ कहना रहा है और न कुछ जानना रहा है—यहींतक कहना और जानना है। अब तुम निश्शङ्क होकर बिचरो तुमको संशय कोई नहीं रहा और क्षय और अतिशय से रहित पद तुमने पाया है अर्थात् तुमने अविनाशी और सर्वसे उत्तम पद पाया है। बाल्मीकिजी बोले; हे साधो! जब इस प्रकार मुनियों में शार्दूल वशिष्ठजी कहकर तूष्णीं होरहे तब सर्वसभा जो बैठी थी सो परम निर्विकल्पपद में स्थित होगई और जैसे वायु से रहित कमल फूल पर भँवरे अचल होते हैं, तैसेही चित्तरूपी भँवरे आत्मपदरूपी कमल के रस को लेते हुये स्थित हो रहे। सबके सब ब्रह्म को जानकर ब्रह्मरूप हुये और ब्रह्महीं में स्थित हुये। निकट जितने मृग थे वे भी तृण का खाना छोड़कर अचल होगये; दूसरे पशु; पक्षी भी सुन-कर निस्स्पन्द हो रहे और स्त्रियां जो बालकों संयुक्त चपल थीं वे सुनकर

जड़वत् हो गईं पूर्व जो मुक्तिवान् सिद्धों के गण मोक्ष के उपाय के श्रवण को आये थे और देवता अरु सिद्धों ने तमाल, कदम्ब, पारिजात, कल्प इत्यादिक दिव्यवृक्षों के फूलों की वर्षा की और नगाड़े, भेरी और शंख, बजने और वशिष्ठजी की स्तुति करनेलगे। निदान बड़े शब्द हुये जिनसे दशों दिशा पूर्ण होगईं और ऊपर से देवताओं और सिद्धों के नगाड़ों के शब्द हुये जिनसे पर्वतों में शब्द भाव उठे और दिव्यफूलों की ऐसी सुगन्ध फैली—मानों पवन भी रञ्जित हुआ है। तब सिद्धों ने कहा; हे वशिष्ठजी! हमने भी अनेक मोक्ष के उपाय सुने और उच्चार किये परन्तु जैसा तुमने कहा है तैसा न आगे सुना है; न गाया है और न कहा है। जो तुम्हारे मुखारविन्द से श्रवण किया है उससे हम परमासिद्धान्त को जानगये हैं। इसके श्रवण से पशु, पक्षी और मृग भी कृतार्थ हुये हैं और मनुष्यों की तो क्या वार्ता कहिये वे तो कृतार्थ ही हुये हैं और निष्पाप ज्ञान को पाकर मुक्त होंगे। बाल्मीकिजी बोले; हे साधो! ऐसे कहकर उन्होंने फिर फूलों की वर्षा की और वशिष्ठजी को चन्दन का लेप किया। जब इस प्रकार वे पूजा कर चुके तब और जो निकट बैठे थे सो परम विस्मय को प्राप्त हुये कि; ऐसा परम उपदेश वशिष्ठजी ने किया। तब राजा दशरथ उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर वशिष्ठजी को नमस्कार करके बोला; हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से हम षडैश्वर्यों से सम्पन्न हुये हैं। हे भगवन्! तुमने सम्पूर्ण शास्त्र सुनाया है जिसको सुनकर हम पूजन करने के योग्य हैं; इसलिये हे देव! हम तुम्हारा पूजन किससे करें? ऐसा कोई पदार्थ पृथ्वी, आकाश और देवताओं में भी नहीं दृष्ट आता जो तुम्हारी पूजा के योग्य हो—सर्वपदार्थ कल्पित हैं; और जो सत्य पदार्थ से पूजा करें तो सत्य तुमहीं से पाया है। इससे ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो तुम्हारी पूजा के योग्य हो तथापि अपनी २ शक्ति के अनुसार हम पूजन करते हैं तुम क्रोधवान् न होना और हँसी भी न करना। हे मुनीश्वर! मैं राजा दशरथ; मेरे अन्तःपुर की सम्पूर्ण स्त्रियां; मेरे चारों पुत्र; मेरा सम्पूर्ण राज्य और सम्पूर्ण प्रजासहित जो कुछ मैंने लोक में

यश किया है और परलोक के निमित्त पुण्य किया है वह सर्व तुम्हारे चरणों के आगे निवेदन करता हूं। हे साधो! इस प्रकार कहकर राजा दशरथ वशिष्ठजी के चरणों पर गिरे। तब वशिष्ठजी बोले; हे राजन्! तुम धन्य हो, जिनको ऐसी श्रद्धा है परन्तु हम तो ब्राह्मण हैं हमको राज्य क्या करना है और हम राज्य का व्यवहार क्या जानें। कभी ब्राह्मण ने राज्य किया है; राजा तो क्षत्रिय ही होते हैं; इसलिये तुमहीं से राज्य होगा। यह जो तुम्हारा शरीर है उसे मैं अपना ही जानता हूं और ये तेरे चतुष्टय पुत्र मैं आगे से अपने जानताहूं। हम तो तुम्हारे प्रणामसे ही संतुष्ट हैं; यह राज्य का प्रसाद हमने तुमको ही दिया। फिर बाल्मीकिजी बोले कि; जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब राजा दशरथ ने फिर कहा कि; हे स्वामिन्! तुम्हारे लायक कोई पदार्थ नहीं। तुम ब्रह्माण्ड के ईश्वर हो बल्कि तुमसे ऐसे वचन कहते भी हमको लज्जा आती है परन्तु योग के निमित्त तुम्हारे आगे विनती की है कि; मोक्ष उपाय शास्त्र श्रवण किया है इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार तुम्हारा पूजन करें। तब वशिष्ठजी ने कहा; बैठो और राजा बैठ गया। फिर रामजी ने निरभिमान होकर कहा; हे संशयरूपी तिमिर के नाशकर्ता सूर्य! तुम्हारा पूजन हम किससे करें? कोई पदार्थ गृह में अपना नहीं। हे गुरुजी! मेरे पास और कुछ नहीं है केवल एक नमस्कार ही है। ऐसे कहकर वे चरणों पर गिरे और नेत्रों से जल चलने लगा। वे बार बार उठें और आत्मानन्द प्राप्ति के उत्साह से फिर गिरपड़ें। निदान जब वशिष्ठजी ने कहा बैठजाओ तब रामजी भी बैठ गये। फिर लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, राजर्षि और ब्रह्मर्षि आदि सब अर्घ्य पाद्यसे पूजनेलगे और फूलों की वर्षा की जिससे वशिष्ठजी का शरीर भी ढकगया और जब वशिष्ठजी ने भुजा से फूल दूर किये तब मुख दृष्ट आने लगा। जैसे बादलों के दूर हुये चन्द्रमा दृष्टि आता है; तैसेही मुख दीखने लगा। फिर वशिष्ठजी ने व्यास, वामदेव, विश्वामित्र, नारद, भृगु, अत्रि इत्यादिक जो बैठे थे उनसे कहा; हे साधो! जो कुछ मैंने सिद्धान्त के वचन कहे हैं इनसे

न्यून वा अधिक जो कुछ हो सो अब तुम कहो। जैसे जैसा स्वर्ण होना है तैसाही अग्नि में दिखाई देता है; तैसेही तुम कहो। तब सबने कहा; हे मुनीश्वर! ये तुमने परमसार वचन कहे हैं; जो तुम्हारे वचन को न्यून वा अधिक जानकर उनकी निन्दा करेगा वह महापतित होगा। ये वचन परमपद पाने के कारण हैं। हे मुनीश्वर! हमारे हृदय में भी जो कुछ जन्म जन्मान्तर का मैल था वह नष्ट होगया। हम तो पूर्ण ज्ञानवान् थे परन्तु पूर्वजन्म जो धरे हैं उनकी स्मृति हमारे चित्त में थी कि; अमुक जन्म हमने इस प्रकार पाया था और अमुक जन्म इस प्रकार पाया था सो सर्वस्मृति अब नष्ट हुई है और जैसे अग्नि में डाला सुवर्ण शुद्ध होता है तैसेही तुम्हारे वचनों से हमारा स्मृतिरूप मल नष्ट हुआ है। अब हम जानते हैं कि, न कोई जन्म था और न हमने कोई जन्म पाया है—हम अपनेही आप में स्थित हैं। हे मुनीश्वर! तुम सम्पूर्ण विश्वके गुरु और ज्ञान अवतार हो इसलिये तुमको हमारा नमस्कार है। राजा दशरथ भी धन्य हैं जिनके संयोग से हमने मोक्ष उपाय सुना है और ये रामजी विष्णु भगवान् हैं। इतना कह फिर बाल्मीकिजी बोले कि, इसी प्रकार ऋषीश्वर और मुनीश्वर वशिष्ठजी को परमगुरु जानकर स्तुति करने लगे, रामजी को विष्णु भगवान् जानकर उनकी भी स्तुति की और राजा दशरथ की भी स्तुति की कि, जिनके गृह में विष्णु भगवान् ने अवतार लिया फिर वशिष्ठजी को अर्घ्य पाद्य से पूजने लगे। आकाश के सिद्ध बोले; हे वशिष्ठजी! तुमको हमारा नमस्कार है तुम गुरु के भी गुरु हो। हे प्रभो! जो कुछ तुमने उपदेश किया है और जो कुछ उसमें युक्ति कही है ऐसे वचन वागीश्वरी भी कहे अथवा न कहे। तुमको बारम्बार नमस्कार है और राजा दशरथ चतुर्द्वीप पृथ्वी के राजा को भी नमस्कार है जिसके प्रसंगसे हमने ज्ञान और युक्ति सुनी। हे रामजी! विष्णु भगवान् नारायण हैं और चारों आत्मा हैं इनको हमारा प्रणाम है। ये चारों भाई ईश्वर हैं। जिनपर विष्णु भगवान् दया करते हैं और जीवन्मुक्त अवस्था को धारकर बैठे हैं। वशिष्ठजी परमगुरु हैं और

विश्वामित्र तप की मूर्ति हैं। बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब सिद्ध कहचुके तब वे फूलों की वर्षा करने लगे। जैसे हिमालय पर्वत पर बरफ़ की वर्षा होती है और वह बरफ़ से पूर्ण होजाता है; तैसेही वशिष्ठजी पुष्पों से पूर्ण हुये। आकाशचारी जो ब्रह्मलोक के वासी थे उन्होंने भी उनपर पुष्पोंकी वर्षा की और जो सभा में ब्रह्मर्षि आदि बैठे थे उनका भी यथायोग्य पूजन किया। इस प्रकार जब सिद्ध पूजन कर चुके तब कई ध्याननिष्ठ होरहे; सबके चित्त शरत्काल के आकाशवत् निर्मल होगये और अपने स्वभाव में स्थित हुये। जैसे स्वप्न की सृष्टिका कौतुक देखकर कोई जाग उठे और हँसे; तैसेही वे हँसनेलगे। तब वशिष्ठजी ने रामजी से कहा; हे रघुवंशी कुलरूपी आकाश के चन्द्रमा! तुम अब किस दशा में स्थित हो और क्या जानते हो? रामजी बोले; हे भगवन्! सर्व धर्मज्ञान के समुद्र! तुम्हारी कृपासे मैं अब अपने आपमें स्थित हूं और कोई कल्पना मुझे नहीं रही। अब मैं परमशान्तिमान् हुआ हूं और मुझको शेष विशेष कोई नहीं भासता केवल अपना आपही पूर्ण भासता है-अब मुझको कोई संशय नहीं रहा और इच्छा भी कुछ नहीं रही। मैंने अब परमनिर्विकल्प पद पाया है और कोई कल्पना मुझको नहीं फुरती। जैसे नील, पीतादिक उपाधि से रहित स्फटिक प्रकाशती है; तैसेही मैं निरुपाधि स्थित हूं और संकल्प-विकल्प उपाधि का अभाव होगया है। अब मैं परम शुद्धता को प्राप्त हुआ हूं; मेरा चित्त शान्त होगया है और मेरी चेष्टा पूर्ववत् होगी पर निश्चय में कुछ न फुरेगा। जैसे शिला में प्राण नहीं फुरते; तैसेही मुझको द्वैत कल्पना कुछ नहीं फुरती। हे मुनीश्वर! अब मुझको सब आकाशरूप भासता है। मैं शान्तरूप होकर परम निर्वाण हूं और भिन्नभाव जगत् मुझको कुछ नहीं भासता-सर्व अपना आपही भासता है। अब जो कुछ तुम कहो वही करूं। अब मुझको शोक कोई नहीं रहा और राज्य करना, भोजन, छादन, बैठना, चलना, पान करना जैसे तुम कहो तैसेही करूं। तुम्हारे प्रसाद से मुझको सर्व समान हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रामप्रकटीकरणं नाम
द्विशताधिकैकोनाशीतितमस्सर्गः ॥ २७६ ॥

बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज! जब ऐसे रामजी ने कहा तब वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बड़ा कल्याण हुआ कि; तुम अपने आपमें स्थित हुये हो। अब तुमने यथार्थ जाना है पर अब जो कुछ सुनने की इच्छा हो सो कहो। रामजी बोले; हे संशयरूपी अन्धकार के नाशकर्ता सूर्य और संशयरूपी वृक्षों के नाशकर्ता कुठार! अब तुम्हारे प्रसाद से मैं परम विश्रान्ति को प्राप्त हुआ हूं और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति की कलना से रहित हूं। जाग्रत् जगत् भी मुझको सुषुप्तिवत् भासता है और श्रवण करने की इच्छा नहीं रही। अब परमध्यान मुझको प्राप्त हुआ है अर्थात् आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं भासती। मैं आत्मा, अज, अविनाशी, शान्तरूप और अनन्त, सदा अपने आपमें स्थित हूं। ऐसे मुझको मेरा नमस्कार है। अब प्रलयकाल का पवन चले और समुद्र उछलें और नाना क्षोभ हों तो भी मेरा चित्त स्वरूप से चलायमान न होगा और जो त्रिलोकी का राज्य मुझको प्राप्त हो तो भी मेरे चित्त में हर्ष न उपजेगा। मैं सत्तासमान में स्थित हूं। बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज! जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब मध्याह्न का सूर्य शिर पर उदय हुआ और राजा जो रत्न और मणियों के भूषण पहिनकर बैठे थे उन मणियों की कान्ति किरणों से अति विशेष हुई और सूर्य के साथ हो एक होगई—मानों ऐसे वचन सुनकर नृत्य करती है। तब वशिष्ठजी ने कहा; हे रामजी! अब हम जाते हैं क्योंकि, मध्याह्न की उपासना का समय है; जो कुछ तुम्हें पूछना हो सो कल फिर पूछना। तब राजा दशरथ पुत्रों सहित उठ खड़े हुये और वशिष्ठजी का बहुत पूजन किया। जो ऋषीश्वर, मुनीश्वर और ब्राह्मण थे उनका भी यथायोग्य पूजन किया और मोती और हीरों की माला; मोहरें, रुपये, घोड़े, गऊ, वस्त्र, भूषण आदि जो ऐश्वर्य की सामग्री है उससे यथायोग्य पूजन किया। जो विरक्त संन्यासी थे उनको प्रणाम करके प्रसन्न किया और जो राजर्षि थे उनका भी पूजन किया। तब वशिष्ठजी उठ खड़े हुये और परस्पर सबने नमस्कार किया और मध्याह्न के नौबत नगाड़े बजने लगे। सब श्रोता उठकर बिचरने लगे। कोई चलेजाते थे और कोई शीश हिलाते, कोई हाथ

की अंगुली हिलाते, नेत्रन की भवें हिलाते परस्पर चर्चा करते जाते थे। इस प्रकार सब अपने स्थानों को गये। वशिष्ठजी सन्ध्या उपासना करने लगे और सर्व श्रोता विचारपूर्वक रात्रि को व्यतीतकर सूर्य की किरणों के निकलतेही आ पहुंचे। गगनचारी; सप्तलोक के रहनेवाले; ऋषि और देवता; भूमिवासी राजर्षि; ब्रह्मर्षि और जो श्रोता थे सो सब आकर अपने २ स्थान पर बैठ गये और सबने परस्पर नमस्कार किया। तब रामजी हाथ जोड़कर उठ खड़े हुये और बोले, हे भगवन्! अब जो कुछ मुझको सुनना और जानना रहा है सो तुमही कृपा करके कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ सुनने योग्य था सो तुमने सुना है। अब तुम कृतकृत्य हुये हो और सर्व रघुवंशियों का कुल तुमने तारा है और जो आगे होंगे सो सब तुमने कृतकृत्य किये हैं। अब तुम परमपद को प्राप्त हुये हो और जो कुछ तुमको पूछने की इच्छा है सो पूछ लो। हे रामजी! जो सत्तासमान में स्थित हुये हो तो विश्वामित्र के साथ जाकर इनका कार्य करो और जो कुछ पूछने की इच्छा हो सो पूछ लो। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! आगे मैं अपने आपको इस देह संयुक्त प्रच्छन्नरूप देखता था और अब अपने आपसे भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता—सब अपना आपही भासता है। हे मुनीश्वर! अब इस शरीर से मुझको कुछ प्रयोजन नहीं रहा। जैसे फूल से सुगन्ध लेकर पवन चला जाता है और फूल से उसका प्रयोजन नहीं रहता; तैसेही इस देहमें जो कुछ सार था सो मैं पाकर अपने आपमें स्थित हूं और शरीरके साथ मुझको प्रयोजन नहीं रहा। अब राज्य भोगने से कुछ सुख दुःख नहीं और इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट में मुझको कुछ हर्ष शोक नहीं। मैं अब सबसे उत्तमपद को प्राप्त हुआ हूं और सब कलना से रहित अविनाशी, अव्यक्तरूप सर्वसे निरन्तर सदा अपने आपमें स्थित और निराकार और निर्विकार हूं। जो कुछ पाने योग्य था सो मैंने पाया है और जो कुछ सुनने योग्य था सो सुना है और जो कुछ तुमको कहना था सो कहा है अब तुम्हारी वाणी सफल हुई है। जैसे कोई रोगी को औषध देता है तो उस औषध से उसका रोग जाता है और उसका कल्याण होता है;

तैसेही तुम्हारी वाणी से मेरा संशयरूप रोग गया है और अपने आपसे तृप्त हुआ हूं। अब मैं निःशङ्क होकर अपने आपमें स्थित हूं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम द्विशताधिकाशीतितमस्सर्गः ॥ २८० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे महाबाहो, रामजी! तुम मेरे परमवचन सुनो दृढ़ अभ्यास के निमित्त मैं फिर कहता हूं। जैसे आदर्श को ज्यों ज्यों मार्जन करते हैं त्यों त्यों उज्ज्वल होता है; तैसेही बारम्बार सुनने से अभ्यास दृढ़ होता है। जितना कुछ जगत् भासता है सो सब चिदानन्दस्वरूप है। भासती भी वही वस्तु है जो आगे भानरूप होती है। वह भानरूप चेतन है इससे जो पदार्थ भासते हैं सो सब चेतनरूप हैं और जो भिन्न २ पदार्थ द्वैत की कल्पना से भासते हैं सो भी वास्तव में भानरूप चेतन हैं। जैसे जो कुछ उच्चार करते हैं सो सब शब्द है पर शब्दरूप एक है और अर्थ से भिन्न २ भासते हैं। जब अर्थ की कल्पना त्याग दीजे तब यही शब्द है और जो अर्थ कीजिये कि, यह जल है, यह पृथ्वी है; यह अग्नि है इनसे आदि लेकर अनेक शब्द और अर्थ होते हैं और अर्थ रहित शब्द एकही है; तैसेही यह सब चेतन है पर चित्त की कल्पना से भिन्न २ पदार्थ भासते हैं और कुछ वस्तु नहीं और जो भासता है सो उसीका आभास है। हे रामजी! आभास भी अधिष्ठानसत्ता भासती है परन्तु ज्ञान में भेद होता है पर ज्ञान में भी भेद नहीं वृत्ति में भेद है जिसमें अर्थ भासते हैं। ज्ञानरूप अनुभवसत्ता है; इसमें जैसे अर्थ की वृत्ति आभास होती है उसी को जानता है। जैसे एकही रस्सी पड़ी होती है और उसमें सर्पका अर्थ वृत्ति न ग्रहण करे तो सर्प तो कुछ नहीं वह रस्सीही है; तैसेही अर्थ भेद ग्रहण कीजिये तो भेद है नहीं तो ज्ञानही है और सर्वपदार्थ जो भासते हैं वे सब ज्ञानरूपी हैं और कुछ बना नहीं। हे रामजी! स्वप्न के दृष्टान्त मैंने तुमको जताने के निमित्त कहे हैं, वास्तव में स्वप्न भी कोई नहीं; अद्वैतसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। जैसे समुद्र सदा जलरूप है पर द्रवता से तरङ्ग बुद्बुदे भासते हैं सो नानारूप

नहीं और नाना हो भासता है; तैसेही सर्व जगत् अनानारूप है और नाना हो भासता है। तुम अपने स्वप्ने की स्मृति को विचारकर देखो कि; तुम्हारा अनुभव ही नाना प्रकार हो भासता है परन्तु कुछ हुआ नहीं तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी तुम्हारा अपना आप है और दूसरा कुछ नहीं। सदा निराकार, निर्विकार और आकाशरूप आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो अद्वैत-सत्ता निराकार, निर्विकार और सदा अपने आपमें स्थित है तो पृथ्वी कहां से उपजी है; जल कैसे उपजा है और अग्नि, वायु, आकाश, पुण्य, पाप इत्यादिक कल्पना चिदाकाशमें कैसे उपजे हैं मेरे दृढ़बोधके निमित्त कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह तुम कहो कि; स्वप्ने में पृथ्वी कहां से उपज आती है और जल, वायु, अग्नि, आकाश, पाप, पुण्य, देश, काल पदार्थ कहांसे उपजते हैं? रामजी बोले; हे मुनीश्वर! स्वप्ने में जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, देश, काल, पदार्थ भासते हैं सो सब आत्मरूप होते हैं और आत्मसत्ता ही ज्यों की त्यों होती है सो तत्त्ववेत्ताओं को ज्यों की त्यों भासती है और जो असम्यक्‌दर्शी हैं उनको भिन्न २ पदार्थ भासते हैं। भासना दोनों का तुल्य होता है परन्तु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थ को ग्रहण करती है उसको ज्यों की त्यों आत्मसत्ता भासती है और जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थ ग्रहण नहीं करती उसको वही वस्तु और रूप हो भासती है। हे मुनीश्वर! और जगत् कुछ बना नहीं वही आत्मसत्ता स्थित है। जब कठोररूप की संवेदन फुरती है तब पृथ्वी और पहाड़ रूप हो भासती है; जब द्रवता का स्पन्द फुरता है तब जलरूप हो भासती है और उष्णरूप की संवेदन फुरती है तब अग्नि भासती है; इसी प्रकार वायु, आकाशादिक पदार्थों से जैसे फुरना होता है तैसेही हो भासता है। जैसे जल तरङ्गरूप हो भासता है परन्तु जलसे भिन्न कुछ नहीं, जलहीरूप है; तैसेही आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है और वही रूप है जगत् कुछ वस्तु नहीं। यह गुण और क्रिया सब आकाश में है वास्तव में कुछ नहीं क्योंकि; कारणरहित असत्यरूप है। यह अहं

त्वं से आदिक लेकर सब जगत् आकाशरूप है कुछ बना नहीं, आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और कोई आधार नहीं है। अद्वैतसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और नानारूप हो भासती है। जब चित्त संवेदन फुरती है तब पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, पदार्थ, देश, काल हो भासता है। कहीं सर्व आत्मा का ज्ञान फुरता है और कहीं परिच्छिन्नता भासती है परन्तु वास्तव में कुछ बना नहीं वही वस्तु है; जैसा उसमें फुरना फुरता है तैसाही हो भासता है। अनुभवसत्ता परम आकाशरूप है जिसमें आकाश भी आकाशरूप है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिदाकाशजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकाशीतितमस्सर्गः॥ २८१॥

रामजी बोले; हे भगवन्! अब यह प्रश्न है कि, जो जाग्रत् और स्वप्ने में कुछ भेद नहीं और परम आकाशरूप है तो उस सत्ता को जाग्रत् और स्वप्ने के शरीर से कैसे संयोग है; वह तो निरवयव और निराकार है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह सर्व आकार जो तुमको भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं और आकाश में आकाश ही स्थित है सर्ग के आदि में आकार का अभाव था सोही अब भी जानो कि; उपजा कोई नहीं परम आकाशसत्ता अपने आपमें स्थित है। जब वह अद्वैतसत्ता चिन्मात्रमें चित्त किञ्चन होता है तब वही सत्ता आकार की नाईं भासती है परन्तु कुछ हुआ नहीं, आकाशही रूप है। जैसे स्वप्ने में शरीरों का अनुभव करता है पर वे कुछ आकार तो नहीं होते केवल आकाशरूप होते हैं; तैसेही यह जगत् भी निराकार है परन्तु फुरनेसे आकार हो भासता है। जिन तत्त्वों से शरीर होताहै सो तत्त्व ही उपजे नहीं तो शरीर की उत्पत्ति कैसे कहूँ? हे रामजी! और जगत् कुछ उपजा नहीं ब्रह्मही किञ्चन से जगत्रूप हो भासता है। जैसे जल और द्रवता में भेद नहीं और जैसे आकाश और शून्यता में भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। संवेदन से अर्थसंकेत है और जब संवेदना न फुरे तब अर्थसंकेत न हो। भिन्न २ वस्तु से एकही सत्ता के नाम हैं। भिन्न २ नाम

तब भासते हैं जब वेदना फुरती है, नहीं तो शब्द जलरव के तुल्य है-वस्तु से भेद नहीं। जैसे वायु और स्पन्दमें भेद नहीं; स्पन्दरूप हो भासती है और निस्स्पन्द नहीं भासती परन्तु दोनोंरूप वायु के ही हैं; तैसेही स्पन्द से ब्रह्म में किञ्चन जगत् भासता है और जब संवेदन नहीं फुरती तब जगत् नहीं भासता परन्तु दोनों रूप ब्रह्म के ही हैं। ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं। जैसे एक निद्रा के दो रूप होते हैं-एक स्वप्न और दूसरी सुषुप्ति-परन्तु दोनों एक, निद्रा के ही पर्याय हैं, तैसेही जगत् का होना और न भासना एक ब्रह्म की दोनों संज्ञा हैं, चाहे ब्रह्म कहो और चाहे जगत् कहो, ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं ब्रह्मही जगत्-रूप हो भासता है। जैसे निर्मल अनुभव से स्वप्न में शिला भासि आती है पर वह शिला तो स्वप्न में कुछ उपजी नहीं, अपना अनुभव ही शिलारूप हो भासता है; तैसेही ये सर्व आकार जो भासते हैं सो आकाशरूप हैं और आत्मसत्ताही आकाशरूप जगत् हो भासती है। जगत् कुछ उपजा नहीं और न सत्य है, न असत्य है, न आता है, न जाता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! आगे तुमने मुझसे अनेक सृष्टि कही हैं कि, कई जल में; कई अग्नि में; कई पृथ्वी में; कई वायु में; कई पहाड़ और पत्थरों में और कई आकाश में पक्षीवत् इत्यादिक नाना प्रकार की सृष्टि तुमने कही हैं तो अब यह प्रश्न है कि हमारी सृष्टि किससे उत्पन्न हुई है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तुम तो वही प्रश्न करते हो जो अपूर्व होता है और जो आगे देखा और सुना न हो और जगत् से जाना भी न हो। इस जगत् की उत्पत्ति वेद पुराण तो योंही कहते हैं और लोक में भी प्रसिद्ध है कि, ब्रह्मा से हुई है पर वास्तव में चिदाकाश-रूप है कुछ उपजी नहीं। ये दोनों प्रकार मैंने तुमसे कहे हैं पर उनको तुम जानकर भी प्रश्न करते हो इसलिये तुम्हारा प्रश्न ही नहीं बनता। रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! यह सृष्टि कितनी है; कहां तक चली जाती है और कितने काल पर्यन्त रहेगी? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितनी सृष्टि तुम जानते हो वह है नहीं-ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है-और सृष्टि बहुत

हैं परन्तु वास्तव में कुछ हुई नहीं और आदि, अन्त और मध्य से रहित हैं। वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और यह जितनी सृष्टि हैं सो आभासमात्र हैं। ब्रह्म जो आदि, अन्त और मध्य से रहित है उसका आभास भी तैसाही है। जैसे जितना वृक्ष होता है उतनी ही छाया होती है; तैसेही ब्रह्म का आभास सृष्टि है और वास्तव में पूछो तो आभास भी कोई नहीं ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है और वही जगत्‌रूप आपको देखता है—ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने के पुरमें पर्वत, नदी, आयुध आदि नाना प्रकार के व्यवहार के रूप धारकर आत्मसत्ताही स्थित होती है और कुछ नहीं बना और जैसे संकल्पनगर भासता है; तैसेही इस जगत् को भी जानो क्योंकि, और कुछ बना नहीं आत्मसत्ताही जगत्‌रूप हो भासती है। जगत् यदि किसी कारण से उपजा होता तो सत् होता पर इसका कारण कोई नहीं पाया जाता इसलिये असत् है, इसका न कोई निमित्तकारण पाया जाता है और न समवायकारण पाया जाता है। हे रामजी! जो किसी कारण से न उपजा हो और भासे उसको स्वप्नपुरवत् आकाशमात्र जानो। जिसमें आभास भासती है सो अधिष्ठानसत्ता है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है सो सर्प कुछ नहीं रस्सी ही सर्परूप होकर भासती है; तैसेही जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता सत्य है और शुद्ध, निर्दुःख, अच्युत, विज्ञान सदा अपने आपमें स्थित है। वही सत्ता जगत्‌रूप हो भासती है। जैसे जल ही तरङ्गरूप हो भासता है तैसेही ब्रह्म ही जगत्‌रूप हो भासता है। हे रामजी! यह जगत् ब्रह्म का हृदय है अर्थात् उसी का स्वभाव है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। ज्ञानी को सर्वदा ऐसेही भासता है। जैसे स्वप्ने से जागकर सब अपना आपही भासता है; तैसेही यह जगत् अपना आप है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदभाववर्णनं नाम द्विशताधिकद्व्यशीतितमस्सर्गः॥ २८२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस जगत् का कारण कोई नहीं। जो जगत् ही नहीं तो कारण कैसे हो और कारण नहीं तो जगत् कैसे हो?

इससे सर्व ब्रह्मही है। इसी पर एक उपाख्यान है सो सुनो। हे रामजी! कुशद्वीप के पूर्व और पश्चिम दिशा के मध्य में सुवर्ण की ऐलवती नगरी महा उज्ज्वलरूप है और उसमें बड़े २ ऊंचे थम्भ बने हैं मानो पृथ्वी और आकाश को उन्होंने ही पूर्ण किया है। उस नगरी का एक प्रगपती राजा है। एक काल में मैं आकाश से शीघ्र वेग से उसके गृह में आया और उसने भली प्रकार अर्घ्य पाद्य से प्रीतिपूर्वक मेरा पूजन किया और सिंहासन पर बैठाकर मुझसे एक महाप्रश्न किया कि, जिस प्रश्न से उपरान्त कोई प्रश्न नहीं। राजा बोले; हे भगवन्! तुम संशयरूपी तम के नाशकर्ता सूर्य हो। मुझको एक संशय है सो दूर करो। हे मुनीश्वर! प्रथम तो यह प्रश्न है कि, जब महाप्रलय होता है तब कार्य, कारण और सर्वशब्द की कल्पना का अभाव होजाता है। उसके पीछे महाआकाश-सत्ता शेष रहती है जिसमें वाणी की भी गम नहीं अवाच्यपद है तो उससे फिर सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है? वहां उपादानकारण और निमित्तकारण तो कोई न रहता तो सृष्टि कैसे होती है? श्रुति और पुराण में सुनता हूं कि, महाप्रलय से फिर सृष्टि उत्पन्न होती है। दूसरा यह प्रश्न है कि, जम्बूद्वीप में कोई मृतक हुआ अथवा किसी और ठौर गया हुआ मृतक हुआ तो उसका वह शरीर तो वहांही भस्म होजाता है और परलोक में पुण्य पाप का फल दुःख सुख भोगता है तो जिस शरीर से भोगता है उस शरीर का कारण तो कोई नहीं? जो तुम कहो कि, पुण्य और पापही उस शरीर का कारण है तो पुण्य पाप तो आपही निराकार हैं उनसे साररूप शरीर कैसे उपजे? और जो तुम कहो परलोक कोई नहीं और पुण्य पाप भी कोई नहीं तो श्रुति और पुराण के वचनों से विरोध होता है क्योंकि, सब ही वर्णन करते हैं कि, मरकर परलोक जाता है और जैसे कर्म किये हैं तैसे भोगता है? जिस शरीर से भोगता है उसका कारण तो कोई नहीं और न कोई पिता है; न माता है? वह शरीर कैसे उत्पन्न हुआ? तीसरा प्रश्न यह है कि, जब यह परलोक में जाता है तो उसके निमित्त दान पुण्य करते हैं उनका फल उसको कैसे प्राप्त होता है? चतुर्थ प्रश्न यह है कि, महाप्रलय

में जो ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है उसका नाम स्वयंभू कैसे हुआ? जो महाप्रलय में न उपजा हो और अपने आपही से उपजे वह स्वयंभू कहाता है पर महाप्रलय में तो शेष अद्वैत रहा था उससे जो उत्पन्न हुआ उसे स्वयंभू कैसे कहिये? जो कहो स्वयंभू अपने आपसे उपजता है तो अपना आप आत्मा है जो सबका अपना आप है; अब क्यों नहीं उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै? पांचवां प्रश्न यहहै कि, एक पुरुष था जिसका एक मित्र था और एक शत्रु था और उन दोनों ने प्रयागक्षेत्र में जाकर करवट लिया। जो इसका मित्र था उसने वाञ्छा की कि, मेरा मित्र चिरकाल जीता रहे और चिरंजीवी हो और दूसरे ने यह संकल्प धारा कि, मेरा शत्रु इसी काल में मर जावे। हे मुनीश्वर! एकही काल में दो अवस्था कैसे होवेंगी? छठा प्रश्न यह है कि; सहस्रों मनुष्य ध्यान लगाये बैठे हैं कि; हम इसी आकाश के चन्द्रमा हों सो एकही आकाश में सहस्रों चन्द्रमा कैसे होंगे? सप्तम प्रश्न यह है कि; सहस्रों पुरुष यही ध्यान लगाये बैठे हैं कि, एक सुन्दर स्त्री जो बैठी थी वह हमको मिले पर वह स्त्री पतिव्रता है उसके सहस्रभर्ता एककाल में कैसे होंगे? अष्टम प्रश्न यह है कि, एक पुरुष था उसको किसी ने वर दिया कि, तुम जाकर मृतक हो और सप्तद्वीप का राज्य करो और किसी ने शाप दिया कि, तेरा जीव अपने ही गृह में रहेगा और मृतक हो बाहर न जावेगा तो ये दोनों एकही काल में कैसे होंगे? नवम प्रश्न यह है कि, एक काष्ठ का थम्भा था उसको एक ने कहा कि, यह सुवर्ण का होजावेगा और वह सुवर्ण का होगया; तो सुवर्ण कैसे उत्पन्न हुआ? उसका कारण कोई न था—कारण विना कार्य कैसे उत्पन्न हुआ? जैसा अन्नका बीज बोते हैं तैसाही अन्न उत्पन्न होता है और नहीं उगता तो काष्ठ से स्वर्ण कैसे उत्पन्न हुआ? जो कहो संकल्प से उपजा तो हम भी संकल्प करते हैं कि, अमुक कार्य ऐसे हो पर वह क्यों नहीं होता? इसलिये जानाजाता है कि, संकल्प से भी उत्पन्न नहीं होता। हे मुनीश्वर! जिस प्रकार यह वृत्तान्त है सो कहो। एक कहते हैं कि, आगे असत् ही था तो असत् से जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई? यह

मुझको संशय है उसको दूर करो। जो कोई सन्त के निकट आता है सो निष्फल नहीं जाता इसलिये कृपा करके कहो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रश्नवर्णनं नाम
द्विशताधिकत्र्यशीतितमस्सर्गः ॥ २८३ ॥

वशिष्ठजी बोले कि; हे रामजी! जब इस प्रकार उसने मुझसे अपने संशयों का समूह कहा तब मैंने उससे कहा; हे राजन्! ये सर्व संशय जो तुझको हैं सो मैं सब दूर करूंगा। जैसे सम्पूर्ण अन्धकार को सूर्य नाश करता है। हे राजन्! यह सर्व जगत जो तुझको भासता है सो ब्रह्मरूप है और सदा अपने आपमें स्थित है। जब उसमें चित्त फुरता है तब वही चित्त संवेदन जगतरूप हो भासता है, इससे जो कुछ आकार भासते हैं सो सब चिन्मात्ररूप हैं; न कोई कार्य है और न कारण है; और जो तुम प्रत्यक्ष प्रमाण से संशय करो कि; सब चिन्मात्ररूप है तो जब यह शरीर मृतक हो जाता है तब चेतता क्यों नहीं; चाहिये कि, उस काल में भी उसमें ज्ञान हो। हे राजन्! जब जाग्रत् का अन्त होता है पर स्वप्ना नहीं आया तब शुद्ध चिन्मात्र रहता है। फिर जब उसमें स्वप्न की सृष्टि भासि आती है तो उस सृष्टि में कई चेतन भासते हैं; कई मृतक भासते हैं; कई जड़ भासते हैं और स्थावर-जङ्गम नाना प्रकार की सृष्टि भासती हैं परन्तु और तो कुछ नहीं वही चिन्मात्र स्वरूप है जो अनुभवरूप हो भासती है। कहीं चेतन बोलते और चलते भासते हैं परन्तु वही है? जो चेतनता न होती तो कैसे भासते? जिससे भासते हैं तिससे सब चेतन हैं। तैसेही इस जगत् में भी कहीं बोलते चलते भासते हैं और कहीं शव भासते हैं परन्तु वही चिन्मात्रसत्ता है; जैसा २ संकल्प उसमें फुरता है तैसा २ हो भासता है। हे राजन्! जैसे प्रथम प्रलय से सृष्टि उत्पन्न हुई थी तैसेही उत्पन्न होती है। यह सृष्टि किसी का कार्य नहीं और किसी का कारण भी नहीं—विना कारण उपजी भासती है। हे राजन्! जो महाप्रलय में शेष रहता है सो चिन्मात्र है। उस चिन्मात्रसत्ता से जो प्रथम शुद्ध संवेदन फुरी है सो ब्रह्मा विराट्रूप

होकर स्थित हुई और उसी ने जगत् कल्पना की है। उसमें उसने नेति रची है कि, यह पदार्थ इस प्रकार हो तैसे ही चित्त संवेदन में दृढ़ होकर भासित हुआ है उसका नाम जगत् है। वही आत्मसत्ता किंचनरूप होकर जगत्‌रूप भासती है। हे राजन्! जैसे तेरे संकल्प और स्वप्ने के सृष्टि की आदि शुद्ध आत्मसत्ता थी और वही फुरने से पदार्थरूप हो भासती है; तैसेही इसे भी जानो; वास्तव में न कोई कार्य है और न कोई कारण है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि अकारण होती है; तैसेही यह जगत् भी अकारण है और आदि अन्त के विचार से रहित है। जो वर्तमान प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं उनको कार्य और कारण प्रत्यक्ष भासते हैं और उनके वचन भी निरर्थक हैं। जैसे अन्धकूप के दर्दुर शब्द करते हैं; तैसेही वे भी निरर्थक प्रत्यक्षप्रमाण से कार्यकारण के वाद करते हैं। उनको हमारे वचन सुनने का अधिकार नहीं और हमको भी उनके वचन सुनने योग्य नहीं। हे राजन्! जिस शास्त्र के सुनने और जिस गुरु के मिलने से सम्पूर्ण संशय निवृत्त न हों उस शास्त्र और गुरु का कहना भी अन्धकूप के दर्दुरवत् व्यर्थ है। जो परमार्थसत्ता से विमुख हुये हैं उनको यह भ्रम अपने में भासता है और शरीर के मृतक हुये आपको मरता जानता है और फिर वासना के अनुसार शरीर उपजता और जीता है तब मानते हैं कि; अब हम उपजे हैं। फिर अपने पुराय पाप कर्म का अनुभव करते हैं। जैसे स्वप्ने में कोई अपने साथ शरीर देखता है तैसेही परलोक में जीव को अपने साथ शरीर भासि आता है और तैसेही यह शरीर भी भासि आया है। न कोई इसका कारण है; न पञ्चभौतिक है; न इसका शरीर है और न किसी कारण से भूत उपजे हैं, अपनी ही कल्पना आकाररूप होकर भासती है; और आकार कोई नहीं केवल ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है और जैसा संकल्प उसमें दृढ़ होता है तैसा पदार्थ भासि आता है। हे राजन्! जो तू इस जगत्‌को सत्य मानता है तो सब कुछ सिद्ध होता है, शरीर भी है; परलोक भी है और नरक स्वर्ग भी है। जैसा यह लोक है तैसाही परलोक है; जो यह लोक निश्चय

में सत्य है तो वह लोक भी सत्य हो भासेगा। और जैसा कर्म करेगा तैसा फल भोगेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रश्नोत्तरवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुरशीतितमस्सर्गः॥ २८४॥

वशिष्ठजी बोले कि; हे राजन्! यह सर्व जगत् जो तुझको भासता है सो सब संकल्पमात्र है। जैसे कोई बालक अपने मनमें वृक्ष और उसमें फूल, फल और टास कल्पे सो संकल्पमात्र है; तैसेही यह जगत् भी संवेदनरूपी ब्रह्मा ने कल्पा है और उसके मन में फुरता है सो संकल्परूप है। जैसे उसने संकल्प किया है तैसेही स्थित है और जैसे उसमें क्रम रचा है कि, इस प्रकार यह पदार्थ होगा सो तैसेही स्थित हुआ है और देश, काल, पदार्थ भी तैसेही स्थित हैं। इसका नाम नेति है। हे राजन्! तूने प्रश्न किया था कि, जो पुरुष अरूप है और दूर है यदि उसके अर्थ किसी ने दिया तो उसको कैसे पहुँचता है और स्वरूप और स्वरूप का कैसे संयोग है? जो कोई शुद्ध संवेदन पुरुष है उसको सब पदार्थ निकट भासते हैं और जो कोई पुरुष मनोराज कल्पता है और उसमें बड़ा देश रचता है सो दूर से दूर मार्ग है तो जो उस देश के वासी हैं उनको देश की अपेक्षा से दूसरा देश दूर से दूर है परन्तु जिसका मनोराज है उसको तो सब निकट है और अपना आपही रूप है। इस प्रकार जो शुद्धसंवेदनरूप है उसके अर्थ जो कोई देता है—ईश्वर अर्थ अथवा देवता के अर्थ हो—उसको निकट से निकट सब अपने में भासता है। आदिनेति इसी प्रकार हुई है कि, शुद्धसंवेदन को सब अपने निकट से निकट ही भासता है क्योंकि; सब संकल्प है और जैसी रचना संकल्प में रचती है तैसेही होती है—संकल्प में क्या नहीं होता? थम्भे का प्रश्न जो तूने किया है कि, काष्ठ का था सुवर्ण का कैसे होगया; सोभी सुनो। हे राजन्! आदि जो संवेदनरूप ब्रह्मा है उसने अपने मनोराज में नेति की है कि; तपादिक से वर और शाप सिद्ध होता है। उसके कहे से जो काष्ठ का थम्भा स्वर्ण होगया तो तू विचार कर देख कि, किस कारण से काष्ठ का सुवर्ण हुआ।

वह केवल संकल्पमात्र है; जो संकल्प से भिन्न कुछ भी होता तो काष्ठ का सुवर्ण न होता। यह सर्व विश्व संकल्परूप है; जैसा संकल्प दृढ़ होता है, तैसाही हो भासता है। जैसे तू अपने मनोराज में संकल्प करे है कि, यह ऐसे रहे और जो उससे और प्रकार करे तोभी होजावे सो होता है; तैसेही वर और शाप भी और प्रकार होजाते हैं। न और कोई जगत् है, न कार्य है और न कारण है वही आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है; जैसा संकल्प जिसमें फुरता है तैसा हो भासता है तू पूछता है कि, असत्य से फिर जगत् कैसे उत्पन्न होता है जो आपही न हो तो उसमें जगत् कैसे प्रकटे? हे राजन्! असत्य इसीका नाम है कि, जो जगत् असत्य था इसलिये श्रुति ने उसे असत्य कहा। जो आदि असत्य था इसलिये असत्यता जगत् की कही है पर आत्मा तो असत्य नहीं होता? सबका शेषभूत आत्मा है; जब उसमें संवेदन फुरती है तब ब्रह्म अलक्ष्यरूप होजाता है परन्तु उस संवेदन के फुरने और मिटने में ब्रह्म ज्यों का त्यों है उसका अभाव नहीं होता। जैसे जल में तरङ्ग उपजता है और फिर लीन होजाता है परन्तु उसके उपजने और मिटने में जल ज्यों का त्यों है और तरङ्ग उसके आभास फुरते हैं। जैसे तू मनोराज से एक नगर कल्पे और फिर संकल्प छोड़दे तब संकल्परूप नगर का अभाव होजाता है परन्तु सदा अविनाशी रहता है। जैसे स्वप्न की सृष्टि उपजती भी है और लीन भी हो जाती है परन्तु अधिष्ठान ज्यों का त्यों है; और जैसे रत्नों का प्रकाश उठता है और लीन भी होजाता है परन्तु रत्न ज्यों का त्यों होता है; तैसेही आत्मा विश्व के भाव अभाव में ज्यों का त्यों रहता है पर उसका आभास जगत् उपजता मिटता भासता है। उपजता है तब उत्पत्ति भासती है और जब मिटता है तब प्रलय होजाती है परन्तु उभय आभास हैं। जैसे वायु फुरती है तब भासती है और ठहर जाती है तब नहीं भासती परन्तु वायु एक है; तैसेही आत्मा एकही है फुरने का नाम उत्पत्ति है और न फुरने का नाम जगत् की प्रलय है सो सर्व किंचनरूप है।

इति श्रीयो० नि० द्विशताधिकपञ्चाशीतितमस्सर्गः ॥ २८५ ॥

वशिष्ठजी बोले कि; हे राजन्! तूने प्रयाग के जो दो पुरुषों का प्रश्न किया है उसका उत्तर सुन। जो उसका शत्रु बन गया था सो तो उसका पाप था और जो उसका मित्र बन गया था सो उसका पुण्य था। प्रयागतीर्थ धर्मक्षेत्र था। हे राजन्! पापरूप वासना के अनुसार मृत्यु भासती है पर पुण्यरूपी जो मित्र है सो पापरूपी शत्रुको रोंकता है और पुण्यरूपी तीर्थ के बल से हृदय से अल्परूपी पाप वेग से भासता है। जब मृत्यु आती है तब वह आपको मरता जानता है और भाईजन कुटुम्बी रुदन करते हैं पर जब अपनी ओर देखता है तब जानता है कि, मैं तो मुआ नहीं। जब मृतक सर्ग की ओर देखता है तब आपको मुआ जानता है और भाईजन रुदन करते हैं। इस प्रकार उसको मरना भासता है और यह देखता है कि: भाईजन जलाने चले हैं; उन्होंने अग्नि में मुझको डाला है और मैं जलता हूं। जब फिर पुण्य की ओर देखता है तब जानता है कि, मैं मुआ नहीं जीता हूं और जब फिर पाप की ओर देखता है तब जानता है कि; मैं मुआ हूं और मुझको यमदूत लेचले हैं; यह परलोक है और यहां मैं सुख दुःख भोगता हूं। जब फिर पुण्य की ओर देखता है तब जानता है कि, मैं मुआ नहीं; जीता हूं; यह मेरे भाईजन बैठे हैं और वहां मेरा व्यवहार चेष्टा है। इस प्रकार उभय अवस्था को पुरुष देखता है। जैसे संकल्पपुर और स्वप्ननगर में उभय अवस्था देखे और एकही पुरुष नाना प्रकार की चेष्टा देखता है। कहीं जीता देखता है, कहीं मृतक देखता है; कहीं व्यवहार देखता है और कहीं निर्व्यापार इत्यादिक नाना प्रकार की चेष्टा एकही पुरुष में होती है; तैसेही एकही पुरुष को पुण्य पाप की वासना से जीना मरना भासता है। हे राजन्! यह सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही रूप हो भासता है। परलोक जानना भी अपने वासना के अनुसार भासता है और जो कुछ उसके निमित्त पुत्र बान्धव देते हैं सो पुत्र बान्धव भी उसकी पुण्य पाप वासना से स्थित हुये हैं। वे जो कुछ इसके निमित्त करते हैं उनसे यह सुख, दुःख, नरक, स्वर्ग भोगता है पर वास्तव में कोई

बान्धव और पुत्र नहीं; उसकी वासना ही नाना प्रकार के आकार को धारकर स्थित हुई है। हे राजन्! सहस्र चन्द्रमा का जो तूने प्रश्न किया है उसका उत्तर सुन। सहस्र भी इसी आकाश में स्थित होते हैं और अपनी २ वासना से कलासंयुक्त चन्द्रमा हो विराजते हैं परन्तु एकको दूसरा नहीं जानता परस्पर अज्ञात हैं—जो अन्तवाहक दृष्टि से देखे उसको भासते हैं। हे राजन्! जो कोई ऐसी भावना करे कि, मैं उसके मण्डल को प्राप्त होऊं तो तत्कालही जा प्राप्त होता है। जैसे एकही मन्दिर में बहुत मनुष्य सोये हों तो उनको अपने २ स्वप्ने की सृष्टि भासती है और अन्योन्य विलक्षण है—एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता; तैसेही एक आकाश में सहस्र चन्द्रमा बनते हैं। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के दशपुत्र दशब्रह्मा हो बैठे थे तैसेही जिसकी कोई तीव्र भावना करता है वही होजाता है। जो कोई भावना करे कि; हम इसी मन्दिर में सप्तद्वीप का राज्य करें तो वैसाही होजाता है क्योंकि; अनुभवरूपी कल्पवृक्ष है उसमें जैसी तीव्रभावना होती है, तैसेही हो भासती है। वर के वश से उस पुरुष को सप्तद्वीप का राज्य प्राप्त हुआ और शाप के वश से उसका जीव उसी मन्दिर में रहकर द्वीप का राज्य करता रहा। जैसे स्वप्ने में राज्य करे हैं तैसे ही अपने मन्दिर में अपनी संवेदन ही सृष्टिरूप होकर भासती है। इसी प्रकार जो एक स्त्री की भावना करके सहस्र पुरुष ध्यान लगाये बैठे थे कि; हम उसके भर्ता हों सो भी होजाते हैं। हे राजन्! उनकी जो तीव्रभावना है वही स्त्री का रूप धारकर उनको प्राप्त होगी वे जानेंगे कि; वही स्त्री हमको प्राप्त हुई है। यह जगत् केवल संकल्पमात्र है, संकल्प से भिन्न कुछ वस्तु नहीं; और सब चिदाकाशरूपहै अपनेही अनुभव से प्रकाशताहै और जैसे उसमें संकल्प फुरता है तैसेही हो भासता है। पृथ्वी, जल, तेज आदिक तत्त्व कोई नहीं आत्मसत्ता ही इस प्रकार स्थित है जो परमशान्त, निराकार, निर्विकार और अद्वैतरूप है। राजा बोले; हे मुनीश्वर! जगत् के आदि जो आत्मसत्ता थी सो किस आकाररूप देहमें स्थित थी; देह विना तो स्थित नहीं होती?

जैसे आधार विना दीपक नहीं रहता आधार होता है तो उसमें जागता है तैसेही आत्मसत्ता किसमें स्थित थी ? वशिष्ठजीने कहा, हे राजन् ! जितने आकार तुझको भासते हैं और जिनको देखकर तूने प्रश्न उठायाहै सो है नहीं; ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थितहै। जिन भूतों से बना देह भासता है सो भूत भी मृगतृष्णा के जलवत् हैं। जैसे रस्सी में सर्प; सीपी में रूपा; आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्र है क्योंकि; इनका अत्यन्त अभाव है; तैसेही यह भूताकार ब्रह्म में भ्रम से भासते हैं—ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। तूने पूछा था कि; ज्यों स्वयंभू अपने आपसे उपजते हैं तो अब क्यों नहीं होता सो, हे राजन्! कई उसके सदृश उत्पन्न होते हैं पर वास्तव में कुछ उपजा नहीं और नानाप्रकार भासता है परन्तु नाना प्रकार नहीं हुआ। जैसे स्वप्न में सदा तू देखता है कि; अद्वैत अपना आपही नानारूप हो भासता है और पर्वत पर दौड़ता फिरता है सो किस शरीर से दौड़ता है और क्या रूप होता है ? जैसे वह पर्वत और शरीर आकाशरूप होता है और भ्रमसे पिण्डाकार भासता है; तैसेही यह जगत् भी आकाशरूप है भ्रम से पिण्डाकार भासता है। हे राजन् ! तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख कि, यह सब जगत् तेरा अनुभव आकाश है स्वप्ने का दृष्टान्त भी मैंने तुमसे चेतने के निमित्त कहा है। स्वप्ना भी कुछ हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है; जब उसमें आभास संवेदन फुरती है तब वही जगत्रूप हो भासती है और जब आभास संकल्प मिटजाता है तब प्रलयकाल भासता है। वास्तव में न कोई उत्पन्न होता है और न प्रलय होता है ज्यों की त्यों आत्मसत्ता स्थित है। जैसे एक निद्रा के दो रूप होते हैं—एक स्वप्ना और दूसरा सुषुप्ति पर जाग्रत् में यह दोनों आकाशमात्र होती हैं; तैसेही आभास की दो संज्ञा होती हैं—एक जगत् और दूसरी महाप्रलय पर आत्मरूपी जाग्रत् में दोनों का अभाव हो जाता है। हे राजन् ! तू स्वरूप में जाकर और कलना को त्यागकर देख कि, सब आत्मरूप है—और कुछ नहीं। हे रामजी ! इस प्रकार मैं राजा को कहकर उठ खड़ा हुआ तब उसने भलीप्रकार प्रीतिसंयुक्त मेरा पूजन किया

और जब वह पूजन कर चुका तब मैं जिस कार्य के लिये आया था सो कार्य करके स्वर्ग को चला गया।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजप्रश्नोत्तरसमाप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकषडशीतितमस्सर्गः ॥ २८६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् सब चिदाकाशरूप है और दूसरा कुछ बना नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि, सब चिदाकाश है बना कुछ नहीं तो सिद्ध, साधु, विद्याधर, लोकपाल, देवता इत्यादिक जो भासते हैं; कुछ बने क्यों नहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये जो सिद्ध, साधु, विद्याधर, देवता लोक और लोकपाल हैं सो वास्तव में कुछ उपजे नहीं; ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है और ये जो प्रत्यक्ष भासते हैं सो शुद्ध संकल्प से रचे हुये हैं परन्तु वास्तव में कुछ बने नहीं, भ्रम से इनकी सत्यता भासती है। जैसे मृगतृष्णा की नदी, रस्सी में सर्प, सीपी में रूपा और संकल्पनगर है; तैसेही आत्मा में यह जगत् है। हे रामजी! जैसे स्वप्न में नाना प्रकार की रचना भासती है परन्तु कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जगत् है। जो पुरुष इसको देखकर सत्य मानता है वह असम्यक्दर्शी है और जो आत्मा को देखता है वही देखता है और वही सम्यक्दर्शी है। हे रामजी! ये लोक और लोकपाल जगत्-सत्ता में ज्यों के त्यों हैं और जैसे स्थित हैं तैसेही हैं परन्तु परमार्थ से कुछ उपजे नहीं, अनुभवसत्ता ही संवेदन से दृश्यरूप हो भासती है और द्रष्टा ही दृश्यरूप हो भासता है परन्तु स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं हुआ। जैसे आकाश और शून्यता और अग्नि और उष्णता में भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। हे रामजी! अब एक और वृत्तान्त तुम सुनो। स्वप्न में जैसे अब हम हैं तैसेही एक आगे भी चित्त प्रतिमा हुई थी। पूर्व एककल्प में तुम और हम हुये थे। तुम मेरे शिष्य थे और मैं तुम्हारा गुरु था। तूने एक वन में मुझसे प्रश्न किया था कि, हे भगवन्! एक मुझको संशय है सो नाश करो। महाप्रलय में नाश क्या होता है और अविनाशी क्या रहता है? तब मैंने कहा था, हे तात! जितना शेष विशेषरूप

जगत् है सो सब नाश होजाता है–जैसे स्वप्न का नगर सुषुप्ति में लीन होजाता है और निर्विशेष ब्रह्मसत्ता शेष रहती है। क्रिया, काल, कर्म, आकाश, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, पहाड़, नदियां और इनसे लेकर जो कुछ जगत् क्रिया, काल और द्रव्य संयुक्त है वह सब नाश होजाता है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र ये जो कार्य के कारण हैं उनका नाम भी नहीं रहता। संवेदन शक्ति जो चैतन्य का लक्षणरूप है सो भी नहीं रहती केवल अचेत चिन्मात्र एक चिदाकाश ही शेष रहता है। शिष्य बोले; हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत्य होती है उसका नाश नहीं होता और जो असत्य होती है सो आभासरूप है पर यह जगत् तो विद्यमान भासता है सो महाप्रलय में कहां जावेगा? गुरु बोले, हे तात! जो सत्य है उसका नाश कदाचित् नहीं होता और जो असत्य है उसका भाव नहीं; इसलिये जितना कुछ जगत् तुझको भासता है सो सब भ्रममात्र है इसमें कोई वस्तु भी सत्य नहीं भासती है परन्तु जैसे मृग-तृष्णा का जल स्थित नहीं होता और दूसरा चन्द्रमा व आकाश में तरुवरे भ्रममात्र हैं; तैसेही यह जगत् भी जो भासता है सो भ्रममात्र है। जैसे स्वप्न का नगर प्रत्यक्ष भी भासता है परन्तु भ्रममात्र है; तैसेही यह जगत् भी भ्रमरूप जानो। हे तात! आत्मसत्ता सर्वदाकाल सर्वत्र अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्न में जाग्रत् का अभाव होता है और जाग्रत् में स्वप्न का अभाव होता है तो सृष्टि कहां जाती है? जैसे जाग्रत् में स्वप्न की सृष्टि का अभाव होजाता है; तैसेही महाप्रलय में इसका अभाव होजाता है। शिष्य बोले; हे भगवन्! यह जो भासता है सो क्या है और जो नहीं भासता सो क्या है? इसका रूप क्या है और चिदाकाश से कैसे हुआ है? गुरु बोले; हे शिष्य! जब शुद्ध चिदाकाश में किञ्चन संवेदन फुरती है तब जगत्रूप हो भासती है इससे इसका रूप भी चिदाकाशही है–चिदाकाश से भिन्न कुछ नहीं सृष्टि और प्रलय दोनों उसीके रूप हैं जब संवेदन फुरती है तब सृष्टि हो भासती है और जब अफुर होती है तब प्रलयरूप हो भासती है पर दोनों उसके रूप हैं। जैसे एकही वपु में दो

स्वरूप हैं-दन्तों से शुक्ल लगता है और केशों से कृष्ण लगता है; तैसेही आत्मा में सर्ग और प्रलय दो रूप होते हैं पर दोनों आत्मरूप हैं। जैसे एक ही निद्रा की दो अवस्था होती हैं-एक स्वप्न और दूसरी सुषुप्ति पर जाग्रत् में उभय नहीं; तैसे ही निद्रारूप संवेदन में सर्ग और प्रलय भासती है पर जाग्रत्रूप आत्मा में दोनों का अभाव है। हे तात! जो कुछ तुमको भासता है सो सब चिदाकाशरूप है-और कुछ नहीं ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्न में अपना अनुभव ही जगत्रूप हो भासता है; तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। शिष्य बोले; हे भगवन्! जो इसी प्रकार है कि; द्रष्टा ही दृश्यरूप हो भासता है तो और जगत् तो कुछ न हुआ सर्व वही है? गुरु बोले; हे तात! इसी प्रकार है। जगत् कुछ वस्तु नहीं चिदाकाश ही जगत्रूप हो भासता है और आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है और कुछ नहीं क्योंकि; सब उसी का किञ्चन है और सर्वमें सर्वदाकाल सर्वप्रकार वही सृष्टि होकर फुरती है और किसी में किसी काल किसी प्रकार कुछ हुआ नहीं आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है और जो कुछ जगत भासता है उसे वही रूप जानो। जिसको तू सर्ग और प्रलय कहता है सो सब आत्मसत्ता के नाम हैं वही सर्वमें सर्वदाकाल सर्वप्रकार स्थित है। एकही जो परमदेव है वही घट पटरूप हुआ है। पर्वत, पट, जल, तृण, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, स्थावर, जङ्गम, आस्ति, नास्ति, शून्य, अशून्य, क्रिया, काल, मूर्त्ति, अमूर्ति, बन्ध और मोक्ष आदि सर्व शब्द अर्थ से जो पदार्थ सिद्ध होते हैं सो सर्व आत्मरूप हैं और सर्वमें सर्वदाकाल सर्व प्रकार आत्मा ही है और जिसमें सर्वदाकाल सर्व प्रकार नहीं वह भी आत्मा ही है जो सदा ज्यों का त्यों ही है। जैसे स्वप्न में जो कुछ भासता है सो सब आत्मसत्ता ही है और दूसरा कुछ बना नहीं। हे तात! तृण ही कर्ता है; तृणही भोक्ता है और तृणही सर्वेश्वर है। घट कर्ता है, घट भोक्ता है और घटही सर्व ईश्वर है। पट कर्ता है; पट भोक्ता है और पटही परमेश्वर है। नर कर्ता है; नर भोक्ता है और नर ही सर्वका ईश्वर है। इसी प्रकार

एक एक वस्तु नाम से जो वस्तु है सो करता भोक्ता सर्व ब्रह्मरूप है। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जो कुछ जगत् भासता है सो सर्व आत्मरूप है और क्षय, उदय, भीतर, बाहर, कर्ता, भोक्ता सब ईश्वर है सो विज्ञानमात्र है। कर्ता-भोक्ता वही है और न कर्ता है, न भोक्ता भी वही है। विधिमुख करके भी वही है और निषेध भी वही है। शुद्ध दृष्टि से सब चिदात्मा ही भासता है जो सर्व दुःख से रहित है। जिनको आत्मदृष्टि नहीं प्राप्त हुई उनको भिन्न २ जगत् भासता है जो अनुभव से भिन्न नहीं है। ऐसे जान कर अपने स्वरूप में स्थित होरहो। हे रामजी! इस प्रकार मैंने तुमसे कहा था परन्तु उससे तुमको अभ्यास की ऊनता से बोध न हुआ इसलिये वही संस्कार अब तुमको प्राप्त हुआ है और इसी कारण से अब तुम जागे हो। हे रामजी! अब तुम अपने स्वरूप में स्थित होकर कृतकृत्य हुये हो इसलिये अपनी राजलक्ष्मी को भोगो; प्रजा की पालना करो और हृदय से आकाशवत् निर्लेप रहो।

इति श्रीयो० नि० द्विशताधिकसप्ताशीतितमस्सर्गः ॥ २८७ ॥

बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज! जब वशिष्ठजी इस प्रकार रामजी से कहचुके तब आकाश में जो सिद्ध और देवता स्थित थे वे फूलों की वर्षा करने लगे—मानों मेघ बरफ़ की वर्षा करते हैं अथवा आकाश कम्पायमान हुआ है उससे तारे गिरते हैं—जब वे पुष्पों की वर्षा कर चुके तब राजा दशरथ उठखड़े हुये और अर्घ्य पाद्य दे और पूजन कर हाथ जोड़ के कहनेलगे कि; हे मुनीश्वर! बड़ा कल्याण और बड़ा हर्ष हुआ जो तुम्हारे प्रसाद से हम आत्मपद को प्राप्त होकर कृतकृत्य हुये। चित्त का वियोग हुआ है इससे दृश्य फुरने का भी अभाव हुआ है और हम अचित; चिन्मात्र हैं। अब हम परमपद को प्राप्त हुये हैं और हमारे सब सन्ताप मिटगये हैं। संसाररूपी जो अन्धमार्ग था उससे थके हुये अब हम विश्रान्ति को प्राप्त हुये हैं। अब मैं पहाड़ की नाईं अचल हुआहूं; सब आपदा से तरगया हूं और जो कुछ जानना था सो जानरहाहूं। हे मुनीश्वर! तुमने बहुत युक्ति से दृष्टान्त देकर जगाया है अर्थात् शून्य

के दृष्टान्त, सीपी में रूपा; मृगतृष्णा का जल; रस्सी में सर्प; आकाश में दूसरा चन्द्रमा और नावपर नदी के किनारों का चलते भासना; जल में तरङ्ग; स्वर्ण में भूषण; वायु का फुरना; गन्धर्वनगर; संकल्पपुर आदि दृष्टान्त कहे हैं जिनसे हमने तुम्हारी कृपा से जाना है कि; आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं। वाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार दशरथ कह चुके तब रामजी उठे और हाथ जोड़कर इस प्रकार कहनेलगे कि, हे मुनीश्वर! तुम्हारी कृपा से मेरा मोह नष्ट हुआहै। अब मैं परमपद को प्राप्तहुआ हूं; किसी में मुझको न राग है और न द्वेष है और परमशान्ति को प्राप्त हुआ हूं। न अब मुझे किसी के करने से अर्थ है और न करने में कुछ अनर्थ है-मैं परमशान्तपद को प्राप्त हुआ हूं। हे मुनीश्वर! तुम्हारे वचनों को स्मरण करके मैं आश्चर्य को प्राप्त होकर हर्षित होता हूं। मेरे सब संदेह नष्ट होगये हैं और अब मुझको और नहीं भासता सर्व ब्रह्मही भासता है। लक्ष्मण बोले, हे भगवन्! मैं सन्तों के वचन इकट्ठे करता रहा था और सम्पूर्ण जो मेरे पुण्य थे सो अब इकट्ठे हुये थे जिन सबका फल अब उदय हुआ है। तुम्हारी कृपासे अब मैं सर्वसंशयों से रहित होकर परमपद को प्राप्त हुआ हूं। तुम्हारे वचन चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल हैं किन्तु उनसे भी अधिकहैं इससे मैंने परमशान्ति पाईहै और मेरे दुःख सन्ताप सर्व नष्ट हुये हैं। शत्रुघ्न बोले; हे मुनीश्वर! जगत् और मृत्यु का जो भय था वह तुमने दूर किया है और अपने अमृतरूपी वचनों का सुधापान करायाहै। अब हमारे संशय सब नष्ट हुयेहैं और हम आत्मपदको प्राप्त हुये हैं। हमारे जो चिरकाल के पुण्य थे उनका फल आज पाया है। विश्वामित्र बोले; हे मुनीश्वर! सर्वतीर्थों के स्नान करने और दूसरे कर्मों से भी मनुष्य ऐसा पवित्र नहीं होता जैसे तुम्हारे वचनोंसे हम पवित्र हुये हैं। आज हमारे श्रवण पवित्र हुये हैं। नारदजी बोले; हे मुनीश्वर! ऐसा मोक्षउपाय मैंने देवताओं; और सिद्धों के स्थान में भी नहीं सुना और ब्रह्मा के मुखसे भी नहीं सुना जैसा कि तुमने उपदेश किया है। इसके श्रवण किये से फिर संशय नहीं रहता। फिर दशरथ बोले; हे मुनीश्वर!

आत्मज्ञान ऐसी सम्पदा कोई नहीं; इससे तुमने परमसम्पदा हमको दी है जिसके पाये से फिर किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रही। अब तो हम अपने स्वभाव में स्थित हुये हैं और सम्पूर्ण कर्म हमको छोड़गये हैं। हमारे बहुत जन्मों के पुण्य इकट्ठे हुये थे उनके फल से ये तुम्हारे पावन वचन सुने हैं। रामजी बोले; हे मुनीश्वर! बड़ा हर्ष हुआ कि, सर्वसम्पदा का अधिष्ठान प्राप्त हुआ है और सर्व आपदा का अन्त हुआ है। ज्ञान से रहित जो अज्ञानी हैं वे बड़े अभागी हैं। जो आत्मपद को त्यागकर अनात्मपदार्थ की ओर धावते हैं वे भी यत्न करके प्राप्त होते हैं पर उनसे विमुख हो तब आत्मपद प्राप्त होता है। उसी आत्मपद को पाकर मैं शान्तिमान् होकर हर्षशोक से रहित हुआ हूं और मैंने अचल-पद पाया है और अजित अविनाशी सदा अपने आप में स्थित हूं। तुम्हारी कृपा से आपको ऐसा जानता हूं। लक्ष्मण बोले; हे मुनीश्वर! सहस्र सूर्य एकत्र उदय हों तो भी हृदय के तम को दूर नहीं करसक्के पर वह तम तुमने दूर किया है; और सहस्र चन्द्रमा इकट्ठे उदय हों तो भी हृदय की तपन निवृत्त नहीं करसक्के पर तुमने सम्पूर्ण तपन निवृत्त की है। हम निःसंताप पद को प्राप्त हुये हैं। बाल्मीकिजी बोले; हे साधो! जब इस प्रकार सब कह चुके तब वशिष्ठजीने कहा। हे रामजी! इस मोक्ष-उपाय कथाको सुनकर सर्वब्राह्मणोंका यथायोग्य पूजनकरो और दानकरो और जो इतर जीव हैं वे भी यथायोग्य यथाशक्ति पूजन करते हैं। तुम तो राजा हो। जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब राजा दशरथ ने उठकर सहस्र मथुरावासी विद्यावान् ब्राह्मणों को भोजन कराया और दक्षिणा, वस्त्र, भूषण, घोड़े, गांव आदिक दिये और यथायोग्य पूजन किया। निदान बड़ा उत्साह हुआ; अङ्गना नृत्य करने लगीं और नगाड़े, सहनाई आदि बाजन बजने लगे और चक्रवर्ती राजा होकर दशरथ ने उत्साह किया। इस प्रकार सात दिनतक ब्राह्मणों, अतिथियों और निर्धनोंको द्रव्य देकर राजाने पूजन किया और अन्न और वस्त्र आदिक से सबको प्रसन्न किया।

इति श्रीयो० नि० द्विशताधिकाष्टाशीतितमस्सर्गः॥ २८८॥

बाल्मीकिजी बोले कि; हे भरद्वाज ! इस प्रकार वशिष्ठमुनि के वचन सुनकर सब रघुवंशी कृतकृत्य हुये। जैसे रामजी सुनकर संशयरहित जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं; तैसेही तुम भी बिचरो। यह मोक्ष उपाय ऐसा है कि, जो अज्ञानी श्रवण करे तो वह भी परमपद को प्राप्त हो। तुम्हारी क्या बात है तुम तो आगे से भी बुद्धिमान् हो। जिस प्रकार मुझसे ब्रह्माजीने कहाथा सो मैंने तुमको सुनाया है। जैसे रामजी आदिक कुमार और दशरथ आदिक राजा जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं; तैसेही तुम भी बिचरो। उनमें मोह भी दृष्टि आता था परन्तु वे स्वरूप से चलायमान नहीं हुये। ज्ञान ऐसा सुख और कोई नहीं और अज्ञान ऐसा दुःखभी कोई नहीं। इससे अधिक कैसे कहिये। यह जो मोक्ष उपाय मैंने तुमसे कहा है सो परमपावन है; संसारसमुद्र से पार करनेवाला है; दुःखरूपी अन्धकार को नाशकर्ता सूर्यरूप है और सुखरूपी कमल की खानि का ताल है। जो पुरुष इसका बारम्बार विचारकरे वह यदि महामूर्ख हो तोभी शान्तपद को प्राप्त हो। जो कोई इस मोक्षउपाय को पढ़ेगा; कहेगा; सुनेगा; लिखेगा अथवा लिखकर पुस्तक देगा उसके हृदय में जो कामना होगी वह पूर्णहोगी; ब्रह्मलोक को प्राप्त होगा और वह राजसूययज्ञ का फल पावेगा और फिर विचारकर ज्ञान पाकर मुक्त होगा। हे अङ्ग ! यह जो मोक्षउपाय है सो बड़ा शास्त्र है; इसमें बड़ी कथा है और नाना प्रकार की युक्ति हैं जिन कथाओं और युक्तियों से वशिष्ठजी ने रामजी को जगाया था सो मैंने तुझको सुनाया है। अपने उपदेश से उन्होंने उनको जीवन्मुक्त किया था और कहाथा कि; तुम राजलक्ष्मी भोगो। वही मैंने भी तुमसे कहा है कि; जीवन्मुक्त होकर अपने तपकर्म में सावधान होरहो और निश्चय आत्मसत्ता में रखना। जिस उपदेश से रघुवंशी कृतकृत्य हुये हैं सो मैंने तुमसे ज्योंका त्यों कहा है। इस निश्चय को धारकर कृतकृत्य होरहो। इसमें जितने इतिहास और कथा हैं उनके भिन्न २ नाम सुनो। वैराग्यप्रकरण में सम्पूर्ण रामजी के प्रश्न हैं; मुमुक्षुप्रकरण में शुकनिर्वाणही कहा है; उत्पत्तिप्रकरण में ये आठ आख्यान

कहे हैं; एक आकाशज का; दूसरा लीला का; तीसरा सूची का; चतुर्थ इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र का; पञ्चम कृत्रिम इन्द्र और अहल्या का; षष्ठ चितोपाख्यान; सप्तम बाल्मीकि की कथा और अष्टम साम्बर का आख्यान; स्थितिप्रकरण में चार आख्यान हैं; एक भृगु के सुत का; दूसरा दामव्या और लकट का; तीसरा भीम, भास, दृढका और चतुर्थ दासूर का। उपशमप्रकरण में एकादश आख्यान कहे हैं; एक जनक की सिद्धगीता; दूसरा पुण्यपावन; तीसरा बलि को विज्ञान की प्राप्ति का वृत्तान्त; चतुर्थ प्रह्लादविश्रान्ति; पञ्चम गाधिका वृत्तान्त; षष्ठ उद्दालक निर्वाण; सप्तम स्वर्गनिश्चय; अष्टम परिघनिश्चय; नवम भास; दशम विलाससंवाद और एकादश वीतह। निर्वाणप्रकरण में सप्तविंशति आख्यान कहे हैं; भुशुण्डि और वशिष्ठ का; महेश और वशिष्ठ का; शिलाकोश का; उपदेश अर्जुन; स्वप्नसत्यरुद्र; वैताल का; भगीरथ का; गङ्गा अवतार; शिखरध्वज का; बृहस्पतिकचप्रबोध; मिथ्यापुरुष का; भृङ्गीगण का; इक्ष्वाकु; निर्वाण; मृगव्याधि दृष्टान्त; बलबृहस्पति; मङ्कीनिर्वाण; विद्याधरका; हरिणोपाख्यान; आख्यानोपाख्यान; विपश्चित् की कथा; शिबिका; शिला का; इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों का; कुन्ददन्त का; महाप्रश्न उत्तरवाक्य; शिष्य गुरु; महोत्सव और ग्रन्थप्रशंसाफल चतुष्टयप्रकरणों में सब पचास आख्यान वर्णन किये गये हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे महारामायणे वशिष्ठरामचन्द्रसंवादे निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनन्नामद्विशताधिकैकोननवतितमस्सर्गः ॥ २८९ ॥

समाप्तोयं श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धः।

इति।

